ŚRĪTATTVA-CINTĀMAṆIḤ

परमहंसपूर्णानन्दप्रणीतः

'श्रीतत्त्वचिन्तामणिः

संस्कृतटीकासहित'भावना'भाषाभाष्यसंवलितः

भावनाभाष्यकारः
श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
ISBN : 978-81-933162-7-4 (Set)

II

श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः

परमहंसपूर्णानन्दप्रणीतः

श्रीतत्त्वचिन्तामणिः

संस्कृतटीकासहित 'भावना' भाषाभाष्यसंवलितः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
613

परमहंसपूर्णानन्दप्रणीतः

श्रीतत्त्वचिन्तामणिः

ŚRĪTATTVA-CINTĀMAṆIH

संस्कृतटीकासहित'भावना'भाषाभाष्यसंवलितः

(द्वितीयः खण्डः • १४–२६ प्रकाशः)

भावनाभाष्यकारः

श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© **सर्वाधिकार सुरक्षित।** इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के विना नहीं किया जा सकता है।

श्रीतत्त्वचिन्तामणिः (द्वितीयः खण्डः)

पृष्ठ : 62+664+2

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542-2335263
email : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© **सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन**

प्रथम संस्करण 2017 ई०
मूल्य : ₹ 2100.00 (1-2 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

●

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

●

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

पुरोवाक्

श्रीविद्या-विषयक ग्रन्थों के प्रसंग में 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' का नाम अत्यन्त आदर और गौरव से लिया जाता है। वामकेश्वर तन्त्र (योगिनीहृदय एवं नित्याषोडशिकार्णव), ज्ञानार्णवतन्त्र, तन्त्रराजतन्त्र, गन्धर्वतन्त्र, त्रिपुरासार-समुच्चय-प्रभृति ग्रन्थरत्नों की परम्परा का यह एक सुपठित ग्रन्थ है, जिसमें भगवती त्रिपुरा की साधना और उपासना का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। चूँकि वामकेश्वर आदि इन ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय श्रीविद्या-उपासना है, अतः ये ग्रन्थ परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं; लेकिन प्रतिपाद्य देवताभेद के आधार पर ये ग्रन्थ एक-दूसरे से भिन्न भी हो जाते हैं। 'त्रिपुरासारसमुच्चय' में केवल बाला त्रिपुरा के त्र्यक्षरी मन्त्र का उद्धार तथा उनकी उपासना और सपर्या का निरूपण है तो ज्ञानार्णवतन्त्र में त्रिपुरा के तीन रूपभेदों (बाला, भैरवी और सुन्दरी) का साधन-विधान बताया गया है। गन्धर्वतन्त्र में पञ्चमी, ललिता और षोडशी का साधन-विधान है तो तन्त्रराजतन्त्र में महानित्या ललिता तथा उनकी कामेश्वरी आदि नित्या-देवियों की स्वतन्त्र रूप से साधना की विधि प्रयोगों-सहित विस्तार से निरूपित की गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' में पञ्चमी विद्याओं-सहित भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी के अनेक मन्त्रों के उद्धार तथा साधन-विधान का विस्तार से निरूपण किया गया है। इस समानता के साथ ही उनमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। जहाँ श्री वामकेश्वरतन्त्र, ज्ञानार्णव, तन्त्रराजतन्त्र और गन्धर्वतन्त्र भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट अपौरुषेय ग्रन्थ हैं, वहीं त्रिपुरा-सारसमुच्चय एवं श्रीतत्त्वचिन्तामणि ऋषिकल्प-साधकों के द्वारा प्रणीत पौरुषेय ग्रन्थ हैं। त्रिपुरासारसमुच्चय श्री नागभट्ट की कृति है तो श्रीतत्त्वचिन्तामणि के प्रणेता परमहंस पूर्णानन्दनाथ हैं। उन्होंने आज से ४३८ वर्ष पूर्व शक संवत् १४९९ (सन् १५७७ ई०) में इस ग्रन्थरत्न का प्रणयन किया था, जिसमें गौडीय पद्धति से भगवती त्रिपुरा के उपासना-क्रम का निरूपण किया गया है।

परमहंस पूर्णानन्दनाथ

भारत के प्राचीन और मध्यकालीन वीतरागी लेखक और कवि अपने लौकिक जीवनवृत्त के प्रति उदासीन हुआ करते थे और परमहंस पूर्णानन्द भी इस बात के अपवाद नहीं हैं। उनके जीवनवृत्त के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध

है। 'दि सर्पेन्ट पावर' की भूमिका में सर जान उडरफ द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार ईसा की सोलहवीं सदी में वे मैमनसिंह जिले के 'कैताली' नामक गाँव में पैदा हुए थे। उनका लौकिक नाम जगदानन्द शर्मा था। वे कश्यप गोत्र के राहरी ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज 'प्रकाशी' नामक किसी अज्ञात गाँव के मूल निवासी थे, जो वहाँ से चलकर मुर्शिदाबाद जिले के बारनगोरा-नामक गाँव में आकर बस गये थे। श्री पूर्णानन्द के एक पूर्वज श्री अनन्ताचार्य ने बारनगोरा को छोड़कर कैताली को आबाद किया। अत: इन जिलों में पूर्णानन्दनाथ के वंशज अभी तक रह रहे हैं।

श्री जगदानन्द शर्मा ने शकाब्द १४४८ (सन् १५२६ ईस्वी) में 'विष्णु-पुराण' लिखा था, जिसकी प्रति सर जान उडरफ के समय तक उनके एक वंशज के पास उपलब्ध थी।

बाद में श्री जगदानन्द शर्मा ने परमहंस ब्रह्मानन्दनाथ से शाक्त धर्म की दीक्षा ली और साधना करने के लिये कामरूप (असम) चले आये। यहाँ वशिष्ठ-आश्रम का समाश्रय लेकर उन्होंने साधना की। उनके जीवनकाल में ही एक सिद्ध तान्त्रिक के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। यह वशिष्ठ-आश्रम गौहाटी से लगभग १३ किलोमीटर (७ मील) की दूरी पर था। इसी आश्रम में रहते हुए उन्होंने शक् संवत् १४९९ (सन् १५७७ ई०) में 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' का प्रणयन किया। उनकी अन्य कृतियाँ हैं—श्यामारहस्य, शाक्तकर्म, तत्त्वानन्द-तरङ्गिणी और योगसार। 'काली ककार कूट' पर उनका भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध है।

ग्रन्थ-परिचय

'प्रकाश'-संज्ञक २६ अध्यायों में प्रविभक्त इस बृहत्काय ग्रन्थ में कुल ३८४१ श्लोक हैं। बहुविध मन्त्रों का इस ग्रन्थ में उद्धार बताया गया है। इस ग्रन्थ में संगृहीत अधिकतम श्लोक गन्धर्वतन्त्र, ज्ञानार्णव, वाराहीतन्त्र, भावचूडामणि तथा कुलार्णव-प्रभृति अपौरुषेय ग्रन्थों से उद्धृत हैं। अत: इस ग्रन्थ का आर्षत्व स्वयं प्रमाणित है। दूसरी बात यह कि साधना और उपासना से सम्बन्धित समस्त कर्मकाण्ड अर्थात् दीक्षा से लेकर वहिरंग-पूजन तथा हवन-पर्यन्त सम्पूर्ण क्रिया-विधान का इस ग्रन्थ में इतना क्रमबद्ध और सुप्रवाही निरूपण किया गया है कि इसका सम्यक् रूप से अध्ययन कर लेने के बाद सामान्य और मध्यम श्रेणी के साधकों को मार्गदर्शन के लिये किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इन क्रिया-विधानों को इस ग्रन्थ में कितने विस्तार से समझाया गया है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है

कि न्यास एवं अन्तर्यजन तथा पात्रासादन के बाद भगवती की केवल बहिरंग पूजाविधि का निरूपण १८वें प्रकाश में ६१५ श्लोकों में किया गया है। श्लोकसंख्या-सहित प्रत्येक प्रकाश के प्रतिपाद्य विषय का विवरण भूमिका में आगे दिया गया है।

तीसरी बात यह कि समग्र तन्त्र-वाङ्मय में सम्भवत: 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसके किसी अध्यायविशेष को स्वतन्त्र ग्रन्थ की प्रतिष्ठा प्राप्त है। सभी सम्प्रदायों के साधकों और विद्वानों में 'कुण्डलिनी-विज्ञान' को समग्र रूप से समझने तथा तदनुसार कुण्डलिनी-साधना करने के लिये **'षट्चक्रनिरूपण'**-संज्ञक जिस सद्ग्रन्थ को पाठ्य पुस्तक (Text-book) का दर्जा प्राप्त है, वह इस ग्रन्थरत्न का छठवाँ प्रकाश है, जो कालिचरण सिद्धान्त के विस्तृत भाष्य-सहित विगत बीसवीं शताब्दी में कई बार प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी अनुवाद-सहित यह ग्रन्थ चौखम्बा में उपलब्ध है।

ईसवी सन् १९१८ में प्रकाशित सर जान उडरफ (Sir John Woodroffe) की विश्वविख्यात कृति 'दि सर्पेन्ट पावर (The Serpent Power) का आधार यही ग्रन्थ (षट्चक्रनिरूपण) है। अपनी इस कृति में सर जान उडरफ ने 'षट्चक्रनिरूपण' की मूल संस्कृत श्लोकों को रोमन लिपि में लिप्यन्तरण और कालिचरण सिद्धान्तकृत भाष्य का अत्यन्त परिमार्जित भाषा में अंग्रेजी अनुवाद व्यापक भाष्य-सहित प्रस्तुत किया है। कुण्डलिनी-विज्ञान पर सम्प्रति हिन्दी और अंग्रेजी में जो पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उन सबका आधार यही 'षट्चक्रनिरूपण' है।

षट्चक्र-निरूपण

वर्ष १९३६ में कालिकाता से प्रकाशित 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' की भूमिका में बताया गया है कि श्री कालिचरण सिद्धान्त सिलहट जिले के निवासी एक महान् नैयायिक तथा तन्त्रविद् वारेन्द्र ब्राह्मण थे। उन्होंने परमहंस पूर्णानन्द की सभी प्रसिद्ध कृतियों का भाष्य किया है। अत: यह अनुमान लगाया जाता है कि उन्होंने समग्र 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' पर भाष्य लिखा हो, जो अब न तो उपलब्ध है और न ही किसी ग्रन्थ में उसका उल्लेख मिलता है। 'षट्चक्रनिरूपण' उसी अनुपलब्ध भाष्य का वह भाग है, जो एक दीपस्तम्भ की तरह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में आज भी देदीप्यमान है।

दीक्षा और षट्चक्रनिरूपण

तान्त्रिक विधि से शिष्य को मन्त्रदान के पूर्व उसे षट्चक्र विज्ञान की शिक्षा दिये जाने का प्रावधान है। श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (पटल २४) में कहा गया है कि शिष्य

को मन्त्र देने के पूर्व उसके आज्ञाचक्र का संक्रमण करके गुरुदेव उसे षट्‌चक्र विज्ञान की शिक्षा दें—'पश्चात् षट्‌चक्रविज्ञानं शिष्याय प्रतिबोधयेत्' (२४।४५)। इन्हीं शब्दों में यही बात प्रस्तुत ग्रन्थ के पञ्चम प्रकाश में कही गयी है—'षट्‌चक्रविज्ञानं शिष्याय प्रतिबोधयेत्' (५।१४५)। चूँकि मन्त्रदान के पूर्व शिष्य को षट्‌चक्र का बोध कराना दीक्षाकर्म का एक अनिवार्य अंग है, इसीलिये षष्ठ प्रकाश में षट्‌चक्र विज्ञान का विस्तार से निरूपण किया गया है। इस प्रकाश के प्रथम श्लोक में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यहाँ षट्‌चक्र विज्ञान का जो निरूपण किया जा रहा है, वह तन्त्रशास्त्र-सम्मत है—

अथ तन्त्रानुसारेण षट्‌चक्रक्रमोद्‌गतः।
उच्यते परमानन्दनिर्वाहः प्रथमाङ्कुरः।।
(६।१)

'अथ तन्त्रानुसारेण' इस प्रतिज्ञावाक्य से यह तथ्य रेखाङ्कित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में निरूपित षट्‌चक्र विज्ञान न तो कोई सर्वथा नया विषय है और न ही तन्त्र साहित्य में पहली बार इसका उल्लेख या निरूपण किया जा रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि पतञ्जलि के योगसूत्रों में षट्‌चक्र विज्ञान और कुण्डलिनी योग का उल्लेख नहीं है; किन्तु इसके साथ यह भी तथ्य है कि आगम और तन्त्र-शास्त्र की विभिन्न शाखाओं में इसका उल्लेख मिलता है। सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद्, रुद्रयामल, ज्ञानार्णव, नेत्रतन्त्र, गन्धर्वतन्त्र, योगिनीहृदय, त्रिपुरासारसमुच्चय-प्रभृति ग्रन्थों में चक्रों का उल्लेख तथा कुण्डलिनी शक्ति एवं कुण्डलिनी योग की चर्चा है। यह अलग बात है कि इन ग्रन्थों में षट्‌चक्रों का यथावाञ्छित साङ्गोपाङ्ग निरूपण नहीं है और इनमें से किसी ग्रन्थविशेष से उतनी जानकारी नहीं मिलती, जितनी जानकारी सामान्य साधक को कुण्डलिनी-साधना के लिये आवश्यक है। यथा—ज्ञानार्णवतन्त्र में मूलाधार आदि चक्रों की स्थिति, दलों की संख्या और दलों में अंकित अक्षरों का उल्लेख तो है; लेकिन चक्र से सम्बन्धित अन्य विवरण नहीं बताये गये हैं। यही हाल अन्य तन्त्रग्रन्थों का भी है। इतना ही नहीं; चक्रों की संख्या तथा उनके स्वरूप के बारे में भी प्राचीन ग्रन्थों में मतैक्य नहीं है। यथा—'योगिनीहृदय' (३।३०) में नौ चक्रों के साथ छः चक्रों का उल्लेख है। यद्यपि नेत्रतन्त्र (७।२८-२९) में छः चक्रों का वर्णन है; मगर उनकी प्रतिपादन-पद्धति अलग है। इस तरह 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' ही वह ग्रन्थ है, जिसमें चक्रों की संख्या, उनके क्रम तथा स्वरूप का शास्त्रसम्मत मानकीकरण किया गया है। इन छः चक्रों का जितना साङ्गोपाङ्ग वर्णन इस ग्रन्थ में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' में प्रत्येक चक्र के दलों की संख्या, उनका रंग, उन पर अङ्कित बीजाक्षरों तथा उन बीजाक्षरों का वर्ण बताने के साथ ही प्रत्येक चक्र में प्रतिष्ठिता डाकिनी आदि शक्ति, प्रत्येक चक्र के अधिष्ठातृ देवता, पञ्चमहाभूतों के मण्डल, चारो पीठों तथा चारो लिङ्गों आदि का समग्र रूप से विवरण देते हुए उनके ध्यान की विधि तथा प्रत्येक चक्र की साधना से मिलने वाली सिद्धि का विवरण इतने समग्र रूप से दिया गया है कि सामान्य साधक को इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

यहाँ सहज जिज्ञासा होती है कि षट्चक्र और कुण्डलिनी-साधना का सीधा सम्बन्ध तो हठयोग से है, तो फिर मन्त्रदीक्षा के पूर्व इसके उपदेश का कारण क्या है? इस जिज्ञासा के समाधान के लिये हमें तन्त्रसाधना के लक्ष्य और उसके ताना-बाना को समझना होगा।

तन्त्रसाधना का परम लक्ष्य 'परं पद' की प्राप्ति है। उसका अर्थ है—स्वराट् का विराट् में विलय। इसके कई उपाय और मार्ग हैं; मगर मन्त्र-साधना इन सभी उपायों में सर्वोत्तम है।

मन्त्र क्या है? मन्त्र वाचक है और देवता वाच्य है। अत: मन्त्र में देवता का वास माना जाता है। देवता का अधिष्ठानरूप मन्त्र वर्णमय—अक्षरमय है। अक्षरों या वर्णों के विना मन्त्र की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती और ये वर्ण शब्द-ब्रह्म की विभूतियाँ हैं और यह शब्दब्रह्म कुण्डलिनी के रूप में सभी व्यक्तियों में स्थित है—'तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगाम्।' इस तरह अपनी वर्णात्मकता के कारण मन्त्रों का कुण्डलिनी से गहरा सम्बन्ध है; मगर यह कुण्डलिनी सामान्यत: सोई रहती है। परं पद की प्राप्ति अर्थात् ब्रह्मसायुज्य पाने के लिये कुण्डलिनी का जागरण अनिवार्य है। इसे जागृत और क्रियाशील बनाने के लिये मन्त्रयोग में जो उपाय बताया गया है, वह है—मन्त्रजप। मन्त्रजप का अर्थ हाथ में माला लेकर मन्त्र के अक्षरों को ककहरे की तरह दुहराना या घोखना नहीं है। मन्त्रजप एक विज्ञान है, कौशल है तथा मन्त्रजप की अपनी विशिष्ट प्रविधि है। इनमें सर्वोत्तम तथा सर्वोत्कृष्ट प्रविधि है—इष्टदेवता के रूप में देवी कुलकुण्डलिनी का ध्यान करते हुए विभिन्न चक्रों में मन्त्रवर्णों या मन्त्र के कूटों का तद्गत और पूर्ण मनोयोग से जप करना, जिसका निदेश प्रस्तुत ग्रन्थ में कई स्थलों में किया गया है। यदि षट्चक्रों की स्थिति और उनकी विभूतियों तथा कुल-कुण्डलिनी का परिज्ञान नहीं हो तो इस उच्च प्रविधि से मन्त्र का जप किस तरह सम्भव होगा? इस प्रविधि से जप करने से मन्त्र के वर्णों में विस्फोट होता है

और उसमें निहित दैवत ऊर्जा नि:सृत होने लगती है। ऊर्जा के इस निस्सरण से कुण्डलिनी-सहित शरीर में अन्तर्निहित सभी प्रसुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। षट्चक्रभेदन और कुण्डलिनी-जागरण से साधक के शरीर में विद्यमान मातृतत्त्व (कुण्डलिनी) का पुरुष तत्त्व (परमशिव) से संयोग होकर स्वराट् का विराट् में प्रविलयन होने लगता है। इसीलिये मन्त्रदीक्षा के साथ ही षट्चक्र की शिक्षा जरूरी है।

मन्त्रसाधना के अन्तर्गत मन्त्रजप के साथ इष्टदेवता का अर्चन भी अनिवार्य कर्तव्य है। देवता का यह अर्चन अन्तरङ्ग और बाह्यभेद से दो प्रकार का है। अन्तरङ्ग अर्चन मुख्य और बाह्य गौण है तथापि बाह्य अर्चन के नित्यप्रति दृढ़ अभ्यास और आवर्तिता से अन्तरङ्ग अर्चन में दृढ़ता आती है और साधक विना किसी बाह्य उपचार के इष्टदेवता का यथोचित अर्चन करने में समर्थ होता जाता है। अन्तरङ्ग अर्चन में दक्ष साधक का मन क्रमश: देवता में लीन होकर तद्रूप होता जाता है और भव-पाश के बन्धन टूटते जाते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ और बातें भी ध्यातव्य हैं। प्रथम यह कि तन्त्रोपदिष्ट विधि से साधना करने वाला साधक किसी ऐसे देवता की साधना नहीं करता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठकर संसार का सञ्चालन और शासन करता है। तन्त्र की दृष्टि में साधक का शरीर ही ब्रह्माण्ड है और उसमें जो आत्मशक्ति स्थित है, वही उसका आराध्य देव है। मोक्षकामी तन्त्र-साधक 'आत्मना आत्मानं उद्धरेत्' के निदेश-वाक्य का अक्षरश: पालन करता हुआ अपनी ही आत्मशक्ति से अपनी आत्मा को प्रपञ्चजाल से मुक्त करता है।

दूसरी बात यह कि यद्यपि इष्टदेवता का अर्चन तन्त्रोपदिष्ट साधना का अनिवार्य अङ्ग है; मगर अर्चन का अर्थ देवता के सामने रोना-गिड़गिड़ाना और प्रायश्चित्त करना नहीं; अपितु अर्चन और स्तवन के द्वारा इष्टदेवता की दिव्य विभूतियों का स्मरण करते हुए उन्हें आत्मसात् करना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में तन्त्रोपदिष्ट इसी साधना-विधान का अत्यन्त विस्तार से २६ प्रकाशों (अध्यायों) में यथाक्रम निरूपण किया गया है। इस सभी २६ प्रकाशों में प्रतिपाद्य विषयों का दिग्दर्शन आगे किया जा रहा है—

प्रथम प्रकाश—प्रथम प्रकाश के प्रथम श्लोक में परमगुरु देवाधिदेव शिव की वन्दना करके द्वितीय श्लोक में परमगुरु से सर्वथा अभिन्न दीक्षागुरु की वन्दना की गयी है। गुरुदेव से दीक्षा-प्राप्ति के बाद साधक को साधना का अधिकार मिल जाता है तथापि दुर्बल अधिकारियों के लिये प्रथम श्लोक में अभिवन्दित परमशिव

की साधना दु:साध्य होती है, अत: उनके लिये सविशेष ब्रह्मोपासना अर्थात् सगुण शिव की उपासना का विधान है। अत: तृतीय श्लोक में सगुण शिव की अभिवन्दना की गयी है। चतुर्थ श्लोक में वन्दना की गयी है—विष्णु-रूप में आविर्भूत परमशिव की। इस तरह परमहंस पूर्णानन्दनाथ ने यह तथ्य रेखाङ्कित किया है कि रूपभेद होने पर भी परमशिव और विष्णु तत्त्वत: एक हैं। जो परमशिव निराकार और निर्गुण होने के बावजूद विश्व के हित-साधन के लिये साकार तथा सगुण शिव एवं शिष्य के कल्याण के लिये दीक्षादाता गुरु के रूप में प्रकट होते हैं, वे ही परमशिव अपने विष्णुरूप में भक्तों की भक्ति-डोर से बन्ध कर 'दामोदर' बन जाते हैं। ऐसे परम कारुणिक परमशिव की स्वरूपा शक्ति सर्वथा अरूपा होने के बावजूद साधकजनों पर अनुग्रह करने के लिये श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी का रूप धारण करती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र-प्रभृति देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों आदि के द्वारा पूजिता और आराधिता परमशिव की प्रकाशस्वरूपा यही श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी इस ग्रन्थ की प्रतिपाद्य देवता हैं। अगले दो श्लोकों में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की वन्दना करके निर्विशेष, निराकार ब्रह्म का स्वरूप-निरूपण करने के बाद यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य की आत्मा इसी सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म का अंश है, जो पाशों और कञ्चुकों से आबद्ध होकर जीव बन गया है तथा अविद्या और अज्ञान के कारण संसारचक्र में फँस कर दु:ख उठा रहा है। जब तक उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, संसारचक्र से उसकी मुक्ति असम्भव है। तत्त्वज्ञान का अर्थ है—ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान का अर्थ है—ब्रह्मरूपता की प्राप्ति। यद्यपि इसकी प्राप्ति के अनेक उपाय हैं, अनेक विधियाँ हैं तथापि इनमें सर्वश्रेष्ठ विधि है—परं ब्रह्मरूप परमशिव की परमा शक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना; क्योंकि स्वयं ही प्रकृतिस्वरूपा होने के कारण वे अपने भक्तों को प्रकृति-प्रपञ्च के जाल से शीघ्र ही मुक्ति दिला देती हैं। इस प्रकाश में ८७ श्लोक हैं।

द्वितीय प्रकाश—भगवती त्रिपुरा की उपासना की वरीयता और महत्ता का प्रथम प्रकाश में निरूपण करने के बाद इस प्रकाश में दीक्षा-विधान का निरूपण किया गया है; क्योंकि दीक्षा ग्रहण करने के बाद ही मुमुक्षु साधक को साधना और उपासना का अधिकार मिलता है। दीक्षा की इस महत्ता और अनिवार्यता का रहस्य इसके दोनों घटक वर्णों अर्थात् 'दी' और 'क्षा' में छिपा हुआ है। तन्त्र-ग्रन्थों में इन दोनों वर्णों की व्याख्या विस्तार से की गयी है। इन समस्त व्याख्याओं का सार है—

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाशबन्धनात्।

जिससे अष्टपाशों का बन्धन शिथिल होता है तथा आत्यन्तिक (ब्रह्म) ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह 'दीक्षा' है। इस तरह दीक्षा पथरीली और बंजर जमीन को उपजाऊ खेत बनाने की प्रक्रिया के समान वह मनो-आध्यात्मिक संस्कार है, जो मुमुक्षु साधक की उस मनोभूमि को, जो प्राक्तन जन्मों के तरह-तरह के संस्कारों के कारण सर्वथा कठोर और बंजर हो गयी है, उसे इस जन्म में आत्यन्तिक ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त मन्त्र-वपन के लिये सर्वथा अनुकूल और प्रशस्त बनाता है। इस मनो-आध्यात्मिक संस्कार अर्थात् दीक्षा के अनेक भेद हैं, जिनका नामोल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है; मगर नाम और क्रियाभेद के बावजूद दीक्षा की सार्थकता की एकमात्र शर्त यह है कि वह सद्गुरु से ग्रहण की जाय, जैसा कि मेरुतन्त्र में कहा गया है—

तेन दीक्षा हि सम्प्रोक्ता चेत् सद्गुरोः मुखात्।
असद्गुरुः स्वयं नष्टः कथं तारयते परम्॥

इसलिये दीक्षा के प्रसङ्ग में सद्गुरु और साथ ही सत्-शिष्य के लक्षण बताकर उनके परस्पर व्यवहार का निरूपण इस प्रकाश में किया गया है। इसके बाद अनुकूल मन्त्र के चयन के लिये तन्त्रशास्त्र में विहित अकथह चक्र, ऋणी-धनी चक्र, नक्षत्र-चक्र, राशिचक्र, अकडम चक्र, कुलाकुल चक्र तथा वर्गचक्र बनाने की विधि बतायी गयी है। अनुकूल मन्त्र का चयन हो जाने के बाद दीक्षा के लिये प्रशस्त माह, दिन, नक्षत्र के चयन तथा मन्त्र के जनन आदि दस संस्कारों के सम्पादन की विधि बतायी गयी है। इस प्रकाश में १७३ श्लोक हैं।

दीक्षा के प्रसङ्ग में तन्त्रान्तर (तन्त्रसार में यथा-उद्धृत तत्त्वसारतन्त्र) में रहस्य की यह बात बतायी गयी है कि यक्षिणी आदि उपविद्याओं तथा मारण-मोहन जैसे षट्कर्म-साधन के लिये दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। किसी मन्त्र-सिद्ध साधक से मन्त्र और उसकी साधना-विधि जान लेना ही पर्याप्त है—

उपविद्यासु सर्वासु तथा प्रयोगसाधने।
दीक्षां विनैव कर्तव्यः उपदेशः सदैव हि॥

इससे स्पष्ट है कि दीक्षा का अभिप्राय पारमार्थिक लाभ के लिये उन देवताओं के मन्त्रग्रहण से है, जो मोक्ष देने में समर्थ हैं। जिन देवताओं में मोक्ष प्रदान करने का सामर्थ्य नहीं है, उनका मन्त्रग्रहण दीक्षा के दायरे में नहीं आता। यही बात मारण-मोहन आदि जैसे षट्कर्म-साधन-विषयक लौकिक प्रयोजनपरक मन्त्रों पर भी लागू होती है।

तृतीय प्रकाश—दीक्षा-विधान के क्रम में दीक्षा के लिये प्रशस्त स्थानों का विवरण देने के बाद इस प्रकाश में दीक्षा, पुरश्चरण और साधना के लिये

आवश्यक कूर्मचक्र बनाने की विधि बतायी गयी है। दीक्षा के लिये भूमि का चयन हो जाने के बाद उस भूमि पर वास्तु याग अनिवार्य है। अत: वहाँ वास्तु-मण्डल बनाने की विधि, वास्तुमण्डल पर पूजनीय देवताओं के नाम, उनके पूजन और बलिविधान का इस प्रकाश में जो निरूपण किया गया है, वह केवल दीक्षामण्डल ही नहीं; अपितु गृह आदि के निर्माण तथा जीर्णोद्धार के लिये भी उपयोगी है। इस प्रकाश में ९३ श्लोक हैं।

चतुर्थ प्रकाश—इस प्रकाश में दीक्षा-मण्डप के निर्माण का शास्त्र-समस्त विधान बताया गया है। तदनुसार यथा-सुविधा १६ (सोलह) १४ (चौदह) अथवा १२ (बारह) हाथ परिमाण का चौकोर मण्डल बनाया जाना चाहिये। भूमितल से एक हाथ समुन्नत यह दीक्षामण्डल १६ खम्भों पर आधारित होता है। इनमें से चार खम्भे वेदी के चतुर्दिक् और शेष १२ खम्भे द्वार आदि बाहरी भागों में लगाये जाते हैं। चारो दिशाओं में चार द्वार बनाये जाते हैं। द्वारों पर फाटक लगाये जाते हैं। देहली होती है और तोरण होते हैं। तोरणों पर लकड़ी के बने त्रिशूल लगाये जाते हैं। तोरण, फलक और प्रत्येक द्वार पर कलश स्थापित किये जाते हैं। इन्हें पुष्पमालाओं आदि से अलङ्कृत करके उन पर यथाविहित देवताओं का पूजन किया जाता है। किसी भी संरचना के लिये उसका रक्षा-विधान अनिवार्य है। चूँकि दीक्षामण्डप भी एक महत्त्वपूर्ण संरचना है, अत: अन्तरीक्षीय आपदाओं से उसकी रक्षा के लिये मण्डप की चारो दिशाओं तथा चारो विदिशाओं में इन्द्र आदि आठ दिक्पालों के आठ ध्वज और दसो दिशाओं में दस पताकायें स्थापित की जाती हैं। इनकी स्थापना से न केवल दीक्षामण्डप की रक्षा होती है, अपितु दीक्षामण्डप में किये जाने वाले शुभ कर्मों के फलों की चोरी भी नहीं हो पाती। मन्दिरों में ध्वजा और पताका लगाये जाने का यही प्रयोजन है। इनकी स्थापना की भी विशिष्ट शास्त्रीय विधि है। अत: इस प्रकाश में इन ध्वजों और पताकाओं के रङ्गों, उनके आकार-प्रकार तथा अन्य विशिष्टताओं के साथ उनकी स्थापना तथा अर्चन की विधि बतायी गयी है। मुख्य वेदी की रचना-विधि बताने के बाद मण्डप के पूर्व भाग में अङ्कुर-वपन के लिये वेदी के निर्माण, अङ्कुर-वपन के लिये पालिका, पञ्चमुखी तथा 'शराब'-संज्ञक मृण्मय पात्रों की व्यवस्था, उनके रूपाकार, उनमें यथाक्रम से करीष (सूखा गोबर), मिट्टी और रेती (बालू) भरकर उनमें पृथक्-पृथक् अनाजों के बीज बोने, इन पात्रों पर यथाविहित देवताओं के अर्चन तथा दीक्षा-दिवस-पर्यन्त उनकी दैनिक पूजा की विधि का निरूपण किया गया है। इन बोये गये बीजों से उत्पन्न अङ्कुरों से दीक्षा के शुभाशुभ का ज्ञान होता है। यदि इनसे अशुभता की सूचना मिलती है तो उसकी शान्ति के लिये 'शान्ति-होम' किया जाना चाहिये। इस प्रकाश में ६८ श्लोक हैं।

पञ्चम प्रकाश—इस प्रकाश में अधिवास और दीक्षा-विधान का विस्तार से निरूपण किया गया है। प्रारम्भ के ९ (नौ) श्लोकों में पञ्चायतनी विधि के अनुसार गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु तथा भवानी का अर्चनक्रम और विधान बताने के बाद दिक्पाल-बलि की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है। तत्पश्चात् दीक्षार्थी को 'स्वाप मन्त्र' का उपदेश, शयन-विधि और रात में देखे गये स्वप्न का फलाफल निरूपित करने के बाद विस्तार से मन्त्रदीक्षा का विधान बताया गया है। इस क्रम में मन्त्रदेवता के षोडशोपचार अर्चन तथा दीक्षाङ्ग हवन की विधि बतायी गयी है। इसके बाद दीक्षार्थी की देह में षडध्व-चिन्तन, हवनपूर्वक षडध्व-शोधन, शिष्य का अभिषेक, बाला विद्या की दीक्षा, गण्डूष-दान के बाद देय मन्त्र का यथाक्रम निरूपण करने के बाद यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि दीक्षा कुलाचारक्रम से दी जा रही हो तो मकारपञ्चक द्रव्यों का यथाविधान शोधन करके उनसे भगवती का अर्चन किया जाय। दीक्षा-प्रसङ्ग में सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि दीक्षा के दिन गुरु और शिष्य—दोनों के लिये उपवास करना सर्वथा वर्जित और निषिद्ध है। गुरु और शिष्य—इन दोनों में से जो भी उपवास करता है, उसे पाप लगता है तथा दीक्षा निष्फल हो जाती है। इस प्रकाश में १६५ श्लोक हैं।

षष्ठ प्रकाश—पिछले प्रकाश में यह कहा गया था कि मन्त्रदीक्षा देने के पूर्व गुरुदेव शिष्य को षट्चक्र विज्ञान की शिक्षा दें। इसी क्रम में ५६ श्लोकों के इस प्रकाश में षट्चक्र का निरूपण किया गया है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि यह प्रकाश इस ग्रन्थ का इतना महत्त्वपूर्ण भाग है, जिसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का दर्जा प्राप्त है तथा कालिचरण सिद्धान्त के अतिरिक्त शङ्कर और विश्वनाथ-नामक विद्वानों ने इस पर विस्तृत भाष्यों की रचना की है। इस प्रकाश में मूलाधार आदि चक्रों का इतना संश्लिष्ट, तथापि विस्तृत एवं शास्त्र-सम्मत निरूपण किया गया है कि इसका अध्ययन कर लेने के बाद सामान्य सन्दर्भ के लिये अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं रह जाती। मेरुदण्ड में इडा-पिङ्गला और सुषुम्णा तथा चित्रणी और ब्रह्मनाड़ी की स्थिति का निरूपण करने के बाद मूलाधार आदि षट्चक्रों का विवरण दिया गया है। यथा—

मूलाधार चक्र—गुदाद्वार से दो अङ्गुल ऊपर मूलाधार चक्र है। इस चक्र में लाल रङ्ग के चार दल हैं, जिन पर सुनहरे रङ्ग के 'वं-शं-षं-सं'—ये चार वर्ण अङ्कित हैं। कर्णिका में चतुष्कोणात्मक धरामण्डल है, जिसके मध्य में पीले रङ्ग का धराबीज (ल) अङ्कित है। ऐरावत पर आसीन धराबीज की गोद में शिशु

रूपधारी ब्रह्माजी विराजित हैं। उनके समीप इसकी अधिष्ठात्री डाकिनी देवी विराजिता हैं। वज्रा नाड़ी के मुख-प्रदेश और मूलाधार चक्र की कर्णिका में चमकदार त्रिकोणमण्डल है, जिसमें कन्दर्प वायु का वास है। इस त्रिकोण मण्डल में ही भगवान् शिव के स्वयम्भू लिङ्ग का वास है। इस स्वयम्भू लिङ्ग को साढ़े तीन वलयों से लपेटकर देवी कुण्डलिनी नागिन की तरह निद्रामग्न है। इस स्वयम्भू लिङ्ग में कुण्डलिनी के ऊपर परा शक्ति का वास है। मूलाधार चक्र तथा कुलकुण्डलिनी के निरूपणक्रम में उनका ध्यान करने का फल भी बताया गया है।

मूलाधार के बाद इतने ही विस्तार से यथाक्रम स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र का निरूपण करते हुए प्रत्येक चक्र में दलों की संख्या, उनका वर्ण, प्रत्येक दल पर अङ्कित अक्षर तथा उनके रङ्ग, तत्त्व-मण्डल, तत्त्वाक्षर, प्रत्येक चक्र में विराजित देवता, प्रत्येक चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति आदि का विवरण देते हुए प्रत्येक चक्र के ध्यान का फल बताया गया है।

षट्चक्र-निरूपण के बाद बताया गया है कि सुषुम्णा नाड़ी के ऊपरी भाग के अन्त में शुक्ल वर्ण का अधोमुखी सहस्रदल कमल है। इसकी कर्णिका में चन्द्रमण्डल है, चन्द्रमण्डल में त्रिकोण है, त्रिकोण में परं बिन्दु है, जिसमें चन्द्रमा की 'अमा'-नामक सोलहवीं कला का वास है। इस अमा कला में निर्वाण कला (१७वीं कला) है। इस कला में निर्वाण शक्ति है। उसकी कर्णिका में परम-शिव है। परमशिव ही परं ब्रह्म है और इस परं पद को प्राप्त करना ही साधना का सर्वोच्च ध्येय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का एक शास्त्रसम्मत साधन है—कुण्डलिनीयोग। चूँकि मन्त्रजप और तज्जनित ऊर्जा की सार्थकता कुलकुण्डलिनी को जागृत करके परं पद की प्राप्ति है, अत: मन्त्रदीक्षा के साथ कुण्डलिनीयोग के आधारस्तम्भ षट्चक्र का सम्यक् ज्ञान दिया जाना दीक्षा का आवश्यक अङ्ग है।

सप्तम प्रकाश—दीक्षा और साधना का एक अविभाज्य अङ्ग है—हवन-कर्म। अत: हवनकर्म के प्रसङ्ग में इस प्रकाश में हवनकुण्डों के लक्षण, उनके भेद, इन कुण्डों की मेखला, नाल तथा नाभि के स्वरूप और मान तथा हवन के अनिवार्य उपकरण स्रुक् और स्रुव के लक्षण और मान का निरूपण किया गया है। तन्त्रग्रन्थों में आठ प्रकार के कुण्डों का उल्लेख मिलता है। यथा—१. चतुरस्र कुण्ड, २. योनिकुण्ड, ३. अर्धचन्द्रकुण्ड, ४. त्रिकोणकुण्ड, ५. वृत्तकुण्ड, ६. षट्कोण कुण्ड, ७. पद्मकुण्ड और ८. अष्टभुज कुण्ड। प्रस्तुत ग्रन्थ में इनमें

से १. चतुरस्र कुण्ड, २. योनिकुण्ड, ३. त्र्यस्र कुण्ड, ४. वर्तुल कुण्ड, ५. अर्धचन्द्र कुण्ड और ६. पद्मकुण्ड के लक्षण बताये गये हैं। कुण्डों का लक्षण बताने के बाद विभिन्न प्रकार के कुण्डों में मेखलाओं की ऊँचाई, लम्बाई तथा चौड़ाई, कुण्डों की गहराई, कुण्ड में नाल, योनि और नाभि का परिमाण तथा स्रुक् एवं स्रुव का मान बताया गया है। इस प्रकाश में ७० श्लोक हैं।

अष्टम प्रकाश—एक सौ उन्नीस (११९) श्लोक के इस प्रकाश में होम-विधि का निरूपण किया गया है। इसके अन्तर्गत कुण्ड (या स्थण्डिल) संस्कार, अग्नि के माता-पिता वागीश्वरी और वागीश्वर का ध्यान एवं अर्चन, अग्नि-आनयन, क्रव्यांश-त्याग, कुण्ड में अग्नि का स्थापन एवं प्रज्ज्वलन, अग्नि की सात जिह्वाओं तथा उनके अधिदेवताओं के नाम, उनके न्यास और पूजन की विधि, अग्नि का षडङ्ग-न्यास एवं मूर्तिन्यास, कुण्ड का परिस्तरण, परिधि-स्थापना, स्रुक् एवं स्रुव आदि पात्रों का शोधन तथा स्थापन, घृत के संस्कार, महाव्याहृति होम, ब्रह्माजी का पूजन, कुण्ड में अग्नि के गर्भाधान आदि पञ्चदश संस्कारों के सम्पादन के मन्त्र एवं विधि, अग्नि की जिह्वाओं, षडङ्गों तथा अष्टमूर्तियों को घृत-आहुतिदान, महागाणपत्य होम, वक्त्र-एकीकरण, नाड़ी-सन्धान, आवरण-देवताहोम के बाद सङ्कल्प लेकर मूल मन्त्र से हवन करने का विधान बताया गया है। जिह्वाभेद से हवन का फलभेद, होम की मुद्राओं तथा कुमारी एवं सुवासिनी-पूजन के बाद पूर्णाहुति, आत्मसमर्पण तथा विसर्जनात्मक कर्म बताये गये हैं।

इस प्रकाश के अन्त में (श्लोकसंख्या १०० और १०१) वाराही तन्त्र के हवाले से बताया गया है कि तान्त्रिक विधि से हवन करने का अधिकार केवल द्विज जातियों को है। शूद्रों को उसका अधिकार नहीं है, फिर भी यदि शूद्र साधक हवन करना ही चाहे तो वह आहुति डालते समय 'स्वाहा' का उच्चारण न करके उसके स्थान पर 'नमः' का उच्चारण करे।

नवम प्रकाश—इस प्रकाश में यह बताया गया है कि किस कर्म या किस प्रयोजन के लिये किस या किन द्रव्यों से हवन किया जाय। विभिन्न प्रकार के पुष्प, शहद, घी, गुग्गुल, कपूर, कस्तूरी, चन्दन, दूध, दही, लाजा, सत्तू, तिल, चावल, जौ, शक्कर, गुड़, बेर, नारङ्गी, अङ्गूर, खजूर, नारियल, पके आम, जामुन, केला, बेल, गन्ना सर्वमान्य हवनीय द्रव्य हैं। इनसे हवन करने से अलग-अलग फलों की प्राप्ति होती है। शत्रु-सेना के विनाश, आकाश-गमन की सिद्धि तथा किसी राज्य या किले पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिये बकरे के रक्त-

मिश्रित मांस तथा महामांस से हवन करने का भी विधान बताया गया है। इन द्रव्यों का परिमाण (मात्रा) या आहुति का मान बताने के बाद अरि-मन्त्र के त्याग की विधि बतायी गयी है।

दसवाँ प्रकाश—इस दसवें प्रकाश से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के विभिन्न रूपभेदों के मन्त्रों के उद्धार तथा मन्त्रस्वरूप-निरूपण का क्रम प्रारम्भ हुआ है, जो अगले तीन प्रकाशों तक जारी रहेगा। इस प्रकाश में सर्वप्रथम पञ्चमी विद्या, एकाक्षरी विद्या एवं त्रिकूट तथा चतुष्कूट मन्त्रों के भेद बताये गये हैं। २२७ (दो सौ सत्ताईस) श्लोकों वाले इस प्रकाश में कुल मिलाकर २२ (बाईस) मन्त्रों का उद्धार बताया गया है। इनमें प्रमुख हैं—पञ्चकूटा पञ्चमी विद्या का पञ्चविंशद् (२५) अक्षरी और उसके प्रकारान्तर भेद, एकाक्षरी, एकादशाक्षरी, एकविंशदक्षरी, उन्मनी, अष्टादशाक्षरी, विंशत्यक्षरी, पञ्चविंशत्यक्षरी, सप्तविंशत्यक्षरी, द्वात्रिंशदक्षरी, त्रिकूटा विद्यायें, ऊनत्रिंशदक्षरी (२९), द्वात्रिंशदक्षरी (३२) तथा सप्तत्रिंशदक्षरी (३७) चतुष्कूटा विद्यायें। इस प्रकाश में दो विशेष बातें बतायी गयी हैं। प्रथम तो यह कि एकाक्षरी विद्या के साधक को किसी अन्य मन्त्र की साधना नहीं करनी चाहिये (सन्दर्भश्लोकसंख्या—७०)। दूसरी बात यह कि सुप्रसिद्ध शाम्भव कामराज पञ्चदशाक्षरी विद्या सर्वथा कीलिता है (सन्दर्भश्लोकसंख्या—१६२)।

ग्यारहवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में शाक्त कामराज विद्या, भेदों के सहित लोपामुद्रा विद्या तथा शाक्त पञ्चमी के भेदों का निरूपण किया गया है। ६५ (पैंसठ) श्लोकों के इस प्रकाश में २५ मन्त्रों के उद्धार बताये गये हैं। इनमें प्रमुख हैं—पूर्वाम्नाय की शाक्त कामराज विद्या, पश्चिमाम्नाय की शाक्त लोपामुद्रा विद्या तथा उसके भेद, नवाक्षरी रुद्र शक्ति, मदद्रवा विद्या, उत्तराम्नाय की पञ्चदशाक्षरी लोपामुद्रा विद्या, जलेशी विद्या तथा शाक्त पञ्चमी के अनेक भेद।

बारहवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में त्रिपुरामन्त्रों के मेरुमन्त्र-सहित विविध देवताओं तथा ऋषियों के द्वारा आराधित शुद्ध बारह (१२) विद्याभेदों का उद्धार बताया गया है। ये हैं—१. मेरुमन्त्र तथा २. मनु-आराधिता विद्या। इसके बाद मनु-आराधिता विद्या को आधार बनाकर और १० (दस) विद्याओं का उद्धार बताया गया है। ये विद्यायें हैं—१. चन्द्राराधिता विद्या, २. कुबेर-सेविता विद्या, ३. कामराज-सेविता विद्या, ४. अगस्त्य-आराधिता प्रथम लोपामुद्रा विद्या, ५. नन्दि-पूजिता विद्या, ६. सूर्य-आराधिता विद्या, ७. विष्णु-आराधिता (षट्कूटा), ८. स्कन्द-आराधिता, ९. शङ्कर-आराधिता (चतुष्कूटा) और (१०) दुर्वासा-

पूजिता विद्या। ये बारह शुद्ध विद्यायें हैं। शुद्ध विद्याओं का उद्धार बताने के बाद २० (बीस) शबल अर्थात् शुद्धाशुद्ध विद्याओं का उद्धार बताया गया है। तत्पश्चात् पञ्चमी विद्या के पाँच कूटों के पाँच दीपनी मन्त्र बताये गये हैं। इसके बाद पञ्चमी विद्या के कामराज कूट, स्वप्नावती कूट तथा मधुमती कूट के आदि में क्रमशः 'क्लीं' 'श्रीं' और 'ह्रीं' बीजों की योजना करके उनका क्रमशः मूलाधार, अनाहत तथा सहस्रार में ध्यान करें। यह दीपनी योग का द्वितीय प्रकार या द्वितीय विधि है। द्वितीय के बाद तृतीय दीपनी-विधि बतायी गयी है। इसके बाद अन्य त्रिकूटा विद्याओं के दीपनी मन्त्र बताये गये हैं। वामकेशी विद्या के प्रथम दीपनी-मन्त्र का उद्धार बताने के बाद इस विद्या के प्रत्येक कूट के प्रत्येक घटक वर्ण अर्थात् 'क'कार, 'ए'कार, 'ई'कार, 'ल'कार तथा 'ह'कार आदि की षट्चक्रों में स्थिति और स्वरूप का निरूपण करते हुए उनका अर्थ स्पष्ट किया गया है। अन्त में सौभाग्यविद्या के घटक वर्णों की विभूतियों का निरूपण किया गया है। इस प्रकाश में १३४ (एक सौ चौंतीस) श्लोक हैं। मन्त्रोद्धारों के इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए अगले तेरहवें प्रकाश में षोडशी विद्याओं का उद्धार बताया गया है।

तेरहवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में षोडशी विद्या तथा उसके रूपभेदों का निरूपण किया गया है। षोडशी विद्या की विशेषता यह है कि वर्णमयी प्रतीत होने के बावजूद यह वर्णातीता तथा अनुच्चार्या है। अतः उच्चार्यमाण मन्त्रों की तरह इसका जप नहीं किया जा सकता। इस प्रकाश के प्रारम्भिक श्लोकों में षोडशी विद्या की विशिष्टतायें बताने के बाद इसके विभिन्न रूपभेदों का उद्धार बताया गया है। यथा—पिछले प्रकाश में कामराज-उपासिता आदि जो शुद्ध बारह भेद बताये गये हैं, उनमें से किसी भेद के आदि में 'ह्रीं' और 'श्रीं' की योजना करने से वे सभी विद्यायें षोडशी विद्यायें बन जाती हैं। इन दो कूटों (अर्थात् ह्रीं-श्रीं) की योजना करने से त्रिकूटा विद्यायें पञ्चकूटा, चतुष्कूटा शाङ्करी विद्या षट्कूटा और षट्कूटा वैष्णवी विद्या अष्टकूटा षोडशी विद्या बन जाती है। इन पञ्चकूटा विद्याओं के आदि में प्रणव (ॐ) की योजना करने से ये विद्यायें शिव-शक्तिमयी षट्कूटा षोडशी विद्या(यें) बन जाती हैं। वामकेशी और लोपामुद्रा विद्याओं के आदि में 'क्लीं' या 'ह्रीं' या 'श्रीं' की योजना करने से क्रमशः १. कन्दर्प-आराधिता, २. श्रीकृष्ण-आराधिता और ३. लक्ष्मी-आराधिता—ये तीन-तीन भेद बनते हैं। वामकेशी/लोपामुद्रा विद्याओं के आदि में व्यत्ययक्रम से इन्हीं तीन बीजों (क्लीं ह्रीं श्रीं) की योजना करने से इन विद्याओं के और तीन-तीन भेद हो जाते हैं।

इन विद्याओं के आदि में 'ऐं' या 'सौः' अथवा 'ॐ' की योजना करने से बृहस्पति-आराधिता, परा बीजाद्या तथा तारपूर्वा षोडशी विद्याओं की निष्पत्ति होती है। पैंसठ (६५) श्लोकों वाले इस प्रकाश के अन्त में षोडश-कूटा षोडशी विद्या का उद्धार बताया गया है। इसके साथ ही मन्त्रोद्धारों का जो क्रम दसवें प्रकाश से प्रारम्भ हुआ था, वह पूर्ण हो जाता है।

चौदहवाँ प्रकाश—पिछले चार प्रकाशों में भगवती त्रिपुरा के विभिन्न मन्त्रों का उद्धार बताने के बाद इस प्रकाश से सपर्या-क्रम का निरूपण प्रारम्भ किया गया है। इसमें प्रथम है—गुरुदेव तथा गुरुमण्डल का अर्चन। सपर्या का यह क्रम ब्राह्म-मुहूर्त में निद्रात्याग के बाद से फौरन शुरू हो जाता है। सोकर उठने के बाद और जमीन पर पैर रखने के पूर्व बिस्तर पर बैठे-बैठे ही गुरुवन्दना की जाती है। सहस्रार में गुरुदेव का ध्यान करके पञ्चोपचार से पूजन तथा गुरुमन्त्र का जप किये जाने का विधान है। एतदर्थ दो मन्त्र हैं; एक है ४८ अक्षरों का और दूसरा है २३ अक्षरों का। इन दोनों मन्त्रों का उद्धार बताने के बाद गुरुदेव की वन्दना की जाती है। गुरुपूजन का प्रसङ्ग प्राप्त होने के कारण ९ (नौ) कुलगुरुओं के नाम तथा ध्यान बताने के बाद उनके पूजन-मन्त्र बताये गये हैं। साधक को अपने गुरुदेव का अर्चन करने के बाद इन कुलगुरुओं का सहस्रार में ध्यान एवं अर्चन करना चाहिये। इन कुलगुरुओं की उपचारवती पूजा के नौ (९) उपचार हैं। यथा—१. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप, ५. नैवेद्य, ६. ताम्बूल, ७. आचमन, ८. स्तोत्र और ९. आत्मसमर्पण। इन ९ उपचारों से गुरुमण्डल के पूजन के सात पर्व हैं। यथा—१. अपने गुरुदेव का जन्म-दिवस, २. अपना दीक्षादिवस, ३. अपना जन्मदिवस, ४. गुरुदेव का निधनदिवस, ५. अक्षरत्रयसम्पातदिवस, ६. अमावस्या तथा ७. पूर्णिमा। देवीमानरीति से बनाये गये तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार जिस दिन वर्ग के दो अक्षर तथा घटिका के एक अक्षर एक साथ मिलते हैं, उस दिन को 'अक्षरत्रय सम्पात-दिवस' कहते हैं। इनमें पूर्णिमा को १४४ कोष्ठकों वाले षोडश अक्षरीय मण्डल पर तथा शेष ६ पर्वों पर ८१ कोष्ठकों वाले ९ अक्षरीय मण्डल पर गुरुमण्डल का अर्चन किया जाता है। इन दोनों मण्डलों के चित्र ग्रन्थ के ५५७ और ५५५ पृष्ठ पर उपलब्ध हैं। प्रातः कृत्य के अन्तर्गत गुरु-अर्चन की विधि बताने के बाद दन्त-धावन एवं स्नानविधि बतायी गयी है। त्रिपुरा के साधक को प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायंकाल तथा मध्य रात्रि में यथाक्रम चार बार सन्ध्यावन्दन करना चाहिये। इस प्रकाश में इन चारो सन्ध्याओं की विधि बतायी गयी है। इस प्रकाश में १०७ (एक सौ सात) श्लोक हैं।

पन्द्रहवाँ प्रकाश—पिछले प्रकाश में प्रात:कृत्य के अन्तर्गत स्नान की संक्षिप्त विधि बतायी गयी है। इस प्रकाश में भगवती की सपर्या का अधिकार प्राप्त करने के लिये आन्तर स्नान और बहि: स्नान, आचमन, अघमर्षण तथा सन्ध्यावन्दन की विधि का उल्लेख किया गया है। स्नान और सन्ध्यावन्दन करके साधक को यागमण्डप में आकर यथाविधि पृथ्वी-पूजन, गणेश-पूजन, विघ्नोत्सारण, गुरुपंक्ति-पूजन, षडङ्ग-न्यास के बाद भूतशुद्धि करनी चाहिये। इस प्रकाश में इस कर्मकाण्ड की विधि बताने के बाद न्यास-विधान बताया गया है। भूतशुद्धि के बाद मूल मन्त्र का ऋष्यादि न्यास, अन्तर्मातृका न्यास, बहिर्मातृका न्यास के बाद कल्पोक्त न्यासों का क्रम बताया गया है। इसके अन्तर्गत बताये गये न्यास हैं—षडासन-न्यास, वशिनी आदि अष्ट वाग्देवता न्यास, फिर लघुषोढा न्यास। लघु षोढा के अन्तर्गत किये जाने वाले न्यास हैं—१. गणेशन्यास, २. ग्रहन्यास, ३. नक्षत्रन्यास, ४. योगिनीन्यास, ५. राशिन्यास और ६. पीठन्यास। लघुषोढा न्यास के बाद काम-रतिन्यास, नव योनिन्यास, श्रीविद्यान्यास, तिथिनित्यान्यास, स्थिति-सृष्टि एवं संहारक्रम से अक्षर-न्यास, चक्रेश्वरी न्यास, पीठन्यास, तत्त्व-न्यास, अस्त्रन्यास, कूटन्यास, त्रिपुरान्यास एवं नौ चक्रन्यास। इस प्रकाश में १०७ श्लोक हैं।

सोलहवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में अन्तर्याग की विधि बतायी गयी है। न्यासजाल-सम्पादन के बाद अपने हृदयप्रदेश में मण्डूक आदि पीठदेवताओं तथा इष्टदेवता की पीठशक्तियों का न्यास-पूर्वक अर्चन करके उस पर इष्टदेवता का आह्वान किया जाता है। तत्पश्चात् मुद्राओं की सहायता से उनकी पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार पूजा की जाती है। पूजन के बाद अक्षमाला से मन्त्रजप तथा अन्त में अन्तर्होम किया जाता है। तन्त्रोपदिष्ट साधना-विधि में यह अन्तर्याग ही प्रधान या प्रमुख है। अन्तर्याग के विना यन्त्र या प्रतिमा पर देवता की विभिन्न उपचारों से की गयी पूजा का सम्यक् फल नहीं मिलता। एक सौ तीस (१३०) श्लोकों वाले इस प्रकाश में इसी अन्तर्याग की विधि विस्तार से बतायी गयी है।

सत्रहवाँ प्रकाश—पिछले सोलहवें प्रकाश में अन्तर्याग-विधि का निरूपण करने के बाद इस प्रकाश से बहिर्याग-विधि का निरूपण प्रारम्भ किया जा रहा है। देवता का पूजन-यन्त्र उसके बहिरङ्ग अर्चन का आधार है। अत: यन्त्र और देवता के परस्पर सम्बन्धों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि मनुष्य के समान देवता के भी त्रिविध शरीर होते हैं। यथा—१. ज्ञानमय शरीर, २. मनोमय शरीर और ३. भौतिक शरीर।

ज्ञानमय शरीर—देवता का मन्त्र ही उसका ज्ञानमय शरीर है, जो अक्षर, अजर, अमर और अविनाशी है। मन्त्रजप के द्वारा उसके इस ज्ञानमय शरीर की आराधना की जाती है। भगवती त्रिपुरा के विभिन्न मन्त्ररूप ज्ञानमय शरीरों का प्रकाशन पिछले प्रकाशों में किया जा चुका है।

मनोमय शरीर—देवता का पूजन यन्त्र देवता का मनोमय शरीर है, जिसमें देवता के ज्ञानमय शरीर का वास होता है; अतः यन्त्र और देवता में परस्पर अटूट सम्बन्ध होता है। इस प्रकाश का प्रतिपाद्य विषय भगवती त्रिपुरा का यह मनोमय शरीर ही है।

भौतिक शरीर—देवता के पूजन के समय हाथ की अङ्गुलियों से जो विभिन्न संरचनायें और आकृतियाँ बनायी जाती हैं, उन्हें 'मुद्रा' कहते हैं। इन मुद्राओं की दो कोटियाँ या प्रकार हैं। प्रथम है—सर्वदेवोपयोगी सामान्य मुद्रायें; यथा आवाहनी, संस्थापनी, सन्निरोधनी आदि। इन मुद्राओं से साधक देवता का आह्वान करके उसे अपने सम्मुख अपने समीप में प्रतिष्ठित करता है, अवगुण्ठित करता है, निराकार रूप से आगत देवता के निराकार शरीर में षडङ्ग मन्त्रों से हृदय आदि षडङ्ग का सञ्चार अर्थात् सकलीकरण करके परमीकरण मुद्रा से उसके साकार कलेवर का परमीकरण करता है। फिर जीवन्यास की लेलिहान मुद्रा से उसमें त्वक्-मनः-चक्षुः-घ्राण-श्रोत्र-प्राण-जीव का सञ्चार करके उसे जीवन्त मूर्त रूप प्रदान करता है। स्वागत करता है। तत्पश्चात् पाद्य, आचमन आदि उपचारमुद्राओं से देवता को पाद्य-आचमन-मधुपर्क-स्नानीय-वस्त्र-आभूषण-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-ताम्बूल आदि उपचार प्रदान करता है। पूजा-स्तवन के बाद संहारमुद्रा से देवता को पूजन यन्त्र से विसर्जित करके अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर लेता है। ये उपचारवती मुद्रायें सभी देवताओं के पूजन में समान रूप से उपयोगी हैं। इस उपचारवती बहिरङ्ग पूजा के दौरान वह अपने इष्टदेवता के लिये यथानिर्दिष्ट विशिष्ट मुद्रायें भी प्रदर्शित करता है। ये विशिष्ट मुद्रायें देवता की 'भौतिक काया' हैं। ये मुद्रायें दिखाकर साधक यह प्रदर्शित करता है कि वह देवता के तत्त्वमय ज्ञान-रूप से तथा ज्ञाम की विशिष्ट-विशिष्ट अवस्थाओं से परिचित है। इसीलिये मुद्राओं के प्रदर्शन से देवता को प्रसन्नता होती है। भगवती त्रिपुरा के प्रसङ्ग में योनिमुद्रा प्रधान या अङ्गी मुद्रा है तथा शेष सर्वसंक्षोभिणी आदि मुद्रायें अङ्गमुद्रायें हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन मुद्राओं का परिचय दिया गया है (भाष्य में यथास्थान इन मुद्राओं के चित्र भी हैं)।

मुद्राओं का परिचय (लक्षण) देने के बाद इस प्रकाश के मुख्य प्रतिपाद्य विषय अर्थात् श्रीयन्त्र के अङ्कन की औपचारिकतायें और उसके अङ्कन (निर्माण)

की विधि बतायी गयी है। भाष्य में श्रीयन्त्र-अङ्कन की विधि का विस्तार से निरूपण किया गया है। यह श्रीयन्त्र बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, फिर वृत्त और उसके ऊपर तीन भूपुर से बना है। उसमें ४३ त्रिकोण, २८ मर्म और २४ सन्धियाँ हैं। इस श्रीयन्त्र में ९ (नौ) आवरण हैं। ग्रन्थ में इन चक्रों के स्वरूप, उनकी पारिभाषिक संज्ञा, प्रत्येक चक्र की अधीश्वरी शक्ति तथा प्रत्येक चक्र में पूजिता शक्तियों के शुभ नाम बताये गये हैं। इसका विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है—

चक्र	चक्र का नाम	चक्रेश्वरी	पूज्य-देवता
बिन्दु	सर्वानन्दमय चक्र	महात्रिपुरसुन्दरी	१
त्रिकोण	सर्वसिद्धिप्रद चक्र	त्रिपुराम्बा	३
अष्टकोण	सर्वरोगहर	त्रिपुरासिद्ध	८
अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी	१०
बहिर्दशार	सर्वार्थसाधक	त्रिपुराश्री	१०
चतुर्दशार	सर्वसौभाग्यदायक	त्रिपुरवासनी	१४
अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुरसुन्दरी	०८
षोडशदल	सर्वाशापरिपूरक	त्रिपुरेशी	१६
भूपुर	त्रैलोक्यमोहन	त्रिपुरा	२८

उपर्युक्त तालिका में जो नौ (९) चक्र बताये गये हैं, उनमें से चार शिवचक्र और पाँच शक्तिचक्र हैं। बिन्दुचक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और भूपुर—ये चार शिवचक्र हैं। त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार एवं चतुर्दशार—ये पाँच शक्तिचक्र हैं। ये शिवचक्र और शक्तिचक्र परस्पर संश्लिष्ट हैं, जैसा कि ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूपुरं भुवनास्रके॥

बिन्दुचक्र त्रिकोण के साथ, अष्टारचक्र अष्टदल कमल के साथ, दोनों दशार षोडश दल कमल के साथ और चतुर्दशार भूपुर के साथ संश्लिष्ट है। इस तरह यह चक्र जगत् के माता-पिता अर्थात् शक्ति और शिव के संश्लिष्ट युगपत् रूप की अभिव्यक्ति है। भगवान् शङ्कराचार्य का कथन है कि श्रीचक्र में शिव और शक्ति का पञ्चविध साम्य है। यथा—१. अवस्थानसाम्य, २. अधिष्ठानसाम्य, ३. अनुष्ठानसाम्य, ४. रूपसाम्य तथा ५. नामसाम्य। इस पञ्चविध साम्य के कारण श्रीयन्त्र में शिव-दम्पति का युगपत् पूजन किया जाता है।

श्रीचक्र के अङ्कन-विधान में बताया गया है कि किस तरह इसके एक चक्र से दूसरे चक्र का विकास किया जाता है। बिन्दु से प्रारम्भ कर भूपुर-पर्यन्त चक्रों का यह विकास-क्रम शब्द और अर्थसृष्टि के क्रम-वार पारमार्थिक विकास का अभिव्यञ्जक है। इसके प्रत्येक चक्र का एक विशिष्ट पारमार्थिक रहस्य है। ग्रन्थ के इस प्रकाश में इन समस्त चक्रों का रहस्य निरूपित किया गया है। यह रहस्य-प्रतिपादन के पश्चात् श्रीयन्त्र पर भगवती त्रिपुरा और उनकी आवरणशक्तियों के अर्चन के लिये पीठपूजाविधि का विस्तार से निरूपण किया गया है। पीठ-पूजन का अर्थ है—भगवती की पीठशक्तियों का अर्चन। इसे आप मन्दिर-पूजन भी समझ सकते हैं। इसमें ११३ श्लोक हैं।

अष्टादश प्रकाश—श्रीयन्त्र पर पीठ-पूजन की विधि बताने के बाद ६१५ (छ: सौ पन्द्रह) श्लोकों वाले इस प्रकाश में भगवती के सपर्या-विधान का विस्तार से निरूपण किया गया है। यदि हम इस सपर्या-विधान और क्रम का विश्लेषण और मनन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल भगवती का अर्चन नहीं; अपितु उनके साथ ब्रह्माण्ड की समस्त आधारभूता शक्तियों का अर्चन है और ये आधारभूता शक्तियाँ वस्तुत: भगवती त्रिपुरा की ही विभूतियाँ हैं। इसीलिये पात्र-स्थापना के क्रम में ही अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल की उनकी कलाओं के साथ अर्चना की जाती है। कलश तथा विशेष अर्घ्य के द्रव्य में आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का अर्चन किया जाता है। आनन्दभैरवदम्पति परं ब्रह्म के आनन्द अंश की प्रतिमूर्ति हैं। आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी के सामरस्य से उद्भूत दिव्य रस से संयुक्त कलश/विशेष अर्घ्य का द्रव्य भगवती को समर्पित करके साधक उनसे इसी ब्रह्मानन्द के प्रतिदान की याचना करता है। इसी तरह प्रत्येक उपचार में एक पारमार्थिक रहस्य तथा भाव तिरोहित है। दूसरी बात यह कि कोई भी उपचार, चाहे वह जल हो या पुष्प, धूप हो या दीप, अपने प्रकृत रूप में समर्पित नहीं किया जाता। प्रत्येक उपचार का यथाविधान शोधन और संस्कार करने के बाद ही वह भगवती को समर्पित किया जाता है।

यदि हम और भी विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप और नैवेद्य से की गयी पञ्चोपचार पूजा ही मूल पूजा है। दशोपचार, षोडशोपचार, अष्टादशोपचार अथवा चतु:षष्टि (६४) उपचारवती पूजा इस पञ्चोपचार पूजा का विस्तारमात्र है। पञ्चोपचार पूजा वस्तुत: पृथ्वी आदि पञ्चतत्त्वों का समर्पण है। गन्ध पृथ्वी का, पुष्प आकाश का, धूप वायु का, दीप अग्नि का

और नैवेद्य जल का प्रतीक है। 'लं-हं-यं-रं-वं' इन पाँचों तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी-आकाश-वायु-अग्नि और जल के बीजाक्षर हैं। भगवती पञ्चमी इन पाँचों तत्त्वों की समाहार मूर्ति होने के कारण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमयी प्रतिमूर्ति हैं। पञ्चायतनी क्रम के विष्णु आदि पाँचों देवता भी इन्हीं पञ्चतत्त्वों के अधिदेवता हैं। यथा—

आकाशस्याधिपो विष्णुः अग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः सितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।।

अर्थात् आकाश के अधिपति विष्णु हैं, महेश्वरी त्रिपुरा अग्नि की, सूर्यनारायण वायु के, भगवान् शिव पृथ्वी के और जीवन अर्थात् जल के अधिपति भगवान् गणेश हैं। आकाश के स्वामी भगवान् विष्णु सत्त्व गुण के नियन्ता हैं, वायु के अधिदेवता भगवान् सूर्य रजोगुण-मिश्रित सत् गुण के नियन्ता हैं, अग्नि अर्थात् 'तेजः' पूर्णतः रजोगुणात्मक है। क्रिया शक्तिप्रधाना भगवती महेश्वरी रजोगुण की अधिदेवता हैं। जल में 'रज' और 'तम' दोनों गुण मिश्रित हैं। अतः जल के अधिदेवता भगवान् गणेश तम-मिश्रित रजोगुण के नियन्ता हैं। पृथ्वी तत्त्व पूर्णतः तमःप्रधान है और प्रलयङ्कारी शुभङ्कर भगवान् शिव पृथ्वी तत्त्व के नियन्ता हैं।

त्रिपुरा क्रम में भगवती त्रिपुरसुन्दरी पञ्चभूतमयी हैं, जैसा कि ग्रन्थ के दशम प्रकाश में कहा गया है—

देवी पञ्चात्मकं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशसम्भवम्।।

इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी की ही विभूतियाँ हैं। सतो आदि गुणत्रय इच्छा आदि शक्तित्रय के अन्तरित रूप हैं। इच्छाशक्ति रजोगुण है, ज्ञानशक्ति सतोगुण है एवं क्रियाशक्ति तमोगुण है। क्रियाशक्तिप्रधान तमोगुण से मन का, ज्ञान-शक्तिप्रधान सतोगुण से बुद्धि का और इच्छाशक्तिप्रधान रजोगुण से अहङ्कार का उद्भव होता है। इन गुणों का उदय हो जाने पर इनसे आकाश आदि पञ्चमहाभूतों का, उनसे शब्द आदि तन्मात्राओं का और उनसे कान आदि ज्ञानेन्द्रियों का उद्भव होता है। यही व्यष्टि और समष्टिरूप ब्रह्माण्ड है। चूँकि इनके मूल में भगवती त्रिपुरा ही हैं, अतः उन्हें पञ्चतत्त्वमयी और ब्रह्माण्डनायिका कहा गया है।

गन्ध आदि के समान ही कुलाचार के मद्य आदि पञ्चद्रव्य इन्हीं तत्त्वों के प्रतीक हैं। मद्य अग्नितत्त्व का, मांस पृथ्वीतत्त्व का, मीन जलतत्त्व का, मुद्रा वायुतत्त्व का और मैथुन आकाशतत्त्व का प्रतिनिधि या अभिव्यञ्जक है।

इस तरह तन्त्रोक्त पूजा-पद्धति ब्रह्माण्ड के घटकभूत तत्त्वों से ब्रह्माण्ड-नायिका का अर्चन है। चूँकि हम व्यष्टि और समष्टिरूप ब्रह्माण्ड के स्थूल घटक तत्त्वों का परिशुद्धतम सारतत्त्व ब्रह्माण्ड की मूल तत्त्वरूपिणी भगवती त्रिपुरा को समर्पित करके स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख होते हैं, अतः इसे स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा का महाप्रयाण कहा जा सकता है।

यह है—भगवती त्रिपुरा की ज्ञानमयी पूजा का रहस्य, जिसके कर्मकाण्डमय क्रियास्वरूप का निरूपण इस प्रकाश में किया गया है। पूजारहस्य को आत्मसात् करके प्रतिदिन उपचारवती बहिरङ्ग पूजा का अभ्यास करते-करते वह स्थिति आ जाती है, जब साधक से बहिरङ्ग पूजा छूट जाती है और वह भगवती की ज्ञानमयी मानस पूजन में लीन हो जाता है। इसे ही ग्रन्थकार ने मानस कर्मयोग कहा है।

उन्नीसवाँ प्रकाश—पूजन के बाद देवता का स्तवन किया जाता है। इस क्रम में इस प्रकाश में विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत करके दो स्तव, दो कवच और एक शतनामस्तोत्र प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें प्रथम है—त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्र, जिसमें १७ श्लोक हैं। दूसरा है—भगवान् शङ्कराचार्यकृत 'श्रीक्रमस्तव', जिसमें ५६ श्लोक हैं। इस स्तव में श्रीचक्र का वर्णन प्रारम्भ कर पूजा-क्रम के अनुसार सभी आवरणदेवताओं के नामोल्लेख-पूर्वक उनकी वन्दना की गयी है। इसके बाद त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त 'त्रिपुरसुन्दरीकवच' तथा उसके बाद षोडशीकवच है। सबसे अन्त में त्रिपुरार्णव-तन्त्रोक्त त्रिपुरसुन्दरी शतनामस्तोत्र है।

बीसवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में मन्त्र-पुरश्चरण की विधि बतायी गयी है। पुरश्चरण का अर्थ है—पूर्व-सेवा। अतः मन्त्र-पुरश्चरण का अर्थ है—मन्त्र की वह पूर्व-सेवा, जिसे सम्पादित करके दीक्षा में प्राप्त मन्त्र को प्राणवान, जीवन्त और कार्य-सक्षम बनाया जाता है। यह पुरश्चरण एक तपश्चर्या है तथा इसके विधि एवं निषेधमय कठोर नियम हैं। इन नियमों पर प्रकाश डालने के बाद इस प्रकाश में पुरश्चरण के लिये भूमि का संस्कार, कील-रोपण, कूर्म-चक्र, आसन-विमर्श एवं मालासंस्कार का कर्मकाण्ड निरूपित किया गया है। तत्पश्चात् पुरश्चरण के पाँचों अङ्गों अर्थात् १. जप, २. होम, ३. तर्पण, ४. अभिषेक और ५. ब्राह्मणभोजन के विधान पर प्रकाश डाला गया है। कई बार ऐसा भी होता है कि यथाविधि पुरश्चरण करने के बावजूद मन्त्र जागृत नहीं होता। इस स्थिति में मन्त्र को जागृत करने हेतु तन्त्रशास्त्र में द्रावण आदि सात उपाय बताये गये हैं। इन उपायों का प्रयोग-विधान बताने के बाद 'जपरहस्य' का निरूपण किया गया है। इस प्रकाश में १८० श्लोक हैं।

इक्कीसवाँ प्रकाश—इस प्रकाश में ब्रह्महत्या जैसे महापातकों से निवृत्ति पाने के लिये विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक पुष्पों और रत्नपुष्पों से श्रीविद्या-साधन-विधान बताया गया है। इसी क्रम में वार्षिकी दमन-पूजा, कुमारी-पूजन एवं सुवासिनी-पूजन तथा पवित्रारोपण की विधि बतायी गयी है। वर्ष के प्रत्येक माह की पूर्णिमा को की जाने वाली मासिक पूजा के लिये यथाविहित पुष्पों और द्रव्यों का निरूपण किया गया है। इस प्रकाश में १५१ श्लोक हैं।

बाईसवाँ प्रकाश—कुलाचारी साधना में ज्ञानदूतीयाग का अतिशय महत्त्व है। इस प्रकाश में इसी ज्ञानदूती याग का निरूपण किया गया है। तदनुसार प्रणव नामक भवन में इच्छा-ज्ञान और क्रिया-नामक दूतियों द्वारा रचित त्रिकोण-मण्डल पर ज्ञानमय शिवरूप पलङ्ग है, जो आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा-संज्ञक चार पायों से युक्त है।

वेदवाक्य 'तत्त्वमसि' (तत् त्वम् असि) विषयों को सञ्जोये हुए इस ग्रन्थ की रचना आज से लगभग ४३८ वर्ष पूर्व सन् १५७७ (शकाब्द १४९९) में हुई थी और इसका प्रथम प्रकाशन कलकत्ता से सन् १९३६ में हुआ था। भुवनमोहन सांख्यतीर्थ ने इस ग्रन्थ का संस्कृत भाष्य लिखना प्रारम्भ किया; मगर वे १८वें प्रकाश तक ही भाष्य लिख पाये थे कि उनका मणिपुरवास हो गया। शेष प्रकाशों पर भाष्य-लेखन का कार्य चिन्तामणि भट्टाचार्य ने पूर्ण किया। सन् १९३६ में संस्कृत व्याख्या-सहित प्रकाशित वही ग्रन्थ देवनागरी लिपि में 'भावना' भाष्य-सहित विद्वत् जनों के समक्ष प्रस्तुत है। 'भावना' भाष्य लिखने में सहयोग के लिये गढवाल निवासी स्वामी शत्रुघ्न दास एवं ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के स्वत्वाधिकारी श्री नवीन कुमार गुप्त एवं श्री नीरज कुमार गुप्त के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। मैं आभारी हूँ अपने गुरु-भाई आचार्य राधानन्दनाथ का, जो सदैव मुझे यह लेखन-कार्य त्वरित गति से पूर्ण करने के लिये प्रोत्साहन देते रहे। अन्त में मैं आभारी हूँ उन विद्वज्जनों का, जिनसे मुझे ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण के लिये आशीर्वाद मिलेगा।

महा अष्टमी **मधुसूदन प्रसाद शुक्ल**
संवत् २०७२ विक्रमी

विषयसूची

विषयाः पृष्ठाङ्काः

प्रथमः प्रकाशः

मङ्गलाचरणम् १
ग्रन्थोपक्रमः २१
परमात्मजीवात्मनोः स्वरूपम् २२
सत्त्वोपहितस्येश्वरसंज्ञा २३
रजस्तमोभ्यामुपहितस्य जीवसंज्ञा २३
ईश्वरकृतसृष्ट्यादि २४
पर्यनुयोगः २४
समाधानम् २५
साधनप्रकारनिरूपणप्रतिज्ञा २५
परमात्मजीवात्मनोः स्वरूपम् २६
देहिषु मनुष्याणामुत्कर्षः २७
देहसम्बन्धमन्तरेण पुरुषार्थावाप्तिर्न भवति २७
आत्मनो देहसम्बन्धरक्षार्थमहितान्निवृत्त्यर्थञ्च प्रयत्नः समाश्रयणीयः २८
वर्त्तमानजन्मन्येव पापप्रतीकार आधेयः २८
संसारासक्तिर्हितं प्रतिबध्नाति २९
सम्पदादीनामस्थायित्वम् २९
देहिनां जीवनं वृथैवातिवहति २९
कार्याकार्यविचारमूढा विपद्यन्ते ३०
जीवानां मुग्धत्वम् ३०
कालः सर्वं हन्ति ३०
श्रेयः साधने कृत्ये कालहरणमनुचितम् ३१
सर्वेषामेव मृत्युरव्यभिचारी ३१
आयुःक्षयकारणम् ३२
सङ्गः सर्वथा परित्याज्यः ३२
तदसम्भवे सत्सङ्ग एवोपादेयः ३२
सत्सङ्गविवेकयोः प्रकर्षः ३३
जीवात्मनः स्वाश्रये देहेऽपि सम्बन्धः क्षणिकः का कथा स्त्रीपुत्रादिषु ३३
कः सुखी को वा दुःखी ३३
त्यागिनः स्वरूपम् ३४
संसारस्य हेयत्वं तत्त्वज्ञानस्योपादेयत्वञ्च ३५
तत्त्वनिष्ठस्य पुण्यपापकर्मभिरननुषङ्गः ३५
इन्द्रियवृत्तिपारतन्त्र्यमेव कर्मणां हेतुस्तस्य परित्यागे न कर्म्मोदयः ३५
के नरकगामिनः ३५
ज्ञानवतां प्रकर्षो भोगमात्रसाराणां पशुतुल्यत्वञ्च ३६
संसारिणः स्वस्वकृत्याकुलतया निरन्तरं पीडाविशेषमनुभवन्ति ३६
मूढा विषयिणः पुनः पुनर्जन्ममरणानुबन्धिनो भवन्ति ३६
न हि वर्णाश्रमाचारपरिपालनेनैवात्मलाभः ३७
केचिन्मूढा ब्रह्मचर्याद्याडम्बरैर्लोकान् प्रतारयन्ति, ततोऽपि नात्मलाभः ३७
न ह्युपवासादिनियमैरेवात्मलाभः ३७
प्रतारकाणां प्रकारः ३८
न हि गृहारण्यसाम्याव्रीडत्वदिगम्बरत्वादि-ज्ञानिसाधर्म्यादेव ज्ञानी भवति ३८
ज्ञानमेव साक्षान्मुक्तिकारणं न कर्म ३९

विषयाः पृष्ठाङ्काः
न हि षड्दर्शनानुशीलनेनैवात्मलाभः ३९
न हि वेदादिविदोऽप्यतत्त्वज्ञस्य वाक्यमुपकाराय कल्पते ४०
परतत्त्वपराङ्मुखाणां निरन्तरशास्त्रानुशीलनेनापि नात्मलाभः ४०
शास्त्रादिज्ञानं सुलभं तात्पर्यज्ञानं तु न तथा ४०
प्रज्ञावतः शास्त्रानुशीलनमुपकाराय भवति नेतरस्य ४१
शास्त्रेभ्यः सार आदेयः ४२
शास्त्राभ्यासस्य तत्त्वज्ञानाऽवधिकत्वम् ४२
ज्ञानमेव मुक्तिप्रयोजकं न शास्त्रानुशीलनम् ४३
मुक्तेः स्वरूपं तत्र मतान्तरञ्च ४३
मुक्तिविषये स्वमतम् ४३
ज्ञानाननुबन्धिनः कर्माद्युपाया न मुक्तिप्रयोजकाः ४३

विषयाः पृष्ठाङ्काः
वेदादिशास्त्राणि न मुक्तिप्रयोजकानि, ज्ञानमेव मुक्तिप्रयोजकम् ४४
ज्ञानस्य द्वैविध्यम् ४४
शब्दब्रह्मस्वरूपम् ४४
स्फोटवादिमतद्वयं तन्निरासश्च ४७
शब्दब्रह्मस्वरूपे स्वमतम् ४७
वर्णाभिव्यक्तिः ४८
द्वैताद्वैतनिरूपणम् ४८
विद्याऽविद्यात्मककर्मजन्यौ बन्धमोक्षौ ४९
सङ्कल्पस्य सत्तासत्ताभ्यामेव बन्धमोक्षौ ५०
कर्मणस्तत्त्वज्ञानपर्यन्तमनुष्ठेयत्वम् ५०
तत्त्वनिष्ठैव मोक्षावाप्तिहेतुः ५०
तत्त्वज्ञानस्वरूपम् ५१
परा प्रकृतिरेव तत्त्वज्ञानं प्रति साक्षात् कारणम् ५२

द्वितीयः प्रकाशः

दीक्षानिरूपणोपयोगित्वम् ५४
दीक्षाशब्दव्युत्पत्तिः ५५
तस्याः प्रकारान्तरम् ५५
दीक्षाफलम् ५५
वर्णभेदेन दीक्षायाः फलभेदाः ५६
दीक्षायास्त्रैविध्यम् ५९
मान्त्री दीक्षा ५९
तस्या एव क्रियावतीत्याख्यं प्रकारान्तरम् ५९
मान्त्री दीक्षा सर्ववर्णसम्प्रदायसाधारणी ६०
शाक्तेयी दीक्षा ६०
ज्ञानवती दीक्षैव शाक्तेयी दीक्षेति मतान्तरम् ६१
शाम्भवी दीक्षा ६१
तस्याः प्रकारान्तरम् ६१
आगमशब्दार्थः ६५
गुरुलक्षणम् ६७
शिष्यलक्षणम् ६८
दीक्षायाः पूर्वं शिष्यो गुरुं सेवेत ६८
गुरुसेवाप्रकारः ६९
गुरुसेवाफलम् ७०
गुरोरग्रे मानवान्तरपूजानिषेधः ७१
गुरुमङ्गीकृत्य तत्र वैमनस्यं दोषाय ७१
गुर्वाज्ञाया अपरिपालनं नरकाय भवति ७१
गुरोरधिक्षेपादौ दोषः ७१
गुरुद्रोहपरिणामः ७१
गुरुभक्तेर्मुक्तिप्रयोजकत्वम् ७२
गुरौ शिष्यस्य व्यवहारः ७२

विषयाः पृष्ठाङ्काः
गुरोस्तोपस्येष्टसाधनत्वं रोपस्येष्टप्रतिबन्धकत्वञ्च ७४
तत्रोपसंहारः ७४
वर्णेषु कतमः कियता कालेन गुरुसेवया शिष्यत्वयोग्यतामर्हति ७४
गुरोः कर्त्तव्यम् ७५
अ-क-थ-ह-चक्रम्, तत्र रेखापातः ७५
कोष्ठानां संज्ञा ७६
तत्र वर्णन्यासक्रमः ७६
तत्र मन्त्रगणनाक्रमः ८०
ऋणधनचक्रम् ८४
तत्र रेखापातः, साध्यसाधकाङ्कानां न्यासपरिपाटी च ८४
वर्णन्यासपरिपाटी ८५
तत्र साध्यसाधकाङ्कन्यासपूर्वको गुणनक्रमः ८५
मन्त्राणामृणधनत्वनिरूपणपरिपाटी, तत्फलविशेषाश्च ८६
एतन्मूलीभूतागमनिरूपणम् ८७
पूर्वतोऽन्यादृशी साध्यसाधकाङ्कन्यासपरिपाटी ८८
अस्यैव चक्रस्य क्रमान्तरम् ८९
चक्रेणानेन मन्त्रशोधनस्य प्रक्रिया ८९
अस्यैव चक्रस्य क्रमान्तरम् ९०
मन्त्रशोधनप्रक्रिया ९०
एतच्चक्रविशोधितस्य मन्त्रस्य फलम् ९१
नक्षत्रचक्रं तत्र रेखापातः ९१
वर्णन्यासपरिपाटी, न्यसनीयानां वर्णानामश्विन्यादिक्रमत्वञ्च ९२
एतच्चक्रकरणकमन्त्रशोधनपरिपाटी ९३
राशिचक्रम् ९५
राशिचक्रे वर्णन्यासपरिपाटी ९६

विषयाः पृष्ठाङ्काः
राशीनां संज्ञास्तन्मूलको मन्त्रशोधनक्रमश्च ९६
राशीनां प्रागुक्तसंज्ञानुरूपफलदातृत्वम् ९६
अ-क-ड-म-चक्रं तत्र वर्णन्यासक्रमश्च ९८
एतच्चक्रकरणकमन्त्रशोधनपरिपाटी १००
शोधितमन्त्रस्य फलविशेषप्रसवितृत्वम् १००
अकडमचक्रोपसंहारः कुलाकुलचक्रविचारप्रतिज्ञा च १००
तत्र रेखापातो वर्णन्यासस्तेषां संज्ञा च १००
एतच्चक्रकरणकमन्त्रशोधनपरिपाटी १०२
वर्णानां परस्परशत्रुत्वमित्रत्वादिव्यवस्था १०३
फलम् १०४
वर्गचक्रम् १०५
कोष्ठनिर्माणं तत्र वर्णन्यासश्च १०५
वर्गाणां संज्ञाः १०५
एतच्चक्रकरणकमन्त्रशोधनफलम् १०६
प्रागुक्तमन्त्रदोषपरिहारक्रमः १०६
प्रकारान्तरम् १०७
स्थानस्थत्वादिना मन्त्राणां फलभेदाः १०७
षड्विधस्थाननिरूपणम् १०८
षड्विधस्थानस्वरूपम् १०८
मन्त्रविशेषे सिद्धादिशोधनानपेक्षित्वम् १०९
दीक्षाग्रहणकालः १०९
विषुवादिषु दीक्षायाः प्राशस्त्यम् १११
देवपर्वसु दीक्षायाः प्रशस्तिः ११२
सूर्योपराग-रविसंक्रमयोर्दीक्षायाः प्राशस्त्यम्, लग्नादिविचारनैरपेक्ष्यञ्च ११३
महाष्टम्यां कालशुद्ध्यादिनैरपेक्ष्यम् ११५
श्रीगुरौ करुणाय दीक्षयितुकामे, काश्यादौ च कालाकालविचारनैरपेक्ष्यम् ११५
दीक्षायां वारनियमः ११७

विषयाः पृष्ठाङ्काः
दीक्षायां तिथिनियमः ११७
पक्षनियमः ११८
पक्षनियमे विशेषः ११८
नक्षत्रनियमः ११८
लग्न-चन्द्र-तारा-नियमः १२०
प्रागुक्तमासादिशुद्धेर्मन्त्रदीक्षामात्रपरत्वम् १२१
विद्यादीक्षायान्तु तिथिवारादिशोधनापेक्षा नास्ति १२१
मन्त्रपदव्युत्पत्तिः १२१
दशविधो मन्त्रसंस्कारः १२२
जननसंस्कारः १२३
जीवनसंस्कारः १२६
ताडनसंस्कारः १२६
बोधनसंस्कारः १२७
अभिपेकसंस्कारः १२८
विमलीकरणसंस्कारः १२९
आप्यायनसंस्कारः १३०
तर्पणसंस्कारः १३०
दीपनसंस्कारः १३१
गोपनसंस्कारः १३२
दशसंस्कारोपसंहारः १३२

तृतीयः प्रकाशः

दीक्षायां प्रशस्तस्थानानि १३३
दीपस्थाने जपादिविधिः कूर्मचक्रनिरूपणप्रतिज्ञा च १३३
रेखापातक्रमो वर्णन्यासश्च १३४
मुखादिनिर्णयः १३६
कूर्मस्य तत्तदङ्गमाश्रित्य जपादौ फलभेदाः १३६
दीपस्थानेतरत्र दीक्षादौ दोपः १३७
दीक्षायां वास्तुयागस्य कर्त्तव्यता १३८
वास्त्वङ्गाधिष्ठितत्रिपञ्चाशद्देवताकवलिनिर्णयः १३८
वलिकर्मणि वास्तुमण्डलम् १४१
मण्डलस्यास्य चतुरस्रत्वं हस्तप्रमाणत्वञ्च १४१
हस्तप्रमाणम् १४२
मानाङ्गुलप्रमाणम् १४२
मानाङ्गुलस्य क्रमान्तरम् १४२
मानाङ्गुलस्य प्रकारान्तरम् १४३
प्रागुक्तहस्तमानस्य विपयः १४४
वास्तुमण्डलपदविभागपरिपाटी १४४
रजोभिर्मण्डलपदानामापूरणं वलिदानोपक्रमश्च १४९
ब्रह्मणो वलिमन्त्रः १५१
अर्यम्णः १५१
विवस्वतः १५१
मित्रस्य १५१
महीधरस्य १५२
बाह्यदेवतानां वलिः १५२
आपस्य १५२
आपवत्सस्य १५३
सावित्रस्य १५३
सवितुः १५३
इन्द्रस्य १५३
इन्द्रजयस्य १५३
रुद्रस्य १५३
रुद्रजयस्य १५४
विदार्याः १५४
पूतनायाः १५४
शर्वस्य १५४

विषयाः पृष्ठाङ्काः
स्कन्दस्य १५४
अर्यमूणः १५४
जम्भकस्य १५५
पिलिपिञ्जस्य १५५
चरक्याः १५५
ईशानस्य १५५
पर्जन्यस्य १५५
जयन्तस्य १५६
इन्द्रस्य १५६
सूर्यस्य १५६
सत्यस्य १५६
वृपस्य १५६
अन्तरीक्षस्य १५६
हुताशनस्य १५७
पूष्णः १५७
वितथस्य १५७
यमराजस्य १५७
गृहरक्षस्य १५७
गन्धर्वस्य १५७
भृङ्गराजस्य १५७
विषयाः पृष्ठाङ्काः
मृगस्य १५८
निर्ऋतेः १५८
दौवारिकस्य १५८
सुग्रीवस्य १५८
वरुणस्य १५८
पुष्पदन्तस्य १५८
असुरस्य १५९
शेषस्य १५९
रोगस्य १५९
वायोः १५९
नागराजस्य १५९
मुख्यस्य १५९
सोमस्य १६०
भल्लाटस्य १६०
अर्गलस्य १६०
अदितेः १६०
दितेः १६०
वलिदाने साधारणं क्रमान्तरम् १६०
उपसंहारः १६१

चतुर्थः प्रकाशः

मण्डपयोग्यदिनस्थानादिनिरूपणम् १६२
मण्डपपरिमाणनिरूपणार्थं हस्तस्वरूपम् १६५
पद्महस्तस्वरूपम् १६६
मण्डपस्य परिमाणभेदाः १६६
मण्डपस्वरूपम्, स्तम्भानां संख्यापरिमाणस्थानानि च १६६
स्तम्भनिखननक्रमः १६६
बहिर्द्वादशस्तम्भस्थानं द्वारपरिमाणञ्च १६८
स्थलान्मण्डपभूमेरुच्छ्रायः १६९
मण्डपवेष्टनम् १६९
द्वारनिर्णयः १६९
दिग्भेदेन वोरणभेदाः १६९
प्रागुक्तन्योग्रोधादीनामभावे कर्त्तव्यम् १६९
तोरणस्तम्भानामुच्छ्रायपरिणाहौ १६९
तोरणस्तम्भानामुच्छ्रायपरिणाहौ १७१
तोरणस्तम्भशिरसि फलकन्यासस्तत्र शूलारोपणञ्च १७२
वैष्णवानां विशेपः १७४
मण्डपशोभासम्पादनक्रमः १७८
वेदीलक्षणम् १७८
अङ्कुरार्पणम् १७९
अङ्कुरार्पणकालः १८०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अङ्कुरार्पणे शालानिर्माणम्	१८०
मण्डलनिर्माणक्रमः	१८१
पदविभागः	१८१
रजसां न्यासः	१८२
अङ्कुरार्पणपात्राणि	१८३
पालिका	१८४
पञ्चमुखी	१८४
शरावः	१८५
पालिकादीनां परिमाणे विशेषः	१८५
पालिकादीनामुपादानानि	१८५
पात्रन्यासक्रमः	१८६
प्रागुक्तकर्मणां दिवैव कर्त्तव्यत्वम्	१८८
बीजारोपणस्य रात्रिकर्त्तव्यत्वम्	१८८
बीजनिर्वपणम्	१८९
वपनीयानि बीजानि	१९०
स्कन्दादिदशदेवतापूजा	१९०
वलिविधानम्	१९१
सप्तानां रात्रीणामधिपतयः	१९१
बलिद्रव्यभेदाः	१९२
बलिद्रव्ये विशेषः	१९२
दिक्पालबलिः	१९३
अङ्कुरपरीक्षा	१९३
शुभान्यङ्कुराणि	१९३
अशुभान्यङ्कुराणि	१९३
अशुभाङ्कुरोदगमे शान्तिः	१९४

पञ्चमः प्रकाशः

अधिवासस्य दीक्षापूर्वदिनकर्त्तव्यत्वम्	१९५
गणेशादिपञ्चदेवतापूजनम्	१९५
पञ्चायतनदीक्षायां शिवस्य पूजाक्रमः	१९५
विष्णोः	१९६
सूर्यस्य	१९७
भवान्याः	१९७
गणेशस्य	१९७
निरुक्तस्थानादन्यत्र पूजने दोषः	१९७
गौणमुख्यभेदेनार्चनक्रमभेदः	१९८
एतेषामपूजने दोषः	२००
दिक्पालबलिः	२००
शिष्ये गुरोः कृत्यम्	२००
शिष्यकृत्यम्	२००
शिष्यं प्रति गुरोः कृत्यम्	२०१
शिष्यस्य शयनकालेः श्रीगुरुदत्तस्वप्नमानवमन्त्रपाठः	२०१
स्वप्नमानवमन्त्रः	२०१
प्रार्थनामन्त्रः	२०१
शिष्यस्य प्रार्थनापूर्वकं शयनम्	२०२
प्रातः शिष्यं प्रति स्वप्नदर्शनप्रश्नः	२०२
स्वप्ने वक्ष्यमाणानां दर्शनं सिद्धिकरम्	२०३
अशुभस्वप्नदर्शने तच्छान्त्यर्थं होमः	२०३
दीक्षादिनकृत्यम्	२०३
सामान्यार्घ्यस्थापनम्	२०४
सामान्यार्घ्यक्रमः	२०४
द्वारपूजायाः कर्त्तव्यता	२०५
गुरोर्यागमण्डपप्रवेशः	२०६
पूजा	२०६
मण्डपप्रोक्षणम्	२०६
पञ्चगव्यपरिमाणम्	२०६
प्रस्थस्वरूपम्	२०७
मण्डपशोधनम्	२०७
विकिरलक्षणम्	२०७
मार्जनम्	२०८
गुरुपूजादि	२०८
पुण्याहवाचनादि	२०८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चक्रराजनिर्माणम्	२०८
प्रकारान्तरम्	२०८
पूजाद्रव्यस्थापनम्	२०९
शिष्यस्यानयनमुपवेशनञ्च	२०९
तिल–काञ्चनोत्सर्गः	२१०
स्वस्तिवाचनादिपूर्वकगुरुवरणम्	२१०
गुरोरर्चनम्	२१०
गुरोः पुरतः प्रार्थनम्	२१०
गायत्रीजपस्तत्संख्या च	२१०
भूतशुद्ध्याद्यनुष्ठानम्	२११
मन्त्रसंस्कारः	२११
पीठन्यासः	२११
देहमयपीठे इष्टदेवताचिन्तनम्	२१२
मुद्राप्रदर्शनमर्घ्यादिस्थापनञ्च	२१२
देव्या अष्टाङ्गार्घ्यम्	२१३
सर्वदेवसाधारणमष्टाङ्गार्घ्यम्	२१३
पाद्यम्	२१३
आचमनीयम्	२१३
मधुपर्कः	२१४
पुनराचमनीयम्	२१४
उपचारदाने पात्रनियमः	२१४
गन्धम्	२१५
स्वदेहे पीठपूजा	२१५
पञ्चपुष्पाञ्जलिदानम्	२१५
मण्डलपूजा मण्डले पीठपूजा च	२१६
कूर्चलक्षणम्	२१६
यन्त्रे देवतापूजाक्रमः तत्र मध्ये त्रिपुरार्चनम्	२१६
षट्कोणे पूजनस्य क्रमः	२१६
तदन्तस्त्रिकोणे	२१६
षट्कोणाद् बहिरष्टदले	२१६
तद्बहिर्द्वादशदले	२१७
तद्बहिः षोडशदले	२१७
तद्बहिर्विंशतिदले	२१८
तद्बहिरष्टदले	२१८
पीठाष्टकम्	२१८
विंशतिदलाद् बहिर्भूगृहे	२१८
यन्त्रान्तरं तत्रार्चनव्यवस्था च	२१९
स्थापनीयकलसलक्षणम्	२२०
सूत्रवेष्टनम्	२२०
कलसस्थापनम्	२२१
नवरत्नप्रमाणम्	२२१
कलसापूरणम्	२२१
कलसे श्रीचक्रनिक्षेपः	२२१
षोडशकामकलापूजा	२२२
कलसे पल्लवादिनिवेशनप्रक्रिया	२२३
कोणकलसस्थापनम्	२२४
द्वितीयमण्डलकल्पे कलसस्थापने विशेषः	२२४
मूलशक्तिपूजनम्	२२४
नवकुम्भस्थापनकल्पे विशेषः	२२४
होमः	२२५
शिष्यानयनम्	२२५
शिष्यदेहे षडध्वचिन्तनम्	२२५
षडध्वानः	२२६
कलाध्वा	२२६
तत्त्वाध्वा	२२८
भुवनाध्वा	२२९
वर्णाध्वा	२३०
पदाध्वा	२३०
मन्त्राध्वा	२३०
अध्वशोधनक्रमः	२३१
शिष्यदेहे चैतन्ययुक्तिः	२३१
पूर्णाहुतिदानपूर्विका पञ्चोपचारपूजा	२३२
देव्यै कर्पूरादिदानम्	२३२

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
जपः २३२
व्याहृतिभिर्देव्या होम आत्मसमर्पणादिकञ्च २३२
मन्त्रोपदेशाय शिष्यस्यानयनम् २३२
पुष्पाञ्जलिदापनम् २३३
पुष्पपातेन शुभाशुभनिरूपणमशुभे तत्प्रतिकारश्च २३३
नेत्रबन्धापनयनम् २३३
पुष्पाञ्जलिदानानन्तरप्रक्रिया २३३
अस्त्रदेवतापूजादिप्रक्रिया २३४
यन्त्रे शिष्यस्योपवेशनम् २३४
शिष्यशिरसि श्रीचक्रन्यासः २३५
शिष्यस्नपनम् २३७
शिष्याभिषेकः २३७
गुरोरनन्तरकरणीयम् २३७
षट्चक्रविज्ञानोपदेशः २३८

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
शिष्यदेहे ऋष्यादिन्यासः २३८
तान्त्रिकाद्वैतोपदेशः २३८
कौलदीक्षायां विशेषः २३९
मन्त्रोपदेशः २३९
गण्डूषदानम् २३९
पुनर्मूलदेवतार्च्चा २४०
गुरोरनन्तरकरणीयम् २४०
गुरुनामकल्पनक्रमः २४१
गुरोः प्रदक्षिणादि २४१
दक्षिणादानम् २४१
गुरोरात्मविशोधनप्रकारः २४१
दीक्षादिवसे गुरुशिष्ययोरुपवासनिषेधः २४२
संक्षेपदीक्षा २४२
ग्रहणादौ विशेषः २४३

षष्ठः प्रकाशः

षट्चक्रनिरूपणप्रतिज्ञा २४५
इडा-पिङ्गला-सुषुम्णा-वज्रानाडी-संस्थितिः २४६
चित्रिणीब्रह्मनाड्योः संस्थितिः २४८
ब्रह्मनाडीस्वरूपम् २४९
मूलाधारपद्मस्य स्वरूपम् २५०
स्वबीजयुक्तपृथिवीमण्डलम् २५१
धराबीजस्य स्वरूपं तदङ्के ब्रह्मणोऽवस्थितिश्च २५१
मूलाधारपद्मे डाकिनीस्थितिः २५२
तत्कर्णिकान्तस्त्रिकोणे कन्दर्पवायोरवस्थितिः २५३
स्वयम्भुलिङ्गावस्थितिः २५३
तदूर्द्ध्वे कुलकुण्डलिन्याः स्थितिः २५४
परशक्तिस्थितिः २५६
कुलकुण्डलिनीध्यानफलम् २५८
अम्भोजमण्डलं वरुणबीजस्थितिश्च २६०
वरुणबीजस्याङ्के विष्णोरवस्थानम् २६१
स्थिताया राकिणीशक्तेः स्वरूपम् २६१
पद्मचिन्तनफलम् २६२
मणिपूरपद्मम्, त्रिकोणे वह्निबीजस्य स्थितिश्च २६३
रुद्रमूर्त्तेरवस्थितिः २६४
पद्मे लाकिनीशक्तेरवस्थितिरेतत्पद्मचिन्तनफलञ्च २६५
अनाहतपद्मं तत्कर्णिकायां वायुमण्डलञ्च २६६
वायुबीजं तत्रेशस्थितिश्च २६८
पद्मकर्णिकायां काकिनीशक्तेरवस्थितिः २६८
पद्मकर्णिकन्तस्त्रिकोणाकारा शक्तिर्बाणलिङ्गञ्च २६८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अनाहतपद्मचिन्तनफलम्	२७१
विशुद्धपद्मम् तत्कर्णिकायां नभोमण्डलस्थितिश्च	२७३
सदाशिवस्थितिः	२७४
पद्मकर्णिकायां शाकिनीशक्तेश्चन्द्रमण्डलस्य चावस्थितिः	२७५
पद्मचिन्तनफलम्	२७६
भ्रूमध्ये द्विदलमाज्ञापद्मं तत्कर्णिकायां हाकिनीशक्तेरवस्थितिश्च	२७९
आज्ञापद्मकर्णिकायां मनसः, कर्णिकान्तस्त्रिकोणे इतराख्यशिवस्य प्रणवस्य च स्थितिः	२८०
एतच्चिन्तनफलम्	२८१
आज्ञाचक्रे प्रणवघटकवर्णानामवस्थितिः	२८२
आज्ञाचक्रे प्रणवस्वरूपचिन्तनफलम्	२८३
वह्निकणावान्तरभेदाः परमशिवस्थितिश्च	२८४
प्राणत्यागस्य फलम्	२८५
आज्ञाचक्रोर्द्ध्वे शिवशक्तिरूपो महानादस्तद्दर्शनफलञ्च	२८६
सहस्रारपद्मम्	२८८
कर्णिकायां चन्द्रमण्डलं तदन्तस्त्रिकोणं तदन्तः परंबिन्दुश्च	२८९
परं बिन्दोर्गोप्यत्वं परमशिवस्थितिश्च	२९०
पद्मकर्णिकायां सर्वेषां देवानामवस्थितिः	२९३
पद्मज्ञानफलम्	२९३
पद्मकर्णिकान्तस्त्रिकोणे चन्द्रकलायाः स्थितिः	२९४
चन्द्रकलान्तर्निर्वाणकलायाः स्थितिः	२९५
तदन्तर्बिन्दुस्वरूपाया निर्वाणशक्तेरवस्थितिः	२९६
निर्वाणशक्तेरन्तः परब्रह्मस्थानम्	२९६
कुण्डलिन्युत्थापनक्रमः	२९९
कुण्डलिनीयोगप्रकारः	३०१
प्रागुक्तबिन्दुमयशिवे कुलकुण्डलीयोजनक्रमः	३०२
कुण्डलिन्या मूलाधारप्रापणममृतधारया स्वेष्टदैवततर्पणञ्च	३०६
षट्चक्रक्रमज्ञानफलम्	३०८
षट्चक्रप्रकरणाध्ययनफलम्	३०८

सप्तमः प्रकाशः

कुण्डस्वरूपनिरूपणप्रतिज्ञा	३१०
चतुरस्रकुण्डम्	३१०
योनिकुण्डम्	३११
त्र्यस्रकुण्डम्	३१२
वृत्तकुण्डम्	३१२
अर्द्धचन्द्रकुण्डम्	३१२
पद्मकुण्डम्	३१३
कुण्डखननक्रमः	३१३
चतुरस्रादिकुण्डेषु मेखलानामपि चतुरस्रत्वादित्वम्	३१३
मेखलानिर्णयः	३१४
मेखलानामुत्सेधः	३१४
विस्तारः	३१५
खातकरणे कल्पान्तरम्	३१५
मेखलापरिमाणभेदाः	३१५
कुण्डमेखलयोः क्रमान्तरम्	३१६
कुण्डनिर्माणे कल्पान्तरम्	३१६
मेखला	३१६
विकल्पः	३१६
कुण्डपरिमाणभेदेन मेखलापरिमाणभेदाः	३१७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
योनिः	३१८
द्विहस्तादिकुण्डेषु विशेषः	३१८
योनिनिर्माणे क्रमान्तरम्	३१९
नालम्	३१९
नाभिः	३२०
योनिकुण्डे योनेरब्जकुण्डे च नाभेर्वर्जनीयत्वम्	३२०
नाभिनिर्माणपरिपाटी	३२०
होमसंख्याभेदेन कुण्डभेदः	३२१
कुण्डाकारवृद्धिक्रमः	३२१
क्रमान्तरम्	३२१
लक्षादिहोमभेदे कुण्डपरिमाणगौरवम्	३२१
कल्पान्तरम्	३२१
खातस्य यथोक्तपरिमाणवैषम्ये दोषः	३२२
कुण्डस्य स्वेष्टदेवतास्वरूपत्वम्	३२२
कुण्डस्य चतुरस्रत्वादिभेदेन फलभेदाः	३२२
वर्णभेदेन कुण्डभेदाः	३२३
चतुरस्रकुण्डं सर्ववर्णसाधारणमिति मतान्तरम्	३२३
निरुक्तमेखलादिराहित्ये दोषः	३२३
कुण्डकरणासम्भवे स्थण्डिले होमविधानम्	३२३
स्रुक्-स्रुवयोर्लक्षणम्	३२३
स्रुवलक्षणम्	३२६
स्रुक्स्रुवयोरभावे व्यवस्था	३२६

अष्टमः प्रकाशः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
होमविधिनिरूपणप्रतिज्ञा	३२८
कुण्डस्य वीक्षणाद्यष्टादश संस्काराः	३२८
स्थण्डिले होमः	३३१
प्रागग्ररेखात्रयम्	३३१
उत्तराग्ररेखात्रयम्	३३१
योगपीठविरचनापरिपाटी	३३१
पीठदेवतापूजा	३३२
योगपीठार्चनम्	३३३
कामेश्वरीध्यानम्	३३३
अग्निचयनम्	३३३
अग्निसंस्कारः	३३४
दिग्बन्धनादि	३३४
अनन्तरकृत्यानि	३३४
वह्निस्थापनम्	३३५
प्रज्वालनम्	३३५
ज्वालिनी मुद्रा	३३५
अग्नेरुपस्थानम्	३३६
चैतन्ययोजनम्	३३६
समित्प्रक्षेपः	३३७
अग्नेर्जिह्वासु देवतादीनां न्यासः	३३७
षडङ्गेषु देवतान्यासः	३३७
अग्नेरष्टाङ्गेषु देवतान्यासः	३३८
स्वदेहे वह्नेर्जिह्वानां न्यासः	३३९
जिह्वानां त्रैविध्यम्	३३९
सात्त्विककर्मविहिताः	३३९
राजसकर्मविहिताः	३४०
तामसकर्मविहिताः	३४०
अन्त्यानां क्रूरकर्ममात्रपरत्वम्	३४०
जिह्वानां वर्णाः	३४०
परिस्तरणम्	३४०
परिधिस्थापनम्	३४१
अग्नेर्ध्यानम्	३४१
परिधिस्थापनम्	३४२
वह्निजिह्वासप्तकपूजनक्रमः	३४२
पुनरग्नेर्ध्यानादेः कर्त्तव्यता	३४३
पात्रसंस्कारः	३४४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
आज्यसंस्कारः	३४४
धूपदीपार्पणम्	३४६
होमपूर्वकृत्यम्	३४६
आज्ये नाडीत्रयचिन्तनम्	३४६
अग्निनेत्रवक्त्रोद्घाटकहोमः	३४६
महाव्याहृतिहोमः	३४७
ब्रह्मार्चनम्	३४८
अग्नेर्गर्भाधानादिसंस्काराः	३४८
जिह्वाङ्गदेवतादिहोमः	३५०
गाणपत्यहोमः	३५१
महागणपतिमन्त्रः	३५१
वह्निमुखे मूलदेव्यर्चा	३५२
वह्निदैवतयोरैक्यसम्पादकहोमः	३५२
नाडीसन्धानहोमः	३५३
आवरणदेवताहोमः	३५४
मूलदेवताहोमक्रमः	३५४
तान्त्रिकहोमाधिकारिनिर्णयः	३५५
शूद्रे विशेषः	३५५
निरुक्तक्रमस्य प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम्	३५५
जिह्वाभेदेन होमे फलभेदाः	३५५
कामनाभेदेन यज्ञीयपात्रभेदाः	३५५
होमे विहितं मुद्रात्रयम्	३५६
मुद्राणामासां विनियोगः	३५६
षट्कर्मसु होमे विशेषः	३५६
कुमारीपूजा	३५७
श्रीविद्यापूजा	३५७
महाव्याहृतिहोमः पूर्णाहुतिश्च	३५७
आत्मार्पणमन्त्रहोमः	३५७
आत्मसमर्पणमन्त्रः	३५७
अग्नेरभ्युक्षणमर्चनञ्च	३५९
पुनर्महाव्याहृतिहोमो जिह्वाहोमश्च	३५९
प्रार्थनापूर्वकमग्नेर्विसर्जनम्	३५९

नवमः प्रकाशः

होमद्रव्यनिरूपणप्रतिज्ञा	३६१
द्रव्यभेदेन होमे फलभेदाः	३६१
होमद्रव्यपरिमाणम्	३६७
प्रकारान्तरम्	३६८
द्रव्यानुक्तौ विशेषः	३६९
वैरिमन्त्रपरित्यागक्रमः	३६९
घटस्थापनम्	३७०
सावरणसाध्यदेवतापूजा	३७०
दिक्पालबलिः	३७०
इन्द्रस्य बलिमन्त्रः	३७०
अग्नेः	३७१
यमस्य	३७१
निर्ऋतेः	३७१
वरुणस्य	३७१
वायोः	३७१
कुबेरचन्द्रयोः	३७२
ईशानस्य	३७२
ब्रह्मणः	३७२
अनन्तस्य	३७२
साध्यदेवतापूजा	३७२
प्रार्थनम्	३७३
प्रार्थनमन्त्राः	३७३
तदनन्तरकृत्यम्	३७३
निरुक्तानुष्ठानजं फलम्	३७३
विधेरस्य प्रामाणिकग्रन्थसंवादित्वम्	३७४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

दशमः प्रकाशः

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा ३७५
पञ्चमी विद्या ३७८
पाञ्चभौतिकस्य जगतः पञ्चकूटात्मकत्वम् ३७८
पृथिव्यादीनां तत्तद्देवताशक्तित्वम् ३७९
निरुक्तकूटपञ्चकात्मकशक्तिपञ्चकनिरूपणम् ३७९
पञ्चम्याः स्वरूपम् ३७९
शिवादभिन्नेयं शक्तिः ३८०
निरुक्तपञ्चमीप्रसादादेव शिवादीनामीश्वरत्वादि ३८०
पञ्चम्युपासनयैव विश्वामित्रस्य सृष्ट्यादिकर्तृत्वम् ३८१
पञ्चम्याः ब्रह्मविद्यास्वरूपत्वम् ३८१
पञ्चमीविद्योपासनाधिकारिनिर्णयः ३८१
पञ्चमीविद्यायाः प्रकर्षः ३८२
पञ्चमीविद्याविदः प्रकर्षः ३८२
पञ्चतत्त्वस्य ब्रह्मादिरूपत्वम् ३८३
पञ्चम्याः वाग्भवकूटम् ३८४
कामराजकूटत्रयम् ३८५
कूटत्रयजपफलम् ३८६
शक्तिकूटम् ३८६
शक्तिकूटस्य प्रकर्षः ३८७
कामराजकूटे विशेषः ३८७
कामराजमध्यमकूटजपफलम् ३८८
मधुमती ३८९
निरुक्तपञ्चम्याराधनफलम् ३८९
कालविशेषेण जपे फलविशेषः ३९०
अस्या रहस्यत्वम् ३९१
सच्छिष्याय प्रतिपाद्यत्वम् ३९१
मन्त्रान्तरं तत्र शक्तिकूटे विशेषः ३९१

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

शक्तिकूटे वाग्भव-कामराजकूटव्यवस्था ३९१
मतान्तरम् ३९२
कामराजकूटे विशेषः ३९२
मन्त्रान्तरम् ३९३
शक्तिकूटे विशेषः ३९३
वाग्भवकामराजकूटव्यवस्था ३९३
एकाक्षरमन्त्रनिरूपणप्रतिज्ञा ३९४
एकाक्षरमन्त्रः ३९४
एकाक्षरमन्त्रस्य प्रशस्तिरप्रकाश्यत्वञ्च ३९५
एकाक्षरमन्त्रस्य प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम् ३९५
एकाक्षर्याः स्वरूपम् ३९६
एकाक्षरमन्त्रस्य सर्वथा रहस्यत्वाभिधानम् ३९६
एकाक्षरमन्त्रस्य सच्छिष्याय प्रतिपादनं तत्क्रमश्च ३९७
मन्त्रप्रतिपादनानन्तरं गुरोः कर्त्तव्यम् ३९७
मन्त्रदीक्षितस्य विद्यान्तराराधनप्रतिषेधः ३९७
मन्त्राराधनफलम् ३९७
एकाक्षर्याः कूटत्रयविभागः ३९८
एकाक्षर्या अनन्यसाधारण्यम् ३९८
एकाक्षरीमन्त्रस्य देवता, पञ्चदशाक्षरादिसर्वविद्यात्मकत्वञ्च ३९८
मन्त्रार्थः ३९९
एकाक्षर्याः महाविद्यास्वरूपत्वम् ३९९
मन्त्राक्षररहितानां विद्यानां सिद्धिप्रतिबन्धकत्वम् ४००
अस्याः स्वरूपम् ४००

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
एकादशाक्षरी विद्या	४०३
मन्त्रजपफलम्	४०४
अस्य रहस्यत्वम्	४०४
अनुगताय ज्येष्ठपुत्राय देयत्वम्	४०४
तदन्यत्राप्रकाश्यत्वम्	४०४
एतन्मन्त्रग्रहणफलम्	४०४
अस्य कीलितत्वादिसर्वदोषमुक्तत्वम्	४०४
चतुर्विंशत्यक्षरी विद्या, तत्र वाग्भवकूटञ्च	४०४
कामराजकूटम्	४०५
शक्तिकूटम्	४०५
एतन्मन्त्रप्रकर्षोऽस्याः प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वञ्च	४०६
अष्टादशाक्षरी विद्या, तत्र वाग्भव-कामराज-शक्तिकूटञ्च	४०६
विंशत्यक्षरी विद्या	४०७
एकविंशत्यक्षरी (उन्मनी विद्या), तत्र वाग्भवादिकूटत्रयम्	४०८
एतन्मन्त्रदेवतानिर्णयः फलञ्च	४०९
पञ्चविंशत्यक्षरी विद्या, तत्र वाग्भवादिकूटत्रयञ्च	४०९
एतन्मन्त्रप्रकर्षः	४१०
पञ्चविंशत्यक्षरं विद्यान्तरम्, तत्र वाग्भवादिकूटत्रयञ्च	४१०
एतन्मन्त्रप्रकर्षः	४११
सप्तविंशत्यक्षरी विद्या, तत्र वाग्भवादिकूटत्रयञ्च	४१२
एतन्मन्त्रप्रकर्षः	४१३
द्वात्रिंशत्यक्षरी विद्या, तत्र वाग्भवादिकूटत्रयञ्च	४१४
कामराजद्वितीयकूटम्	४१५
शक्तिकूटम्	४१५
एतन्मन्त्रप्रकर्षः	४१६
ऊनत्रिंशदक्षरी मृत्युञ्जयाख्या विद्या, तत्र कूटत्रयञ्च	४१७
सप्तत्रिंशदक्षरी विद्या, तत्र वाग्भवकूटम्	४१८
एतत्कूटजपप्रशस्तिः	४१९
कामराजकूटम्	४१९
एतत्कूटजपप्रशस्तिः	४२०
शक्तिकूटम् एतत् कूटजपप्रशस्तिश्च	४२०
एतत्त्रिकूटात्मकमन्त्रप्रशस्तिः	४२१
एतन्मन्त्रप्रकर्षः प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वञ्च	४२३
शाम्भवकामराजविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा	४२३
एतद्विद्याप्रकर्षः	४२३
तस्या द्वैविध्यम्	४२३
तत्र शाम्भकामराजविद्या पञ्चदशाक्षरी	४२३
तत्र कूटत्रयविभागपरिपाटी	४२४
अस्या विद्यायाः कीलितत्वम्	४२५
अत्र प्राचीनेतिवृत्तम्	४२५

एकादशः प्रकाशः

प्रागुक्तमन्त्रदोषस्मारणम्	४३३
अथाकीलितविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा	४३३
शाक्तकामराजविद्या, तत्र कूटत्रयञ्च	४३३
अस्या निष्कीलितत्वं प्रकर्ष आम्नायविशेषानुगतत्वञ्च	४३४
पश्चिमाम्नायानुगतलोपामुद्रानिरूपणप्रतिज्ञा	४३४
शाम्भवलोपामुद्रा	४३५
निरुक्तकूटत्रयस्वरूपम्	४३५
अस्याः प्रकर्षः	४३६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शाक्तलोपामुद्रा तत्र वाग्भवकूटम्	४३६
कामराजशक्तिकूटे	४३६
सप्तदशाक्षरी शाक्तलोपामुद्रा	४३७
अस्याः प्रकर्षः	४३७
सप्तदशाक्षरं मन्त्रान्तरम्	४३८
वाग्भवकामराजकूटयोर्विशेषः	४३९
अष्टादशाक्षरी	४३९
विंशत्यक्षरी	४४०
प्रामाणिकतन्त्रनिर्णयः	४४०
शास्त्रवामकेशीविद्यायाः प्रशस्तिः	४४०
विद्यायाः स्वरूपम्	४४१
प्रकारान्तरम्	४४२
पश्चिमाम्नायसम्मता शाक्तलोपामुद्रा, तस्याः कूटत्रयञ्च	४४२
एतदुपजीव्यागमनिर्णयः	४४३
एतत्कूटत्रयाधिष्ठातृदेवतानिर्णयः	४४३
प्रकारान्तरम्	४४४
शाक्तकामराजविद्या, तस्याः कूटत्रयञ्च	४४४
अस्या भेदत्रयम्	४४४
अस्याः प्रकर्षः	४४७
मन्त्रान्तरम्	४४७
मन्त्रान्तरं तस्य कूटत्रयञ्च	४४७
अथ नवाक्षरी तस्याः कूटत्रयञ्च	४४८
अस्याः पूर्वाम्नायानुगतत्वम्	४४८
दक्षिणोत्तरमध्यमाम्नायानुगतलोपामुद्राविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा	४४८
तत्र वाग्भवकूटम्	४४८
कामराजशक्तिकूटे	४४८
शाक्तलोपामुद्रा, तस्याः कूटत्रयञ्च	४४९
अस्या दक्षिणाम्नायानुगतत्वम्	४५०
मदद्रवाविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा	४५०
मदद्रवामन्त्रः	४५०
उत्तराम्नायानुगतविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा	४५१
तत्र वाग्भवकूटम्	४५१
कामराजशक्तिकूटव्यवस्था	४५१
एतन्मन्त्राराधनफलम्	४५१
मन्त्रान्तरम् , तत्र वाग्भवकूटम्	४५२
कामराजशक्तिकूटव्यवस्था	४५२
अन्यादृशषोडशीविद्यानिरूपणप्रतिज्ञा, कूटत्रयञ्च	४५३
तत्र कूटत्रयम्	४५४
अस्याः प्रकर्षः	४५४
मन्त्रान्तरम्	४५४
अध-आम्नायानुगतो मन्त्रः	४५४
अनेन मन्त्राणामाम्नायानुगतत्वम्	४५४
षडाम्नायज्ञानप्रशस्तिः	४५५
षडाम्नायाज्ञाननिन्दा	४५५
सौभाग्यामन्त्रः तत्र कूटयञ्च	४५५
अस्याः प्रकर्षः	४५६
प्रागुक्तायाः पञ्चम्याः शाम्भवत्वम्	४५६
शाक्तपञ्चमीभेदनिरूपणप्रतिज्ञा	४५६
वाग्भवकूटे विशेषः	४५७
अपरो विशेषः	४५८
अस्याः प्रकर्षः	४५९
शाम्भवशाक्तपञ्चमीभेदानां षडाम्नायानुगतत्वं प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वञ्च	४५९

द्वादशः प्रकाशः

त्रिविधमन्त्रनिरूपणप्रतिज्ञा	४६०
वक्ष्यमाणमन्त्राणां मेरुः	४६०
महात्रिपुरसुन्दरीमन्त्राणां निरुक्तमेरुद्भूतत्वम्	४६०
पृथिव्यादीनां निरुक्तमेरुवर्णकारणकत्वम्	४६१
मनुपूजिता	४६३
चन्द्राराधिता	४६४
कुबेराराधिता	४६५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कामाराधिता	४६६
अगस्त्याराधिता प्रथमलोपामुद्रा	४६६
नन्दिपूजिता	४६६
सूर्याराधिता	४६७
विष्णुपूजिता (षट्कूटा)	४६८
स्कन्दाराधिता	४७०
शङ्करोपासिता	४७०
दुर्वाससाराधिता	४७१
प्रागुक्तानां शुद्धत्वम्	४७२
वक्ष्यमाणानामपि तथात्वम्	४७२
अत्र मन्वाराधितविद्याया भेदराहित्यम्	४७२
चन्द्राराधिता द्वितीया, तत्र कूटत्रयम्	४७३
कुबेरपूजिता	४७३
द्वितीया लोपामुद्रा द्वितीयः कामराजश्च	४७४
द्वितीया नन्दिपूजिता	४७४
द्वितीया सूर्यपूजिता	४७५
द्वितीया विष्णुपूजिता	४७५
द्वितीया स्कन्दाराधिता	४७६
द्वितीया शिवाराधिता	४७७
अगस्त्यपूजिता द्वितीया लोपामुद्रा	४७७
शुद्धभेदान्तरनिरूपणप्रतिज्ञा	४७८
द्वितीया इन्द्रोपासिता	४७८
उन्मनी विद्या	४७९
शुद्धभेदनिगमनम्	४८०
शुद्धाशुद्धोभयरूपाः शबला मन्त्राः	४८०
वरुणपूजिता	४८०
धर्मराजोपासिता	४८१
अग्निपूजिता	४८१
पन्नगराजोपासिता	४८२
वायुपूजिता	४८२
चन्द्राराधिता	४८३
ईशानाराधिता	४८४
रतिपूजिता	४८५
नारायणाराधिता षट्कूटा	४८५
ब्रह्मपूजिता	४८६
बृहस्पतिपूजिता	४८७
प्रागुक्तद्वादशविद्यानां शुद्धाशुद्धशबलत्वम्	४८७
शुद्धादिभेदानां संख्या	४८८
तेषां स्वरूपं गुरूपदेशवेद्यत्वञ्च	४८८
एतेषां प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम्	४८८
दीपनी तद्योगफलञ्च	४८८
सुप्तत्वादिदोषस्य सिद्धिप्रतिबन्धकत्वम्	४८८
दोषपरिहारक्रमः	४८९
पञ्चम्या वाग्भवे दीपनीयोगः	४८९
कामराजे दीपनीयोगः	४८९
स्वप्नावत्याम् दीपनीयोगः	४८९
मधुमत्यां दीपनीयोगः	४८९
शक्तिकूटे दीपनीयोगः	४८९
अस्याः प्राणरूपत्वं सिद्धिप्रदत्वञ्च	४९१
प्रकारान्तरम् (प्राणः)	४९१
वाग्भवादौ शक्तिकूटान्ते च बीजयोगः	४९१
मध्यकूटत्रये बीजध्यानम्, तत्र कामराजे	४९१
स्वप्नावत्याम्	४९१
मधुमत्याम्	४९२
अस्याः प्राणस्वरूपत्वम्	४९३
प्रकारान्तरं तत्र क्रमश्च	४९३
अस्याः प्रशस्तिः	४९४
त्रिकूटादिविद्यानां दीपनी	४९४
तत्र क्रमः	४९५
निरुक्तबीजयोगफलम्	४९५
प्रकारान्तरम्	४९६
अन्यादृशी दीपनी	४९८
अन्यादृशी दीपनी	४९९
वामकेशीविद्याया दीपन्यां विशेषः	५००
वामकेशीविद्यास्वरूपनिरूपणप्रतिज्ञा	५००

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वामकेशीविद्यास्वरूपम् तत्र वाग्भव-कूटार्थः	५०१
कामराजकूटार्थः	५०५
शक्तिकूटार्थः	५०६
अन्यादृशं ध्यानतत्त्वम्	५०७
कामराजकूटार्थः	५०७
वाग्भवकूटस्थमायाबीजार्कः	५०९
कामराजकूटस्थमायाबीजार्थः	५०९
शक्तिकूटस्थमायाबीजार्थः	५१०
कूटत्रयस्थलकारत्रयार्थाः	५११
कूटत्रयस्थककारार्थाः	५११
अस्याः सर्वयोनित्वम्	५१२
सौभाग्यामन्त्रार्थः	५१२
एतद्विद्याज्ञानफलम्	५१३

त्रयोदशः प्रकाशः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
षोडशीस्वरूपनिरूपणप्रतिज्ञा	५१६
दीक्षामन्तरेण श्रीविद्याजपे दोषः	५१६
अनधिकारिणे श्रीविद्यादाननिषेधः	५१६
श्रीविद्याया रहस्यत्वम्	५१७
गुरुभक्ताय देयत्वम्	५१७
षोडशीविद्याया अनुच्चार्यत्वम्	५१८
अस्याश्चातुर्विध्यम्	५१८
षोडशीविद्यानिर्णयः	५१८
विद्याया जाग्रद्रूपतासम्पादनम्	५१९
जाग्रद्रूपतायां साधकस्यावस्था जाग्रदवस्थास्वरूपञ्च	५१९
त्रिकूटादिविद्यानां पञ्चकूटादित्वम्	५२०
विद्यायाः सुपुप्तिरूपता	५२१
तत्र साधकस्यावस्था	५२१
विद्यायाः स्वप्नरूपता	५२१
तत्र साधकस्यावस्था	५२१
निरुक्तपञ्चकूटात्मकविद्यानां प्रणवयोगे विशेषः	५२२
एतदुपास्तिफलम्	५२२
निगमनम्	५२२
शाम्भवकामराज-प्रथमलोपामुद्रयोर्विशेषः	५२२
कामराजषोडश्यास्त्रैविध्यम्	५२३
तत्र प्रथमा	५२३
अस्याः प्रशस्तिः	५२३
द्वितीया, तत्प्रशस्तिश्च	५२३
तृतीया, तत्प्रशस्तिश्च	५२४
अन्यादृशषोडशीस्वरूपनिरूपणप्रतिज्ञा	५२४
तत्र क्रमः	५२४
अस्या -रहस्यत्वं प्रकर्षश्च	५२५
अजपाविद्या	५२५
अस्याः प्रशस्तिः	५२६
अन्यादृशषोडशीनिरूपणप्रतिज्ञा	५२६
तत्र बृहस्पतिसेविता	५२६
शिवसेविता	५२७
कामराजलोपामुद्रयोस्तुल्यत्वम्	५२७
तस्या रहस्यत्वं प्रशस्तिश्च	५२८
निरुक्तकामराजविद्यायाः प्रणवयोगेन षोडशीत्वम्	५२८
अन्यादृशी षोडशी विद्या	५२९
तस्याः स्वरूपम्	५२९
अस्याः कलाचतुष्टयम्	५२९
अस्याः प्रशस्तिः	५२९
उद्दिष्टविद्यास्वरूपनिरूपणप्रतिज्ञा	५३०
विद्यायाः स्वरूपम्	५३०
बीजान्तरयोगः	५३१
अस्याः प्रशस्तिः	५३३
अस्या रहस्यत्वं प्रशस्तिश्च	५३३
अस्या अनिर्वाच्यस्वरूपत्वम्	५३३
वैखर्याद्यनभिव्यज्यत्वम्	५३३
प्रशस्तिः	५३६

विषयाः पृष्ठाङ्काः
अस्याः विद्यान्तरप्रकृतित्वम् ५३६
पुनरस्या रहस्यत्वम् ५३७
सच्छिष्याम देयत्वम् ५३७
दाने क्रमः ५३७
निरुक्तक्रमविपर्यये दोषः ५३७
विषयाः पृष्ठाङ्काः
अस्या अपरे भेदाः ५३७
तत्र परिपाटी ५३७
तत्रैकतमस्यापि ज्ञानं शिवतासम्पादकम् ५३८
एतन्मन्त्राभ्यासजन्यः साधकस्य शक्तिप्रकर्षः ५३८

चतुर्दशः प्रकाशः

श्रीमत्त्रिपुरासपर्यावतारः ५४१
प्रातःकृत्यम्, तत्र सहस्रारे श्रीगुरोर्ध्यानम् ५४१
गुरु-शक्त्योः पूजनं तन्मन्त्रजपश्च ५४२
श्रीगुरुमन्त्रः ५४२
श्रीगुरोर्मन्त्रान्तरम् ५४४
निरुक्तगुरुमन्त्रजपसंख्या ५४४
जपसमर्पणम् ५४४
प्रातः श्रीगुरुस्तोत्रपाठस्य कर्त्तव्यता ५४५
श्रीगुरुस्तुतिः ५४५
श्रीगुरु-नमस्कारः ५४६
कुलनाथ-(श्रीगुरु)ध्यानस्थान-निरूपणम् ५४६
कुलनाथतत्पूजननिरूपणप्रतिज्ञा ५४६
दिव्यकुलनाथत्रयनिरूपणम् ५४७
सिद्धकुलनाथत्रयनिरूपणम् ५४७
तेभ्योऽपरकुलनाथत्रयोत्पत्तिः ५४८
भौमकुलनाथत्रयम् ५४८
निरुक्तकुलनाथैस्तन्त्रशास्त्रस्य प्रवर्त्तनम् ५४८
एतेषां रूपम् ५४९
पूज्यत्वम् ५४९
प्रागुक्तमन्त्राणां नवाक्षरत्वसम्पादनम् ५५०
सप्ताक्षरयोगेण निरुक्तनवाक्षरस्य षोडशाक्षरत्वम् ५५०
सप्ताक्षरमन्त्रः ५५०
निगमनम् ५५१
मन्त्रयोर्योगः ५५१
शक्तीतरतन्त्रेषु विशेषः ५५२
नवार्णसप्तार्णयोर्योगे षोडशार्णत्वम् ५५२
तेषां षोडशार्णानां षोडशनित्यारूपत्वम् ५५२
गुरुमण्डलपूजाकालः ५५२
पूर्णासु पर्वसु च नाम्नो विशेषः ५५२
उभयोरेव पूजने मन्त्रस्याभेदः ५५२
गुरुमण्डलपूजाय नवोपचारसाध्यत्वम् ५५३
उपचारनवकनिर्णयः ५५३
गुरुमण्डलनिर्माणाधारः ५५३
मण्डलनिर्माणोपकरणनिर्णयः ५५३
मण्डलपूजान्ते कर्त्तव्यम् ५५३
जीवतो मृतस्य वा गुरोः क्रमेणानेन पूजायाः कर्त्तव्यत्वम् ५५८
निरुक्तक्रमेणानुष्ठितायाः पूजायाः फलम् ५५८
वैपरीत्ये दोषः ५५८
पर्वसप्तकम् ५५९
अत्र पूजायाः कर्त्तव्यता ५५९
तत्र विशेषः ५५९
गुरुतत्पुत्रादीनामभावे कर्त्तव्यम् ५६०
निगमनम् ५६०
कुण्डलिन्युत्थापनम् ५६०
शय्यातो भूमौ पादक्षेपः ५६०
तत्र प्रार्थनामन्त्रः ५६१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
निरुक्तमन्त्रेण भूमौ पादक्षेपस्योपदेशः	५६१
कुलवृक्षाणां दर्शनं नतिश्च	५६१
विण्मूत्रादित्यागो दन्तशोधनमन्त्रश्च	५६१
शिखाबन्धादीनि सन्ध्यान्तानि कर्माणि	५६२
सन्ध्या, तत्र स्वदेहे पञ्चदशाक्षरन्यासः	५६२
ध्यानम्	५६३
सौभाग्यदण्डिनीमुद्राविनियोगः	५६३
रिपुजिह्वाया विनियोगः	५६३
सौभाग्यदण्डिन्याः स्वरूपं फलञ्च	५६४
रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा करशुद्धिश्च	५६५
विद्याध्यानम्	५६७
त्रिपुरार्घ्यदानम्	५६८
त्रिपुरागायत्री	५६८
पूरकादिक्रमेण तज्जपः	५६८
देव्या ध्यानम्	५६८
तत्र क्रमान्तरम्	५६९
अर्घ्यदानम्	५६९
गायत्री तज्जपश्च	५६९
सायाह्ने देव्या ध्यानम्	५६९
तत्र कल्पान्तरम्	५६९
तत्रार्घ्यदानक्रमः	५७०
गायत्री तज्जपश्च	५७०
अर्द्धरात्रे ध्यानम्	५७०
तत्रार्घ्यक्रमः	५७०
गायत्री तज्जपश्च	५७१
निगमनम्	५७१
प्रातःकृत्यस्यावश्यकत्वम्	५७१
ततो देवगृहेऽनुष्ठानम्	५७१

पञ्चदशः प्रकाशः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
स्नानक्रमस्य द्वैविध्यम्	५७२
आन्तरस्नाननिरूपणप्रतिज्ञा	५७२
आन्तरस्नानक्रमः	५७२
आन्तरस्नानस्य निगमनं फलञ्च	५७३
बाह्यस्नानम्	५७३
तत्राऽऽचमनम्	५७३
तीर्थावाहनम्	५७३
तत्र मन्त्रः	५७३
निरुक्तमन्त्रेणाङ्कुशमुद्रया प्रोक्तावाहनस्य कर्त्तव्यता	५७३
अङ्कुशमुद्रा	५७४
अभिषेकः	५७४
कुम्भमुद्रा	५७४
मज्जनविधिः	५७४
स्वकृत-श्यामारहस्यात् स्नानप्रक्रियान्तरज्ञानोपदेशः	५७४
वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्या, तत्राचमनादि	५७५
षडङ्गन्यासपुरःसरमघमर्षणम्	५७५
सन्ध्याया अनन्तरप्रक्रियोपदेशस्तर्पणञ्च	५७७
मार्त्तण्डभैरवध्यानम्	५८०
मार्त्तण्डभैरवाय (सूर्याय) अर्घ्यदानम्	५८०
सूर्यमण्डपे रेखाध्यानम्	५८१
यागस्थानप्रवेशक्रमः	५८१
प्रशस्तयागभूमयस्तत्र देवीपूजाविधिश्च	५८१
एकलिङ्गलक्षणम्	५८२
द्वारपूजा, तत्र प्रथमं हस्तपादप्रक्षालनम्	५८२
दूर्वाचयनम्	५८२
आचमनम्	५८२
दिक्पालपूजा	५८३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
तत्र क्रमान्तरम्	५८३
अस्त्रपूजा	५८४
पूजनीयान्यस्त्राणि	५८४
पूर्वादिक्रमेण गणेशादिपूजा	५८४
मण्डपप्रवेशः	५८४
पुष्पशोधनम्	५८५
जलशोधनपूर्वकं प्रोक्षणम्	५८५
अमृतीकरणादि	५८६
मण्डपपूजा	५८६
पृथिवीपूजा	५८६
पृथिवीसम्प्रदानकमर्घ्यदानम्	५८६
तत्र प्रार्थनमन्त्रः	५८७
अर्घ्यदानमन्त्रः	५८७
करशुद्धिः	५८७
तत्र मन्त्रः	५८८
भौमविघ्नोत्सारणम्	५८८
दिव्यविघ्नोत्सारणम्	५८९
आन्तरिक्षविघ्नोत्सारणम्	५८९
दिग्बन्धनं वह्निप्राकारचिन्तनञ्च	५८९
दिग्बन्धनमन्त्रः	५८९
दिग्बन्धने प्रयोज्याऽस्त्रमुद्रा	५९०
वह्निप्राकारमन्त्रः	५९०
अस्त्रमुद्रा	५९०
जपविघ्नापनोदनम्	५९१
ब्रह्म-वास्तुपुरुषयोरर्चा	५९१
त्रिकोणमण्डलम्	५९१
तत्राऽऽसनस्थापनम्	५९१
आसनारोपणे ऋष्यादि	५९१
आसनार्चनमन्त्रः	५९२
मन्त्राचमनम्	५९२
आसनारोहणं गुरुपङ्क्तिपूजा च	५९२
तत्र साधकस्य वेशादिपारिपाव्यम्	५९३
आत्मरक्षा	५९३
करशुद्धिः	५९४
बालामन्त्रः	५९६
अङ्गन्यासः	५९६
तत्र क्रमान्तरम्	५९७
तत्राङ्गुलिनियमः	५९७
संकल्पः	५९८
भूतशुद्धिः	५९८
तत्र क्रमः	५९९
सप्रकृतिकायाः कुण्डलिन्याः परशिवे गमनम्	६०१
परमशिवस्य परबिन्दुस्वरूपत्वम्	६०१
स्वस्य देवीरूपत्वभावना	६०४
श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपम्	६०५
जीवन्यासः	६०५
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः	६०५
निरुक्तभूतशुद्धेः प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम्	६०५
अन्यादृशो भूतशुद्धिक्रमः	६०६
भूतशुद्धेः क्रमान्तरम्	६०७
प्राणायामः	६०८
भूतशुद्धेः क्रमान्तरम्	६०८
प्राणायामः	६०८
प्राणायामपदव्युत्पत्तिः	६०९
प्राणायामभूतशुद्धिस्वस्वकल्पविहितन्यासानकुर्वतो देवार्चनेऽनधिकारिता	६०९
न्यासपदव्युत्पत्तिः	६०९
भूतशुद्धिपदव्युत्पत्तिः	६०९
ऋष्यादिन्यासः	६१०
षडङ्गन्यासोपदेशो मातृकान्यासस्य कर्त्तव्यत्वञ्च	६११
मातृकाया ऋष्यादिन्यासः	६११

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
मातृकायाः कराङ्गन्यासः ६१२
मातृकाध्यानम् ६१३
अन्तर्मातृकान्यासपरिपाटी ६१३
बाह्यमातृकान्यासः ६१५
तत्र बीजपूर्वकताविकल्पः ६१५
प्रत्यङ्गमेकैकाक्षरन्यासोपदेशः ६१६
अङ्गभेदेनाङ्गुलिनियमः ६१६
प्रणवादिनमोऽन्तत्वयोः सबिन्दु-निर्बिन्दुत्वयोश्च विकल्पः ६१८
सविसर्गबिन्दुविसर्गोभयवत्तयोर्विकल्पः ६१८
न्यासे मायादिवीजपूर्वकताविकल्पः ६१८
निरुक्ताङ्गुलिभिर्न्यासासम्भवे कर्त्तव्यम् ६१९
सूर्यादिदेवतापूजा ६१९
करन्यासः ६१९
षडासनन्यासः ६२०
षडङ्गन्यासोपदेशो वशिन्याद्यष्टकन्यासक्रमश्च ६२२
षोढान्यासोपदेशः ६२८
षोढान्यासप्रशस्तिः ६२८
षोढान्यासघटकषड्विधन्यासोद्देशः ६३०
षोढायास्त्रैविध्यम् ६३०
अस्य प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम् ६३१
पूर्वतो बीजयोगे कल्पभेदाः ६३१
न्यसनीयानां गणेशानां ध्यानम् ६३१
अस्य ऋष्यादिन्यासः ६३२
गणेशन्यासः ६३२
ग्रहन्यासप्रतिज्ञा ६३६
ग्रहाणां वर्णनिर्देशः ६३६
स्वरूपम् ६३७
न्यासपरिपाटी ६३७
तारान्यासोपदेशप्रतिज्ञा ६३८

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
ताराध्यानम् ६३८
न्यासपरिपाटी ६३९
क्रमान्तरम् ६४०
न्यासयोग्यस्थानानि ६४१
तारान्यासोपसंहारः, योगिनीन्यासोपदेशम् ६४३
डाकिनीध्यानम् ६४३
डाकिनीन्यासः ६४३
डाकिनीपरिवारदेवतान्यासः ६४५
राकिणीध्यानम् ६४५
राकिणीन्यासः ६४६
राकिणीपरिवारदेवतान्यासः ६४६
लाकिनीध्यानम् ६४७
लाकिनीन्यासः ६४७
लाकिनीपरिवारदेवतान्यासः काकिनीध्यानोपदेशश्च ६४८
काकिनीध्यानम् ६४८
काकिनीन्यासः ६४८
काकिनीपरिवारदेवतान्यासः ६४९
साकिनीध्यानम् ६४९
साकिनीन्यासः ६५०
साकिनीपरिवारदेवतान्यासः ६५०
हाकिनीध्यानम् ६५०
हाकिनीन्यासः ६५१
परिवारन्यासः ६५१
योगिनीन्यासस्य प्रस्थानान्तरम् ६५२
एतन्न्यासयोग्यान्यङ्गानि ६५२
राशिन्यासस्य कर्तव्यतोपदेशः ६५३
राशीनां वर्णाः ६५३
न्यासपरिपाटी ६५४
राशीनां वर्णनिरूपणे क्रमान्तरम् ६५५
न्यासस्थाननिरूपणे क्रमभेदः ६५५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पीठन्यासः	६५६
पीठानां वर्णनिर्णयः	६५६
पीठानां नामानि	६५७
पोढान्यासोपसंहारः	६६०
पीठन्यासप्रशस्तिः	६६०
पीठन्यासाकरणे दोपः	६६१
सशक्तिककामन्यासः	६६१
कामध्यानम्	६६१
कामशक्तिध्यानम्	६६१
पूर्वतो बीजयोगः	६६२
न्यसनीयदेवतानामानि	६६२
एतन्न्यासोपसंहारः	६६५
नवयोनिन्यासोपदेशः	६६५
श्रीविद्यान्यासः	६६७
तिथिनित्यान्यासः	६६८
कामेश्वरीन्यासः	६६९
भगमालान्यासः	६७०
नित्यक्लिन्नान्यासः	६७१
भेरुण्डा	६७२
वह्निवासिनी	६७३
महानित्येश्वरी	६७३
शिवदूती	६७४
त्वरिता	६७४
कुलसुन्दरी	६७५
महानित्या	६७५
पञ्चबाणमन्त्रः	६७५
नीलपताकिनी	६७६
विजया	६७७
सर्वमङ्गला	६७७
ज्वालामालिनी	६७८
विचित्रा	६७८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
निरुक्तन्यासे विशेषः	६७९
श्रीविद्या	६७९
स्थितिन्यासः	६७९
सृष्टिन्यासः	६८१
संहारन्यासः	६८१
निरुक्तन्यासत्रयस्याधिकारिभेदः	६८३
चक्रेश्वरीन्यासः	६८३
तत्र स्थाननिरूपणम्	६८३
न्यासपरिपाटी	६८३
पीठन्यासः	६८५
तत्त्वन्यासः	६८७
अस्त्रन्यासः	६८८
न्यासपरिपाटी तत्र बाणन्यासः	६८९
धनुर्न्यासः	६९०
पाशन्यासः	६९१
अङ्कुशन्यासः	६९१
कूटन्यासः	६९२
त्रिपुरान्यासः	६९३
पञ्चाशत्त्रिपुरानिर्णयः	६९३
चक्रन्यासः तत्र सप्रशस्तिकन्यासप्रतिज्ञा	६९५
न्यासपरिपाटी, तत्र प्रथमावरणन्यासः	६९५
द्वितीयावरणन्यासः	६९९
तृतीयावरणन्यासः	७०१
चतुर्थावरणन्यासः	७०३
पञ्चमावरणन्यासः	७०५
षष्ठावरणन्यासः	७०६
सप्तमावरणन्यासः	७०८
अष्टमावरणन्यासः	७०९
नवमावरणन्यासः	७१२
श्रीचक्रन्यासोपसंहारः	७१४
व्यापकन्यासः	७१४

विषयाः पृष्ठाङ्काः

षोडशः प्रकाशः

अन्तर्यागनिरूपणप्रतिज्ञा ७१५
निर्गुणस्यापि परमात्मनः सृष्टिप्रवृत्तिः ७१६
समासतः सृष्टिप्रक्रिया ७१७
निरुक्तभेकपृष्ठे कालाद्यर्चा ७१८
आधारशक्त्यादीनां स्वरूपं पूजनोपदेशश्च ७१८
पीठचतुष्टयार्चा ७१९
कल्पोद्यानार्चा ७१९
कल्पवृक्षस्य स्वरूपमर्चनोपदेशश्च ७१९
पारिजातादिचिन्ता ७२०
चिन्तामणिगृहादेः स्वरूपं तच्चिन्तनोपदेशश्च ७२०
रत्नवेदिकायाः स्वरूपं तच्चिन्तनोपदेशश्च ७२१
रक्षणादिपरिपाटी ७२१
योनिमुद्रा ७२१
ध्यानक्रमः ७२२
सशक्तिकद्वारपालध्यानोपदेशः ७२२
सहस्रारे देवीसंस्थापनम् ७२२
तयोरेकत्वचिन्ता ७२२
देवीपूजा, मानसयाग आवाहननिषेधश्च ७२२
पाद्याद्युपचारपात्रसंख्यानिरूपणम् ७२३
मानसपूजाक्रमः ७२३
तत्र पाद्याद्यर्पणनियमः ७२३
उपचारदानमन्त्रे विशेषः ७२३
अत्राऽऽगमान्तरसम्मतः क्रमभेदः ७२४
अत्रैव कल्पसूत्रकृतां मतम् ७२४
स्वयम्भूकुसुमादयो विशिष्टाः पूजोपचाराः ७२४
पञ्चदश भावपुष्पाणि ७२४
अन्ये उपचाराः ७२५
षडङ्गादिपूजा ७२५
स्नपनाङ्गमुद्वर्त्तनम् ७२५
देव्याः स्नपनम् ७२६
देवीशरीरालङ्करणक्रमः ७२७
श्रीपादुकान्तोपचारदानानन्तरं नमस्कारोपदेशः ७२८
नमस्कारमन्त्रः ७२८
पुनः पूजनोपदेशस्तत्क्रमश्च ७२८
दर्शयितव्यासु मुद्रासु सुन्दरीमुद्रा ७३०
विस्मयमुद्रा ७३०
नादमुद्रा ७३०
बिन्दुमुद्रा ७३०
ज्ञानमुद्रा ७३१
योगमुद्रा ७३१
बहिरन्तर्योनिमुद्रे ७३१
स्वयम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन समाधेर्द्वैविध्यम् ७३२
स्वयम्प्रज्ञातः ७३२
असम्प्रज्ञातः ७३२
स्वयम्प्रज्ञातभेदौ ७३३
असम्प्रज्ञातभेदौ ७३३
प्रथमस्य भेदयोः स्वरूपम् ७३३
द्वितीयस्य भेदयोः स्वरूपम् ७३३
विश्रामार्थ कुसुमशयने देव्याः स्थापनं प्रीतिसम्पादनञ्च ७३४
मानसयागफलम् ७३४
ज्ञानहोमनिरूपणोपक्रमः ७३४
चतुरस्रकुण्डम् ७३५
आत्मनां चातुर्विध्यम् ७३५
निरुक्तात्मज्ञानफलम् ७३५
आत्मनः स्वरूपम् ७३६
आत्मनश्चराचरशरीरव्यापकत्वम् ७३६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भ्रमवशादस्यैव जीवसंज्ञा	७३७
अन्तरात्मस्वरूपम्	७३८
परमात्मनः स्वरूपम्	७३८
ज्ञानात्मनः स्वरूपम्	७४०
आत्मचतुष्टयनिरूपणोपसंहारः	७४०
कुण्डस्य स्वरूपम्	७४०
कुण्डे होमः	७४१
हविः कल्पनम्	७४१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
हविषा होमस्योपदेशः	७४१
प्रथमो मन्त्रः	७४१
द्वितीयो मन्त्रः	७४२
तृतीयो मन्त्रः	७४२
चतुर्थो मन्त्रः	७४२
होतुर्ब्रह्मरूपत्वम्	७४३
उपसंहारः	७४३

सप्तदशः प्रकाशः

यन्त्रनिरूपणप्रतिज्ञा	७४४
यन्त्रपदव्युत्पत्तिः	७४५
शरीरस्य त्रैविध्यम्	७४५
तत्स्वरूपम्	७४६
पूर्वप्रतिज्ञातमुद्रास्वरूपम्	७४८
मुद्रापदव्युत्पत्तिः	७४९
यन्त्रनिर्माणाधारोपकरणादिनिर्णयः	७५०
कल्पान्तरम्	७५१
चक्रस्य क्रमेणोन्नतमध्यत्वे फलभेदाः	७५१
श्रीचक्रनिर्माणस्थापनपूजनप्रशस्तिः	७५२
यन्त्रमन्त्रदेवतानामभेदः	७५२
यन्त्रं विना पूजने दोषः	७५३
रात्रौ यन्त्रनिर्माणनिषेधः	७५३
यन्त्रपुष्पे पूजनोपदेशः	७५४
श्रीचक्रनिर्माणपरिपाटी तत्र त्रिकोणमष्टकोणञ्च	७५४
अन्तर्दशारम्	७५७
बहिर्दशारम्	७६०
चतुर्दशारम्	७६१
अष्टारादिचक्रत्रयम्	७६४
बिन्दुचक्रस्य सर्वचक्रमध्यवर्त्तित्वम्	७६४
त्रैलोक्यमोहनचक्रम्	७६५
सर्वाशापरिपूरकचक्रम्	७६६
सर्वसंक्षोभणचक्रम्	७६६
निरुक्तत्रितयात्मकं सृष्टिचक्रम्	७६७
सर्वसौभाग्यदायकचक्रम्	७६७
सर्वार्थसाधकचक्रम्	७६८
सर्वरक्षाकरचक्रम्	७६८
निरुक्तत्रितयात्मकं स्थितिचक्रम्	७६८
सर्वरोगहरचक्रम्	७६८
सर्वसिद्धिप्रदचक्रम्	७६९
सर्वानन्दमयचक्रम्	७६९
निरुक्तत्रितयात्मकं संहारचक्रम्	७७०
निरुक्तचक्रे पुष्पाञ्जलिदानोपदेशः	७७०
चक्रस्याशून्यतासम्पादनोपदेशः	७७०
नवचक्रोपसंहारः	७७०
चक्रेश्वरीणां नामानि	७७१
चक्रे स्वस्वस्थानेऽर्चनीया देवताः	७७१
निरुक्तचक्रसङ्केतज्ञानवैभवम्	७७२
निरुक्तश्रीचक्रज्ञानप्रशस्तिः	७७२
श्रीचक्ररहस्यनिरूपणप्रतिज्ञा	७७३
त्रिकोणान्तर्बिन्दुरहस्यम्	७७४
त्रिकोणरहस्यम्	७७५
अष्टाररहस्यम्	७७६
अन्तर्दशाररहस्यम्	७७७
बहिर्दशाररहस्यम्	७७७

विषयाः पृष्ठाङ्काः
चतुर्दशाररहस्यम् ७७८
अष्टदलरहस्यम् ७७९
षोडशदलरहस्यम् ७७९
यन्त्रस्य परिमाणभेदाः ७८१
बिन्दुचक्रे महाकामकलाया अवस्थितिः ७८२
विषयाः पृष्ठाङ्काः
श्रीचक्रोद्धारे दिङ्नियमः ७८३
श्रीचक्रस्थापनाधारः ७८५
सीसकादिषु चक्रस्थापननिषेधः ७८५
पीठपूजा ७८६

अष्टादशः प्रकाशः

सामान्यार्घ्यस्थापनम् (तत्र मण्डलम्) ७९२
शङ्खाधारस्थापनम् ७९३
आधारभेदाः ७९३
मन्त्रोपदेशः ७९३
पादुकामन्त्रप्रयोगः ७९४
वह्नेर्दशकलाः ७९४
कल्पान्तरम् ७९४
कलानामासां स्वरूपम् ७९५
सकल-वह्निमण्डलार्चाक्रमः ७९६
सकलसूर्यमण्डलार्चा ७९६
द्वादश सौरकलाः ७९६
प्रकारान्तरम् ७९७
कलार्चाक्रमः ७९७
कलानां स्वरूपम् ७९८
सौरमण्डलार्चाक्रमः ७९८
अर्घ्यपात्रापूरणं सोमकलार्चोपदेशश्च ७९८
षोडश सोमकलाः ७९९
प्रकारान्तरम् ७९९
सोमकलानां स्वरूपमर्चाक्रमश्च ८००
सोममण्डलार्चा ८००
आनन्दभैरवयोः पूजनम् ८००
आनन्दभैरवमन्त्रः ८०१
आनन्दभैरवीमन्त्रः ८०२
अर्घ्ये जपक्रमः ८०२
उपसंहारः ८०२
श्रीपात्रकल्पना ८०२
मण्डलनिर्माणम् ८०३
पीठचतुष्टयाद्यर्चा ८०४
षट्कोणार्चायां विकल्पः ८०४
त्रिकोणाद्यर्चा ८०५
मण्डलेऽर्घ्याधारस्थापनक्रमः ८०५
आधारार्चा ८०५
अर्घ्यपात्रनिर्णयः ८०६
कामनाभेदेन पात्रभेदाः ८०७
सर्वत्र विश्वामित्रपात्रस्य प्राशस्त्यम् ८०८
पात्रभेदेन फलभेदाः ८०८
अर्घ्यपात्रपरिमाणम् ८०८
वर्जनीयपात्रनिरूपणम् ८०९
पात्रस्थापनक्रमः ८०९
पात्रप्रतिष्ठापनमन्त्रः ८१०
सूर्यकलामण्डलार्चा ८१०
मण्डलविधिः ८१०
पात्रापूरणक्रमः ८११
पात्रापूरणद्रव्याणि ८११
अर्घ्यद्रव्याणि ८१२
सकलसोममण्डलार्चा ८१२
गन्धाष्टकम् ८१२
अर्घ्यामृते यन्त्रलेखनादिक्रमः ८१३
तत्रार्चावाहने ८१३
पञ्चरत्नार्चाक्रमः ८१३
पञ्चरत्नमन्त्रः ८१३
पञ्चरत्नानि ८१४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
आनन्दभैरवार्चा	८१५
प्रथमो मन्त्रः	८१५
द्वितीयः	८१५
तृतीयः	८१५
चतुर्थः	८१६
पञ्चमः	८१७
आवाहनादिक्रमः	८१८
नवमुद्राप्रदर्शनम्	८१८
त्रिकोणे वीजयोगार्चाप्रक्रिया	८१९
शङ्खमुद्राप्रदर्शनोपदेशः	८१९
शङ्खमुद्रास्वरूपम्	८१९
सकलीकरणमुद्रा	८२०
जपस्य संख्याभेदः	८२०
तर्पणम्	८२१
कौलिकी मुद्रा	८२१
कौलिकमुद्रया तर्पणस्योपयोगित्वम्	८२१
कामनाभेदेन तर्पणे मुद्राभेदाः	८२२
आगमान्तरसम्मतः क्रमः	८२२
आत्मोपकरणादिप्रोक्षणक्रमः	८२३
प्रोक्षणफलम्	८२३
देव्यङ्गदेवतातर्पणविधिः	८२४
वटुकादिपूजोपदेशः	८२४
क्षेत्रपालादिबलिमदत्त्वा देवतान्तरपूजननिषेधः	८२४
बलिदानाकरणे दोषश्रुतिः	८२४
उपसंहारः	८२४
वटुकपूजामकृत्वा सुन्दरीपूजानिषेधः	८२५
आगमान्तरसम्मतिः	८२५
वटुकादिपूजाक्रमः, तत्राऽऽदौ मण्डलनिर्माणम्	८२५
मण्डलार्चामन्त्रः	८२६
वटुकार्चोपदेशः	८२६
वटुकध्यानम्	८२६
वटुकबलिमन्त्रः	८२६
वटुकबलिक्रमः	८२७
योगिनीपूजोपदेशः	८२८
योगिनीध्यानम्	८२८
योगिनीपूजामन्त्रः	८२८
योगिनीबलिः	८२९
अङ्गुलिनियमः	८२९
क्षेत्रपालार्चा	८२९
क्षेत्रपालध्यानम्	८२९
क्षेत्रपालबलिदानोपदेशः	८३०
बलिदानक्रमः	८३०
अङ्गुलिनियमः	८३०
गणेशपूजनोपदेशः	८३०
गणेशध्यानम्	८३०
गणेशपूजाक्रमः	८३१
गणेशबलिमन्त्रः	८३१
गजतुण्डामुद्रा	८३२
मण्डलपूजा	८३२
सर्वभूतबलिः	८३२
बलिमन्त्रः	८३३
बलिमुद्रा	८३३
निरुक्तबलौ कल्पान्तरम्	८३३
पुनः कल्पान्तरम्	८३४
पुनः षडङ्गपूजा	८३४
हृदये मूर्त्तिकल्पना	८३४
ध्याने विहितं मुद्राद्वयम्	८३४
ध्यानयोगः	८३५
देव्या ध्यानम्	८३७
ध्यानान्तरम्	८४०
निरुक्तध्यानप्रशस्तिः	८४६
निरुक्तस्वरूपाया देव्या हृदयादावाहनम्	८४८
त्रिखण्डा मुद्रा	८४८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्रिखण्डया देव्या आवाहनम्	८४८
पुष्पाञ्जलौ समानयनम्	८४९
प्रार्थनामन्त्रः	८४९
यन्त्रे देव्याः स्थापनम्	८४९
आवाहनी मुद्रा	८५०
स्थापनी मुद्रा	८५०
सन्निधापनी मुद्रा	८५०
सन्निरोधिनी मुद्रा	८५१
आवाहनस्वरूपम्	८५२
स्थापनस्वरूपम्	८५२
सन्निधापनस्वरूपम्	८५३
सन्निरोधस्वरूपम्	८५३
अवगुण्ठनम्	८५३
सकलीकरणम्	८५३
अमृतीकरणम्	८५३
परमीकरणम्	८५३
जीवन्यासः	८५३
लेलिहामुद्रा	८५४
सकलीकरणस्वरूपम्	८५४
त्रितालादिपरमीकरणान्तं कर्म	८५४
परिवारदेवतास्वरूपम्	८५५
मुद्रानवकदर्शनोपदेशः	८५५
तत्र सर्वसंक्षोभणी मुद्रा	८५५
सर्वविद्रावणी मुद्रा	८५६
सर्वाकर्षिणी मुद्रा	८५३
सर्ववश्यकरी मुद्रा	८५७
सर्वोन्मादिनी मुद्रा	८५७
महाङ्कुशा मुद्रा	८५८
खेचरी मुद्रा	८५९
खेचरीमुद्राप्रशस्तिः	८५९
वीजमुद्रा	८६०
योनिमुद्रा	८६०
निरुक्तमुद्राबीजनिरूपणम्	८६१
तर्पणोपदेशः	८६२
षोडशोपचारैः पूजनस्योपदेशः	८६३
षोडशोपचाराः	८६३
कल्पान्तरम्	८६४
दशोपचाराः	८६४
पञ्चोपचाराः	८६४
क्रमेणैतेषामुत्तममध्यमाधमत्वम्	८६४
उपचारेषु कस्यचिदलाभे व्यवस्था	८६४
प्रत्युपचारानन्तरं जलदानम्	८६५
देवीशिरसि पुष्पदानम्	८६५
देव्या ऊर्ध्वे करभ्रामणनिषेधः	८६५
पुष्पाद्यभावे व्यवस्था	८६५
पुष्पाद्युपचाराणां परत्वापरत्वादि	८६६
पुष्पनिवेदनक्रमः	८६६
ज्ञानमुद्रा	८६६
पुष्पादिदाने विशेषः	८६७
तर्पणम्	८६७
देव्या उद्वर्तनाद्यलङ्कारदानान्तं कर्म	८६७
पाद्याद्यर्पणम्	८६७
गन्धाद्यर्पणम्	८६८
नैवेद्यनिवेदनक्रमः	८६८
वलिदाने विशेषः	८६९
व्यजनाद्युपचारैर्देव्याः परितोषविधानम्	८६९
तर्पणम्	८६९
परिवारदेवतार्चोपदेशः	८७०
षण्णामङ्गदेवतानां पूजा	८७०
तासां ध्यानम्	८७०
पूजास्थापनम्	८७०
पुनस्तर्पणं पुष्पाञ्जलिदानञ्च	८७२
परिवारपूजायामादौ बीजयोजनक्रमः	८७२
पादुकामन्त्रः	८७२
न्यासेऽपि पादुकामनोः प्रयोज्यत्वम्	८७३
तर्पणसंख्या	८७३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
होमादौ वाक्यभेदाः	८७३
पोडशतिथिनित्यार्चायां स्वरविन्यासः	८७३
कामेश्वर्यादिपूजनोपदेशः	८७३
कामेश्वर्या ध्यानम्	८७४
भगमालायाः	८७५
नित्यक्लिन्नायाः	८७५
भेरुण्डायाः	८७५
वह्निवासिन्याः	८७६
महानित्येश्वर्याः	८७६
शिवदूती	८७७
त्वरिता-कुलसुन्दर्योः	८७७
नित्यायाः	८७८
नीलपताकायाः	८७९
विजयायाः	८७९
सर्वमङ्गलायाः	८७९
ज्वालांशुमालिन्याः	८८०
विचित्रायाः	८८०
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः	८८१
प्रतिपदादिष्वेकैकनित्यार्चायाः फलम्	८८१
सुन्दर्याः सर्वासु तिथिषु पूज्यत्वम्	८८१
पक्षभेदेनार्चायां क्रमभेदः	८८१
नित्यानां तर्पणद्रव्यम्	८८२
पूजनम्	८८२
देव्यनुज्ञाग्रहणम्	८८२
गुरुपूजनोपदेशः	८८३
कल्पान्तरम्	८८३
प्रयोगक्रमः	८८३
गुरुक्रमनिरूपणप्रतिज्ञा	८८३
सप्त दिव्यौघाः	८८४
सिद्धौघाः पञ्च	८८४
मानवौघाः सप्त	८८५
निगमनम्	८८५
स्वगुर्वादियागः	८८५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गुरुवंशप्रकर्षः	८८६
मन्त्रदातुः प्रकर्षः	८८६
निरुक्तगुरुनामाज्ञाने कर्त्तव्यम्	८८६
निगमनम्	८८६
गुरुपङ्क्तिपूजाप्रशस्तिः	८८६
लोपामुद्राया गुरुक्रमः	८८६
दिव्यौघाः	८८६
सिद्धौघाः मानवौघाश्च	८८७
विद्यान्तराणां गुरुक्रमः	८८८
आम्नायदेवतापूजनोपदेशः	८९०
पूर्वाम्नायार्चा	८९०
दक्षिणाम्नायार्चा	८९०
पश्चिमोत्तराम्नायार्चा	८९१
अध-ऊर्ध्व-आम्नायार्चा	८९१
तर्पणम्	८९१
पञ्चपञ्चिकाः, तत्र पञ्चलक्ष्म्यः	८९१
पञ्च कोशाः	८९२
पञ्च कल्पलताः	८९२
पञ्च कामदुघाः	८९२
पञ्चरत्नाः	८९२
पञ्चपञ्चिकार्चाख्यानम्	८९२
पञ्चपञ्चिकार्चाक्रमः	८९३
निगमनम्	८९३
तर्पणम्	८९३
अणिमादिप्रकटयोगिनीध्यानम्	८९६
अणिमाद्यर्चास्थानम्	८९६
असिताङ्गाद्यष्टभैरवनिरूपणम्	८९७
भैरवाणां ध्यानम्	८९८
अष्टशक्तीनां ध्यानम्, तत्र ब्रह्माण्याः	८९८
माहेश्वर्याः	८९८
कौमार्याः	८९८
वैष्णव्याः	८९९
वाराह्याः	८९९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
इन्द्राण्याः	८९९
चामुण्डायाः	८९९
महालक्ष्म्याः	८९९
निरुक्ताष्टशक्तीनां पूजायां विशेषः	८९९
पूजास्थानम्	९००
मन्त्रे विशेषः	९००
मुद्रार्चा	९०२
निगमनम्	९०२
चक्रार्चा	९०३
त्रिपुरायाः स्वरूपं पूजनञ्च	९०३
अणिमासिद्ध्याद्यर्चा	९०३
बौद्धमन्त्रः	९०४
बुद्धतद्दर्शनयोरर्चा	९०४
देव्यै पूजार्पणम्	९०४
गुप्तयोगिनीनां स्वरूपमर्चाक्रमश्च	९०५
कामाकर्षिण्यादिषोडशगुप्तयोगिन्यः	९०५
तासामर्चास्थानम्	९०५
चक्रपूजा	९०७
चक्रनायिकार्चा	९०७
मुद्रादर्शनम् ब्रह्मणः पूजनञ्च	९०८
पूजामन्त्रः	९०८
दर्शनार्चा	९०८
पूजासमर्पणम्	९०८
गुप्ततरयोगिनीनामर्चा स्वरूपञ्च	९०८
आसां तृतीयावरणवृत्तित्वम्	९०९
चक्रार्चा	९१०
चक्रनायिकार्चा	९११
मुद्राप्रदर्शनम्, शिवार्चा	९११
दर्शनार्चा	९११
पूजासमर्पणम्	९११
सत्सम्प्रदाययोगिनीनामर्चा	९१२
तासां स्वरूपम्	९१२
चतुर्दश सत्सम्प्रदाययोगिन्यः	९१२
एतासां प्रथमावरणवृत्तित्वम्	९१३
अर्चाक्रमश्चक्रपूजनञ्च	९१३
एतच्चक्रनायिकायाः पूजनं स्वरूपञ्च	९१४
मुद्राप्रदर्शनं सूर्यपूजनञ्च	९१४
दर्शनार्चा	९१४
पूजासमर्पणम्	९१५
कुलकौलिकयोगिनीनां स्वरूपं स्थापनञ्च	९१५
पूजापरिपाटी	९१५
दश कुलकौलिकयोगिन्यः	९१६
एतासां पूजनोपदेशः	९१६
चक्रार्चा	९१७
चक्रनायिकार्चा	९१७
मुद्राप्रदर्शनादि	९१७
निगर्भयोगिनीनां स्वरूपं स्थानञ्च	९१८
पूजापरिपाटी	९१८
दश निगर्भयोगिन्यः	९१८
चक्रार्चा चक्रनायिकार्चा	९१९
मुद्राप्रदर्शनादि	९१९
पूजासमर्पणम्	९२०
स्थितिचक्रोपसंहारः संहारचक्रनिरूपणप्रतिज्ञा च	९२०
वशिन्याद्यष्टरहस्ययोगिन्यः	९२०
तासां स्वरूपम्	९२०
पूजाक्रमः	९२०
एतासामष्टारवृत्तित्वम्	९२१
चक्रपूजा	९२२
चक्रनायिकार्चा	९२२
चक्रनायिकायाः स्वरूपम्	९२२
मुद्राप्रदर्शनादि	९२२
पूजासमर्पणम्	९२२
बाणार्चा	९२२
बाणानां स्वरूपम्	९२३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
बाणानां संज्ञाः पूजाक्रमश्च	९२३
अङ्गदेवतार्चा	९२३
बिन्दुचक्रे श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीसपर्या	९२५
बैन्दवचक्रार्चा	९२६
चक्रनायिकार्चा	९२६
मुद्रादर्शनादि	९२६
मूलदेव्यै पूजासमर्पणम्	९२६
पुनः सपर्योपदेशः	९२८
पुनरर्घ्यत्रयदानम्	९२८
विविधोपचारैः पूजनम्	९२८
उपचारदाने पाद्यस्य प्रार्थनामन्त्रः	९२९
अर्घ्यस्य	९२९
आचमनीयस्य	९२९
मधुपर्कस्य	९२९
गन्धस्य	९२९
पुष्पस्य	९२९
षोडशाङ्गधूपप्रमाणम्	९३१
अन्यादृशधूपप्रमाणम्	९३२
अन्यादृशधूपप्रमाणम्	९३२
धूपदानक्रमः	९३३
धूपस्य प्रार्थनामन्त्रः	९३३
दीपस्य	९३३
कल्पान्तरम्	९३३
प्रार्थनामन्त्रान्तरम्	९३३
धूपदाने दिङ्नियमः	९३४
भूम्यादौ धूपस्थापननिषेधः	९३४
दीपदाने दिङ्नियमः	९३४
सप्तविधाः प्रदीपाः	९३४
पञ्चविधा वर्तिकाः	९३४
प्रशस्तानि दीपपात्राणि	९३५
दीपदानक्रमः	९३५
माल्यदाने प्रार्थनामन्त्रः	९३५
मधुरद्रव्यदानन्तर्पणञ्च	९३५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चरुपाकोपदेशः	९३६
चरुपाकक्रमः	९३६
चरोरवतारणम्	९३६
चरुविभागः	९३६
आरात्रिकम्, तत्राष्टदलपद्मनिर्माणम्	९३७
तत्रौदनस्य नवभागकल्पनम्	९३७
अष्टदलेषु शुद्धौदनस्थापनम्	९३७
नवमभागस्य कर्णिकायां स्थापनम्, नवमुद्राप्रदर्शनम्	९३७
पद्मे पूजनम्	९३८
दीपपात्रस्य भ्रामणम्	९३९
आरात्रिकमन्त्रः	९३९
मुद्रादर्शनम्	९३९
चक्रमुद्रा	९३९
नैवेद्यार्पणम्	९४०
नैवेद्यपात्राणि	९४०
अर्घ्येतरपात्रीयतोयैर्नैवेद्योत्सर्गनिषेधः	९४०
नैवेद्यम्	९४०
तत्स्थापनार्हं मण्डलम्, तत्राऽऽधारशक्त्यर्चनञ्च	९४१
नैवेद्यस्थापनं प्रोक्षणादि संस्काराश्च	९४२
नैवेद्यार्चना	९४२
निवेदनप्रकारः	९४३
नैवेद्यालाभे व्यवस्था	९४३
देव्यै चुल्लुकदानं मुद्राप्रदर्शनोपदेशश्च	९४३
प्राणादिपञ्चमुद्रामन्त्राः	९४३
तत्र प्राणमुद्रा	९४३
अपानमुद्रा	९४४
व्यानमुद्रा	९४४
उदानमुद्रा	९४४
समानमुद्रा	९४४
ग्रासमुद्रा	९४४
पानीयदानम्	९४५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पुनर्गण्डूषदानं ताम्बूलदानञ्च	९४५
ताम्बूलदाने मन्त्रः	९४६
माल्यादिदानम्	९४७
नृत्यगीतादि	९४७
पुष्पाञ्जलिदानं तर्पणञ्च	९४७
सपर्यात्रैविध्यम्	९४७
परादीनां लक्षणम्	९४७
पुनः प्राणायामः कामकलास्मरणञ्च	९४९
आत्मनः कामकलाभेदचिन्ता	९५०
श्रीगुरुपादुकाध्यानम्	९५०
सैव कुलकुण्डलिनीशक्तिः	९५०
प्राणस्य स्वरूपम्	९५१
शक्तेश्चेष्टाविशेषः	९५१
शक्तौ मनोलयनम्	९५१
मन्त्रशिखोत्पत्तिः	९५१
शिखाहीनमन्त्रस्य निष्फलत्वम्	९५१
शिखाया गुप्तत्वम्	९५२
तद्वैपरीत्ये सिद्ध्यभावः	९५२
स्वापकाले मन्त्रजपस्याऽऽनर्थक्यम्	९५२
स्वापस्य जागरस्य च लक्षणम्	९५२
मन्त्रविशेषे स्वापजागरयोर्विशेषः	९५२
प्रबोधकालः	९५२
शिवशक्तिसङ्गमकालः	९५२
त्रिपुरागायत्रीप्रशंसायां हरिहरसंवादः	९५३
गायत्रीकथनम्	९५४
गायत्रीजपानन्तरमन्यजपस्याधिकारिता	९५४
त्रिपुरागायत्रीजपफलानि	९५५
गायत्रीजपस्य नियमः	९५५
निगदादिना जपस्तेषां लक्षणानि च	९५६
जपानामधममध्यमोत्तमत्वनिरूपणम्	९५७
जपकाले अतिह्रस्वातिदीर्घोच्चारणयोर्निषेधः	९५८
जपरीतिः	९५८
दशाविशेषे स्तवजपयोर्निष्फलता	९५८
जपे अङ्गुलिनियमः	९५८
जपे अङ्गुलिवियोगनिषेधः	९६१
अङ्गुल्यग्रे जपस्य निष्फलत्वम्	९६१
जपारम्भे विसर्गे च प्राणायामः	९६२
जपसमर्पणम्	९६३
समर्पणमन्त्रः	९६३
देव्यै रुधिरदानम्	९६४
स्तवपाठानन्तरं प्रदक्षिणस्य कर्त्तव्यता	९६४
अष्टाङ्गप्रणामस्य कर्तव्यता	९६४
अष्टाङ्गप्रणामलक्षणम्	९६५
प्रकारान्तरेणाष्टाङ्गप्रणामः	९६६
पुनर्दण्डवत् प्रणामः	९६६
देवाग्रे भ्रमणनिषेधः	९६६
अकृताञ्जलेः प्रणामनिषेधः	९६६
प्रणामे मूर्ध्ना भूमिस्पर्शस्य कर्त्तव्यता	९६६
दण्डवत्प्रणामफलम्	९६७
पुनर्दर्पणादिदानम्	९६७
पुनर्मुद्राप्रदर्शनम्	९६८
नित्यहोमः	९६८
स्थण्डिलप्रमाणम्	९६८
मण्डलकरणम्	९६८
मण्डलषट्कोणे षडङ्गपूजा मध्ये देवीपूजा च	९६८
क्रव्यादांशत्यागो वह्निस्थापनञ्च	९७३
वह्निदेवतयोरैक्यं विभाव्य इष्टपूजा	९७३
घृतशोधनम्	९७३
देव्या व्याहृतिहोमः	९७४
जपदशांशहोमः	९७४
प्राणाहुत्यादिदानम्	९७४
आवरणदेवताहोमः	९७४
मूलेन षडाहुतिहोमः	९७४
आहुतित्रयम्	९७४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
देव्या विसर्जनम् ९७४
होमदशांशेन तर्पणम् ९७४
दुग्धेन तर्पणोपदेशः मद्येन तर्पणनिषेधश्च ९७४
मद्यस्य त्रैविध्यम् ९७५
ब्राह्मणादीनां तर्पणद्रव्याणि ९७५
देव्यै मद्यदाननिषेधः ९७५
ब्राह्मणस्य वामाचारिणोऽपि मद्यदाननिषेधः ९७५
मद्येऽनुकल्पः ९७६
बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रमतेन निरुक्त-तर्पणप्रकारः ९७६
ज्ञानार्णवमतोल्लेखः ९७७
आत्मनः कामकलारुपचिन्तनम् ९७७
ग्रहादीनां पूजा ९८२
कलादीनां डाकिन्यादीनां च पूजा ९८२
पूजास्थानं फलञ्च ९८३
अङ्गवलिदानम् ९८३
वलिदानमन्त्रः ९८३
प्रसादस्वीकरणम् ९८३
आत्मसमर्पणम् ९८३
विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
ईदृशी पूजा पुरश्चरणेऽपि ९८३
पराङ्मुखार्घ्यदानम् ९८३
देव्यङ्गे सर्वदेवताविलयनम् ९८३
आत्मनः पुनः कामकलारूपचिन्तनम् ९८४
विसर्जनम् ९८४
देव्यङ्गे षडङ्गन्यासः ९८४
यन्त्रस्थपुष्पाघ्राणम् ९८४
विसर्जनमन्त्रः ९८४
विसर्जनानन्तरकृत्योपदेशः ९८४
शेषिकासुन्दरीपूजनमन्त्रः ९८५
कामकलाध्यानम् ९८५
प्राणायामः षडङ्गन्यासश्च ९८५
श्रीपादुकापूजा ९८५
मानसकर्मयोगः ९८५
कर्मयोगाभ्यासे सिद्धिः ९८६
निर्माल्यादीनां धारणाद्युपदेशः ९८७
गुरुप्रणामः ९८७
शङ्खजलप्रशंसा ९८७
श्रीचक्रपादोदकप्रशंसा ९८८
भङ्ग्या स्वोक्तौ प्रामाण्योपन्यासः ९८८

एकोनविंशः प्रकाशः

त्रिपुरार्णवोक्तं त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम् ९८९
शङ्कराचार्योक्तं स्तोत्रम् ९९३
त्रिपुरार्णवोक्तं त्रिपुरसुन्दरीकवचम् १०१०
षोडशी-कवच पूर्वपीठिका १०१६
त्रिपुरासुन्दरीशतनामस्तोत्रम् १०२०

विंशतितमः प्रकाशः

मन्त्राणां पुरश्चरणकथनम् १०२४
पुरश्चरणं विना मन्त्रसिद्ध्यभावः १०२४
पुरश्चरणस्य कर्त्तव्यता १०२४
पुरश्चरणेतिकर्त्तव्यता १०२५
पुरश्चरणस्थानानि १०२५
पुरश्चरणे भोजननियमाः १०२६
पुरश्चरणे वर्ज्याणि १०२७
मन्त्रजपानन्तरकर्त्तव्यानि १०२७
गुरुवन्दनम् १०२७
नित्यनैमित्तिकादिकर्त्तव्यता १०२७
स्नान-तर्पणोपदेशः १०२७
त्याज्यानि १०२८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अन्यतो वस्तुग्रहणनिषेधः	१०२८
दशाविशेषे जपनिषेधः	१०२८
जपे विशेषोपदेशः	१०२९
जपे दिनलङ्घननिषेधः	१०२९
जपे कालकथनम्	१०३०
जपे वस्त्रनियमः	१०३०
जपतो जपत्यागकारणानि	१०३०
पुनर्जपे कर्त्तव्यानि शौचादीनि	१०३०
प्रात्यहिकजपकरणम्	१०३०
पुरश्चरणे शय्यानियमः	१०३०
देवीपूजाधारकथनम्	१०३०
खड्गादीनां विशेषः	१०३१
देशविशेषे देवीपूजाफलम्	१०३१
पुरश्चरणविधिः	१०३२
भूमिसंस्कारे कीलकस्थापनम्	१०३२
कीलेषु दिक्पतिपूजनम्	१०३३
दिक्पतिभ्यो बलिदानं वास्तुदेवतापूजनञ्च	१०३३
क्षेत्रपालादीनां पूजा	१०३३
कूर्मचक्रलिखनम्	१०३४
एवं पूर्वदिने भूमेः संस्कारः	१०३६
आरम्भदिने प्रातःकृत्यादि	१०३६
जपे उपवेशनादिप्रकारः	१०३६
प्रतिदिनजपसंख्या	१०३६
शिवप्रतिमादि सन्निधौ जपोपदेशः	१०३६
प्रातरारभ्य मध्याह्नपर्यन्तं जपः कर्त्तव्यः	१०३६
जपे आसननिर्णयः	१०३७
यतिब्रह्मचारिणोर्विशंषः	१०३८
आसनपरिमाणम्	१०३८
भूम्याद्यासनानां फलवैशिष्ट्यम्	१०३८
अभिचारादिकर्मस्वासनविशेषः	१०३९
मालानिरूपणम्	१०३९
सबिन्दुवर्णोच्चारणानन्तरं मन्त्रजपनिरूपणम्	१०३९
मालामेरुनिरूपणम्	१०३९
मालाविशेष-फल-निरूपणम्	१०३९
मालायां संख्यानिरूपणम्	१०४०
काश्यां सिद्धिदोषकथनम्	१०४०
सूत्रवर्णकथनम्	१०४०
सूत्र-सम्पातनम्	१०४०
सूत्र-तन्तु-विशेषेण मालाविशेषग्रन्थनम्	१०४१
कल्पोक्तसंख्यया जपकथनम्	१०४१
होमसंख्यानियमः	१०४१
प्रकारान्तरम्	१०४१
तर्पणकथनम्	१०४२
तर्पणे वस्तुनियमः	१०४२
अभिषेकनिरूपणम्	१०४२
ब्राह्मणभोजननिरूपणम्	१०४३
प्रकारान्तरेणाङ्गनिरूपणम्	१०४३
होमाद्यशक्तौ तत्तत्संख्याद्विगुणादिजपः	१०४३
मन्त्रदुष्टत्वकथनम्	१०४३
उत्तमभोजनदाने सर्वस्य सफलता	१०४३
गुरवे दक्षिणादानम्	१०४४
ज्ञाति-द्विजपूजा	१०४४
कृतसङ्कल्पस्य पुरश्चरणस्यात्याज्यता	१०४४
अकृतसङ्कल्पिनः कृत्यम्	१०४४
मानसजपे दोषाभावः	१०४४
जपस्य श्रेष्ठत्वम्	१०४४
पुरश्चरणान्मन्त्रासिद्धौ उपायान्तरकथनम्	१०४५
द्रावणादीनामुद्देशः	१०४५
द्रावणकथनम्	१०४५
रोधनकथनम्	१०४५
वश्यकथनम्	१०४६
पीडनकथनम्	१०४६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पोषणकथनम्	१०४६
शोपणकथनम्	१०४६
दहनकथनम्	१०४७
पुरश्चरणानन्तरं गुरुपूजा मन्त्रादीनां गोपनञ्च	१०४८
मन्त्रदेवतागुरुषु भक्तिः कर्तव्या	१०४८
मन्त्रदेवतयोरैक्यम्	१०४८
मन्त्रसिद्धौ सर्वसिद्धिः	१०४९
एकद्व्यादिलक्षसंख्याभेदेन फलभेदः	१०४९
नवलक्षजपे स्थानभेदः	१०५०
नवचक्रभेदेन नवलक्षजपे सिद्धिः	१०५३
प्रकारान्तरेण जपसिद्धिः	१०५३
मालासंस्कारकथनम्	१०५४
अप्रतिष्ठितमालया मन्त्रजपनिन्दा	१०५४
मालासूत्रनिर्माणम्	१०५४
मालायां ग्रन्थिकरणम्	१०५४
ग्रन्थिहीने दोपाभावो देवीविशेषे	१०५४
मालाशोधने क्रियाविशेषः	१०५५
मालायां गन्धादिदानम्	१०५५
शक्तिविषये मन्त्राभावमतनिरासः	१०५६
मालास्थापनम्	१०५६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मालायाः स्वयं संस्कारकालः	१०५७
प्रत्यहं पूजान्ते मालाजपः	१०५७
मालापूजायां मन्त्रविशेषः	१०५८
मालाप्रार्थनामन्त्रः	१०५८
मालाऽभिमन्त्रणम्	१०५८
मालाजपे अङ्गुलिनियमः	१०५८
जपान्ते मालास्थापनम्	१०५९
मालायाः संगोपनम्	१०५९
संख्यां विना जपनिषेधः	१०५९
मालायाः पुनः सूत्रग्रन्थनकालः	१०६०
मालायाः करभ्रंशादिदोषे कर्त्तव्योपदेशः	१०६०
प्रकारान्तरेण मन्त्रसिद्धिकथनम्	१०६०
शिष्यमन्त्रयोरैक्यकथनम्	१०६०
तत्र नियमविशेषः	१०६१
देशिकस्यैतज्ज्ञानाभावे निन्दा	१०६१
यत्र कुत्र रहस्यं न वक्तव्यम्	१०६२
त्रिमधुरसंज्ञा	१०६२
रहस्यपुरश्चरणादिकं श्यामारहस्यतो ज्ञातव्यम्	१०६२
बलिदानकथनम्	१०६३

एकविंशतितमः प्रकाशः

ब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तकथनम्	१०६५
तत्र क्रमः	१०६५
जवापुष्पेन पूजाप्रशंसा	१०६६
सुगन्धिकुसुमैः पूजाफलम्	१०६६
शम्यादिभिः पूजाफलम्	१०६६
केतकीपत्रैः पूजाफलम्	१०६६
शतपत्रैः पूजाफलम्	१०६६
श्वेतपद्मैः पूजाफलम्	१०६६
बन्धूककुसुमैः पूजाफलम्	१०६७
बिल्वपत्रैः पद्मैश्च पूजाफलम्	१०६७
मल्लिकादिपुष्पैः पूजाफलम्	१०६७
अगस्त्यादिपुष्पः पूजनफलम्	१०६७
चम्पकादिपुष्पैः पूजनफलम्	१०६८
रत्नपूजाविधानकथनम्	१०६८
प्रबालपुष्पैः स्वर्णपुष्पैश्च पूजाफलम्	१०६९
मरकतपुष्पैः पूजाफलम्	१०६९
पद्मरागपुष्पैः पूजाफलम्	१०६९
हीरकयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्	१०६९
नीलकान्तमणियुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्	१०७०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गोमेदयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्	१०७०
नूतनस्वर्णरत्नमयपुष्पैः पूजाफलम्	१०७०
वैदूर्ययुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्	१०७०
नानारत्नयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्	१०७०
स्वल्पस्वर्णरत्नादियुक्तपुष्पैः पूजाफलम्	१०७१
पर्युषितादिपूष्पैः पूजननिषेधः	१०७१
अपामार्गादिदलैः पूजनफलम्	१०७१
शाक्तपुष्पकथनम्	१०७१
मल्लिकातगरादिभिः पूजा कर्त्तव्या	१०७२
कलिकाभिः पूजानिषेधः	१०७२
जलजचम्पकयोः पर्युषितदोषाभावः	१०७२
यन्त्रपुष्पकथनम्	१०७२
पुष्पविशेषे केचन विधिनिषेधाः	१०७३
विल्वपत्रस्य प्राशस्त्यम्	१०७३
अङ्गरङ्गेषु सिन्दूरस्य प्रशस्तता	१०७३
मुखवासेषु ताम्बूलस्य प्रशस्तता	१०७३
वारविशेषे पुष्पविशेषप्राशस्त्यम्	१०७४
वारविशेषे निवेदनीयद्रव्याणि	१०७४
वर्षमात्रदेवीपूजनफलम्	१०७४
पर्वताग्रे देवीपूजनफलम्	१०७४
अरण्यादिषु पूजाफलम्	१०७५
समुद्रतीरे पूजाफलम्	१०७५
अक्षद्रुमपीठोपरि देवीपूजाफलम्	१०७५
श्मशाने पूजनफलम्	१०७५
वेतालसिद्ध्युपायः	१०७५
मध्यरात्रे स्थानविशेषे देवीपूजाफलम्	१०७६
तिरोधानसिद्ध्युपायः	१०७६
मायासिद्ध्युपायः	१०७६
कामरूपसिद्ध्युपायः	१०७६
त्रिकालज्ञत्वसिद्ध्युपायः	१०७७
पूगोद्याने देवीपूजाफलम्	१०७७
पूर्णासु कन्यकायां देवीपूजाफलम्	१०७७
मदनारोपणकथनम्	१०७७
मदनपूजनस्य कर्तव्यत्वम्	१०७८
मदनारोपणकालः क्रमस्तत्र मदनाधिवासश्च	१०८०
मदनपूजाप्रकरणम्	१०८१
कामस्य ध्यानम्	१०८१
काममन्त्रः	१०८१
रतिमन्त्रः	१०८२
प्रीतिमन्त्रः	१०८२
रतिप्रीत्योर्ध्यानम्	१०८२
वसन्तपूजनम्	१०८३
मदनपूजानन्तरं देवीपूजा ततः कुमारीपूजा च	१०८३
सुवासिनी पूजा योनिपूजा च	१०८३
महादेवीपूजा पूर्णहोमः गुरुदक्षिणादानञ्च	१०८४
मदनारोपणफलम्	१०८४
वैशाखपूर्णिमायां विशेषपूजा	१०८४
ज्येष्ठपूर्णिमायां विशेषपूजा	१०८४
पवित्रारोपणकथनम्	१०८४
पवित्रपूजायाः कर्तव्यता	१०८४
पवित्रारोपणकालः	१०८५
आषाढपौर्णमास्यां विशेष.	१०८५
नवतन्तुनिर्माणम्	१०८५
नवतन्तुषु देवपूजा	१०८५
पवित्रवृन्दस्थापनम्	१०८६
पूर्वदिने घटस्थापनम्	१०८६
पवित्रे सूत्रसंख्या	१०८७
संख्यातारतम्येनोत्तममध्यमाधमत्वकथनम्	१०८७
अधिवासे पूजादि	१०८७
पवित्रार्पणम्	१०८७
गुरोः सन्तोषोत्पादः	१०८८
कुमार्यादीनां पूजनम्	१०८८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
श्रावणपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०८८
भाद्रपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०८८
आश्विनपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०८९
कार्तिकपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०८९
मार्गशीर्षपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०९०
पौषपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०९०
माघपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०९०
फाल्गुनपूर्णिमायां कर्तव्यम्	१०९०
चैत्रादिपूर्णिमासु कर्तव्यतोपदेशः	१०९०
द्वादशमासीयकृत्यानामवश्यकर्तव्यता	१०९१

द्वाविंशतितमः प्रकाशः

ज्ञानदूतीकथनम्	१०९२
अद्भुतत्रिकूटसाधनप्रकार-कथनम्	११००
वाग्भवकूटसाधनम्	११०१
वागीशीध्यानम्	११०१
देव्या विशेषचिन्ता	११०१
अस्य लक्षवारजपफलम्	११०३
बालकजिह्वायां मन्त्रलेखनम्	११०३
बालकस्य मूर्ध्नि जपफलम्	११०३
चुलुकपानं तस्य फलञ्च	११०४
प्रातःकाले पानफलम्	११०४
कामकूटसाधनप्रकारः	११०४
कामकलाचिन्ता	११०४
कामकूटप्रयोगकथनम्	११०५
शक्तिकूटसाधनम्	११०७
कुलशक्तिचिन्ता	११०७
त्रिकूटसम्पन्न-महात्रिपुरसुन्दरी-चिन्ताफलम्	११०८

त्रयोविंशतितमः प्रकाशः

त्रिपुरसुन्दरीविद्याया जीवनप्राप्त्युपाय-कथनम्	११०९
विद्यायाः स्वरूपविशेषकथनम्	११०९
विद्यायाः स्वरूपान्तरम्	११०९
दीपनीविद्याकथनम्	१११०
प्रतिमायां पूजाविशेषकथनम्	१११०
देव्या दक्षिणपार्श्वे जीवनीजपप्रकारः	११११
प्रेतासने जपफलम्	१११२
महाध्यानकथनम्	१११२
परमेश्वरीपूजानन्तरं चक्रे पूजनम्	१११३
बलिदानम्	१११३
आकर्षणबीजकथनम्	१११३
त्रिकोणचक्रमध्ये देवकन्यादिलिखनम्	१११३
चामुण्डाध्यानकथनम्	१११३
वक्तव्य परमदुर्लभविद्या-प्रशंसा	१११५
प्राणमन्त्रकथनम्	१११५
महायन्त्रधारणकथनम्	१११६
मन्त्रलिखनद्रव्योद्देशः	१११६
लिखनप्रकारः	१११६
यन्त्रशोधनप्रकारः	१११६
धारणप्रकारः	१११८
मन्त्रदाने पात्रापात्रोल्लेखः	१११८
अपात्रे मन्त्रदानफलम्	१११८
गोरोचनादिना चक्रलिखनफलम्	१११८
चिन्ताविशेषे फलविशेषः	१११९
चक्रे नामलिखने फलविशेषः	१११९
चक्रे महाकलाध्यानफलम्	११२०
वशीकारितिलककथनम्	११२०
वशीकरणार्थं ताम्बूलाद्यभिमन्त्रणम्	११२१
योषिदाकर्षणप्रकारः	११२१
अवध्यत्वोपायकथनम्	११२२
राजवल्लभतोपायः	११२२

विषयाः पृष्ठाङ्काः
वशीकरणप्रकारः ११२३
त्रैलोक्यवशीकरणोपायः ११२३
महाक्षोभकरणम् ११२३
कामतुल्यत्वप्राप्त्युपायः ११२४
दृष्टिमात्रेण विषादिनाशक्षमताप्राप्तिः ११२४
श्रीसमाकर्षणसामर्थ्यप्राप्तिः ११२५
दिग्विदिक्स्थजनवशीकारः ११२५
त्रैलोक्यवशीकरणम् ११२५
कण्ठादौ धारणे फलविशेषः ११२५
अर्कक्षीरादिभिश्चक्रलिखनफलम् ११२६
नित्यं चक्रधारणफलम् ११२६
सर्ववादिस्तम्भनम् ११२६
शत्रुमारणप्रकारः ११२७
विद्वेषणकरणम् ११२७
उच्चाटनकरणम् ११२७
सर्ववशीकरणम् ११२७
प्रकारान्तरेण सर्ववशीकरणम् ११२८
क्षोभणप्रकारः ११२८

विषयाः पृष्ठाङ्काः
स्त्रीवशीकरणप्रकारः ११२८
स्त्रीवशीकरणे प्रकारान्तरम् ११२९
प्रकारान्तरेण स्त्रीवशीकरणम् ११२९
दासीकरणप्रकारः ११२९
स्त्रीवशीकारे कल्पान्तरम् ११२९
सर्ववादिस्तम्भनम् ११३०
प्रकारान्तरेण सर्वलोकवशीकरण् ११३०
सर्वयोषिन्मनोहरणम् ११३०
महाहानिकरणम् ११३०
स्तम्भनविद्वेषणादिप्रकारः ११३१
सर्ववशीकरणम् ११३१
शत्रोरुच्चाटनकरणम् ११३१
विद्वेषणकरणम् ११३१
शत्रुनाशकरणम् ११३१
खेचरत्वसिद्धिः ११३१
अजरामरत्वप्राप्तिः ११३२
खड्गादि सर्वसिद्धिलाभः ११३२
सर्वपापनाशप्रकारः ११३३

चतुर्विंशतितमः प्रकाशः

देवतास्तवपाठनिर्णयः ११३४
पाठस्यावश्यकता ११३४
पाठनियमः ११३४
पुस्तकस्याधारस्थापननियमः ११३४
हस्ते पुस्तकस्थापने दोषः ११३४
पुस्तकलेखकनिर्णयः ११३४
कलौ साधारणमनुष्यादिकृतस्तवपाठ-निषेधः ११३५
ऋषिच्छन्दआदीनां पाठः कर्त्तव्यः ११३५
प्रथमं सहस्रनामपाठः ११३५
अध्यायमध्ये पाठविरामो न कर्त्तव्यः ११३५
बलिदानविधिकथनम् ११३६
छागलस्य षड्विधत्वकथनम् ११३६

बलीनामुत्तममध्यमाधमत्वकथनम् ११३६
त्याज्यबलिः ११३६
खञ्जादीनां बलौ त्याज्यता ११३७
महिषबलिः ११३७
बलिषु पक्षिणां प्रशस्तता ११३७
बलिविशेषेण देवतातृप्तिकालकथनम् ११३७
स्त्रीपशुबलिदाननिषेधः ११३८
होमे मांसनिरूपणम् ११३८
मांसहोमे कालनियमः ११३८
बल्युत्सर्गप्रकारः ११३९
पशुस्नापनमन्त्रः ११३९
बलिप्रणाममन्त्रः ११४०
बलिमूर्ध्नि मन्त्रजपः ११४०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
खड्गध्यानम्	११४०
खड्गपूजामन्त्रः	११४०
खड्गनमस्कारमन्त्रः	११४१
बलिस्कन्धे खड्गनियोजनमन्त्रः	११४१
खड्गलक्षणकथनम्	११४१
चन्द्रहासलक्षणकथनम्	११४१
खड्गम करवीरफलाकारादिकंथनम्	११४२
बलिच्छेदने दात्रादीनां विधिः	११४२
छुरिकादिना छेदननिषेधः	११४२
तीक्ष्णखड्गेन छेदनकथनम्	११४२
छागादिपशूनां पूर्वाभिमुखेन च्छेदनम्	११४२
बलिच्छेदककथनम्	११४२
रिपुप्रभृत्यनुपयुक्तानां कथनम्	११४३
दिग्विशेषे बलेर्मस्तकपतने फलविशेषः	११४३
बलिचक्षुषि अश्रुदर्शनफलम्	११४४
दन्तानां कटकटाशब्दश्रवणफलम्	११४४
बलिशिरःख्यापनम्	११४४
रक्तपात्रस्थापनम्	११४४
बलिमस्तकोपरि दीपदानम्	११४५
वर्त्तिकाप्रमाणम्	११४५
ग्राहादीनां शिरसि दीपदाननिषेधः	११४५
दीपस्य दीर्घकालज्वलनफलम्	११४६

पञ्चविंशतितमः प्रकाशः

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-सहस्रनामस्तोत्रम्	११४७

षड्विंशतितमः प्रकाशः

महायन्त्रसंस्कारकथनम्	११८७
यन्त्रगायत्री	११८६
इष्टदेवतापूजनोपदेशः	११८६
उपचारमुद्रोपदेशः	११८८
गन्धादिमुद्राणां प्रकारभेदः	११९०
मुद्रामाहात्म्यम्	११९१
देवतायाः प्रतिष्ठाविधिः	११९१
होमोपदेशः	११९३
प्रतिष्ठाफलकीर्त्तनम्	११९४
मठोत्सर्गविधिः	११९५
मठदानफलम्	११९६
साधनोपदेशः	११९६
साधने फलविशेषोपदेशः	११९७
होमप्रशंसा	११९७
होमाकरणनिन्दा	११९८
अग्निहोत्रप्रशंसा	११९८
चक्रप्रशंसा	११९९
वित्तशाठ्यनिषेधः	११९९
गुरुदेववञ्चननिषेधः	११९९
वह्नौ होमस्य गुखे दानस्य च प्रशंसा	१२००

●

परमहंसपूर्णानन्दप्रणीतः

श्रीतत्त्वचिन्तामणिः

संस्कृतटीकासहित'भावना'भाषाभाष्यसंवलितः

(द्वितीयः खण्डः • १४-२६ प्रकाशः)

चतुर्दशः प्रकाशः

[प्रातःकृत्यम्, तत्र श्रीगुरुमन्त्र-नवकुलनाथ-
गुरुमण्डलादिनिरूपणम्]

[श्रीमत्त्रिपुरासपर्यावतारः]

नित्यानन्दमहोदयां स्मितमुखीमालोलनेत्रत्रया-
मुद्यत्सूर्यजवाङ्गरागरुचिरां भक्तैककल्पद्रुमम्।
नत्वा तां त्रिपुरां परां परशिवक्रोडे समुल्लासितां
पूर्णानन्द-यतिस्तनोति विमलं तत्पादपद्मार्चनम्।।१।।

एवं पूर्वप्रकाशान्तेन ग्रन्थेन श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीविद्यानिरूपणान्तमभिधाय प्रकाशेऽस्मिन् प्रातःकृत्यादिकमभिधास्यन् प्रथमं देवीनमस्कारपुरःसरं सपर्यानिरूपणमवतारयति—**नित्यानन्देत्यादिना।**

भगवती त्रिपुरा की देह-कान्ति उदित हो रहे सूर्य और सद्यः खिले हुए जवा-कुसुम के समान अरुण वर्ण की है। वे त्रिनयना हैं। नित्य आनन्दमयी हैं।। उनके अधरों पर मुस्कान खेल रही है। भक्तों की कामनाओं को पूरा करने में वे कल्पवृक्ष के समान हैं। परमशिव की गोद में प्रमुदित मन से बैठी हुई भगवती परा को प्रणाम करके पूर्णानन्द यति उनके चरण-कमलों के विमल अर्चन-विधान का विस्तार से निरूपण कर रहा है।।१।।

[प्रातःकृत्यम्, तत्र सहस्रारे श्रीगुरोर्ध्यानम्]

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं
वराभयकराम्बुजं निजकुलेन संश्लेषितम्।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं
स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्।।२।।

श्रीगुरुध्यानस्वरूपमाह—**सहस्रेति।** अस्य व्याख्यानन्तु **'दशशतदलपद्म'** इत्यादि-ग्रन्थादिमश्लोकव्याख्यानदृष्ट्याऽवगन्तव्यम्। **निजकुलेन** स्वशक्त्या।

गुरुदेव का यह प्रातःकालीन ध्यान है। गुरुदेव के इस ध्यान की व्याख्या प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में की जा चुकी है। गुरुदेव का ब्रह्मरन्ध्र-स्थित सहस्रदल में इस प्रकार ध्यान करें।।२।।

[गुरु-शक्त्योः पूजनं तन्मन्त्रजपश्च]

प्रातर्यथाक्रमवशाद् गुरुदेवशक्ती
पद्मासनः शिवशिवामभिरूपतश्च।
नानाविधोपकरणादिभिरेव मन्त्री
सम्पूज्य तन्मनुवरं मनसा जपेत् त्रिः।।३।।

प्रातरिति। प्रातरिति पदं पूर्वश्लोकेऽपि योजनीयम्, 'प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्' इत्यादिदर्शनात्। **गुरुदेवशक्तीति।** गुरुदेवश्च शक्तिश्च, अभिरूपतः अभिरूपे शिवशिवात्मिके गुरुदेवशक्ती नानाविधोपकरणादिभिर्मानसैरिति शेषः, सम्पूज्येति सम्वन्धः।

गुरुदेव और उनकी शक्ति का शिव और शिवा के रूप में ध्यान करके नानाविध उपचारों से मानसिक अर्चन करके गुरु-मन्त्र का तीन बार जप करें। गुरु-मन्त्र का उद्धार आगे किया गया है।।३।।

[श्रीगुरुमन्त्रः]

हसौः पदं समालिख्य ह-स-क्ष-म-ल-वानिलान्।
वह्नियुक्तांस्त्रिधा जप्त्वा पूर्वदीर्घत्रयान्वितान्।।४।।
बिन्दुनादकलायुक्ताञ् श्रीपरान्ते च पारकम्।
सर्वाराध्यपदं पश्चात् सर्वमूर्द्धपदं ततः।।५।।
नाथसर्वगुरुप्रान्ते गुरुः स्वयं ततो गुरुः।
श्रीगुरुनाथशब्दान्ते स-ह-क्ष-म-ल-वानिलान्।।६।।
रेफदीर्घश्रुतियुतान् बिन्दुनादकलान्वितान्।
पिण्डीकृतं लिखेदाद्यं चतुर्थञ्च ततो लिखेत्।।७।।
तृतीयञ्च द्वितीयञ्च पूर्ववद् विलिखेत्ततः।
मन्त्री श्रीशम्भुगुर्वन्ते पुनराद्यं समालिखेत्।।८।।
आद्यकूटचतुर्थञ्च पुनराद्यं तृतीयकम्।
चत्वारिंशन्नागवर्णैर्मण्डितोऽयं गुरोर्मनुः।।९।।

पूर्ववचने तन्मनुवरं मनसा जपेदित्युक्तम्, तमेव मनुमाह—हसौरित्यादिना **गुरोर्मनुरित्यन्तेन।** प्रथमं हसौरिति पदं लिखेत् ततश्च ह स क्ष म ल वानिलानिति। अनिलो वायुबीजं यकारः। अनेन ह स क्ष म ल व य इति प्राप्तम्। **वह्नियुक्तानिति।** वह्नी रकारस्तद्युक्तान् एतेन ह स क्ष म ल व य र इति प्राप्तम्। ततश्च पूर्वदीर्घत्रयान्वितान् पूर्वदीर्घत्रयेण द्वितीयचतुर्थषष्ठस्वरैः अन्वितान् अनु पश्चादन्त्यावच्छेदे इतान् युक्तान्। एतेन रकार एव दीर्घस्वरयोग उक्तः। तथा बिन्दुनादकलायुक्तान् तान्

हकारादिरकारान्तवर्णान् त्रिधा कृत्वा निरुक्तदीर्घस्वरत्रयभेदेन क्रमशो विभज्येत्यर्थः। एवञ्च ह्सौः ह स क्ष म ल व य रां, ह स क्ष म ल व य रीं, ह स क्ष म ल व य रूं इत्यन्तं प्राप्तम्। **श्रीपरान्त इति**। श्रीपरान्ते श्रीपरेत्यनन्तरं पारकं पर एव पारकम्। अत्र पर इति वक्तव्ये छन्दोऽनुरोधात् स्वार्थेऽण्-क-प्रत्ययौ। अनेन श्रीपरापर इति प्राप्तम्। ततः सर्वाराध्येति, ततश्च सर्वमूर्द्धनाथेति ततश्च सर्वगुर्वित्यनन्तरं गुरुस्वयंगुरुश्रीगुरुनाथेति वदेदित्यर्थः। **स ह क्षेति**। रेफो रकारः दीर्घश्रुतिः दीर्घाणां तृतीयवर्ण उकारः, रेफेण सहिता दीर्घश्रुतिस्तद्युतान् इत्यर्थः। तथा बिन्दुनादकलान्वितान् एतेन रूं इति प्राप्तं समष्ट्या तु स ह क्ष म ल व य रूं इति लब्धम्। पिण्डीकृतमिति समष्टिरूपमाद्यं लिखेत्। एतेन ह्सौः इति प्राप्तम्। ततश्चतुर्थं ह स क्ष म ल व य रूं इति। तृतीयं ह स क्ष म ल व य रीं इति। द्वितीयं ह स क्ष म ल व य रां इति पूर्ववल्लिखेत्। ततः श्रीशम्भुगुर्वन्ते श्रीशम्भुगुर्वित्यन्तरं पुनराद्यं हसौः इति समालिखेदित्यर्थः। पाठोऽयं प्रामादिक इति प्रतिभाति। **आद्येति**। आद्यकूटं हसौरिति तस्य चतुर्थं ह स क्ष म ल व य रूं। पुनराद्यं ह्सौरिति लिखेत्। तृतीयकमिति आद्यकूटमपेक्ष्य। ततश्च ह स क्ष म ल व य रीं इति लिखेदिति श्रीगुरुमन्त्रः। मन्त्रोऽयं समाहारेण प्रदर्श्यते। ह्सौः ह स क्ष म ल व य रां ह स क्ष म ल व य रीं ह स क्ष म ल व य रूं श्रीपरापरसर्वाराध्यसर्वमूर्द्धनाथ-सर्वगुरु-गुरु-स्वयंगुरु-श्रीगुरुनाथ स ह क्ष म ल व य रूं ह्सौः ह स क्ष म ल व य रूं ह स क्ष म ल व य रीं ह स क्ष म ल व य रां श्रीशम्भु (मद्) गुरु ह्सौः ह स क्ष म ल व य रूं ह्सौः ह स क्ष म ल व य रीं इति श्रीगुरुमन्त्रः। कौलावलीनिर्णये प्रथमोल्लासेऽप्येवमेव प्रमाणं दृश्यते। वर्णसंख्यानिरूपणपूर्वकं मन्त्रं निगमयति। **चत्वारिंशदिति**। हसक्षेत्यादिनवकूटानि तत्तत्कूटत्वेन एकैकाक्षराणीति नवाक्षरलाभः। हसौरित्यादयोऽपरे ऊनचत्वारिंशद्वर्णा इति मिलित्वाऽष्टचत्वारिंशद्वर्णात्मकोऽयं गुरुमन्त्र इत्यर्थः।

'ह्सौः' के बाद 'हसक्षमल' लिखने के बाद क्रम से 'व'कार, अनिल ('य'कार) वह्नि ('र'कार) लिखे। इनके संयोजन से रूप बना—हसक्षमलवयर। इस रूप को तीन बार लिखा। इनमें से प्रथम 'र'कार के साथ बिन्दु-कला-नादयुक्त दीर्घ 'आ'कार की योजना की। दूसरी बार के 'र' के साथ बिन्दु-कला-नादयुक्त दीर्घ 'ई'कार और तीसरे 'र' के साथ बिन्दु-कला-नादयुक्त दीर्घ 'ऊ'कार की योजना की। इस प्रकार तीन रूप प्राप्त हुए; यथा—हसक्षमलवयरां, हसक्षमलवयरीं तथा हसक्षमलवयरूं। इसके बाद क्रम से 'श्रीपरापर-सर्वाराध्य-सर्वमूर्द्धनाथ-सर्वगुरु-गुरु-स्वयं गुरु-श्रीगुरुनाथ' लिखने के बाद 'सहक्षमलवयरूं' लिखा। इसके बाद 'ह्सौः' एवं इसके आगे विलोमक्रम से 'हसक्ष' कूट की योजना की अर्थात् 'हसक्षमलवयरूं, हसक्षमलवयरीं एवं हसक्षमलवयरां' लिखा। इसके आगे 'ह्सौः

श्रीशम्भुनाथ' लिखने के बाद 'ह्सौः हसक्षमलवयरूं' तथा 'ह्सौः हसक्षमलवयरीं' लिखा। इस तरह ४८ अक्षरों का गुरुमन्त्र प्राप्त हुआ; जिसका स्वरूप है—

ह्सौः हसक्षमलवयरां हसक्षमलवयरीं हसक्षमलवयरूं श्रीपरापर सर्वराध्य सर्वमूर्द्धनाथ सर्वगुरु गुरु स्वयंगुरु श्रीगुरुनाथ सहक्षमलवयरूं ह्सौः हसक्षमलवयरीं हसक्षमलवयरां ह्सौः श्रीशम्भुनाथ ह्सौः हसक्षमलवयरूं हसक्षमलवयरीं।

वर्णगणना—इस मन्त्र में 'ह्सौः' इत्यादि ३९ वर्ण हैं। 'हसक्ष' आदि ९ कूट हैं, जिन्हें एक-एक वर्ण माना गया है। इस तरह इस मन्त्र में ३९ + ९ = ४८ त्रर्ण हैं।।४-९।।

[श्रीगुरोर्मन्त्रान्तरम्]

अथवा वाग्भवं मायां लक्ष्मीबीजं समुद्धरेत्।
ह स ख फ्रें तथाऽऽनन्दभैरवाख्यं स ह ख फ्रेम्।
गुरुनाम तथा शक्तिनाम श्रीपादुकां स्मरेत्।।१०।।

पूर्वतः संक्षिप्त मन्त्रान्तरमाह—**अथवेत्यादिना**। वाग्भवः ऐं, माया ह्रीं, लक्ष्मीबीजं श्रीं, एवञ्च प्रथमम् ऐं ह्रीं श्रीमिति बीजत्रयमुद्धरेत्। ततो ह स ख फ्रें इति। ततश्च आनन्दभैरवाख्यम् आनन्दभैरवस्य मनुं ह स क्ष म ल व र यूं इत्यानन्दभैरवमन्त्रः। ततश्च स ह ख फ्रें ह स क्ष म ल व र यूं (आनन्दभैरवाय वौषट्) स ह ख फ्रें श्रीअमुकानन्दनाथ श्रीअमुकीदेव्यम्बा श्रीपादुकां स्मरामी-(पूजयामी)ति मन्त्रः पर्यवस्यति। अत्र—

'गुरुरानन्दनाथान्तश्चाम्बान्ता शक्तिरीरिता'

इति मातृकाभेदतन्त्रसप्तमपटलवचनदर्शनाद् गुरुनामशक्तिनामेत्यनेन आनन्दनाथान्ताम्बान्तश्रीगुरुतच्छक्तिनाम ग्रहणीयम्।

इस श्लोक में संक्षिप्त गुरुमन्त्र बताया गया है। वाग्भव (ऐं), माया (ह्रीं), लक्ष्मीबीज (श्रीं) के बाद 'हसखफ्रें' के बाद आनन्दभैरव मन्त्र अर्थात् 'हसक्षमलवरयूं' के बाद 'सहखफ्रें' के बाद श्रीगुरुदेव तथा उनकी शक्ति के नामोल्लेख के बाद 'श्रीपादुकां स्मरामि (पूजयामि)' लिखें। मन्त्रस्वरूप है—

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमलवरयूं सहखफ्रें श्री अमुकानन्दनाथ श्रीअमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि।

[निरुक्तगुरुमन्त्रजपसंख्या]

दशधा सप्तधा वापि त्रिधा वैनां जपेत् सुधीः।

[जपसमर्पणम्]

जपं समर्पयेन्मन्त्री श्रीगुरोर्दक्षिणे करे।।११।।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का दस बार, सात बार अथवा तीन बार जप करके जप-फल श्रीगुरुदेव के दाहिने हाथ में समर्पित कर दें॥११॥

[प्रातः श्रीगुरुस्तोत्रपाठस्य कर्त्तव्यता]

स्तुवीत पञ्चभिः श्लोकैस्तं नित्यं सर्वसिद्धये।
प्रातः प्रबोधसमये जपात् सुदिवसं भवेत्।।१२।।

जप-समर्पण के बाद निम्नलिखित पाँच श्लोकों से उनकी स्तुति करें। प्रातः अर्चन के बाद इन श्लोकों से स्तुति करने से सिद्धियाँ मिलती हैं और पूरा दिन शुभ व्यतीत होता है॥१२॥

[श्रीगुरुस्तुतिः]

नमस्ते नाथ भगवञ् शिवाय गुरुरूपिणे।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह (१)।।१३।।
नारायणस्वरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
सर्वाज्ञान-तमोभेदभानवे च चिदात्मने (२)।।१४।।
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने।
परत्रेह च भक्तानां भव्यानां भव्यदायिने (३)।।१५।।
विवेकिनां विवेकाय विमर्षाय विमर्षिणाम्।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे (४)।।१६।।
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यादुपर्यधः।
सदा सच्चित्तभावेन विधेहि तव दासताम् (५)।।१७।।

गुरुरूपी भगवान् शिव को नमस्कार है, जिन्होंने विद्या की परम्परा को जारी रखने के लिये अनेक विग्रहों को स्वीकार किया है॥१॥

वे चिदात्मन हैं, नारायणस्वरूप हैं, परमात्मास्वरूप हैं तथा समस्त अज्ञान-राशि को समाप्त करने वाले सूर्य के समान हैं। ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है॥२॥

जो स्वतन्त्र हैं, दयाशील हैं, शिवात्मस्वरूप हैं तथा भक्तों को भव्य वर प्रदान करते हैं, ऐसे गुरुरूपी भगवान् शिव को नमस्कार है॥३॥

जो विवेकियों के लिये विवेकस्वरूप, विमर्षियों के लिये विमर्षस्वरूप, प्रकाशवानों के लिये प्रकाशस्वरूप और ज्ञानियों के लिये ज्ञानस्वरूप हैं, ऐसे गुरुदेवरूपी शिव को नमस्कार है॥४॥

हे नाथ! हे स्वामिन्! मैं आगे से, पीछे से, अगल-बगल से, ऊपर से, नीचे से अर्थात् सभी दिशाओं से आपको प्रणाम करता हूँ। हे स्वामिन्! मेरा चित्त सदैव ही आपकी सेवा में लगा रहे॥५॥

[श्रीगुरु-नमस्कारः]

स्तुतीः कृत्वा नमस्कुर्यादनेन मनुना ततः।।१८।।

उपर्युक्त श्लोकों से स्तुति करने के बाद निम्नलिखित श्लोकों से प्रणाम करें।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१९।।
त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः।
मायामृत्युमहापाशाद् विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च।।२०।।

ज्ञानरूपी सुरमे की सलाई से जिन्होंने आँखों में पड़े अज्ञान के जाले को काटकर आँखों को खोल दिया है, ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है।।१९।।

हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। माया और मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर शिवस्वरूप हो गया हूँ।।२०।।

[कुलनाथ-(श्रीगुरु)ध्यानस्थाननिरूपणम्]

ततः कुलमुखस्योद्र्ध्वं कुलनाथान् विचिन्तयेत्।।२१।।

एवं श्रीगुरुनमस्कारान्तमभिधाय कुलनाथचिन्तनमुपदिशति—**तत इत्यादिना**। कुलनाथान् श्रीगुरून् विचिन्तयेत्। केत्यत आह—**कुलमुखस्येति**। अत्र कुलशब्देन कुलकुण्डलिनीसहस्रारगमनपथरूपा सुषुम्णा नाड्युच्यते, तस्य मुखं सहस्रारादधो वर्त्तमानं तस्योद्र्ध्वे सहस्रारे इत्यर्थः। कुलनाथान् विचिन्तयेदित्यर्थः। तदुक्तं पादुकापञ्चके—

तत्र नाथचरणारविन्दयोः कुङ्कुमासवपरीमरन्दयोः।
द्वन्द्वमिन्दुमकरन्दशीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्पदम्।। इति।

इसके बाद सहस्रार चक्र में कुलगुरुओं का चिन्तन (ध्यान) करे।।२१।।

[कुलनाथतत्पूजननिरूपणप्रतिज्ञा]

कुलनाथान् प्रवक्ष्यामि शिवरूपपरिग्रहान्।
विद्यावतारसोपानभूतांस्तत्पूजनं तथा।।२२।।

अथ क इमे कुलनाथा नाम इत्याकाङ्क्षायामाह—**कुलनाथानित्यादि**। **शिवरूपपरिग्रहान्** शिवस्य परमशिवस्य यद्रूपं स्वरूपं तत् परिगृह्यते यैस्तथाभूतान्। एतेनैतेषां शिवरूपत्वं नित्यविग्रहत्वञ्चोक्तम्। व्यक्तमाह तन्त्रराजे प्रथमपटले—

'अथ नाथान् प्रवक्ष्यामि मद्रूपान् नित्यविग्रहान्' इति।

विद्यावतारेति। विद्यायास्तन्त्रविद्याया अवतारस्य सोपानभूतान्। भगवान् परमशिव एव तत्तत्कुलनाथरूपेणावतीर्य तन्त्राण्यशेषाण्युपदिशतीति तात्पर्यम्। **तत्पूजनं तथेति**। कुलनाथान् तथा तत्पूजनं तेषां कुलनाथानां पूजनं प्रवक्ष्यामीति सम्बन्धः।

'विद्या' अर्थात् तन्त्रविद्या का उपदेश स्वयं भगवान् परमशिव ने दिया है तथा तन्त्र विद्या के अवतरण के लिये अर्थात् मनुष्यों तक इसके प्रसार के लिये स्वयं भगवान् शिव ने जिन गुरुओं का रूप ग्रहण किया है, वे कुलगुरु कहे जाते हैं। ये सभी कुलगुरु भगवान् शिव का अवतार होने के कारण शिवस्वरूप हैं। गुरुदेव का स्थान सहस्रार मण्डल में है। अतः इन शिवस्वरूप कुलगुरुओं का सहस्रार मण्डल में चिन्तन अर्थात् ध्यान करें॥२२॥

[दिव्यकुलनाथत्रयनिरूपणम्]

प्रकाशोऽथ विमर्शोऽन्य आनन्दोऽपर इत्यपि।
नामभेदादहं लोके कल्पयन् दिव्यरूपतः॥२३॥

कुलनाथास्त्रिविधा भवन्ति—दिव्याः, सिद्धा भौमाश्चेति। तत्र प्रथमं दिव्यानाह—**प्रकाश इत्यादिना**। अहं पूर्णाहन्तारूपः परमशिवः नामभेदात् प्रकाशविमर्षानन्दरूपनामत्रयभेदादित्यर्थः। दिव्यरूपत आत्मानं कल्पयन् अस्मीति शेषः। तथा च प्रकृतिभूतस्य परमशिवस्य प्रकाशविमर्षानन्दरूपतया तद्विकृतिभूतस्य नाथत्रयस्यापि तत्तद्रूपत्वम्। दिव्यरूपत इत्यनेनैतेषां दिव्यगुरुत्वमुक्तम्। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे षड्विंशपटले—

गुरुर्भूत्वैव भगवान् महाविद्यां ददाति वै।
दिव्यो गुरुऋषिः सोऽथ दिव्यां विद्यां प्रकाश्य च॥
दिव्यौघानकरोच्छिष्यान् वक्ष्येऽथ शृणु पार्वति।
प्रकाशोऽथ विमर्शोऽन्य आनन्दोऽपर इत्यपि॥
नामभेदादहं लोके कल्पयन् दिव्यरूपतः। इत्यादि।

कुलगुरुओं के तीन भेद या तीन प्रकार हैं—दिव्य, सिद्ध और भौम। प्रकाश-विमर्ष और आनन्द—ये तीन दिव्य श्रेणी के गुरु हैं॥२३॥

विमर्श—तन्त्रविद्या के प्रसार के लिये पूर्णाहन्तारूप परमशिव ने प्रकाश-विमर्ष और आनन्द—इस नामत्रयभेद से अपने दिव्य रूप की परिकल्पना की, वे दिव्यौघ कहलाते हैं। ये तीनों भगवान् शिव के ही तीन दिव्य नामभेद हैं॥२३॥

[सिद्धकुलनाथत्रयनिरूपणम्]

त्रयस्तेभ्यः समुत्पन्नाः सिद्धाश्च त्रय एव ते।
ज्ञानः सत्यः पूर्ण इति श्रीमुखास्ते समीरिताः॥२४॥

एवं दिव्यान् कुलनाथान् निरूप्य सिद्धानाह—**त्रय इत्यादिना**। तेभ्यः प्रागुक्तप्रकाशादिदिव्येभ्यस्त्रयः समुत्पन्नास्त्रय एव ते सिद्धाश्चेत्यर्थः। तेषां संज्ञा आह—**ज्ञान इत्यादिना**। तथा च ज्ञानः सत्यः पूर्ण इत्येते त्रयः कुलनाथाः सिद्धव्यपदेशिनः

प्रागुक्तदिव्यगुरुभ्यः समुत्पन्ना इति स्थितम्। तान् विशेषयति—**श्रीमुखा** इति। श्रीशब्दपूर्वका इत्यर्थः।

इन तीन दिव्य गुरुओं से जो और तीन गुरु उत्पन्न हुए, उन्हें सिद्ध गुरु (सिद्धौघ) कहते हैं। इन तीन सिद्ध गुरुओं के नाम हैं—ज्ञान, सत्य और पूर्ण। इनके श्रीमुख से तन्त्रविद्या का आगे प्रसार हुआ॥२४॥

दिव्या वसन्ति खे नित्याः सिद्धा भूमाविहापि च।

[तेभ्योऽपरकुलनाथत्रयोत्पत्तिः]

निवसन्ति ततस्तेभ्यः समुत्पन्नास्त्रयस्तथा।।२५।।

अथैतेषां स्थानं निर्वक्ति—**दिव्या** इत्यादिना। तत्र दिव्याः प्रकाश-विमर्षानन्दरूपाः नित्याः नित्यविग्रहाः कुलनाथाः खे सहस्रारान्तर्वर्तिनि शून्ये वसन्ति। अत्र तन्त्रराजप्रथमपटल-गन्धर्वषड्विंशपटलयोरेतत्समानानुपूर्वीके वचने दिव्या मदन्तिके नित्यमिति पाठो दृश्यते। सिद्धानां स्थानमाह—**सिद्धा** इत्यादिना। सिद्धाः ज्ञान-सत्य-पूर्णात्मानः भूमौ इहापि च वसन्ति। अथ भौमान् कुलनाथानाह—तेभ्यः प्रागुक्तसिद्धेभ्यः त्रयो वक्ष्यमाणाः समुत्पन्नाः।

इनमें से प्रकाश-विमर्ष-आनन्दरूप दिव्य गुरुओं का वास सहस्रारवर्ती शून्य में है। वे सदैव उसी शून्य में निवास करते हैं। उनसे उत्पन्न ज्ञान-सत्य और पूर्ण अपनी भूमि में निवास करते हैं। इन तीन सिद्ध गुरुओं से तीन और कुलगुरु उत्पन्न हुआ। ये भौम गुरु कहे जाते हैं॥२५॥

[भौमकुलनाथत्रयम्]

स्वभावः प्रतिभस्तद्वत् सुभगश्चेति नामतः।
ते भूमावेव सततं निवसन्ति शिवात्मकाः।।२६।।

अथ किमभिधानास्ते इत्यत आह—**स्वभाव** इत्यादि। स्वभावः प्रतिभः सुभगश्चेतिनामानस्त्रयः कुलनाथा भूमावेव सर्वदा निवसन्ति नान्यत्रेत्यर्थः। तेऽपि त्रयः शिवात्मकाः शिवस्वरूपा एव।

भौमगुरुओं के नाम हैं—स्वभाव, प्रतिम और सुभग। इन गुरुओं का निवास भूमि में है और ये सदैव भूमि में रहते हैं। इन तीनों का स्वरूप भी शिव के समान है॥२६॥

[निरुक्तकुलनाथैस्तन्त्रशास्त्रस्य प्रवर्त्तनम्]

एतैश्च नवभिस्तन्त्रं लोके प्रथितवैभवम्।
अकल्पयत् कादिशक्तीस्तदनन्या कृते युगे।।२७।।

एतेषां तन्त्रप्रवर्त्तकत्वमाह—**एतैरित्यादिना**। प्रागुक्तैर्नवभिः कुलनाथैः।

इन पूर्वोक्त नौ कुलनाथों के द्वारा लोक में तन्त्र का विस्तार किया गया है। कृतयुग में इन्हीं लोगों द्वारा अनन्य कादि शक्ति की कल्पना की गई थी।।२७।।

[एतेषां रूपम्]

एते द्विनेत्रा द्विभुजा ललिताकारसंयुताः।
प्रसन्नवदनाः स्मेरा वराभयकरान्विताः।।२८।।

ये गुरु द्विनेत्र और द्विभुज हैं अर्थात् इनकी दो आँखें तथा दो ही भुजाएँ हैं। इनका आकार-वर्ण आदि भगवती ललिता के समान है। ये सदा प्रसन्न रहते हैं। इनके एक हाथ में वर और दूसरे हाथ में अभय मुद्रा रहती है अर्थात् ये कुलसन्तति को सदैव वरदान और अभय देने के लिये तत्पर रहते हैं।।२८।।

[पूज्यत्वम्]

पूज्या एवंविधाः स्वस्वमण्डलादिषु पूजने।
देवीश्रीचक्रसंस्थास्तु दिव्याकारास्तदाज्ञया।।२९।।
त्र्यक्षराद्याभिधानास्ते सर्वेऽप्यानन्दसंयुताः।
स्वमण्डलेषु नाथान्ताः शक्त्यन्ता एव मण्डले।।३०।।

स्वस्वमण्डलादिष्विति। मण्डलमग्रे वक्ष्यति। आदिपदेन स्वशीर्षादीनामपि ग्रहणम्।

अथ निरुक्तानां नवानां नाथानां स्वस्वमण्डले पूज्यानां नवार्णमन्त्रान् निरूपयति—**त्र्यक्षरेत्यादिना।** अत्रेदमवधेयम्—प्रकाशोऽथ विमर्षोऽन्य इत्यादिना ये त्र्यक्षरा नव कुलनाथाः पूर्वमुपदर्शिताः तानादितः कृत्वा सर्वेषामेव तेषामन्ते आनन्दपदं योजयेत्। अनेन प्रकाशानन्द-विमर्षानन्देत्येवमादिरूपाः पञ्चाक्षरा मन्त्रा भवन्ति। **स्वमण्डलेष्विति।** वक्ष्यमाणस्वमण्डलेषु पूज्यास्ते नाथान्ता नाथेति द्व्यक्षरान्ताश्चेत् तदा प्रकाशानन्दनाथविमर्षानन्दनाथेत्येवंरूपेण सप्ताक्षरा जायन्ते। कुलनाथशक्तिनवाक्षरं दर्शयितुमाह—**शक्त्यन्ता इति।** ते पञ्चाक्षराः शक्त्यन्ताः शक्तीतिद्व्यक्षरान्ताश्चेत्तदापि प्रकाशानन्दशक्तिविमर्षानन्दशक्तीत्येवंरूपेण सप्ताक्षराः कुलशक्तिमन्त्रा भवन्ति।

इन गुरुओं की अपने-अपने मण्डल में पूजा की जाती है। भगवती की आज्ञा से ये देवी के श्रीचक्र में भी दिव्याकार से उपस्थित रहते हैं। इन गुरुओं के नाम तीन अक्षरों वाले हैं। इनके नाम के आगे 'आनन्दनाथ' और 'शक्ति' की योजना करके उनके अपने-अपने मण्डल में पूजा की जाय। यथा—

(१) प्रकाशानन्दनाथ—प्रकाशानन्दनाथशक्ति।

(२) विमर्शानन्दनाथ—विमर्शानन्दनाथशक्ति।

(३) आनन्दानन्दनाथ—आनन्दानन्दनाथशक्ति।

[प्रागुक्तमन्त्राणां नवाक्षरत्वसम्पादनम्]

मायालक्ष्म्यादिकास्तद्वन्नवार्णाख्यास्तथाऽभवन् ।
नवानां नवशक्तीनां देवतानाञ्च पूजने।।३१।।

नवाक्षरत्वमुपपादयति—**मायेत्यादिना**। ते सप्ताक्षरा नाथान्ताः शक्त्यन्ता वा मायालक्ष्म्यादिकाः, माया ह्रीं लक्ष्मीः श्रीं इत्यादिकाश्चेत् प्रकाशानन्दनाथ इत्यादेः प्रकाशानन्दशक्तीत्यादेर्वा पूर्वं यदि ह्रीं श्रीमिति बीजद्वयं योज्येत तदा नवार्णाख्या मन्त्रा भवन्तीत्यभिप्रायेणाह—**नवार्णाख्यास्तथाऽभवन्निति**। एवञ्च—

ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथः
ह्रीं श्रीं विमर्षानन्दनाथः
ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथः

इत्यादयो नवनवार्णा मन्त्रा ऊह्याः। एतेषां मण्डले विनियोगस्तु तत्परिपाट्यां प्रदर्शयिष्यते।

उपर्युक्त 'सप्ताक्षरी' नामों के आदि में माया (ह्रीं) और लक्ष्मी (श्रीं) की योजना करने से ये नवाक्षरी हो जाते हैं। यथा—

ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ। ह्रीं श्रीं विमर्षानन्दनाथ। ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथ। ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दशक्ति। ह्रीं श्रीं विमर्षानन्दशक्ति। ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दशक्ति।

नौ गुरुओं और उनकी नौ शक्तियों के पूजन के समय इस नवाक्षरी नाममन्त्र का प्रयोग किया जाता है॥३१॥

[सप्ताक्षरयोगेण निरुक्तनवाक्षरस्य षोडशाक्षरत्वम्]

या विद्या सर्वसन्तोषकारिणी सर्वसिद्धिदा।
सप्ताक्षर्या तया मन्त्री पूजयेन्नामपूर्वकम्।।३२।।

अथ वक्ष्यमाणसप्ताक्षरीयोगेण नवार्णाया अस्याः षोडशाक्षरत्वसम्पादनाय प्रस्तौति—**या विद्येत्यादि**।

पूजन के समय उपर्युक्त नवाक्षरी नाममन्त्र के साथ 'सप्ताक्षरी' मन्त्र की योजना करनी चाहिये। यह मन्त्र अगले श्लोकों में बताया गया है॥३२॥

[सप्ताक्षरमन्त्रः]

जवी मरुत्समोपेतो गोत्रा च धरया युता।
प्राणोऽपि मरुता युक्तः खेन च स्यात्तृतीयकम्।।३३।।
पुनर्जवी क्ष्मयोपेतो ज्या च वातसमन्विता।
व्याप्तं मरुत्सखं षष्ठं नभोऽग्निः सप्तमाक्षरम्।।३४।।

पूर्ववचने सप्ताक्षर्या तयेत्युक्तम्। तां सप्ताक्षरीमेवाह—**जवीत्यादिना**। जवी पकारः, स च मरुत्समोपेतः मरुता आकारेण युक्तः। एतेन पा इति प्राप्तम्। **गोत्रेति**। गोत्रा दकारः सा च धरया उकारेण युक्ता। एतेन दु इति प्राप्तम्। **प्राण इति**। प्राणः

ककारः स च मरुता आकारेण खेन नभोबीजेन मकारेण बिन्दुरूपेण युक्तः; एतेन कां इति प्राप्तम्। **तृतीयकमिति।** मन्त्रस्य तृतीयमक्षरमित्यर्थः। **पुनरिति।** जवी पकारः क्ष्मया ऊकारेणोपेतः। एतेन पू इति प्राप्तम्। ज्या जकारः सा च वातेनाकारेण समन्विता। एतेन ज इति प्राप्तम्। **व्याप्तमिति।** व्याप्तं यकारः मरुत् पूर्ववदाकारः। एतेन या इति लब्धम्। नभः पूर्ववत् मकारः अग्निरिकारः एतेन मि इति प्राप्तम्। **सप्तमाक्षरमिति।** एतन्मन्त्रस्य सप्तममक्षरमित्यर्थः।

इन दो श्लोकों में उपर्युक्त सप्ताक्षरी मन्त्र का उद्धार बताया गया है। तदनुसार मरुत् (आ) सहित जवी (प्) इस सप्ताक्षरी मन्त्र का प्रथम वर्ण है। धरा (ऊ) सहित गोत्र (द्) दूसरा वर्ण है। नमोबीज ('म'काररूप बिन्दु) तथा मरुत् (आ) से युक्त प्राण (क्) अर्थात् 'कां' उसका तृतीय अक्षर है। क्ष्मा (ऊ) सहित जवी (प) अर्थात् 'पू' इसका चतुर्थ अक्षर है। वात (आ) सहित ज्या (ज) अर्थात् 'जा' पञ्चम अक्षर है। मरुत् (आ) सहित व्याप्त (य) अर्थात् 'या' षष्ठम वर्ण तथा अग्नि (इ) सहित नभ (म) अर्थात् 'मि' इसका सप्तम अक्षर है। इन वर्णों के संयोजन से सप्ताक्षरी मन्त्र 'पादुकां पूजयामि' निष्पन्न होता है।।३३-३४।।

[निगमनम्]

एवं सप्ताक्षरी प्रोक्ता शक्तितन्त्रेषु सिद्धिदा।।३५।।

एवमिति। पादुकां पूजयामि इति सप्ताक्षरात्मि-केत्यर्थः। जवीत्यादि सप्तमाक्षरमित्यन्तं वचनद्वयं तन्त्रराजे प्रथमपटलेऽपि तुल्यरूपं दृश्यते। तट्टीकाकृता सुभगानन्दनाथेनाप्ययमेव मन्त्रोद्धारक्रमः प्रदर्शितः।

शक्तितन्त्रों में इस सप्ताक्षरी मन्त्र का निरूपण करते हुए इसे सिद्धि देने वाला बताया गया है।।३५।।

[मन्त्रयोर्योगः]

सर्वासामपि शक्तीनां देवतानाञ्च नामभिः।
योजयेन्नामपूर्वां तां सिद्ध्यै साधारणान् यथा।।३६।।

प्रागुक्तनवाक्षरमन्त्रेण निरुक्तसप्ताक्षरमन्त्रयोगे षोडशाक्षरो मन्त्रो भवतीति प्रतिपादयितुमाह—**सर्वासामित्यादि।** सर्वासां शक्तीनां प्रागुक्तानां नवानामित्यर्थः। देवतानां नाथानाम्। नामभिरिति आनन्दशक्त्यानन्दनाथादिभिः। नामपूर्वां प्रकाश-विमर्षादिनामपूर्विकां तां प्रागुक्तसप्ताक्षरीं योजयेदित्यर्थः। **साधारणान् यथेति।** प्रागुक्तान् प्रकाशादीन् यथानन्दनाथेन योजयेत्तद्वदित्यर्थः।

जिस तरह 'प्रकाश' आदि त्र्यक्षरी नामों के साथ 'आनन्दनाथ' आदि पदों की योजना की गई है, उसी तरह सभी शक्तियों तथा नाथों (देवताओं) के नाम-मन्त्रों के साथ इस सप्ताक्षरी मन्त्र (पादुकां पूजयामि) की योजना करनी चाहिये।।३६।।

[शक्तीतरतन्त्रेषु विशेषः]

शक्तितन्त्राद् बहिर्भूततन्त्रेषु मनसा स्मृतिः।।३७।।

शक्तितन्त्रों के अतिरिक्त अन्य तन्त्रों में केवल मन से स्मरण किया जाता है।।३७।।

[नवार्णसप्तार्णयोर्योगे षोडशार्णत्वम्]

नवानां नव नामानि नवार्णानि पृथक् पृथक्।
तानि सप्ताक्षरीयोगात् प्रत्येकं षोडशाक्षरम्।

'ह्रीं श्रीं' युक्त उपर्युक्त नवाक्षरी नौ नाममन्त्रों में से प्रत्येक नाम-मन्त्र के साथ उक्त सप्ताक्षरी मन्त्र की योजना करने से प्रत्येक नाम-मन्त्र सोलह अक्षरों वाला हो जाता है। यथा—ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथपादुकां पूजयामि।

[तेषां षोडशार्णानां षोडशनित्यारूपत्वम्]

नित्याषोडशरूपाणि तानि जातान्यनुक्रमात्।।३८।।

उपर्युक्त सोलह अक्षरों को अर्थात् षोडशाक्षर मन्त्र को षोडश नित्यारूप समझना चाहिए।।३८।।

[गुरुमण्डलपूजाकालः]

गुरुमण्डलपूजाञ्च कुर्यात् सप्तसु पर्वसु।

गुरुमण्डल (यन्त्र) बनाकर उक्त नौ गुरुओं का सात (७) पर्वों में पूजन करना चाहिये।

[पूर्णासु पर्वसु च नाम्नो विशेषः]

पूर्णासु षोडशार्णानि नामान्यालिख्य पूजयेत्।।३९।।
अन्यत्र पर्वषट्के तु नवार्णान्येव लेखयेत्।

'पूर्णा' अर्थात् पूर्णिमा को सोलह वर्णों वाला तथा अन्य छः पूजापर्वों पर नौ अक्षरों वाला मण्डल बनाकर गुरुमण्डल का पूजन करना चाहिए।।३९।।

[उभयोरेव पूजने मन्त्रस्याभेदः]

पूजयेत्तत्र तत्रापि वदन् सप्ताक्षरीं बुधः।।४०।।

यद्यपि गुरुपूजन मण्डल में उक्त सप्ताक्षरी मन्त्र नहीं लिखा जाता; तथापि नौ अक्षरों वाले पूजन मण्डल में पूजन करते समय उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए ही पूजन करना चाहिए।।४०।।

विमर्श—पूर्णिमा पर्व पर सोलह अक्षरों वाला तथा अन्य शेष छः पर्वों पर नव अक्षरों वाला 'गुरुमण्डल पूजन यन्त्र' बनाया जाता है। नौ अक्षरों वाले पूजन यन्त्र में उक्त सप्ताक्षरी मन्त्र (पादुकां पूजयामि) के अक्षर नहीं लिखे जाते; मगर पूजा करते समय उक्त मन्त्र का उच्चारण किया जाता है।

[गुरुमण्डलपूजाय नवोपचारसाध्यत्वम्]

गुरुमण्डलपूजासु सर्वत्र नव चोदिताः।
उपचारास्ततस्तांस्तैः पूजयेच्छृणु तानपि।।४१।।

गुरुमण्डल-पूजन में नौ (९) की प्रधानता है। नौ उपचारों से गुरुओं का पूजन किया जाता है। इन नौ उपचारों के नाम अगले श्लोक में बताये गये हैं।।४१।।

[उपचारनवकनिर्णयः]

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यकं तथा।
ताम्बूलाचमनं स्तोत्रं स्वात्मतेति समीरिताः।।४२।।

गुरुपूजन के नौ उपचार हैं—(१) गन्ध, (२) पुष्प, (३) धूप, (४) दीप, (५) नैवेद्य, (६) ताम्बूल, (७) आचमन, (८) स्तोत्र (स्तुति) और (९) आत्म-समर्पण।।४२।।

[गुरुमण्डलनिर्माणाधारः]

गुरुमण्डलनिर्माणं पीठे कुर्यात् प्रसन्नधीः।
फलकायां स्थले वापि सुशुद्धे सुसमे स्थिते।।४३।।

यह गुरुमण्डल साफ, चिकनी और समतल भूमि पर अथवा स्वच्छ, चिकने फलक पर बनाना चाहिये।।४३।।

[मण्डलनिर्माणोपकरणनिर्णयः]

रक्तचन्दनकाश्मीरलघुकस्तूरिकायुतैः ।
पङ्कैर्विदध्यात् सर्वत्र गुरुमण्डलकल्पनम्।।४४।।

रक्त चन्दन, केसर और कस्तूरी को शुद्ध जल में घोलकर पंक (स्याही) बनाकर उससे गुरुमण्डल लिखें (बनायें)।।४४।।

[मण्डलपूजान्ते कर्त्तव्यम्]

पूजनान्ते मार्जयित्वा भाले चोरसि चांशयोः।
धारयेत् सर्वतो लक्ष्मीरस्य स्यात् सर्वदुर्लभा।।४५।।

पूजन के बाद गुरुमण्डल का मार्जन करके उससे प्राप्त द्रव्य को ललाट, हृदय और कन्धों पर लगाना चाहिए। इससे दुर्लभा लक्ष्मी सुलभा हो जाती है।।४५।।

प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् च सूत्राणि दश विन्यसेत्।
पञ्चाङ्गुलान्तरालानि तानि कोष्ठानि योजयेत्।।४६।।
एकाशीतिपदोपेतं चतुरस्रन्तु मण्डलम्।।४७।।

अथ गुरुमण्डलनिर्माणमुपदिशति—प्रागित्यादिना। पूर्वतः पश्चिमान्तानि दश, तथा दक्षिणत उत्तरान्तानि दश सूत्राणि पातयेत्। सूत्राणां पातनं पञ्चाङ्गुलव्यवधानेन कार्यम्। तथा कृते पञ्चाङ्गुलान्तरालैकाशीतिपदं मण्डलं भवति। परितः पञ्चाङ्गुलान्तराल-नवनवकोष्ठात्मकतया पञ्चचत्वारिंशदङ्गुलात्मकमिदं मण्डलमित्यपि सुधीभिरवधेयम्।

इन श्लोकों में गुरुमण्डल बनने की विधि बताई गई है। सूत्रपात करके पूर्व से पश्चिम दस रेखायें खींचें। ये रेखायें एक-दूसरे से पाँच-पाँच अंगुल की दूरी पर हों। इसी तरह पाँच-पाँच अंगुल की दूरी पर दक्षिण से उत्तर की ओर दस रेखायें सूत्रपात करके बनायें। इस तरह ४५ अंगुल मान का मण्डल बन जायेगा। इस मण्डल में ८१ कोष्ठक होंगे।।४६-४७।।

तत्सर्वमध्ये प्रथमं द्वितीयं तत्पुरोगते।
तृतीयञ्च तृतीये च लिखेन्नवनवस्वपि।।४८।।
एवं नवनवोपेतं मण्डलं सर्वपर्वसु।।४९।।

मण्डलेऽस्मिन् कुलनाथानां क्रमेणावस्थितिं वर्णयति—**तदित्यादिना।** **तत्सर्वमध्ये** तेषां सर्वेषां नवकानां मध्ये नवके **प्रथमं** ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथेत्येवं रूपं प्रथमोद्दिष्टकुलनाथं लिखेत् इत्यर्थः। **तत्पुरोगते** तस्य मध्यनवकस्य पुरोगते अग्रतः स्थिते पूर्वदिग्वर्त्तिनीत्यर्थः। नवके नवकोष्ठात्मकेंऽसे **द्वितीयं** ह्रीं श्रीं विमर्षानन्दनाथेत्येवं रूपं लिखेत्। **तृतीयञ्चेति।** तृतीये आग्नेयनवके तृतीयं ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथेत्येवं रूपं तृतीयं कुलनाथं लिखेत्। **नवनवस्वपीति।** अनेनैव क्रमेण प्रादक्षिण्येनापरेष्वपि नवकेष्वपरान् कुलनाथान् लिखेत्। एतेन दक्षिणनवके ह्रीं श्रीं श्रीज्ञानानन्दनाथम्, नैर्ऋतनवके ह्रीं श्रीं श्रीसत्यानन्दनाथम्, प्रतीच्यनवके ह्रीं श्रीं श्रीपूर्णानन्दनाथम्, तथा वायव्यनवके ह्रीं श्रीं स्वभावानन्दनाथम्, कौबेरनवके ह्रीं श्रीं प्रतिभानन्दनाथम्, ऐशाननवके च ह्रीं श्रीं सुभगानन्दनाथं लिखेदिति बोध्यम्। पर्वाण्यग्रे वक्ष्यन्ते।

इस मण्डल में ९-९ कोष्ठकों के ९ (नौ) मण्डल हैं। इनमें से मध्यवर्ती नवक में 'ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ' लिखें। इसके पूर्व वाले अर्थात् ऊपर वाले नवक में द्वितीय कुल गुरु 'ह्रीं श्रीं विमर्षानन्दनाथ' लिखें। अग्निकोणवर्त्ती तृतीय नवक में तृतीय कुलगुरु 'ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथ' लिखें। उसके नीचे दक्षिण दिशावर्ती चतुर्थ कोष्ठक में 'ह्रीं श्रीं ज्ञानानन्दनाथ' लिखें। उसके नीचे नैर्ऋत्य कोण के नवक में ह्रीं श्रीं श्री सत्यानन्दनाथ' लिखें। उसके पार्श्व में पश्चिम दिशावर्ती नवक में 'ह्रीं श्रीं पूर्णानन्दनाथ' लिखें। वायव्य कोण के नवक में 'ह्रीं श्रीं स्वभावानन्दनाथ' लिखें। इसके ऊपर उत्तर दिशावर्ती नवक में 'ह्रीं श्रीं प्रतिभानन्दनाथ' और ईशान कोणवर्ती नवम नवक में 'ह्रीं श्रीं सुभगानन्द नाथ' लिखें।

यह नवाक्षरी मण्डल सभी पूजा पर्वों पर बनाया जाता है।।४८-४९।।

इन श्लोकों में उक्त ८१ कोष्ठकों वाले गुरुमण्डल के ९-९ कोष्ठकों वाले नवकों में कुलगुरुओं के नामलेखन की स्थिति या दिशा/विदिशा का निरूपण किया गया है। अगले श्लोक में ८१ कोष्ठकों में ९-९ कोष्ठकों वाले ९ नवकों की लेखन-विधि और प्रत्येक नवक में नवाक्षरी मन्त्र के अक्षरलेखन का क्रम बताया गया है।

नवकं नवधा कृत्वा मध्ये सूत्रद्वयार्पणात्।
तेषु नामार्णनवकं समालिख्यार्चयेत् क्रमात्।।५०।।

अथ मण्डलस्य नवधा विभागमुपदिशति—**नवकमित्यादिना**। **मध्ये** मण्डलमध्ये उभयतस्त्रीणि त्रीणि पदानि त्यक्त्वेत्यर्थः। **सूत्रद्वयार्पणादिति**। पूर्वापरायतस्य दक्षिणोत्तरायतस्य च सूत्रद्वयस्यार्पणात् नवकं नवधा कृत्वेति सम्बन्धः। तेषु नवकेषु नवनाथनामार्णविन्यासपरिपाटीमाह—**तेष्विति**। तेषु नवकेषु प्रागुक्तक्रमेणैव नामार्णनवकं समालिख्यार्चयेत्। एतदुक्तं भवति—प्रथमं मध्यनवकस्य मध्ये ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथेति नवार्णमन्त्रस्य प्रथमाक्षरं लिखेत्। तत्पूर्वकोष्ठे द्वितीयमक्षरं श्रीमिति। तृतीये आग्नेये तृतीयमक्षरं प्रेति। चतुर्थे याम्ये चतुर्थमक्षरं केति। पञ्चमे नैर्ऋते पञ्चममक्षरं शेति। षष्ठे पश्चिमे षष्ठमक्षरं नेति। सप्तमे वायव्ये सप्तममक्षरं न्देति। अष्टमेऽष्टममक्षरं नेति। नवमे नवममक्षरं थेति। एवञ्च मध्यमनवके मध्यतः पूर्वादि प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं प्र का शा न न्द ना थेति नव वर्णानेकैकशो लिखेदिति मध्यमनवकप्रक्रिया। एवमन्येष्वप्यष्टसु कोष्ठेष्ववशिष्टानामष्टानां नाथानां विनियोगः सुधीभिरुन्नेयः। स्फुटमवधानाय गुरुमण्डलचित्रं प्रदर्श्यते—

गुरुमण्डलम् (१)

		(१)			(२)			(३)		
	(९) थः	(२) श्री	(३) सु	(९) थः	(२) श्रीं	(३) वि	(९) थः	(२) श्रीं	(३) आ	
	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) भ	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) म	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) न	
	(७) न्द	(६) न	(५) गा	(७) न्द	(६) न	(५) र्षा	(७) न्द	(६) न	(५) न्दा	
	(९) थः	(२) श्रीं	(३) प्र	(९) थः	(१) (२) श्रीं	(३) प्र	(९) थः	(२) श्रीं	(३) श्री	
(८)	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) ति	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) का	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) ज्ञा	(४)
	(७) न्द	(६) न	(५) भा	(७) न्द	(६) न	(५) शा	(७) न्द	(६) न	(५) ना	
	(९) थः	(२) श्रीं	(३) स्व	(९) थः	(२) श्रीं	(३) श्री	(९) थः	(२) श्रीं	(३) श्री	
	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) भा	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) पू	(८) ना	(१) ह्रीं	(४) स	
	(७) न्द	(६) न	(५) वा	(७) न्द	(६) न	(५) र्णा	(७) न्द	(६) न	(५) त्या	
		(७)			(६)			(५)		

इस मण्डल के पूर्व और पश्चिम की ओर के ३-३ कोणों को छोड़ कर मण्डल के मध्य में सूत्रपात से दो रेखायें बनायें। इसका अर्थ यह है कि पूर्व से पश्चिम जो दस (१०) रेखायें खींची गई हैं, उनमें चौथी और सातवीं रेखाओं पर फिर से सूत्रपात करें। इसी तरह दक्षिण से उत्तर की ओर खींची गई दस रेखाओं में से चौथी और सातवीं रेखा पर फिर से सूत्रपात करें। ऐसा करने से चौथी एवं सातवीं रेखायें और गाढ़ी हो जायेंगी। इसके फलस्वरूप मण्डल में ९-९ कोष्ठकों वाले ९ नवक स्पष्ट रूप से उभर आयेंगे।

इनमें से प्रत्येक नवक में यथानिर्दिष्ट दिशा में वक्ष्यमाण रीति से नवाक्षरी मन्त्र के अक्षरों को लिखा जाय।।५०।।

विमर्श—नामाक्षर-लेखन का क्रम मध्यवर्ती नवक से प्रारम्भ होता है। मध्य नवक के मध्य कोष्ठक में नवाक्षर मन्त्र (ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ) का प्रथम वर्ण 'ह्रीं' लिखें। इसके ऊपर दूसरे कोष्ठक में मन्त्र का दूसरा अक्षर 'श्रीं' लिखें। अग्निकोण वाले तीसरे कोष्ठक में मन्त्र का तीसरा अक्षर 'प्र' लिखें। इसके नीचे दक्षिण दिशा वाले चौथे कोष्ठक में चतुर्थ वर्ण 'का' लिखें। इसके नीचे नैर्ऋत्य कोण वाले कोष्ठक में पाँचवाँ वर्ण 'शा' लिखें। पश्चिम दिशा के छठवें कोष्ठक में ६ठा वर्ण 'न' लिखें। वायव्य कोण वाले सातवें कोष्ठक में सातवाँ वर्ण 'न्द', उत्तर दिशा वाले आठवें कोष्ठक में आठवाँ वर्ण 'ना' तथा ईशान कोण वाले ९वें कोष्ठक में नाम-मन्त्र का अन्तिम नवम अक्षर 'थ' लिखें।

चूँकि 'ज्ञानानन्दनाथ' एवं 'सत्यानन्दनाथ' और 'पूर्णानन्दनाथ'—इन नाममन्त्रों में केवल ६-६ अक्षर हैं, अतः इन्हें सप्ताक्षरी बनाने के लिये इनके आदि में 'श्री' की योजना करके ये सप्ताक्षरी नाममन्त्र उक्त मण्डल में लिखे जाते हैं।

मण्डल के अन्य नवकों में भी इसी क्रम से अन्य कुलगुरुओं के नाममन्त्रों के अक्षर लिखे जायँ।

पूर्णापर्वणि तन्मध्ये कृत्वा सूत्रत्रयं त्रयम्।
षोडशीकृत्य तेष्वेव लिखेन्नामानि तानि वै।।५१।।

अथ प्रागुक्तषोडशाक्षरकुलनाथार्णन्यासाय प्रतिनवकं षोडशकोष्ठसम्पत्तये निरुक्तैकाशीतिपदमण्डले विशेषमाह—पूर्णेत्यादिना। अत्र तु तन्मध्ये प्रागुक्तनवकमध्ये त्रीणि त्रीणि सूत्राण्युभयतो विन्यस्य षोडशीकृत्य उभयतः सूत्रत्रयन्यासेनेति शेषः। तेष्वेव षोडशपदकोष्ठेषु तानि षोडशाक्षराणि नामानि लिखेदित्यर्थः।

एतदुक्तं भवति—प्रागुक्तगुरुमण्डले नवकानां मध्यमकोष्ठमध्यदेशे एकैकशः पूर्वापरायता नवकत्रयव्यापिन्यस्तिस्रः दक्षिणोत्तरायताश्च तिस्रो रेखाः कर्त्तव्याः। एवं कृते सर्वाणि नवकानि षोडशकोष्ठात्मकानि जाय्न्ते इति। इत्यभिप्रायेणैव षोडशीकृत्येत्युक्तम्। लिखेदिति। तत्र नामानि 'ह्रीं श्रीं प्र का शा न न्द ना थ पा दु कां पू ज या मि' इत्यादिरूपाणि प्रागुपदर्शितानि लिखेदित्यर्थः। अत्र षोडशकोष्ठेषु

षोडशाक्षरनामार्णन्यासविधानात् प्रतिकोष्ठमेकैकं वर्णं लिखेदिति बोध्यम्। लिखनन्तु पूर्वोक्तरीत्या प्रादक्षिण्येनैव, विशेषानभिधानात्। तथा प्रागुक्तमण्डले मध्यकोष्ठतो वर्णन्यासविधानादत्रापि प्रथमं मध्यमकोष्ठचतुष्के ततो बहिःकोष्ठेष्वित्यवधेयम्। अत एव तन्त्रराजे द्वितीयपटले पूर्णेत्याद्येतत्समानानुपूर्वीकवचनव्याख्यायां सुभगानन्दनाथेन मध्यचतुष्टये वामाधःस्थितं कोष्ठमारभ्य मध्यचतुष्टयं प्रादक्षिण्येन परीत्यामुक्तक्रमं बहिरपि तथा परीयादित्युक्तम्। तदत्र कुलनाथानां तन्नामार्णानाञ्च संस्थानं द्वितीयेन गुरुमण्डलचित्रेण प्रदर्श्यते—

गुरुमण्डलम् (२)

(१) (२) (३)

	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
	थ ९	श्री २	सु २	ज १४	थ ९	श्रीं २	वि ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	आ ३	ज १४	
	ना ८	ह्रीं १	भ ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	म ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	न ४	या १५	
	न्द ७	न ६	गा ५	मि १६	न्द ७	न ६	र्षा ५	मि १६	न्द ७	न ६	न्दा ५	मि १६	
	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु (१) ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
(८)	थ ९	श्रीं २	प्र ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	प्र ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	(४)
	ना ८	ह्री १	ति ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	का ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	ज्ञा ४	या १५	
	न्द ७	न ६	भा ५	मि १६	न्द ७	न ६	शा ५	मि १६	न्द ७	न ६	ना ५	मि १६	
	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
	थ ९	श्रीं २	स्व ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	
	ना ८	ह्रीं १	भा ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	पू ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	स ४	या १५	
	न्द ७	न ६	वा ५	मि १६	न्द ७	न ८	र्णा ५	मि १६	न्द ७	न ६	त्या ५	मि १६	

(७) (६) (५)

इस नवाक्षरी मण्डल पर पूर्व और पश्चिम की ओर एक रेखा तथा दक्षिण की ओर एक रेखा बढ़ाकर नव-निर्मित मण्डल में कोष्ठक बनाने से प्रत्येक 'नवक' में १६-१६ कोष्ठक हो जायेंगे। इस मण्डल में १६ अक्षरों वाला मन्त्र लिखा जाता है। मन्त्र-लेखन की दिशायें पूर्ववत् हैं।

अक्षर-लेखन का क्रम मध्यवर्ती कोष्ठचतुष्क से प्रारम्भ किया जाता है। मध्य कोष्ठचतुष्टय के वाम भाग में नीचे से द्वितीय कोष्ठक में मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ह्रीं'

इस मण्डल के पूर्व और पश्चिम की ओर के ३-३ कोणों को छोड़ कर मण्डल के मध्य में सूत्रपात से दो रेखायें बनायें। इसका अर्थ यह है कि पूर्व से पश्चिम जो दस (१०) रेखायें खींची गई हैं, उनमें चौथी और सातवीं रेखाओं पर फिर से सूत्रपात करें। इसी तरह दक्षिण से उत्तर की ओर खींची गई दस रेखाओं में से चौथी और सातवीं रेखा पर फिर से सूत्रपात करें। ऐसा करने से चौथी एवं सातवीं रेखायें और गाढ़ी हो जायेंगी। इसके फलस्वरूप मण्डल में ९-९ कोष्ठकों वाले ९ नवक स्पष्ट रूप से उभर आयेंगे।

इनमें से प्रत्येक नवक में यथानिर्दिष्ट दिशा में वक्ष्यमाण रीति से नवाक्षरी मन्त्र के अक्षरों को लिखा जाय।।५०।।

विमर्श—नामाक्षर-लेखन का क्रम मध्यवर्ती नवक से प्रारम्भ होता है। मध्य नवक के मध्य कोष्ठक में नवाक्षर मन्त्र (ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ) का प्रथम वर्ण 'ह्रीं' लिखें। इसके ऊपर दूसरे कोष्ठक में मन्त्र का दूसरा अक्षर 'श्रीं' लिखें। अग्निकोण वाले तीसरे कोष्ठक में मन्त्र का तीसरा अक्षर 'प्र' लिखें। इसके नीचे दक्षिण दिशा वाले चौथे कोष्ठक में चतुर्थ वर्ण 'का' लिखें। इसके नीचे नैर्ऋत्य कोण वाले कोष्ठक में पाँचवाँ वर्ण 'शा' लिखें। पश्चिम दिशा के छठवें कोष्ठक में ६ठा वर्ण 'न' लिखें। वायव्य कोण वाले सातवें कोष्ठक में सातवाँ वर्ण 'न्द', उत्तर दिशा वाले आठवें कोष्ठक में आठवाँ वर्ण 'ना' तथा ईशान कोण वाले ९वें कोष्ठक में नाम-मन्त्र का अन्तिम नवम अक्षर 'थ' लिखें।

चूँकि 'ज्ञानानन्दनाथ' एवं 'सत्यानन्दनाथ' और 'पूर्णानन्दनाथ'—इन नाममन्त्रों में केवल ६-६ अक्षर हैं, अत: इन्हें सप्ताक्षरी बनाने के लिये इनके आदि में 'श्री' की योजना करके ये सप्ताक्षरी नाममन्त्र उक्त मण्डल में लिखे जाते हैं।

मण्डल के अन्य नवकों में भी इसी क्रम से अन्य कुलगुरुओं के नाममन्त्रों के अक्षर लिखे जायँ।

पूर्णापर्वणि तन्मध्ये कृत्वा सूत्रत्रयं त्रयम्।
षोडशीकृत्य तेष्वेव लिखेन्नामानि तानि वै।।५१।।

अथ प्रागुक्तषोडशाक्षरकुलनाथार्णन्यासाय प्रतिनवकं षोडशकोष्ठसम्पत्तये निरुक्तैकाशीतिपदमण्डले विशेषमाह—पूर्णेत्यादिना। अत्र तु तन्मध्ये प्रागुक्तनवकमध्ये त्रीणि त्रीणि सूत्राण्युभयतो विन्यस्य षोडशीकृत्य उभयत: सूत्रत्रयन्यासेनेति शेष:। तेष्वेव षोडशपदकोष्ठेषु तानि षोडशाक्षराणि नामानि लिखेदित्यर्थ:।

एतदुक्तं भवति—प्रागुक्तगुरुमण्डले नवकानां मध्यमकोष्ठमध्यदेशे एकैकश: पूर्वापरायता नवकत्रयव्यापिन्यस्तिस्र: दक्षिणोत्तरायताश्च तिस्रो रेखा: कर्त्तव्या:। एवं कृते सर्वाणि नवकानि षोडशकोष्ठात्मकानि जाय्न्ते इति। इत्यभिप्रायेणैव षोडशीकृत्येत्युक्तम्। लिखेदिति। तत्र नामानि 'ह्रीं श्रीं प्र का शा न न्द ना थ पा दु कां पू ज या मि' इत्यादिरूपाणि प्रागुपदर्शितानि लिखेदित्यर्थ:। अत्र षोडशकोष्ठेषु

षोडशाक्षरनामार्णन्यासविधानात् प्रतिकोष्ठमेकैकं वर्णं लिखेदिति बोध्यम्। लिखनन्तु पूर्वोक्तरीत्या प्रादक्षिण्येनैव, विशेषानभिधानात्। तथा प्रागुक्तमण्डले मध्यकोष्ठतो वर्णन्यासविधानादत्रापि प्रथमं मध्यमकोष्ठचतुष्के ततो बहिःकोष्ठेष्वित्यवधेयम्। अत एव तन्त्रराजे द्वितीयपटले पूर्णेत्याद्येतत्समानानुपूर्वीकवचनव्याख्यायां सुभगानन्दनाथेन मध्यचतुष्टये वामाधःस्थितं कोष्ठमारभ्य मध्यचतुष्टयं प्रादक्षिण्येन परीत्यामुक्तक्रमं बहिरपि तथा परीयादित्युक्तम्। तदत्र कुलनाथानां तन्नामार्णानाञ्च संस्थानं द्वितीयेन गुरुमण्डलचित्रेण प्रदश्यर्ते—

गुरुमण्डलम् (२)

(१) (२) (३)

	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
	थ ९	श्रीं २	सु २	ज १४	थ ९	श्रीं २	वि ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	आ ३	ज १४	
	ना ८	ह्रीं १	भ ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	म ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	न ४	या १५	
	न्द ७	न ६	गा ५	मि १६	न्द ७	न ६	र्षा ५	मि १६	न्द ७	न ६	न्दा ५	मि १६	
	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु (१) ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
(८)	थ ९	श्रीं २	प्र ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	प्र ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	(४)
	ना ८	ह्रीं १	ति ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	का ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	ज्ञा ४	या १५	
	न्द ७	न ६	भा ५	मि १६	न्द ७	न ६	शा ५	मि १६	न्द ७	न ६	ना ५	मि १६	
	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	पा १०	दु ११	कां १२	पू १३	
	थ ९	श्रीं २	स्व ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	थ ९	श्रीं २	श्री ३	ज १४	
	ना ८	ह्रीं १	भा ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	पू ४	या १५	ना ८	ह्रीं १	स ४	या १५	
	न्द ७	न ६	वा ५	मि १६	न्द ७	न ८	र्णा ५	मि १६	न्द ७	न ६	त्या ५	मि १६	

(७) (६) (५)

इस नवाक्षरी मण्डल पर पूर्व और पश्चिम की ओर एक रेखा तथा दक्षिण की ओर एक रेखा बढ़ाकर नव-निर्मित मण्डल में कोष्ठक बनाने से प्रत्येक 'नवक' में १६-१६ कोष्ठक हो जायेंगे। इस मण्डल में १६ अक्षरों वाला मन्त्र लिखा जाता है। मन्त्र-लेखन की दिशायें पूर्ववत् हैं।

अक्षर-लेखन का क्रम मध्यवर्ती कोष्ठचतुष्क से प्रारम्भ किया जाता है। मध्य कोष्ठचतुष्टय के वाम भाग में नीचे से द्वितीय कोष्ठक में मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ह्रीं'

लिखें। उसके ऊपर 'श्रीं' लिखें। अग्निकोण में 'प्र' लिखें। उसके नीचे 'का', उसके नीचे 'शा', उसके बगल में 'न', उसके बगल में वायव्य कोणवर्ती कोष्ठक में 'न्द', उत्तरवर्ती कोष्ठक में 'ना' तथा ईशान कोणवर्ती नवम कोष्ठक में 'थ' लिखें। नवें कोष्ठक के ऊपर दसवें कोष्ठक में 'पू' लिखकर उसके बाँईं ओर ग्यारहवें में 'दु', उसके बाद बारहवें कोष्ठक में 'कां' तथा अग्निकोणवर्ती तेरहवें कोष्ठक में 'पू', इसके नीचे चौदहवें कोष्ठक में 'ज', पन्द्रहवें में 'या' तथा उसके नीचे सोलहवें कोष्ठक में 'मि' लिखें। इस तरह मध्य के १६ कोष्ठकों में १६ मन्त्राक्षर लिखकर अन्य कोष्ठकों में मन्त्राक्षर लिखें।

नवाक्षर और षोडशाक्षर गुरु-मण्डल के चित्र साथ ही उपलब्ध हैं।

[जीवतो मृतस्य वा गुरोः क्रमेणानेन पूजायाः कर्त्तव्यत्वम्]

एवं पूजा गुरौ जीवत्यपेतेऽपि समीरिता।
स्थानानि मण्डलीकृत्य तत्रार्चालेखने मते।।५२।।

गुरौ जीवति मृते चायमेव गुरुमण्डलपूजाक्रम इत्येवाह—**एवं पूजे**त्यादिना। परन्तु मृते गुरौ मण्डलपूजायां यस्मिन्नंशे विशेषस्तमाह—**स्थानानी**त्यादिना। तत्र स्थानानि मण्डलीकृत्येति वृत्तरूपेणालिख्येत्यर्थः। तत्र वृत्तीकृते मण्डले अर्च्चालेखने अर्च्चा पूजा लेखनं मन्त्रार्णानाम्। एते मते इत्यर्थः।

जब तक गुरुदेव की पार्थिव काया जीवित है, तब तक इसी क्रम से गुरुमण्डल बनाकर पूजन किया जाय, लेकिन जब उनका भौतिक शरीर पञ्चतत्त्व में लीन हो जाय तो वृत्ताकार मण्डल बनाकर उस पर अर्चन किया जाय।।५३।।

[निरुक्तक्रमेणानुष्ठितायाः पूजायाः फलम्]

एवं यः पूजयेन्नाथान् पर्वस्ववहितो बुधः।
स देशिकवरः सिद्धस्तस्माद् विद्याप्तिरुत्तमा।।५३।।

जो बुद्धिमान् साधक यथाविहित पर्वों पर 'नाथान्' अर्थात् गुरुओं का पूजन करता है, वही श्रेष्ठ देशिक है, उसे ही सिद्धियाँ और उत्तम विद्या की प्राप्ति होती है।।५३।।

[वैपरीत्ये दोषः]

अन्यथावाप्तिरुभयोरनर्थाय सुनिश्चितम्।
व्याधिशस्त्रादिपीडा वा वितन्द्रा विजने मृतिः।।५४।।
इत्यादिव्यसनाप्तिश्च नृपादशनितो मृतिः।
तस्मादुक्तक्रमेणैव कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये।।५५।।

पूर्वं मण्डलपूजादीनां यः क्रम उक्तस्तदन्यथाकरणे दोषमाह—**अन्यथे**ति। अन्यथा निरुक्तक्रमवैपरीत्येनोभयोर्गुरुशिष्ययोरवाप्तिरनर्थाय भवतीति शेषः। अनर्थानेव दर्शयति—**व्याधी**त्यादिना।

गुरुमण्डल के अर्चन का जो क्रम बताया गया है, उसी क्रम और उसी विधि से पूजा की जाय। इसमें व्यतिक्रम होने पर गुरु और शिष्य दोनों के लिये अशुभ और अनर्थ होता है। अनर्थ का अर्थ है—रोग-व्यसन, राजदण्ड तथा मृत्यु आदि। अतः अनर्थों से बचने और सिद्धिलाभ के लिये यथाविहित क्रम और यथाविहित विधि से ही गुरुमण्डल का पूजन किया जाय॥५४-५५॥

[पर्वसप्तकम्]

गुरोस्तु जन्मदिवसं विद्याप्राप्तिदिनं तथा।
स्वजन्मदिवसञ्चाथ व्याप्तिवासरमेव वा।।५६।।
अक्षरत्रयसम्पातदिनं पूर्णादिनं तथा।
षट् पर्वाणि विशिष्टानि सदर्शं सप्त पर्विकाः।।५७।।

पूर्वम् एवं नवनवोपेतं मण्डलं सर्वपर्वस्वित्युक्तम्, तान्येव पारिभाषिकाणि पर्वाणि निर्दिशति—**गुरोरित्यादिना**। विद्याप्राप्तिदिनं दीक्षादिनम्। व्याप्तिवासरं मृत्युदिनं गुरोरिति शेषः। **अक्षरत्रयसम्पातदिनम् इति**। वर्गाक्षरद्वयं घटिकाक्षरञ्चेति त्रीण्यक्षराणि यस्मिन् दिने सङ्गतानि भवन्ति तदक्षरत्रयसम्पातदिनमिति तन्त्रराजद्वितीयपटलटीकायां सुभगानन्दनाथः। वर्गाक्षरादिस्वरूपन्तु तन्त्रराजपञ्चविंशपटले विशिष्याभिहित इति विस्तरभयान्नेह प्रपञ्च्यते।

गुरुमण्डल-पूजन के लिये सात पर्व बताये गये हैं। ये पर्व हैं—(१) गुरुदेव का जन्मदिवस, (२) दीक्षादिवस, (३) अपना जन्मदिवस, (४) गुरुदेव का निधन-दिवस, (५) अक्षरत्रय-सम्पात दिन, (६) पूर्णा दिन (पूर्णिमा) और ७वाँ पर्व है—दर्श अमावस्या॥५६-५७॥

विमर्श—वर्ग के दो अक्षर तथा घटिका का (एक) अक्षर का जिस दिन एक साथ मिलते हैं, उसे 'अक्षरत्रय सम्पात दिवस' कहते हैं। इस दिवस का ज्ञान देवीमान रीति से बनाये गये 'तान्त्रिक पञ्चाङ्ग' से होता है। सामान्य प्रचलित पञ्चाङ्गों से इसकी जानकारी नहीं मिल सकती।

[अत्र पूजायाः कर्त्तव्यता]

मासतो वर्षतो वापि कुर्यादेतेषु पूजनम्।।५८।।

मासत इति। प्रतिमासं तदसम्भवे प्रतिवर्षमेतेषु गुरोर्जन्मदिवसादिषु पूजनं कुर्यादिति सम्बन्धः।

प्रत्येक महीने में और यदि यह सम्भव न हो तो प्रतिवर्ष गुरुदेव के जन्म-दिवस आदि पर्वों पर यह पूजा की जाय॥५९॥

[तत्र विशेषः]

गुरोस्तु जीवतो नित्यं व्याप्ते तत्पुत्रकादिकम्।
पूजयेत्तत्समं तन्तु प्रणामाद्यैरुपाचरेत्।।५९।।

गुरुदेव के जीवन-काल में नित्यप्रति उनकी यथाविधि पूजा की जाय। जब उनका शरीरान्त हो जाय, उनके पुत्र आदि की प्रणाम आदि उपचारों से पूजा की जाय।।५९।।

[गुरुतत्पुत्रादीनामभावे कर्त्तव्यम्]

तदभावे तत्कुलीनं तदुक्तं वा समर्चयेत्।

यदि गुरुदेव के पुत्र आदि नहीं हों तो उनके कुल के किसी योग्य व्यक्ति का अर्चन किया जा सकता है।

[निगमनम्]

प्रसङ्गान्नाथवर्गाणां पूजामण्डलमीरितम्।।६०।।

गुरुपूजा का प्रसंग आने पर गुरुमण्डल-पूजन के क्रम और विधि का निरूपण किया गया।।६०।।

[तत: कुण्डलिन्युत्थापनम्]

मूलाधारचतुर्दलादथ परां विद्युल्लताभासुरां
सूक्ष्मां पद्ममृणालतन्तुसदृशीं हंसेन मोक्षालये।
नीत्वा ब्रह्मसनातनेन महतामेकात्मरूपं भजेत्
पश्चान्मूलसरोरुहेऽमृतमयीं सोऽहं स्मरन् प्रार्थयेत्।।६१।।

मूलाधारेति। अयमर्थः षष्ठे प्रकाशे 'नीत्वा तां कुलकुण्डली'मित्यादिकुण्डलिन्युत्थापनक्रमप्रतिपादकश्लोकटीकायां विस्तरेण प्रपञ्चितमस्माभिः।

गुरुदेव की मानसिक पूजा करके कुलकुण्डलिनी का उत्थापन करे। उत्थापन के पूर्व उनका ध्यान करे। भगवती कुलकुण्डलिनी विद्युत्-लता की तरह चमकीली तथा कमल-नाल के रेशे के समान सूक्ष्म हैं। वे मूलाधार के चार दलों वाले कमल में निद्रामग्न हैं। उन्हें निद्रा से जगाकर हंसमन्त्र (अहं स:) का जप करते हुए सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्रवर्त्ती सहस्रार में लाकर परमशिव के साथ उनका समागम करा दे। परमशिव के साथ समागम से जब वे परितृप्त हो जायँ, 'सोऽहम्' मन्त्र का जप करते हुए अमृतमयी कुलकुण्डलिनी को परमशिव पद से सुषुम्ना पथ से अवतरित करते हुए मूलाधार में लाकर पुन: स्थापित कर दें।।६१।।

विमर्श—इसका विस्तृत विवरण ग्रन्थ के ६ठें प्रकाश में है।

[शय्यातो भूमौ पादक्षेप:]

त्यजेत् प्रभाते चरणं विधिज्ञः
समीरणानुक्रमतो धरायाम्।
शिवोक्तमन्त्रं परिभाव्य तल्पात्
समस्तदोषापनुदं जनानाम्।।६२।।

इस प्रकार गुरु-वन्दना करने के बाद बुद्धिमान् साधक शिवोक्त मन्त्र से पृथ्वी देवी की वन्दना करके उस समय जो भी स्वर चल रहा हो, उस पैर को भूमि पर रखकर बिस्तर से नीचे उतरे।।६२।।

पृथ्वीवन्दन का मन्त्र है—

[तत्र प्रार्थनामन्त्रः]

ॐ समुद्रवलये मातः पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।६३।।

[निरुक्तमन्त्रेण भूमौ पादक्षेपस्योपदेशः]

अनेन मनुना मन्त्री भूमौ पादं विनिक्षिपेत्।

उपर्युक्त मन्त्र से भूमि की वन्दना करके बुद्धिमान् साधक शैय्या का त्याग कर भूमि पर उतरे।

[कुलवृक्षाणां दर्शनं नतिश्च]

कुलवृक्षान् विलोक्याथ नमस्कुर्यादलक्षितः।।६४।।

कुलवृक्षानिति। कुलवृक्षानाह कुलार्णवपञ्चमखण्ड एकादशोल्लासे—

श्लेष्मातकं करञ्जाख्यं निम्बाश्वत्थकदम्बकाः।
विल्ववटोडुम्बराश्च तिन्तिडी नवमी स्मृता।। इति।

कौलावलीनिर्णये द्वितीयोल्लासेऽपि—

बहिर्गत्वा यदा पश्येत् कुलवृक्षं सुसाधकः।
नमस्कुर्यात् प्रयत्नेन कुलं कुलपतिं तथा।।
अशोकः केशरः कर्णिकारश्चूतस्तिलस्तथा।
नमेरुश्च पियालश्च सिन्धुवारकदम्बकौ।।
मरुवकश्चम्पकशाखी कुलवृक्षाश्च द्वादश।। इति।

प्रकारान्तरमपि प्रागुक्तकुलार्णवसम्मतमाह तत्रैव—

अथवा कुलवृक्षांश्च कथयामि सुसिद्धये।
श्लेष्मातककरञ्जानि निम्बाश्वत्थकदम्बकाः।
विल्वो वटोडुम्बरश्च चिञ्चेति नवमी स्मृता।। इति।

बाहर आकर वह अलक्षित रहकर कुलवृक्षों को प्रणाम करे।।६४।।

विमर्श—कुलार्णव के अनुसार (१) श्लेष्मातक, (२) करञ्ज, (३) नीम, (४) पीपल, (५) कदम्ब, (६) बिल्व, (७) वट और (८) तिन्तिडी (इमली)—ये ८ कुलवृक्ष कहे गये हैं।

[विण्मूत्रादित्यागो दन्तशोधनमन्त्रश्च]

विण्मूत्रादिविरेचनं यतमनाः कृत्वा तु शौचं स्मरे-
न्मूलं मृज्जलसेचनेन करपत् संशोध्य पूर्वाननः।
कामं काम च सर्वमेव जनतो ङेऽन्तः प्रियो ह्युतो
मन्त्रो दन्तविशोधनाय गदितस्तन्त्रानुसारक्रमात्।।६५।।

दन्तधावनमन्त्रमाह—**काममित्यादिना**। कामं कामबीजं क्लीं। ततः काम कामदेवपदम्। ततः सर्वपदम्। ततो जनतः जन इति पदात् ङेऽन्तश्चतुर्थ्यन्तः प्रिय इति पदम्। एतेन प्रियायेति प्राप्तम्। हृद्युतः नमःपदान्तः। एवञ्च क्लीं कामदेव-सर्वजनप्रियाय नमः। इति चतुर्दशाक्षरो मन्त्रः पर्यवस्यति। अत्र द्वितीयकामपदेन कामदेवेत्यक्षरचतुष्टयं बोध्यम्। व्यक्तमाह कौलावलीनिर्णये प्रथमोल्लासे—

कामबीजं कामदेवं सर्वान्ते जनमालिखेत्।
प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये।। इति।

गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटलेऽपि—

क्लीमात्मकं कामदेवसर्वान्ते जनमालिखेत्।
प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये।।
चतुर्दशाक्षरैर्वक्त्रं क्षालयेच्छुद्धिहेतवे।। इति।

एवमेव प्राणतोषणीधृतदक्षिणामूर्त्तावपि। एवञ्च कौलावलीनिर्णयगन्धर्वादिषु कामदेवपदस्य मन्त्रघटकत्वदर्शनाद् देवपदानुपादाने चतुर्दशाक्षरैर्वक्त्रमित्यादि-गन्धर्वादिवचनविरोधसम्भवाच्च प्रकृते कामपदेन कामदेवेत्यक्षरचतुष्टयं मन्त्र-घटकत्वेनोपादेयमिति निष्कर्षः।

मल-मूत्र आदि का त्याग करने के बाद वह मूल मन्त्र का ज़प करते हुए शुद्ध और चिकनी मिट्टी से अच्छी तरह से रगड़-रगड़ कर शुद्ध जल से दोनों हाथों को धोये।

तत्पश्चात् वह 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इस मन्त्र का जप करते हुए दाँतों को साफ करे।।६५।।

[शिखाबन्धादीनि सन्ध्यान्तानि कर्माणि]

मूलेनैव शिखां त्रिपुण्ड्रतिलकं कृत्वा च तत्र क्रमा-
दाचामेत् त्रिपुरां विधाय पुरतो न्यासौ कराङ्गौ ततः।
कुर्याच् श्रीक्रमसंहितोक्त-परमां सन्ध्यां यतान्तर्मना
यां कृत्वा त्रिपुरां परां भगवतीमाराध्य देवो भवेत्।।६६।।

मूलेनैवेति। अत्र सन्ध्यापदेन प्रातःकृत्यादिरूपा मानसी सन्ध्यावगन्तव्या, पञ्चदशे स्नानानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्याया वक्ष्यमाणत्वात् अत्र तदनवसरत्वाच्च। सुगममन्यत्।

मूल मन्त्र से शिखाबन्धन करने के बाद ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगाये। आचमन करके ऋष्यादि न्यास, करन्यास एवं हृदयादि न्यास करके 'श्रीक्रमसंहिता' में बताई गई मानसी सन्ध्या करे। यह प्रातः सन्ध्या है। इस सन्ध्या को करने से साधक स्वयं आराध्य देवता त्रिपुरास्वरूप हो जाता है।।६६।।

[अथ सन्ध्या, तत्र स्वदेहे पञ्चदशाक्षरन्यासः]

शिरः कण्ठे मुखे श्रोत्रे नेत्रनासाभुजेषु च।
हृदि गुह्ये पृष्ठदेशे नाभौ च जठरे गुदे।
पादे गुल्फे महादेव्या न्यसेत् पञ्चदशाक्षरम्।।६७।।

शिर इति। पूर्वश्लोके प्रातःकृत्याङ्गतया श्रीक्रमसंहितोक्तमानससन्ध्योपासनमुद्दिष्टं तदेव प्रदर्शयति—**शिर इत्यादिना।** तथा च शिर-आदिषु पञ्चदशसु स्थानेषु क्रमेण पूर्वोपदर्शितश्रीविद्यापञ्चदशाक्षरमन्त्रस्यैकैकं वर्णं न्यसेदित्यर्थः।

करन्यास आदि करने के बाद शिर आदि अवयवों में भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के एक-एक वर्ण का न्यास करे। ये अंग हैं—

(१) शिर, (२) कण्ठ, (३) मुख, (४) कान, (५) नेत्र, (६) नासिका, (७) भुजायें, (८) हृदय, (९) गुह्य, (१०) पृष्ठदेश (पीठ), (११) नाभि, (१२) जठर, (१३) गुदा, (१४) पाद और (१५) गुल्फ॥६७॥

विमर्श—इस न्यास को अक्षरन्यास कहा जाता है। इसका 'प्रयोग-क्रम' इस प्रकार है—

(१) ऐं ह्रीं श्रीं 'कं' नमः-शिरसि
(२) ऐं ह्रीं श्रीं 'एं' नमः-कण्ठे
(३) ऐं ह्रीं श्रीं 'ईं' नमः-मुखे
(४) ऐं ह्रीं श्रीं 'लं' नमः-श्रोत्रयोः
(५) ऐं ह्रीं श्रीं 'ह्रीं' नमः-नेत्रयोः
(६) ऐं ह्रीं श्रीं 'हं' नमः-नासिकायां
(७) ऐं ह्रीं श्रीं 'सं' नमः-मुखे
(८) ऐं ह्रीं श्रीं 'कं' नमः-हृदये
(९) ऐं ह्रीं श्रीं 'हं' नमः-गुह्ये
(१०) ऐं ह्रीं श्रीं 'लं' नमः-पृष्ठदेशे
(११) ऐं ह्रीं श्रीं 'ह्रीं' नमः-नाभौ
(१२) ऐं ह्रीं श्रीं 'सं' नमः-जठरे
(१३) ऐं ह्रीं श्रीं 'कं' नमः-गुदे
(१४) ऐं ह्रीं श्रीं 'ल' नमः-पादयोः
(१५) ऐं ह्रीं श्रीं 'ह्रीं' नमः-गुल्फयोः
—

श्रीविद्या के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के एक-एक वर्ण का न्यास किये जाने का आदेश है। इस न्यास की ही तरह षोडशाक्षरी विद्या के न्यास का विधान भी अन्य तन्त्रग्रन्थों में मिलता है।

[ध्यानम्]

सम्पूर्णां चिन्तयेद् विद्यां ब्रह्मरन्ध्रेऽरुणप्रभाम्।
सरत्सुधाषोडशार्णां महासौभाग्यदां स्मरेत्॥६८॥

अरुण प्रभा वाली पञ्चदशाक्षरी विद्या, जिससे अमृत की बून्दें टपक रही हैं, का ध्यान करके (मध्यमा और अनामिका से) सम्पूर्ण विद्या (मन्त्र) का ब्रह्मरन्ध्र में चिन्तन अर्थात् न्यास करे॥६८॥

[सौभाग्यदण्डिनीमुद्राविनियोगः]

वामांसदेशे सौभाग्यदण्डिनीं भ्रामयेदथ।

सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा से सम्पूर्ण विद्या का बाँयें कन्धे पर न्यास करे।

[रिपुजिह्वाया विनियोगः]

रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां पादमूले च विन्यसेत्॥६९॥

त्रैलोक्यस्य त्वहं कर्त्ता ध्यात्वैवं तिलके न्यसेत्।
सम्पूर्णामेव वदने वेष्टनत्वेन विन्यसेत्।।७०।।
पुनः संपूर्णवदने गलोद्र्ध्वे विन्यसेदथ।
व्यापकत्वे योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाऽभिवन्द्य च।।७१।।

रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा से सम्पूर्ण विद्या (मन्त्र) का पादमूल (बाँयें पैर के तलुवे) में न्यास करे।

यह भावना करते हुए कि 'मैं स्वयं त्रिलोक का कर्ता हूँ' सम्पूर्ण विद्या का ललाट में न्यास करे। (यह न्यास त्रिखण्डा मुद्रा से किया जाता है।)

मुख का वेष्टन करते हुए सम्पूर्ण विद्या (मन्त्र) का मुख पर न्यास करे। तन्त्रान्तर के अनुसार यह न्यास भी त्रिखण्डा मुद्रा से किया जाता है।

गले के ऊर्ध्वभाग से (कण्ठ से) मस्तक तक सम्पूर्ण विद्या (मन्त्र) का (त्रिखण्डा मुद्रा से) न्यास करे।

सम्पूर्ण विद्या का मस्तक से पैर तक और पैर से मस्तक तक देह में (त्रिखण्डा मुद्रा से) व्यापक न्यास करे।

योनिमुद्रा से सम्पूर्ण विद्या का मुख में न्यास करे।

व्यापक न्यास के बाद मुख पर योनिमुद्रा स्थापित कर भगवती को प्रणाम करें।।६९-७१।।

विमर्श—उपर्युक्त तीनों श्लोक मूलतः 'ज्ञानार्णवतन्त्र' (चतुर्दश पटल, श्लोकसंख्या ३२ से ४०) से उद्धृत किये गये हैं। इस न्यास को 'ज्ञानार्णव' में 'श्रीविद्या न्यास' कहा गया है। मूल ग्रन्थ ज्ञानार्णव में 'पुनः सम्पूर्णवदने गलोर्ध्वे विन्यसेत्' का पाठ है—पुनः सम्पूर्णया देहे व्यापकत्वेन विन्यसेत्। मूल ग्रन्थ के निर्देश 'वदने' को ध्यान में रखते हुए अनुवाद में 'वदने' (मुख में) के स्थान पर 'देहे' (सम्पूर्ण शरीर) में न्यास करे, यह परिवर्तन किया गया है।

इस पंक्ति (पुनः सम्पूर्णवदने ....) के बाद 'ज्ञानार्णव' में एक पंक्ति और है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में नहीं है। वह पंक्ति है—'पुनः सम्पूर्णया देहे व्यापकत्वेन चिन्तयेत्।' भाष्य में इस पंक्ति का अनुवाद शामिल कर लिया गया है।

'व्यापकत्वे योनिमुद्रां' का 'ज्ञानार्णव' में पाठ है—'व्यापकान्ते योनिमुद्राम्'।

[सौभाग्यदण्डिन्याः स्वरूपं फलञ्च]

मुष्टिं बद्ध्वा तले मन्त्री तर्जनीं दण्डवच्चरेत्।
सौभाग्यदण्डिनी नाम रिपून् दण्डयते क्षणात्।।७२।।

मुष्टिमिति। अत्र तले इत्यनेन वामहस्ततले इति बोध्यम्। तन्त्रसारे मुद्राप्रकरणे—

वामहस्तेन मुष्टिन्तु बद्ध्वा कर्णप्रदेशके।
तर्जनीं सरलां कृत्वा भ्रामयेन्मनुवित्तमः।
सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता।।

इति वचनेन तथा व्यक्तमभिधानात्।

इस श्लोक में सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा के स्वरूप का संकेत तथा उसके फल का निरूपण किया गया है। यहाँ 'तल' से तात्पर्य बाँयें हाथ के 'तल' से है। ज्ञानार्णवतन्त्र (पन्द्रहवाँ पटल, श्लोकसंख्या ४७) में इस मुद्रा के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। यथा—

बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी अंगुली को सीधी रखकर कान के पास घुमाने से सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा बनती है। ज्ञानार्णव तन्त्र का उक्त श्लोक 'तन्त्रसार' में यथावत् उद्धृत है। प्रस्तुत ग्रन्थ की संस्कृत टीका में 'तन्त्रसार' का उक्त श्लोक उद्धृत है।

इस मुद्रा के करने से साधक के शत्रु दण्डित होते हैं।।७२।।

[रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा करशुद्धिश्च]

अङ्गुष्ठं मुष्टिगं कुर्याद् रिपुजिह्वाग्रहा भवेत्।।७३।।

अङ्गुष्ठमिति। तन्त्रसारे तु—

अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु निरुध्य तर्जनीमिमाम्।
रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा न्यासकाले तु सूचिता।।

इत्यनेन मुष्टावङ्गुष्ठेन तर्जन्या अपि निरोध उक्त इति विशेषो दृश्यते।

इस एक पंक्ति में 'रिपुजिह्वाग्रहा' मुद्रा का संकेतमात्र दिया गया है। 'ज्ञानार्णव तन्त्र' (पटल १५, श्लोकसंख्या ४८-४९) में इस मुद्रा का स्वरूप स्पष्ट किया गया है—'दाहिने हाथ से अंगुष्ठगर्भिता मुट्ठी बाँधने से 'रिपुजिह्वाग्रहा' मुद्रा बनती है।'

विमर्श—उपर्युक्त 'श्रीविद्यान्यास' में सौभाग्यदण्डिनी और 'रिपुजिह्वाग्रहा' के साथ ही 'त्रिखण्डा मुद्रा' भी बनाई जाती है। भाष्य में 'त्रिखण्डा मुद्रा' का उल्लेख किया गया है। ज्ञानार्णव (पटल १५, श्लोकसंख्या ४९-५१) के अनुसार त्रिखण्डा मुद्रा का स्वरूप है—

दोनों हथेलियों को परस्पर जोड़ें। तर्जनी अंगुली को मोड़कर अनामिका पर स्थापित कर दें। मध्यमाओं को बीच में ही रखें। दोनों कनिष्ठा अंगुलियों को मोड़कर उन्हें मध्यमा अंगुलियों के नीचे लायें। कनिष्ठाओं के अग्रपर्वों को मध्यमाओं के मूल में रखें। दोनों अंगूठों को भी परस्पर जोड़ दें। दो-दो के क्रम से बनने वाली यह त्रिखण्डा मुद्रा है।

योनिमुद्रा—यह बहुप्रचलित मुद्रा है। ज्ञानार्णव (१५/६६-४८) में इसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

दोनों हाथों को मोड़कर तर्जनी को सीधा रखें। मध्यमा अँगुलियों को तर्जनी अँगुलियों के मध्य भाग में रखें। उन्हें आमने-सामने से मिला दें। तर्जनी अंगुलियों पर दोनों मध्यमा अंगुलियों को तिरछा करके रख दें। दोनों कनिष्ठा अंगुलियों को अनामिका अंगुलियों के मध्य में रखकर सभी अंगुलियों को एक साथ मिलाकर सभी अंगुलियों को अंगूठों से दबायें। यह योनिमुद्रा है।

परिशिष्ट में सभी आवश्यक मुद्राओं के चित्र दिये गये हैं। वहाँ देखने से मुद्राओं का स्वरूप और स्पष्ट होता है।

अनामिकां परिभ्राम्य मूर्द्धासं परितः सुधीः।
ब्रह्मरन्ध्रे क्षिपेच्चैव मणिबन्धे न्यसेत्ततः।।७४।।
ललाटेऽनामिकां कुर्यात् षोडशार्णां स्मरन् बुधः।
त्रैलोक्यमरुणं ध्यायञ् श्रीविद्यां मनसि स्मरेत्।।७५।।

इन दो श्लोकों में तीन न्यासक्रम बताये गये हैं। ज्ञानार्णव में इसे सम्मोहन न्यास कहा गया है। (पटल १४, श्लोक ४१-४२)।

'त्रैलोक्यमरुणं ध्यायन्' अर्थात् यह न्यास करने के पूर्व यह ध्यान करें कि तीनों लोक श्रीविद्या के अरुण वर्ण से रंगे हुए हैं अर्थात् तीनों लोक श्रीविद्या के प्रभाव से अरुण रंग के हो गये हैं। इसके बाद न्यास करें—

(१) दाहिने हाथ की अनामिका को सिर के इर्द-गिर्द (तीन बार) घुमाकर ब्रह्मरन्ध्र में (अनामिका से) सम्पूर्ण विद्या का न्यास करें।

(२) अनामिका अंगुली से सम्पूर्ण विद्या का दोनों मणिबन्धों (कलाइयों) पर न्यास करें।

(३) अनामिका से मूल मन्त्र का ललाट में न्यास करें। 'षोडशार्णां' से यहाँ तात्पर्य 'मूल मन्त्र' से है।

विमर्श—अन्य तन्त्रग्रन्थों के अनुसार उपर्युक्त श्रीविद्यान्यास (अक्षरन्यास) और 'सम्मोहन न्यास' केवल षोडशी उपासकों के लिये हैं। पञ्चदशाक्षरी विद्या के साधकों के लिये इन न्यासों का विधान अन्य तन्त्रग्रन्थों में नहीं बताया गया है।

उपर्युक्त दोनों श्लोक श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (पटल १४, श्लोकसंख्या-४१-४२) से लिये गये हैं। पाठभेद भी है—'मूर्द्धासं' के स्थान पर ज्ञानार्णव में 'मूर्धानम्'।

ॐकारं वाग्भवं कूटमांकारं कामराजकम्।
शान्तान्तं कादिसंयुक्तम् ऐकारान्तान्तयोजितम्।।७६।।
त्रिपुरा परमेशानी करशुद्धौ समीरिता।।७७।।

इन श्लोकों में 'करशुद्धकरी विद्या' का उद्धार बताया गया है। तदनुसार 'ॐ' इसका वाग्भव कूट 'आं'कार कामराज कूट तथा 'सौः' इसका तृतीय कूट है। इस तरह 'ॐ आं सौः' करशुद्धकरी विद्या है।।७६-७७।।

विमर्श—अन्य तन्त्रग्रन्थों में 'अ' को इस विद्या का प्रथम (वाग्भव) कूट बताया गया है।

'शान्तान्तं' इत्यादि। 'श' के बाद का वर्ण 'ष'। इसके भी अन्त का वर्ण—'स'कार। कादि ('क'कार का पूर्ववर्ती वर्ण 'अ:' अर्थात् विसर्ग (:), जो 'ऐकार' के अन्त्य वर्ण 'ओ' के अन्त्य वर्ण (ऐकारान्तान्त) से युक्त हो—अर्थात् 'स्+औ+अ:'—'सौ:'।

[विद्याध्यानम्]

अथाऽऽधारे वाग्भवन्तु तडिद्वर्णं त्रिकोणके।
तदुद्भवां तडिद्वर्णां द्विभुजां बालरूपिणीम्।।७८।।
पुस्तकाक्षलसत्पाणिपद्मां चारुत्रिलोचनाम्।
विम्बाधरां पीतवर्णां विषतन्तुतनीयसीम्।।७९।।
वाग्भवाख्यस्वरूपां तां परशक्तौ समानयेत्।
शुद्धस्फटिकसङ्काशां गोक्षीररजतोपमाम्।।८०।।
कदम्बगोलकाकारां ब्रह्मरन्ध्रव्यवस्थिताम्।
अभयमक्षसूत्रञ्च पाशं विद्याञ्च धारिणीम्।।८१।।

अथाऽऽधार इत्यादि। अत्रेदमवधेयम्—पूर्वं यन्मानससन्ध्योपासनमुद्दिष्टं तत् प्रातर्मध्याह्ने सायमर्द्धरात्रे चेति कालचतुष्टयेऽनुष्ठेयम्, अन्यथा 'सायाह्ने शक्तिबीजन्तु श्वेतं वै सोममण्डले' इति, 'अर्द्धरात्रे तदन्तरम्' इति, 'तुरीयं बीजमुच्चार्ये'ति च वक्ष्यमाणवचनैर्विशिष्य सायमर्द्धरात्रयोरुपादानं व्यर्थं स्यात्। एवञ्च तत्र तत्र सायमर्द्धरात्रयोर्व्यवस्थापनात् पूर्वोक्तकल्पद्वयं प्रातर्मध्याह्नकालविषयमिति स्थितम्। तत्र शिर:कण्ठ इत्यादिना 'करशुद्धौ समीरिते'त्यन्तेन ग्रन्थेनोक्ता: प्रक्रिया: कालचतुष्टयसाधारणा:। अथाधार इत्यादिना तु प्रथमप्राप्तं प्रात:कालीनध्यानादि-प्रक्रियामभिधत्ते। आधारे मूलाधारे त्रिकोणके मूलाधारस्थिते त्रिकोणे इत्यर्थ:। तडिद्वर्णं वाग्भवबीजं ध्यात्वेति शेष:। तदुद्भवां तद्वाग्भवबीजोद्भवां द्विभुजां बालरूपिणी-मित्यादिसर्वविशेषविशिष्टां तां परशक्तौ सहस्रारस्थितायां समानयेदिति सम्बन्ध:। तत्रापि शुद्धस्फटिकसङ्काशामित्यादिविशेषणविशिष्टां तां ध्यायेदित्यर्थ:।

मूलाधार चक्र के त्रिकोण के मध्य में तडिद् वर्ण के वाग्भव बीज का ध्यान करें। तत्पश्चात् वाग्भव बीज से उद्भूत तडिद्-वर्णा विद्या का ध्यान करें। यह विद्या बालरूपिणी है। दो भुजायें हैं। तीन नेत्र हैं। बिम्बाफल के समान रक्त वर्ण के अधर हैं। उसके दोनों हाथों में पुस्तक और अक्षमाला है। वे कमलनाल के रेशे के समान सूक्ष्म हैं। इस वाग्भव-उद्भवा को सहस्रार में लाकर उसका ध्यान करें। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक तथा गोदुग्ध के समान धवल और उज्ज्वल है। उनके हाथों में क्रमश: अभयमुद्रा, अक्षसूत्र, पाश और विद्या (पुस्तक) हैं। वे ब्रह्मरन्ध्र में आसीना हैं। कदम्ब के समान गोलाकार स्तनमण्डल है।'।।७८-८१।।

[त्रिपुरार्घ्यदानम्]

वाग्भवन्तु समुच्चार्य त्रिपुरा वाग्भवेश्वरी।
पादुकां पूजयामीति त्रिधा चार्घ्यं निवेदयेत्।।८२।।

ध्यानानन्तरमर्घ्यदानमुपदिशति—**वाग्भवन्त्वित्यादिना।**

इस प्रकार ध्यान करके 'ऐं त्रिपुरा वाग्भवेश्वरी पादुकां पूजयामि' इस मन्त्र से तीन बार अर्घ्य दें।।८२।।

[त्रिपुरागायत्री]

त्रिपुरादेवि विद्महे वाग्भवेश्वरीपदं भवेत्।
धीमहीति ततस्तन्नो मुक्तिः प्रचोदयादिमाम्।।८३।।

[पूरकादिक्रमेण तज्जप:]

त्रिर्जपेदथ मन्त्रज्ञः पूरकादिविधानतः।।८४।।

अर्घ्यत्रयदानान्तरं पूरक-कुम्भक-रेचक-रीत्या त्रिधा गायत्रीजपमुपदिशति—**त्रिपुरेत्यादिना त्रिर्जपेदित्यन्तेन।**

'त्रिपुरादेवि विद्महे वाग्भवेश्वरी धीमहि तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात्'—यह त्रिपुरा गायत्री है।

अर्घ्य देने के बाद पूरक-कुम्भक-रेचक रीति से त्रिपुरा गायत्री का तीन बार जप करें।।८३-८४।।

विमर्श—प्रात:काल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और अर्धरात्रि—इन चार समयों में सन्ध्यावन्दन किया जाता है। प्रात:कालीन सन्ध्यावन्दन तथा ध्यान की उपर्युक्त विधि है। अन्य सन्ध्याओं में 'ध्यान' आदि का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है।

[देव्या ध्यानम्]

हृदयाम्बुजमध्यस्थे केशरे सूर्यमण्डले।
द्वितीयं कामराजन्तु तरुणारुणसन्निभम्।।८५।।
तदुद्भवां रक्तवर्णां चतुर्भुजां त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधारिणीं यौवनान्विताम्।।८६।।

एवं प्रातःकालीनध्यानादिप्रक्रियामभिधाय माध्याह्निकं ध्यानमाह—**हृदयाम्बुज-मध्यस्थ इत्यदिना।** एवं वक्ष्यमाणस्थलेष्वपि बोध्यम्।

इन दो श्लोकों में मध्याह्नकालीन वन्दन में भगवती का ध्यान बताया गया है। 'हृदयाम्बुज' अर्थात् हृदयक्षेत्रवर्ती अनाहत चक्र के सूर्यमण्डल-सदृश केसर में तरुण-अरुण अर्थात् युवा सूर्य के समान रक्तवर्ण के कामराज कूट का तथा इस कामराज बीज से उद्भूत रक्तवर्णा देवी का ध्यान करें। देवी सर्वथा युवतीस्वरूपा हैं। उनके तीन नेत्र और चार भुजाएँ हैं। उनकी इन चार भुजाओं में क्रम से पाश, अंकुश, धनुष और बाण हैं।।८५-८६।।

[तत्र क्रमान्तरम्]

अथवारुणसन्दीप्तां कामकूटस्वरूपिणीम्।
सहस्रकमले नीत्वा ध्यायेदादित्यसुप्रभाम्।।८७।।
चतुर्भुजां महादीप्तां त्रिनेत्राञ्च वराननाम्।
सर्वज्ञानमयं वामे पुस्तकं प्रणवात्मकम्।।८८।।
दक्षिणेऽक्षस्रजं सूर्यकान्तितुल्यां वराभयौ।
दक्षवामकराभ्याञ्च बिभ्रतीं परमेश्वरीम्।।८९।।

इन तीन श्लोकों में मध्याह्नकालीन अपर अर्थात् दूसरा ध्यान बताया गया है। कामकूट-स्वरूपिणी अरुणाभ देवी को हृदयमण्डल से सहस्रदल कमल में लाकर ध्यान करें। उनका वर्ण सूर्य के समान अरुण है। चार भुजाएँ हैं। मुखमण्डल देदीप्यमान एवं कान्तिमान है। उनके तीन नेत्र हैं। उनके वाम हाथ में सर्वज्ञानमयी प्रणवात्मिका पुस्तक तथा दाहिने हाथ में सूर्यकान्ति के समान चमकदार अक्षमाला है। नीचे के दाहिने हाथ में वरमुद्रा तथा बाँयें हाथ में अभय मुद्रा है।।८७-८९।।

[अर्घ्यदानम्]

एवं ध्यात्वा कामराजमुद्धरेत् त्रिपुरापदम्।
कामेश्वरीपादुकाञ्च स्मृत्वाऽर्घ्यं त्रिः प्रकल्पयेत्।।९०।।

भगवती का इस प्रकार ध्यान करके उन्हें तीन बार अर्घ्य प्रदान करें। अर्घ्यदान का मन्त्र है—'क्लीं त्रिपुरा कामेश्वरी पादुकां पूजयामि'। इसके बाद पूरक-कुम्भक-रेचक विधि से गायत्री मन्त्र का तीन बार जप करें।।९०।।

[गायत्री तज्जपश्च]

कामराजं समुच्चार्य त्रिपुरादेवि विद्महे।
महाकामेश्वरी धीमहि तन्नः पदतस्ततः।
क्लिन्ने प्रचोदयान्मन्त्री त्रिधा च प्रजपेदिमाम्।।९१।।

'क्लीं त्रिपुरा देवि विद्महे महाकामेश्वरी धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्'—यह गायत्री मन्त्र है।।९१।।

[सायाह्ने देव्या ध्यानम्]

सायाह्ने शक्तिबीजन्तु श्वेतं वै सोममण्डले।
तदुद्भवां श्वेतवर्णां जटामुकुटधारिणीम्।
त्रिनेत्रां द्विभुजामीषत्स्फुरद्दंष्ट्राङ्कुलां शुभाम्।।९२।।

सोममण्डल (चन्द्रमण्डल) में श्वेत वर्ण शक्तिबीज (सौः) का ध्यान करके तद्भूता श्वेतवर्णा देवी का ध्यान करें। वे श्वेत वर्णा हैं। उनकी जटा पर श्वेत वर्ण का ही मुकुट है। तीन नेत्र और दो भुजायें हैं। शुभ्र दन्तावली दिखाई दे रही है।।९२।।

[तत्र कल्पान्तरम्]

अथवा शक्तिरूपां तां ध्यायेच्छुद्धसरोरुहे।।९३।।

सर्वालङ्कारभूयिष्ठां दक्षिणे च वरप्रदाम्।
अक्षमालां वरं वामे दधतीं पुस्तकाभयौ।।९४।।

श्वेत कमल पर शक्तिरूपा भगवती का ध्यान करें, जो सभी आभूषणों से अलंकृता हैं। उनकी दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला तथा वरमुद्रा तथा बाँयीं भुजा में पुस्तक और अभयमुद्रा है॥९३-९४॥

[तत्रार्घ्यदानक्रम:]

शक्तिबीजं समुच्चार्य त्रिपुरा अमृतेश्वरी।
पादुकां पूजयामीति त्रिधाऽर्घ्यं परिकल्पयेत्।।९५।।

'ऐं त्रिपुरा अमृतेश्वरी पादुकां पूजयामि'—यह अर्घ्यदान का मन्त्र है। इस मन्त्र से उन्हें तीन बार अर्घ्य प्रदान करें॥९५॥

[गायत्री तज्जपश्च]

गायत्रीं प्रजपेन्मन्त्री शक्तिबीजस्वरूपिणीम्।।९६।।
त्रिपुरादेवि विद्महे स्वशक्तीश्वरि धीमहि।
तन्नोऽमृते प्रचोदयाद्—

'त्रिपुरा देवि विद्महे स्वशक्तीश्वरि धीमहि तन्नोऽमृते प्रचोदयात्'—यह गायत्री मन्त्र है। इस मन्त्र का वक्ष्यमाण रीति से तीन बार जप करें॥९६॥

[अर्द्धरात्रे ध्यानम्]

—अर्द्धरात्रे तदन्तरम्।।९७।।
तुरीयं बीजमुच्चार्य पद्मरागसमप्रभम्।
आकाशे परमानन्दे समावाह्य सुरेश्वरीम्।।९८।।
तदुद्भवां महादेवीं पद्मरागसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां चापधारिणीं लोचनत्रयाम्।।९९।।

'तदन्तरम्' अर्थात् सायंकालीन सन्ध्यावन्दन के बाद अर्धरात्रि में चौथी सन्ध्या करें।

परमानन्दमय आकाशमण्डल में पद्मराग (पुखराज) के समान पीताभ तुरीय बीज का उच्चारण-सहित ध्यान करें। तत्पश्चात् इस बीज से उद्भूता परमेश्वरी का ध्यान करें। उनका वर्ण पद्मराग (पुखराज) के समान पीला है। तीन नेत्र हैं। उनके हाथों में क्रमश: पाश-अंकुश तथा धनुष है॥९७-९९॥

[तत्रार्घ्यक्रम:]

तुरीयं बीजमुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरी।
पादुकां पूजयामीति त्रिधाऽर्घ्यं परिकल्पयेत्।।१००।।

भगवती का इस प्रकार ध्यान करके उन्हें तीन बार अर्घ्य प्रदान करे। 'तुरीय बीज' के बाद 'महात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि'—अर्घ्यदान का मन्त्र है॥१००॥

[तत्र गायत्री तज्जपश्च]

गायत्रीं प्रजपेन्मन्त्री तुरीयबीजरूपिणीम्।
त्रिपुरसुन्दरीशब्दान्ते विद्महे तदनन्तरम्।।१०१।।
कामेश्वरी धीमहीति तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्।
अष्टोत्तरशतं त्रिंशद्दशधा प्रजपेदिमाम्।।१०२।।

अर्घ्यदान के बाद तुरीय बीजरूपिणी गायत्री मन्त्र का १०८ अथवा ३० बार जप करे। 'त्रिपुरसुन्दरी विद्महे कामेश्वरी धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' यह तुरीया गायत्री है।।१०१-१०२।।

[निगमनम्]

प्रसङ्गात् सकला सन्ध्या क्रमेण परिकीर्त्तिता।।१०३।।

प्रसंगप्राप्त होने पर प्रातः-मध्याह्न-सायं और तुरीया सन्ध्याओं की विधि आदि का निरूपण किया गया।।१०३।।

[प्रातःकृत्यस्यावश्यकत्वम्]

अथ प्राभातिकं कृत्वा विरमेच्च यथाक्रमम्।
प्राभातिकविहीनेन कृतं तदकृतं भवेत्।।१०४।।

इस प्रकार प्रभातकालीन सन्ध्या करने के बाद साधक यथाक्रम विराम देकर अन्य सन्ध्यायें करे। इस प्रातःकालीन सन्ध्या के बिना सभी किये गये कृत्य अकृत्य हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि प्रातःसन्ध्या न करने से दिन भर की गई पूजा-अर्चना का कोई फल नहीं मिलता; अतः साधक के लिये प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन अनिवार्य है।।१०४।।

[ततो देवगृहेऽनुष्ठानम्]

ततो देवस्थलं गत्वा निर्माल्यमपकृत्य च।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं विद्वानर्घ्यपाद्ये तथैव च।।१०५।।
मुखप्रक्षालनं दद्याद् दद्याद्वै दन्तधावनम्।
दद्यादाचमनीयञ्च दद्याद् वासोऽमलं शुभम्।।१०६।।
नमस्कृत्य जपं कृत्वा स्तुत्वा नत्वा सुखी भवेत्।।१०७।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ चतुर्दशः प्रकाशः।।१४।।

'ततः' अर्थात् इस प्रकार प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन करने के पश्चात् बुद्धिमान् साधक देव मन्दिर में जाकर देवप्रतिमा/यन्त्र पर चढ़े हुए निर्माल्य को हटाये। पुष्पाञ्जलि देकर अर्घ्य एवं पाद्य प्रदान करे। मुख-प्रक्षालन कराकर दन्तधावन कराये। आचमन देकर वस्त्र बदलवाये। नमस्कार करके जप और उसके बाद स्तुति करे।।१०५।।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के चतुर्दश प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१४।।

●

पञ्चदशः प्रकाशः

[स्नानक्रमस्य द्वैविध्यम्]

स्नानप्रकारो द्विविधो बाह्याभ्यन्तरभेदतः।।१।।

पूर्वप्रकाशे प्रातःकृत्यं विस्तरत उपवर्ण्य प्रकाशेऽस्मिन् वाच्यायां देवीसपर्यायामस्नातस्य निन्दाश्रवणात् प्रथमं स्नानमभिधत्ते—**स्नानप्रकार** इत्यादिना।

स्नानक्रम के दो भेद—स्नान के दो भेद हैं—बाह्य स्नान और आभ्यन्तर स्नान॥१॥

[तत्राऽऽन्तरस्नाननिरूपणप्रतिज्ञा]

आन्तरं स्नानमत्यन्तरहस्यमपि सादरात्।
कथयामि न सन्देहश्चतुर्वर्गाप्तयेऽपि च।।२।।

इनमें से आन्तरिक स्नान अत्यन्त रहस्यमय है। इस स्नान से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः इसकी विधि का निरूपण कर रहा हूँ॥२॥

विमर्श—स्नान के विना देवी की सपर्या निन्दित है। स्नान करके ही देवी की पूजा का फल मिलता है और देवी की पूजा से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः स्नान को पुरुषार्थ चतुष्टय का एक आधार कहा गया है।

[आन्तरस्नानक्रमः]

मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम्।
कुर्वीत प्रयतो मन्त्री मानसं स्नानमुत्तमम्।।३।।
संवित्त्रयमनुस्मृत्य चरणत्रयमध्यतः।
स्रवन्तं सच्चिदानन्दप्रवाहं भवमोचनम्।।४।।
विमुक्तिसाधनं पुंसां स्मरणादेव योगिनाम् ।
तेन प्लावितमात्मानं भावयेद् भवशान्तये।।५।।

मन ही मन मूल मन्त्र का जप करके प्राणायाम करने के बाद मन्त्र-साधक को मानसिक स्नान करना चाहिए। संवित् का ध्यान करके यह भावना करनी चाहिए कि चरणत्रय के मध्य से (अर्थात् मन्त्र के कूटत्रय के मध्य से) संसार से मुक्ति दिलाने वाले सच्चिदानन्द की धारा प्रवाहित हो रही है। मेरे शरीर का अंग-प्रत्यंग, रोम-रोम इस धारा से आप्लावित हो रहा है। मेरे आन्तरिक और बाह्य—दोनों ही शरीर

इस धारा से सराबोर हो गये हैं। इस प्रकार मूल मन्त्र से स्रवित आनन्दधारा से भीगकर साधक का मन और हृदय सांसारिक कलुषताओं से स्वच्छ हो जाता है और भव-ताप से उन्हें शान्ति मिलती है॥३-५॥

[आन्तरस्नानस्य निगमनं फलञ्च]

एवमाभ्यन्तरं स्नानं तीर्थकोटिफलप्रदम्।

इस तरह आभ्यन्तर स्नान करने से कोटि-कोटि तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है।

[अथ बाह्यस्नानम्]

अथ गृह्योक्तविधिना बाह्यस्नानं समाचरेत्।।६।।

इस प्रकार मानस स्नान करने के बाद साधक अपने गृह्यसूत्र में बताई गई विधि से स्नान करे। इसके पूर्व वह आचमन करे॥६॥

[तत्राऽऽचमनम्]

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत् पूर्ववत्ततः।

आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व से आचमन करे।

प्रयोग-क्रम—ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा। श्रीविद्या के साधकों के लिये ये आचमन मन्त्र हैं।

[तीर्थावाहनम्]

यन्त्रराजं जले ध्यात्वा तीर्थावाहनमाचरेत्।।७।।

यन्त्रराजमिति। वक्ष्यप्रमाणश्रीयन्त्रमित्यर्थः।

आचमन करने के बाद तीर्थजल में अर्थात् नदी अथवा जलाशय के जल में यन्त्रराज (श्रीचक्र) होने की भावना करे अर्थात् यह भावना करे कि नदी या तालाब का जल 'श्रीचक्र'मय है। इसके बाद उस भौतिक जल में सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहन करे। आवाहन का मन्त्र और मुद्रा का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है॥७॥

[तत्र मन्त्रः]

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।८।।

[निरुक्तमन्त्रेणाङ्कुशमुद्रया प्रोक्तावाहनस्य कर्त्तव्यता]

अनेन मनुना मन्त्री मुद्रयाऽङ्कुशसंज्ञया।।९।।

अनेनेति। अङ्कुशसंज्ञया मुद्रया तीर्थावाहनमाचरेदिति पूर्वेण सम्बन्धः।

यह तीर्थों के आवाहन का मन्त्र है। सूर्य-मण्डल से तीर्थों का आवाहन अंकुश मुद्रा से किया जाता है। इसका लक्षण निम्नानुसार है॥८-९॥

[अङ्कुशमुद्रा]

मुष्टिं बद्ध्वा दक्षहस्ते मध्यमां दण्डवच्चरेत्।
अङ्कुशाकाररूपेण तर्जनीं तत्र योजयेत्।
अङ्कुशाख्या महामुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमा।।१०।।

दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध लें। मध्यमा अंगुली को सीधी रखते हुए तर्जनी अंगुली को अंकुश की तरह मोड़ लेने से अंकुश मुद्रा बनती है, जो तीनों लोकों को आकर्षित करने में सक्षम है॥१०॥

[अभिषेक:]

मूलं स्मरन् मूर्ध्नि तोयं कुम्भाख्येन त्रिधा क्षिपेत्।।११।।

मूल-मन्त्र का जप करते हुए मन्त्र-साधक कुम्भ मुद्रा से अपने सिर पर तीन बार तीर्थ-जल से अभिषेक करें॥११॥

[कुम्भमुद्रा]

दक्षाङ्गुष्ठे पराङ्गुष्ठं क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु।
सावकाशां चैव मुष्टिं कुम्भमुद्रां विदुर्बुधाः।।१२।।

कुम्भमुद्रा का लक्षण है—

दोनों हाथों की अंगुलियों को मुट्ठी के समान बाँधकर दोनों हाथों को जोड़ लें। दोनों हाथों के अंगूठों को सीधा रखते हुए अंगुलियों से जोड़ देने से कुम्भ मुद्रा बनती है (देखें—परिशिष्ट में मुद्रा-परिचय)॥१२॥

[मज्जनविधि:]

सप्तच्छिद्राणि संरुध्य त्रिधा मज्जेत्ततः सुधीः।।१३।।

सप्तच्छिद्राणीति। चक्षुच्छिद्रद्वयं कर्णच्छिद्रद्वयं नासिकाच्छिद्रद्वयम् एकं मुखच्छिद्रमिति सप्तच्छिद्राणि।

इसके बाद बुद्धिमान् साधक सातों छिद्रों को ढककर (बन्द करके) जल में तीन बार डुबकी लगाये॥१३॥

विमर्श—आँख के दो छिद्र, नाक के दो छिद्र, कान के दो छिद्र और मुख का एक छिद्र—ये सात छिद्र हैं। इन सातों छिद्रों को अंगुलियों से बन्द करके डुबकी लगानी चाहिए; अन्यथा इनमें से किसी भी छिद्र से शरीर में पानी भर सकता है।

[स्वकृत-श्यामारहस्यात् स्नानप्रक्रियान्तरज्ञानोपदेश:]

अन्यत् स्नानरहस्यन्तु श्यामाख्ये चैव मत्कृते।
अनुसन्धेयमत्रैव नोक्तन्तु ग्रन्थगौरवात्।।१४।।

अन्यदिति। श्यामाख्ये श्यामारहस्यनामके निबन्धे। श्रीमत्पूर्णानन्दपरमहंसकृते श्यामारहस्ये प्रथमपरिच्छेदे प्रातःकृत्यनिरूपणानन्तरम् 'अथ नद्यादौ गत्वा कालिकारूपं सर्वं विभाव्ये'त्यादिना स्नानरहस्यं विशिष्य निरूपितम्।

ग्रन्थकार श्रीपूर्णानन्द परमहंस ने अपने 'श्यामारहस्य' नामक एक अन्य निबन्धग्रन्थ में प्रातःकृत्य-निरूपण के बाद स्नान-रहस्य (स्नान-विधि) का विशेष रूप से निरूपण किया है। जिज्ञासु साधक यह निरूपण उक्त ग्रन्थ में देख सकते हैं। ग्रन्थ-गौरव के भय से उनका यहाँ निरूपण नहीं किया जा रहा है॥१४॥

[वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्या, तत्राचमनादि]

ततश्च वैदिकीं संध्या कृत्वाचम्य विधानतः।

इसके बाद वैदिकी सन्ध्या के बाद तान्त्रिकी सन्ध्या करे।

विमर्श—वैदिकी सन्ध्या करने का अधिकार यज्ञोपवीत संस्कार-सम्पन्न द्विज साधकों का है। जिनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ है, वे वैदिकी सन्ध्या करने के अधिकारी नहीं हैं। ऐसे साधक केवल तान्त्रिक-सन्ध्या करें।

[षडङ्गन्यासपुरःसरमघमर्षणम्]

षडङ्गन्यासमाचर्य वामहस्ते जलं ततः॥१५॥
गृहीत्वा दक्षहस्तेन सम्पुटं कारयेत्ततः।
शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः॥१६॥
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया।

दक्षहस्तेन सम्पुटं कारयेदाच्छादयेत्। आच्छाद्य च शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैः हं यं वं लं रमित्येतैस्त्रिधाऽभिमन्त्र्य तत्त्वमुद्रया मूलमन्त्रेण तज्जलं शिरसि सप्तवारं निक्षिपेदिति सम्बन्धः। तत्त्वमुद्रालक्षणमाह गन्धर्वतन्त्रे सप्तमपटले—

अङ्गुष्ठानामिकायोगं (:) तत्त्वमुद्रेयमीरिता।

अत्र विशिष्यानुक्तावपि वामहस्ताङ्गुलिविवरगलितजलबिन्दुभिः शिरसि प्रोक्षणं विधेयम्, गन्धर्वतन्त्रे षष्ठपटले—

वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकबिन्दुभिः।
सप्तधा प्रोक्षणं कुर्यान्मूर्ध्नि मन्त्रमनुस्मरम्॥
अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य साधकः।
नासामाश्लिष्य तोयेन ततस्तेनाघमर्षणम्॥

इत्यादिना तथा व्यक्तमभिधानात्। अत्र ततस्तेनाघमर्षणमित्युक्त्या निरुक्त-संस्कारसंस्कृतजलेन नासापुटोत्तोलितेन पापक्षालनस्यैवाघमर्षणत्वमुक्तम्। मूले वहन्नासापुटेन तु उत्तोल्य क्षालयेत् पापमित्युक्तम्। उत्तोलनक्रममाह गन्धर्वतन्त्रे षष्ठपटले—

ईडयाकृष्य देहान्तः क्षालितैः पापसञ्चयैः।
कृष्णवर्णं तदुदकं वामनाड्या विरेचितम्॥
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च।
पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः॥ इति।

यथाविधि आचमन और षडङ्ग न्यास करके मन्त्रज्ञ साधक वाम करतल में जल लेकर उसे दाहिने करतल से आच्छादित कर ले। शिव (हं), वायु (यं), जल (वं), पृथ्वी (लं) तथा वह्नि (रं) बीजों से उस जल को तीन बार अभिमन्त्रित करे। इसके बाद दाहिने हाथ से तत्त्वमुद्रा से उस जल को मूल मन्त्र का जप करते हुए सात बार अपने सिर पर छिड़के॥१५-१६॥

विमर्श—अंगूठा और अनामिका के योग से तत्त्वमुद्रा बनती है॥

निक्षिपेत्तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च॥१७॥
तत्तु तेजोमयं ध्यात्वा वहन्नासापुटेन तु।
उत्तोल्य क्षालयेत् पापं वामकुक्षिस्थितं नरम्॥१८॥
ब्रह्महत्याशिरस्कञ्च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम्।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्॥१९॥
तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम्॥२०॥
खड्गचर्मधरं क्रूरं कृष्णं क्रोधप्रपूरितम्।
नानापातकसङ्घैस्तु सर्वाङ्गं परिचिन्तयेत्॥२१॥
भूमौ वज्रशिलायान्तु तं त्यजेदघसञ्चयम्।

पापपुरुषस्य स्वरूपमाह—**पापमित्यादिना**। पापं नरं पापपुरुषं तं विशिनष्टि वामकुक्षिस्थितमित्यादिना।

अभिसिञ्चन से जो जल शेष रह गया है, उसे वाम करतल से दक्षिण करतल (हथेली) में लायें। वह जल अत्यन्त तेजोमय है, ऐसी भावना करें। तत्पश्चात् उक्त तेजोमय जल को नाक के समीप ले आयें। वामकुक्षि में पाप-पुरुष का ध्यान करके उस तेजोमय जल को 'वहन्नासापुट' से शरीर के अन्दर खींचें और यह भावना करें कि इस तेजोमय जल ने पापपुरुष को प्रक्षालित कर दिया है। पापपुरुष का प्रक्षालन करने के कारण वह जल काला पड़ गया है। इस प्रदूषित जल को दूसरे नासापुट से निकालकर वाम करतल पर गिरायें और परिकल्पित चट्टान पर खींचकर पटक दें।

'वहन्नासापुट' का अर्थ है वह नथुना, जिससे श्वासवायु शरीर में जा रही है—अर्थात् वह नासापुट, जिससे उस समय साँस ले रहे हैं।

पाप-पुरुष—यह पापपुरुष पेट के अन्दर वामभाग में बैठा हुआ है। इसका रंग काला है। आँखें लाल हैं। दाढ़ी और मूँछ के बाल लाल हैं। ब्रह्महत्या इसका सिर है। स्वर्ण (सोना) की चोरी इसके दोनों हाथ हैं। गुरुतल्पगमन (गुरुपत्नी एवं तत्सम पूजनीया महिलाओं से व्यभिचार) उसकी कमर है। शराबखोरी इसका हृदय है। पापी पुरुषों की संगत करना उसके पैर हैं। अन्य पाप उसके अंग-प्रत्यंग हैं। उप-

पातक उसके रोयें हैं। स्वभाव से ही क्रोधी इस पापपुरुष के हाथ में ढाल और तलवार है। इसी पापपुरुष को उक्त तेजोमय जल से प्रक्षालित करें। पापपुरुष के प्रक्षालन से दूषित जल को दूसरे नथुने से बाहर लाकर परिकल्पित शिला पर पटक दें॥१८-२१॥

विमर्श—'अघमर्षण' नामक यह भावमयी क्रिया है। दाहिनी हथेली पर रखे हुए जल को वस्तुतः नासापुट से नहीं खींचा जाता। केवल खींचने की भावना की जाती है। इसी तरह दूसरे नासापुट से कोई जल नहीं निकाला जाता। इसकी भी केवल भावना की जाती है।

[सन्ध्याया अनन्तरप्रक्रियोपदेशस्तर्पणञ्च]

ततश्च तान्त्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा सन्तर्पयेत् पराम्।।२२।।
देवर्षिपितृपूर्वान्तु सायुधां सपरीकराम्।
जले वा तर्पयेद्देवीं गृहे वा तर्पयेत् सुधीः।।२३।।

ततश्चेति। ततो निरुक्ताघमर्षणानन्तरं तान्त्रिकीं सन्ध्यामवशिष्टां कृत्वा तर्पणमाचरेत्। अत्र तन्त्रसारे श्रीविद्याप्रकरणे तान्त्रिकस्नानानन्तरं तान्त्रिकाघमर्षणान्तं कर्म कृत्वा कुर्यादि'त्युक्तम्।

पूर्णानन्दगुरुणा ब्रह्मानन्दपरमहंसेन तु त्रिपुरार्चनरहस्ये अघमर्षणानन्तरं 'करौ प्रक्षाल्य पूर्ववदाचम्य सूर्यमण्डले देवीं ध्यात्वा जलेन पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य अञ्जलौ जलमादाय उत्थाय 'वाग्भवेश्वरि विद्महे कामेश्वरि धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि एष तेऽर्घः स्वाहा' इत्यर्घत्रयं दत्वा ह्रां ह्रीं हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहेति सूर्यायार्घ्यत्रयं दत्त्वा गायत्रीं मूलञ्च यथाशक्ति जप्त्वा जपं देव्यै निवेद्य तां हृदि विसर्ज्य षडङ्गं कुर्यादिति सन्ध्या'—इत्यन्तमभिधाय 'अथ तर्पणम्' इत्यादिना तर्पणविधिरुपदिष्टः।

कौलावलीनिर्णये द्वितीयोल्लासे अघमर्षणान्तमभिधाय,

प्रक्षाल्य हस्तयुगलमाचामेत्तदनन्तरम्।
मायाप्राणात्मकं मन्त्रं मार्तण्डभैरवाय च।
प्रकाशशक्तियुक्ताय अर्घ्यं स्वाहा ततो वदेत्।
सूर्यायार्घ्यं विधायाथ शक्तिसन्ध्या प्रकीर्तिता।
विभाव्य पुरतो यन्त्रं तत्र देवीं गणान्विताम्।
गृहीत्वा गन्धतोयञ्च कुलपात्रं ततः परम्।
तर्पयेद्देवतावक्त्रे विधिवत् साधकोत्तमः।।

इत्यादिना अघमर्षणानन्तरं हस्तक्षालनाऽचमनपूर्वकं सूर्यार्घ्यान्तमभिधाय देवीतर्पणमुपदिष्टम्।

प्रकृते तु अघमर्षणानन्तरं 'तान्त्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा सन्तर्पयेत् परा'मित्यभिधानात् तर्पणात् परं सूर्यार्घ्यदानाभिधानाच्च सन्ध्यां कृत्वेत्यनेन सूर्यार्घ्यदानमूलमन्त्रजपादिवर्जं स्वगुरुब्रह्मानन्दाभिमतकरप्रक्षालनादिदेव्यर्घ्यदानान्तं कर्म समाप्येत्याशयः पूर्णानन्द-परमहंसानामिति प्रतिभाति। अत्राऽऽचार्याणां मतभेददर्शनात् स्वस्वसम्प्रदायानुसारेणैकतमः पक्षः समाश्रयणीय इति दिक्।

इसके बाद तान्त्रिकी सन्ध्या करें। तान्त्रिकी सन्ध्या करने के बाद देवताओं-ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करने के बाद विद्वान् साधक जल में (जलाशय में ही) अथवा स्नान करके घर में आकर देवी का सपरिवार तर्पण करें।।२२-२३।।

विमर्श—'अघमर्षण' के बाद तान्त्रिकी सन्ध्या की अन्य क्रियायें की जाती हैं। इन शेष कृत्यों के सम्बन्ध में आचार्यों में मतैक्य नहीं है। अतः बुद्धिमान् साधक को अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार सन्ध्याकृत्य करने चाहिए।

संशोध्य वाग्भवेनापः कामराजेन दीपकम्।
अमृतं शक्तिकूटेन तेनैव तर्पयेत् पराम्।।२४।।
यन्त्रराजं जले ध्यात्वा देवीमावाहयेत्तदा।।२५।।
गणेशादींश्च सन्तर्प्य गणनाथांश्च तर्पयेत्।
सरस्वत्यादि सन्तर्प्य भद्रकाल्यादि दैवतम्।।२६।।

वाग्भव बीज से जल का शोधन करके कामराज से उसे दीपित तथा शक्तिकूट से उसका अमृतीकरण करें। जल में यन्त्रराज की कल्पना करके उसमें देवी का आवाहन करें। गणेश आदि का तर्पण करके गणनाथों, तत्पश्चात् सरस्वती आदि का तर्पण करें। तत्पश्चात् भद्रकाली आदि देवताओं का तर्पण करें।।२४-२६।।

यन्त्रबाह्यचतुर्द्वारि शस्तौ च गुरुतर्पणम्।
अमुकानन्दनाथञ्च अमुकाम्बापदद्वयम्।।२७।।
अग्नौ परं गुरुञ्चैव नैर्ऋत्यां परमेष्ठिनम्।
परापरञ्च वायव्यां गुरुपत्नीञ्च मध्यमे।।२८।।
षडाननञ्च सन्तर्प्य ब्रह्मादिपञ्चदेवताः।।२९।।
देव्यावाहनविद्याश्च तिथिनित्याञ्च तर्पयेत्।
त्रिवारं मूलविद्याञ्च स्वशक्त्या सप्तधा जलैः।।३०।।
भाषापञ्चमयीं देवीं सौभाग्यां पञ्चमीं ततः।
अणिमादींश्च सन्तर्प्य ब्रह्माण्याद्यष्टदेवताः।।३१।।
संक्षोभण्यादिमुद्राश्च त्रिपुरां प्रकटां ततः।
कामाकर्षणरूपादि तर्पयेत्त्रिपुरेश्वरीम्।।३२।।

सुगुप्तयोगिनीस्तत्र अनङ्गकुसुमादिकाः।
सुन्दरीं तर्पयेत्तत्र सुगुप्ततरयोगिनीम्।।३३।।
संक्षोभण्यादिशक्तीश्च तथा त्रिपुरवासिनीम्।
योगिनीसम्प्रदायाश्च सर्वसिद्ध्यादिदेवताः।।३४।।
श्रीपरां त्रिपुरां नित्यां तर्पयेत् कुलयोगिनीम्।
सर्वज्ञादींश्च सन्तर्प्य तथा त्रिपुरमालिनीम्।।३५।।
निगर्भयोगिनीस्तत्र वशिन्याद्यष्टदेवताः।
तर्पयेत्त्रिपुरां सिद्धां रहस्ययोगिनीस्था।।३६।।
जम्भादींस्त्रिपुरां देवीमतिरहस्ययोगिनीम्।
षडङ्गयुवतीश्चैव कामेश्वर्यादिकं त्रयम्।।३७।।
मूलविद्यां ततो मन्त्री महात्रिपुरसुन्दरीम्।
सर्वानन्दमयं चक्रं तथैव परमेश्वरीम्।।३८।।
चतुःसमयदेवीन्तु बौद्धादिदेवतां ततः।
बटुकादींश्च सन्तर्प्य एकैकाज्जलिना सुधीः।।३९।।
स्वस्वस्थाने महादेवीं बिन्दौ द्वादशधा पुनः।
तर्पणञ्च समाप्याथ त्रिवारं प्रोक्षणं तनौ।।४०।।
त्रिधा चार्घ्यं दिनेशाय तन्मुखं सम्यगुत्क्षिपेत्।।४१।।

यन्त्र के बाहर चारो द्वारों पर गुरुओं का तर्पण करें। 'अमुकानन्द अमुकाम्बां तर्पयामि' इस तर्पणमन्त्र से तर्पण करें। अग्निकोण में परमगुरु का, नैर्ऋत्य द्वार पर परमेष्ठि गुरु का एवं वायव्य में परापर गुरु का तर्पण करें। मध्य में षडानन का तर्पण करके ब्रह्मा आदि पाँच देवताओं का तर्पण करें। देवी के वाहनों, विद्याओं, तिथि-नित्याओं का तर्पण करके मूलविद्या का तीन बार तर्पण करें। भाषा आदि पाँच देवियों, सौभाग्य विद्या, पञ्चमी देवी के बाद अणिमा आदि अष्टसिद्धियों, ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं, संक्षोभिणी मुद्रा आदि प्रकट योगिनियों-सहित चक्रनायिका त्रिपुरा का तर्पण करके त्रिपुरेश्वरी-सहित कामाकर्षिणी आदि गुप्त योगिनियों का तर्पण करें। त्रिपुरसुन्दरी-सहित अनंगकुसुमा आदि गुप्ततर योगिनियों, त्रिपुरवासिनी-सहित सर्व-संक्षोभिणी आदि चतुर्दश सम्प्रदाययोगिनियों, त्रिपुराश्री-सहित सर्वसिद्धिप्रदा आदि कुलकौल योगिनियों, त्रिपुरमालिनी-सहित सर्वज्ञा आदि निगर्भयोगिनियों एवं त्रिपुरा-सिद्धा-सहित वशिनी आदि रहस्ययोगिनियों का तर्पण करें। जम्भादि अस्त्रों का तर्पण करके त्रिपुराम्बिका-सहित कामेश्वरी आदि रहस्यातिरहस्य योगिनियों का तर्पण करें। हृदय आदि षडङ्ग युवतियों, त्रिपुरभैरवी, मूलविद्या महात्रिपुरसुन्दरी, सर्वानन्दमय चक्र

का तर्पण करें। समया देवियों तथा बौद्ध आदि दर्शनों का तर्पण करने के बाद अपने-अपने स्थान पर बटुक आदि देवताओं का एक-एक अंजलि जल से तर्पण करें। इसके बाद मूल बिन्दु पर भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का बारह (१२) बार तर्पण करें। फिर तीन बार प्रोक्षण करें। इसके बाद सूर्य भगवान् को तीन बार अर्घ्य दें॥२७-४१॥

[मार्त्तण्डभैरवध्यानम्]

हेमाम्भोजप्रवालप्रथितनिजरुचिं चारुखट्वाङ्गपद्मौ
चक्रं शक्तिं सपाशं शृणिमपि रुचिरामक्षमालां कपालम्।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं
मार्त्तण्डं वल्लभार्द्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः॥४२॥

भगवान् मार्तण्डभैरव की देह-कान्ति प्रवाल (मूँगों) के समान रक्तवर्ण की है। वे एकमुखी हैं। त्रिलोचन हैं। उनकी आठ भुजायें हैं। उनकी इन आठ भुजाओं में खट्वांग, पद्म, चक्र, शक्ति, पाश, शृणी, अक्षमाला और कपाल हैं। सिर पर मणियों से जगमगाता मुकुट और गले में चमकदार हार है। वे शक्ति-समन्वित हैं॥४२॥

[मार्त्तण्डभैरवाय (सूर्याय) अर्घ्यदानम्]

संस्मृत्य भैरवं देवं मार्त्तण्डाख्यं जगत्पतिम्।
मूलेन मनुना मन्त्री सूर्यस्य मनुनापि वा॥४३॥
मायाबीजं समुच्चार्य सोऽहन्तु विपरीततः।
सूर्यमन्त्रश्च सम्प्रोक्तो रक्तपुष्पजलादिभिः॥४४॥
मार्त्तण्डभैरवं ङेऽन्तं प्रकाशशक्तिसंयुतम्।
अर्घ्यं दत्त्वा मूलमन्त्रं जपेदष्टोत्तरं शतम्॥४५॥

मायेति। मायाबीजं ह्रीं। सोऽहमित्यस्य वैपरीत्येनोक्तौ हंसः इति स्यात्। एवञ्च ह्रीं हंसः इति सूर्यमन्त्रः। ततश्च मूलं निरुक्तसूर्यमन्त्रं वा समुच्चार्य मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहेति वदेदित्यर्थः।

भगवान् मार्तण्डभैरव (सूर्य) का ध्यान करके मूल मन्त्र से अथवा सूर्यमन्त्र से रक्तपुष्प-समन्वित जल से उन्हें अर्घ्य प्रदान करें। 'ह्रीं हंसः' यह सूर्यमन्त्र है। मूल मन्त्र अथवा उपर्युक्त सूर्यमन्त्र का उच्चारण करके 'मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्ति-सहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा' का जप करते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें। मूल मन्त्र का १०८ बार जप करें॥४३-४५॥

प्रयोगक्रम—'ह्रीं हंसः। मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा'।

[तत्र सूर्यमण्डले रेखाध्यानम्]

सवितुर्मण्डले देवीं ध्यात्वा चन्द्रकलाधराम्।
सद्यःसन्तप्तहेमाभां सूर्यमण्डलरूपिणीम्।।४६।।
भास्वद्रत्नौपमुकुटां नानाभरणभूषिताम्।
पाशाङ्कुशाभयवरान्—

पाशेति। पाशाङ्कुशाभयवरान् दधतीमिति शेषः।

सूर्य नारायण को अर्घ्य देने के बाद सूर्यमण्डल में षोडश कलाओं से युक्त देवी का ध्यान करें। सूर्यमण्डलरूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का वर्ण सद्यः पिघलाये गये स्वर्ण के समान चमकदार पीताभ है। वे रत्नजटित मुकुट तथा नाना प्रकार के अलंकार धारण की हुई हैं। उनके हाथों में पाश-अंकुश तथा अभय एवं वरमुद्रा है।।४६।।

[अथ यागस्थानप्रवेशक्रमः]

—अथ चाङ्कुशमुद्रया।।४७।।
हृदये तां समानीय हृदि मन्त्रं परामृशन्।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत्।।४८।।

अथेति। एवं ध्यानानन्तरम् अङ्कुशमुद्रया तां हृदि अनाहतपद्मे समानीय सवितृमण्डलादिति शेषः। अङ्कुशमुद्रा-लक्षणमाह तन्त्रसारे—

ऋज्वीञ्च मध्यमां कृत्वा तर्जनीं मध्यपर्वणि।
संयोज्याऽऽकुञ्चयेत् किञ्चिन्मुद्रैषाऽङ्कुशसंज्ञिका।। इति।

मन्त्रं परामृशन् तन्मूलमन्त्रस्वरूपं चिन्तयन्। अबहिर्मानसः हृत्पद्मस्थस्वेष्ट-देवतासमाहितमनाः। यागभूमिं पूजास्थानम्

भगवती का इस प्रकार ध्यान करके अंकुश मुद्रा से उन्हें सूर्यमण्डल से हृदय में लाकर 'नमः' कहकर उन्हें प्रणाम करें। तत्पश्चात् मन्त्रसाधक यागमण्डप में आये।।४७-४८।।

[प्रशस्तयागभूमयस्तत्र देवीपूजाविधिश्च]

एकलिङ्गे पर्वते वा पितृभूमौ सरस्तटे।
गङ्गागर्भे तटे वापि सङ्गमे शून्यमन्दिरे।
नदीतीरे विल्वमूले पूजयेत् परमेश्वरीम्।।४९।।

पूजास्थानानि निरूपयति—एकलिङ्ग इत्यादिना। एकलिङ्गलक्षणमग्रे वक्ष्यति। पितृभूमौ श्मशाने। सङ्गमे नदीसङ्गमे। संग्राम इति पाठे तु संग्रामभूमावित्यर्थः। व्यक्तमाह श्यामारहस्यधृतमुण्डमालातन्त्रे—

नदीतीरे विल्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि।
एकलिङ्गे पर्वते वा देवागारे चतुष्पथे।
शवस्योपरि मुण्डे च जले वा कण्ठपूरिते।
संग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने।
यत्र कुत्र स्थले रम्ये यत्र वा स्यान्मनोलयः।। इति।

विशेषस्तु गन्धर्वतन्त्रे पञ्चविंशपटले द्रष्टव्यः।

इस श्लोक में भगवती की पूजा-उपासना के लिये प्रशस्त स्थान बताये गये हैं। एकलिङ्ग मन्दिर, पर्वतशिखर, पवित्र श्मशान, नदी का स्वच्छ एवं पवित्र तट, गंगागर्भ, गंगा का तट, संगमक्षेत्र, शून्य-मन्दिर, नदी का किनारा, बिल्ववृक्ष के मूल के समीप भगवती का पूजन प्रशस्त है।।४९।।

[एकलिङ्गलक्षणम्]

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते।
तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा।।५०।।

पूर्वमेकलिङ्गे पर्वते वेत्याद्युक्तम्, तदेकलिङ्गलक्षणमाह—पञ्चक्रोशान्तर इत्यादिना।

जिस शिव मन्दिर के इर्द-गिर्द पाँच कोस की परिधि में कोई अन्य शिव-मन्दिर नहीं हो, उसे एकलिङ्ग कहते हैं। ऐसे मन्दिर में की गई पूजा अत्यन्त सिद्धि देने वाली होती है।।५०।।

[अथ द्वारपूजा, तत्र प्रथमं हस्तपादप्रक्षालनम्]

ततः पूजागृहद्वारि क्षालयेत् पाणिपादकौ।।५१।।

याग-भूमि में आकर मण्डप के बाहर ही हाथ-पैरों को अच्छी तरह धोने के बाद ही मण्डप में प्रवेश करें।।५१।।

[दूर्वाचयनम्]

विना वै दूर्वया देवीपूजा नास्तीह कर्हिचित् ।
तस्माद्दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी शुभा।।५२।।

दूर्वा (दूब) सर्वपुष्पमयी एवं पवित्र है। अतः दूर्वा के बिना भगवती श्रीविद्या की पूजा पूर्ण नहीं होती। अतः एतदर्थ दूर्वा का चयन करना चाहिए।।५२।।

[आचमनम्]

हस्ते दूर्वाङ्कुरं दत्त्वा आचामेद् विधिपूर्वकम्।।५३।।

आचामेदेति। अत्र तन्त्रसारकृता आत्मतत्त्वादिनाचमनमुक्तम्।

हाथ में दूर्वा लेकर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिए।।५३।।

[दिक्पालपूजा]

पूर्णचन्द्रान्तराले च ध्यात्वा श्रीगुरुपादुकाम् ।
पूर्वादिक्रमयोगेण सर्वदिक्पालमर्चयेत्।।५४।।

पूर्णेति। पूर्णचन्द्रान्तराले सहस्रारकर्णिकास्थितस्य पूर्णचन्द्रस्यान्तराले श्रीगुरुपादुकां ध्यात्वेत्यर्थः। सर्वेति। पूर्वादिक्रमयोगेण निरुक्तपूर्णचन्द्रान्तराले सर्वदिक्पालमर्चयेदित्यर्थः। सहस्रारे दिक्पालानामिन्द्रादीनामवस्थितिमाह निर्वाणतन्त्रे दशमपटले, सहस्रारं प्रकृत्य—

एवं ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्यास्त्रिदशेश्वराः।
स्तुतिभक्तिपराः सर्वे दिव्यभावैः सदा स्थिताः।। इति।

सहस्रदल कमल की कर्णिका के पूर्णचन्द्र के अन्तराल में श्रीगुरुपादुका का ध्यान करके उनका पूजन करने के बाद उसी अन्तराल में पूर्वादि क्रम से विराजित इन्द्र आदि दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए।।५४।।

[तत्र क्रमान्तरम्]

सामान्यार्घ्यं विधायाथ क्रमेण साधकोऽथवा।
इन्द्रं स्वशक्तिसहितं पूर्वद्वारे समर्चयेत्।।५५।।
यमञ्च दक्षिणद्वारि पश्चिमे वरुणं तथा।
कुबेरमुत्तरद्वारि वह्निं वह्नौ च निर्ऋतिम्।।५६।।
नैर्ऋत्यां पूजयेन्मन्त्री तथैव वायुकोणके।
वायुमीशे तथेशानमूर्द्ध्वे प्रजापतिं तथा।।५७।।
अनन्तं गन्धपुष्पाद्यैरधश्च परिपूजयेत्।।५८।।

दिक्पालपूजायां क्रमान्तरमाह—सामान्यार्घ्यमित्यादिना। कल्पेऽस्मिन् सामान्यार्घ्यं विधाय मण्डपस्य पूर्वादिद्वारचतुष्टये क्रमेणेन्द्र-यम-वरुण-कुबेरान् कोणचतुष्टये वह्नि-निर्ऋति-वाय्वीशानान् ऊर्द्ध्वे प्रजापतिमधश्चानन्तं पूजयेदिति।

दिक्पालों की पूजा का एक अन्य क्रम भी है। सामान्य अर्घ्य की स्थापना करने के बाद पूर्व आदि चार दिशाओं में इन्द्र आदि की तथा अग्निकोण आदि में अग्नि आदि की पूजा करनी चाहिए। पूजा का क्रम इस प्रकार है। पूर्व द्वार पर शक्ति-सहित इन्द्र की, दक्षिण द्वार में यम की, पश्चिम द्वार में वरुण की तथा उत्तर द्वार में कुबेर की गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करने के बाद अग्निकोण में अग्नि की, नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋति की, वायव्य कोण में वायु की, ईशान कोण में ईशान की, ऊपर की ओर (इन्द्र और ईशान के मध्य में) प्रजापति ब्रह्मा की तथा नीचे की ओर (निर्ऋति तथा वरुण के मध्य में) अनन्त की पूजा करें।।५५-५८।।

[अस्त्रपूजा]

पूर्वादिक्रमयोगेण वज्राद्यस्त्रं यजेद् बुधः।।५९।।

पूर्वादीति। वज्राद्यस्त्रमिन्द्रादीनामिति शेषः। अत्र पूर्वादिक्रमयोगेणेत्यनेन प्रथमकल्पे पूर्वादिक्रमेणास्त्रपूजनं द्वितीयकल्पे तु पूजाक्रमानुसारेण प्रथममिन्द्रादि-दिक्पतीनां ततश्चाग्न्यादिकोणाधिपतीनामस्त्राणि पूजयेत्। प्रधानपूजाक्रममुल्लङ्घ्य तदङ्गभूतास्त्रपूजायामन्यथाकरणे प्रमाणाभावादिति ध्येयम्।

इन्द्र और दिक्पालों के समीप उनके वज्र आदि आयुधों का उपर्युक्त पूर्वादि क्रमयोग से पूजन करें।।५९।।

विमर्श—इसका अर्थ यह है कि पूर्व आदि चारो दिशाओं में पूजन करने के बाद अग्नि आदि कोणों में पूजा करें।

[पूजनीयान्यस्त्राणि]

वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशाङ्कुशे ततः।
गदात्रिशूलपद्मञ्च चक्रमाराधयेत् क्रमात्।।६०।।

वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र—दिक्पालों के पूजनीय अस्त्र हैं।।६०।।

इसके बाद पूर्वादि क्रम से गणेश आदि की पूजा करें। यथा—

[पूर्वादिक्रमेण गणेशादिपूजा]

गणेशञ्चैव क्षेत्रेशं द्वारश्रियञ्च देहलीम्।
पूर्वद्वारे यजेत् पश्चाद्दक्षिणे गणनायकम्।।६१।।
दुर्गाञ्च वटुकं क्षेत्रपालं कामरतिन्तथा।
प्रीत्या सह वसन्तञ्च शङ्खपद्मनिधी तथा।।६२।।
रत्नसोपानमिष्ट्वा तु पश्चिमे परिपूजयेत्।
सरस्वतीं महालक्ष्मीं मायां दुर्गां तथोत्तरे।।६३।।
भद्रकालीं तथा स्वस्तिं स्वाहां शुभकरीं तथा।
गौरीञ्च लोकधात्रीञ्च वागीश्वरीं प्रपूजयेत्।।६४।।

कामरतिं कामं रतिञ्चेत्यर्थः। प्रीत्या सह वसन्तं प्रीतिं वसन्तञ्चेत्यर्थः।

पूर्व द्वार में गणेश, क्षेत्रपाल, द्वारश्री, देहली की पूजा करके दक्षिण में गणनायक, दुर्गा, बटुक, काम एवं रति, प्रीति तथा वसन्त, शंख एवं पद्मनिधि तथा रत्नसोपान की; पश्चिम में सरस्वती, महालक्ष्मी, माया, दुर्गा की तथा उत्तर में भद्र-काली, स्वस्ति, स्वाहा, गौरी और लोकधात्री एवं वागीश्वरी की पूजा करें।।६१-६४।।

[अथ मण्डपप्रवेशः]

मण्डपान्तः प्रविश्याथ सव्यपादपुरःसरम्।
पूजाद्रव्याणि वै पश्येन्मूलमन्त्रेण साधकः।।६५।।

मण्डपान्तरिति। सव्यपादपुरःसरं दक्षिणपादपूर्वकम्। अत्र विप्रतिपद्यमानानां मतं पूर्वमेव (५।२८ श्लो० टी०) निराकृतमिति तत एव सर्वमवगन्तव्यम्।

साधक अपना दाहिना पैर आगे करके मण्डप में प्रवेश करे। मण्डल में प्रवेश करने के बाद वह 'मूल मन्त्र' पढ़ते हुए पूजा-सामग्री का निरीक्षण करे॥६५॥

[पुष्पशोधनम्]

पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पुष्पावकीर्ण इत्यपि।
स्वाहेति शोधयेत् पुष्पं वाराहीतन्त्रसम्मतम्॥६६॥

अथ पुष्पशोधनमन्त्रमाह—**पुष्प इति।** तथा च 'पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पुष्पावकीर्णे स्वाहा' इति श्रीविद्याविषये पुष्पशोधनमन्त्रः। यत्तु कुमारीतन्त्रे द्वितीयपटले—

अधिष्ठाने च पुष्पस्य प्रणवं पूर्वमुद्धरेत्।
शताभिषेकेति पदं शताभीति ततः परम्।
पेकेति च ततः प्रोक्तं हूं फट् स्वाहा ततः परम्।
प्रणवं पुष्पकेतुश्च तथा राजार्हतेऽपि च।
शताय सम्यगित्युक्त्वा जपेच्चैव च हूमिति।
पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे।
पुष्पचयावकीर्णे हूं फट् स्वाहा च ततः परम्।
विशोध्य पुष्पमेतेन जलं पूर्ववदाहरेत्॥

इति पुष्पशोधनमुक्तं तच्छ्रीविद्येतरविषयम्, श्रीविद्यायां विशेषविधानात्। अत एव हरतत्त्वदीधितौ निरुक्तकुमारीतन्त्रोक्तपुष्पशोधनक्रममभिधाय, श्रीविद्यायान्तु वाराहीतन्त्रे षष्ठपटले—

पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पुष्पावकीर्ण इत्यपि।
स्वाहेति शोधयेत् पुष्पं तेन पुष्पेण पूजयेत्॥

इत्युक्तम्। प्रकृतेऽपि निरुक्तवाराहीतन्त्रसम्मतक्रमदर्शनाय वाराहीतन्त्रसम्मतमिति विशिष्योक्तमिति निष्कर्षः।

वाराही तन्त्र के अनुसार श्रीविद्या के पूजन-क्रम में पुष्पशोधन का मन्त्र है—'पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पुष्पावकीर्णे स्वाहा'॥६६॥

[जलशोधनपूर्वकं प्रोक्षणम्]

जलसंशोधनं मन्त्रं न्यस्य वस्तुषु प्रोक्षणम्।

जलेति। जलशोधनमन्त्रः पूर्वमेव प्रदर्शितः।

जलशोधन मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके उसका अमृतीकरण करें। इस अमृतीकृत जल को पूजा-सामग्रियों पर छिड़क कर पूजा-सामग्रियों का अमृतीकरण करें। जल का अमृतीकरण करने के लिये उस पर धेनुमुद्रा प्रदर्शित की जाती है।

[अमृतीकरणादि]

ततोऽमृतीकृत्य तालं त्रिधाऽवगुण्ठ्य चेक्षणम्।।६७।।

तत इति। जलशोधनमन्त्रजपानन्तरम् अमृतीकृत्य तज्जलममृतरूपतां प्रापय्य धेनुमुद्रयेति शेषः। धेनुमुद्रां तथाऽमृतीकरणञ्चाऽऽह तन्त्रसारे—

अन्योऽन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्त्तिता।
अमृतीकरणं कुर्यात्तया साधकसत्तमः।। इति।

तालत्रयमग्रे वक्ष्यति। **अवगुण्ठ्येति।** अवगुण्ठनमुद्रामाह तन्त्रसारे—

सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता।। इति।

पूजा-सामग्रियों का अमृतीकरण करके तीन बार ताली बजायें तथा पूजा उपचारों का अवगुण्ठनी मुद्रा से अवगुण्ठन करें।।६७।।

[मण्डपपूजा]

त्रिपुरार्चनमण्डपाय नमोऽन्तेन गृहं यजेत् ।
अस्त्रेण प्रोक्षणं कृत्वा त्रिकोणं तत्र संलिखेत् ।।६८।।

त्रिपुरेति। 'ॐ त्रिपुरार्चनमण्डपाय नमः' इति प्रयोगः। अत्र विशिष्यानुक्तावपि प्रणवपूर्वक एव मन्त्रः प्रयोज्यः—

ॐकारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्त्तितम्।
स्वनाम सर्वदेवानां मन्त्र इत्यभिधीयते।।

इत्यनेन प्रणवादिनमोऽन्तसाध्यनाम्नो मन्त्रत्वविधानात्, त्रिपुरार्चनरहस्ये 'ॐ त्रिपुरायागमण्डपाय नमः' इति स्फुटमभिधानाच्च। अस्त्रेण फडित्यनेन।

'ॐ त्रिपुरार्चनमण्डपाय नमः' इस मन्त्र से मण्डप की पूजा करके अस्त्र मन्त्र से मण्डप में जलप्रोक्षण करें। पृथ्वी पर त्रिकोण बनायें।।६८।।

[पृथिवीपूजा]

प्रणवं शक्रबीजन्तु पृथिव्यै नम इत्यपि।
अनेन मनुना तत्र पृथिवीं पूजयेदपि।।६९।।

तत्र त्रिकोणे पृथिवीपूजनमाह—**प्रणवमित्यादिना।** प्रणवः ॐ, शक्रबीजं लं ततः पृथिव्यै नम इति। एवञ्च 'ॐ लं पृथिव्यै नमः' इति मन्त्रः पर्यवस्यति।

'ॐ लं पृथिव्यै नमः'—यह पृथ्वी-पूजन का मन्त्र है। इस मन्त्र से पृथ्वी का पूजन करें।।६९।।

[पृथिवीसम्प्रदानकमर्घ्यदानम्]

अथवाऽर्घ्यं समादाय मूलमन्त्रपुरःसरम्।

अथवा अर्घ्यदानपूर्वक पृथ्वी-पूजन का एक अन्य क्रम भी है।।

[तत्र प्रार्थनामन्त्रः]

वसुधे हेमगर्भाऽसि शेषस्योपरिशायिनि।
स्थानं मे देहि पूजार्थं गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे।।७०।।

[अर्घ्यदानमन्त्रः]

ॐ नमो भगवत्यै धरण्यै धरणीति च।
धरे स्वाहेति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यमनुत्तमम्।।७१।।

अर्घ्यदानरूपं पृथिवीपूजाकल्पान्तरमाह—**अथवेति**। अत्र कल्पे अर्घ्यं गृहीत्वा प्रथमं मूलमन्त्रं ततो वसुधे हेमगर्भासीति मन्त्रं पठेत्। ततश्च ॐ नमो भगवत्यै धरण्यै धरणीधरे स्वाहा इत्यनेन मन्त्रेणार्घ्यं दद्यात्। पूर्वकल्पे पूजनमात्रम्। अत्र तु पूजनमकृत्वा पृथिवीसम्प्रदानकमर्घ्यदानमात्रमित्येव सूचितमथवेत्यनेन।

प्रयोग-क्रम—मूल मन्त्र का उच्चारण करने के बाद 'वसुधे हेमगर्भाऽसि ....धरित्रि मे' इस मन्त्र से भगवती पृथ्वी से अर्घ्य स्वीकार करने की प्रार्थना करें। इसके बाद 'ॐ नमो भगवत्यै धरण्यै धरणीधरे स्वाहा' इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करें।।७०-७१।।

विमर्श—पृथ्वीपूजा के दो कल्प हैं। प्रथम कल्प के अनुसार गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि से पृथ्वी की पूजा की जाती है। दूसरे कल्प में पूजा न करके केवल अर्घ्य दिया जाता है।

[करशुद्धिः]

करशुद्धिं गन्धपुष्पैर्विदध्यान्मनुनाऽमुना।।७२।।
आद्यस्वरयुगं सेन्दुखण्डं मनुयुतो भृगुः।
सर्गीति मनुराख्यातस्ततो भूतान्निवारयेत्।।७३।।

अथ करशुद्धिप्रक्रियामाह—**करेत्यादिना**। अमुना वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गन्धपुष्पैः करशुद्धिं विदध्यादिति सम्बन्धः। अत्र पुष्पैरित्यनेन रक्तपुष्पैरिति बोध्यम् । व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटले—

गृहीत्वा रक्तपुष्पञ्च सगन्धं साधकस्ततः।
अनेनैव तु मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम्।
सम्मार्ज्य सव्यहस्तेन वामेन पाणिना ततः।
निर्मञ्छ्य कामबीजेन चाघ्राय वाग्भवेन तु।
ऐशान्यां निक्षिपेदेतच्छेष(च्छर)बीजेन पार्वति। इति।

अनेन करशुद्धेः क्रमोऽपि व्याख्यातः।

पूर्ववचने विदध्यान्मनुनाऽमुनेत्युक्तम्, तं मनुमाह—**आद्येत्यादिना आख्यात इत्यन्तेन**। आद्यस्वरयुगम् अकार आकारश्च। सेन्दुखण्डं सानुस्वारम् । एतेन अं आं

इति प्राप्तम् । मनुयुत इति। मनुश्चतुर्दशस्वर औकारस्तद्युतो भृगुः सकारः। स च सर्गी विसर्गयुक्तः, एतेन सौः इति लब्धम्। एवञ्च अं आं सौः इति करशोधनमन्त्रः पर्यवस्यति। गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटलेऽप्ययमेव पुष्पशोधनमन्त्र उक्तः। यथा—

मातृकाद्यं समुद्धृत्य द्वितीयञ्च सबिन्दुकम्।
शान्तान्त-कादिसंयुक्तमैकारान्तान्तयोजितम् ।
एवमेषा महाविद्या करशुद्धिकरी मता।।

एवञ्च प्रागुक्तगन्धर्वतन्त्रवचनपर्यालोचनया सगन्धं रक्तपुष्पं दक्षिणहस्तेनाऽऽदाय वामहस्तेन क्लीमिति कामबीजेन निर्मञ्छय ऐँ इति वाग्भवेनाऽऽघ्राय फडित्यस्त्रबीजेन ऐशान्यां निक्षिपेदिति करशोधनक्रमः प्रतीयते। निरुक्तकरशुद्धेः फलमाह तत्रैव—

अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पस्य ग्रहणात् भवेत्।
मर्दनात् करयोः शुद्धिर्निर्मञ्छनात्तु पृष्ठयोः।
घ्राणाद्देवाश्च तुष्यन्ति तीर्थानाञ्च समागमः।
प्रक्षेपात् सर्वविघ्नानां दूरसंस्थानमेव च।
दुर्गन्धोत्सृष्टसंस्पर्शदूषणं करयोस्तु यत्।
अज्ञानरूपं तत् सर्वं नाशयेद् विधिनाऽमुना।। इति।

'अं-आं-सौः' यह 'करशुद्धि' का मन्त्र है। इस मन्त्र से चन्दनचर्चित रक्त पुष्प लेकर 'करशुद्धि' करें। इसके बाद भूत-निवारण करें।

विमर्श (प्रयोग-क्रम)—उक्त 'करशुद्धि' मन्त्र का जप करके दाहिने हाथ से चन्दन-चर्चित रक्त पुष्प लें। कामबीज (क्लीं) का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों से उसे रगड़ें। वाग्भव बीज (ऐं) से उसे सूँघें और फिर 'फट्' (अस्त्र) का उच्चारण करते हुए ईशान दिशा में दूर फेंक दें। इसके बाद भूत-निवारण करें।

[तत्र मन्त्रः]

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।७४।।

यह भूत [१]उत्सारण का मन्त्र है।

[भौमविघ्नोत्सारणम्]

दूर्वाक्षतं क्षिपेद्दिक्षु मूलमन्त्रास्त्रमुच्चरेत्।
ततः कुमारिकां व्योमवह्निसर्गान्वितां बुधः।।७५।।
अस्त्राय फट् पदञ्चैव भूमिञ्चामृतया स्पृशन्।
पार्ष्णिघातत्रयं भूमौ कुर्याद्दक्षेतरस्य च।।७६।।

बुद्धिमान् साधक मूलमन्त्र-सहित 'फट्' का उच्चारण करते हुए चारो दिशाओं में दूर्वा और अक्षत फेंके। सुधाबीज (वं) का जप करते हुए पृथ्वी का स्पर्श करे। तत्पश्चात् 'ऐं ह्रः अस्त्राय फट्' इस मन्त्र का जप करते हुए बाँयें पैर की एड़ी से पृथ्वी पर तीन बार प्रहार करे॥७५-७६॥

[दिव्यविघ्नोत्सारणम्]

समुदञ्चितवक्त्रेण दिव्यान् विघ्नान् निवारयेत्॥७७॥

आँखें तरेर कर क्रोधमुद्रा से चारो ओर देखते हुए दिव्य विघ्नों का उत्सारण करें॥७७॥

[आन्तरिक्षविघ्नोत्सारणम्]

कुमार्याः त्रितयं तालं दद्यादूद्ध्वोर्द्ध्वयोगतः।
सशब्दं पादहृन्मस्तप्रदेशेषु यथाक्रमम्॥७८॥

पैर, हृदय और मस्तक के समीप ऊपर उठते हुए क्रम से ताली बजाकर आन्तरिक विघ्नों का उत्सारण करें। ताली बजाते समय कुमारी विद्या का उच्चारण करें॥७८॥

[दिग्बन्धनं वह्निप्राकारचिन्तनञ्च]

दशदिग्बन्धनं कृत्वा छोटिकाभिस्तु हस्तयोः।
वह्निप्राकारकं ध्यायेद्दिक्षु साधकसत्तमः॥७९॥

छोटिकाभिरिति। छोटिका तर्जन्यङ्गुष्ठाङ्गुलिध्वनिः।

इस प्रकार चुटकी बजाकर दसों दिशाओं का बन्धन करके मन्त्रज्ञ साधक वह्निप्राकार का चिन्तन करे॥७९॥

विमर्श—'वह्निप्राकार' का अर्थ है—आग का किला। विघ्नों का उत्सारण करने के बाद साधक साधना में विघ्न डालने वाले तत्त्वों से रक्षा के लिये अपने चारो ओर आग का किला बना ले। इसकी विधि का निरूपण यहाँ किया गया है।

[दिग्बन्धनमन्त्रः]

ऐन्द्रीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय ठ-द्वयम् ।
मन्त्रेणानेन कुर्वीत दिशां प्रागादिबन्धनम्॥८०॥

पूर्वं दशदिग्बन्धनं कृत्वेत्युक्तम्, तत्र मन्त्रमाह—ऐन्द्रीमित्यादिना। तथा च ऐन्द्रीं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहेति दिग्बन्धनमन्त्रः।

'ऐन्द्री चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय स्वाहा'—यह दिग्बन्धन का मन्त्र है। इस मन्त्र से पूर्व आदि सभी दिशाओं का अस्त्रमुद्रा से बन्धन करें॥८०॥

[दिग्बन्धने प्रयोज्याऽस्त्रमुद्रा]

आच्छाद्य दिक्षु तर्जन्या ज्येष्ठाग्रस्तनिताग्रया।
अस्त्रमुद्रेयमाख्याता दिशां प्रागादिबन्धने।।८१।।

निरुक्तदिग्बन्धने प्रयोज्यामस्त्रमुद्रामाह—**आच्छाद्येत्यादिना।** ज्येष्ठाग्रस्तनिताग्रया ज्येष्ठाया अग्रे स्तनितमग्रं यस्यास्तथाभूतया तर्जन्या दिक्षु आच्छाद्य बन्धनं कुर्वीत। दिशां प्रागादिबन्धने इयमस्त्रमुद्रा ख्यातेति सम्बन्धः। एवञ्च पूर्वं यत् छोटिकाभिस्तु हस्तयोरित्युक्तं तत्राप्येतदस्त्रमुद्रकृतच्छोटिकाभिरित्यर्थो बोध्यः।

ज्येष्ठा (अंगूठा) और तर्जनी के ऊपरी परवों को परस्पर मिलाने से अस्त्र मुद्रा बनती है। दिग्बन्धन करते समय यही अस्त्रमुद्रा दिखाई जाती है।।८१।।

[वह्निप्राकारमन्त्रः]

त्रैलोक्यं रक्ष रक्षेति हुं फट् स्वाहेति कीर्त्तितः।
तारादिकोऽयं मन्त्रः स्यादग्निप्राकारसंज्ञकः।।८२।।

पूर्वं वह्निप्राकारकं ध्यायेदित्युक्तम्, तत्र मन्त्रमाह—**त्रैलोक्यमित्यादिना।** तारादिकः प्रणवाद्यः। तथा च ॐ त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहेति अग्निप्राकारमन्त्रः। एतन्मन्त्रोच्चारणपूर्वकमग्निप्राकारं चिन्तयेदिति तात्पर्यम्।

'ॐ त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा'—यह अग्निप्राकार स्थापित करने का मन्त्र है।।८२।।

[अस्त्रमुद्रा]

त्रिशूलाग्रौ करौ कृत्वा व्यत्यस्तावभितो नयेत् ।
अस्त्रमुद्रेयमाख्याता वह्निप्राकारलक्षणा।
परद्रोहोपशमनी नागाशनिभयापहा।।८३।।

वह्निप्राकारस्वरूपनिरूपणायास्त्रमुद्रामाह—**त्रिशूलेति।** उभावेव करौ त्रिशूलाग्रौ त्रिशूलवत् अयं ययोस्तथाभूतौ कृत्वा, एतेन हस्तयोस्तर्जनीमध्यमानामिकास्त्रिशूलाग्रवदूर्ध्वं विस्फार्येत्युक्तं भवति। तादृशौ करौ व्यत्यस्तौ विपरीतौ अभितो नयेत् एकहस्तस्य निरुक्ताङ्गुलित्रयान्तरालेनापरहस्तस्य निरुक्तमङ्गुलित्रयं प्रवेशयेदित्यर्थः। इयं वह्निप्राकारलक्षणाऽस्त्रमुद्रा। यथा परे वह्निप्राकारमतिक्रम्य पुरमभिद्रोग्धुं न क्षमन्ते तथैतन्मुद्राविरचनशीलं साधकं साधनद्वेषिणो भूतहिंसादयो लेशतोऽपि नेशते हिंसितुमिति तात्पर्यम्। एतदेव फलाभिधानमुखेनाह—**परेत्यादिना।**

वह्निप्राकार-स्थापना का उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए चारो ओर त्रिशूल मुद्रा दिखायें। दोनों हाथों की कनिष्ठा अंगुलियों को मोड़कर उन्हें अंगूठे से दबा दें। तर्जनी-मध्यमा और अनामा—इन तीन अंगुलियों को त्रिशूल के शूलों की तरह ऊर्ध्वमुख रखें। दोनों करपृष्ठों को जोड़ दें। इस तरह त्रिशूल के आकार

वाली त्रिशूल मुद्रा बन जायगी। यह मुद्रा विघ्नों के प्रहार से साधक की रक्षा करती है॥८३॥

[जपविघ्नापनोदनम्]

अद्भिः पुष्पाक्षतैश्चैव वह्निबीजास्त्रमन्त्रितैः।
प्रक्षिपेत् प्रयतो मन्त्री जपविघ्नापनुत्तये॥८४॥

अद्भिरिति। वह्निबीजास्त्रमन्त्रितैः रं फट् इत्यनेन मन्त्रेण मन्त्रितैरित्यर्थः।

'रं-फट्' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल, पुष्प और अक्षत लेकर आसनस्थ साधक अपने चारो ओर विकीर्ण कर दे। इससे जप में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं होता॥८४॥

[ब्रह्म-वास्तुपुरुषयोरर्चा]

नैर्ऋत्यां वास्तुपुरुषान् ब्रह्माणञ्च ततो यजेत्।

मण्डप के नैर्ऋत्य कोण में वास्तुपुरुष और ब्रह्माजी की पूजा करें। इसके बाद भूमि पर त्रिकोण मण्डल बनायें।

[त्रिकोणमण्डलम्]

भूमौ त्रिकोणमालिख्याऽऽधारशक्त्यादिपूजनम्॥८५॥

इस त्रिकोण मण्डल पर 'आधारशक्ति' आदि का पूजन करें। पूजन मन्त्र है-– 'ह्रीं आधारादिशक्तिभ्यो नमः'। इस मन्त्र से त्रिकोण मण्डल पर गन्ध-पुष्प-अक्षत समर्पित करें॥८५॥

[तत्राऽऽसनस्थापनम्]

मनोहरमृदुश्लक्ष्णमासनं तत्र निक्षिपेत्।
आसनञ्चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमेव विवर्जयेत्॥८६॥

अब इस त्रिकोण मण्डल पर सुन्दर और नरम आसन बिछायें। कटे-छँटे आसन और टूटे-फूटे अर्घ्यपात्र का पूजन में कत्तई उपयोग नहीं करें॥८६॥

[आसनारोपणे ऋष्यादि]

मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम्।
कूर्मोऽत्र देवता प्रोक्ता आसनारोपणे ततः॥८७॥
विनियोगस्तु कथितस्ततो धृत्वा पठेदिमम्।

आसन पर बैठने का विनियोग है—'ॐ अस्य आसनारोपण मन्त्रस्य मेरुपृष्ठः ऋषिः। सुतलं छन्दः। कूर्मो देवता। आसनारोपणे विनियोगः।'

यह विनियोग करने के बाद पृथ्वी से प्रार्थना करें—

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥८८॥

यह पृथ्वी से आसन को पवित्र करने का प्रार्थना मन्त्र है। यह प्रार्थना करने के बाद आसन का अर्चन करें।।८८।।

[आसनार्चनमन्त्र:]

कूर्चत्रयं तत्र दत्त्वा मायाबीजं ततो वदेत्।
आधारशक्तिशब्दान्ते कमलासनमालिखेत्।
ङेऽन्तं नम-पदं दत्त्वा स्वासनं परिपूजयेत्।।८९।।

कूर्चेति। कूर्चत्रयं पञ्चमप्रकाशोक्तं (२२ श्लोक) पारिभाषिककूर्चाख्यकुशत्रयम्। अत्रासने कुशस्थापनं श्यामारहस्यधृतस्वतन्त्रेऽप्युक्तम्, यथा—

इति धृत्वा तु देवेशि कुशांस्तत्रैव दापयेत्।
मायाबीजं समुच्चार्य आधारशक्तिमुच्चरेत्।
कमलासनमालिख्य ङेनमोऽन्तं प्रपूजयेत्।। इति।

मायाबीजमित्यादि। तथा च ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम इत्यासनपूजामन्त्र: पर्यवस्यति। तन्त्रसारकारस्तु ऐँ ह्रीं श्रीमिति बीजत्रयपूर्वकमेतन्मन्त्रमाह। निरुक्तासनशुद्धेः फलमाह गन्धर्वतन्त्रे सप्तमपटले—

कुशिल्पिरचितत्वादि यदन्यासनदूषणम्।
अज्ञातरूपकं याति विलयं विधिना प्रिये।। इति।

प्रार्थना के बाद आसन पर तीन कुश रखकर आसन की पूजा करें। आसन-पूजन का मन्त्र है—'ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नम:'।

इस मन्त्र से अपने आसन की गन्ध-पुष्प से पूजा करें।।८९।।

[मन्त्राचमनम्]

यथोक्तविधिनाचम्य त्रिभि: कूटैर्यथाविधि।

तीन कूटों से यथाविधि आचमन करें।

विमर्श—श्रीविद्या-अर्चन में बाला विद्या के तीन कूटों से तीन बार आचमन किया जाता है। यथा—(१) ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। (२) क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। (३) सौ: शिवतत्त्वाय स्वाहा।

[आसनारोहणं गुरुपङ्क्तिपूजा च]

तद्धि चासनमारुह्य गुरुपूजां समाचरेत्।।९०।।

त्रिभि: कूटै: ऐँ क्लीं सौरिति बालाकूटत्रयेण। श्रीविद्यामधिकृत्य बालाबीजैस्त्रिभि: पीत्वेत्यादिभैरवतन्त्रवचनदर्शनात्।

प्रथमं वाग्भवं देवि कामराजं द्वितीयकम्।
तृतीयं शक्तिबीजन्तु शिवयुक्तं सदा भवेत्।।

इति हरतत्त्वदीधितिधृतरुद्रयामलवचने निरुक्तबालामन्त्रस्य कूटत्रयात्मकत्वश्रवणाच्च। अयमाचमनक्रमस्तु पञ्चमप्रकाशीयपञ्चविंशश्लोकटीकायां स्फुटमुपपादितः।

गुरुपूजां समाचरेदिति। अत्र पूजा प्रणामरूपा वक्ष्यमाणा। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे सप्तमपटले—

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मन्दस्मितमुखाम्बुजः।
वामकर्णोद्ध्वभागे तु गुरुश्च प्रणमेत् ततः।।
दक्षकर्णोद्ध्वभागे तु गणेशं प्रणमेद् बुधः।
दुर्गां नमेत् पुरोभागे पृष्ठतः क्षेत्रनायकम्।। इति।

आचमन करने के बाद आसन पर बैठें और गुरुपूजा करें।।९०।।

वामकर्णोद्ध्वदेशे तु सम्पूर्णे शशिमण्डले।
दक्षकर्णोद्ध्वभागे तु गणेशं पूजयेत्ततः।
मस्तकोपरिभागे तु दुर्गां देवीं स्मरेत्ततः।।९१।।

बाँयें कान के ऊपरी भाग में गुरुदेव की, दाहिने कान के ऊपरी भाग में गणेश की और मस्तक के ऊपरी भाग में दुर्गा देवी की (पृष्ठ भाग में क्षेत्रपाल की) पूजा करें।।९१।।

[तत्र साधकस्य वेशादिपारिपाट्यम्]

रक्तचन्दनसंयुक्तो रक्तमाल्येन संवृतः।
ताम्बूलरागवदनो रक्ताम्बरविराजितः।।९२।।
कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गः कारणानन्दमानसः।
कर्पूरसकलोन्मिश्रधूपदीपैर्विराजितः ।।९३।।
नानारक्तसमायुक्तो लाक्षारुणगृहे स्थितः।
मनःसङ्कल्परक्तो वा साधकः स्थिरमानसः।।९४।।

कीदृशः साधकौ गुरुप्रणामादीनि कर्माणि कुर्यादित्याह—**रक्तेत्यादि।**

इन तीन श्लोकों में श्रीविद्या के उपासक का वेष-विन्यास बताया गया है। लाल चन्दन का टीका लगाकर, लाल फूलों की माला एवं लाल रंग के वस्त्र पहिन कर, पान खाकर एवं प्रसन्नचित्त होकर साधक को त्रिपुरा-पूजन करना चाहिए। पूजागृह की दीवारें लाल रंग की हों तथा वह लाल रंग के पुष्पों की माला, दीपमालाओं से अलंकृत तथा कपूर आदि सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित होना चाहिए।।९२-९४।।

[आत्मरक्षा]

बालामन्त्रेण वा तस्या आद्यशेषेण वा सुधीः।
वक्ष्यमाणक्रमेणैव त्रिपुरसुन्दरिशब्दतः।।९५।।

आत्मानं रक्ष रक्षेति हृदि हस्तं निधाय च।
कृत्वात्मरक्षणं मन्त्रीकरशुद्धिं समाचरेत्।।९६।।

अथाऽऽत्मरक्षाक्रममाह—**बालेत्यादिना कृत्वात्मरक्षणमित्यन्तेन**। बालामन्त्रेण ऐँ क्लीं सौः इत्यनेन। तस्या बालाया आद्यशेषेण आद्यावशिष्टेन क्लीं सौः इत्यनेन वेत्यर्थः। एवञ्च हृदये हस्त दत्त्वा ऐँ क्लीं सौरित्यनन्तरं क्लीं सौरित्यनन्तरं वा त्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्षेति समुच्चरेदित्यात्मरक्षाक्रमः। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरि मां रक्ष रक्षेति प्रयोगो दृश्यते।

अथ करशुद्धिक्रममाह—**करशुद्धिमित्यादिना**। पूर्वोक्तेन आद्यस्वरयुगं सेन्दुखण्डं मनुयुतो भृगुः। सर्गीति मनुराख्यातः (१५।७१) इति वचनप्राप्तेन अं आं सौः इति मन्त्रेणैव द्विरावृत्त्या करशुद्धिं कुर्यादिति सम्बन्धः।

अत्रैतदवधेयम्—इयं करशुद्धिः करन्यासरूपा, अवसरप्राप्तत्वादितः परमेवाङ्गन्यासस्य वक्ष्यमाणत्वात् तन्त्रसारादिषु तथैव प्रतिपादितत्वाच्च। अत्र अं आं सौरिति बीजत्रयात्मकमन्त्रस्य द्विरावृत्त्या षडक्षरलाभात् अङ्गुष्ठादिकरतलपृष्ठान्तेष्वेकैकबीजयोग उक्तः। तथा चात्र कल्पे अं त्रिपुरसुन्दरि अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। आं त्रिपुरसुन्दरि तर्जनीभ्यां नमः। सौः त्रिपुरसुन्दरि मध्यमाभ्यां नमः। अं त्रिपुरसुन्दरिं अनामिकाभ्यां नमः। आं त्रिपुरसुन्दरि कनिष्ठाभ्यां नमः। सौः त्रिपुरसुन्दरि करतलपृष्ठाभ्यां नमः। इति प्रयोगः पर्यवस्यति।

'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष'—यह आत्मरक्षा का मन्त्र है। हृदय पर हाथ रखकर उपर्युक्त मन्त्र का तीन बार जप करके आत्म-रक्षा का विधान करने के बाद साधक को 'करशुद्धि' करनी चाहिए॥९५-९६॥

विमर्श—'क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि आत्मनं रक्ष रक्ष'—आत्मरक्षा का अपर मन्त्र है।

[करशुद्धिः]

पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण द्विरावृत्त्याऽथवा सुधीः।
बालाबीजत्रयादूदर्ध्वं ततस्त्रिपुरसुन्दरि।।९७।।
नम इत्यनुताऽङ्गुष्ठाद्यङ्गुलिन्यां नमोऽन्तिकाः।
न्यस्तव्या नाममन्त्राढ्यास्तलपृष्ठक्रमावधि।।९८।।

द्वितीयं कल्पमाह—**अथवेत्यादिना**। अत्रापि द्विरावृत्त्येति सम्बध्यते बाधकाभावात् मूलविद्याद्विरावृत्त्येत्यादिवक्ष्यमाणगन्धर्वतन्त्रद्वितीयपटलवचनस्वर-साच्च। तथा च ऐँ त्रिपुरसुन्दरि अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, क्लीं त्रिपुरसुन्दरि तर्जनीभ्यां नमः, सौः त्रिपुरसुन्दरि मध्यमाभ्यां नमः, ततश्च ऐँ त्रिपुरसुन्दरिं अनामिकाभ्यां नमः—इत्यादिरूपः प्रयोगः कर्त्तव्यः। तन्त्रसारे तु श्रीविद्याप्रकरणे अनयोः प्रथम एव क्रमोऽन्यादृशरीत्या प्रदर्शितो यथा—

एतद्बीजं द्विरावृत्त्या मध्यमाद्यङ्गुलीषु च।
शुद्धिं करस्य कुर्वीत तलयोः पृष्ठयोरपि।
चतुर्थीनतिसंयुक्तनाममन्त्रैः पृथक् पृथक्।। इति।

एतेन प्रथमतोऽनामिकादिकरतलपृष्ठान्तं ततोऽङ्गुलादिमध्यमान्तं करन्यासमाह। एतन्मते त्रिपुरसुन्दरिपदस्योल्लेखो न विहितः। एतत्प्रमाणानुसारेणैव तन्त्रसारकारैः अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। आं तर्जनीभ्यां नमः। सौः कनिष्ठाभ्यां नमः। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः— इत्येवं प्रयोगरूपः प्रदर्शितः। त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्ययमेव क्रमो दृश्यते, परन्तु तत्र निरुक्तनमोऽन्तत्वमनादृत्य अं मध्यमाभ्यां वषट्, आं अनामिकाभ्यां हूँ, सौः कनिष्ठाभ्यां वौषट्, अं अङ्गुलाभ्यां नम इत्यादिप्रयोग इति विशेषः। गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले तु—

मूलविद्याद्विरावृत्त्या सर्वाङ्गुलितलेषु च।
ङेऽन्तेषु परमेशानि न्यसेदङ्गानि षट् क्रमात्।
नमः स्वाहा वषट् वौषट् हूँ फडिति षडङ्गकम्।
करयोरथ विन्यस्य षडङ्गेषु तथा न्यसेत्।

इत्यनेन करन्यासे प्रागुक्तनमोऽन्तत्वमङ्गीकृत्य नमः स्वाहा वौषडाद्यन्तत्वमुक्तमिति प्रकारान्तरं दृश्यते। अत्र गन्धर्वतन्त्रवचने मूलविद्याद्विरावृत्त्येत्यस्यायमभिप्रायः— हरतत्त्वदीधितिधृतविश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले—

यस्य लोकस्य यं मन्त्रं दद्याच्च विधिना गुरुः।
तन्मूलमन्त्रं विज्ञेयं सर्वतन्त्रसमन्वितम्।।

इति मूलविद्यालक्षणं कृतम्। एवञ्च प्रागुक्तगन्धर्वतन्त्रवचने मूलविद्याद्विरावृत्त्येत्यनेन न केवलं श्रीतत्त्वचिन्तामण्युक्तबालाबीजमात्रमभिप्रेतम्, परन्तु प्रागुक्तासु सर्वास्वेव त्रिकूटात्मकविद्यासु श्रीगुरुदत्तस्वस्वेष्टमन्त्राणां संग्रह इति बोध्यम्। स्वयमप्येतदङ्गन्यासनिरूपणावसरे व्यक्तीकरिष्यति ग्रन्थकारः। एवञ्चात्र बहुधा मतभेददर्शनात् स्वस्वगुरुसम्प्रदायानुसारेणैकतमः क्रमः समादरणीय इति दिक्।

हृदय पर हाथ रखकर उपर्युक्त आत्मरक्षा मन्त्र की द्विरावृत्ति करके आत्मरक्षा का विधान करें। 'क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष' यह आत्मरक्षा का अपर मन्त्र है।

कर-शुद्धि का मन्त्र है—'अं-आं-सौः'। इसकी दो बार आवृत्ति करने से छः बीजाक्षर प्राप्त होते हैं। इनमें से प्रत्येक बीज के बाद नाम (त्रिपुरसुन्दरि) तथा 'नमः' की योजना करने से ६ मन्त्र प्राप्त होते हैं। अंगूठे से प्रारम्भ कर करतल-करपृष्ठ-पर्यन्त प्रत्येक अंगुलि में एक-एक मन्त्र का न्यास करें।।९७-९९।।

विमर्श (प्रयोग-क्रम)—करशुद्धि का प्रयोगक्रम है—

'अं' त्रिपुरसुन्दरि अंगुष्ठाभ्यां नमः। आं त्रिपुरसुन्दरि तर्जनीभ्यां नमः।

'सौः' त्रिपुरसुन्दरि मध्यमाभ्यां नमः। 'अं' त्रिपुरसुन्दरि अनामाभ्यां नमः।

'आं' त्रिपुरसुन्दरि कनिष्ठाभ्यां नमः। 'सौः' त्रिपुरसुन्दरि करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

'करशुद्धि' के अन्य प्रयोग-क्रम भी तन्त्र-ग्रन्थों में मिलते हैं। अतः अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त क्रम का प्रयोग करें।।

[बालामन्त्रः]

वाक् कामं शम्भुपूर्वन्तु शक्रस्वरविसर्गवत्।

[अङ्गन्यासः]

अनया बालया मन्त्री षडङ्गन्तु समाचरेत्।।९९।।

ननु पूर्वं करन्यासे बालामन्त्रेणेत्युक्तम् । अङ्गन्यासेऽपि बालाबीजपूर्वकत्वं वक्ष्यति तत् किमिदं बालाबीजं नामेत्यत आह—**वागिति**। वाक् वाग्भवबीजं ऐँ, कामं कामबीजं क्लीं, शम्भुपूर्वं शम्भुर्हकारस्तत्पूर्वं सकारः, तत्र शम्भुपूर्वं शक्रस्वरविसर्गवत् शक्रस्वरश्चतुर्दशस्वर औकारः विसर्गश्च। **शक्रस्वरविसर्गवदिति**। शम्भुपूर्वमित्यस्य विशेषणम्। एवञ्च ऐँ क्लीं सौरिति बालाविद्येति फलितम्। अनयेति निरुक्तया बालाविद्ययेत्यर्थः।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अर्चन-क्रम में अंगन्यास और करन्यास बालाबीज-पूर्वक किये जाते हैं। अतः इस श्लोक में बाला विद्या के तीनों बीजों का उद्धार बताया गया है।

वाक् अर्थात् वाग्भव बीज 'ऐं' प्रथम बीज है। काम अर्थात् कामबीज 'क्लीं' दूसरा बीज है। 'शम्भु' अर्थात् 'ह'कार का पूर्ववर्ती वर्ण 'स'कार जो शक्र स्वर (चौदहवें स्वर) अर्थात् 'औ' तथा विसर्गयुक्त है अर्थात् 'सौः'। 'ऐं क्लीं सौः' यह बाला विद्या है। इस बाला विद्या से मन्त्र-साधक षडङ्ग न्यास करें।।९९।।

अस्यास्त्रिबीजमुच्चार्य मन्त्री त्रिपुरसुन्दरि।
नम इत्यादितो वाच्यं षडङ्गानि ततः परम्।।१००।।

अत्राङ्गन्यासेऽपि क्रमद्वयमभिदधानः प्रथममाह—**अस्या इत्यादिना**। **अस्या बालायाः**। त्रिबीजं ऐँ क्लीं सौरिति। ततस्त्रिपुरसुन्दरीति। ततो नम इत्यतः पूर्वं हृदयादीनि षडङ्गानि प्रयुञ्जीतेति शेषः। एवञ्च ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि हृदयाय नमः, ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि शिरसे नमः इत्येवं रीत्या सर्वत्र बालादिनमोऽन्तोऽयं न्यासः।

बाला विद्या के तीन बीजों के बाद 'त्रिपुरसुन्दरि' के बाद 'अंग' का नाम और उसके बाद 'नमः' की योजना करने से षडङ्ग-न्यास के मन्त्र बनते हैं।।१००।।

विमर्श (प्रयोग-क्रम)—ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि हृदयाय नमः। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि शिरसे नमः। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि शिखायै नमः। ऐं क्लीं सौः

त्रिपुरसुन्दरि कवचाय नमः। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि नेत्रत्रयाय नमः। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि अस्त्राय नमः।

[तत्र क्रमान्तरम्]

वक्ष्यमाणक्रमान्मूलद्विरावृत्त्याऽथवा पुनः।
हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा।।१०१।।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हूमीरितम्।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फट् प्रकीर्त्तितम्।।१०२।।

क्रमान्तरमाह—**वक्ष्यमाणेत्यादिना**। अथवेति पक्षान्तरसूचनाय। वक्ष्यमाणक्रमाद् हृदयाय नम इत्यादिक्रमादित्यर्थः। **मूलेति**। मूलस्य उपास्यमन्त्रस्य द्विरावृत्त्या अनेन त्रिकूटात्मकविद्यानां द्विगुणीकरणेन षट्संख्यानिर्वाहात् हृदयादिषडङ्गेषु षण्णां योजनमुपपद्यते। एवञ्च प्रथमं वाग्भवकूटं ततो हृदयाय नमः, ततः कामराजकूटानन्तरं त्रिपुरसुन्दरि शिरसे स्वाहा। अतः शक्तिकूटानन्तरं शिखायै वषट् पुनर्वाग्भवानन्तरं कवचाय हूँ, पुनः कामराजकूटानन्तरं नेत्रत्रयाय वौषट्, पुनः शक्तिकूटानन्तरं करतलपृष्ठाभ्यां फडिति क्रमः। वह्निवल्लभा स्वाहा।

इन श्लोकों में षडङ्ग न्यास का दूसरा क्रम बताया गया है। मूल मन्त्र के तीनों कूटों की दो बार आवृत्ति करने से ६ बीज प्राप्त होते हैं। इन ६ बीजों के साथ 'हृदयाय नमः', 'शिरसे स्वाहा', 'शिखायै वषट्', 'कवचाय हुम्', 'नेत्रत्रयाय वौषट्' और 'अस्त्राय फट्' की योजना करने से षडङ्ग न्यास के ६ मन्त्र बनते हैं।।१०१-१०२।।

विमर्श (प्रयोग-क्रम) वाग्भव कूट—हृदयाय नमः। कामराज कूट—शिरसे स्वाहा। शक्तिकूट—शिखायै वषट्। वाग्भव कूट—कवचाय हुम्। कामराज कूट—नेत्रत्रयाय वौषट्। शक्तिकूट—अस्त्राय फट्।

[तत्राङ्गुलिनियमः]

तर्जनीमध्यमानामाङ्गुलिभिस्तिसृभिर्न्यसेत् ।
तर्जनीमध्यमाभ्याञ्च ततोऽङ्गुष्ठेन मन्त्रवित्।
दशकाङ्गुलिभिः पश्चात्त्रिभिर्द्वाभ्याञ्च पूर्ववत्।

तत्राङ्गुलिनियममाह—तर्जनीत्यादिना। अयमङ्गुलिनियमश्च पूर्वोद्दिष्टहृदयादिक्रमेण बोध्यः। तथा च तर्जनीमध्यमानामाभिर्हृदये न्यसेत्, एवं तर्जनीमध्यमाभ्यां शिरः अङ्गुष्ठेन शिखाम् । एवं क्रमेणान्येऽपि। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा प्रिये।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम्।
तथैवोक्ताङ्गुलिभ्याञ्च सशब्दमस्त्रमीरितम्।। इति।

अङ्गन्यासाननुष्ठाने दोषमाह तत्रैव—

पूजा तपोऽर्चना होमः सिद्धमन्त्रकृता अपि।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी।। इति।

इस श्लोक में हृदयादि न्यास में अंगुलियों का प्रयोग क्रम बताया गया है। तर्जनी-मध्यमा और अनामा से हृदय में; तर्जनी एवं मध्यमा से सिर में; अंगूठे से शिखा में; दसों अंगुलियों से कवच में; तीन (तर्जनी-मध्यमा और अनामा) अंगुलियों से तीनों नेत्रों में तथा दो अंगुलियों (तर्जनी तथा मध्यमा) से अस्त्र में न्यास किया जाता है।।१०३।।

[संकल्पः]

देवताप्रीतये चाऽऽदौ सङ्कल्पेत् प्रागुदङ्मुखः।।१०३।।

देवता के प्रीति-सम्पादन के लिये पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके पूजा आदि का संकल्प करें।।१०३।।

[भूतशुद्धिः]

भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् स्थिरचित्तश्च साधकः।

भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाऽभिचारवत्।
विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा।।

इति हरतत्त्वदीधितिधृतागस्त्यसंहितावचनेन,

भूतशुद्धिं विना कर्म जपहोमार्चनादिकम्।
तावत्तद् विफलं सर्वं प्रकाशेनाप्यनुष्ठितम्।।
भूतशुद्धिं विना यस्तु न्यासपूजां करोति हि।
न्यासजालं वृथा तस्य पूजा सा विफला भवेत्।।
तस्मात्तु साधकश्रेष्ठो भूतशुद्धिं समाचरेत्।

इति कौलवलीनिर्णयद्वितीयपटलवचनेन च भूतशुद्धेर्नित्यत्वाभिधानात् अनन्तर–करणीयां भूतशुद्धिमुपदिशति—**भूतशुद्धिं ततः कुर्यादित्यादिना। स्थिरचित्त इति।** चञ्चलचित्तस्य तदनुष्ठानासम्भवादित्यर्थः।

संकल्प करने के बाद बुद्धिमान् साधक भूतशुद्धि की क्रिया सम्पादित करे।

विमर्श—तन्त्रोपदिष्ट साधना-विधान में भूतशुद्धि की अतिशय महत्ता है। भूत-शुद्धि किये बिना सभी पूजा-पाठ, मन्त्र-जप, होम, हवन आदि सभी क्रियायें व्यर्थ होती हैं। उनका कोई फल नहीं मिलता। इतना ही नहीं; भूतशुद्धि के बिना जो भी पूजन-अर्चन-जप आदि किया जाता है, वह अभिचार के समान होता है तथा उनसे विपरीत फल मिलता है। अगले ८ श्लोकों में भूत-शुद्धि की विधि बताई गई है।

[तत्र क्रम:]

विनिधाय निजाङ्के तु समुत्तानौ करौ स्वयम्।।१०४।।
मूलाधारे मूलविद्यास्वरूपां कुलकुण्डलीम्।
प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयान्विताम्।।१०५।।
नीवारशूकवत् तन्वीं सर्वदेवस्वरूपिणीम्।
विद्युत्कोटिप्रतीकाशां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्।।१०६।।
ध्यात्वा तां हंस मन्त्रेण प्रणवेनाथवा सुधी:।
कूर्चबीजेन वा देवीं दृढं विद्रावयेद् बुध:।।१०७।।
एकीभावं तयो: कृत्वा जीवात्मपरमात्मनो:।
विचिन्त्य शून्यं परमं पार्थिवांशं जले गतम्।।१०८।।
जलञ्च तेजसाकृष्टं तेजोरूपं विचिन्तयेत्।
निर्वाणं वायुना वह्निं वायुरूपं विभावयेत्।।१०९।।
आकाशेनाऽऽहृतं वायुं खं वै मनसि लीयते।
मनोऽहङ्कारवशगं महत्त्वे महताहृतम्।।११०।।
प्रकृतौ च महत्तत्त्वं प्रकृतिं चिन्तयेदथ।
प्रकाशरूपिणीं नित्यां ब्रह्मविद्यास्वरूपिणीम्।।१११।।

निजाङ्के स्वक्रोडदेशे। मूलाधार इति। स्वयम्भूलिङ्गस्य कुण्डलिन्याश्च स्वरूपं षष्ठे प्रकाशे (१०-१२ श्लो०) विशिष्याभिहितपूर्वमिति नात्र पुनरुक्तौ रुचिं निबध्नीम:।

ध्यात्वेति। निरुक्तरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वेत्यर्थ:। हंस: इति मन्त्रेण, प्रणवेन, हूँ इति कूर्चबीजेन वा तां देवीं प्रसुप्तभुजगाकारां दृढं विद्रावयेत् प्रबोधयेदित्यर्थ:।

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं निरामयम्।
मुखेनाऽऽच्छाद्य तद् द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।।

इति शाक्तानन्दतरङ्गिणीचतुर्थोल्लासवचनेन प्रसुप्तत्वाभिधानात् तस्या: प्रबोधनमुपदिष्टं विद्रावयेदित्यनेन। व्यक्तमाह पिच्छिलातन्त्रे त्रयोदशपटले—

हंसेन मनुना देवि कूर्चबीजेन वा प्रिये।
तां चैतन्यवतीं कृत्वा पृथिव्या सार्द्धमानयेत्।। इति।

तत: करणीयमाह—एकीभावमित्यादिना। तयो: प्रसिद्धयोर्जीवात्मपरमात्मनो: अनाहतावस्थितस्य जीवात्मन: परमात्मस्वरूपाया: कुण्डलिन्याश्चेत्यर्थ:। एकीभावं कृत्वा अनयोरभेदं विचिन्त्येत्यर्थ:। हंसमन्त्रेण जीवात्मानमनाहतकमलकर्णिकान्तरालस्थं मूलाधारकमलकर्णिकान्तरालस्थायां परमात्मस्वरूपायां कुण्डलिन्यां नीत्वा तयोरेकीभावं विचिन्त्येत्यर्थ:। विवृतमेतदस्माभि: षष्ठप्रकाशे 'हूङ्कारेणैव देवीम्' इत्याद्येकपञ्चाश-

श्लोकटीकायाम्—'हृदयाद्धंसमनुना नीत्वा जीवं मुखाम्बुजे' इत्यादिना। **पार्थिवांशमिति।** अत्रेदमवधेयम्—मूलाधारादीनि विशुद्धान्तानि पञ्च पद्मानि क्रमेण क्षित्यप्तेजोमरुद्-व्योमरूपस्य भूतपञ्चकस्य स्थानानि। षष्ठञ्चाऽऽज्ञापद्मं मनसः। तत्र च निरुक्तरूपां कुण्डलिनीं पृथिव्या सह स्वाधिष्ठानपद्मे नीत्वा पृथिवीं तत्र स्थिते जले विलीनां विचिन्त्य तज्जलेन सह कुण्डलिनीं मणिपूराख्ये पद्मे नीत्वा तज्जलं तत्र स्थिते तेजसि विलीनं विभाव्य पुनस्तेन तेजसा सह कुण्डलिनीमनाहतपद्मे समुन्नीय तत्तेजस्तत्रत्ये वायौ विलाप्य पुनश्च तेन वायुना समं कुण्डलिनीं विशुद्धाख्ये पद्मे समुत्थाप्य तं वायुं तत्रावस्थिते व्योम्नि विलापयेत् । ततश्च तां तेन व्योम्ना सह आज्ञाचक्रस्थिते मनसि नीत्वा तद् व्योम तत्र विलीनं विचिन्त्य जीवात्मसहितया तया सह मनोऽहङ्कारेऽहङ्कारञ्च महत्तत्त्वे महत्तत्त्वञ्च प्रकृतौ विलापयेदिति विलोपनक्रमः पर्यवस्यति। विशेषस्तु षष्ठप्रकाश-(५१-५३ श्लो०)-टीकायां द्रष्टव्यः।

प्रकृतिमिति। अथ प्रकृतौ महत्तत्त्वविलोपनानन्तरं प्रकृतिं प्रकाशस्वरूपां नित्यां ब्रह्मविद्यास्वरूपिणीञ्च चिन्तयेत् प्रकाशादिस्वारूप्यवत् कुण्डलिन्यभिन्नरूपत्वादिति भावः।

भूतशुद्धि की प्रथम विधि—दोनों हाथों को उत्तान करके गोद में रखें। 'हंस' मन्त्र अथवा प्रणव (ॐ) का जप करते हुए मूल विद्यास्वरूपा कुल-कुण्डलिनी का मूलाधार चक्र में ध्यान करें। भगवती कुलकुण्डलिनी सर्वदेवता-स्वरूपिणी हैं। वे कमलनाल के रेशे के समान सूक्ष्म हैं। करोड़ों बिजलियों के समान चमकीली हैं। स्वयम्भू लिंग को साढ़े तीन वलयों (फेरों) से आवेष्टित करके नागिन के समान सोई हुई हैं। भगवती कुलकुण्डलिनी का इस प्रकार ध्यान करके कूर्मबीज (हूँ) से उन्हें जगायें। हृदय क्षेत्रवर्ती अनाहत चक्र की कर्णिका में स्थित जीवात्मा को 'हंस' मन्त्र का जप करते हुए मूलाधार चक्र में लाकर उसे परमात्मा-स्वरूपा कुण्डलिनी में मिलाकर जीवात्मा और परमात्मा के एक हो जाने की भावना करें।

मूलाधारवर्ती पृथ्वीतत्त्व-सहित भगवती कुण्डलिनी को लिंग-मूल क्षेत्रवर्ती स्वाधिष्ठान चक्र में लायें। यहाँ जलतत्त्व का वास है। मूलाधार से लाये गये पृथ्वीतत्त्व को यहाँ जलतत्त्व में विलीन कर दें।

स्वाधिष्ठान चक्रवर्ती जलतत्त्व के साथ देवी कुण्डलिनी को नाभिक्षेत्र-स्थित मणिपूरक चक्र में लायें। यहाँ अग्नितत्त्व का वास है। स्वाधिष्ठान से लाये गये जलतत्त्व को यहाँ अग्नितत्त्व में विलीन कर दें।

अग्नितत्त्व के साथ देवी कुण्डलिनी को मणिपूरक चक्र से अनाहत चक्र (हृदय) में लायें; जहाँ वायुतत्त्व का वास है। मणिपूरक चक्र से लाये गये अग्नि (तेजस्) तत्त्व को यहाँ वायुतत्त्व में विलीन कर दें।

देवी कुण्डलिनी को वायुतत्त्व के साथ विशुद्ध चक्र (कंठक्षेत्र) में लायें तथा वायुतत्त्व को आकाशतत्त्व में विलीन कर दें।

ललाटवर्ती आज्ञाचक्र में 'मन' का वास है। आकाशतत्त्व-सहित देवी कुण्डलिनी को विशुद्ध चक्र से यहाँ लायें तथा यहाँ 'मन' में आकाशतत्त्व का विलय कर दें।

इसके बाद 'मन' का 'अहंकार' में, अहंकार का महत्तत्त्व में तथा महत्तत्त्व का 'प्रकृति' में विलय कर दें। इस तरह जीवात्मा-सहित देवी कुण्डलिनी और प्रकृति दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। सभी तत्त्वों का विलय हो जाने के बाद देवी प्रकृति को ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी एवं नित्य प्रकाशस्वरूपिणी समझकर इनका ध्यान करें॥१०४-१११॥

[सप्रकृतिकायाः कुण्डलिन्याः परशिवे गमनम्]

कैवल्या केवला शान्ता निर्गुणा परमात्मिका।
सैषा च परमे याति परमञ्च निरामयम्।

अथ जीवात्मकुण्डलिनीसहितायाः प्रकृतेः परमशिवे समन्नयनमाह—**कैवल्येत्यादिना**। **सैषेति**। उक्तलक्षणा सा कुण्डलिनी एषा प्रकृतिश्च। एतेन कुण्डलिनीप्रकृत्योरभिन्नरूपता सूचिता। परमे—शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तरालस्थचन्द्रमण्डलमध्यगत्रिकोणान्तर्वर्त्तिनि परमशिवे याति इत्यर्थः।

अथ परमशिवस्य स्वरूपं निरूपयति—**परमञ्चेत्यादिना**। निरामयं जन्मजरामरणादिनिखिलदुःखविनिर्मुक्तं परं शून्यरूपं परबिन्दुस्वरूपं परब्रह्मात्मकं पदमित्यर्थः। तदुक्तं षष्ठप्रकाशे 'तदन्तःशून्यं तत् सकलसुरगणैः सेवितञ्चातिगुह्यम्' (४२ श्लो०) इत्यादिना।

इस तरह प्रकृति-सहित देवी कुण्डलिनी सर्वथा निर्गुणी तथा परमात्मस्वरूपा होकर परमशिव के धाम में प्रवेश करती हैं॥११२॥

[परमशिवस्य परबिन्दुस्वरूपत्वम्]

सहस्रदलमध्यस्थं शून्यरूपं परं पदम्॥११२॥
शून्यञ्च प्रतिबिम्बचन्द्रसदृशं सूक्ष्मातिसूक्ष्मं पदं
सर्वं व्याप्य तमोमयन्तु विदितं शून्ये प्रकाशं परम्।
दृश्यादृश्य-विवादभागसकलं ज्योतिर्मयं सर्वतो
शाखा तत् पदकन्तु साधकवरैर्दूरीकृतश्चान्तकः॥११३॥

निरुक्तशून्यं विशिनष्टि—**शून्यञ्चेति**। एतच्च षष्ठप्रकाशेऽर्थादुक्तमिति न पुनर्व्याख्यायते।

इन परमशिव का यह धाम सहस्रदल कमल की कर्णिका के अन्तर्वर्ती त्रिकोण में है। यह अत्यन्त सूक्ष्म 'परं पद' है। इसे जानकर साधक को यमपाश में नहीं फँसना पड़ता।

विमर्श—इस 'परं पद' का विशद निरूपण ६ठे प्रकाश (श्लोकसंख्या ४२) में किया जा चुका है। अत: यहाँ निरूपण नहीं किया जा रहा है।

नाभिदेशे तु यंकारं पूर्वं वायुं विचिन्तयेत्।
तेनैव शोषयेल्लिङ्गं तत्त्वं षोडशमात्रया।।११४।।
कामात्मकं चतु:षष्ट्या कुम्भकञ्च समाचरेत्।
द्वात्रिंशन्मात्रया दक्षे रेचयेत्तेन वै ततः।।११५।।

एवं परमात्मनि परमशिवे कुण्डलिनीयोगपर्यन्तमभिधाय प्राणायाममुपदिशति—**नाभीत्यादिना**। नाभिदेशे पूर्वं पूरकं वायुं यमिति वायुबीजं विचिन्तयेदित्यर्थः। अत्र पूर्वमिति पूर्व-पर्व-मर्व-पूरणे इत्यनेनोक्तस्य पूर्वधातो रूपम् । पूर्वति पूरयतीति पूर्वं पूरकमिति तदर्थः। इतः परं कुम्भकरेचकयोरभिधास्यमानत्वादत्र पूर्वशब्दस्य पूरकमित्येवार्थः। तेनैवेति प्रागुक्तवायुबीजेनैव लिङ्गं तत्त्वं लिङ्गशरीरं शोषयेत्। अत्र शोषणादिकं वामकुक्षिस्थितपापपुरुषसहकृतस्यैव लिङ्गशरीरस्येति बोध्यम्। ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले—

वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्।

इत्यादि पापपुरुषस्वरूपनिरूपणानन्तरम्—

शोषयेद् वायुबीजेन देहञ्च परमेश्वरि।
पापेन सहितं शुष्कं कृत्वा तेन क्रमेण हि।
वह्निबीजेन सन्दग्धं पापेन सहितं शिवे।।

इत्यादिना तथा व्यक्तमभिधानात्, तन्त्रसारादौ तथा दर्शनात्, श्यामारहस्ये ग्रन्थकृता पापपुरुषेण सह शरीरे संशोष्येति स्वयमेवाभिहितत्वाच्च। यत्तु गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले—

वामकुक्षौ स्थितं पापं पुरुषं कज्जलप्रभम्।
तस्य संहरणार्थाय महती प्रकटी कृता।।
लिङ्गदेहो महेशानि तस्य देहो न संशय:।
पापदेहं भवेद्दग्धं स्वदेहं नैव नाशयेत्।।

इत्यादिना पापपुरुषस्यैव लिङ्गशरीरत्वं तस्यैव च शोषणादिकमभिहितम्, तत् क्रमान्तरमिति ध्येयम्। **षोडशमात्रयेति**। मात्रालक्षणमाह फेत्कारिणीतन्त्रे तृतीय-पटले—

जानू प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्।
क्रियते चाङ्गुलिस्फोटः सा मात्रा परिकीर्त्तिता।। इति।

कामात्मकमिति। कामात्मकं वासनात्मकं लिङ्गं शोषयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। अनेन वासनात्मकलिङ्गशोषणादेर्वासनानामप्युच्छेदो भवतीति सूचितम्। **चतुःषष्ट्येति**। निरुक्तवायुबीजस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं समाचरेदित्यर्थः। **द्वात्रिंशदिति**। वामनासापुटं धृत्वा वायुबीजस्यैव द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षनासया वायुं रेचयेदित्यर्थः।

जीवात्मा और प्रकृति सहित जब देवी कुण्डलिनी परमशिव से एकाकार हो जायँ तब लिंग-शरीर का शोषण आदि किया जाय।

वाम नासापुट से वायुबीज (यं) का सोलह बार जप करते हुए पूरक करें। इस वायु को नाभिदेशवर्ती वायु से मिलाकर उससे वामकुक्षि में स्थित पाप-पुरुष को सुखायें। पाप-पुरुष को सुखाने के लिये वायुबीज (यं) का ६४ बार जप करते हुए कुम्भक करें। जब इस प्रक्रिया से पाप-पुरुष सूख जाय, वायुबीज (यं) का ३२ बार जप करते हुए उक्त वायु को (रेचक क्रिया से) निकाल दें।।११४-११५।।

रक्तवर्णं वह्निबीजं मेढ्रमूले विचिन्तयेत्।
सवासनात्मकं लिङ्गं शरीरं तेन दाहयेत्।।११६।।
पूर्वोक्तक्रमयोगेण दक्षनासाक्रमेण तु।
देशिकश्च तथा संख्यां वामहस्तेन कल्पयेत्।।११७।।

एवं शोषणक्रममुक्त्वा दाहक्रममाह—**रक्तवर्णमित्यादिना**। तेन वह्निबीजेन। स्पष्टमन्यत्।

बीजजपक्रममाह—**पूर्वेति**। तथा च दक्षनासया पूरकमुभाभ्यां कुम्भकं वामया रेचकम्। जपसंख्या तु वामहस्ताङ्गुलिभिः कुर्यादित्यर्थः।

मेढ्र-मूल अर्थात् लिंग मूल में रक्तवर्ण के अग्निबीज (रं) का ध्यान करें। अग्निबीज (रं) का १६ बार जप करते हुए दक्ष नासापुट से पूरक करें। ६४ बार जप करते हुए कुम्भक करें। इस तरह कुम्भक करके पाप-पुरुष को जला दें। 'रं' बीज का ३२ बार जप करते हुए वाम नासापुट से रेचक करें।।११६-११७।।

वं-कारं वारुणं शुक्लं घण्टिकायां विभाव्य च।
तेनामृतं समुत्पाद्य सहस्रदलपङ्कजात्।।११८।।
प्लावयेत् पूरकादीनि कृत्वा पादतलावधि।

वं-कारमिति। तथा च वमिति वरुणबीजं शुक्लवर्णं घण्टिकायां विभाव्य तेन बीजेन पूरकादीनि कृत्वा तेनैवामृतमुत्पाद्य सहस्रारात् पादतलपर्यन्तं प्लावयेदित्यर्थः।

घण्टिका में शुक्ल वर्ण के वरुणबीज 'वं' का ध्यान करें। पूर्ववत् सोलह बार 'वं' बीज का जप करते हुए पूरक करें। ६४ बार कुम्भक जप करते हुए कुम्भक

करके उससे उत्पन्न अमृत से सिर से पैर तक अपने शरीर को आप्लावित करें। बाद में ३२ बार जप करते हुए रेचक करें॥११८॥

लंकारं पृथिवीबीजं गुदमूले विभाव्य च।।११९।।
तेनैव क्रमयोगेण धिया सम्पादयेद् बुधः।
पापपुण्यविनिर्मुक्तं शरीरं शाम्भवं परम्।।१२०।।

लंकारमिति। ततश्च प्रागुक्तक्रमेण लमिति पृथ्वीबीजं मूलाधारे विभाव्य परं पूर्वतो विलक्षणं पापपुण्याननुविद्धं शाम्भवं शरीरं सम्पादयेद् विरचयेदित्यर्थः। अत एव तन्त्रसारकारैरपि 'वमिति वरुणबीजस्य चतुःषष्टिवारजपेन तस्माल्ललाटचन्द्राद् गलितसुधया मातृकावर्णात्मिकया समस्तदेहं विरचय्ये'त्युक्तम्।

गुदामूल में पृथिवीबीज 'ल'कार का चिन्तन करके पूर्वोक्त पूरक-कुम्भक-रेचक क्रम से पृथ्वीतत्त्व प्राप्त करके उससे पाप-पुरुष-विनिर्मुक्त शाम्भव शरीर की रचना करें॥११९-१२०॥

सोऽहंमन्त्रेण जीवञ्च सकाशात् परमात्मनः।
पुनस्तां कुण्डलीं देवीं परमामृतलोलिताम्।।१२१।।
पञ्चभूतानि मन्त्रज्ञः स्वस्वस्थाने नियोजयेत्।

पूर्वं संहारक्रमेणोत्थापितानां पुनः सृष्टिक्रमेण स्वस्वस्थाने समानयनमाह— **सोऽहमित्यादिना**। तथा च परमात्मनः सकाशात् सोऽहमिति मन्त्रेण जीवात्मानम् अनाहते, परमामृतलोलितां परमशिवसामरस्यामृतास्वादनपरितृप्तां कुण्डलिनीं मूलाधारे, पञ्च भूतानि च व्योमादिक्षित्यन्तानि विशुद्धादिमूलाधारान्तेषु समानयेदित्येवोक्तं स्वस्वस्थाने नियोजयेदित्यनेन। एतेन मनोऽहङ्कारमहत्तत्त्वान्यपि व्याख्यातानि।

जब यह शाम्भव शरीर निर्मित हो जाय, परमशिव पद से जीवात्मा तथा परमामृत लोलिता देवी कुण्डलिनी तथा सभी तत्त्वों को सृष्टि-क्रम से पुनः लाकर उन्हें उनके स्थान में नियोजित कर दें॥१२१॥

विमर्श—'सोऽहम्' मन्त्र का जप करते हुए जीवात्मा को परमशिव पद से लाकर अनाहत चक्र में तथा परमशिव के सामरस्य से परितृप्त कुलकुण्डलिनी को मूलाधार में स्थापित करें। आकाश से पृथिवी-पर्यन्त सभी पाँच तत्त्वों को क्रमशः विशुद्ध, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार चक्र में स्थापित करें। इसी क्रम में मन-अहंकार तथा महत्तत्त्व को भी उनके स्थानों में स्थापित करें।

[स्वस्य देवीरूपत्वभावना]

आत्मानं भावयेन्मन्त्री महाश्रीत्रिपुरामयम्।।१२२।।

आत्मानमिति। निरुक्तानुष्ठानपवित्रीकृतात्मा स्वेष्टदेवीरूपमात्मानं भावयेदित्यर्थः।

भूतशुद्धि की इस क्रिया से कालुष्यहीन आत्मा को महाश्री त्रिपुरामयी अर्थात् इष्टदेवतास्वरूप समझें।।१२२।।

[श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपम्]

ईषत् कुन्दसुचारुदन्तसुमुखीं नेत्रत्रयोद्भासितां
पानोत्तुङ्गपयोधरां प्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियम्।
नानाभूषणभूषितां भगवतीं बन्धूकपट्टांशुकां
पाशञ्चाङ्कुशचापबाणनिवहान् संबिभ्रतीं भावयेत्।।१२३।।

पूर्ववचने 'महाश्रीत्रिपुरामयम्' इत्युक्तम्, तद्भावनार्थं तस्याः स्वरूपमाह—ईषदित्यादिना।

इस श्लोक में भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के रूप का निरूपण किया गया है। उनकी शरीरकान्ति खिले हुए लाल कमल के समान है। दन्तावली कुन्द के समान धवल है। उनके तीन नेत्र हैं। स्तनमण्डल पीन और उत्तुंग है। उनके वस्त्र दुपहरिया के फूल के समान लाल हैं। वे विभिन्न आभूषणों से अलंकृता हैं। उनके चारो हाथों में पाश-अंकुश-चाप (धनुष) और बाण हैं।।१२३।।

[जीवन्यासः]

हृदि हस्तं समादाय जीवन्यासं समाचरेत्।

एवं भूतशुद्धिं निरूप्य ज्ञानार्णवोपदिष्टं जीवन्यासक्रमं दर्शयति—हृदीत्यादिना। जीवन्यासमिति वक्ष्यमाणप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण जीवन्यासं समाचरेदित्यर्थः।

भूतशुद्धि के बाद भगवती के उपर्युक्त स्वरूप का ध्यान करके अपने हृदय पर हाथ रखकर जीवन्यास (प्राणप्रतिष्ठा) करें।

[प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः]

विपरीतं प्राणमन्त्रमुद्धरेत् पाशपूर्वकम्।।१२४।।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्मणि कीर्तितः।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमाह—विपरीतमिति। प्राणमन्त्रो हंस इति, तस्य वैपरीत्ये सोऽहमिति, तच्च विपरीतं प्राणमन्त्रं पाशपूर्वकं पाशबीजम् आं तत्पूर्वकम् । एतेन आं सोऽहमिति प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः पर्यवस्यति।

प्राणमन्त्र अर्थात् 'हंसः'। इसके दोनों वर्णों को विपरीतक्रम से रखने पर रूप हुआ—'सोऽहम्'। 'सोऽहम्' के आगे पाशबीज (आं) की योजना करने से प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र निष्पन्न हुआ—'आं सोऽहम्'। सभी कर्मों में इसी मन्त्र से प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है।।१२४।।

[निरुक्तभूतशुद्धेः प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम्]

ज्ञानार्णवे शिवेनैव प्रकार ईदृशः स्मृतः।।१२५।।

ज्ञानार्णव इति। तदुक्तं ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले—

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण जीवं देहे निधापयेत्।
मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसन्तु विपरीतकम्।
उद्धरेत् परमेशानि विधेयं त्र्यक्षरी मता।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत्।
तेनैव विधिना देवि स्थिरीकुर्यान्निजां तनुम्।। इति।

मुखवृत्तम् आं।

ज्ञानार्णवतन्त्र (द्वितीय पटल, श्लोकसंख्या ३४) में ईश्वर ने प्राण-प्रतिष्ठा का यही मन्त्र बताया है।।१२५।।

[अन्यादृशो भूतशुद्धिक्रमः]

अथवाऽन्यप्रकारेण भूतशुद्धिं समाचरेत्।
संहारक्रमयोगेण तत् सर्वं परमात्मनि।।१२६।।
संयोज्य वायुबीजेन धातून् पापसमन्वितान्।
प्राणायामक्रमेणैव संशोष्य वह्निना ततः।।१२७।।
तानेव सन्दहेत् पश्चात् कुम्भकेन समाहितः।
जलबीजामृतेनैव तद्भस्मप्लावनं चरेत्।।१२८।।
रेचकक्रमयोगेण भूबीजेन च मन्त्रवित्।
शरीरं सुदृढीकृत्य शेषं पूर्ववदाचरेत्।।१२९।।

क्रमान्तरेण भूतशुद्धिमाह—**अथवेत्यादिना पूर्ववदाचरेदित्यन्तेन**। **संहारेति**। संहारक्रमस्तु क्षितेर्जले जलस्य तेजसि तेजसश्च वायौ वायोराकाशे इत्येवंक्रमेण बोध्यः। 'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरग्नेराप अद्भ्यः पृथिवी'त्यादिश्रुत्या आकाशादिक्रमेण सृष्टेरभिधानात् पृथिव्यादिक्रमोऽयं संहारक्रम इत्याशयेनैवाऽऽह—**संहारक्रमयोगेणेति**। तत् सर्वं प्रागुक्तक्रमप्राप्तं पृथिव्याद्याकाशान्तं सकलं परमात्मनि सहस्रारस्थे कारणरूपे संयोज्येत्यर्थः। एतेन गन्धरसादिभूतगुण-नासिकादीन्द्रियबुद्ध्यहङ्काराणामपि लयो बोध्यः। अथ प्राणायाममुपदिशति—**वायुबीजेनेत्यादिना**। इतः परं कुम्भकरेचकक्रमयोरभिधास्यमानत्वात् पूरकक्रमोऽय-मिति ज्ञेयम्। पापसमन्वितान् पूर्वोपदर्शितपापपुरुषयुतान् धातून् शरीरधातून् प्राणाया-मरीत्या वायुबीजेन संशोष्येति सम्बन्धः। स्पष्टमन्यत्।

इन चार श्लोकों में भूतशुद्धि की एक अन्य विधि बताई गई है। पृथ्वी आदि सभी तत्त्वों को संहार-क्रम से पूर्व-पूर्व तत्त्वों में विलीन करते हुए सभी तत्त्वों को उनके कारणभूत परमात्मा में विलीन कर दे। इसके बाद प्राणायाम के क्रम से वायुबीज (यं) से पाप-पुरुषसहित सभी धातुओं को सुखा दें। कुम्भक प्राणायाम करते हुए अग्निबीज

(रं) से सूखे हुए पाप-पुरुष आदि को जला दें। जलबीज (वं) से उनकी राख का प्लावन करें। तत्पश्चात् रेचकक्रमयोग से मन्त्र-साधक पृथ्वीबीज (लं) से अपने शरीर को शुद्ध बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा आदि अन्य क्रियायें करें।।१२६-१२९।।

विमर्श—आकाश से वायु, वायु से तेज (अग्नि), तेज से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति सृष्टिक्रम है। पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में तथा वायु का आकाश में विलय संहारक्रम है। इस प्रकार पृथ्वी आदि तत्त्वों का अपने पूर्व-पूर्व तत्त्वों में विलय होने के फलस्वरूप गन्ध-रस आदि भूतगुणों तथा नासिका आदि इन्द्रियों तथा बुद्धि-अहंकार आदि का अपने-अपने पूर्व-पूर्व तत्त्वों में लय हो जाता है।

[भूतशुद्धेः क्रमान्तरम्]

अथवा कुण्डलीं देवीं पञ्चभूतादिना सह।
परमात्मनि संयोज्य तयोरैक्यं विभावयेत्।।१३०।।
ध्यानयोगेन मनसा ततः सोऽहं विभावयेत्।
चन्द्रामृतेन सम्प्लाव्य मूले ताञ्च समानयेत्।।१३१।।
भूतादिकं निजस्थाने तत्प्रभापटलामलः।
अद्वैतरूपभावेन सोऽहं साहं विभावयन्।।१३२।।

भूतशुद्धेः क्रमान्तरं दर्शयति—**अथवेत्यादिना**। अत्र क्रमे कुण्डलिनीं पञ्चभूतादिना मूलाधारादिविशुद्धचक्रान्तःस्थितैः क्षित्यादिपञ्चभूतैः आदिशब्दोपात्तैर्गन्धादिभूतगुणज्ञानकर्मेन्द्रियादिभिश्च सह सहस्रारस्थिते परमात्मनि संयोज्य तयोः कुण्डलिनीपरमात्मनोरैक्यं विभावयेदित्यर्थः।

ततः करणीयमुपदिशति—**ध्यानेति**। ततो मनसा ध्यानयोगमाश्रित्य सोऽहं विभावयेत्। निरुक्तपरमात्मजीवात्मनोरभेदं चिन्तयेदित्यर्थः। पुनः कुण्डलिन्याः सहस्रारान्मूलाधारे समानयनमाह—**चन्द्रेति**। चन्द्रामृतेन सहस्रारस्थितचन्द्रमण्डलगलितामृतधारया तां कुण्डलिनीं संप्लाव्य मूले मूलधारपद्मान्तःस्थितस्वयम्भूलिङ्गोदूर्ध्वे समानयेदित्यर्थः।

भूतादिकमिति। पूर्वं कुण्डलिन्या सह सहस्रारे नीतं भूतादिकमपि स्वस्वस्थाने प्रागुक्तक्रमेण समानयेदिति सम्बन्धः। तत्प्रभापटलामलः तयोः कुण्डलिनीपरमात्मनोः प्रभाराशिभिर्निर्मलीकृतात्मा सोऽहं साहं परमात्मना कुण्डलिन्या च सह स्वाभेदं विभावयेदित्यर्थः।

'अथवा'—भूतशुद्धि की एक अन्य विधि बताई जा रही है। पृथ्वी आदि सभी पाँच भूतों के साथ देवी कुण्डलिनी को मूलाधार चक्र से लाकर सहस्रार में परमात्मा के साथ संयोजित कर दे। इसके बाद ध्यानयोग से 'सोऽहम्' की भावना करें अर्थात्

परमात्मा और जीवात्मा के एक होने की भावना करें। जब यह भावना दृढीभूत हो जाय अर्थात् द्वैत की भावना क्षीण होने लगे, तब देवी कुण्डलिनी को सहस्रार के चन्द्रमण्डल से विगलित अमृत से भली-भाँति संप्लावित करके उन्हें मूलाधार चक्र में ले आये। उनके साथ आकाश आदि पञ्चमहाभूतों तथा उनके गुणों आदि को भी परमशिव पद से सुषुम्ना मार्ग से लाकर उनके यथानिर्धारित स्थानों में स्थापित कर दें। तत्पश्चात् कुण्डलिनी और परमात्मा की प्रभाराशि से निर्मलीभूत अपनी आत्मा का परमात्मा (सोऽहम्) तथा कुण्डलिनी के साथ अभेद (एकता) का चिन्तन करे।

[प्राणायामः]

प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा।
अथवा बालया कुर्याच् श्रीविद्याप्राणसंयमम्।।१३३।।

अत्र प्राणायामस्य कल्पत्रयं दर्शयति—**मूलेनेत्यादिना।**

मूल मन्त्र अथवा प्रणव से तीन बार प्राणायाम करे। श्रीविद्या-साधना में बाला-बीजों से भी विकल्पतः प्राणायाम किया जाय॥१३३॥

[भूतशुद्धेः क्रमान्तरम्]

मूलाधारे परां देवीं ध्यात्वा चैतन्यरूपिणीम्।
हूङ्कारोच्चारणेनैव तामुत्थाप्य समाहितः।।१३४।।

भूतशुद्धेः क्रमान्तरमाह—**मूलाधार इति।** तानुत्थाप्येति सहस्रार इति शेषः। स्पष्टमन्यत्।

'हूं'कार बीज से मूलाधार में निद्रामग्न देवी कुण्डलिनी को जगाकर चैतन्यरूपिणी परा देवी के रूप में उनका ध्यान करे। उन्हें मूलाधार से उठाकर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार में लायें और यहाँ परमशिव के साथ उन्हें संयोजित करें॥१३४॥

[प्राणायामः]

इडया पूरयेद् वायुं बाह्यं षोडशमात्रया।
चतुःषष्ट्या कुम्भकञ्च तदर्द्धेन विरेचयेत्।।१३५।।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासापुटं विधृत्य च।
एवं क्रमोत्क्रमेणैव प्राणायामत्रयं चरेत्।।१३६।।

'इडा' अर्थात् बाँयाँ नथुना। बाँयें नथुने से सोलह मात्रा में बाहरी वायु को खींचकर फेफड़ों में भरें। ६४ मात्राओं तक उस वायु को फेफड़ों में धारण किये रहें। दूसरे नासापुट से उक्त वायु को ३२ मात्रा में निकाल दें। यह एक प्राणायाम है। प्राणायाम करते समय कनिष्ठा और अनामा तथा अंगूठे से नासापुटों को दबाकर रखें। इसी प्रकार क्रम-उत्क्रम से तीन बार प्राणायाम करें॥१३५-१३६॥

विमर्श—पूरक के समय अंगूठे से दाहिने नासापुट को दबाकर रखें। कुम्भक के समय अनामा और कनिष्ठा से बाँयें तथा अंगूठे से दाहिने नासापुट को दबाकर रखें। रेचक के समय अनामा और कनिष्ठा से बाँयें नथुने को दबायें।

[प्राणायामपदव्युत्पत्तिः]

प्राणाः शरीरपवन आयामो दैर्घ्यमुच्यते।
प्राणायाम इति प्रोक्तो मुनिभिः पापनाशनः।।१३७।।

प्राणा इत्यादि। स्पष्टम्। प्राणायामक्रममाह ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले—

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना।। इति।

प्राण का अर्थ है—हमारे शरीर में स्थित वायु तथा आयाम का अर्थ है—दीर्घता या विस्तार। अत: प्राणायाम का अर्थ हुआ—शरीर में वायु के संधारण की दीर्घता या विस्तार। मुनियों का कथन है कि प्राणायाम से पापों का नाश होता है।।१३७।।

[प्राणायामभूतशुद्धिस्वस्वकल्पविहितन्यासानकुर्वतो देवार्चनेऽनधिकारिता]

प्राणायाममकृत्वा तु भूतशुद्धिमथापि वा।
अकृत्वा विधिवन्न्यासान् नार्चायामधिकारवान्।।१३८।।

प्राणायाम, भूतशुद्धि तथा विधिवत् न्यास किये बिना किसी भी व्यक्ति को देवता के अर्चन का अधिकार नहीं मिलता।।१३८।।

[न्यासपदव्युत्पत्तिः]

पञ्चभूताङ्गदेवानां न्यसनान्न्यास उच्यते।।१३९।।

पञ्चभूतांग देवताओं को उनके नियत स्थान में न्यस्त करने को न्यास कहा जाता है।।१३९।।

[भूतशुद्धिपदव्युत्पत्तिः]

समस्तान्यपि भूतानि ब्रह्मांशत्वाद् विशेषतः।
सदैव परशुद्धिः स्यान्मातृकाभिः कलादिभिः।।१४०।।
तत्र जीवाभिमानेन दोषजालेन चैव हि।
ब्रह्मणः स्वेच्छया वेति दोषाः स्वात्मनि निश्चिताः।
देहाभिमानिता चैव दोषाश्च समुदाहृताः।।१४१।।
तेषामात्मपरिज्ञानाद् विज्ञाय स्वस्य ब्रह्मताम्।
अहङ्कारपरित्यागः शुद्धिरित्यवगम्यताम्।।१४२।।

सभी भूतों की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है। अत: वे निसर्गत: शुद्ध हैं। मातृकाओं तथा कलाओं से उनकी परिशुद्धता की रक्षा होती है; लेकिन इन्द्रियों की संगत एवं

मन के साहचर्य के कारण जब ब्रह्मांशस्वरूप आत्मा में जीव होने का भाव आ जाता है, उसमें दोषों का प्रसार प्रारम्भ हो जाता है। अपने शुद्ध-बुद्ध-नित्य एवं अविनाशी स्वरूप को भुलाकर जीवात्मा स्वयं को शरीर तथा शरीर के सुख-दु:ख को अपना शरीर समझने लगता है। कर्ता और भोक्ता होने का मिथ्या अभिमान उसके अज्ञान बन्धन को निरन्तर दृढ़ करता जाता है। उसके इस मिथ्या अहंकार का त्याग तथा उसको अपने शुद्ध-बुद्ध-नित्य-आनन्दस्वरूप का स्मरण दिलाना ही भूत-शुद्धि है॥१४०-१४२॥

[ऋष्यादिन्यासः]

अथ ऋष्यादिकन्यासं कुर्यात् साधकसत्तमः।
ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥१४३॥
देवता ब्रह्मरूपा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी।
बीजन्तु वाग्भवं कूटं शक्तिकूटञ्च शक्तिका॥१४४॥
कीलकं कामराजं स्याद् विन्यसेत् साधकोत्तमः।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादाङ्गेषु क्रमात् सुधीः॥१४५॥

ऋष्यादिन्यासमुपदिशति—**अथेत्यादिना**। तत्र श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य ऋष्यादिकं निर्वक्ति—**ऋषिः स्यादित्यादिना**। तथा चास्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता, वाग्भवकूटं बीजं, शक्तिकूटं शक्तिः, कामराजकूटञ्च कीलकमिति ज्ञेयम्। अस्य विनियोगस्तु गन्धर्वतन्त्रे सप्तमपटले—

विनियोगः समाख्याता भुक्तिमुक्तिप्रसाधने। इति।

शिर इति। शिर-आद्यङ्गान्तेषु प्रागुक्तान् ऋष्यादीन् क्रमान्न्यसेदिति सम्बन्धः। एवञ्च शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः। मुखे—पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदि—श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये—वाग्भवाय बीजाय नमः। पादयोः—शक्तिकूटाय शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—कामराजाय कीलकाय नमः, इति प्रयोगः। ऋष्यादिन्यासाननुष्ठाने दोषमाह गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटले—

ऋषिश्छन्दोदैवतानां विन्यासेन विना यदा।
जप्यते साधितेऽप्येव न तत्र तत्फलं लभेत्॥ इति।

इन तीन श्लोकों में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्रों के ऋषि आदि का परिचय तथा उनके न्यास का निरूपण किया गया है।

श्री दक्षिणामूर्ति इस मन्त्र के ऋषि हैं। पंक्ति छन्द है। ब्रह्मरूपा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी इस (इन) मन्त्र की देवता हैं। वाग्भव कूट बीज है। शक्तिकूट (तृतीय कूट) शक्ति है। कामराज कूट (द्वितीय कूट) कीलक है।

मन्त्र के इन घटकों का न्यास क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद और सभी अंगों में किया जाय॥१४३॥

विमर्श (प्रयोगक्रम)—शिरसि—श्रीदक्षिणामूर्तये नमः। मुखे—पंक्ति छन्दसे नमः। हृदये—श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवतायै नमः। गुह्ये—वाग्भवबीजाय नमः। पादयोः—शक्तिकूटाय नमः। सर्वांगे—कामराजकूटाय नमः।

ऋषि-छन्द-देवता आदि का सम्यक् रूप से न्यास किये बिना मन्त्रजप का कोई फल नहीं मिलता। अतः बुद्धिमान् साधक को ऋष्यादि न्यास करने के बाद ही मन्त्र-जप करना चाहिए।

[षडङ्गन्यासोपदेशो मातृकान्यासस्य कर्त्तव्यत्वञ्च]

अङ्गषट्कं ततः कृत्वा मातृकान्यासमाचरेत्।

अत्राङ्गन्यासस्य कर्त्तव्यत्वमाह—**अङ्गषट्कमिति**। षडङ्गन्यासं कृत्वेत्यर्थः। त्रिपुराविषयेऽङ्गन्यासस्य विशिष्टः क्रमस्तु पूर्वमेवोपदर्शित इति नात्र पुनः प्रदर्श्यते।

ऋष्यादि न्यास करने के बाद हृदयादि षडङ्ग न्यास करें। तत्पश्चात् मातृका न्यास करें। षडङ्ग न्यास की दो विधियाँ इसी अध्याय के श्लोकसंख्या १०० से १०३ में बताई गई हैं।

[तत्र मातृकाया ऋष्यादिन्यासः]

ऋषिर्ब्रह्मा भवेच्छन्दो गायत्री मातृका पुनः।।१४६।।
देवता व्यञ्जनं बीजं शक्तयश्च स्वरा मताः।
अव्यक्तं कीलकं ज्ञेयं न्यसेदुक्तक्रमेण तु।।१४७।।

अथ मातृकान्यासमभिदधानः प्रथमम् ऋष्यादिकमुपदिशति—**ऋषिरित्यादिना**। एवञ्चास्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री च्छन्दो मातृका (सरस्वती) देवता व्यञ्जनानि बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं लिपिन्यासे विनियोगः। अस्य मातृका–न्यासाङ्गमन्त्ररूपेणाधुना व्यवहारो दृश्यते। तन्त्रसारकृता अथ मातृकान्यास इति प्रक्रम्य 'अस्य मातृकामन्त्रस्ये'त्यादिकमभिधाय 'शिरसि ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः' इत्यादिना मातृकान्यास उक्तः। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु श्रीमद्ब्रह्मानन्दैः 'अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्री च्छन्द' इत्याद्यनभिधाय 'अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नम इति शिरसि। गायत्र्यै छन्दसे नम इति मुखे' इत्येवंक्रमेण शिर–आदिषु न्यासमात्रमभिहितम्। एवञ्च तन्त्रसारादौ यद् 'अस्य मन्त्रस्ये'त्याद्युक्तं तदृषिच्छन्दोदेवतादिज्ञानपुरःसरमेव न्यासः कर्त्तव्य इत्यभिप्रायेण, न तु न्यासाङ्गतया तदुच्चार्यत्वाभिप्रायेणापि, तथात्वेन 'अस्य मन्त्रस्ये'त्यादिपाठे प्रमाणानुपलम्भात्। अत एव प्रकृतेऽपि 'अव्यक्तं कीलकं ज्ञेयं न्यसेदुक्तक्रमेण तु' इत्यत्र ज्ञेयमित्यनेनैतज्ज्ञानपूर्वकं न्यासोऽनुष्ठेय इत्येवोक्तमिति दिक्।

इस मातृका मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्द गायत्री हैं। मातृका देवता हैं। बीज व्यञ्जन हैं। शक्ति स्वर हैं। कीलक अव्यक्त (वर्ण) हैं। उनका भी उपर्युक्त (शिर आदि) क्रम से न्यास किया जाय॥१४६-१४७॥

विमर्श (प्रयोगक्रम)—श्रीमातृकामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नमः—शिरसि। गायत्री छन्दसे नमः—मुखे। मातृकादेवतायै नमः—हृदि। व्यञ्जनबीजेभ्यो नमः—गुह्ये। स्वराःशक्तिभ्यो नमः—पादयोः। अव्यक्तकीलकेभ्यो नमः—सर्वांगे।

[मातृकायाः कराङ्गन्यासः]

स्वराणां क्लीबहीनानां सबिन्दूनां क्रमाल्लिखेत्।
युग्मयुग्मान्तराले च पञ्चवर्गं सबिन्दुकम्।।१४८।।
शेषवर्णान्तराले च यादिवर्गं ततः परम्।
पूर्ववद् विन्यसेन्मन्त्री मातृकायाः षडङ्गकम्।।१४९।।

मातृकायाः कराङ्गन्यासयोः क्रममुपदिशति—**स्वराणामित्यादिना**। क्लीबहीनानाम् ऋॠऌॡवर्जितानां सबिन्दुनां सानुस्वाराणां स्वराणामकाराद्यौकारान्तानां युग्म–युग्मान्तराले द्विद्विवर्णमध्ये क्रमात् सबिन्दुकं वर्गपञ्चकं लिखेदित्यर्थः। अनेन अं कं खं गं घं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐँ अनामिकाभ्यां हुँ। ॐ पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् इत्यन्तं प्राप्तम्।

शेषेति। शेषवर्णान्तराले पूर्वोदितस्वरावशिष्टयोरनुस्वारविसर्गयोर्वर्णयोरन्तराले यादिवर्गं यकारादिक्षकारान्तवर्णान् लिखेदित्यर्थः। एवञ्च अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फडिति करन्यासः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले—

अं आं–मध्ये कवर्गञ्च इं ईं मध्ये चवर्गकम्।
उं ऊं–मध्ये टवर्गञ्च एं ऐं–मध्ये तवर्गकम्।
ओं औं–मध्ये पवर्गञ्च क्रमेण परमेश्वरि।
अनुस्वारविसर्गान्ते य–शवर्गौ सलक्षकौ।। इति।

पूर्ववदिति। ततः परं करन्यासानन्तरं पूर्ववत् करन्यासक्रमेणैवाङ्गन्यासं कुर्यादित्यर्थः। अत्राङ्गशब्देनाङ्गुष्ठादीनां हृदयादीनाञ्च परिग्रहः। तथा च पूर्ववत् प्रागुक्तमूलदेवताकराङ्गन्यासवत् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिक्रमेण कराङ्गन्यासौ कुर्वीतेति पूर्ववदित्यनेन सूच्यते। अङ्गन्यासे न्यासयोग्यान्यङ्गान्याह ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले—

हृदयञ्च शिरो देवि शिखाञ्च कवचं ततः।
नेत्रमस्त्रं न्यसेत् ङेऽन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु।।
वषड् हुं वौषडन्तञ्च फडन्तं योजयेत् प्रिये।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपापहरः स्मृतः।। इति।

मातृकामाला में ‘अ’ से ‘अः’ तक १६ स्वर वर्ण हैं। इनमें से ‘ऋ ॠ-ऌ-ॡ’—ये चार क्लीब स्वर हैं। शेष बारह स्वर वर्णों में से दो-दो स्वरवर्णों के बिन्दुयुक्त ६ वर्ग बनायें। यथा—अं-आं। इं-ईं। उं-ऊं। एं-ऐं। ओं-औं। अं-अः।

'क'कार आदि पाँच व्यञ्जन वर्ग हैं। इनमें से प्रत्येक व्यंजन वर्ग को बिन्दुयुक्त करके एक-एक स्वरयुग्म के मध्य में अंत:स्थ कर दें। यथा—'अं कं खं गं घं ङं आं। आदि। 'य'कार से 'क्ष'कार तक जो १० वर्ण हैं, उन्हें भी बिन्दुयुक्त करके 'अं' और 'अ:' के मध्य अंत:स्थ कर दें। इस प्रकार मातृकामाला ६ वर्गों में विभक्त हो जाती है। इनमें से प्रत्येक वर्ग का अंगूठे से लेकर क्रमश: सभी अंगुलियों में न्यास करें।

करन्यास के समान ही इन ६ वर्गों से मातृका षडङ्ग-न्यास करें।।१४८-१४९।।

विमर्श (प्रयोगक्रम)—

वर्ग	करन्यास	षडङ्गन्यास
अं कं खं गं घं ङं आं—	अंगुष्ठाभ्यां नम:।	हृदयाय नम:।
इं चं छं जं झं ञं ईं —	तर्जनीभ्यां स्वाहा।	शिरसे स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं —	मध्यमाभ्यां वषट्।	शिखायै वषट्।
एं तं थं दं धं नं ऐं —	अनामाभ्यां हुम्।	कवचाय हुम्।
ओं पं फं बं भं मं औं—	कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अ:- —	करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्।

[मातृकाध्यानम्]

शरत्पूर्णेन्दुशुभ्रां सकललिपिमयीं लोलरक्तत्रिनेत्रां
शुक्लालङ्कारभासां शशिमुकुटजटाभारहारप्रदीप्ताम्।
विद्यास्त्रक्पूर्णकुम्भान् वरमपि दधतीं शुद्धपट्टाम्बराढ्यां
वाग्देवीं पद्मवक्त्रां कुचभरनमितां चिन्तयेत् साधकेन्द्र:।।१५०।।

यह भगवती मातृका का ध्यान-श्लोक है। वाग् देवता भगवती मातृका की देहयष्टि मातृकाओं से बनी है अर्थात् उनके अंग-प्रत्यंग में एक-एक वर्ण अंकित हैं। शरद्-पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान वे धवलवर्णा हैं। उनके तीन रतनारे नेत्र हैं। शिरोप्रदेश में जटा है। जटा पर अर्ध-चन्द्र का मुकुट है। उनके सभी वस्त्र और अलंकार श्वेत-धवल वर्ण के हैं। गले में हार है। मुख-मण्डल कमल के समान विकसित एवं प्रफुल्लित है। वे चतुर्भुजा हैं। उनके इन चारो हाथों में विद्या (पुस्तक), स्त्रक् (अक्षमाला), सुधाकुम्भ और वरमुद्रा शोभित है। स्तन-मण्डल के भार के कारण वे सामने की ओर कुछ झुकी हुई हैं।।१५०।।

[अन्तर्मातृकान्यासपरिपाटी]

एवं ध्यात्वा न्यसेदादौ षट्चक्रक्रमसंस्थितान्।
अकारादिक्षकारान्तानेकैकक्रमयोगत: ।।१५१।।

एवं ध्यानानन्तरमन्तर्मातृकान्यासमाह—न्यसेदित्यादिना। षडिति विशुद्धादिमूलाधाराज्ञाचक्रक्रमेणावस्थितान् अकारादिक्षकारान्तवर्णान्। एकैकेति। पद्मानां प्रतिपत्रमेकमेकं वर्णं न्यसेदित्यर्थः। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटले ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले च—

द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् षोडश विन्यसेत्।
द्वादशच्छदहृत्पद्मं कादीन् द्वादश विन्यसेत्।।
दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन् न्यसेद्दश।
षट्पत्रे लिङ्गसंस्थे च वकारादीन् न्यसेच्च षट्।।
आधारे चतुरो वर्णान् न्यसेद् वादींश्चतुदले।
ह-क्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत् प्रिये।। इति।

विन्यसेत् प्रिये इत्यत्र परिचिन्तयेदिति गन्धर्वतन्त्रपाठः। पूर्वं 'सबिन्दूनां क्रमाँल्लिखेत्' तथा 'पञ्चवर्गं सबिन्दुक'मित्यनेन कराङ्गन्यासयोः सबिन्दुकमातृकावर्णोपादानात् तत्क्रमपरित्यागे प्रमाणाभावात् प्रकृतेऽपि सबिन्दुकानामेव वर्णानां न्यासः कर्त्तव्यः। अत एव तन्त्रसारकारैरपि 'अकारादिषोडशस्वरान् सबिन्दून् षोडशदलकमले कण्ठमूले न्यसे'दित्यादिना सानुस्वाराणामेव वर्णानां न्यासोऽभिहितः।

'षट्चक्र' अर्थात् विशुद्ध-अनाहत-मणिपूरक-स्वाधिष्ठान-मूलाधार एवं आज्ञा चक्र। 'अकरादि-क्षकारान्ता' अर्थात् 'अ'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त ५० वर्ण। विनियोग, कर-न्यास-षडङ्ग-न्यास तथा भगवती मातृका का ध्यान करने के बाद मन्त्र-साधक विशुद्ध चक्र से प्रारम्भ कर आज्ञाचक्र-पर्यन्त प्रत्येक चक्र के प्रत्येक दल में 'अ'कार से प्रारम्भ कर 'क्ष'कार-पर्यन्त एक-एक मातृका (वर्ण) का न्यास करें।।१५१।।

विमर्श (प्रयोगक्रम)—विशुद्ध आदि चक्र के प्रत्येक दल में बिन्दुयुक्त एक-एक वर्ण का भावनापूर्वक न्यास किया जाता है; यथा—

विशुद्ध चक्र के १६ दलों में 'अ'कारादि १६ स्वरों का—अं नमः। आं नमः। इं नमः। ईं नमः। उं नमः। ऊं नमः। ऋं नमः। ॠं नमः। ऌं नमः। ॡं नमः। एं नमः। ऐं नमः। ओं नमः। औं नमः। अं नमः। 'अः' नमः। ये न्यास प्रदक्षिणाक्रम से किये जाते हैं।

अनाहत के १२ दलों में 'क' से 'ठ' पर्यन्त १२ वर्ण।

कं नमः। खं नमः। गं नमः। घं नमः। ङं नमः। चं नमः। छं नमः। जं नमः। झं नमः। ञं नमः। टं नमः। ठं नमः।

मणिपूरक के १० दलों में 'ड' से 'फ'-पर्यन्त १० वर्ण।

डं नमः। ढं नमः। णं नमः। तं नमः। थं नमः। दं नमः। धं नमः। नं नमः। पं नमः। फं नमः।

स्वाधिष्ठान के ६ दलों में 'ब' से 'ल'-पर्यन्त ६ वर्ण।

बं नमः। भं नमः। मं नमः। यं नमः। रं नमः। लं नमः।

मूलाधार चक्र के चार दलों में 'व' से 'स' तक ४ वर्ण।

वं नमः। शं नमः। षं नमः। सं नमः।

आज्ञाचक्र के दो दलों में शेष दो वर्ण—हं नमः। क्षं नमः।

अन्तमार्तृका क्रम में द्वितीय 'ळ'कार का न्यास नहीं किया जाता।

साधक वर्ग में भगवती मातृका का उपर्युक्त ध्यान करने के बाद एक और ध्यान करने की परिपाटी है, जो इनका आन्तरिक ध्यान है और जिसमें 'न्यास' का 'गुर' भी बताया गया है—

> आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
> द्वे पत्रे षोडशारे द्विदश-दशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
> वासान्ते बालमध्ये 'डफ''कठ'सहिते कण्ठदेशे स्वराणाम्
> हक्षौ तत्त्वार्थचिंत्यं सकलदलगतं वर्णरूपां नमामि।।

इस श्लोक का अर्थ है—आधार (मूलाधार), लिंग (स्वाधिष्ठान). नाभि (मणिपूरक), प्रकटितहृदय (अनाहत), तालुमूल (विशुद्ध) और ललाट (आज्ञा) में आज्ञाचक्र से प्रारम्भ कर क्रमशः जो दो (आज्ञाचक्र में), सोलह (विशुद्ध में), द्विदश अर्थात् बारह (अनाहत में), दश (मणिपूरक में), द्वादशार्ध अर्थात् छः (स्वाधिष्ठान में) तथा चतुष्क यानी चार (मूलाधार में) दल हैं, उन दलों में कण्ठदेश (विशुद्ध चक्र) से प्रारम्भ करके क्रमशः १६ स्वरों, 'क'कार से 'ठ'कार (१२ वर्णों), 'ड'कार से 'फ'कार (१० वर्णों), 'ब' और 'ल' के मध्यवर्ती (६) वर्णों तथा 'व'कार से 'स'कार-पर्यन्त (चार) वर्णों तथा अन्त में (आज्ञाचक्र में), 'ह'कार और 'क्ष'कार—इन दो वर्णों का ध्यान कर सभी दलों में स्थित वर्णरूपा मातृका को प्रणाम करता हूँ।

[बाह्यमातृकान्यासः]

इत्यन्तर्मातृकां ध्यात्वा विन्यसेद् बाह्यमातृकाम्।

[तत्र बीजपूर्वकताविकल्पः]

केवलां वा न्यसेद्देहे श्रीकण्ठाद्यां न्यसेदपि।।१५२।।

एवमन्तर्मातृकान्यासमभिधाय बाह्यमातृकान्यासमाह—विन्यसेत् बाह्यमातृकामित्यादिना। केवलाम् आदावयोजितबीजान्तराम्। श्रीकण्ठाद्याम् अमिति श्रीकण्ठबीजं तदाद्यां वा मातृकां न्यसेदिति सम्बन्धः।

इस प्रकार अन्तर्मातृका न्यास करने के बाद बाह्यमातृका न्यास करे। यह

बाह्यमातृका या बहिर्मातृका न्यास अक्षरों के आदि में बीजाक्षर (बीजाक्षरों) की योजना करके अथवा बीजाक्षर के विना भी किया जाता है।।१५२।।

[प्रत्यङ्गमेकैकाक्षरन्यासोपदेशः]

एकैकाक्षरभेदेन क्रमेण साधकोत्तमः।

ललाट से प्रारम्भ करके शरीर के प्रत्येक अंग में एक-एक अक्षर का न्यास किया जाता है। यह न्यास अनिवार्य है। मातृका न्यास के विना मन्त्रसिद्धि नहीं होती। अतः प्रत्येक साधक को अनिवार्यतः यह न्यास करना चाहिए।

विमर्श—प्रस्तुत ग्रन्थ में न्यास किये जाने वाले अंगों का नाम नहीं बताया गया है। 'तन्त्रसार' में यथा उद्धृत 'गौतमीय तन्त्र' के अनुसार निम्नलिखित अंगों में एक-एक अक्षर के न्यास का विधान है—

ललाट, मुखवृत्त, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नथुने, दोनों गण्डस्थल, ओष्ठ, अधर, ऊर्ध्व दन्तपंक्ति, अधोदन्तपंक्ति, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, दाँयें हाथ की पाँच सन्धियाँ, बाँयें हाथ की पाँच सन्धियाँ, दाहिने पैर की पाँच सन्धियाँ, बाँयें पैर की पाँच सन्धियाँ, दोनों पार्श्व (बगल), पीठ, नाभि, उदर, हृदय, दाहिना कन्धा, ककुद, बाँयाँ कन्धा, हृदय से प्रारम्भ कर दाहिना हाथ, हृदय से प्रारम्भ कर समस्त बाँयाँ हाथ, हृदय से उदर तथा उदर से हृदय।

हाथ की पाँच सन्धियाँ हैं—(१) कन्धा और हाथ का जोड़, (२) कोहनी, (३) कलाई, (४) पंजा और अंगुलियों का जोड़ तथा (५) अंगुलियों का छोर।

पैरों की पाँच सन्धियाँ हैं—(१) धड़ और जाँघ का जोड़, (२) घुटना, (३) गुल्फ, (४) पैर और अंगुलियों का जोड़ तथा (५) अँगुलियों का छोर (जहाँ नख हैं)।

[अङ्गभेदेनाङ्गुलिनियमः]

मध्यमानामिकाभ्यान्तु ललाटे मुखवृत्तके।।१५३।।
मध्यमानामातर्जनीभिर्लोचने विन्यसेत्ततः।
अनामाङ्गुष्ठयोगेन वृद्धया श्रुतिमूलके।।१५४।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन नासापुटद्वये ततः।।१५५।।
तर्जनीमध्यमानामायोगैर्गण्डद्वये न्यसेत्।
ओष्ठाधरयुगे मन्त्री मध्यमाङ्गुलिना क्रमात्।।१५६।।
अनामाङ्गुलिना दन्तपङ्क्तिद्वये प्रविन्यसेत्।
मध्यमया शिरोदेशे विन्यसेत् साधकोत्तमः।।१५७।।
अनामया तु वदने मध्याभिर्हस्तपादयोः।
सन्ध्यग्रेषु कनिष्ठादितिसृभिर्विन्यसेद् बुधः।।१५८।।

पार्श्वयोः पृष्ठदेशे तु नाभिदेशे तदन्तरम्।
मध्यानामाकनिष्ठाभिः साङ्गुष्ठाभिः प्रविन्यसेत्।।१५९।।
सकलाङ्गुलिभिः कुक्षौ यादीन् सधातुकानपि।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।।१६०।।
प्राणात्मा चैव जीवात्मा परमात्मेति विन्यसेत्।
हृदये तु तलेनैव सकलाङ्गुलिभिस्ततः।।१६१।।
स्कन्धे परगले स्कन्धे क्रमेणैव प्रविन्यसेत्।
हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखे पाणितलेन वै।।१६२।।

इदानीं यत्र यत्र यद्यदङ्गुलियोगेनाकारादीनां वर्णानां न्यासः कर्त्तव्यस्तत् सर्वं विशिष्याभिधत्ते—एकैकेत्यादिना। एकैकाक्षरभेदेन अकारादिक्षकारान्तानामेकैकाक्षर-भेदेन ललाटादिषु न्यसेदित्यर्थः। तथा च मध्यमानामिकाभ्यां ललाटे अं नम इति न्यसेत्। मध्यानामातर्जनीभिर्मुखवृत्ते आं नम इति न्यसेत्। एवं नेत्रादिष्वपि तत्तदङ्गुलि-योगेन इकारादिवर्णानां न्यासो मूलोक्तरीत्या कर्त्तव्यः। हृदिति। हस्तपत्कुक्षिमुखे हृत्पूर्वं विन्यसेदिति सम्बन्धः। अनेन हृदादिहस्तयोः हृदादिपादयोः हृदादिकुक्षौ हृदादिमुखे चेत्युक्तं भवति।

न्यासक्रम में अंगुलियों का अत्यन्त महत्त्व है। इन श्लोकों में बताया गया है कि शरीर के किस अंग में किस या किन अंगुलियों से न्यास किया जाय। इसमें भूल-चूक होने पर न्यास निष्फल हो जाता है। न्यास में अंगुलि-नियम निम्नानुसार है—

ललाट में मध्यमा और अनामिका से। मुखवृत्त में तर्जनी, मध्यमा और अनामा से। अंगूठा और अनामा से नेत्रों में। अंगूठे से कर्णमूल में। कनिष्ठा और अंगूठे से दोनों नथुनों में। तर्जनी, मध्यमा और अनामा से दोनों गण्डस्थलों में। ओष्ठ और अधर में मध्यमा से। दन्तपंक्तियों में अनामा से। ब्रह्मरन्ध्र में मध्यमा से। मुख में अनामा और मध्यमा से। कनिष्ठा-अनामा और मध्यमा से दोनों हाथों तथा दोनों पैरों की सन्धियों में, दोनों पार्श्व और पीठ में न्यास किया जाता है। नाभि में अंगूठा, मध्यमा, अनामा तथा कनिष्ठा से। पेट (कुक्षि) में सब अंगुलियों से। वक्ष (हृदय), दोनों कन्धे, ककुद, हृदय से लेकर दोनों हाथ, हृदय से लेकर दोनों पैर, हृदय से उदर, हृदय से मुख तक के स्थानों में त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि सात धातुओं तथा प्राणात्मा-जीवात्मा तथा परमात्मा-सहित 'य'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त दस (१०) अक्षरों का न्यास हथेली से किया जाता है।।१५३-१६२।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोकों में न्यासक्रम में अंगुलियों के प्रयोग के जो नियम बताये गये हैं, उन्हें पारिभाषिक रूप से 'मातृका मुद्रा' भी कहा जाता है। बहिर्मातृका

न्यास के तीन भेद हैं—(१) सृष्टिन्यास, (२) स्थितिन्यास और (३) संहारन्यास। अलग-अलग आश्रमों के व्यक्तियों (साधकों) के लिये बाह्य मातृकान्यास के क्रम में अन्तर है। सद् गृहस्थ साधक पहिले संहारमातृका न्यास करके सृष्टि और उसके बाद स्थितिमातृका न्यास करते हैं। संन्यासी लोग सृष्टि-स्थिति और संहारक्रम से न्यास करते हैं।

[प्रणवादिनमोऽन्तत्वयोः सबिन्दु-निर्बिन्दुत्वयोश्च विकल्पः]

एवमेव विधानेन पञ्चाशद्वर्णसञ्चयः।
ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सबिन्दुबिन्दुवर्जितः।।१६३।।

एवमेवेति। निरुक्तक्रमेण ओमाद्यन्तः प्रणवपुटितः अथवा नमोऽन्तः बिन्दुयुक्तो बिन्दुरहितो वा।

इस प्रकार प्रत्येक वर्ण (अक्षर) को बिन्दुयुक्त या केवल विसर्गयुक्त अथवा बिन्दु और विसर्ग दोनों से युक्त करके तथा उसे प्रणव (ॐ) से सम्पुटित कर तथा अन्त में 'नमो' की योजना करके समस्त पचासों वर्णों का न्यास किया जा सकता है।।१६३।।

[सविसर्गविन्दुविसर्गोभयवत्तयोर्विकल्पः]

सविसर्गः सोभयश्च रहस्यं तत्त्वमुच्यते।
वित्तप्रदो बिन्दुयुतो विद्यादौ विन्दुवर्जितः।
पुत्रदः सविसर्गश्च सोभयो मुक्तिदायकः।।१६४।।

सविसर्गः अन्ते विसर्गयुक्तः, सोभयः बिन्दुविसर्गोभयसहितो वा पञ्चाशद्वर्णसञ्चयो न्यस्तव्य इति सम्बन्धः। निरुक्तबिन्द्वाद्यन्तवर्णन्यासे फलमाह—**रहस्यमित्यादिना।** स्पष्टम्।

मातृका को बिन्दुयुक्त, विसर्गयुक्त अथवा बिन्दु एवं विसर्ग से युक्त करके न्यास करने के अलग-अलग फल हैं। केवल बिन्दुयुक्त मातृकान्यास वित्तप्रद है। बिन्दुरहित मातृका न्यास विद्या-प्रदायक है। केवल विसर्गयुक्त मातृका न्यास पुत्रप्रद तथा बिन्दु और विसर्ग दोनों से युक्त (यथा 'आंः') मातृका का न्यास मुक्तिदायक है।।१६४।।

[न्यासे मायादिबीजपूर्वकताविकल्पः]

मायालक्ष्मीबीजपूर्वो वाग्भवाद्योऽथवा क्रमात् ।
त्रितयाद्यो रमाद्यो वा न्यस्तव्यः साधकोत्तमैः।।१६५।।

मायेति। न्यासेऽस्मिन् अकारादिमातृकाणां पूर्वतो बीजयोगे कल्पचतुष्टयमाह—**मायेत्यादिना।** तत्र ह्रीं श्रीमिति मायारमाबीजे पूर्वतो योजयित्वा न्यासः कर्त्तव्य इत्येकः। ऐँ इति वाग्भवबीजपूर्वः पञ्चाशद्वर्णसञ्चयो न्यस्तव्य इत्यपरः। **त्रितयाद्य**

इति। निरुक्तमायालक्ष्मीवाग्भवलक्षणबीजत्रयाद्य इत्यन्यः। **रमाद्य इति।** श्रीमिति लक्ष्मीबीजाद्य इतरः। एवञ्च अं नमः आं नम इत्यादेः पूर्वतो निरुक्तक्रमेण बीजयोगे ह्रीं श्रीं आं नमः इत्यादिरूपो वा, ऐँ आं नमः इत्यादिरूपो वा, ह्रीं श्रीं ऐँ आं नमः इत्यादिरूपो वा, श्रीं आं नम इत्यादिरूपो वा प्रयोगः पर्यवस्यति। अत्र रमाद्य इति पृथगभिधानान्मायालक्ष्मीबीजपूर्व इत्यत्र मायालक्ष्मीर्युगपत्प्रयोग इति ज्ञेयम्। क्रमादित्यनेन बीजानां पौर्वापर्यविपर्ययः प्रतिषिद्धः।

मातृकावर्णों के आगे बीजाक्षरों की योजना करने के चार कल्प हैं। (१) माया-लक्ष्मी (ह्रीं-श्रीं) युक्त प्रथम कल्प है। वाग्भवाद्य अर्थात् 'ऐं' युक्त करना दूसरा कल्प है। 'त्रितयाद्य' (ह्रीं-श्रीं-ऐं) तीसरा कल्प है। केवल रमाद्य (अर्थात् केवल 'श्रीं') चतुर्थ कल्प है॥१६५॥

इनमें से किसी भी कल्प के अनुसार बीजाक्षरों की योजना करके मातृका-न्यास किया जा सकता है।

[निरुक्ताङ्गुलिभिर्न्यासासम्भवे कर्त्तव्यम्]

मनसा वा न्यसेन्न्यासान् पुष्पैर्वाऽनामयाऽथवा।
अङ्गुष्ठानामिकायोगान्न्यसेद् वा सर्वकर्मसु।।
एवमेव विधानेन वर्णन्यासान् समाचरेत्।।१६६।।

प्रागुक्तरूपेण तत्तदङ्गुलिभिर्न्यासस्यासम्भवे कर्त्तव्यमाह—**मनसेत्यादिना।** स्पष्टम्।

इस श्लोक में उपर्युक्त अंगुलि-नियमों का विकल्प बताया गया है। यदि उक्त अंगुलि-नियमों के अनुसार न्यास करना सम्भव नहीं हो तो केवल मन से, अथवा केवल अनामा से अथवा अंगूठे और अनामा से फूल पकड़कर सभी कार्यों में मातृका-न्यास किया जाय॥१६६॥

[सूर्यादिदेवतापूजा]

सूर्यं सम्पूजयेदादौ गणेशं विष्णुदैवतम्।
शिवपूजां ततः कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यथाविधि।।१६७।।

अत्र सूर्यादीनां पूजनमभिधत्ते—**सूर्यमित्यादिना।** सूर्यं गणेशं विष्णुं शिवञ्च क्रमेण पूजयेदित्यर्थः। स्वैः स्वैर्मन्त्रैरिति तत्तद्देवताकल्पोक्तैः प्रणवादिनमोऽन्तैर्वा।

मुख्य पूजा प्रारम्भ करने के पूर्व सूर्य-गणेश-विष्णु और भगवान् शिव की उनके मन्त्रों से यथाक्रम यथाविधि पूजा की जाय॥१६७॥

[करन्यासः]

करशुद्धिकरी विद्या मध्यमादितलान्तिकम्।
अङ्गुलीषु द्विरावृत्त्या करशुद्धिं समाचरेत्।।१६८।।

करन्यासमाह—**करशुद्धीत्यादिना**। क्रमोऽयं पूर्वमेव प्रदर्शितः।

करशुद्धिकरी विद्या का निरूपण पहिले ही (श्लोकसंख्या ९८ में) किया जा चुका है। उक्त त्र्यक्षरी विद्या की दो बार आवृत्ति करके अंगुलियों में (मध्यमा से करतल-पर्यन्त) न्यास करके हाथ की मन्त्रात्मक शुद्धि की जाय॥१६८॥

[षडासनन्यासः]

ततः षडासनन्यासं कुर्यात् साधकसत्तमः।
त्रिपुरेशीति मन्त्रेणामृतासनन्तु पादयोः॥१६९॥

अथ षडासनन्यासमाह—तत्र इत्यादिना। तत्र प्रथमासनन्यासमाह—**त्रिपुरेशीति**। अत्र त्रिपुरेशी बालाबीजत्रयम् । व्यक्तमुक्तं तन्त्रसारकृता—बालान्ते अमृतार्णवासनाय नमः इति पादयोरित्यनेन। नमः पदान्तोऽयं न्यासः सर्वत्र तथा दर्शनात्। एवञ्च ऐँ क्लीँ सौः अमृतासनाय नम इति पादयोर्न्यसेत् ।

अमृतार्णवशब्दपूर्व आसनाय महामनुः।
पादयोर्विन्यसेत् * * * * ॥

इति यामलवचनानुसारेण तु ऐँ क्लीं सौः अमृतार्णवासनाय नम इति तन्त्रसारपरिगृहीत एव मन्त्रः पर्यवस्यति। तन्त्रसारकृताऽपि तथैव लिखितम्।

'ततः' अर्थात् कर-शुद्धि के बाद षडासन न्यास करे। इनमें पहिला आसन है—'अमृतासन'। 'त्रिपुरेशीमन्त्रेण' अर्थात् बाला-विद्या (ऐं क्लीं सौः) के आगे 'अमृतासन' की योजना करने से न्यासमन्त्र बनता है—'ऐं क्लीं सौः अमृतासनाय नमः'—पादयोः॥१६९॥

कुमारिकां समुच्चार्य त्रिपुरसुन्दरी ततः।
पोताम्बुजासनं जानुद्वयं बालादि सन्त्यजेत्॥१७०॥

द्वितीयमाह—**कुमारिकामिति**। कुमारिकां बालां समुच्चार्य त्रिपुरसुन्दरीति, ततश्च **पोताम्बुजासनमिति**। एवञ्च ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी-पोताम्बुजासनाय नम इति जानुद्वये न्येदित्यर्थः। तदुक्तं तत्रैव—

*** पश्चात् बालान्ते परमेश्वरि।
पोताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत्॥ इति।

तृतीयमाह—**बालादीत्यादिना**। बालादि ऐँ क्लीं सौरिति बालाबीजत्रयस्यादि ऐँ इति बीजं त्यक्त्वा तत्र मायां समारोप्य वाग्भवबीजस्थाने मायाबीजं दत्त्वेत्यर्थः।

दूसरा आसन पोताम्बुज आसन है। यह न्यास दोनों जानुओं में किया जाता है। कुमारी अर्थात् 'ऐं क्लीं सौः' के आगे 'त्रिपुरसुन्दरी' और उसके आगे 'पोताम्बुजासनाय नमः' की योजना करने से न्यास मन्त्र बनता है—ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी पोताम्बुजायनाय नमः—जानुद्वये।

'बालादि सन्त्यजेत्' का सम्बन्ध अगले श्लोक से है।

तत्र मायां समारोप्य त्रिपुरवासिनीति च।
आत्मासनमूरुद्वन्द्वे त्रिपुरेश्याद्ययुग्मके।।१७१।।

ततस्त्रिपुरवासिनीति ततश्चात्मासनायेति, ततो नमःपदं पूर्ववत् प्रयुञ्जीत। एवञ्च ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरवासिन्यात्मासनाय नमः इति ऊरुद्वये न्यसेदिति फलितार्थः। व्यक्तमाह तन्त्रसारधृतयामले—

ह्रीं क्लीं सौस्त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदं ततः।
ङेन्तं देव्यासनञ्चान्ते नम ऊरुद्वये न्यसेत्।। इति।

अत्र त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नम इति विशेषः।

'बालादि सन्त्येजत्', 'तत्र मायां समारोप्य—अर्थात् बाला विद्या (ऐं क्लीं सौः) के आदि वर्ण 'ऐं' को हटाकर उसके स्थान पर 'ह्रीं' की योजना करें। शेष दो वर्णों को यथावत् रहने दें। रूप बना—'ह्रीं क्लीं सौः'। इसके आगे 'त्रिपुरवासिनि आत्मासनाय नमः—ऊरुद्वये' की योजना करने से न्यासमन्त्र बना—'ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरवासिनि आत्मासनाय नमः—ऊरुद्वये'।

शिवं चन्द्रं नियोज्यैव तृतीये शिवमुत्क्षिपेत्।
त्रिपुराश्रीतिचक्रस्य आसनं स्फिचि देशके।।१७२।।

चतुर्थमाह—**शिवमित्यादिना**। प्रागुक्ते ऐँ क्लीं सौरिति बालाबीजत्रये प्रथमे शिवं हकारं द्वितीये चन्द्रं हकारं नियोज्य तृतीये शिवम् उत्क्षिपेत् उद्धरेदित्यर्थः। एवञ्च ऐँ इत्यनेन हकारयोगे हैँ द्वितीयेन क्लीं इत्यनेन तद्योगे हक्लीं, तृतीये सौरित्यनेन तद्योगे हसौरिति लभ्यते। अत्र चन्द्रमित्यनेन चन्द्रशेखरपदप्रतिपाद्यं शिवबीजं बोध्यम्। व्यक्तमाह तन्त्रसारधृतयामले–

हैं हक्लीं हसौरन्ते त्रिपुरवासिनीति च।
चक्रासनाय नम इत्यमुना स्फिग्द्वये न्यसेत्।। इति।

एवञ्च हैं हक्लीं हसौः त्रिपुराश्रीचक्रासनाय नम इति प्रयोगः। निरुक्तयामलानुसारेण तु त्रिपुरवासिनीति विशेषः। स्फिचि देशके नितम्बे।

'त्रिपुरेश्याद्ययुग्मके' अर्थात् बाला बीज के प्रथम दो अक्षरों अर्थात् 'ऐं' और 'क्लीं' के साथ शिव (ह) तथा तृतीय अक्षर 'सौः' के साथ भी शिव (ह) की योजना करें। इस तरह तीनों बीजों के साथ 'ह'कार की योजना करने से इन तीनों बीजों का रूप हो गया—'हैं हक्लीं हसौः'। इसके अन्त में 'त्रिपुराश्रीचक्रासनाय नमः—स्फिचि देशके' की योजना करने से न्यासमन्त्र बना'हैं हक्लीं हसौः त्रिपुराश्रीचक्रासनाय नमः'—स्फिचि देशके'। स्फिच् का अर्थ है— नितम्ब। षडासन न्यास-क्रम में यह चतुर्थ न्यास है।।१७२।।

बालाबीजद्वये मन्त्री शिवचन्द्रद्वयं क्षिपेत्।
तार्तीये शिवबीजन्तु ततस्त्रिपुरमालिनी।
सर्वमन्त्रासनं लिङ्गे देव्या आसनकान्तिकम्।।१७३।।
हित्वा ब्लेमात्मकं बीजं त्रिपुरान्ते समालिखेत्।
ततः सिद्धेश्वरी चैव साध्यसिद्धासनं गुदे।।१७४।।

पञ्चममाह—**बालेत्यादिना**। अत्रापि प्रागुक्तबालाबीजानां मध्ये प्रथमे ऐँ क्लीँ इति बालाबीजद्वये प्रत्येकेन शिवबीजं हकारं चन्द्रबीजं सकारञ्च क्षिपेदित्यर्थः। एवञ्च ऐँ इत्यनेन हकारसकारयोर्योगे हसैं इति, क्लीं इत्यनेन च तद्योगे ह स क्लीं इति लभ्यते। तार्त्तीये सौः इति तृतीयबीजे शिवबीजमात्रयोगे हसौरित्येव स्यात् । ततस्त्रिपुरमालिनीति ततश्च सर्वमन्त्रासनायेति। एवञ्च हसैं हसक्लीं हसौः त्रिपुरमालिनी–सर्वमन्त्रासनाय नमः इति लिङ्गे न्यसेदित्यर्थः।

षष्ठमाह—**देव्या इत्यादिना**। तथा च ह्रीं क्लीं सौरित्यतः आसनकान्तिमं सौरिति दित्या तत्र ब्लें इति समालिखेत्। एवञ्च ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरसुन्दरीसाध्यसिद्धासनाय नम इति गुदे न्यसेदिति फलितम्। एवमेव त्रिपुरार्चनरहस्यकाराः।

बाला विद्या के प्रथम दो अक्षरों के आगे 'ह'कार और 'स'कार की तथा तृतीय बीज के आगे केवल 'ह' कार की योजना करने से रूप बना—'हसैं हसक्लीं हसौः।' इसके आगे 'त्रिपुरमालिनी सर्वमन्त्रासनाय नमः' की योजना करने से न्यास-मन्त्र बना—'हसैं हसक्लीं हसौः त्रिपुरमालिनी सर्वमन्त्रासनाय नमः।' इसका न्यास लिंग में किया जाता है।

'देव्याः आसन कान्तिकम्' का सम्बन्ध अगले श्लोक से है।

आत्मासन न्यास के बीज हैं—ह्रीं क्लीं सौः। इनमें से 'सौः' को हटाकर उसके स्थान पर 'ब्लूं' लिखें। इसके आगे 'त्रिपुरसुन्दरी साध्यसिद्धासनाय नमः' की योजना करें। न्यासमन्त्र बना—'ह्रीं क्लीं ब्लूं त्रिपुरसुन्दरी साध्यसिद्धासनाय नमः।' यह न्यास गुदा में किया जाता है।।१७३-१७४।।

[षडङ्गन्यासोपदेशो वशिन्याद्यष्टकन्यासक्रमश्च]

षडङ्गं पूर्ववत् कृत्वा वशिन्याद्यष्टकं न्यसेत्।
अष्टवर्गैः क्रमेणैव वलूमात्मकमुद्धरेत्।।१७५।।
वशिनीं विन्यसेन्मूर्ध्नि कामेशीं कलह्रींयुताम्।
कपाले तु तवर्गान्तं लान्तभूमायया युतम्।।१७६।।
भ्रूमध्ये मोदिनीं वाचां देवतान्तु विनिन्यसेत्।
वायुं भ्रूवामकर्णाभ्यां नादबिन्दुसमन्वितम्।।१७७।।

विमलां विन्यसेत् कण्ठे चवर्गस्य तृतीयकम्।
कालक्ष्मान्तवामनेत्रमरुणां हृदये न्यसेत्।।१७८।।

षडङ्गमिति। पूर्ववत् षडङ्गन्यासं कृत्वेत्यनेन 'अनया बालया मन्त्री'त्यादिना 'वक्ष्यमाणक्रमान्मूलद्विरावृत्त्याऽथवा सुधी'रित्यादिना च प्रागभिहितं षडङ्गन्यासं कृत्वेति ज्ञेयम्। तन्त्रसारकृता तु—

सर्वज्ञता नित्यसुतृप्तता च अनादिबोधश्च स्वतन्त्रता च।
अलुप्तशक्तित्वमनन्तता च षडाहुरङ्गानि शिवयोः शिवाद्याः।।
'बीजान्ते नाम संयोज्य जातियुक्तं षडङ्गकम्'।

इति नवरत्नेश्वरप्रमाणानुसारेण ऐँ सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः। क्लीं नित्यसुतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीशिरसे स्वाहा इत्येवं क्रमेण षडङ्गन्यासोऽभिहितः। परन्त्वत्र पूर्ववत् कृत्वेत्यभिधानान्नवरत्नेश्वरोक्तादन्य एवायं क्रम इति ज्ञेयम्।

अथ वशिन्यादिन्यासमाह—**वशिन्याद्यष्टकमित्यादिना**। ब्रह्मरन्ध्रादिषु सर्वाङ्गान्तेष्वष्टसु स्थानेष्वष्टवर्गैः सह क्रमेण वशिन्याद्यष्टकं न्यसेदिति सम्बन्धः। वशिन्याद्यष्टकञ्च वशिनी-कामेशी-मोदिनी-विमलारुणा-जयिनी-सर्वेशी-कौलिनीत्याख्यं वक्ष्यमाणम्। तत्र प्रथमं न्यासमाह—**वलूमात्मकमित्यादिना मूर्ध्नीत्यन्तेन**। अनेन अं इत्यतः अः इत्यन्तं स्वरवर्गं ततो वलूं ततो वशिनीवाग्देवतायै नमः इति मूर्ध्नि ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेदित्यर्थः। अत्र गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

वह्निर्वरुणशक्रञ्च षष्ठस्वरविभूषितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं वशिनीति पदन्ततः।
वाग्देवता चतुर्थ्यन्ता नमः स्वरैः प्रविन्यसेत्।

इत्यभिधानात्, ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

अवर्गान्ते लिखेद् बीजं वह्निफान्तं क्षमान्वितम्।
वामकर्णविशोभाढ्यं बिन्दुनादाङ्कितं प्रिये।
वशिनीं पूजयेद् वाचां देवतां देवि सुव्रते।

इत्युक्तन्यासक्रमदर्शनाच्च अकारादि-विसर्गान्तस्वरोच्चारणानन्तरं रवलूमित्युच्चार्य वशिनीवाग्देवतायै नम इत्युच्चरेदिति सुस्पष्टं प्रतिभाति। तन्त्रसारेऽपि रवलूमित्येव दृश्यते। तन्मूले वलूमात्मकमिति पाठः प्रामादिको वा तन्त्रान्तरसम्मतो वेति सन्दिहानैरप्यस्माभिरगत्या मूलानुगत एव मन्त्रोद्धारः कृत इति क्षमन्तां तन्त्ररसिकाः।

द्वितीयमाह—**कामेशीमित्यादिना कपाले त्वित्यन्तेन**। तथा च प्रथमं सानुस्वारं कवर्गं ततः कलह्रीमिति ततश्च कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः इति ललाटे न्यसेत्। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

मादनं शक्रमारूढं महामाया ततः परम्।
इयं कामेश्वरी ज्ञेया कवर्गेण ललाटके।। इति।

तृतीयमाह—**तवर्गान्तमित्यादिना विनिन्यसेदित्यन्तेन।** अत्रापि सानुस्वारं चवर्गं ततस्तवर्गान्तं नकारं तञ्च लान्तेन वकारेण भूमायया भुवा लकारेण मायया दीर्घेकारेणार्थाद् बिन्दुनाऽपि युतम्, एतेन नवलीमिति प्राप्तम् । ततश्च मोदिनीवाग्देवतायै नम इति भ्रूमध्ये विनिन्यसेदिति सम्बन्धः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

चवर्गान्ते धान्तलान्तं क्षमातुर्यस्वरान्वितम्।
मोदिनीं पूजयेद् वाचां देवतां तदनन्तरम्।। इति।

गन्धर्वतन्त्रे नवमपटलेऽपि—

धान्त्यं वरुणमिन्द्रञ्च चतुर्थस्वरबिन्दुकम्।
एषैव मोदिनी देवी भ्रुवोर्मध्ये चवर्गकैः।। इति।

चतुर्थमाह—**वायुमित्यादिना कण्ठ इत्यन्तेन।** अत्र प्रथमं सानुस्वारं टवर्गं ततो वायुं यकारं भूवामकर्णाभ्यां भूर्लकारः वामकर्ण ऊकारस्ताभ्यां युक्तं तन्नादबिन्दुसमन्वितं ततो विमलावाग्देवतायै नमः इति कण्ठे न्यसेत् । तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

वायुं पुरन्दरं देवि षष्ठस्वरविभूषितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं विमलेयं समीरता।
न्यस्तव्या कण्ठदेशे तु टवर्गेणैव पार्वति।। इति।

पञ्चममाह—**चवर्गस्येत्यादिना हृदये न्यसेदित्यन्तेन।** अत्र प्रथमं सानुस्वारं तवर्गम्, ततश्चवर्गस्य तृतीयकं जकारम्, ततः कालक्ष्मान्तवामनेत्रं कालो मकारः, क्ष्मा अन्ते यस्य स क्ष्मान्तो रकारः वामनेत्रमीकारः, एतेन जमरीं इति प्राप्तम् । ततश्चारुणावाग्देवतायै नम इति हृदये न्यसेत् । यत्तु तन्त्रसारे जमलीमित्यनन्तरमरुणायै इत्यादि दृश्यते तत् प्रामादिकमिति प्रतिभाति। गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

छान्तं भान्तञ्च ज्वलनं तुरीयस्वरबिन्दुकम्।
अरुणेयन्तु वाग्देवी तवर्गेण इति स्थिता।।

इत्यत्र ज्वलनमितिपदेन वह्निबीजस्य रकारस्यैव स्फुटमभिधानात् । ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटलेऽपि—

तवर्गान्ते जमक्ष्माद्यं वामनेत्रविभूषितम्।
बिन्दुनादाङ्कितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत्।।

इति वचने क्ष्माद्यमित्यनेन पृथ्वीबीजलकारादिभूतरकारस्यैव बोधः। न तु क्ष्माद्यमित्यनेन पृथ्वीबीजग्रहः कथमपि सम्भवति। यत्तु आधुनिकमुद्रिततन्त्रसारेषु जमक्ष्मान्तमिति ज्ञानार्णववचनस्य पाठो दृश्यते तत्र बहुव्रीह्याश्रयणमेव साधु।

षडासन न्यास के उपरान्त पुनः पूर्वोक्त षडङ्ग न्यास करें। षडङ्ग-न्यास की विधि श्लोकसंख्या १०० आदि में बताई गई है। इसके बाद वशिनी आदि वाग्देवता न्यास करे।

वर्णमाला में स्वरों और व्यञ्जनों के आठ वर्ग हैं। यथा—(१) 'अ'वर्ग, (२) 'क'वर्ग, (३) 'च'वर्ग, (४) 'ट'वर्ग, (५) 'त'वर्ग, (६) 'प'वर्ग, (७) 'य'वर्ग तथा (८) 'श'वर्ग।

वशिनी आदि वाग्देवता भी आठ हैं। यथा—(१) वशिनी, (२) कामेश्वरी, (३) मोदिनी, (४) विमला, (५) अरुणा, (६) जयिनी, (७) सर्वेशी और (८) कौलिनी।

वर्णमाला के एक वर्ग के आगे वाग्देवता के बीजाक्षरों तथा उनके चतुर्थ्यन्त नाम-सहित 'नमः' की योजना करने से वाग्देवता-न्यास के मन्त्र बनते हैं। प्रथम वाग्देवता हैं—वशिनी। वशिनी का बीज है—ब्लूं। अतः उनका न्यासमन्त्र निष्पन्न हुआ—

(१) **वशिनी वाग्देवता**—'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनी- वाग्देवतायै नमः—ब्रह्मरन्ध्रे।

विमर्श—ज्ञानार्णव तथा तन्त्रसार में वशिनी का बीज 'रव्लूं' बताया गया है। इस प्रकार 'ब्लूं' और 'रव्लूँ' ये दो बीज प्राप्त होते हैं। अपनी गुरुपरम्परा में जो बीजाक्षर प्रचलित है, उसका उपयोग करें।

(२) **'कामेशी' वाग्देवता**—दूसरी वाग्देवता 'कामेशी' हैं। वर्णमाला का दूसरा वर्ग 'क'वर्ग है। कामेशी का बीज 'कलह्रीं' है। न्यासस्थान ललाट है। न्यास मन्त्र है—कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेशी वाग्देवतायै नमः—ललाटे।

(३) **मोदिनी वाग्देवता**—'त'वर्गान्त अर्थात् 'न'कार। लान्त अर्थात् 'व'कार। भू—'ल'कार तथा माया—'ई' जो बिन्दुयुक्त है। इन वर्णों की योजना करने से रूप बना—'न्वलीं'। यह तीसरी वाग्देवता मोदिनी का बीज है। वर्णमाला का तृतीय वर्ग 'च'वर्ग है। इनका न्यास भ्रूमध्य में करें। न्यास मन्त्र निष्पन्न हुआ—चं छं जं झं ञं न्वलीं मोदिनी वाग्देवतायै नमः—भ्रूमध्ये।

(४) **विमला वाग्देवता**—वायु अर्थात् 'य'कार, भू अर्थात् 'ल'कार तथा बिन्दु-सहित वामकर्ण अर्थात् 'ऊं'। इन वर्णों की योजना से बीजाक्षर प्राप्त हुआ—'य्लूं'। यह विमला का बीज है। वर्णमाला का चौथा वर्ग है—'ट'वर्ग। न्यास-स्थान है—कण्ठ।

टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवतायै नमः—कण्ठे।

(५) **अरुणा वाग्देवता**—'च'वर्ग का तीसरा वर्ण—'ज'कार। काल अर्थात् 'म'कार। क्ष्मान्त अर्थात् 'र'कार। बिन्दुयुक्त वामनेत्र अर्थात् 'ईं'। इनके संयोजन से बीजाक्षर प्राप्त हुआ—'ज्म्रीं'। यह अरुणाबीज है। वर्णमाला का पंचम वर्ण है—'त'वर्ग। न्यासस्थान है—हृदय।

तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमः—हृदये।

शिवसोममहीतोयवह्निभूमात्मकं तथा।
जयिनीं विन्यसेन्नाभौ चवर्गस्य तृतीयकम्(?)।।१७९।।
काम(?)वह्निमरुद्वामकर्णबिन्दुसमन्वितम्।
मूलाधारे च सर्वेशीं नृसिंहकालवह्निना।
वामनेत्रेण संयुक्तं कौलिनीं श्रवणे न्यसेत्।।१८०।।

षष्ठमाह—शिवेत्यादिना नाभावित्यन्तेन। अत्र प्रथमं सानुस्वारं पवर्गं ततश्च शिवेत्यादि। शिवो हकारः, सोमः सकारः, मही लकारः, तोयं वकारः, वह्निभूर्यकारः, आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरित्यादिश्रुतेः। तत ऊं इति। अनेन ह स ल व यूमिति प्राप्तम्। ततश्च जयिनीवाग्देवतायै नम इति नाभौ न्यसेत्। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

जयिनी च ततो देवि नकुलिः सोमशक्रकम्।
वारुणं वायुबीजञ्च षष्ठस्वरविभूषितम्।
नाभिदेशे समाख्याता पवर्गेण वरानने।। इति।

सप्तममाह—चवर्गस्येत्यादिना सर्वेशीमित्यन्तेन। अत्र प्रथमं यवर्गम्, ततश्च चवर्गस्य तृतीयकं जकारः, कामः ककारः, वह्नी रकारः, मरुद् यकारः, स च वामकर्ण-बिन्दुभ्यामूकारानुस्वाराभ्यां विभूषितः, एतेन यवर्गानन्तरं जकरयूमित्यापतति। परन्तु गन्धर्वज्ञानार्णवतन्त्रानुसारेण झमरयूमिति प्रयोगसम्भवात् श्रीमत्तन्त्रसारकारैस्तथैवाभिहितत्वाच्च 'सवर्गस्य चतुर्थकमि'ति 'काले'ति च पाठौ लेखकप्रमादत'स्तृतीयकं' 'कामे'ति चावस्थानन्तरमापन्नाविति प्रतीमः। तथा च गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

जान्तं भान्तं ततो रेफं वायुबीजसमन्वितम्।
षष्ठस्वरसमायुक्तं नादबिन्दुकलायुतम्।
सर्वेश्वरी यवर्गेण स्वाधिष्ठानाख्यपङ्कज।। इति।

ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले च—

यवर्गान्ते जान्तकालरेफवायुसमन्वितम्।
ऊमाढ्यं देवतां वाचां सर्वेशीं परिपूजयेत्।।

इत्यभिहितम्। एवञ्च यं रं लं वं झ म र यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः इत्येव गन्धर्वज्ञानार्णवानुसारेण पर्यवस्यतीति ध्येयम्।

अष्टममाह—नृसिंहेत्यादिना श्रवणे न्यसेदित्यन्तेन। संयुक्तमिति क्रियाविशेषणम्। संयुक्तामिति वा समीचीनः पाठः। अत्र प्रथमं शादिवर्गं ततश्च नृसिंहेत्यादि, नृसिंहः क्षकारः, कालो मकारः, वह्नी रकारः, वामनेत्रेण चतुर्थस्वरेण। एतेन क्षमरीमिति प्राप्तम्। ततश्च कौलिनीवाग्देवतायै नम इति श्रवणे न्यसेदित्यर्थः। न्यासोऽयं मूलाधार इति गन्धर्वतन्त्रोपदेशः। तदुक्तं तत्रैव नवमपटले—

संवत्तर्कं महेशानि कालबीजोपरि स्थितम्।
वह्निबीजं ततो माया नादबिन्दुकलान्विता।
मूलाधारे शवर्गेण कौलिनी परिकीर्तिता।। इति।

ज्ञानार्णवे तु सर्वाङ्गे न्यासोऽयमुपदिष्टः। तथा च तत्र न्यासस्वरूपनिरूपणानन्तरं स्थाननिरूपणावसरे—

शिरोललाटभ्रूमध्यकण्ठहृन्नाभिगोचरे ।
आधारे व्यूहकं यावन्न्यसेद्देवीः क्रमात् प्रिये।। इति।

(६) **जयिनी वाग्देवता**—शिव (ह), सोम (स), मही (ल), तोय (व), वह्निभू (य) जो बिन्दुयुक्त 'ऊ' से विभूषित है—अर्थात् 'हस्ल्व्यूं'। यह जयिनी का बीज है। वर्णमाला का छठवाँ वर्ग है—'प'वर्ग। न्यास स्थान—नाभि।

पं फं बं भं मं हस्ल्व्यूं जयिनी वाग्देवतायै नमः—नाभौ।

(७) **सर्वेशी वाग्देवता**—'च'वर्ग का तृतीय वर्ण—'ज'कार। काम अर्थात् 'क'कार। वह्नि अर्थात् 'र'कार। मरुत् अर्थात् 'य'कार जो बिन्दुयुक्त वामकर्ण 'ऊ' से विभूषित हो। इस प्रकार रूप प्राप्त हुआ—'जकरयूं।' यह सर्वेशी का बीज बनता है; मगर ज्ञानार्णव, गन्धर्वतन्त्र, श्रीविद्यार्णव-प्रभृति अन्य तन्त्रग्रन्थों के अनुसार सर्वेशी का बीज है—'झम्र्यूं'। अतः सर्वेशी का बीज 'जकरयूं' मानना प्रमाद है। वर्णमाला का सातवाँ वर्ग 'य' वर्ग है। 'य'वर्ग के बाद 'झम्र्यूं' की योजना करके सर्वेशी का न्यास मूलाधार में करें—

यं रं लं वं झम्र्यूं सर्वेशी वाग्देवतायै नमः—मूलाधारे।

विमर्श—गन्धर्वतन्त्र में न्यासस्थान 'स्वाधिष्ठान' बताया गया है।

(८) **कौलिनी वाग्देवता**—नृसिंह (क्ष), काल (म), वह्नि (र) जो बिन्दुयुक्त वामनेत्र (ई) से विभूषित हो। इनके संयोजन से बीजाक्षर प्राप्त हुआ—'क्ष्म्रीं'। अष्टम वर्ग है—'श'वर्ग। न्यास स्थान—श्रवण (कान)।

शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवतायै नमः—कर्णयोः।

विमर्श—गन्धर्वतन्त्र में न्यासस्थान 'मूलाधार' तथा ज्ञानार्णव में 'सर्वांग' बताया गया है। त्रिपुरार्णवतन्त्र (३/६७) में—पैर से सिर तक (पादान्मूर्धान्तमेव च) बताया गया है।

[षोढान्यासोपदेशः]

षोढान्यासं ततः कुर्यात् येन तन्मयतामियात्।

वाग्देवता न्यास के बाद 'षोढान्यास' करें। यह वह न्यास है, जिसके करने से साधक इष्टदेवता में तन्मय हो जाता है। पूर्णतः इष्टदेवता-स्वरूप हो जाता है। उसे इष्टदेवता की शक्ति अनायास ही स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। अगले १४ श्लोकों में इस षोढान्यास के प्रभाव एवं सामर्थ्य का निरूपण किया गया है।

[षोढान्यासप्रशस्तिः]

शिवाद्याश्च प्रजेशान्ता येन स्युरपराजिताः।।१८१।।
येन रामोऽजयत् संख्ये कार्तवीर्यार्जुनादिकम्।
एकविंशतिवारं हि दुर्वासा येन विप्रराट्।।१८२।।
दुर्द्धर्षवाक् शायकभृद् येन रामो निशाचरान्।
वरदृप्ताञ्जघानैव येन कृष्णो रणेऽजयः।।१८३।।
वदामि तत्तुल्यमेनमापराजित्यकारणम्।
महाप्रभावं यत् कृत्वा सान्निध्यं त्रैपुरं भवेत्।।१८४।।

षोढान्यास के प्रभाव से ही शिव-विष्णु और ब्रह्मा आदि युद्ध में अपराजेय हैं। इसी के सामर्थ्य से परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन आदि दुर्धर्ष क्षत्रियों का २१ बार संहार किया। दुर्वासा अमोघ वाक्-सम्पन्न हो गये। दाशरथी राम ने रावण आदि राक्षसों का वध किया। युद्ध में कृष्ण को कोई पराजित नहीं कर सका। जिसके प्रभाव से साधक त्रिपुरा का सान्निध्य पाकर त्रिपुरारि-स्वरूप हो जाता है, वह षोढान्यास है॥१८१-१८४॥

विषादिदमनञ्चैव सर्वशस्त्रास्त्रवारणम्।
नमस्कारप्रयोगेण मारयेत् साधको रिपून्।।१८५।।
वृक्षांश्च प्रतिमाः शैलान् नमस्कारेण दारयेत्।
तत् प्रणामं न सोढाऽस्ति विना विष्णुं विना शिवम्।।१८६।।
विनाऽब्जेशं गणेशञ्च विना श्रीपरमेश्वरीम्।
न्यसन्तं साधकं दृष्ट्वा पलायन्ते द्रुतं ग्रहाः।।१८७।।
प्रकम्पन्ते च शैलाद्या यतोऽन्या देवमूर्तयः।
भूतप्रेतपिशाचाद्या दानवा राक्षसाः खगाः।।१८८।।
दैत्यगन्धर्वसिद्धाश्च पलायन्ते भयातुराः।
डाकिन्याद्या महौषध्यः पलायन्ते महोरगाः।।१८९।।

षोढान्यास के प्रभाव से हलाहल विष का शमन हो जाता है। सभी अस्त्रों और शस्त्रों का निवारण हो जाता है। षोढान्यास-सिद्ध साधक केवल नमस्कार करके

अपने शत्रुओं के प्राण ले सकता है। ऐसा साधक जिस किसी वृक्ष, प्रतिमा, पर्वत आदि के सामने सिर झुकाता है, वह मूर्ति आदि विदीर्ण हो जाती है। साक्षात् शिव, विष्णु, गणेश और परमेश्वरी के अतिरिक्त अन्य कोई उसके प्रणाम के प्रभाव को बर्दाश्त नहीं कर सकता। इन देवताओं की मूर्तियाँ भी षोढान्यास-सिद्ध साधक के प्रणाम को सहन नहीं कर सकतीं। ऐसे साधक को देखकर क्रूर से क्रूर ग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, दानव, राक्षस, हिंसक पशु-पक्षी, गन्धर्व, सिद्ध तथा तक्षक आदि जैसे महानाग भी भयभीत होकर भाग जाते हैं।।१८५-१८९।।

सूर्यचन्द्रादयः सर्वे कम्पन्ते नतिभीषिताः।
व्याधयो रोगिणस्त्यक्त्वा पलायन्ते च सत्वरम्।।१९०।।

तत्पाणिस्पर्शतृप्त्याऽपि प्रेतभूताः सुदारुणाः।
अग्नयः शीततां यान्ति तद्गात्रस्पर्शमात्रतः।।१९१।।

ब्रह्मास्त्रादीनि सर्वाणि यं दृष्ट्वा यान्ति सौम्यताम्।
अजरामरतां याति लक्ष्मीर्देहं न मुञ्चति।।१९२।।

सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह ऐसे साधक को देखकर भय से काँपने लगते हैं। उसके स्पर्शमात्र से भीषण से भीषण रोग रोगियों को छोड़कर भाग जाते हैं। भूत-प्रेत आदि उसके स्पर्श से तृप्त हो जाते हैं। आग ठंढी हो जाती है। ब्रह्मास्त्र जैसे अमोघ शस्त्र उसके समक्ष शान्त हो जाते हैं। वह अजर-अमर हो जाता है। लक्ष्मी उसे छोड़कर कहीं नहीं जाती। अणिमा आदि सिद्धियाँ उसके सामने नतिपाणि खड़ी रहती हैं।।१९०-१९२।।

अपि घोराणि पापानि शान्तिमायान्ति तत्क्षणात्।
षोढान्यासं साधयित्वा किमसाध्यं जगत्त्रये।।१९३।।

आकर्षणस्तम्भनाद्याः सिद्धास्तस्य हि चिन्तनात्।
तस्मात् षोढां प्रवक्ष्यामि सारात् सारतरामिह।।१९४।।

षोढान्यास करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े-से-बड़े पाप से साधक की मुक्ति हो जाती है। षोढान्यास सिद्ध हो जाने पर संसार में कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। स्मरणमात्र करने से आकर्षण एवं स्तम्भन आदि सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। इतने सक्षम, सामर्थ्यवान और सारस्वरूप 'षोढान्यास' का निरूपण कर रहा हूँ।।१९३-१९४।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोकों में 'षोढान्यास' की जो महिमा, जो प्रभाव, जो सामर्थ्य बताया गया है, उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अभी निकट-अतीत में भी ऐसे षोढान्यास-सिद्ध साधक हुए हैं, जिनमें उपर्युक्त क्षमता तथा सामर्थ्य था।

[षोढान्यासघटकषड्विधन्यासोद्देश:]

गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः।
नक्षत्रैस्तु तृतीयः स्याद् योगिनीभिश्चतुर्थकः।
राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते।।१९५।।

एवं साधकानामाभिमुख्यार्थं षोढान्यासस्य प्रशस्तिमभिधाय तद्घटकान् गणेशादिषड्विधन्यासानुद्दिशति—**गणेशैरित्यादिना।**

'षोढान्यास' एक समूहवाचक संज्ञा है। इसके अन्तर्गत छ: (६) न्यास किये जाते हैं। प्रथम है—गणेश-न्यास। दूसरा—ग्रह-न्यास। तीसरा है—नक्षत्र-न्यास। चौथा है—योगिनी-न्यास। पाँचवाँ है—राशि-न्यास और छठा है—पीठ-न्यास।

[षोढायास्त्रैविध्यम्]

षोढा सा त्रिविधा प्रोक्ता स्वल्पा मध्या तथोत्तमा।
अल्पा तु निष्फला प्रोक्ता मध्यमा सफला भवेत्।।१९६।।

अथ कुलोड्डीशमतानुसारेण षोढायास्त्रैविध्यं दर्शयति—**षोढेत्यादिना।**

षोढा के तीन भेद हैं—स्वल्पा, मध्या और उत्तमा। इसमें स्वल्पा का कोई फल नहीं होता। मध्या फलप्रदा होती है।।१९६।।

विमर्श—'षोढान्यास' के दो भेद हैं। श्रीविद्यार्णव (छठे श्वास) में कहा गया है—'षोढा द्विविधा, पूर्वोत्तरभेदात्। तत्र पूर्वषोढान्यास: सर्वाम्नायविषय:। उत्तरषोढान्यास: उत्तराम्नायविषय:।' तदनुसार यहाँ बताया गया गणेशादि षोढान्यास पूर्वषोढान्यास है। महाषोढान्यास का निरूपण कुलार्णवतन्त्र के चतुर्थ उल्लास में किया गया है। इसके अन्तर्गत (१) प्रपञ्च, (२) भुवन, (३) मूर्ति, (४) मन्त्र, (५) देवता और (६) मातृकाभैरव—ये ६ न्यास किये जाते हैं। पराप्रासाद मन्त्र तथा श्रीविद्या के ऊर्ध्वाम्नायी साधक पूर्व और उत्तर दोनों षोढान्यास करते हैं। इसीलिये 'स्वच्छन्दपद्धति' और 'श्रीविद्यारत्नाकर' जैसे स्वयंप्रमाण निबन्धग्रन्थों में ये दोनों ही न्यास बताये गये हैं।

महाषोढोत्तमा लक्ष्मीर्माया कामोऽग्रतो यदि।

तत्र महाषोढास्वरूपमाह—लक्ष्मी: श्रीमिति बीजं तदग्रतो यदि मायाबीजं ह्रीं कामबीजं क्लीमिति च स्याताम्। एतेनात्र ह्रीं क्लीं श्रीमिति पूर्वमुच्चार्य विघ्नेश्वरादिभिर्न्यास: कर्त्तव्य इत्युक्तं भवति। इदमेव कुलोड्डीशमतम् । षट्स्वपि गणेशादिन्यासेष्वयं बीजयोगो बोध्य:।

उपर्युक्त १९६वें श्लोक में गणेशादि षोढान्यास के तीन भेद बताये गये हैं। यदि इन न्यासमन्त्रों के आदि में 'श्रीं ह्रीं क्लीं' की योजना करके न्यास किया जाय तो वह 'महाषोढा उत्तम न्यास' कहा जाता है।

[अस्य प्रामाणिकतन्त्रसंवादित्वम्]

कुलोड्डीशाभिधाने तु प्रकार ईदृशः स्मृतः।।१९७।।

कुलोड्डीश तन्त्र के प्राधिकार से 'ह्रीं क्लीं ह्रीं' युक्त मन्त्र से किये गये न्यास को उत्तम षोढान्यास कहा गया है।।१९७।।

[पूर्वतो बीजयोगे कल्पभेदाः]

वाङ्मायाकमलाभिर्वा तत्पुटैर्वा समाहितः।
रमामायान्वितैः पूर्वैर्मदनैर्वा तनौ न्यसेत्।।१९८।।

क्रमान्तराण्याह—**वागित्यादिना**। वाक् वाग्भबीजम् ऐँ, माया ह्रीं, कमला श्रीं। एवञ्च ऐँ ह्रीं श्रीमित्युच्चार्य वक्ष्यमाणक्रमेण न्यसेदित्यपरः कल्पः। अयमेव परिगृहीतस्तन्त्रसारसारैः। **तत्पुटैर्वेति**। तथा च ऐँ ह्रीं श्रीमित्युच्चार्य अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नम इत्यादिक्रमेण न्यसनीयवर्णदेवताश्च समुच्चार्य पुनः ऐँ ह्रीं श्रीमित्युच्चरेदित्यन्यः कल्पः। कल्पान्तरमाह—**रमेति**। पूर्वैः पूर्वं योजितैः रमामायान्वितैर्मदनैः कामबीजैर्वा न्यसेदिति सम्बन्धः। एवञ्चात्र कल्पे श्रीं ह्रीं क्लीमिति पूर्वं नियोज्य न्यसेदित्युक्तं भवति। एतेऽपि बीजयोगक्रमभेदाः षट्स्वपि गणेशादिन्यासेषु साधकैरुपादेयाः।

इस श्लोक में बीजों की योजना के कल्प बताये गये हैं। इनमें से प्रथम कल्प वह है, जिसका निरूपण पूर्ववर्ती श्लोक में किया गया है। न्यासमन्त्र के आदि में वाङ् (ऐं), माया (ह्रीं) और कमला (श्रीं) की योजना करने का दूसरा कल्प है। तीसरा कल्प है—न्यासमन्त्र को 'ऐं ह्रीं श्रीं' से सम्पुटित किया जाय। चौथा कल्प है—न्यासमन्त्र के आदि में 'श्रीं ह्रीं क्लीं' की योजना।।१९८।।

[न्यसनीयानां गणेशानां ध्यानम्]

तरुणारुणसङ्काशान् गजवक्त्रांस्त्रिलोचनान्।
पाशाङ्कुशवराभीतिकराञ् शक्तिसमन्वितान्।
एतांस्तु विन्यसेद्देहे मातृकान्यासवत् सुधीः।।१९९।।

न्यसनीया गणेशाः किमाकारा इत्यत आह—**तरुणेति**। अत्रारुणादित्यसङ्काशानिति ज्ञानार्णवे द्वितीयपटले, तरुणादित्यसङ्काशानिति च त्रिपुरार्चनरहस्ये पाठो दृश्यते। तथा चैवंस्वरूपान् गणपतीन् ध्यात्वा वक्ष्यमाणक्रमेण न्यसेदिति तात्पर्यम्। अत एव ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले तरुणादित्येत्यभिधाय—

ध्यात्वा प्रविन्यसेद्देवि मातृकान्यासवत्ततः।

इत्युक्तम्। एतेन मूलोक्तं 'मातृकान्यासवत् सुधीरि'त्यपि दृढीकृतम्। मातृकान्यासवदित्यनेन मातृकान्यासनिर्दिष्टेषु शिरोवदनाद्यङ्गेषु क्रमेण न्यासः कर्त्तव्य इत्युक्तम्।

इस श्लोक में न्यसनीय गणेशमूर्तियों का समष्टि ध्यान बताया गया है। ये गणेशमूर्तियाँ गजमुख हैं। उनका वर्ण प्रातःकालीन सूर्य के समान अरुण है। उनके

तीन-तीन नेत्र हैं, चार भुजाएँ हैं; जिनमें पाश-अंकुश-वर तथा अभय मुद्रायें हैं। वे सभी शक्ति-समन्वित हैं अर्थात् उनकी शक्तियाँ उनकी गोद में विराजिता हैं।

गणेशमूर्तियों का इस प्रकार ध्यान करके मातृका-न्यास के समान गणेश-न्यास करें॥१९९॥

[अस्य ऋष्यादिन्यासः]

ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिर्गायत्री च्छन्द उच्यते।
महागणपतिर्देवो विराड्रूपे नियोजयेत्॥२००॥

तत्र प्रथममृष्यादिन्यासमाह—ऋषिरित्यादिना। तथा च दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिर्गायत्री च्छन्दो महागणपतिर्देवता विराड्रूपे चास्य विनियोग इति ज्ञेयम्। गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटले तु—

नारायणोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।

इत्यादिना ऋष्यादिनिरूपणे क्रमभेदो दृश्यते। तन्त्रसारेऽपि बृहदारण्यक ऋषिरनुष्टुप्छन्द इत्यादिनाऽन्यथा ऋष्यादि निरूपितमस्ति। एवमत्र मतभेददर्शनात् स्वस्वगुरुसम्प्रदायानुसारेणैकतमः पक्षः समाश्रयणीय इति दिक्।

गणेश-न्यास के ऋषि हैं—दक्षिणामूर्ति। छन्द है—गायत्री। देवता हैं—विराट् रूप महागणपति।

विनियोग—ॐ अस्य गणेश-न्यासमन्त्रस्य श्रीदक्षिणामूर्तिः ऋषिः। गायत्री छन्दः। महागणपतिः देवता। विराट्रूपे न्यासे विनियोगः।

[गणेशन्यासः (१)]

विघ्नेश्वरः श्रिया युक्तो विघ्नराजस्तथा ह्रिया।
विनायकस्तथा तुष्टिः शान्तियुक्तः शिवोत्तमः॥२०१॥
विघ्नकृत् सृष्टियुक्तश्च विघ्नकर्त्ता सरस्वती।
विघ्नराड् रतियुक्तश्च मेधया गणनायकः॥२०२॥
एकदन्तश्च शान्तिश्च द्विदन्तः कामिनीयुतः।
गजवक्त्रो मोहिनी च निरञ्जनो जटायुतः॥२०३॥
कपर्दी तु तथा नित्यं दीर्घवक्त्रश्च मालिनी।
सङ्कर्षणस्तथा नन्दा सुरसा च वृषध्वजः॥२०४॥
गणनाथः कामरूपा गजेन्द्रः सुभ्रुवा युतः॥२०५॥
शूर्पकर्णश्च जयिनी त्रिलोचनश्च सत्यया।
लम्बोदरश्च विघ्नेशी महानादस्वरूपिणी॥२०६॥
चतुर्मूर्त्तिः कामदा च सदाशिवेन संयुता।
मदविह्वलनाम्नी च आमोदो विकटायुतः॥२०७॥

दुर्मुखेन युता घूर्णा सुमुखो भूतिसंयुतः।
प्रमोदश्च तथा भूमिरेका पादयुता सती।।२०८।।
द्विजिह्वो रमया युक्तः सुरयुक्ता च मानुषी।
वीरेश्वरेण संयुक्तो मकरध्वजसंज्ञिका।।२०९।।
मन्मथः पिङ्गलायुक्तो वरदो भृकुटीयुतः।
वाग्देवस्तथा लज्जा रक्ततुण्डस्तदन्तरम् ।।२१०।।
दीर्घघोणान्वितः पश्चाद् द्विरण्डको धनुर्धरः।
सेनानीर्यामिनीयुक्तो ग्रामणी रात्रिसंयुतः।।२११।।
तमश्चन्द्रिकया युक्तो विमलश्च शशिप्रभा।
मत्तवाहनलोले च जटी तु चपलेक्षणा।।२१२।।
मुण्डी ऋद्धिसमायुक्तः खड्गी दुर्भगयाऽन्वितः।
वरेण्यः सुभगायुक्तो वृषस्कन्धान्वितः शिवा।।२१३।।
भक्ष्यप्रिययुता दुर्गा गणश्च गृहकान्तया।
मेघनादः कालिका च गणेशोऽनलजिह्वया।।२१४।।
अकारादिक्षकारान्तैः सचन्द्रैर्विन्यसेद् बुधः।
गणेशन्यास उद्दिष्टो—

एवं पूर्वतो बीजयोगमृष्यादिन्यासञ्चोपदर्श्य न्यासपरिपाटीं निरूपयति—विघ्नेश्वर इत्यादिना गणेशन्यास उद्दिष्ट इत्यन्तेन। अत्र 'अकारादिक्षकारान्तैः सचन्द्रैर्विन्यसेद् बुधः' इति वक्ष्यमाणत्वाद् 'मातृकान्यासवत् सुधीरि'ति पूर्वमभिहितत्वाच्च मातृका-न्यासरीत्या शिरोमुखादिक्रमेण अं आं इत्याद्येकैकं वर्णमुच्चार्य वक्ष्यमाणात् विघ्नेश्वरादीन् न्यसेदित्यर्थः। एवं च—

(१) ह्रीं क्लीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः इत्यादिरूप एकः क्रमः।

(२) ऐँ ह्रीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः इत्यादिरूपो द्वितीयः।

(३) ऐँ ह्रीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः ऐँ ह्रीं श्रीं इत्यादिरूपस्तृतीयः।

(४) श्रीं ह्रीं क्लीं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः इत्यादिरूपश्चतुर्थः। इति ज्ञेयम्।

गन्धर्वतन्त्रेऽष्टमपटले तु—

विघ्नराज्ञाय देवेशि श्रियै नमस्ततः परम्।
विनायकाय तुष्ट्यै च शान्त्यै शिवोत्तमाय च।।

इत्यादिना तत्र तत्र पृथक् चतुर्थ्यन्तनिर्देशात्; तन्मते विघ्नराजाय श्रियै नमः विनायकाय तुष्ट्यै नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रम इति प्रतिभाति। अत्र गन्धर्वतन्त्रवचने प्रथमं न्यसनीययोर्विघ्नेश्वरश्रियोर्नाम न दृश्यते, त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्येवमेव। ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले तु—

विघ्नेश्वरस्तथा श्रीश्च विघ्नराजस्तथा ह्रिया।

इत्यादिना विघ्नेश्वरश्रियोर्न्यासः प्रथमतोऽभिहित इति तन्मतानुसारेणैव प्रकृते विघ्नेश्वरश्रियोः प्रथममुल्लेखः। तन्त्रसारेऽप्येवमेव। स्पष्टमन्यत्।

इन १५ श्लोकों में ५१ गणेशमूर्तियों और उनकी शक्तियों के नाम बताये गये हैं। वर्णमाला के 'अ'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त एक-एक बिन्दुयुक्त अक्षर के साथ एक गणेशमूर्ति और उसकी शक्ति के चतुर्थ्यन्त नाम का उच्चारण करके मातृकान्यास के समान न्यास करें। बिन्दुयुक्त अक्षर के आगे श्लोक १९७ और १९८ में बताये गये किसी भी क्रम से बीजाक्षरों की योजना करें। यथा—

१. ह्रीं क्लीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः—यह प्रथम रूप है।

२. ऐं ह्रीं श्रीं 'अं' विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः—यह द्वितीय कल्प है।

३. ऐं ह्रीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः ऐं ह्रीं श्रीं नमः—यह तीसरा कल्प है।

४. श्रीं ह्रीं क्लीं 'अं' विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः—यह चतुर्थ कल्प है।

५१ गणेशमूर्तियों और उनकी शक्तियों के नाम के साथ गणेशन्यास का प्रयोग-क्रम निम्नानुसार है—

(१) ह्रीं श्रीं क्लीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः।	ललाटे
(२) ह्रीं श्रीं क्लीं आं विघ्नराजह्रींभ्यां नमः।	मुखे
(३) ह्रीं श्रीं क्लीं इं विनायकतुष्टिभ्यां नमः।	दक्षनेत्रे
(४) ह्रीं श्रीं क्लीं ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमः।	वामनेत्रे
(५) ह्रीं श्रीं क्लीं उं विघ्नकृत्सृष्टिभ्यां नमः।	दक्षकर्णे
(६) ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं विघ्नकर्ता-सरस्वतीभ्यां नमः।	वामकर्णे
(७) ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं विघ्नराट्-रतीभ्यां नमः।	दक्षनासापुटे
(८) ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं गणनायक-मेधाभ्यां नमः।	वामनासापुटे
(९) ह्रीं श्रीं क्लीं लृं एकदन्त-शान्तिभ्यां नमः।	दक्षगण्डे
(१०) ह्रीं श्रीं क्लीं लॄं द्विदन्त-कामिनीभ्यां नमः।	वामगण्डे
(११) ह्रीं श्रीं क्लीं एं गजवक्त्र-मोहनीभ्यां नमः।	ओष्ठे
(१२) ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं निरञ्जन-जटाभ्यां नमः।	अधरे
(१३) ह्रीं श्रीं क्लीं ओं कपर्दी-तीव्राभ्यां नमः।	ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
(१४) ह्रीं श्रीं क्लीं औं दीर्घवक्त्र-मालिनीभ्यां नमः।	अधोदन्तपंक्तौ
(१५) ह्रीं श्रीं क्लीं अं संकर्षण-नन्दाभ्यां नमः।	ब्रह्मरन्ध्रे
(१६) ह्रीं श्रीं क्लीं अः वृषध्वज-सुरसाभ्यां नमः।	मुखे
(१७) ह्रीं श्रीं क्लीं कं गणनाथ-कामरूपाभ्यां नमः।	दक्षबाहुमूले

(१८)	ह्रीं श्रीं क्लीं	खं	गजेन्द्र-सुभ्रुवाभ्यां नमः।	दक्षकूर्परे
(१९)	ह्रीं श्रीं क्लीं	गं	शूपकर्ण-जयिनीभ्यां नमः।	दक्षमणिबन्धौ
(२०)	ह्रीं श्रीं क्लीं	घं	त्रिलोचन-सत्याभ्यां नमः।	दक्षांगुलिमूले
(२१)	ह्रीं श्रीं क्लीं	ङं	लम्बोदर-विघ्नेशीभ्यां नमः।	दक्षांगुल्यग्रे
(२२)	ह्रीं श्रीं क्लीं	चं	महानाद-स्वरूपिणीभ्यां नमः।	वामबाहुमूले
(२३)	ह्रीं श्रीं क्लीं	छं	चतुर्मूर्ति-कामदाभ्यां नमः।	वामकूर्परे
(२४)	ह्रीं श्रीं क्लीं	जं	सदाशिव-मदविह्वलाभ्यां नमः।	वाममणिबन्धौ
(२५)	ह्रीं श्रीं क्लीं	झं	आमोद-विकटाभ्यां नमः।	वामबाहु अंगुलिमूले
(२६)	ह्रीं श्रीं क्लीं	ञं	दुर्मुख-घूर्णाभ्यां नमः।	वामबाहु अंगुल्यग्रे
(२७)	ह्रीं श्रीं क्लीं	टं	सुमुख-भूतिदाभ्यां नमः।	दक्षपादमूले
(२८)	ह्रीं श्रीं क्लीं	ठं	प्रमोद-भूमिभ्यां नमः।	दक्षजानुनि
(२९)	ह्रीं श्रीं क्लीं	डं	एकपाद-सतीभ्यां नमः।	दक्षगुल्फे
(३०)	ह्रीं श्रीं क्लीं	ढं	द्विजिह्व-रमाभ्यां नमः।	दक्षपाद अंगुलिमूले
(३१)	ह्रीं श्रीं क्लीं	णं	सुरमानुषीभ्यां नमः।	दक्षपाद अंगुल्यग्रे
(३२)	ह्रीं श्रीं क्लीं	तं	वीरेश्वर-मकरध्वजाभ्यां नमः।	वामपादमूले
(३३)	ह्रीं श्रीं क्लीं	थं	मन्मथ-पिंगलाभ्यां नमः।	वामजानुनि
(३४)	ह्रीं श्रीं क्लीं	दं	वरद भृकुटीभ्यां नमः।	वामगुल्फे
(३५)	ह्रीं श्रीं क्लीं	धं	वामदेव-लज्जाभ्यां नमः।	वामपाद अंगुलिमूले
(३६)	ह्रीं श्रीं क्लीं	नं	रक्ततुण्ड-दीर्घघोणाभ्यां नमः।	वामपाद अंगुल्यग्रे
(३७)	ह्रीं श्रीं क्लीं	पं	द्विरण्डक-धनुर्धराभ्यां नमः।	दक्षिणपार्श्वे
(३८)	ह्रीं श्रीं क्लीं	फं	सेनानी-यामिनीभ्यां नमः।	वामपार्श्वे
(३९)	ह्रीं श्रीं क्लीं	बं	ग्रामणी-रात्रिभ्यां नमः।	पृष्ठे
(४०)	ह्रीं श्रीं क्लीं	भं	तमश्चन्द्रिकाभ्यां नमः।	नाभौ
(४१)	ह्रीं श्रीं क्लीं	मं	विमलशशिप्रभाभ्यां नमः।	जठरे
(४२)	ह्रीं श्रीं क्लीं	यं	मत्तवाहन-लोलाभ्यां नमः।	हृदये
(४३)	ह्रीं श्रीं क्लीं	रं	जटी-चपलेक्षणाभ्यां नमः।	दक्षिणस्कन्धे
(४४)	ह्रीं श्रीं क्लीं	लं	मुण्डी-ऋद्धिभ्यां नमः।	ककुदि
(४५)	ह्रीं श्रीं क्लीं	वं	खड्गी-दुर्भगाभ्यां नमः।	वामस्कन्धे
(४६)	ह्रीं श्रीं क्लीं	शं	वरेण्य-सुभगाभ्यां नमः।	दक्षबाहौ
(४७)	ह्रीं श्रीं क्लीं	षं	वृषस्कन्ध-शिवाभ्यां नमः।	वामबाहौ
(४८)	ह्रीं श्रीं क्लीं	सं	भक्ष्यप्रिय-दुर्गाभ्यां नमः।	हृदयात् दक्षपादे

(४९) ह्रीं श्रीं क्लीं हं गण-गृहकान्ताभ्यां नमः। हृदयात् वामपादे
(५०) ह्रीं श्रीं क्लीं ळं मेघनाद-कालिकाभ्यां नमः। हृदयात् जठरे
(५१) ह्रीं श्रीं क्लीं क्षं गणेश-अनिलजिह्वाभ्यां नमः। हृदयात् मुखे।

इनमें से कुछ गणेश मूर्तियों के नाम 'ज्ञानार्णव' तथा अन्य तन्त्रग्रन्थों में बताये गये नामों से भिन्न हैं।

[ग्रहन्यासप्रतिज्ञा (२)]

ग्रहन्यासश्च कथ्यते।।२१५।

[तत्र ग्रहाणां वर्णनिर्देशः]

रक्तं सूर्यं सितं चन्द्रं रक्तवर्णन्तु मङ्गलम्।
श्यामं बुधं गुरुं पीतं पाण्डुरं भृगुनन्दनम्।
शनिं कृष्णं तमो धूम्रं भावयेद्रविपूर्वकम्।।२१६।।

एवं षोढान्यासाङ्गभूतानां षण्णां न्यासानां प्रथमं गणेशन्यासमुपदिश्य द्वितीयं ग्रहन्यासमभिधत्ते—**ग्रहेत्यादिना।** **तम** इति। तमो राहुं, 'तमस्तु राहुरि'त्यमरः। कृष्णमित्यस्य शनिना तमसा च सम्बन्धः। शनेः कृष्णवर्णत्वम्—

'कृष्णं कृष्णाम्बरं गृध्रगतं सौरिं चतुर्भुजम्'।

इत्यनेन, राहोश्च कृष्णवर्णत्वम्—

राहुं मलयजं शूद्रं पैठीनं द्वादशाङ्गुलम्।
कृष्णं कृष्णाम्बरं सिंहासनं ध्यात्वा तथाऽऽह्वयेत्।।

इत्यनेन, केतोर्धूम्रवर्णत्वञ्च—

कौशद्वीपं केतुगणं जैमिनीयं षडङ्गुलम्।
धूम्रं गृध्रगतं शूद्रमाह्वयेत् विकृताननम्।।

इत्यनेन ग्रहयागतन्त्रे प्रमाणितम्। अथ **रविपूर्वकमि**ति। रविः ककारः पूर्वो यस्येत्यर्थबलात् ककारस्य नाम्न आद्यावयवत्वाद् रविपूर्वकशब्देन केतुपरिग्रहः। ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले तु ग्रहाणां वर्णनिरूपणे विशेषो दृश्यते—

पद्मरागं सितं रक्तं श्यामं पीतञ्च पाण्डुरम्।
धूम्रकृष्णं कृष्णधूम्रं धूम्रधूम्रं विचिन्तयेत्।
रविमुख्यान् कामरूपान् सर्वाभरणभूषितान्। इत्यादि।

ग्रहन्यास—गणेशन्यास के बाद ग्रहन्यास करें। इस श्लोक में ग्रहों के ध्यान-वर्ण बताये गये हैं। सूर्य का वर्ण रक्त है, चन्द्रमा का रंग श्वेत है, मंगल का वर्ण लाल है। बुध का रंग श्याम है। गुरु का पीला है। शुक्र का वर्ण पाण्डुर है। शनि का वर्ण कृष्ण है। राहू का वर्ण कृष्णधूम्र (काला धुआँ) तथा केतु का धूम्रधूम्र है।

[स्वरूपम्]

कामरूपधरा एते दिव्याम्बरविभूषिताः।
वामोरून्यस्तहस्ताश्च दक्षिणेनाभयप्रदाः।।२१७।।

ये सभी ग्रह कामरूपधर हैं—यथा इच्छा रूप धारण करने वाले हैं। दिव्य वस्त्रों से विभूषित हैं। उनका बाँयाँ हाथ बाँयीं जाँघ पर रखा है तथा वे दाहिने हाथ से अभय प्रदान कर रहे हैं।।२१७।।

[न्यासपरिपाटी]

अर्कं हृत्परतः स्वरैरथ विधुं कोदण्डमध्ये न्यसेत्
याद्यैर्वर्णचतुष्टयैरथ कुजं नेत्रारविन्दद्वये।
काद्येनैव बुधं स्वकीयहृदये चाद्येन वर्गेण वै
टाद्यैः पञ्चभिरर्णकैः सुरगुरुं हृत्पूर्वदेशे क्रमात्।।२१८।।

अथ ग्रहन्यासपरिपाटीमुपदिशति—**अर्कमित्यादिना।** हृत्परतः हृदधोदेशे स्वरैरर्कं विन्यसेदिति सम्बन्धः। अत्रापि पूर्ववन्मायादिबीजयोगस्ततः सानुस्वारा अकारादिविसर्गान्ताः स्वरास्ततश्च सूर्याय नमः इति। एवञ्च ह्रीं क्लीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एँ ऐँ ओं औं अं अः सूर्याय नमः इति मन्त्रः पर्यवस्यति। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले—

स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्वितान्।
सूर्याय नम उच्चार्य हृदये च प्रविन्यसेत्।।

इत्यादि। एवं वक्ष्यमाणेष्वपि बोध्यम्। यत्तु तन्त्रसारे आदित्यरुचिभ्यां नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमो दृश्यते, स तु तत्समर्थकैः—

स्वरैरर्कं हृदि न्यस्येद् यवर्गेण शशी युतः।

इत्यादि ज्ञानार्णवचतुर्दशपटलवचनैरप्यप्राप्तत्वान्नास्माभिरत्र निवेशितः। तन्त्रसार-कारैस्तु प्रस्थानान्तरमाश्रित्य प्रयोगोऽयं परिकल्पित इति प्रतीमः।

अथेति। कोदण्डमध्ये भ्रूमध्ये। याद्यैर्वर्णचतुष्टयैः यं रं लं वं इत्येतैः विधुं न्यसेदिति सम्बन्धः। अत्रापि ह्रीं क्लीं श्रीं यं रं लं वं सोमाय नमः इत्यादिरूपः क्रमः। एवं वक्ष्यमाणेष्वप्युन्नेयम्। **अथेति।** काद्येनैव वर्णपञ्चकेन नेत्रारविन्दद्वये विधुं न्यसेदिति सम्बन्धः। चाद्येनेति चवर्गेण पूर्ववत् स्वकीयहृदये बुधं टवर्गेण हृत्पूर्वदेशे हृदयोपरीत्यर्थः, सुरगुरुं बृहस्पतिं न्यसेदित्यर्थः।

स्वरों से सूर्य का न्यास हृदय में करें। 'य'वर्ग से चन्द्रमा का कोदण्ड (भ्रूमध्य) में, 'क'वर्ग से मंगल का नेत्रद्वय में, 'च'वर्ग से बुध का हृदय में, 'ट'वर्ग से बृहस्पति का हृदय के ऊपरी भाग में न्यास करें।।२१८।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोक में सूर्य-बुध और गुरु का न्यासस्थान हृदय बताया गया है; मगर इनके न्यासस्थानों में कुछ अन्तर है। सूर्य का हृदय-मध्य में, गुरु का हृदय के ऊपरी भाग में और बुध का सूर्य के नीचे हृदय के अधोभाग में न्यास करें। त्रिपुरार्णवतन्त्र (३/१०७) में कहा गया है—बुधं हृदयादधः।

शुक्रं तादिशरार्णकैस्य गले, पाद्येन वर्गेण वै
वीरेन्द्रो मणिपूरकेऽथ वदने राहुं शवर्गेण च।
लक्षाभ्यां पददेशके च नवमं केतुं क्रमात् विन्यसेत्

शुक्रमिति। तादिशरार्णकैः शुक्रं गलदेशे तथा पाद्येन वर्गेण पवर्गेण मणिपूरके नाभिपद्मे शनैश्चरमिति शेषः, तथा वदने शवर्गेण राहुं तथा ल-क्षाभ्यां लं क्षमिति वर्णद्वयेन नवमं केतुं पददेशके वीरेन्द्रो विन्यसेदिति सम्बन्धः। अत्र शनेरनुक्तावपि मणिपूरके शनैश्चरस्य न्यासो बोध्यः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

पवर्गेण शनिर्नासौ राहुर्वक्त्रे शवर्गकः। इति।

'त'वर्ग से शुक्र का कण्ठ में, 'प'वर्ग से शनि का नाभि में, 'स'वर्ग से राहू का मुख में और 'ळ-क्ष' से केतु का पैरों में न्यास करें।

ग्रहन्यास के बाद तारा अर्थात् नक्षत्रन्यास करें।।२१९।।

प्रयोग-क्रम—

(१) ह्रीं श्रीं क्लीं अं आं इ ई ..... अं अः सूर्याय नमः— हृदये
(२) ह्रीं श्रीं क्लीं यं रं लं वं चन्द्रमसे नमः — भ्रूमध्ये
(३) ह्रीं श्रीं क्लीं कं खं गं घं ङं भौमाय नमः — नेत्रद्वये
(४) ह्रीं श्रीं क्लीं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः — हृदयादधः
(५) ह्रीं श्रीं क्लीं टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः — हृदयाद् ऊर्ध्वे
(६) ह्रीं श्री क्लीं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः — कण्ठे
(७) ह्रीं श्रीं क्लीं पं फं बं भं मं शनिश्चराय नमः — नाभौ
(८) ह्रीं श्रीं क्लीं शं षं सं हं राहवे नमः — मुखे
(९) ह्री श्रीं क्लीं ळं क्षं केतवे नमः — पादयोः

ग्रहन्यास के बाद नक्षत्रमातृका न्यास करें।

[तारान्यासोपदेशप्रतिज्ञा]

तारान्यासमथोच्यते शुभकरं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।२१९।।

[तत्र ताराध्यानम्]

ज्वलत्कालाग्निसङ्काशा वरदाभयपाणयः।
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्याः सर्वाभरणभूषिताः।।२२०।।

अथ तारान्यासं वक्तुं प्रतिजानीते—तारेत्यादिना चतुर्थपादेन।

तत्र प्रथममश्विन्यादीनां ध्यानमेकेनैवाह—ज्वलदित्यादिना। नतिपाण्य इति नत्यर्थं विनियुक्ता पाणयो याभिस्ताः।

कालाग्नि के समय प्रज्ज्वलित, सभी अलंकारों से विभूषित, नीचे के दोनों हाथों को जोड़कर ऊपर के दोनों हाथों से वर और अभय प्रदान करने वाले अश्विनी आदि नक्षत्रों का ध्यान करें।।२२०।।

[न्यासपरिपाटी]

अ-आ स्यादश्विनी पूर्वं भरण्या इयुगं तथा।
उ-ऊ स्यात् कृत्तिकायाश्च ऋ-ॠ ऌ-ॡ च रोहिणी।।२२१।।
ए स्यान्मृगशिराः पूर्व ऐ आर्द्रा च तथा ओ-औ।
पुनर्वसुस्तथा अं अः कं पुष्या च तथा ख-गः।।२२२।।
अश्लेषा स्यात् घ-ङ मघा च पूर्वा छ-ज उत्तरा।
झ हस्ता स्यात् ञ चित्राख्या ट-ठ स्वाती प्रकीर्त्तिता।।२२३।।
ड विशाखा ढ-णौ स्याच्चानुराधा त-थ-दाः पुनः।
ज्येष्ठा ध-नौ भवेन्मूला पूर्वाषाढा प-फौ भवेत्।।२२४।।
ब उत्तरा भ-मौ स्यातामभिजित् श्रवणा य-रौ।
ल धनिष्ठा व-शौ स्याच्च तथा शतभिषा पुनः।।२२५।।
ष-स पूर्वभाद्रपदा चोत्तरा ह भवेत्तथा।
ल-क्षौ रेवतीवर्णौ च क्रमाद् वर्णा इमेऽथवा।।२२६।।

अथ नक्षत्रन्यासपरिपाटीं दर्शयति—अ-आ स्यादित्यादिना इमे इत्यन्तेन। अत्रापि पूर्ववत् 'लक्ष्मीर्माया कामोऽग्रतो यदि' इत्यनेन 'वाङ्मायाकमलाभिर्वा' इत्यादिना चाभिहितानां बीजानामादौ योगः कर्त्तव्यः, सामान्यतोऽभिहितत्वात् तन्त्रसार-त्रिपुरार्चनरहस्यादौ तथा दर्शनाच्च। न्यासस्य स्थानानि तु—'ललाटे नेत्रयोः कर्णयुगे नासापुटद्वये' इत्यादिना निरूपयिष्यति। तथा च ह्रीं क्लीं श्रीं इति वा ऐँ ह्रीं श्रीमित्यादीनामन्यतमं वा पूर्वमुच्चार्य अं आं इत्यादिक्रमेण स्वरव्यञ्जनानि च यथा-प्राप्तमुच्चार्य नमोऽन्तान्यश्विन्यादिनक्षत्राणि न्यसेत्। साधकानां सुखबोधाय दिङ्मात्रं प्रदर्श्यते—

(१) ह्रीं क्लीं श्रीं अं आं अश्विन्यै नमः (ललाटे) इत्येकः क्रमः।
(२) ऐँ ह्रीं श्रीं अं आं अश्विन्यै नमः (ललाटे) इत्यादिरूपो द्वितीयः।
(३) ऐँ ह्रीं श्रीं अं आं अश्विन्यै नमः ऐँ ह्रीं श्रीं (ललाटे) इत्यादिरूपस्तृतीयः।
(४) श्रीं ह्रीं क्लीं अं आं अश्विन्यै नमः (ललाटे) इत्यादिरूपश्चतुर्थः।

एवमेतेषामन्यतमं क्रमं स्वस्वगुरुसम्प्रदायानुगतमुररीकृत्य भरण्यादीन्यपि न्यसेत् । तत्र तत्र विशेषन्तु इ-युगमित्यादिना ग्रन्थकृतः स्वयमेवाभिधास्यन्ति। स्पष्टमन्यत् । अथ तारान्यासस्य परिपाटीमन्यादृशीं दर्शयति—**अथवेत्यादिना।**

इन श्लोकों में न्यास के लिये अश्विनी आदि नक्षत्रों के नाम के आगे जोड़े जाने वाले अक्षरों की संख्या और क्रम बताया गया है। यथा—

अश्विनी के साथ अ आ। भरणी के साथ इ-ई। कृतिका के साथ उ-ऊ। रोहिणी के साथ ऋ ॠ ऌ ॡ। मृगशिरा के साथ ए। आर्द्रा के साथ ऐ। पुनर्वसु के साथ ओ-औ। पुष्य के साथ अं अः क। आश्लेषा के साथ ख-ग। मघा के साथ घ-ङ। पूर्वाफाल्गुनी के साथ च। उत्तराफाल्गुनी के साथ छ ज। हस्त के साथ झ। चित्रा के साथ ञ। ट-ठ स्वाती के साथ। विशाखा के साथ ड। अनुराधा के साथ दो वर्ण—ढ और ण। ज्येष्ठा के साथ—त-थ और द। मूल के साथ—ध और न। पूर्वाषाढ़ा के साथ प और फ। उत्तराषाढा के साथ 'ब'। अभिजित् के साथ भ और म। श्रवण के साथ 'य' और र। धनिष्ठा के साथ ल। शतभिषा के साथ व और श। पूर्वभाद्रपाद के साथ 'ष' और 'स'। उत्तरभाद्रपाद के साथ ह। रेवती के साथ ळ और क्ष।

नक्षत्रों के साथ वर्णसंयोजन का यह एक कल्प है। 'अथवा' कहकर दूसरे कल्प का निरूपण अगले तीन श्लोकों में किया गया है।।२२१-२२६।।

[तत्र क्रमान्तरम्]

आद्ययुग्मं तथा चैकं तथा त्रीणि चतुष्टयम्।
एकमेकं द्वयञ्चैवं चतुर्दशस्वरं क्रमात्।।२२७।।
व्यञ्जनैकं द्वयं युग्मं विन्यसेत् साधकोत्तमः।
एकं युग्मं द्वयं द्वन्द्वमेकं द्वन्द्वं त्रयात्मकम्।।२२८।।
एकं त्रिकं तथा चैकमेकमेकं द्वयं ततः।
पुनरेकं द्वयं रामं ल क्षं अं अश्चतुष्टयम्।।२२९।।
अश्विन्यादेः पुरोभागे दत्त्वा च क्रमतो न्यसेत्।

अत्र तारान्यासे पूर्ववदेव सर्वम्, नक्षत्रनाम्नामादौ तत्तत्स्वरव्यञ्जनयोजनायां यो विशेषस्तमाह—**आद्ययुग्ममित्यादिना।** तथा च अश्विन्याः पूर्वं अं आं इति द्वयम्, भरण्याः पूर्वम् इं इत्येकम्, कृत्तिकाया ईं उं ऊं इति त्रीणि, रोहिण्याः ऋं ॠं ऌं ॡं इति चतुष्टयम्, मृगशिरसः एं इत्येकम् । इत्येवं क्रमेण औकारान्तान् चतुर्दशस्वरान् पूर्वतो योजयेत् । अं अः इत्येतयोस्तु व्यञ्जनान्ते रेवत्यां योगः स्वयमेव वक्ष्यते। एवञ्च ह्रीं क्लीं श्रीं अं आं अश्विन्यै नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः। एवं व्यञ्जनेष्वप्यवन्तव्यम्, राममिति षं सं हमिति वर्णत्रयमित्यर्थः। स्पष्टमन्यत्। द्वितीयं कल्पमुपसंहरति—**अश्विन्यादेरिति।** स्पष्टम्।

अश्विनी आदि नक्षत्रों के नाम के आगे वर्णमाला के अक्षर इस क्रम से संयोजित किये जायँ। आद्य युग्मं (अ-आ), फिर एक (इ), फिर तीन (ई उ ऊ), फिर चार (ऋ ॠ ऌ ॡ), फिर एक (ए), फिर एक (ऐ), फिर दो (ओ औ)। इस प्रकार चौदह स्वरों का नक्षत्रों के नामों के साथ संयोजन करने के बाद व्यञ्जन वर्णों का नक्षत्र के नामों के साथ इस क्रम से संयोजन करें।

स्वरवर्णों का संयोजन—अश्विनी के साथ अ-आ। भरणी के साथ इ। कृत्तिका के साथ—ई उ ऊ। रोहिणी के साथ—ऋ ॠ ऌ ॡ। मृगशिरा के साथ—ए। आर्द्रा के साथ—ऐ। पुनर्वसु के साथ—ओ औ।

व्यंजन वर्णों का संयोजन—एक वर्ण (क) का पुष्य, दो वर्णों (ख और ग) का आश्लेषा, दो वर्णों (घ और ङ) का मघा, एक वर्ण (च) का पूर्वाफाल्गुनी, दो वर्णों (छ और ज) का उत्तराफाल्गुनी, दो वर्णों (झ और ञ) का हस्त, दो वर्णों (ट और ठ) का चित्रा, एक वर्ण (ड) का स्वाती, दो वर्णों (ढ़ और ण) का विशाखा, तीन वर्णों (त थ द) का अनुराधा, एक वर्ण (ध) का ज्येष्ठा, तीन वर्णों (न-प-फ) का मूल, एक वर्ण (ब) का पूर्वाषाढ़ा, एक वर्ण (भ) का उत्तराषाढ़ा, एक वर्ण (म) का श्रवण, दो वर्णों (य और र) का धनिष्ठा, एक वर्ण (ल) का शतभिषा, दो वर्णों (व और श) का पूर्वभाद्रपाद, तीन वर्णों (ष, स और ह) का उत्तराभाद्रपाद तथा चार वर्णों (ळ-क्ष-अं-अः) का रेवती के साथ संयोजन करें। वर्णों का संयोजन नक्षत्र के नाम के आगे किया जाय॥२२७-२२९॥

[न्यासयोग्यस्थानानि]

ललाटे नेत्रयोः कर्णयुगे नासापुटद्वये।।२३०।।
कण्ठे स्कन्धद्वये चैव कूर्परद्वितये तथा।
मणिबन्धयुगे हस्तद्वये नाभौ कटीद्वये।।२३१।।
ऊरुद्वये जानुयुगे जङ्घायुग्मे पदद्वये।
अष्टाविंशतिपक्षे तु कण्ठे गण्डद्वयं भवेत्।।२३२।।

अथ पूर्वोदितस्य द्विविधस्यापि नक्षत्रन्यासस्य स्थानानि निरूपयति—**ललाट इत्यादिना**। तथा च ललाटेऽश्विनीं दक्षवामनेत्रयोर्भरणीं कृत्तिकाञ्च, दक्षिणवामकर्णयो रोहिणीं मृगशिरसञ्च, दक्षिणवामनासिकयोरार्द्रां पुनर्वसुञ्चेत्येवं क्रमेण सप्तविंशतिं नक्षत्राणि न्यासेदित्यर्थः। **अष्टेति**। अभिजितो द्वित्वादत्र पक्षे नक्षत्राणामष्टाविंशतित्वमिति ज्ञेयम्। स्पष्टमन्यत्।

इन तीन श्लोकों में नक्षत्र-मातृका न्यास के न्यसनीय अंगों का निरूपण किया गया है। यथा—ललाट, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नथुने, कण्ठ, दोनों कन्धे, दोनों कूर्पर (कोहनी), दोनों मणिबन्ध (कलाई), दोनों हाथ (करतल), नाभि, कमर के दोनों पार्श्व, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों जंघायें तथा दोनों पैर। यह २७ नक्षत्रों का पक्ष है। अभिजित्-सहित २८ नक्षत्रों के पक्ष में कण्ठ के बाद दोनों गण्डस्थल॥२३०-२३२॥

अभिजित्-रहित २७ नक्षत्रों के द्वितीय कल्प के अनुसार नक्षत्रमातृका न्यास का प्रयोगक्रम निम्नानुसार है—

१. ह्रीं श्रीं क्लीं अं आं अश्विन्यै नमः — ललाटे
२. ह्रीं श्रीं क्लीं इं भरण्यै नमः — दक्षनेत्रे
३. ह्रीं श्रीं क्लीं ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः — वामनेत्रे
४. ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं ॠं ऌं ॡं रोहिण्यै नमः — दक्षकर्णे
५. ह्रीं श्रीं क्लीं एं मृगशिरसे नमः — वामकर्णे
६. ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं आर्द्रायै नमः — दक्षनासायाम्
७. ह्रीं श्रीं क्लीं ओं औं पुनर्वसवे नमः — वामनासायाम्
८. ह्रीं श्रीं क्लीं कं पुष्यायै नमः — कण्ठे
९. ह्रीं श्रीं क्लीं खं गं आश्लेषायै नमः — दक्षस्कन्धे
१०. ह्रीं श्रीं क्लीं घं ङं मघायै नमः — वामस्कन्धे
११. ह्रीं श्रीं क्लीं चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमः — दक्षभुजमध्ये
१२. ह्रीं श्रीं क्लीं छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमः — वामभुजमध्ये
१३. ह्रीं श्रीं क्लीं झं ञं हस्तायै नमः — दक्षिणमणिबन्धे
१४. ह्रीं श्रीं क्लीं टं ठं चित्रायै नमः — वाममणिबन्धे
१५. ह्रीं श्रीं क्लीं डं स्वात्यै नमः — दक्षहस्ततले
१६. ह्रीं श्रीं क्लीं ढं णं विशाखायै नमः — वामहस्ततले
१७. ह्रीं श्रीं क्लीं तं थं दं अनुराधायै नमः — नाभौ
१८. ह्रीं श्रीं क्लीं धं ज्येष्ठायै नमः — दक्षकटिदेशे
१९. ह्रीं श्रीं क्लीं नं पं फं मूलायै नमः — वामकटिदेशे
२०. ह्रीं श्रीं क्लीं बं पूर्वाषाढायै नमः — दक्षोरौ
२१. ह्रीं श्रीं क्लीं भं उत्तराषाढायै नमः — वामोरौ
२२. ह्रीं श्रीं क्लीं मं श्रवणायै नमः — दक्षजानुनि
२३. ह्रीं श्रीं क्लीं यं रं धनिष्ठायै नमः — वामजानुनि
२४. ह्रीं श्रीं क्लीं लं शतभिषजे नमः — दक्षजंघायाम्
२५. ह्रीं श्रीं क्लीं वं शं पूर्वभाद्रपदायै नमः — वामजंघायाम्
२६. ह्रीं श्रीं क्लीं षं सं हं उत्तरभाद्रपदायै नमः — दक्षपादे
२७. ह्रीं श्रीं क्लीं ळं क्षं अं अः रेवत्यै नमः — वामपादे

विमर्श—साधक-समाज में प्रायः यही क्रम प्रचलित है। 'अभिजित्' का न्यास-क्रम में उपयोग नहीं किया जाता।

[तारान्यासोपसंहारः, योगिनीन्यासोपदेशम्]

ऋक्षन्यासं समासाद्य योगिनीन्यासमाचरेत्।।२३३।।

एवं नक्षत्रन्यासमभिधाय योगिनीन्यासस्य कर्त्तव्यत्वमुपदिशति—**योगिनी-त्यादिना।**

नक्षत्रमातृका न्यास के बाद योगिनीमातृका न्यास करें।

विमर्श—हमारे शरीर में गुह्यप्रदेश (गुदा) से भ्रूमध्य-पर्यन्त मूलाधार आदि ६ चक्र हैं। मेरुदण्ड में स्थित इन ६ चक्रों में ५० (पचास) कमल-दल हैं। इन कमलदलों में 'अ'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त ५० मातृकायें स्थित हैं। प्रत्येक चक्र में गणेश आदि देवताओं के साथ जो चक्रशक्तियाँ स्थित हैं, उन चक्रशक्तियों को पारिभाषिक रूप से योगिनी कहा जाता है। प्रत्येक चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति का तत् तत् चक्र में स्थित मातृकाओं के साथ प्रबोधन योगिनी न्यास है। इनमें से प्रथम योगिनी है—डाकिनी। अगला श्लोक डाकिनी का ध्यानश्लोक है।

[तत्र डाकिनीध्यानम्]

रक्ताक्षीं रक्तवर्णां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां
वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं चैकवक्त्राम्।
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथनीं पायसान्नप्रसक्तां
कण्ठस्थानेऽमृताद्यैः परिवृतवपुषं भावयेड्डाकिनीं ताम्।।२३४।।

देवी डाकिनी का वर्ण लाल है। नेत्र लाल हैं। पशुजन इनसे भयभीत रहते हैं। उनके दाहिने हाथों में शूल और खट्वांग तथा बाँयें हाथ में खड्ग और सुधा-पूरित चषक है। वे एकवक्त्रा हैं अर्थात् उनका केवल एक ही मुख है। दाँत बड़े-बड़े हैं। अरिकुल को ध्वंस करती हैं। पायसान्न (खीर) के भोग से वे प्रसन्न होती हैं। अमृता आदि शक्तियों से परिवृत (घिरी हुई) देवी डाकिनी का कण्ठक्षेत्र (अर्थात् विशुद्धाख्य चक्र) में ध्यान करना चाहिए।।२३४।।

[डाकिनीन्यासः]

स्वरैः पूर्वं ठान्तयुग्मं पाशतुरीयभेदितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजद्वयमुदाहृतम्।।२३५।।
ततो डमलवरया वामकर्णविभूषिताः।
नादबिन्दुकलायुक्ता डाकिन्यै नम इत्यपि।।२३६।।
डाकिनीति समुच्चार्य त्वग्धातुतो गते ततः।
चतुःषष्टिलक्षकोटियोगिनीस्वामिनीति च।।२३७।।
सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञाञ्च देहि मां वदेत्।
रक्षद्वयं डाकिनीति पादुकां कण्ठतो न्यसेत्।।२३८।।

एवं कण्ठे डाकिन्या ध्यानं निरूप्य तत्रैव तन्न्यासमभिधत्ते—**स्वरैरित्यादिना**। पूर्वं स्वरैरकारादिभिश्चतुर्दशभिरुपलक्षितं ठान्तयुग्मं ठान्तो डकारस्तद्युग्मं डकारद्वयमित्यर्थः। तच्च पाश–तुरीयभेदितं पाश आकारस्तुरीयश्चतुर्थस्वर ईकारस्ताभ्यां भेदितं रूपभेदं प्राप्तम्, तथा नादबिन्दुकलायुक्तं बीजद्वयं डां डीमिति बीजद्वयमित्यर्थः। अत्रापि पूर्ववत् बीजयोग इति स्मर्त्तव्यम्। अनेन प्रथमं ह्रीं क्लीं श्रीं ततः अं इत्यतः ओं इत्यन्ताः स्वराः ततश्च डां डीम् इति प्राप्तम्।

अथावशिष्टमाह—**तत इत्यादिना**। वामकर्णविभूषितत्वं नादबिन्दुकलायुक्तत्वञ्चान्त्यावच्छेदेन, तेन ड म ल व र यूं इति प्राप्तम्। ततो डाकिन्यै नम इति।

एवञ्च ह्रीं क्लीं श्रीं इत्यादीनां प्रागुक्तानामेकतमं ततश्च अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं ड म ल व र यूं डाकिन्यै नम इति पर्यवस्यति।

अथ डाकिनीपादुकान्यासमाह—**डाकिनीति**। तथा च डाकिनि त्वग्धातुगते चतुःषष्टिलक्षकोटियोगिनी–स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष डाकिनीपादुकायै नम इति पर्यवस्यति। कण्ठत इति कण्ठ इत्यर्थः। न्यसेदिति डाकिनीं तत्पादुकाञ्चेत्युभयमेवेत्यर्थः। गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले तु—

स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्वितान्।
ठान्तद्वयं ततः पश्चात् पाशतुरीयभेदितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजद्वयमुदीरितम्।
ठान्तं भान्तं महीबीजं वारुणं वह्निवायवौ।
वामकर्णस्ततो देवि नादबिन्दुकलायुतः।
डाकिन्यै नम इत्यन्ते सम्बोध्य डाकिनीं ततः।
दुग्धा(त्वग्धा)तुगत् इत्युक्त्वा चतुःषष्टिपदं ततः।
लक्षकोटिपदस्यान्ते योगिनी–स्वामिनीति च।
सर्वसत्त्ववशं ब्रूयात् करिशब्दपदं ततः।
आज्ञां मे देहि तत्पश्चान्मम विक्रि(रक्ष)पदद्वयम्।

इत्यादौ प्रायस्तुल्य एव क्रमो दृश्यते। परन्त्वत्र पादुकां कण्ठतो न्यसेदिति दर्शनाद् डाकिन्यै नम इति पूर्वमुक्तत्वाच्च डाकिनीन्यासानन्तरं डाकिनीपादुकान्यासो ग्रन्थकृतामभिमत इति प्रतिभाति। ज्ञानार्णवानुमतस्तन्त्रसारोक्तडाकिनीन्यासक्रमस्तु पृथगेवास्मादिति ज्ञेयम्।

स्वर अर्थात् 'अ'कार से 'अः'कार-पर्यन्त १६ स्वर। 'ठान्त' अर्थात् 'ठ' के बाद वाला वर्ण 'ड'। युग्मं अर्थात् दो 'ड'कार जो क्रमशः नाद-बिन्दु-कलायुक्त पाश (आ) तथा तुरीया (ई) से युक्त है अर्थात् डां-डीं। स्वरों के बाद डां-डीं। इनके बाद नाद-बिन्दु-कला से युक्त वामकर्ण ('ऊ'कार) से विभूषित 'डमलवरय' अर्थात् 'डमलवरयूं' इसके बाद 'डाकिन्यै नमः'। इस तरह डाकिनी का न्यासमन्त्र निष्पन्न

हुआ—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः।

पादुका मन्त्र—'डाकिनि'। उसके बाद 'त्वग् धातुगते'। इसके आगे 'चतुष्षष्टिलक्षकोटियोगिनी 'स्वामिनि' 'सर्वसत्त्ववशंकरि' आज्ञां मे देहि रक्ष रक्ष डाकिनीपादुकायै नमः।।

डाकिनी-न्यास करने के बाद पादुका का भी कण्ठ में न्यास करें। इसके बाद विशुद्ध चक्र के सोलह दलों में डाकिनी की परिवार-शक्तियों का न्यास करें।

[डाकिनीपरिवारदेवतान्यासः]

अमृताकर्षिणीन्द्राणी ईशानोमोदूर्ध्वकेशिनी।
ऋद्धिदा ॠषिका चैव ऌका ॡकैकपादिका।
ऐश्वर्यदात्मिका नाम ओङ्कारिणी ततः परम्।।२३९।।
औषधात्मिका समात्मिका क्षरान्विता स्वरान्विता।
परितो विन्यसेन्मन्त्री डाकिनीवद् विभाव्य च।।२४०।।

अथास्याः परिवारयोगिनीनां न्यासमुपदिशति—**अमृतेत्यादिना**। अत्र स्वरान्विता इति वक्ष्यमाणत्वाद् विशुद्धाख्यपद्मस्य षोडशदलस्थितानामकारादिषोडशस्वराणामेकैकमादौ योजयित्वा अमृतादीनामेकैकामेकैकस्मिन् पत्रे न्यसेदित्यभिप्रायेण परितो विन्यसेदित्युक्तम्।

अमृता आदि डाकिनी की परिवारशक्तियाँ हैं। इनके नाम के आगे एक-एक स्वरवर्ण की योजना करके विशुद्ध चक्र के एक-एक दल में इनका न्यास करें। यथा—

अं अमृतायै नमः। आं आकर्षिण्यै नमः। इं इन्द्राण्यै नमः। ईं ईशान्यै नमः। उं उमायै नमः. ऊं ऊर्ध्वकेशिन्यै नमः। ऋं ऋद्धिदायै नमः। ॠं ॠषिकायै नमः। ऌं ऌकायै नमः। ॡं ॡकायै नमः। एं एकपादिकायै नमः। ऐं ऐश्वर्यादात्मिकायै नमः। ओं ओंकारिण्यै नमः। औं औषधात्मिकायै नमः। अं अम्बिकायै नमः। अः अक्षरायै नमः।

[राकिणीध्यानम्]

श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकरयुतां तीक्ष्णवज्रं वहन्तीं
देवीं रक्तत्रिनेत्रां भृकुटिवलिलसद्दन्तदंष्ट्रप्रभाभिः।
दीप्तां तां देवदेवीं हृदयकमलगां रक्तधात्वेकनाथां
शुक्लान्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां राकिणीं चिन्तयेत्ताम्।।२४१।।

देवी राकिनी श्यामवर्णा और त्रिनेत्रा हैं। आँखें रक्तवर्णा हैं। दाँत तीक्ष्ण और चमकीले हैं। हाथों में त्रिशूल, कमल, डमरू तथा वज्र है। वे मनोवांछित फल प्रदान

करती हैं। रक्त धातु की स्वामिनी देवी राकिनी का हृदय-कमल अर्थात् अनाहत पद्म में ध्यान करें।।२४१।।

[राकिणीन्यासः]

क-ठवर्णैस्ततो रेफं पूर्ववत् स्वरभेदतः।
रमलवरयान् वामकर्णेन्दुभूषितान् वदेत्।।२४२।।
राकिणीं ङेयुतां प्रोच्य हृन्मन्त्रञ्च ततः परम्।
राकिण्यसृग्धातुगते द्वात्रिंशल्लक्षकोटितः।।२४३।।
योगिनीस्वामिनीत्युक्त्वा सर्वसत्त्ववशङ्करि।
आज्ञाञ्च देहि मां पश्चाद्रक्षद्वन्द्वञ्च राकिणीम्।।२४४।।

श्यामामित्यादिना राकिण्या ध्यानमुक्त्वा न्यासमाह—क-ठ-वर्णैरित्यादिना। क-ठ-वर्णैः ककारादिठकारान्तवर्णैः। एवञ्च ह्रीं क्लीं श्रीमित्याद्यन्यतमानन्तरं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै नमः इति। ततः परञ्च–राकिण्यसृग्धातुगते द्वात्रिंशल्लक्षकोटियोगिनी–स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष राकिणीपादुकायै नमः इति न्यसेदिति फलितम्। अत्र राकिणीमित्ये–तन्मात्राभिधानेऽपि पादुकापदप्रयोगः पूर्वोक्तक्रमदवगन्तव्यः।

'क' से 'ठ'-पर्यन्त बारह वर्ण। इसके आगे 'आं' 'ईं' से विभूषित 'र'कार-द्वय—अर्थात् 'रां रीं'। इसके बाद 'रमलवरयूं', फिर राकिण्यै नमः। इन वर्णों के संयोजन से न्यासमन्त्र निष्पन्न हुआ—ह्रीं श्रीं क्लीं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं रां रीं रमलवरयूं राकिण्यै नमः।

पादुका मन्त्र है—'राकिणी असृग् धातु गते द्वात्रिंशल्लक्षकोटियोगिनी स्वामिनि सर्वसत्त्ववशंकरि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष राकिणीपादुकायै नमः।'

हृदय (अनाहत) में राकिणी का न्यास करने के बाद अनाहत चक्र के कमल-दलों में 'क'कार आदि वर्णों की योजना करके देवी राकिणी की परिवारदेवताओं का न्यास करें।।२४२-२४४।।

[राकिणीपरिवारदेवतान्यासः]

अनाहते न्यसेत् पश्चात् परितः क-ठ-वर्णकैः।
कालरात्रिः खातिता च गायत्री घण्टिका ततः।।२४५।।
ङा वृश्चिका च चामुण्डा छाया जया तथैव च।
झङ्कारिणी तथा ज्ञाना टङ्कहस्ता च विन्यसेत्।।२४६।।
ठङ्कारी च क्रमादेता ध्यात्वा वीरश्च पूर्ववत्।
द्वादशारे ततो मन्त्री ध्यायेद्देवीञ्च लाकिनीम्।।२४७।।

अथ राकिणीपरिवारदेवतान्यासमाह—अनाहत इत्यादिना। अनाहते न्यसेदित्यस्य पूर्वेणापि सम्बन्धः। अनाहते द्वादशारे हृत्पद्मे। क-ठ-वर्णकैरिति। प्रागुक्तक्रमेण

पद्मकर्णिकायां राकिणीं न्यस्य परितो द्वादशदलेष्वित्यर्थः, क-ठ-वर्णकैः ककारादि-ठकारान्तद्वादशवर्णैः पूर्वयोजितैः कालरात्र्यादिद्वादशदेवता न्यसेदित्यर्थः। एवञ्च कं कालरात्र्यै नमः, खं खातितायै नमः, गं गायत्र्यै नमः, घं घण्टिकायै नमः, ङं वृश्चिकायै नमः इत्यादिक्रमेण ठङ्कार्यन्ता न्यसेदिति ज्ञेयम् । कुत्रेत्याह—**द्वादशार इति**। अनाहत इत्यर्थः। अयं लाकिनीध्यानमुद्दिशति—**ध्यायेद्देवीञ्च लाकिनीमित्यन्तेन।**

अनाहत पद्म के बारह दलों में भगवती राकिणी की परिवारदेवताओं का विन्यास उनके चारो ओर वलयाकार करें।।२४५-२४७।।

यथा—कं कालरात्र्यै नमः। खं खातितायै नमः। गं गायत्र्यै नमः। घं घण्टिकायै नमः। ङं वृश्चिकायै नमः। चं चामुण्डायै नमः। छं छायायै नमः। जं जयायै नमः। झं झंकारिण्यै नमः। ञं ज्ञानायै नमः। टं टंकहस्तायै नमः। ठं ठंकार्यै नमः।

इस प्रकार नाममन्त्रों से पूजा करके लकिनी का ध्यान करें।

[लाकिनीध्यानम्]

कृष्णां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनललितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं सुदण्डामभयवरकरां दक्षवामे दधानाम्।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गौडभक्तोत्सुकहृदयवतीं चिन्तयेत् साधकेन्द्रः।।२४८।।

वज्रमिति। दक्षवामे क्रमेण वज्रं शक्तिं दधानामिति सम्बन्धः। दशदलविल-सत्कर्णिके इति विशेषणेन मणिपूरकमलकर्णिकायां लाकिन्या ध्येयत्वं सूचितम्। **गौडेति**। गुडमिश्रितभक्ष्यभक्षणोत्कण्ठितचित्तामित्यर्थः।

देवी लाकिनी का वर्ण कृष्ण (काला) है। वे उग्ररूपा हैं। उनके तीन मुख हैं। प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं। उनके दाहिने और बाँयें हाथों में क्रमशः वज्र एवं शक्ति तथा अभय एवं वरमुद्रा है। वे मांस में स्थित हैं अर्थात् मांस की स्वामिनी हैं। दश दल वाले नाभिकमल (मणिपूरक) में उनका ध्यान करें।।२४८।।

[लाकिनीन्यासः]

डादिफान्तं ततो लां लीं लमलवरयांस्ततः।
वामकर्णसमायुक्ताँल्लाकिन्यै नम इत्यपि।।२४९।।
लाकिनीति वदेन्मन्त्री मांसधातुगते ततः।
षोडशाल्लक्षकोटिश्च पूर्ववन्मणिपूरके।।२५०।।

डादिफान्तमित्यादि। तथा च पूर्ववत् ह्रीं श्रीमित्याद्यन्यतममुच्चार्य डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लां लीं ल म ल व र यूं लाकिन्यै नमः इति। ततश्च लाकिनि मांसधातुगते षोडशलक्षकोटियोगिनी-स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष लाकिनीपादुकायै नमः इति मणिपूरे न्यसेदित्यापतति।

डादि-फान्त अर्थात् 'ड'कार से 'फ'-पर्यन्त १० वर्ण। बिन्दु-नाद-कलायुक्त वाम कर्ण (ऊं) से विभूषित लमलवरयूं। इसके पूर्व लां-लीं। इसके आगे 'लाकिन्यै नमः।' इन वर्णों की इस तरह योजना करने से न्यासमन्त्र बना—'ह्रीं श्रीं क्लीं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लां लीं लमरवरयूं लाकिन्यै नमः।'

पादुकामन्त्र—'लाकिनि मांसधातुगते षोडशलक्षकोटियोगिनी स्वामिनि सर्वसत्त्ववशंकरि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष लाकिन्यै नमः'।

मणिपूरक में इनका न्यास करें। तत्पश्चात् मणिपूरक चक्र के दस दलों में परिवारदेवताओं का पूजन करें।

[लाकिनीपरिवारदेवतान्यासः काकिनीध्यानोपदेशश्च]

डाकिनी चैव ढङ्कारी णाकिनी च तपस्विनी।
थानवी दक्षिणा धात्री नादा च पार्वती तथा।।२५१।।
फट्कारिणी क्रमादेता ध्यात्वा न्यसेत् समाहितः।
डादिफान्तेन संयुक्ता अथ ध्यायेच्च काकिनीम्।।२५२।।

अथ मणिपूरदशदलेषु लाकिनीपरिवाराणां दशानां न्यासमाह—डाकिनीत्यादिना। डादिफान्तेन संयुक्ता डाकिन्याद्या न्यसेदित्यर्थः। एवञ्च डं डाकिन्यै नमः, ढं ढङ्कार्यै नमः, णं णाकिन्यै नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः पर्यवस्यति।

डाकिनी आदि शक्तियाँ इनकी परिवारदेवता हैं। इनके नामों के आगे उपर्युक्त 'ड'कारादि दस वर्णों में से एक-एक वर्ण की योजना करके न्यास करें। यथा—

डां-डाकिन्यै नमः। ढं-ढंकार्यै नमः। णं-णाकिन्यै नमः। तं-तपिस्विन्यै नमः। थं-थानव्यै नमः। दं-दक्षिणायै नमः। धं-धात्र्यै नमः। नं-नादायै नमः। पं-पार्वत्यै नमः। फं-फट्कारिण्यै नमः।' अब काकिनी का ध्यान करें।।२५१-२५२।।

[काकिनीध्यानम्]

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदलविलसत्काकिनीं मेदसंस्थां
पाशं शूलं वहन्तीं डमरुकमभयं धारिणीं पीतवर्णाम्।
दध्यन्नासक्तचित्तां सुरवरनमितां काकिनीं मत्तचित्तां
षट्पत्रैर्वादिलान्तैः परिवृतवपुषं भावयेत् योगिनीं ताम्।।२५३।।

देवी काकिनी स्वाधिष्ठान चक्र में स्थिता हैं। वे मेदधातु की स्वामिनी हैं। पीतवर्ण काकिनी के हाथों में पाश-शूल-डमरू और अभय मुद्रा है। 'ब'कार से 'ल'कार-पर्यन्त छः अक्षरों से शोभित छः दलों में आसीना देवी काकिनी का ध्यान करें, जो श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा वन्दिता हैं और जो अपने भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं और जिन्हें दही और अन्न प्रिय है।।२५३।।

[काकिनीन्यासः]

बादिलान्तं तथा कां कीं कमलवरयूमथ।
काकिन्यै नम इत्यन्ते मेदोधातुगते ततः।।२५४।।

अष्टलक्षयोगिनीभिः स्वाधिष्ठाने प्रविन्यसेत्।
शेषं पूर्ववदुद्धृत्य बादिलान्तैः क्रमेण तु।।२५५।।

एवं काकिन्या ध्यानमुक्त्वा न्यासमाह—**बादिलान्तमित्यादिना**। एवञ्च ह्रीं क्लीं श्रीमित्याद्यन्यतमानन्तरं बं भं मं यं रं लं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै नमः इति। ततश्च काकिनि मेदोधातुगतेऽष्टलक्षयोगिनी-स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष काकिनीपादुकायै नमः इति स्वाधिष्ठाने न्यसेत् । अत्राष्टलक्षयोगिनी-भिरित्यन्तमभिधाय शेषं पूर्ववदुद्धृत्येत्यनेनावशिष्टांशस्य संग्रह उक्त इति। अथास्याः परिवारदेवतान्यासमाह—**बादिलान्तैरित्यादिना**। तथा च बं बज्रिण्यै नमः, भं भद्रकाल्यै नमः इत्यादिक्रमेण स्वाधिष्ठानकमलषड्दलेषु न्यसेदित्यर्थः।

न्यासमन्त्र—ह्रीं श्रीं क्लीं के बाद 'बं भं मं यं रं लं' ये ६ वर्ण। फिर 'कां-कीं कमलवरयूं' के बाद 'काकिन्यै नमः'। इन वर्णों के संयोजन से न्यासमन्त्र निष्पन्न हुआ—ह्रीं श्रीं क्लीं बं भं मं यं रं लं वं कां कीं कमलवरयूं काकिन्यै नमः।

पादुका मन्त्र—काकिनि मेदोधातुगते अष्टलक्षयोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्व-वशंकरि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष काकिनीपादुकायै नमः।

न्यास करने के बाद बादि-लान्त ६ वर्णों के साथ उनकी परिवारदेवताओं का न्यास करें।।२५४-२५५।।

[काकिनीपरिवारदेवतान्यासः]

वज्रिणी भद्रकाली च महामाया यशस्विनी।
रामा लम्बोदरीत्येताः काकिनीवत् प्रविन्यसेत्।।२५६।।

परिवारदेवताओं का न्यास इन मन्त्रों से करना चाहिये—बं वज्रिण्यै नमः। भं भद्रकाल्यै नमः। मं महामायायै नमः। यं यशस्विन्यै नमः। रं रामायै नमः। लं लम्बोदर्यै नमः।।२५६।।

[साकिनीध्यानम्]

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनविलसत्पञ्चवक्त्राभिरामां
हस्तैश्चापेषुपाशान् सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
मूलाधारस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्माथिनीमस्थिसंस्थां
दुग्धान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां साकिनीं भावयेत्ताम्।।२५७।।

भगवती साकिनी ज्योतिःस्वरूपा हैं। उनके पाँच मुख हैं। प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं। हाथों में धनुष-बाण, पाश, सृणि पुस्तक और ज्ञानमुद्रा हैं। वे अस्थि-संस्था हैं अर्थात् हड्डियों की अधिष्ठात्री देवी हैं। मूलाधार पद्म में आसीना देवी साकिनी को दूध और अनाज का भोग प्रिय है। मधु के मद से प्रमुदित भगवती का ध्यान करना चाहिए।।२५७।।

[साकिनीन्यासः]

एवं ध्यात्वा तु मन्त्रज्ञो वादिवर्णं समुद्धरेत्।
सां सीं स म ल व र यूं साकिनीं ङेयुतां वदेत्।।२५८।।
हृन्मन्त्रञ्च समुच्चार्य अस्थिधातुगते ततः।
चतुर्लक्षयोगिनी च कोट्याधारे च पूर्ववत्।।२५९।।

साकिन्या ध्यानमुक्त्वा न्यासमाह—**वादिवर्णमित्यादिना**। अत्रापि पूर्ववत् ह्रीं क्लीं श्रीं इत्यनन्तरं वं शं षं सं सां सीं स म ल व र यूं साकिन्यै नमः इति। ततश्च साकिन्यस्थिधातुगते चतुर्लक्षकोटियोगिनी-स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष साकिनीपादुकायै नमः इति मूलाधारे पूर्ववन्न्यसेत्। पूर्ववदित्यनेनावशिष्टांशस्य संग्रह उक्तः।

भगवती साकिनी का इस प्रकार ध्यान करके मूलाधार में उनका न्यास करें। ‘वं शं षं सं’ इन चार वर्णों के बाद ‘सां सां समलवरयूं साकिन्यै नम:’ की योजना करने से न्यासमन्त्र निष्पन्न होता है। इस मन्त्र के आगे पूर्ववत् ‘ह्रीं क्लीं श्रीं’ की योजना कर लेनी चाहिए। इस तरह समग्र न्यासमन्त्र बना—

ह्रीं क्लीं श्रीं वं शं षं सं सां सीं समलवरयूं साकिन्यै नम:।

पादुका मन्त्र—‘साकिनी अस्थिधातुगते चतुर्लक्षकोटियोगिनी सर्वसत्त्ववशंकरि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष साकिनी पादुकायै नम:’।

मूलाधार में देवी साकिनी का न्यास करने के बाद उनकी वरदा आदि परिवार देवताओं का भी उनके चारो ओर न्यास करें।।२५८-२५९।।

[साकिनीपरिवारदेवतान्यासः]

वरदा श्रीः षण्डिका च सरस्वतीति विन्यसेत्।
वादिवर्णसमायुक्ता ध्यात्वैताः पूर्ववद् बुधः।।२६०।।

अथास्याः परिवारदेवतान्यासमाह—**वरदेत्यादिना**। वादिवर्णसमायुक्ता वरदाद्याश्चतस्रो मूलाधारपद्मे पूर्ववन्न्यसेदिति सम्बन्धः। एवञ्च वं वरदायै नमः, शं श्रियै नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः।

‘वं वरदायै नम:’। ‘शं श्रियै नम:’। ‘षं षण्डिकायै नम:’। ‘सं सरस्वत्यै नम:।’—देवी साकिनी की परिवारदेवताओं के ये न्यासमन्त्र हैं।।२६०।।

[हाकिनीध्यानम्]

बिन्दुस्थां शुक्लवर्णां डमरुकरयुतामक्षसूत्रं कपालं
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिनयनविलसद्वक्त्रषट्केन युक्ताम्।
हारिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लमज्जास्वरूपां
देवीं देवेन्द्ररत्नाकरनतिमुदितां भावयेत्तां विशुद्धाम्।।२६१।।

बिन्दुस्थामिति। भावयेद् भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रे द्विदले इत्यर्थः।

देवी हाकिनी भ्रूमध्य में विराजिता हैं। उनके छः मुख हैं। प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं। उनका वर्ण धवल शुक्ल है। हाथों में डमरू, माला, कपाल एवं ज्ञान-मुद्रा है। वे हरिद्रान्न से प्रसन्न होती हैं। मज्जा की अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्द्र आदि देवताओं से नमस्कृता देवी हाकिनी का भ्रूमध्य में ध्यान करें॥२६१॥

[हाकिनीन्यासः]

हं क्षं हां हीं च ह म ल वरयूञ्च समुद्धरेत्।
हाकिनीं ङेयुतां प्रोच्य नमःकारं वदेद् बुधः।।२६२।।
मज्जाधातुगते चैव द्विलक्षकोटियोगिनी।
स्वामिनीति पदं पश्चात् सर्वसत्त्वादिकांस्ततः।।२६३।।

अथ न्यासमाह—**हं क्षमित्यादिना।** तथा चात्रापि पूर्ववत् ह्रीं क्लीं श्रीमित्याद्यन्यतमानन्तरं हं क्षं हां हीं ह म ल व र यूं हाकिन्यै नमः इति। ततश्च हाकिनि मज्जाधातुगते द्विलक्षकोटियोगिनी-स्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष हाकिनीपादुकायै नम इत्याज्ञाचक्रे न्यसेदिति फलितम्।

'ह्रीं क्लीं श्रीं' के बाद 'हं क्षं हां हीं हमलवरयूं हाकिन्यै नमः। इसके बाद—'हाकिनि मज्जाधातुगते द्विलक्षकोटियोगिनी स्वामिनि सर्वसत्त्ववशंकरि आज्ञां देहि मां रक्ष रक्ष हाकिनीपादुकायै नमः।'

उपर्युक्त मन्त्र से न्यास करने के बाद परिवारदेवताओं का भ्रूमध्य में ही न्यास करें।

[परिवारन्यासः]

पूर्ववद् विन्यसेन्मन्त्री ह-क्षाभ्यान्तु क्रमेण तु।
सरस्वतीं क्षमाञ्चैव हाकिनीवद् विभावयन्।।२६४।।

अथैतत्परिवारदेवतान्यासमाह—ह-क्षाभ्यामित्यादिना। तथा च हं सरस्वत्यै नमः, क्षं क्षमायै नमः इति भ्रूमध्ये द्विदले न्यसेत्। हाकिनीवद् विभावयन्निति। एतेन तत्तद्देवतापरिवारयोगिनीनामपि तत्तत्प्रधानयोगिनीरूपत्वमुन्नेयम्।

अत्रेवमवधेयम्—विशुद्धादितो मूलाधारक्रमेणाऽऽज्ञाचक्रपर्यन्तं तत्तच्चक्रदल-परिमाणेनाकारादिक्षकारान्तमातृकावर्णानामवस्थित्या दलसंख्यकमातृकावर्णपूर्वको डाकिन्यादीनां प्रधानयोगिनीनां न्यासः। तत्र तत्र पद्मे पत्रसमसंख्याकानां तत्तत्परिवार-योगिनीनान्तु पत्रेष्वेकैकाक्षरपूर्वक इति। पूर्वं षष्ठे प्रकाशे 'वसेदत्र देवी च डाकिन्य-भिख्ये'त्यादिना डाकिन्यादीनां मूलाधारादिस्थानानि निरूपितानि। न्यासे तु ततः क्रमभेद इति सुधीभिरवधेयम्।

परिवारदेवताओं के न्यासमन्त्र हैं—(१) हं सरस्वत्यै नमः। (२) क्षं क्षमायै नमः।

विमर्श—(१) डाकिनी आदि योगिनियों के साथ उनकी जिन परिवार-देवताओं का न्यास किया गया है, उन्हें भी प्रधान योगिनी के समनुरूप समझा जाय।

(२) प्रस्तुत ग्रन्थ के ६ठे प्रकाश में षट्चक्र-निरूपण के अन्तर्गत डाकिनी आदि का चक्रों में जो स्थान बताया गया है, वह न्यासस्थानों से भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि स्थानों में क्रम-भेद है। इससे किसी सन्देह में नहीं पड़ना चाहिए।

[योगिनीन्यासस्य प्रस्थानान्तरम्]

अथापरः प्रकारश्च कुलामृतमये(ते) तथा।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।।२६५।।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी भवेत् ।
अष्टमी च महालक्ष्मीर्वर्गाष्टाद्याः क्रमोदिताः।।२६६।।

अथ कुलामृतानुसारेण योगिनीन्यासस्य क्रमान्तरं दर्शयितुमुपक्रमते—**अथेत्यादिना। ब्राह्मीति।** अत्र कल्पे ब्राह्मयाद्यानां महालक्ष्म्यन्तानां योगिनीनामष्टानां पूर्वं क्रमेणाष्टौ वर्गान् संयोज्य न्यसेदिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः।

'कुलामृत' नामक एक तन्त्रग्रन्थ में योगिनी-न्यास का एक अन्य क्रम बताया गया है। इस क्रम के अनुसार डाकिनी आदि के स्थान पर ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि अष्ट मातृकाओं का न्यास किया जाता है। ये मातृकायें हैं—(१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) वैष्णवी, (५) वाराही, (६) इन्द्राणी, (७) चामुण्डा और (८) महालक्ष्मी।

वर्णमाला में वर्णों के आठ वर्ग हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग के वर्णों के साथ उपर्युक्त मातृकाओं का न्यास किया जाय।।२६५-२६६।।

[एतन्न्यासयोग्यान्यङ्गानि]

शिरोवदनकण्ठेषु हृदि नाभौ तथैव च।
लिङ्गे गुदे पादयोश्च क्रमादेता न्यसेदिति।
योगिनीन्यास उद्दिष्टः सर्वपापनिकृन्तनः।।२६७।।

एतन्न्यासयोग्यान्यङ्गान्याह—**शिर इत्यादिना।** क्रमात् शिर-आदिषु पदान्तेष्वङ्गेषु एता ब्राह्मयादियोगिनीर्न्यसेदित्यर्थः। एवञ्च अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्राह्मयै नम इति शिरसि, कं खं गं घं ङं माहेश्वर्यै नम इति वदने, इत्यादिरूपो न्यासक्रमः पर्यवस्यति। उपसंहरति—**योगिनीत्यादिना।**

उपर्युक्त मातृकाओं के न्यस्तव्य अंग हैं—(१) शिर, (२) मुख, (३) कण्ठ, (४) हृदय, (५) नाभि, (६) लिंग, (७) गुदा और (८) पैर। योगिनी-न्यास करने से पाप कटते हैं।।२६७।।

विमर्श (प्रयोगक्रम)—

(१) अं आं .... अं अः ब्राह्म्यै नमः — शिरसि
(२) कं खं गं घं ङं माहेश्वर्यै नमः — मुखे
(३) चं छं जं झं ञं कौमार्यै नमः — कण्ठे
(४) टं ठं डं ढं णं वैष्णव्यै नमः — हृदये
(५) तं थं दं धं नं वाराह्यै नमः — नाभौ
(६) पं फं बं भं मं इन्द्राण्यै नमः — लिंगे
(७) यं रं लं वं चामुण्डायै नमः — गुदे
(८) शं षं सं हं ळं क्षं महालक्ष्म्यै नमः — पादयोः

यह न्यासक्रम सर्वथा अप्रचलित है। शायद ही कोई साधक षोढान्यास के अन्तर्गत यह न्यास करता हो।

[राशिन्यासस्य कर्त्तव्यतोपदेशः (५)]

राशिन्यासं ततः कुर्यात् सर्वरक्षाकरं सदा।।२६८।।

राशिन्यासमवतारयति—राशीत्यादिना। तत इति निरुक्तयोगिनीन्यासानन्तरम्।

योगिनी न्यास के बाद राशि न्यास करना चाहिए। यह राशि बाधाओं से साधक को रक्षा करती है।।२६८।।

[राशीनां वर्णाः]

रक्तश्वेतहरिद्राभपाण्डुचित्रासितान् स्मरेत् ।
पिशङ्गपिङ्गलौ बभ्रुकूर्चरसितधूम्रभाः।।२६९।।

मेषादिराशीनां वर्णभेदानाह—रक्तेत्यादिना। एवञ्च मेषो रक्तः, वृषः श्वेतः। एवं क्रमेण मेषादिवर्णभेदा अवगन्तव्याः।

राशिन्यास करने के पूर्व राशियों का वर्णात्मक ध्यान करना चाहिए। मेष आदि राशियों का वर्ण (रंग) क्रमशः इस प्रकार है—

(१) लाल, (२) श्वेत, (३) हरित, (४) पाण्डु (पीत-धवल), (५) चित्र (चितकबरा), (६) असित अर्थात् काला, (७) पिशङ्ग (खाकी), (८) पिंगल (ललिमायुक्त भूरा), (९) बभ्रू (गहरा भूरा), (१०) कर्बूर (कबूतर के समान मटमैला), (११) असित और (१२) धूम्र।।२६९।।

[न्यासपरिपाटी]

अकारादिचतुर्वर्णैर्मेषं दक्षिणगुल्फके।
द्वन्द्वेन जानुनि वृषं वेदैर्मिथुनमण्डके।।२७०।।
द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ द्वन्द्वेनांसे च सिंहकम्।
बिन्दु-सर्ग-शवर्गैस्तु कन्यकां दक्षमस्तके।।२७१।।
वाममस्ते कवर्गेण तुलाख्यं वृश्चिकं ततः।
चवर्गेण तथा स्कन्धे कुक्षौ टाद्यैश्च धन्विनम्।।२७२।।
मकरन्तु तवर्गेण वृषणे विन्यसेत्ततः।
पवर्गेण तथा कुम्भं वामजानुनि विन्यसेत् ।।२७३।।
यवर्गश्च सवर्णे तु मीनाख्यं वामगुल्फके।।२७४।।

न्यासस्य क्रमं दर्शयति—**अकारेत्यादिना**। अत्रापि पूर्वं ह्रीं क्लीं श्रीमित्याद्यन्यतमबीजयोगः पूर्ववदुन्नेयः। एवञ्च दक्षिणगुल्फे—

(१) ह्रीं क्लीं श्रीं अं आं इं ईं मेषराशये नमः।
(२) ऐँ ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं मेषराशये नमः।
(३) ऐँ ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं मेषराशये नमः ऐँ ह्रीं श्रीं।
(४) क्लीं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं मेषराशये नमः।

इत्यन्यतमरूपो न्यासक्रमो बोध्यः। एवं वृषादिष्वपि ज्ञेयम्। यथा—एषामन्यतममुच्चार्य उं ऊं वृषराशये नम इति दक्षजानुनि। ऋं ॠं ऌं ॡं मिथुनराशये नम इति दक्षवृषणे।

द्वाभ्यामिति। एं ऐँ कर्कटराशये नम इति दक्षकुक्षौ। ओं औं सिंहराशये नम इति दक्षस्कन्धे। **बिन्द्विति**। बिन्दुरनुस्वारः, सर्गो विसर्गः, शवर्गः श ष स ह ल क्षेति वर्णषट्कम्। एवञ्च अं अः शं षं सं हं लं क्षं कन्याराशये नम इति दक्षमस्तके, मस्तकस्य दक्षिणांशे इत्यर्थः।

वाममस्त इति। एवञ्च कं खं गं घं ङं तुलाराशये नम इति वाममस्तके। **चवर्गेणेति**। चं छं जं झं ञं वृश्चिकराशये नम इति वामस्कन्धे। **टाद्यैरिति**। टं ठं डं ढं णं धनुराशये नम इति वामकुक्षावित्यर्थः।

मकरमिति। तं थं दं धं नं मकरराशये नम इति वामवृषणे। **पवर्गेणेति**। पं फं बं भं मं कुम्भराशये नम इति वामजानुनि।

यवर्गश्चेति। अत्र ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले, गन्धर्वतन्त्रे नवमपटले च—

यवर्गेण क्षकारेण मीनं वामेऽथ गुल्फके।

इत्यभिधानात् यं रं लं वं क्षं मीनराशये नम इति वामगुल्फे न्यसेदिति लभ्यते। तन्त्रसारे यं रं लं वमित्येतावन्मात्रमातृकायोगो दृश्यते। अत्र 'यवर्गश्च सवर्णे तु' 'चवर्गचरमार्णैस्तु' इत्येतत् पादद्वयमेव प्रामादिकमिति प्रतिभाति।

न्यासविधि—इसमें प्रथम ६ राशियों का न्यास दक्षिण पादगुल्फ से प्रारम्भ कर शरीर के दक्षिण अंगों में तथा तुला से मीन-पर्यन्त ६ राशियों का न्यास शिर के वामभाग से प्रारम्भ कर वामगुल्फ तक किया जाता है। यथा—

(१) ह्रीं क्लीं श्रीं अं आं इं ईं मेषराशये नमः — दक्षिणगुल्फे
(२) ह्रीं क्लीं श्रीं उं ऊं वृषराशये नमः — दक्षिणजानुनि
(३) ह्रीं क्लीं श्रीं ऋं ॠं ऌं ॡं मिथुनराशये नमः — दक्षिणवृषणे
(४) ह्रीं क्लीं श्रीं एं ऐं कर्कराशये नमः — दक्षिणकुक्षौ
(५) ह्रीं क्लीं श्रीं ओं औं सिंहराशये नमः — दक्षिणस्कन्धे
(६) ह्रीं क्लीं श्रीं अं अः शं षं सं हं
ळं क्षं कन्याराशये नमः — दक्षमस्तके
(७) ह्रीं क्लीं श्रीं कं खं गं घं ङं तुलाराशये नमः — वाममस्तके
(८) ह्रीं क्लीं श्रीं चं छं जं झं ञं वृश्चिकराशये नमः — वामस्कन्धे
(९) ह्रीं क्लीं श्रीं टं ठं डं ढं णं धनुराशये नमः — वामकुक्षौ
(१०) ह्रीं क्लीं श्रीं तं थं दं धं नं मकरराशये नमः — वामवृषणे
(११) ह्रीं क्लीं श्रीं पं फं बं भं मं कुम्भराशये नमः — वामजानुनि
(१२) ह्रीं क्लीं श्रीं यं रं लं वं मीनराशये नमः — वामगुल्फे

[राशीनां वर्णनिरूपणे क्रमान्तरम्]

चाप-नीरज-युक्कन्याः पीताः स्युरुभयोस्त्वमी।
तुलामकरमेषाख्यकुलीरा रक्तरोचिषः।
चराः शेषाश्च चत्वारः स्थिराः श्वेताः पृथङ् मताः।।२७५।।

राशीनां वर्णभेदस्य न्यासस्थानानाञ्च प्रस्थानान्तरं प्रदर्शयन् आदौ वर्णभेदानाह—**चापेत्यादिना**।

इस श्लोक में राशियों के वर्ण का क्रमान्तर बताया गया है। इसके अनुसार चाप (धनु), नीरज (मीन), युक् (मिथुन) तथा कन्या का रंग पीला है। ये चारो उभय राशियाँ हैं।

तुला, मकर, मेष और कुलीर (कर्क)—ये चर राशियाँ हैं और इनका वर्ण लाल है।

शेष चार (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) स्थिर राशियाँ हैं और इनका रंग श्वेत है।।२७५।।

[न्यासस्थाननिरूपणे क्रमभेदः]

दक्षपादे तथा लिङ्गे दक्षकुक्षौ तथा हृदि।
दक्षपाणौ दक्षशिरःपार्श्वे वामे तथैव च।।२७६।।

शिरःपार्श्वे तथा वामे भुजे च हृदि वामतः।
वामकुक्षौ तथा लिङ्गे वामपादे न्यसेच्च वा।।२७७।।

दक्षपाद इति। कल्पेऽस्मिन् पूर्वोक्तक्रमेणैव बीजानि वर्गांश्च संयोज्य दक्षपादे मेषम्, लिङ्गदक्षांशे वृषम्, दक्षकुक्षौ मिथुनम्, हृदो दक्षांशे कर्कटम्, दक्षपाणौ सिंहम्, शिरसो दक्षपार्श्वे कन्याम्, वामपार्श्वे तुलाम्, वामपादे च मीनं न्यसेदिति पूर्वतो भेदः।

इन श्लोकों में राशिन्यास के न्यसनीय अंगों का दूसरा क्रम बताया गया है। इस क्रम के अनुसार दाहिने पैर में मेष का, लिंग के दक्षिण भाग में वृष का, दक्षिण कुक्षि में मिथुन का, हृदय के दाहिने भाग में कर्क का, दाहिने हाथ में सिंह का, दक्षिण पार्श्व में कन्या का, वामपार्श्व में तुला का, बाँयें हाथ में वृश्चिक का, हृदय के वाम भाग में धनु का, वाम कुक्षि में मकर का, लिंग के वाम भाग में कुम्भ का और बाँयें पैर में मीन का न्यास किया जाय।।२७६-२७७।।

[पीठन्यासः (६)]

पीठानि विन्यसेत् पश्चात् सर्वकर्ममयाणि च।

एवं षोढान्यासाङ्गभूतं गणेशादिन्यासपञ्चकमभिधाय चरमं पीठन्यासमाह—**पीठानीत्यादिना।**

राशिन्यास के बाद साधक को पीठन्यास करना चाहिए।

[तत्र पीठानां वर्णनिर्णयः]

सितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुपमा क्रमात्।।२७८।।
पुनः पुनः क्रमेणैव पञ्चाशत्पीठसञ्चयः।
पीठानि संस्मरेन्मन्त्री सर्वकामार्थसिद्धये।।२७९।

तत्र प्रथमं पीठानां वर्णभेदान् निर्वक्ति—**सितेत्यादिना।** पुनः पुनः सितारुणेत्याद्यावृत्त्या पीठानां वर्णा निर्णेया इत्यर्थः। तत्र तन्त्रसारे—

सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात्।
पुनः पुनः क्रमाद्देवि पञ्चाशत्स्थानसञ्चयः।
श्यामान् वराभयकरान् सर्वालङ्कारभूषितान्।।

इति पीठध्यानमुक्तम्। मूले अनुपमेत्यनेन पीठानीत्यस्यान्वयानुपपत्तेरनुपमालक्षणवर्णाभावाच्चानुपमेति पाठश्चिन्त्यः।

भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र से भगवती सती के मृत देह के अंग और अवयव जिन-जिन स्थानों में गिरे, वहाँ-वहाँ एक-एक पीठ बन गया। इनमें से प्रत्येक पीठ से एक-एक मातृका उत्पन्न हुई। मातृका-सहित पीठों का न्यास करने से साधक का शरीर सर्वपीठमय बन जाता है। षोढा के अन्तर्गत यह छठवाँ न्यास है। न्यासक्रम में सर्वप्रथम पीठों का वर्ण बताया गया है।

इन पचास पीठों का वर्ण (रंग) क्रम-क्रम से श्वेत, अरुण, श्याम, हरा और पीला है। न्यास करने के पूर्व साधक इसी वर्ण-क्रम से पीठों का ध्यान करे।।२७८-२७९।।

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र (चतुर्दश पटल, श्लोकसंख्या ११२) में पीठों का रंग क्रम से श्वेत, काला, अरुण, श्याम, हरित और पीला बताया गया है (सितासितारुणश्यामहरित् पीतान्यनुक्रमात्)। वहीं आगे कहा गया है—

> पीठानि संस्मरेद् विद्वान् सर्वमातृकया युतान्।
> मातृकार्णैर्न्यसेद् विद्वान् सर्वकामार्थसिद्धये।।१४/११३

मातृकाओं के साथ पीठों का स्मरण करते हुए विद्वान् साधक एक-एक मातृका के साथ एक-एक पीठ का (मातृकान्यास के समान) न्यास करे।

[पीठानां नामानि]

कामरूपं महापीठं पीठं वाराणसीं ततः।
नेपालञ्च महापीठं पीठं वै पौण्ड्रवर्द्धनम्।।२८०।।
पुरस्थितं महापीठं चरस्थिरमतः परम्।
पूर्णशैलं महापीठम् अर्बुदञ्च तथाऽपरम्।।२८१।।
आम्रातकेश्वरं पीठम् एकाम्रञ्च तथाऽपरम्।
त्रिस्रोतःपीठममलं कामकोट्टमतः परम्।।२८२।।
कैलासं भृगुपीठञ्च केदारं चन्द्रपीठकम्।
श्रीपीठञ्च तथोङ्कारं जालन्धरमतः परम्।।२८३।।
मालवञ्च तथा पीठं कुलान्तं देविकोट्टकम्।
गोकर्णाख्यं महापीठं मारुतेश्वरमेव च।।२८४।।
अट्टहासञ्च विरजं राजगृहं महापथम्।
कोल्लगिर्यभिधं पीठमेलापुरमतः परम्।।२८५।।
कामेश्वरं महापीठं महापीठं जयन्तिका।
पीठमुज्जयिनीं चैव विचित्रं क्षीरिकाभिधम्।।२८६।।
हस्तिनापूरकं पीठमुड्डीशाख्यं प्रयागकम्।
कान्यकुब्जं महापीठं मायापुरजलेश्वरौ।।२८७।।
मलयञ्च महापीठं श्रीशैलाह्वयमेव च।
मेरुगिर्याख्यपीठञ्च पीठं गिरिवरं ततः।।२८८।।
महेन्द्रं वामनं पीठं हिरण्यपुरमेव च।
महालक्ष्मीपुरं पीठमुड्डीयानाख्यमुत्तमम्।।२८९।।
छायाच्छत्रञ्च पञ्चाशन्मातृकार्णं न्यसेत् क्रमात्।

पीठानां संज्ञाभेदानाह—**कामरूपमित्यादिना**। अत्र पञ्चाशन्मातृकार्णं न्यसेत् क्रमादित्यभिधानाद् एकैकमातृकापूर्वकम् एकैकपीठं न्यसेदिति बोध्यम्। अत्रापि पूर्ववद् बीजयोगः। एवञ्च—

(१) ह्रीं क्लीं श्रीं अं कामरूपपीठाय नमः इत्येकः क्रमः।
(२) ऐँ ह्रीं श्रीं अं कामरूपपीठाय नमः इति द्वितीयः।
(३) ऐँ ह्रीं श्रीं अं कामरूपपीठाय नमः ऐँ ह्रीं श्रीं इति तृतीयः।
(४) श्रीं ह्रीं क्लीं अं कामरूपपीठाय नमः इति चतुर्थः।

एवं वाराणस्यादिपीठानामपि पूर्वमेवंक्रमेणैव ह्रीं क्लीं श्रीमित्याद्यन्यतमबीजयोगं विधाय आं वाराणसीपीठाय नमः, इं नेपालपीठाय नमः इत्यादिक्रमेण एकैकसबिन्दु-मातृकापूर्वकं मातृकास्थानेषु न्यसेत्। तदुक्तं ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

पञ्चाशत्पीठविन्यासं मातृकावन्न्यसेत् सदा। इति।

अत्र योगिनीहृदय-ज्ञानार्णव-गन्धर्वादितन्त्रेषु पीठानां नामनिरूपणे परस्परं वैरूप्यं दृश्यते, तच्च तत्तदाकरेभ्योऽवगन्तव्यम्।

इन ११ श्लोकों में ५० (अर्थात् ५१) पीठों के नाम बताये गये हैं। एक-एक मातृका के साथ इनके न्यास का प्रयोग-क्रम (ह्रीं क्लीं श्रीं-सहित) निम्नानुसार है—

१. ह्रीं क्लीं श्रीं अं कामरूपापीठाय नमः — शिरसि
२. ह्रीं क्लीं श्रीं आं वाराणसीपीठाय नमः — मुखवृत्ते
३. ह्रीं क्लीं श्रीं इं नेपालपीठाय नमः — दक्षनेत्रे
४. ह्रीं क्लीं श्रीं ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः — वामनेत्रे
५. ह्रीं क्लीं श्रीं उं पुरस्थिरपीठाय नमः — दक्षकर्णे
६. ह्रीं क्लीं श्रीं ऊं चरस्थिरपीठाय नमः — वामकर्णे
७. ह्रीं क्लीं श्रीं ऋं पूर्णशैलपीठाय नमः — दक्षनासापुटे
८. ह्रीं क्लीं श्रीं ॠं अर्बुदपीठाय नमः — वामनासापुटे
९. ह्रीं क्लीं श्रीं ऌं आम्रातकेश्वरपीठाय नमः — दक्षगण्डे
१०. ह्रीं क्लीं श्रीं ॡं एकाम्रपीठाय नमः — वामगण्डे
११. ह्रीं क्लीं श्रीं एं निःस्रोतपीठाय नमः — ओष्ठे
१२. ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं कामकोटिपीठाय नमः — अधरे
१३. ह्रीं क्लीं श्रीं ओं कैलाशपीठाय नमः — ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
१४. ह्रीं क्लीं श्रीं औं भृगुपीठाय नमः — अधोदन्तपंक्तौ
१५. ह्रीं क्लीं श्रीं अं केदारपीठाय नमः — ब्रह्मरन्ध्रे

१६. ह्रीं क्लीं श्रीं अः चन्द्रपुरपीठाय नमः — मुखे
१७. ह्रीं क्लीं श्रीं कं श्रीपीठाय नमः — दक्षबाहुमूले
१८. ह्रीं क्लीं श्रीं खं ओंकारपीठाय नमः — दक्षकूर्परे
१९. ह्रीं क्लीं श्रीं गं जालंधरपीठाय नमः — दक्षमणिबन्धौ
२०. ह्रीं क्लीं श्रीं घं मालवपीठाय नमः — दक्ष अंगुलिमूले
२१. ह्रीं क्लीं श्रीं ङं कुलान्तपीठाय नमः — दक्ष अंगुल्यग्रे
२२. ह्रीं क्लीं श्रीं चं देवीकोटपीठाय नमः — वामबाहुमूले
२३. ह्रीं क्लीं श्रीं छं गोकर्णपीठाय नमः — वामकूर्परे
२४. ह्रीं क्लीं श्रीं जं मारुतेश्वरपीठाय नमः — वाममणिबन्धे
२५. ह्रीं क्लीं श्रीं झं अट्टहासपीठाय नमः — वाम अंगुलिमूले
२६. ह्रीं क्लीं श्रीं ञं विरजपीठाय नमः — वाम अंगुलिअग्रे
२७. ह्रीं क्लीं श्रीं टं राजगृहपीठाय नमः — दक्षपादमूले
२८. ह्रीं क्लीं श्रीं ठं महापथपीठाय नमः — दक्षजानुनि
२९. ह्रीं क्लीं श्रीं डं कोल्लगिरिपीठाय नमः — दक्षपादगुल्फे
३०. ह्रीं क्लीं श्रीं ढं एलापुरपीठाय नमः — दक्षपाद अंगुलिमूले
३१. ह्रीं क्लीं श्रीं णं कामेश्वरपीठाय नमः — दक्षपाद अंगुलिअग्रे
३२. ह्रीं क्लीं श्रीं तं जयन्तिकापीठाय नमः — वामपादमूले
३३. ह्रीं क्लीं श्रीं थं उज्जयिनीपीठाय नमः — वामजानुनि
३४. ह्रीं क्लीं श्रीं दं विचित्रपीठाय नमः — वामगुल्फे
३५. ह्रीं क्लीं श्रीं धं क्षीरिकापीठाय नमः — वामपाद अंगुलिमूले
३६. ह्रीं क्लीं श्रीं नं हस्तिपीठाय नमः — वामपाद अंगुल्यग्रे
३७. ह्रीं क्लीं श्रीं पं उड्डीशपीठाय नमः — दक्षपार्श्वे
३८. ह्रीं क्लीं श्रीं फं प्रयागपीठाय नमः — वामपार्श्वे
३९. ह्रीं क्लीं श्रीं बं कान्यकुब्जपीठाय नमः — पृष्ठे
४०. ह्रीं क्लीं श्रीं भं मायापुरपीठाय नमः — नाभौ
४१. ह्रीं क्लीं श्रीं मं जलेश्वरपीठाय नमः — उदरे
४२. ह्रीं क्लीं श्रीं यं मलयपीठाय नमः — हृदये
४३. ह्रीं क्लीं श्रीं रं श्रीशैलपीठाय नमः — दक्षिणस्कन्धे
४४. ह्रीं क्लीं श्रीं लं मेरुगिरिपीठाय नमः — ककुदि
४५. ह्रीं क्लीं श्रीं वं गिरिवरपीठाय नमः — वामस्कन्धे

४६. ह्रीं क्लीं श्रीं शं महेन्द्रपीठाय नमः — हृदयादिदक्षिणकरे
४७. ह्रीं क्लीं श्रीं षं वामनपीठाय नमः — हृदयादिवामकरे
४८. ह्रीं क्लीं श्रीं सं हिरण्यपुरपीठाय नमः — हृदयादिदक्षिणपादे
४९. ह्रीं क्लीं श्रीं हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमः — हृदयादिवामपादे
५०. ह्रीं क्लीं श्रीं ळं उड्डीयानपीठाय नमः — हृदयादि उदरे
५१. ह्रीं क्लीं श्रीं क्षं छायाछत्रपीठाय नमः — हृदयादि मुखे

विमर्श—(१) योगिनीहृदय, ज्ञानार्णवतन्त्र, गन्धर्वतन्त्र, तन्त्रसार आदि ग्रन्थों में पीठों के बारे में मतभेद हैं। इससे किसी संशय में नहीं पड़कर अपनी परम्परा के अनुसार न्यास करना चाहिये।

(२) यद्यपि उपर्युक्त २९०वें श्लोक की प्रथम पंक्ति में 'पञ्चाशन्मातृकार्णं' कहकर पचास मातृकाओं की बात कही गई है; मगर मातृकाओं की संख्या ५१ है। अतः पचास की संख्या को ५१ का उपलक्षण समझें। 'क्ष'कार के पूर्ववर्ती 'ळ'कार को निकाल देने से मातृकाओं की संख्या ५० ही रह जाती है। ध्यान दें—अन्तमार्तृकाक्रम में इस 'ळ'कार का न्यास नहीं किया जाता; क्योंकि षट्चक्रों में दलों की संख्या केवल ५० है। तन्त्र में इस 'ळ'कार को दूसरा 'ल'कार समझा और कहा जाता है। जहाँ केवल ५० मातृकायें अभीष्ट होती हैं, इस 'ळ'कार को निकाल दिया जाता है।

[षोढान्यासोपसंहारः]

षोढान्यासमिमं मन्त्री न्यसेत् साक्षात् स्वयं शिवः।।२९०।।

पञ्चाशदिति। पञ्चाशन्मातृकावर्णस्वरूपं पञ्चाशत्पीठकं न्यसेदित्यर्थः। एवञ्च मातृकाणां कामरूपादितत्तत्पीठस्वरूपत्वादेव तत्र तत्र योग उपदिष्टः। योगिनीहृदयेऽपि पूजासङ्केतप्रतिपादके तृतीयपटले कामरूपादिच्छायाच्छत्रान्तपीठनिरूपणानन्तरम्—

एते पीठाः समुद्दिष्टाः मातृकारूपकाः स्थिताः।

इत्यनेन मातृकारूपत्वं पीठानां व्यक्तमभिहितम्। एतेन गणेशादीनां पूर्वं प्रयोज्या मातृका अपि व्याख्याताः।

षोडेति। यदि न्यसेत्तदा साक्षात् शिवो भवेदिति सम्बन्धः।

षोढान्यास करने से मन्त्र-साधक स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है।।२९०।।

[पीठन्यासप्रशस्तिः]

नास्त्यस्य पूज्यो लोकेऽस्मिन् पितृमातृमुखो जनः।
एवं ये न्यस्तदेहास्ते सम्पूज्याः सर्वयोगिभिः।।२९१।।

अपने जन्म से माता-पिता को धन्य करने वाला षोढान्यास-सिद्ध साधक संसार में सामान्य जनों की बात ही क्या, योगियों के लिये भी प्रणम्य और पूजनीय होता है।।२९१।।

[पीठन्यासाकरणे दोषः]

षोढान्यासविहीनो यः प्रणमेद् यदि साधकः।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकञ्च प्रपद्यते।।२९२।।

साधकः षोढान्याससाधको यदि प्रणमेत् तदा षोढान्यासविहीनो यः सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोतीति सम्बन्धः।

षोढान्यास-सिद्ध साधक यदि किसी ऐसे व्यक्ति को प्रणाम कर देता है, जिसे षोढान्यास सिद्ध नहीं है तो वह प्रणाम किया गया व्यक्ति शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। षोढान्यास-सिद्ध साधक से यदि कोई सामान्य व्यक्ति अपने को प्रणाम कराता है तो उसकी मृत्यु तो होती ही है, मृत्यु के बाद उसे घोर नरक में भी जाना पड़ता है।।२९२।।

[अथ सशक्तिककामन्यासः]

कामन्यासमथो वक्ष्ये त्रैलोक्यक्षोभकारकम्।।२९३।।

एवं गणेशादिपीठान्तपीठान्यासमभिधाय कामन्यासं वक्तुमुपक्रमते—**कामे-त्यादिना**। तत्र प्रथममेव साधकानामभिमुखीकरणाय प्रशस्तिमाह—**त्रैलोक्येति**।

गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि और पीठन्यास-समन्वित षोढान्यास की विधि बताने के बाद अब काम-रतिन्यास का विधान बताया जा रहा है। यह काम-रति न्यास तीनों लोकों में विक्षोभ उत्पन्न करने वाला है। न्यास करने के पूर्व कामदेव और उनकी शक्ति (रति) का ध्यान करना चाहिए।।२९३।।

[तत्र कामध्यानम्]

दाडिमीकुसुमाकारान् कामात् मोहनरूपकान्।
पुष्पबाणेषुकोदण्डशोभिताञ्छक्तिसंयुतान् ।।२९४।।

न्यासादौ न्यसनीयानां कामानां ध्यानमाह—**दाडिमीत्यादिना शक्तिसंयुता-नित्यन्तेन**।

कामदेव का रूप अत्यन्त मोहक है। उनका वर्ण अनार के फूल के समान लालिमामय है। हाथों में फूलों के धनुष-बाण हैं। उनकी शक्ति (रति) उनके साथ ही विराजिता है।।२९४।।

[कामशक्तिध्यानम्]

सर्वालङ्कारसंयुक्ताः शक्तीः कुसुम्भसन्निभाः।
नीलोत्पलकराश्चैव त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः।।२९५।।

शक्तीनामपि रत्यादीनां ध्यानमाह—**सर्वेत्यादिना**। एतेन वक्ष्यमाणक्रमेण सशक्तिकानामेव कामानां न्यासः कर्त्तव्य इति सूचितम्।

कामदेवों की शक्तियाँ फूलों के समान नाजुक हैं। वे सभी आभूषणों से विभूषिता हैं। अपने सौन्दर्य से सम्पूर्ण संसार का मन मोह लेने में सक्षम कामशक्तियों के हाथों में नीले रंग का लीलाकमल है।।२९५।।

[पूर्वतो बीजयोगः]

काम-माया-रमाबीजैर्मातृकार्णैस्तनौ न्यसेत्।।२९६।

कामेति। पूर्वोक्ततत्तद्विशेषणविशिष्टवक्ष्यमाणकामतच्छक्तीः काममायारमाबीजैर्मातृकार्णैश्च तनौ न्यसेदिति सम्बन्धः। तत्र कामः क्लीं, माया ह्रीं, रमा च श्रीमिति तैः। मातृकार्णैः अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकावर्णैः पूर्वं नियोजितैरित्यर्थः।

न्यासमन्त्रों के आदि में 'क्लीं ह्रीं श्रीं' की योजना करें।।२९६।।

[न्यसनीयदेवतानामानि]

कामयुक्ता रतिश्चैव कामः प्रीतिश्च कान्तकः।
कामिनी सह वै भ्रान्तो मोहिन्या सहितस्ततः।।२९७।।
कामधुक् कमलायुक्तः कामचारो विलासिनी।
कर्णकल्पलते चैव कोमलः श्यामलान्वितः।।२९८।।
शुचिस्मिता कामयुक्तः कामवर्द्धनसंज्ञकः।
विस्मयासहितो रामो विशालाक्षीयुतो रसः।।२९९।।
विमलो लोहितायुक्तो रतिनाथदिगम्बरे।
रतिप्रियश्च रामा च रात्रिनायककुब्जिके।।३००।।
स्मरेण सहिता कान्ता रमणो नित्यया युतः।
निशाचरश्च कल्याणी नन्दनो भोगिनीयुतः।।३०१।।
नन्दीशः कामदायुक्तो मदनश्च सुलोचना।
सुलावण्यायुतश्चैव तथानन्दयिताभिधः।।३०२।।
निशाचरश्च मर्दिन्या रतिहंसस्तु तत्परम्।
कलहः प्रियया युक्तः पुष्पधन्वा च काङ्क्षिणी।।३०३।।
महाधनुश्च सुमुखी ग्रामणीर्नलिनीयुतः।
भीमश्च जटिनीयुक्तो भ्रामणः पालिनीयुतः।।३०४।।
भ्रमणः शिखिनीयुक्तः श्याममुग्धे ततः परम्।
भ्रामणो रमया युक्तो भृगुर्भूमिसुसंवृतः।।३०५।।
भ्रान्तश्चासवलोला च भ्रमावहसुचञ्चले।
मोहनो दीर्घजिह्वा च मेचकेन युता मतिः।।३०६।।
लोलाक्षीसहितो गुह्यो मोहवर्द्धनभृङ्गिणी।

मोहकश्च चपेटा च मन्मथो नाथया युतः।।३०७।।
मातङ्गो मालिनीयुक्तो भृङ्गिणा कलहंसिनी।
गायकेन समायुक्ता तथा वै विश्वतोमुखी।।३०८।।
गजनन्दिकया युक्तो गीतश्च तदनन्तरम्।
नर्त्तकः सह रञ्जिन्या लेखः कान्तिसमन्वितः।।३०९।।
उन्मत्तः कलकण्ठी च कनकश्च वृकोदरी।
श्यामया सहितो मेघो विमलश्च श्रिया सह।।३१०।।

निरुक्तक्रमपूर्वकं न्यसनीयानां कामतच्छक्तीनां नामानि निर्वक्ति—**कामयुक्ते**त्यादिना। एवञ्च क्लीं ह्रीं श्रीं अं कामरतिभ्यां नमः। क्लीं ह्रीं श्रीं आं कामप्रीतिभ्यां नमः। क्लीं ह्रीं श्रीं इं कान्तकामिनीभ्यां नमः। इत्येवं क्रमेण न्यसेदिति पर्यवस्यति। न्यासस्तु पूर्ववन्मातृकास्थानेषु कर्त्तव्यः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

मातृकार्णैर्न्यसेद्देवि मातृकावत् सदाऽनघे। इति।

स्पष्टमन्यत्।

इन श्लोकों में काम और शक्ति की युगल मूर्तियों के नाम बताये गये हैं। 'क्लीं ह्रीं श्रीं' के बाद एक मातृका और उसके बाद 'काम-शक्ति' के द्विवचन चतुर्थ्यन्त नाम की योजना करके मातृकान्यास के समान न्यास किया जाय। काम-रति न्यास का प्रयोग-क्रम निम्नानुसार है—

१. क्लीं ह्रीं श्रीं अं कामरतिभ्यां नमः — ललाटे
२. क्लीं ह्रीं श्रीं आं कामप्रीतिभ्यां नमः — मुखे
३. क्लीं ह्रीं श्रीं इं कान्तकामिनीभ्यां नमः — दक्षिणनेत्रे
४. क्लीं ह्रीं श्रीं ईं भ्रान्तमोहनीभ्यां नमः — वामनेत्रे
५. क्लीं ह्रीं श्रीं उं कामधुक्-कमलाभ्यां नमः — दक्षकर्णे
६. क्लीं ह्रीं श्रीं ऊं कामाचार-विलासिनीभ्यां नमः— वामकर्णे
७. क्लीं ह्रीं श्रीं ऋं कर्ण-कल्पलताभ्यां नमः — दक्षनासायाम्
८. क्लीं ह्रीं श्रीं ॠं कोमल-श्यामलाभ्यां नमः — वामनासायाम्
९. क्लीं ह्रीं श्रीं ऌं कामवर्धन-शुचिस्मिताभ्यां नमः — दक्षगण्डे
१०. क्लीं ह्रीं श्रीं ॡं राम-विस्मयाभ्यां नमः — वामगण्डे
११. क्लीं ह्रीं श्रीं एं रस-विशालाक्षीभ्यां नमः — ओष्ठे
१२. क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं विमल-लोहिताभ्यां नमः — अधरे
१३. क्लीं ह्रीं श्रीं ओं रतिनाथ-दिगम्बराभ्यां नमः — ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
१४. क्लीं ह्रीं श्रीं औं रतिप्रिय-रामाभ्यां नमः — अधोदन्तपंक्तौ

१५. क्लीं ह्रीं श्रीं अं रात्रिनायक-कुब्जिकाभ्यां नमः— ब्रह्मरन्ध्रे
१६. क्लीं ह्रीं श्रीं अः स्मर-कान्ताभ्यां नमः — मुखे
१७. क्लीं ह्रीं श्रीं कं रमण-नित्याभ्यां नमः — दक्षबाहुमूले
१८. क्लीं ह्रीं श्रीं खं निशाचर-कल्याणीभ्यां नमः — दक्षकूर्परे
१९. क्लीं ह्रीं श्रीं गं नन्दन-भोगिनीभ्यां नमः — दक्षमणिबन्धौ
२०. क्लीं ह्रीं श्रीं घं नन्दीश-कामदाभ्यां नमः — दक्ष अंगुलिमूले
२१. क्लीं ह्रीं श्रीं ङं मदन-सुलोचनाभ्यां नमः — दक्ष अंगुलि अग्रे
२२. क्लीं ह्रीं श्रीं चं नन्दयितृ-सुलावण्याभ्यां नमः— वाम बाहुमूले
२३. क्लीं ह्रीं श्रीं छं निशाचर-मर्दिनीभ्यां नमः — वामकूर्परे
२४. क्लीं ह्रीं श्रीं जं रतिहंस-कलहप्रियाभ्यां नमः — वाममणिबन्धौ
२५. क्लीं ह्रीं श्रीं झं पुष्पधन्वा-कांक्षिणीभ्यां नमः — वाम अंगुलिमूले
२६. क्लीं ह्रीं श्रीं ञं महाधनु-सुमुखीभ्यां नमः — वाम अंगुलि अग्रे
२७. क्लीं ह्रीं श्रीं टं ग्रामणी-नलिनीभ्यां नमः — दक्षपादमूले
२८. क्लीं ह्रीं श्रीं ठं भीम-जटिनीभ्यां नमः — दक्षजानुनि
२९. क्लीं ह्रीं श्रीं डं भ्रामण-पालिनीभ्यां नमः — दक्षगुल्फे
३०. क्लीं ह्रीं श्रीं ढं भ्रमण-शिखिनीभ्यां नमः — दक्षपाद अंगुलिमूले
३१. क्लीं ह्रीं श्रीं णं श्याम-मुग्धाभ्यां नमः — दक्षपाद अंगुलि अग्रे
३२. क्लीं ह्रीं श्रीं तं भ्रामण-रमाभ्यां नमः — वामपादमूले
३३. क्लीं ह्रीं श्रीं थं भृगु-भूमिभ्यां नमः — वामजानुनि
३४. क्लीं ह्रीं श्रीं दं भ्रान्त-आसवलोलाभ्यां नमः — वामगुल्फे
३५. क्लीं ह्रीं श्रीं धं भ्रमावह-सुचञ्चलाभ्यां नमः — वामपाद अंगुलिमूले
३६. क्लीं ह्रीं श्रीं नं मोहन-दीर्घजिह्वाभ्यां नमः — वामपाद अंगुलि अग्रे
३७. क्लीं ह्रीं श्रीं पं मेचक-मतिभ्यां नमः — दक्षपार्श्वे
३८. क्लीं ह्रीं श्रीं फं मुग्ध-लोलाक्षीभ्यां नमः — वामपार्श्वे
३९. क्लीं ह्रीं श्रीं बं मोहवर्धन-भृङ्गिणीभ्यां नमः — पृष्ठे
४०. क्लीं ह्रीं श्रीं भं मोहक-चपेटाभ्यां नमः — नाभौ
४१. क्लीं ह्रीं श्रीं मं मन्मथ-नाथाभ्यां नमः — उदरे
४२. क्लीं ह्रीं श्रीं यं मातङ्ग-मालिनीभ्यां नमः — हृदये
४३. क्लीं ह्रीं श्रीं रं भृङ्गी-कलहंसिनीभ्यां नमः — दक्षिणस्कन्धे
४४. क्लीं ह्रीं श्रीं लं गायक-विश्वतोमुखीभ्यां नमः— ककुदि
४५. क्लीं ह्रीं श्रीं वं गीत-गजनन्दिकाभ्यां नमः — वामस्कन्धे

४६. क्लीं ह्रीं श्रीं शं नर्तक-रञ्जिनीभ्यां नमः — हृदयाद् दक्षबाहु
४७. क्लीं ह्रीं श्रीं षं लेख-कान्तिभ्यां नमः — हृदयाद् वामबाहु
४८. क्लीं ह्रीं श्रीं सं उन्मत्त-कलकण्ठीभ्यां नमः — हृदयाद् दक्षपाद
४९. क्लीं ह्रीं श्रीं हं कनक-वकोदरीभ्यां नमः — हृदयाद् वामपाद
५०. क्लीं ह्रीं श्रीं ळं मेघ-श्यामाभ्यां नमः — हृदयाद् उदरे
५१. क्लीं ह्रीं श्रीं क्षं विमला-श्रीभ्यां नमः — हृदयाद् मुखे

[एतन्न्यासोपसंहारः]

अनेन न्यासयोगेन त्रैलोक्यक्षोभको भवेत्।।३११।।

कामरति न्याससिद्ध साधक तीनों लोकों को विक्षुब्ध कर सकता है। उसके पीछे पूरी दुनिया पागल हो जाती है॥३११॥

[अत्र नवयोनिन्यासोपदेशः]

बालाबीजत्रयावृत्त्या नवयोनिं न्यसेत्ततः।
श्रोत्रयोश्चिबुके शङ्खद्वये वदनके दृशोः।।३१२।।
नासायामंसयुगले हृदये कूर्परद्वये।
उदरे जानुयुगले लिङ्गमूले पदद्वये।।३१३।।
गुह्ये पार्श्वद्वये चैव उरसि स्तनयुग्मके।
कण्ठे च नवयोन्याख्यं न्यसेत् साधकसत्तमः।।३१४।।

अथ नवयोनिन्यासमाह—बालेत्यादिना। अत्र श्रोत्रादिकण्ठान्तेषु सप्तविंशतिस्थानेपु बालाबीजानाम् ऐँ क्लीं सौरित्येतल्लक्षणानां त्रयावृत्त्या त्रिरावृत्त्येत्यर्थः। यद्वा बालाबीजत्रयस्य आवृत्त्या त्रिरावृत्त्येत्यर्थः। नवयोनिं न्यसेदिति सम्बन्धः। अनेनैतदुक्तं भवति—निरुक्तानि श्रोत्रादीनि कण्ठान्तानि नवयोनिस्थानानि सप्तविंशतिसंख्याकानि। बालाबीजत्रयस्य च त्रिरावृत्तौ सप्तविंशतिर्बीजानि भवन्ति। तेषु च क्रमेणैकैकं बीजं निरुक्त एकैकस्मिन् स्थाने न्यसेदिति। एवञ्च दक्षकर्णे ऐँ नमः, वामकर्णे क्लीं नमः चिबुके सौः नमः। पुनर्दक्षगण्डे ऐँ नमः, वामगण्डे क्लीं नमः। मुखे सौः नमः। एवंक्रमेणान्येष्वपि स्थानेष्वेकैकं बीजं न्यसेदिति फलितम्। न च बालाबीजत्रयावृत्त्येत्यनेन प्रत्यङ्गं बीजत्रयेण न्यास उपदिष्ट इति वाच्यम्,

नवयोन्यात्मकं न्यासं कुर्यात् बीजैस्त्रिभिः क्रमात्।

इत्यादितन्त्रसारधृतनिबन्धतन्त्रवचने क्रमादित्यनेन एकैकबीजयोगस्योक्तत्वात्। अत एव तन्त्रसारकारैरपि 'आद्यबीजं दक्षकर्णे द्वितीयबीजं वामकर्णे तृतीयबीजं चिबुके' इत्यादिना एकैकबीजयोगः स्पष्टमभिहितः। त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्येवमेव। शङ्खद्वये गण्डद्वय इत्यर्थः।

कान से कण्ठ-पर्यन्त २७ स्थानों में त्र्यक्षरी बाला विद्या के एक-एक बीज का न्यास नवयोनि न्यास है। यह न्यास सम्पूर्ण बाला विद्या की ९ बार आवृत्ति करके सम्पन्न किया जाता है। यथा—

(१) ऐं नमः दक्षकर्णे क्लीं नमः वामकर्णे सौः नमः चिबुके
(२) ऐं नमः दक्षगण्डे क्लीं नमः वामगण्डे सौ नमः मुखे
(३) ऐं नमः दक्षनेत्रे क्लीं नमः वामनेत्रे सौ नमः नासायाम्
(४) ऐं नमः दक्षिणस्कन्धे क्लीं नमः वामस्कन्धे सौ नमः हृदये
(५) ऐं नमः दक्षिणकूर्परे क्लीं नमः वामकूर्परे सौ नमः नाभौ
(६) ऐं नमः दक्षजानुनि क्लीं नमः वामजानुनि सौ नमः लिंगे
(७) ऐं नमः दक्षपादे क्लीं नमः वामपादे सौ नमः गुह्ये
(८) ऐं नमः दक्षिणपार्श्वे क्लीं नमः वामपार्श्वे सौ नमः हृदये
(९) ऐं नमः दक्षिणस्तने क्लीं नमः वामस्तने सौ नमः कण्ठे

विमर्श—चिबुक अर्थात् ठुड्डी। स्कन्ध अर्थात् कन्धा। कूर्पर अर्थात् कोहनी। जानु यानी घुटना। पार्श्व अर्थात् बगल।

योनि का अर्थ है—त्रिकोण। इस न्यास के लिये शरीर के तीन-तीन अंगों के कुल नौ (९) समूह या सेट बनाये गये हैं। इनमें से प्रत्येक सेट के अंगों को कल्पित रेखाओं से जोड़ें तो पूरे शरीर में ९ त्रिकोण बन जाते हैं। इसीलिये इसे 'नव योनि न्यास' कहा जाता है। भगवती बाला के पूजन यन्त्र में भी कुल ९ त्रिकोण हैं। अतः यह न्यास करने से साधक का शरीर भगवती बाला का अर्चन यन्त्रस्वरूप हो जाता है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अर्चन यन्त्र (श्रीयन्त्र) भी मूलतः 'नव-योन्यात्मक' है। शेष भाग नव योनियों का विस्तार है।

बालाबीजत्रयेणैव चतुरस्रं विभाव्य च।
गोलकन्यासयोगेन श्रीचक्रं परिचिन्तयेत्।।३१५।।

ततः करणीयमाह—बालेति। एवं नवयोनिन्यासं विधाय बालाबीजत्रयेण श्रीचक्रं चतुरस्रं विभाव्य पुनर्बालयैव गोलकत्वेन श्रीचक्रं परिचन्तयेदिति सम्बन्धः। अत एव तन्त्रसारकारैरपि—

बालया त्रिपुरेशान्या नवयोन्यात्मकं न्यसेत्।

इति प्रकम्य 'प्रयोगस्तु भैरवोपकरणे उक्त' इत्यभिधाय च—

पुनर्बालां समुच्चार्य गोलकत्वेन विन्यसेत्।
पुनर्बालां समुच्चार्य चतुरस्रं विचिन्तयेत्।।

इत्यनेन निरुक्तचतुरस्रादिचिन्ताया नवयोनिन्यासाङ्गत्वमुक्तम्।

नवयोनि न्यास करने के बाद बाला मन्त्र के तीन बीजों से चतुरस्त्र की कल्पना करके बाला विद्या से ही गोलक न्यास योग से श्रीचक्र की भावना करें॥३१५॥

षट्चक्रे च ललाटे च सीमन्ते तच्छिरोविले।
नव स्थानानि सङ्कल्प्य विन्यसेत् साधकोत्तमः॥३१६॥

षट्चक्रेति। प्रागुक्तक्रमानुष्ठानानन्तरं बालबीजत्रयेण मूलाधारादिषु न्यसेदिति ज्ञेयम्। एवञ्च मूलाधारे ऐँ क्लीं सौः नमः। पुनः स्वाधिष्ठाने ऐँ क्लीं सौः नमः। एवंक्रमेण मणिपूरादिचक्रचतुष्टये ललाट-सीमन्त-शिरोविलेषु च न्यसेदिति फलितम्।

इसके बाद मूलाधार आदि षट्चक्रों में और ललाट, सीमन्त एवं ब्रह्मरन्ध्र में बाला विद्या का न्यास करें। यथा—

मूलाधारे—ऐं क्लीं सौः। स्वाधिष्ठाने—ऐं क्लीं सौः। मणिपूरके—ऐं क्लीं सौः।
अनाहते—ऐं क्लीं सौः। विशुद्धे—ऐं क्लीं सौः। आज्ञाचक्रे—ऐं क्लीं सौः।
ललाटे—ऐं क्लीं सौः। सीमन्ते—ऐं क्लीं सौः। ब्रह्मरन्ध्रे—ऐं क्लीं सौः।

विमर्श—आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रूमध्य। इसके ऊपर ललाट है। ललाट का ऊपरी भाग सीमन्त कहलाता है।

[श्रीविद्यान्यासः]

श्रीविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे तु पृष्ठतो गुह्यतः क्रमात् ।
मन्त्रवर्णं न्यसेत् पश्चादेकैकक्रमभेदतः॥३१७॥
मस्तके गुह्यदेशे च हृदि नेत्रत्रयेऽपि च।
कर्णयोर्वदने हस्तद्वये पृष्ठे ततः परम्।
जानुद्वये नाभिदेशे सम्पूर्णं ब्रह्मरन्ध्रके॥३१८॥

श्रीविद्यामिति। ब्रह्मरन्ध्रे पृष्ठे गुह्ये च, क ए ई ल ह्रीमित्यादिपञ्चदशाक्षरश्रीविद्यां न्यसेदित्यर्थः। **मन्त्रवर्णमिति।** मस्तकादिषु नाभ्यन्तेषु पञ्चदशस्थानेषु निरुक्तपञ्चदशाक्षरश्रीविद्यायां एकैकं वर्णं न्यसेदित्यर्थः। एवञ्च मस्तके कं नमः, गुह्ये एं नमः, हृदि ईं नमः इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः। **सम्पूर्णमिति।** ब्रह्मरन्ध्रे सम्पूर्णं निरुक्तपञ्चदशाक्षरमन्त्रं न्यसेदित्यर्थः।

ब्रह्मरन्ध्र में, पृष्ठ (पीठ) में तथा गुह्य में श्रीविद्या का न्यास करें। तत्पश्चात् मस्तक में, गुह्यदेश में, हृदय में, तीनों नेत्रों में, दोनों कानों में, मुख में, दोनों हाथों में, पीठ में, दोनों घुटनों में तथा नाभि (इन १२ स्थानों में) में श्रीविद्या के एक-एक अक्षर का न्यास करने के बाद ब्रह्मरन्ध्र में सम्पूर्ण श्रीविद्या का न्यास करें। यही श्रीविद्या न्यास है॥३१७-३१८॥

प्रयोगक्रम—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं नमः—ब्रह्मरन्ध्रे। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं नमः—पृष्ठे। कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं नमः—गुह्ये।

‘कं’ नमः—मस्तके। ‘एं’ नमः—गुह्ये। ‘ईं’ नमः—हृदये। ‘लं’ नमः—दक्षिणनेत्रे। ‘ह्रीं’ नमः—वामनेत्रे। ‘हं’ नमः—ललाटे (तृतीय नेत्रे)। ‘सं’ नमः—दक्षकर्णे। ‘कं’ नमः—वामकर्णे। ‘हं’ नमः—मुखे। ‘लं’ नमः—दक्षिणकरे। ‘ह्रीं’ नमः—वाम करे। ‘सं’ नमः—पृष्ठे। ‘कं’ नमः—दक्षजानुनि। ‘लं’ नमः—वामजानुनि। ‘ह्रीं’ नमः—नाभौ।

पुनः—‘कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं’ नमः—ब्रह्मरन्ध्रे।

[तिथिनित्यान्यासः]

तिथिनित्या न्यसेत् पश्चान्मातृकास्वरसंयुताः।
एकैकक्रमयोगेण साधकः स्थिरमानसः।।३१९।।

अथ षोडशनित्यान्यासमाह—**तिथिनित्या इत्यादिना**। तिथिनित्याश्च—

प्रथमा सुन्दरी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
कामेश्वरी समाख्याता तथैव भगमालिनी।।

इत्याद्युक्तलक्षणाः कामेश्वरी-भगमालिनी-नित्यक्लिन्ना-भेरुण्डाद्याः। नित्यानामेतासां प्रतिपदादिपञ्चदश्यन्तासु तिथिषु क्रमेणोपास्यतया तिथिनित्यात्वम्। यत्तु तन्त्रसारादौ ‘षोडशनित्यान्यास’ इत्युक्तं तन्निरुक्तपञ्चदशनित्यान्ते न्यसनीयायाः पञ्चदशतिथिगामिन्याः श्रीविद्याया अन्तर्निवेशेनेति बोध्यम्। वक्ष्यति च स्वयमेव ग्रन्थकारः—‘श्रीविद्यां विन्यसेन्मूर्ध्नि त्रिपञ्चतिथिगामिनीम्’ इति। अत एव तन्त्रराजे सप्तमपटले—

षोडशानान्तु नित्यानां प्रत्येकं तिथिषु क्रमात्।
तत्तत्तिथौ तद्भजनं जपहोमार्चनादिना।।
घृतञ्च शर्करा दुग्धमपूपं कदलीफलम्।
क्षौद्रं गुडं नारिकेलं फलं लाजां तिलं दधि।।
पृथुकं चणकं मुद्गं पायसञ्च निवेदयेत्।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य क्रमात् पञ्चदशस्वपि।।
कामेश्वर्यादिशक्तीनां सर्वासामपि चोदिताम्।
आद्याया ललितायास्तु सर्वाण्येतानि सर्वदा।।

इत्यादिना कामेश्वर्यादीनां तत्तत्तिथिषु, ललितायाः पुनः सर्वतिथिषु घृताद्युपचारकरणकपूजनोपदेशेन नित्यानां षोडशसंख्याकत्वं व्यक्तमुक्तम्। **एकैकेति**। एकैकक्रमयोगेणाकारादिविसर्गान्तमातृकायोगेनेत्यर्थः।

इसके पश्चात् साधक स्थिरचित्त होकर नित्या मन्त्रों के आदि में एक-एक स्वर-वर्ण की योजना करके एक-एक के क्रम से वक्ष्यमाण विधि से नित्याओं का न्यास करे।।३१९।।

विमर्श—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी प्रथमा-नित्या है। कामेश्वरी आदि पन्द्रह नित्यायें और हैं। इस प्रकार नित्याओं की संख्या १६ है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ कर प्रत्येक तिथि को कामेश्वरी आदि एक-एक तिथिनित्या की पूजा की जाती है। प्रत्येक नित्या के मन्त्र के आदि में 'अ'कार इत्यादि एक स्वरवर्ण की योजना की जाती है। 'अः' की योजना प्रथम नित्या महात्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र के आदि में करके प्रत्येक तिथि को नित्या के रूप में उनकी पूजा की जाती है। अगले ३३ श्लोकों में नित्यामन्त्रों का उद्धार, पूजनतिथि तथा न्यास का निरूपण किया गया है।

[तत्र कामेश्वरीन्यासः (१)]

तत्र तु प्रथमा नित्या कामेश्वरी वशङ्करी।
बालां वर्तुलहृत्प्रान्ते कामेश्वरिपदं ततः।।३२०।।
इच्छाकामफलप्रान्ते प्रदे सर्वपदं लिखेत्।
सत्त्ववशङ्करि प्रोच्य ततः सर्वजगत्पदम्।।३२१।।
क्षोभप्रान्ते करि ब्रूयात् कूर्चबीजत्रयं लिखेत् ।
पञ्चबाणान् समालिख्य विलोमेन कुमारिकाम्।।३२२।।
एषा कामेश्वरी नित्या पादाङ्गुष्ठे प्रविन्यसेत्।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य यावत् पूर्णावसानकम्।।३२३।।

तत्र प्रथमां नित्यां निर्वक्ति—**कामेश्वरीत्यादिना**। वशङ्करीति कामेश्वरीविशेषणम्। तदुक्तं ज्ञानार्णवतन्त्रे पञ्चदशपटले—

कामेश्वरी महाविद्या सर्वलोकवशङ्करी।। इति।

न्यासार्थमस्या मन्त्रोच्चारमाह—**तत्रेत्यादिना**। बालाम् ऐँ क्लीं सौरिति बीजत्रयम्। वर्त्तुलं प्रणवः। कूर्चबीजत्रयं हुं हुं हुं। **पञ्चबाणानिति**। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति पञ्चबाणमन्त्रस्त्वग्रे स्वयमेव वक्ष्यते। **विलोमेनेति**। एतेन सौः क्लीं ऐँ इति प्राप्तम्। स्पष्टमन्यत्। एवञ्च अं ऐँ क्लीं सौः ॐ नमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभकरि हुं हु हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐँ कामेश्वरीनित्याकलायै नमः इति पादाङ्गुष्ठे न्यसेदिति फलितम्। **प्रतिपदिति**। प्रतिपदः पञ्चदश्यन्तं प्रविन्यसेदिति पूर्वेण सम्बन्धः।

भगवती कामेश्वरी प्रथमा तिथिनित्या हैं। वे तीनों लोकों को अपने वश में करने वाली हैं।

(१) **कामेश्वरी नित्या का मन्त्र**—बाला विद्या के तीन बीज (ऐं क्लीं सौः), वर्तुल (ॐ), हृत् (नमः) के बाद क्रमशः 'कामेश्वरि', 'इच्छाफल' के बाद 'प्रदे' फिर 'सर्व' फिर 'सत्त्ववशङ्करि' के बाद 'सर्वजगत्' के बाद 'क्षोभकरि'। इसके बाद तीन बार 'हुं', इसके बाद पञ्च बाणबीज (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) इसके बाद विलोम-

क्रम से कुमारिका (सौ:-क्लीं-ऐं) की योजना करने से कामेश्वरी नित्या का मन्त्र निष्पन्न होता है।

मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं सौ: ॐ नम: कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्व-वशंकरि सर्वजगत् क्षोभकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: सौ: क्लीं ऐं।

उक्त मन्त्र के आदि में 'अं' और मन्त्र के अन्त में 'कामेश्वरीनित्याकलायै नम:' की योजना करने से इनका पूजन/न्यासमन्त्र बनता है। प्रतिपदा (शुक्लपक्ष की) इनकी पूजन तिथि है। उक्त मन्त्र से दाहिने पैर के अंगूठे में न्यास किया जाता है॥३२०-३२३॥

विमर्श—तन्त्रान्तर के अनुसार 'कामेश्वरी' के तीन भेद हैं। यथा—(१) नित्या कला कामेश्वरी, (२) अतिरहस्ययोगिनी कामेश्वरी, जो जाग्रत् दशा की अधिष्ठात्री हैं और (३) स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी।

[भगमालान्यास: (२)]

दक्षगुल्फे न्यसेद्देवीं भगमालां भगेश्वरीम्।
वाग्भवं भगशब्दान्ते भगे भगिनि संलिखेत्॥३२४॥
भगोदरि भगाङ्गे च भगमाले भगावहे।
भगगुह्ये भगप्रान्ते योनिभगनिपातिनि॥३२५॥
सर्वभगे भगवशङ्कर्यन्ते भगशब्दकम्।
रूपे नित्यपदस्यान्ते क्लिन्ने भगपदं तत:॥३२६॥
स्वरूपे सर्वशब्दान्ते भगानीति समुद्धरेत्।
मे ह्यानय स्वरूपान्ते वरदेऽथ समालिखेत्॥३२७॥
रेते पदात् सुरेते च भगक्लिन्ने ततो वदेत्।
क्लिन्नद्रवे तदन्ते च क्लेदय द्रावयेति च॥३२८॥
अमोघे भगविच्चे च क्षुभ क्षोभय सर्वत:।
सत्त्वान् भगेश्वरि ब्रूयाद् वाग्भवं ब्लूंजमित्यपि॥३२९॥
ब्लूं भें भों ब्लूं स्वरूपान्ते ब्लूं हें ब्लूं च वाग्भवम्।
ब्लूँ क्लिन्ने च पदस्यान्ते सर्वाणि च भगानि च॥३३०॥
मे वशमानय शब्दान्ते स्त्रीं ब्लूं च भुवनेश्वरीम्।
भगमाला महाविद्या योषित्क्लेदनकारिणी॥३३१॥

द्वितीयां भगमालिनीमाह—दक्षेत्यादिना। दक्षगुल्फे भगमालां न्यसेदित्यर्थ:। न्यासस्वरूपमाह—वाग्भवमिति। एवञ्च आं ऐँ भगभगे भगिनि भगोदरि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगे भगवशङ्करि भगरूपे

नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेश्य द्रावयामोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐँ ब्लूं जं ब्लूं भें मों ब्लूं हें ब्लूं ऐँ ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं ब्लूं ह्रीं भगमालिनी-नित्याकलायै नमः। इति मन्त्रो निरुक्तप्रमाणानुसारेण पर्यवस्यति। भगाङ्ग इत्यत्र भगान्त इति पाठे भगभगमाले इति स्यात्। एतन्मन्त्रस्य क्रमभेदस्तु ज्ञानार्णवतन्त्रसारादावनुसन्धेयः।

(२) **भगमालिनी**—वाग्भव (ऐं) के बाद 'भग' के बाद 'भगे भगिनि' के बाद क्रमशः 'भगोदरि', 'भगाङ्गे', 'भगमाले', 'भगावहे', 'भगगुह्ये', 'भग' के बाद योनि, फिर 'भगनिपातिनि' के बाद 'सर्वभगे', 'भगवशंकरि', 'भगरूपे', 'नित्यक्लिन्ने' के बाद 'भग' फिर 'स्वरूपे', 'सर्व' के बाद 'भगानि' की योजना करें। इसके बाद 'मे ह्यानय' के बाद 'वरदे' फिर क्रमशः 'रेते', 'सुरेते', 'भगक्लिन्ने', 'क्लिन्नद्रवे' के बाद 'क्लेदय', 'द्रावय' के बाद 'अमोघे', 'भगविच्चे, 'क्षुभक्षोभय', 'सर्वसत्त्वान्', 'भगेश्वरि' के बाद 'ऐं ब्लूं', 'ब्लूं जं', 'ब्लूं भें भों' लिखकर 'ब्लूं हें', 'ब्लूं ऐं', 'ब्लूं क्लिन्ने' के बाद 'सर्वाणि भगानि मे वशमानय' के पश्चात् 'स्त्रीं ब्लूं ह्रीं' लिखें। इन वर्णों की योजना करने से देवी भगमालिनी का मन्त्र निष्पन्न होता है।।३२४-३३१।।

मन्त्र-स्वरूप—'ऐं भगभगे भगिनि भगोदरि भगाङ्के भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगे भगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं ब्लूं जं ब्लू भें भों ब्लूं हें ब्लूं ऐं ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं ब्लूं ह्रीं।'

उक्त मन्त्र के आदि में 'आं' और अन्त में 'भगमालिनीनित्याकलायै नमः' की योजना करने से इनका पूजन और न्यासमन्त्र बनता है। भगमालिनी का न्यास दाहिने गुल्फ में किया जाता है। पूजनतिथियाँ हैं—शुक्लपक्ष में द्वितीया और कृष्णपक्ष में चतुर्दशी।

विमर्श—ज्ञानार्णव में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि देवी भगमालिनी का मन्त्र १४५ अक्षरों का है। उपर्युक्त स्पष्ट मन्त्र में १४५ अक्षर नहीं हैं। मन्त्रों में भी भेद है। ज्ञानार्णव के अनुसार 'स्त्रीं' के बाद केवल 'ब्लें' नहीं; अपितु 'हरब्लें' होना चाहिए।

[नित्यक्लिन्नान्यासः (३)]

तारो मायावाग्भवान्ते नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता।।३३२।।

अथ तृतीयां नित्यक्लिन्नामाह—तार इत्यादिना। एवञ्च इं ॐ ह्रीं ऐँ नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा नित्यक्लिन्नानित्याकलायै नम इति मन्त्रः पर्यवस्यति।

पराबीजं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
अग्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता।।

इति ज्ञानार्णवपञ्चदशपटलवचनानुसारेण तु इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहेति मन्त्रो भवति। तत् प्रकारद्वयमिदमिति ज्ञेयम्।

नित्यक्लिन्ना—तार (ॐ), माया (ह्रीं) और वाग्भव (ऐं) के बाद 'नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' की योजना करने से तृतीया नित्या—नित्यक्लिन्ना का मन्त्र बनता है।।३३२।।

मन्त्रस्वरूप—'ॐ ह्रीं ऐं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा'।

मन्त्र के आदि में 'इं' और अन्त में 'नित्यक्लिन्ना नित्यायै नमः' की योजना करने से पूजन और न्यासमन्त्र बनता है।

तृतीयां तिथिमासाद्य न्यसेत्तनौ समाहितः।।३३३।।

निरुक्तन्यासस्य कालं न्यासञ्चाह—**तृतीयामिति**।

इनकी पूजन तिथियाँ हैं—शुक्लपक्ष की तृतीया और कृष्णपक्ष की त्रयोदशी। न्यासस्थान स्पष्ट नहीं है।

[भेरुण्डा (४)]

प्रणवं चाङ्कुशद्वन्द्वमध्ये भ्रोङ्कारमालिखेत्।।३३४।।
चवर्गमन्त्यहीनन्तु वह्नियुक्तं पृथग् लिखेत्।
चतुर्दशस्वरोपेतं नादबिन्दुसमन्वितम्।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो भेरुण्डायाः प्रकाशितः।।३३५।।

चतुर्थीं भेरुण्डामाह—**प्रणवमित्यादिना**। आदौ प्रणवं लिखेत्। ततश्चाङ्कुशद्वन्द्वस्य क्रों क्रोमिति बीजद्वयस्य मध्ये भ्रोङ्कारं भ्रों इति बीजं लिखेत्। आदौ च चतुर्थस्वरयोगः, अनेन ईं ॐ क्रों भ्रों क्रोमित्यन्तं प्राप्तम्। ततश्च अन्त्यहीनं ञकाररहितं चवर्गं तञ्च वह्नियुक्तं रकारयुतम्, तथा चतुर्दशस्वरेण औकारेणोपेतं तथा नादबिन्दुसमन्वितं नादबिन्दू प्रसिद्धौ ताभ्यामन्वितम्। वह्निजाया स्वाहा। पूर्ववदन्यत्। एवञ्च ईं ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा भेरुण्डानित्याकलायै नमः इति मन्त्रः पर्यवस्यति।

(४) **भेरुण्डा**—प्रणव (ॐ)। अंकुशद्वय अर्थात् क्रों-क्रों। अन्तिम वर्ण 'ञ'कार को छोड़कर 'च'वर्ग के शेष चार अक्षर अर्थात् 'च' 'छ' 'ज' और 'झ' जो वह्नि (र) और नाद-बिन्दुयुक्त चतुर्दश स्वर अर्थात् 'औं' से विभूषित हों—अर्थात् च्रौं छ्रौं ज्रौं और झ्रौं। इस प्रकार ॐ के बाद 'क्रों' फिर 'भ्रों' फिर 'क्रों' तथा इसके बाद उक्त चार वर्ण 'च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं' और सबके अन्त में 'स्वाहा' की योजना करें। इस तरह चतुर्थी नित्या भेरुण्डा का मन्त्र निष्पन्न होता है।

मन्त्रस्वरूप—'ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा'।

उक्त मन्त्र के आदि में चतुर्थ स्वर 'ईं' और अन्त में 'भेरुण्डानित्याकलायै नम:' की योजना करने से पूजन और न्यासमन्त्र बनता है।

चतुर्थ्यां योनिभागे तु विन्यसेत् साधकोत्तमः।।३३६।।

इनकी पूजन तिथियाँ हैं—शुक्ल पक्ष में चतुर्थी और कृष्णपक्ष में द्वादशी। भेरुण्डा का न्यास उपर्युक्त मन्त्र से योनिभाग में किया जाता है।

विमर्श—कामेश्वरी आदि नित्याओं का पूजन शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होता हैं। पूर्णिमा को 'विचित्रा' की पूजा करने के बाद कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को पुन: विचित्रा से प्रारम्भ करके विलोमक्रम से नित्याओं का पूजन किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में शुक्ल पक्ष में नित्याओं की पूजन तिथियाँ तो बताई गई हैं; मगर कृष्णपक्ष में उनकी पूजातिथि का उल्लेख नहीं है। अत: विषय को स्पष्ट करने के लिये भाष्य में कृष्णपक्ष में भी इनकी पूजातिथि का उल्लेख कर दिया गया है।

सोलहवीं नित्या भगवती त्रिपुरसुन्दरी की पूजा 'मूल मन्त्र' के आदि में 'अ:' की योजना करके प्रतिदिन मूल बिन्दु पर ही की जाती है; जबकि कामेश्वरी आदि नित्याओं का पूजन मूल-त्रिकोण की रेखाओं पर प्रतिरेखा पर पाँच-पाँच के क्रम से किया जाता है।

तान्त्रिक पञ्चाङ्ग के अनुसार सूर्योदय के समय की तिथि को अहोरात्र-व्यापिनी तिथि माना जाता है। अत: तिथिवृद्धि होने पर एक ही नित्या की दो दिनों तक और तिथिक्षय की स्थिति में एक ही दिन में दो नित्याओं की पूजा की जाती है। न्यासविधान को भी तदनुसार समझना चाहिए।

[वह्निवासिनी (५)]

भुवनेशीं समुद्धृत्य ङेयुतां वह्निवासिनीम् ।
हृदन्तां विन्यसेन्नाभौ पञ्चम्यां देशिकाग्रणीः।।३३७।।

पञ्चमीं वह्निवासिनीमाह—भुवनेशीमित्यादिना। भुवनेशी ह्रीं। एवञ्च उं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः वह्निवासिनीनित्याकलायै नमः इति नाभौ न्यसेदिति फलितम्।

वह्निवासिनी—भुवनेशी (ह्रीं) के बाद चतुर्थ्यन्त वह्निवासिनी (वह्निवासिन्यै) के बाद 'नम:' की योजना करें। मन्त्र-स्वरूप होगा—ह्रीं वह्निवासिन्यै नम:।

उक्त मन्त्र के आदि में 'उं' और अन्त में 'वह्निवासिनीनित्याकलायै नम:' की योजना करने से इनका पूजन-न्यास मन्त्र बनता है। वह्निवासिनी का न्यास नाभि में करें। पूजनतिथियाँ हैं—शुक्लपक्ष की पञ्चमी और कृष्णपक्ष की एकादशी।

[महानित्येश्वरी (६)]

प्रणवं शम्भुवनितां फरेमात्मकमक्षरम्।
सविसर्गः शशी पश्चान्नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
अग्निजाया महानित्येश्वरीं षष्ठ्यां कुचे न्यसेत्।।३३८।।

षष्ठीं महानित्येश्वरीमाह—प्रणवमित्यादिना। अत्र प्रथमं प्रणवः, ततः शम्भुवनिता ह्रीं, ततः फरेमात्मकं फ्रें इति बीजम्, ततश्च विसर्गयुक्तः शशी सकारः, ततो नित्यक्लिन्न इत्यादि। सर्वादौ षष्ठस्वरयोगः। एवञ्च ऊं ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा महानित्येश्वरी-नित्याकलायै नमः इति कुचे न्यसेदिति फलितम्। अत्र महावज्रेश्वरीति तन्त्रसारकाराः। ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटले तु—

महाविद्येश्वरी नित्या प्रसङ्गेन मयेरिता।

इत्यनेन महाविद्येश्वरीति षष्ठ्या नित्यायाः संज्ञाभिहितेति दृश्यते।

महानित्येश्वरी—प्रणव (ॐ), शम्भुवनिता (ह्रीं) 'फ्रें'। इसके बाद सविसर्ग शशि अर्थात् 'सः'। इसके बाद 'नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' की योजना करने से महानित्येश्वरी का मन्त्र निष्पन्न होता है। यथा—'ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा'।

इस मन्त्र के आदि में 'ऊं' और अन्त में 'महानित्येश्वरी नित्याकलायै नमः' की योजना करने से इनका पूजन/न्यास मन्त्र बनता है। इनकी पूजनतिथि शुक्लपक्ष में षष्ठी और कृष्णपक्ष में दशमी है। न्यास दाहिने स्तन में करें।

[शिवदूती (७)]

मायाबीजं समुच्चार्य शिवदूत्यै नमो वदेत्।
सप्तम्यां विन्यसेदेनां शिवदूतीं स्वयं हृदि।।३३९।।

अथ सप्तमीं शिवदूतीं नित्यामाह—**मायाबीजमित्यादिना।** अत्र प्रथमं सप्तमस्वरस्ततो मायाबीजं ह्रीं। एवञ्च ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः शिवदूतीनित्याकलायै नमः इति हृदि न्यसेदिति फलितम्।

शिवदूती—'ह्रीं शिवदूत्यै नमः'। इस मन्त्र के आदि में 'ऋं' और अन्त में 'शिवदूती नित्याकलायै नमः' की योजना करने से इनका पूजन/न्यासमन्त्र बनता है। पूजनतिथियाँ शुक्लपक्ष में सप्तमी और कृष्णपक्ष में नवमी हैं।

[त्वरिता (८)]

तारं पराञ्च कवचं खे च ब्ले (छे?) क्षः पदं लिखेत्।
स्त्रीं हुमात्मकमालिख्य क्षेपराबीजमस्त्रकम्।
अष्टम्यां विन्यसेत् कण्ठे त्वरितां द्वादशाक्षरीम्।।३४०।।

अथाष्टमीं त्वरितामाह—**तारमित्यादिना।** अत्र प्रथममष्टमस्वरस्ततस्तारमित्यादि। एवञ्च—ॠं ॐ ह्रीं हुं खे च ब्ले (छे?) क्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट् त्वरितानित्याकलायै नमः इत्यष्टम्यां कण्ठदेशे न्यसेदिति पर्यवस्यति। परन्तु ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटले—

ॐकारबीजमुच्चार्य परां कवचमालिखेत्।
खे च छे क्षः समालिख्य स्त्रीबीजञ्च समालिखेत्।
हुंकारं क्षे परा चास्त्रं विद्येयं द्वादशाक्षरी।।

इति वचने खे च छे क्ष इत्युपादानात् तन्त्रसारेऽपि तथैव दर्शनाच्च मूलोक्तः खे च ब्ले क्ष इति पाठश्चिन्त्यः।

त्वरिता—तार (ॐ), परा (ह्रीं), कवच (हुम्), खेच ब्लें (छे?), 'क्षः स्त्रीं हुम् क्षे ह्रीं' की योजना करने से त्वरिता का द्वादशाक्षरी मन्त्र बनता है।।३४०।।

मन्त्रस्वरूप—ॐ ह्रीं हुं खे च ब्लें क्षः स्त्रीं हुम् क्षे ह्रीं फट्।

मन्त्र के आदि में 'ॠं' तथा अन्त में 'त्वरितानित्यापादुकायै नमः' की योजना करके पूजन और न्यास करें। पूजनतिथियाँ—दोनों पक्षों की अष्टमी। न्यासस्थान—कण्ठ।

[कुलसुन्दरी (९)]

सर्वसिंहासनमयी बालेव कुलसुन्दरी।
नवम्यां शुक्लपक्षे तु गले तां परितो न्यसेत्।।३४१।।

अथ नवमीं कुलसुन्दरीमाह—**सर्वेत्यादिना**। एवञ्च ऌं ऐँ क्लीं सौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै नम इति शुक्लनवम्यां गले न्यसेदिति फलितम्।

(९) **कुलसुन्दरी**—सभी सिंहासनों पर प्रतिष्ठिता देवी बाला त्रिपुरा ही नवमी नित्या कुलसुन्दरी हैं; अतः कुलसुन्दरी का मन्त्र है—ऐं क्लीं सौः।।३४।।

'ऐं क्लीं सौः' के आगे नवम स्वर 'ऌं' एवं अन्त में 'कुलसुन्दरीनित्याकलायै नमः' की योजना करने से उनका पूजन एवं न्यासमन्त्र निष्पन्न होता है। पूजनतिथियाँ हैं—शुक्लपक्ष की नवमी और कृष्णपक्ष की सप्तमी। न्यासस्थान—गला।

[महानित्या (१०)]

पञ्चबाणं महानित्यां दशम्यामधरे न्यसेत्।।३४२।।

अथ दशमीं महानित्यामाह—**पञ्चबाणमित्यादिना**। अत्रापि प्रथमं यथाश्रुतं ॡमिति, ततः पञ्चबाणबीजपञ्चकम्, ततो महानित्याकलायै नम इति।

(१०) **महानित्या**—दशमी नित्या हैं—महानित्या। पञ्चबाण मन्त्र इनका मन्त्र है।।३४२।।

[पञ्चबाणमन्त्रः]

थान्तद्वयं रेफयुक्तं पूर्वदीर्घद्वयान्वितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं कामं ब-ल-ऊमात्मकम्।
सविसर्गः शशी पश्चात् पञ्चबाणा उदाहृताः।।३४३।।

अथ कोऽयं पञ्चबाणमन्त्रो नामेत्याकाङ्क्षायामाह—**थान्तद्वयमिति**। दकारद्वयमित्यर्थः, तच्च रेफयुक्तं तथा पूर्वदीर्घद्वयान्वितं द्वितीयचतुर्थस्वरयुक्तमित्यर्थः, तथा नादबिन्दुकलायुक्तम्, एतेन द्रां द्रीमिति प्राप्तम्। काममिति क्लीमिति कामबीजम्। तथा

ब–ल–ऊमात्मकं ब्लूमिति बीजम्। ततश्च सविसर्गः शशी चन्द्रबीजं सकारः। एवञ्च द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति पञ्चबाणमन्त्रः। ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटलेऽपि—

थान्तद्वयं समालिख्य वह्निसंस्थं क्रमेण हि।
मुखवृत्तेन नेत्रेण वामेन परिमण्डितम्॥
बाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम्।
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यं नादरूपं वरानने॥
फान्तं क्रमसमायुक्तं वामकर्णविभूषितम्।
बिन्दुनादसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमाः प्रिये॥
पञ्चबाणा महेशानि नामानि शृणु तान्यपि।
क्षोभणद्रावणौ देवि तथाकर्षणसंज्ञकः।
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि॥ इति।

एवञ्च लृं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः महानित्यानित्याकलायै नम इति फलितम्

'थ'कार के बाद वाला वर्ण है—'द'कार। 'द'कार के साथ 'र'कार लगाया। रूप बना—'द्र'। एक 'द्र' के साथ नाद-बिन्दुयुक्त 'आ'कार और दूसरी बार 'द्र' के साथ नाद-बिन्दुयुक्त 'ई'कार की योजना की। दो रूप बने—'द्रां' और 'द्रीं'। ये दो प्रथम 'बीज' हैं।

काम अर्थात् 'क्लीं' तीसरा अक्षर है। 'ब्लूं' चौथा अक्षर है। विसर्गयुक्त शशि अर्थात् 'सः' पाँचवाँ वर्ण है। इस तरह मन्त्र निष्पन्न हुआ—'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः। यह पञ्च बाण मन्त्र है।

'द्रां द्रां क्लीं ब्लूं सः' के पूर्व दशम स्वर 'लृं' और अन्त में 'महानित्या नित्याकलायै नमः' की योजना करने से पूजन एवं न्यासमन्त्र बनता है। पूजनतिथियाँ हैं—शुक्लपक्ष की दशमी तथा कृष्णपक्ष की षष्ठी। न्यास स्थान—अधर (निचला ओंठ)॥३४३॥

[नीलपताकिनी (११)]

वर्त्तुलं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम्।
श्रुङ्मायामङ्कुशं नित्यमदद्रवे हुमङ्कुशम्।
एकादश्यां न्यसेद् दण्डे विद्यां नीलपताकिनीम्॥३४४॥

अथैकादशीं नित्यां नीलपताकिनीमाह—वर्त्तुलमित्यादिना। अथ प्रथमं प्रागुक्त-रीत्यैकादशस्वरयोगः। वर्त्तुलं प्रणवम्। भुवनेशानीं ह्रीमिति। ततः फ्रेंमिति। अत्र फ्रेमिति वक्तव्ये छन्दोऽनुरोधात् फरेमित्युक्तम्। ज्ञानार्णवेऽप्येवमेव। श्रुङिति। ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटले—

प्रथमं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम्।
ब्लूमात्मकं द्वितीयन्तु भुवनेश्यङ्कुशं ततः।

इत्यादि–नीलपताकामन्त्रोद्धारप्रतिपादकवचने फ्रें इत्यनन्तरं ब्लूमात्मकं द्वितीयन्तु इत्यनेन ब्लूं आं इति बीजद्वयं लभ्यते। तन्त्रसारकृताऽपि तथैव मन्त्रोद्धारक्रमो दर्शितः। तन्मूले श्रुङ्मायेति पाठे तादृशमन्त्रोद्धारासम्भवाद् ब्ल्वां मायेति पाठो लेखक-प्रमादविकृतः श्रुङ्मायेत्याकारमापन्न इति प्रतिभाति। ब्ल्वां मायेति पाठे तु ब्लूं आं इति बीजद्वयस्य सुघटत्वेन ज्ञानार्णवतन्त्रसारादिभिर्विरोधः सर्वथा परिह्रियेत। एवञ्च ऐं ॐ ह्रीं फ्रें ब्लूं आं ह्रीं क्रों नित्यमदद्रवे हुं क्रों नीलपताकिनीनित्याकलायै नमः इति पञ्चदशाक्षरो मन्त्रः पर्यवस्यति। तदुक्तं ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटले—

नित्यशब्दं समुच्चार्य सम्बुद्ध्या च मदद्रवाम्।
कवचं चाङ्कुशं पञ्चदशैर्नीलपताकिनीम्।। इति।

(११) **नीलपताकिनी**—वर्तुल (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं) 'फ्रें' के बाद 'ब्लूं' के बाद अंकुश (आं), माया (ह्रीं) क्रों 'नित्यमदद्रवे हुं-क्रों'—यह पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र है।।३४४।।

आदि में 'ऐं' और अन्त में 'नीलपताकिनी नित्यकलायै नमः' की योजना करके पूजन-न्यास करें। पूजनतिथियाँ—शुक्लपक्ष में एकादशी और कृष्णपक्ष में पञ्चमी। न्यासस्थान—गण्डस्थल।

[विजया (१२)]

कालाद्यं कालसंयुक्तं शेषदण्डे सुसंयुतम्।
विजयां विन्यसेदेनां द्वादश्याञ्च श्रुतौ बुधः।।३४५।।

अथ द्वादशीं विजयामाह—**कालाद्यमित्यादिना**। अत्र प्रथमं द्वादशस्वरयोगः। ततः कालाद्यो भकारः, कालो मकारस्तत्संयुक्तम्, शेषो रकारः, दण्ड औकारः। एवञ्च ऐं भ्मरौं विजयानित्याकलायै नम इति प्रयोगः। तदुक्तं तन्त्रसारधृतज्ञानार्णवे—

बान्तं कालसमायुक्तं रेफं शक्रस्वरान्वितम्।
बिन्दुनादाङ्कितं देवि विद्येयं भवेत्।। इति।

(१२) **विजया**—कालाद्य (भ), काल (म), शेष (र) तथा दण्ड (औ) जो नाद-बिन्दु से युक्त हो। अतएव 'भमरौं'। यह विजया का मन्त्र है। आदि में 'ऐं' तथा अन्त में 'विजयानित्याकलायै नमः' की योजना करके पूजन और न्यास करें।

पूजनतिथियाँ—शुक्लपक्ष की द्वादशी और कृष्णपक्ष की चतुर्थी। न्यास-स्थान—कान।।३४५।।

[सर्वमङ्गला (१३)]

चन्द्रं वारुणसंयुक्तं तारबीजञ्च सर्वतः।
मङ्गलायै नमः प्रोच्य नेत्रे तु सर्वमङ्गलाम्।।३४६।।

त्रयोदशीं नित्यां सर्वमङ्गलामाह—**चन्द्रमित्यादिना**। अत्र प्रथमं त्रयोदश-स्वरयोगः। ततश्चन्द्रः सकारस्तम्, वारुणसंयुक्तं वकारयुक्तं तारबीजं प्रणवञ्च प्रोच्येति

सम्बन्धः। ततः सर्वतः सर्वपदान्ते मङ्गलायै नम इति। एवञ्च ओं स्वों सर्वमङ्गलायै नम इति नेत्रे न्यसेत्। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे पञ्चदशपटले—

चन्द्रवारुणसंयुक्तं तारबीजं समालिखेत्।
चतुर्थ्यां तु ततो देवि विलिखेत् सर्वमङ्गलाम्।
हृदन्तोऽयं मनुर्देवि नित्येयं सर्वमङ्गला।। इति।

(१३) **सर्वमंगला**—चन्द्र (स), वारुण (व), इन दोनों वर्णों के साथ तार बीज (ओं)। इस तरह रूप बना 'स्वों'। इसके आदि में तार अर्थात् 'ॐ'। इस तरह रूप निष्पन्न हुआ—'ॐ स्वों'। 'सर्वमंगलायै नमः'। मन्त्रस्वरूप—ॐ स्वों सर्वमंगलायै नमः'। इसके अन्त में 'नित्याकलायै नमः' की योजना करने से पूजा/ न्यासमन्त्र बनता है। न्यासस्थान—हृदय। तिथियाँ—शुक्लपक्ष की त्रयोदशी और कृष्णपक्ष की तृतीया।

[ज्वालामालिनी (१४)]

तारं हृद्भगवत्यन्ते ज्वालामालिनि देवि च।
देवि सर्वपदान्ते च भूतसंहारकारिके।।३४७।।
जातवेदसि शब्दान्ते ज्वलन्तिपदयुग्मकम्।
ज्वलेति प्रज्वलद्वन्द्वं हुंकारत्रितयं लिखेत्।।३४८।।
वह्निबीजत्रयं हुञ्च शरस्वाहान्वितो मनुः।
कपाले दक्षिणे भागे ज्वालामालां प्रविन्यसेत्।।३४९।।

अथ चतुर्दशीं ज्वालामालिनीमाह—तारमित्यादिना। अत्र प्रथमं चतुर्दशस्वरयोगः। ततस्तारः प्रणवः, हृत् नमः, ततो भगवति, ततो ज्वालामालिनि देवि, ततोऽपि देवीति। स्पष्टमन्यत्। एवञ्च औं ॐ नमो भगवति, ततो ज्वालामालिनि देवि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हुं हुं हुं रं रं रं हुं फट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्याकलायै नमः इति कपालस्य दक्षिणांशे न्यसेदिति फलितम्।

(१४) **ज्वालामालिनी**—तार (ॐ), हृद् (नमः) के बाद ज्वालामालिनि देवि देवि सर्वभूतसंहारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति ज्वल प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल हुं हुं हुं रं रं रं हुं फट्'—चतुर्दशी नित्या ज्वालामालिनी का मन्त्र है।

उक्त मन्त्र के आदि में 'औं' और अन्त में 'नित्याकलायै नमः' की योजना करके पूजन और न्यास करें। पूजनतिथि—शुक्लपक्ष की चतुर्दशी और कृष्णपक्ष की द्वितीया।।३४७-३४९।।

[विचित्रा (१५)]

कवर्गान्तं स्वरान्तञ्च शक्रस्वरेन्दुमण्डितम्।
विचित्रा नाम विद्येयं विन्यसेद् ब्रह्मरन्ध्रके।।३५०।।

अथ पञ्चदशीं नित्यां विचित्रामाह—**कवर्गान्तमित्यादिना**। अत्र प्रथमं पञ्चदशस्वरयोगः, ततः कवर्गान्तश्चकारः, स्वरान्तः ककारः, शक्रस्वर औकारः। एवञ्च अं च्कौं विचित्रानित्याकलायै नम इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेदेति फलितम्।

(१५) **विचित्रा**—'क'वर्ग के बाद का वर्ण 'च्' तथा स्वरों के अन्त का वर्ण 'क्' जो चौदहवें स्वर 'औ' तथा बिन्दु-नाद से युक्त हो अर्थात् 'कौं'। इस तरह मन्त्र बना—'च्कौं'।

उक्त मन्त्र के आदि में 'अं' तथा अन्त में 'नित्याकलायै नमः' की योजना करने से पूजन/न्यासमन्त्र बना—'अं च्कौं विचित्रानित्याकलायै नमः।' पूजनतिथियाँ—पूर्णिमा और कृष्णपक्ष प्रतिपदा। न्यासस्थान—ब्रह्मरन्ध्र।।३५०।।

[निरुक्तन्यासे विशेषः]

शुक्लपक्षे न्यसेद्दक्षे सव्ये कृष्णं क्रमाद् बुधः।।३५१।।

पक्षभेदेन निरुक्तन्यासे विशेषमाह—**शुक्लेति**।

उपर्युक्त मन्त्रों से नित्याओं का न्यास शुक्लपक्ष में शरीर या शरीर के अवयव के दक्षिण भाग में और कृष्णपक्ष में वामभाग में करना चाहिए।।३५१।।

[श्रीविद्या (१६)]

श्रीविद्यां विन्यसेन्मूर्ध्नि त्रिपञ्चतिथिगामिनीम्।।३५२।।

अथ षोडशीं नित्यां श्रीविद्यामाह—**श्रीत्यादिना**। त्रिपञ्चतिथिगामिनीमित्यनेन प्रतिपदादिपञ्चदश्यन्तासु सर्वास्वेव तिथिष्वेतन्न्यासस्य कर्त्तव्यत्वमुक्तम्। अत्र प्रथमं षोडशस्वरयोगः। ततो मूलं ततश्च श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याकलायै नम इति मूर्ध्नि न्यसेत्। इति षोडशनित्यान्यासः।

श्रीविद्या का न्यास 'मूलमन्त्र' के आदि में सोलहवें स्वर 'अः' तथा अन्त में 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' की योजना करके प्रतिदिन (प्रत्येक तिथि) मूर्धा में करना चाहिए।।३५२।।

[स्थितिन्यासः]

स्थितिन्यासं ततः कुर्याच् श्रीविद्याषोडशाक्षरैः।
पञ्चाङ्गुलीषु करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि।।३५३।।
नाभ्यादिपादपर्यन्तं गलादानाभि चापरम्।
ब्रह्मरन्ध्रादिकण्ठान्तं पादद्वये ततः परम्।
अङ्गुलीषु ततः पश्चादेकैकाक्षरभेदतः।।३५४।।

अथ स्थितिन्यासमाह—**स्थितिन्यासमित्यादिना**। श्रीविद्याषोडशाक्षरैः कराङ्गुल्यादिषोडशस्थानेष्वेकैकाक्षरभेदतः स्थितिन्यासं कुर्यादिति सम्बन्धः। पादद्वये, ततः परम् अङ्गुलीष्विति पादाङ्गुलिष्वित्यर्थः। एवञ्च कराङ्गुलिषु पञ्च ब्रह्मरन्ध्रादिषु त्रय इत्यष्टौ

नाभ्यादिपादपर्यन्तमेक: गलान्नाभिपर्यन्तमेक: ब्रह्मरन्ध्रादिकण्ठान्तमेक इत्येकादश। पादाङ्गुलिषु पञ्चेति षोडशाक्षरन्यासक्रम:।

स्थितिन्यास—नित्याओं का न्यास करने के बाद श्रीविद्या के सोलह अक्षरों से स्थितिन्यास करें। श्रीविद्या के पाँच अक्षरों का एक-एक कर पाँचों अंगुलियों में, तत्पश्चात् एक-एक वर्ण का क्रम से ब्रह्मरन्ध्र, मुख और हृदय में, एक वर्ण का नाभि से पैर-पर्यन्त, एक वर्ण का गला से नाभि-पर्यन्त, एक वर्ण का ब्रह्मरन्ध्र से कण्ठ-पर्यन्त तथा शेष पाँच वर्णों का पैरों की पाँच अंगुलियों में एक-एक कर न्यास करें।।३५३-३५४।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोक में षोडशाक्षरी विद्या के जिन १६ वर्णों (कूटों) का क्रम से न्यास किये जाने का निर्देश दिया गया है, उनका क्रम इस प्रकार है। (१) श्रीं, (२) ह्रीं, (३) क्लीं, (४) ऐं, (५) सौ:, (६) ॐ, (७) ह्रीं, (८) श्रीं, (९) कएईलह्रीं, (१०) हसकहलह्रीं, (११) सकलह्रीं, (१२) सौ:, (१३) ऐं, (१४) क्लीं, (१५) ह्रीं और (१६) श्रीं।

इस प्रकार स्थितिन्यास का प्रयोग-क्रम है—

(१) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — अंगुष्ठयो:
(२) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — तर्जन्यो:
(३) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—क्लीं नम: — मध्यमयो:
(४) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ऐं नम: — अनामिकायो:
(५) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सौ: नम: — कनिष्ठिकयो:
(६) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ॐ नम: — ब्रह्मरन्ध्रे
(७) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — मुखे
(८) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — हृदये
(९) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—कएईलह्रीं नम: — नाभित: पादपर्यन्तम्
(१०) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—हसकहलह्रीं नम: — गलाद् नाभिपर्यन्तम्
(११) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सकलह्रीं नम: — ब्रह्मरन्ध्रात् कण्ठपर्यन्तम्
(१२) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सौ: नम: — पादयो: अंगुष्ठयो:
(१३) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—'ऐं' नम: — पादयो: तर्जन्यो:
(१४) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—क्लीं नम: — पादयो: मध्यमयो:
(१५) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — पादयो: अनामिकयो:
(१६) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — पादयो: कनिष्ठयो:

[सृष्टिन्यास:]

श्रीविद्याषोडशार्णैस्तु सृष्टिन्यासं समाचरेत्।
ब्रह्मरन्ध्रेऽलके नेत्रे श्रुतिघ्राणांसकेषु च।।३५५।।
दन्तोरोष्ठयोश्चैव रसनागलकूपके।
पृष्ठसर्वाङ्गहृदयस्तनकुक्षिषु लिङ्गके।।३५६।।

अथ सृष्टिन्यासमाह—श्रीविद्येत्यादिना। अत्रापि एकैकाक्षरभेदत इति सम्बन्धते। तथा च ब्रह्मरन्ध्रादिषु षोडशस्थानेषु प्रागुक्तषोडशीविद्याया एकैकाक्षरं न्यसेदित्यर्थ:।

सृष्टिन्यास—स्थितिन्यास के बाद श्रीविद्या के १६ वर्णों से उपर्युक्त वर्णक्रम से सृष्टिन्यास करें। यथा—(१) ब्रह्मरन्ध्र, (२) ललाट, (३) दोनों नेत्र, (४) दोनों कान, (५) नाक, (६) दोनों कन्धे, (७) दोनों दन्तपंक्ति, (८) दोनों ओष्ठ, (९) जिह्वा, (१०) चिबुक, (११) पृष्ठ (पीठ), (१२) सर्वाङ्ग, (१३) हृदय, (१४) स्तन, (१५) दोनों कुक्षि और (१६) लिङ्ग।।३५५-३५६।।

इस न्यास का प्रयोग-क्रम है—

(१) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — ब्रह्मरन्ध्रे
(२) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — ललाटे
(३) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—क्लीं नम: — नेत्रयो:
(४) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ऐं नम: — कर्णयो:
(५) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सौ: नम: — नासिकायाम्
(६) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ॐ नम: — अंसयो:
(७) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — दन्तपंक्त्यो:
(८) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — ओष्ठयो:
(९) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—कएईलह्रीं नम: — जिह्वायाम्
(१०) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—हसकहलह्रीं नम: — चिबुके
(११) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सकलह्रीं नम: — पृष्ठे
(१२) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—सौ: नम: — सर्वाङ्गे
(१३) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ऐं नम: — हृदये
(१४) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—क्लीं नम: — स्तनयो:
(१५) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—ह्रीं नम: — कुक्षयो:
(१६) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं नम: — लिङ्गे

[संहारन्यास:]

श्रीविद्याषोडशार्णैस्तु संहारन्यासमाचरेत्।।३५७।।

पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोः कट्योरन्धुनि पृष्ठके।
नाभौ पार्श्वद्वये चैव स्तनयोरंसयोस्तथा।।३५८।।
कर्णयो(?)र्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने बिन्दु विन्यसेत्।
ततः कर्णप्रदेशे च करे वै तदनुक्रमात्।।३५९।।

अथ संहारन्यासमाह—**श्रीविद्येत्यादिना।** तथा च पादादिकरपृष्ठान्तेषु षोडशस्थानेषु प्रागुक्तश्रीविद्याषोडशवर्णान् न्यसेदित्यर्थः। अन्धुनि पायुस्थाने। अत्र कर्णयोरति पाठः प्रामादिक इति प्रतिभाति।

करयोर्जङ्घयोर्जान्वोः कट्यामङ्गुलि(?)पृष्टके।
नाभौ पार्श्वद्वये चापि स्तनयोरंसयोस्तथा।
करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने भ्रुवि पार्वति।
ततः कर्णप्रदेशे च करवेष्टनयोः क्रमात्।

इति तन्त्रसारधृतवचने करयोरित्यभिधानाद् वक्ष्यमाणकर्णप्रदेशपदेन पौनरुक्त्य-सम्भवाच्चेति ध्येयम्।

संहारन्यास—श्रीविद्या के उपर्युक्त १६ वर्णों का उपर्युक्त क्रम से ही संहार-क्रम से न्यास करें। यह न्यास पैरों से प्रारम्भ करके करपृष्ठों तक किया जाता है। न्यास का क्रम है—(१) दोनों पैर, (२) दोनों जाँघें, (३) दोनों जानु, (४) कमर के दोनों पार्श्व, (५) अन्धु, (६) पीठ, (७) नाभि, (८) दोनों पार्श्व (बगल), (९) दोनों स्तन, (१०) दोनों कन्धे, (११) दोनों कान, (१२) मुख, (१३) ब्रह्मरन्ध्र, (१४) मुख, (१५) कर्णप्रदेश और (१६) कर।

विमर्श—'कर्णयो:' और 'कर्णप्रदेशे'—इनसे शरीर के एक ही भाग की प्राप्ति होती है। अत: ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार ने 'कर्णयो:' को प्रामादिक माना है।

श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (१४/४४) में दोनों कन्धों के बाद 'ब्रह्मरन्ध्र, मुख, नेत्र, कण्ठप्रदेश और कर्णविष्टन' का क्रम बताया गया है—

कर्णयो: ब्रह्मरन्ध्रे च वदनेऽक्षिणि पार्वति।
ततः कण्ठप्रदेशे तु करवेष्टनयो: क्रमात्।।

इसी तरह तन्त्रसार में 'कट्योरन्धुनि' के स्थान पर 'कट्यामुंगलि (कटि और अंगुलि) पाठ है।

'कर्णयोर्ब्रह्मरन्धक्रे' के स्थान पर 'श्रीविद्यार्णव' में 'करयो: ब्रह्मरन्ध्रके' पाठ है।

मन्त्रमहोदधि में 'करवेष्टनयो: (कर के पृष्ठभाग) की जगह 'कर्णवेष्टे' पाठ है। कर्णवेष्ट का अर्थ है—कान की लौ।

अत: यह न्यास अपनी-अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार करना चाहिए।

[निरुक्तन्यासत्रयस्याधिकारिभेद:]

उत्पत्तिसंज्ञको न्यासः प्रथमाश्रमवासिनाम्।
गृहस्थानां स्थितिन्यासः संहाराख्यो यतेर्भवेत्।।३६०।।

उपर्युक्त श्लोकों में जो तीन न्यास बताये गये हैं, उनमें से उत्पत्ति अर्थात् सृष्टिन्यास ब्रह्मचारियों को, द्वितीय स्थितिसंज्ञक न्यास गृहस्थों को और संहारसंज्ञक न्यास यतियों और संन्यासियों को करना चाहिए।।३६०।।

[चक्रेश्वरीन्यास:]

अथ चक्रेश्वरीन्यासं कुर्यात् साधकसत्तमः।

चक्रेश्वरी न्यास—इसके बाद बुद्धिमान् साधक चक्रेश्वरी न्यास करे।

विमर्श—'श्रीचक्र' में कुल ९ चक्र हैं और प्रत्येक चक्र की एक चक्रेश्वरी है। इन सभी चक्रेश्वरियों का शरीर के अलग-अलग अंग में न्यास किया जाता है। अगले श्लोक में इन अंगों का उल्लेख किया गया है।

[तत्र स्थाननिरूपणम्]

शिरोललाटभ्रूमध्य-कण्ठहृन्नाभिगोचरे ।।३६१।।
लिङ्गमूले तथाधारे सर्वाङ्गे च प्रविन्यसेत्।
करशुद्धिकरीं विद्यामुच्चार्य त्रिपुरां ततः।।३६२।।

ततश्चक्रेश्वरीन्यासमाह—**अथेत्यादिना**। तत्र प्रथमं न्यासयोग्यानि स्थानानि निरूपयति—**शिर इत्यादिना**।

तत्र न्यासस्य क्रममभिधत्ते—**करेत्यादिना**। करशुद्धिकरी विद्या तु अं आं सौरिति बीजत्रयमिति पूर्वमेव (१५।७० श्लो०) प्रदर्शितम् । आदौ निरुक्तां करशुद्धिकरीं विद्यामुच्चार्य त्रिपुरां न्यसेदिति सम्बन्धः। एवञ्च अं आं सौस्त्रिपुरायै नम इति शिरसि न्यसेदिति पर्यवस्यति।

(१) शिर, (२) ललाट, (३) भ्रूमध्य, (४) कण्ठ, (५) हृदय, (६) नाभि, (७) लिंगमूल, (८) मूलाधार और (९) सर्वाङ्ग में यह न्यास किया जाय। कर शुद्धि विद्या अर्थात् 'अं आं सौ:' के साथ त्रिपुरा का शिर में न्यास करें।।३६१-३६२।।

'अं आं सौ:' त्रिपुरायै नम:—शिरसि।

[न्यासपरिपाटी]

बालाबीजत्रयेणैव त्रिपुरेशीं न्यसेद् बुधः।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।।३६३।।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण त्रिपुरावासिनीं न्यसेत्।
त्रिपुराश्रियञ्च मन्त्रज्ञस्त्रिपुरामालिनी ततः।।३६४।।

तथा च त्रिपुरासिद्धां ततश्च त्रिपुरात्मिकाम् ।
बालामन्त्रं समुच्चार्य ततस्त्रिपुरभैरवीम्।।३६५।।

द्वितीयं चक्रेश्वरीन्यासमाह—**बालेत्यादिना**। एवञ्च ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरेश्वर्यै नम इति ललाटे न्यसेदिति पर्यवस्यति। तृतीयं चक्रेश्वरीन्यासमाह—**मूलमन्त्रेणेति**। तथा च मूलमुच्चार्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नम इति भ्रूमध्ये न्यसेदिति पर्यवसितम्।

अथ त्रिपुरावासिन्यादित्रिपुरात्मिकान्तचक्रेश्वरीपञ्चकन्यासमाह—**पूर्वोक्तेनेत्यादिना त्रिपुरात्मिकामित्यन्तेन**। पूर्वोक्तेन मूलेन, तस्यैवाव्यवहितपूर्वमभिधानात्। विशेषानभिधानात् त्रिपुराश्रीप्रभृतीनां त्रिपुरात्मिकान्तानां पुरतोऽपि मूलयोगो बोध्यः। एवञ्च मूलमुच्चार्य त्रिपुरावासिन्यै नम इति कण्ठे, त्रिपुराश्रियै नम इति हृदि, त्रिपुरामालिन्यै नम इति नाभौ, त्रिपुरासिद्धायै नम इति लिङ्गमूले त्रिपुरात्मिकायै नम इति मूलाधारे न्यसेदिति पर्यवसितम्।

अथ नवमचक्रेश्वरीन्यासमाह—**बालेत्यादिना**। आदौ ऐँ क्लीं सौरिति बालामन्त्रं समुच्चार्य ततस्त्रिपुरभैरवीमन्त्रमुच्चारयेदित्यर्थः।

'ऐं क्लीं सौ:' के साथ त्रिपुरेशी का ललाट में न्यास करें। मूलमन्त्र-सहित त्रिपुरसुन्दरी का भ्रूमध्य में न्यास करें। मूल मन्त्र के साथ त्रिपुरवासिनी का कण्ठ में, मूल मन्त्र के साथ 'त्रिपुराश्री' का हृदय में, मूल मन्त्र के साथ त्रिपुरामालिनी का नाभि में, मूल मन्त्र के साथ त्रिपुरासिद्धा का लिंगमूल में, मूलमन्त्र के साथ त्रिपुरात्मिका का मूलाधार में और बालाबीज एवं त्रिपुरभैरवी मन्त्र-सहित त्रिपुरभैरवी का सर्वाङ्ग में न्यास करें।।३६३-३६५।।

शिवसोमवह्निबीजं वाग्भवेन समन्वितम् ।
वियदिन्दुकामशक्रवह्निमायेति बिन्दुमत्।।३६६।।
आकाशचन्द्रवह्निश्च शक्रस्वरविभूषितम्।
विसर्गेन्दुसमायुक्तं विद्या त्रिपुरभैरवी।।३६७।।

त्रिपुरभैरवीमन्त्रं त्रिकूटात्मकमाह—**शिवेत्यादिना**। शिवो हकारः, सोमः सकारः, वह्निबीजं रकारः, वाग्भवेन ऐकारेण। एवञ्च हसरैं इति वाग्भवकूटं प्राप्तम् । **वियदिति**। वियत् हकारः, इन्दुः सकारः, कामः ककारः, शक्रो लकारः, वह्नी रकारः, बिन्दुरनुस्वारः। अनेन ह स क ल रीमिति कामराजकूटं प्राप्तम् । **आकाशेति**। आकाशो हकारः, चन्द्रः सकारः, वह्नी रकारः, शक्रस्वर औकारः, विसर्गो बिन्दुश्च प्रसिद्धौ। एवञ्च हसरैं ह स क ल रीं ह स रौः इति त्रिपुरभैरवीमन्त्रः। व्यक्तमाह शारदायां द्वादशपटले—

> वियद् भृगुहुताशस्थो भौतिको बिन्दुशेखरः।
> वियत्तदादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिबिन्दुमत्।
> आकाशभृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दुखण्डवान्।। इति।

एवञ्च ऐँ क्लीं सौः हसरैं ह स क ल रीं ह स रौः त्रिपुरभैरव्यै नम इति सर्वाङ्गे न्यसेदिति फलितम्।

इन दो श्लोकों में त्रिपुरभैरवी का मन्त्रोद्धार बताया गया है। शिव (ह), सोम (स), वह्निबीज (र) जो वाग्भव (ऐं) से विभूषित हो अर्थात् 'हसरैं' इसका प्रथम कूट है।

वियत् (ह), इन्दु (स), काम (क), शक्र (ल), वह्नि (र), माया (ई) तथा बिन्दु (अनुस्वार) इसके संयोजन से मन्त्र का दूसरा कूट बना—हसकलरीं।

आकाश (ह), चन्द्र (स), वह्नि (र) जो चौदहवें स्वर (औ) तथा बिन्दु और विसर्ग से विभूषित है। इस तरह तीसरा कूट निष्पन्न हुआ—हसरौं। मन्त्रस्वरूप है—'हसरैं हसकलरीं हसरौं'। यह त्रिपुरभैरवी का मन्त्र है।।३६६-३६७।।

प्रयोग-क्रम—इस न्यास का प्रयोग-क्रम है—

(१) अं आं सौः त्रिपुरायै नमः — शिरसि
(२) ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वर्यै नमः — ललाटे
(३) मूलमन्त्र त्रिपुरसुन्दर्यै नमः — भ्रूमध्ये
(४) मूलमन्त्र त्रिपुरावासिन्यै नमः — कण्ठे
(५) मूलमन्त्र त्रिपुराश्रियै नमः — हृदये
(६) मूलमन्त्र त्रिपुरमालिन्यै नमः — नाभौ
(७) मूलमन्त्र त्रिपुरासिद्धायै नमः — लिंगमूले
(८) मूलमन्त्र त्रिपुरात्मिकायै नमः — मूलाधारे
(९) ऐं क्लीं सौः हसरैं हसकलरीं — सर्वांगे।
हसरौः त्रिपुरभैरव्यै नमः।

[पीठन्यासः]

पीठन्यासमथो वक्ष्ये तत्त्वविमर्षणीक्रमात्।
मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रे पदं ततः।।३६८।।
कामगिर्यालये मित्रीशनाथपदात्मके।
कामेश्वरीतिशब्दान्ते देवी रुद्रात्मशक्तितः।।३६९।।
पादुकामन्त्रमुच्चार्य मूलाधारे प्रविन्यसेत्।

अथ पीठन्यासं वक्तुं प्रतिजानीते—पीठमित्यादिना। मूलेति। वाग्भवकामराजशक्तिकूटरूपकूटत्रयात्मकाः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्राः पूर्वमुपदर्शिताः। अत्र मूलवाग्भवपदेन निरुक्तकूटघटितमन्त्राणां प्रथमकूटं ग्राह्यम्। एवञ्च ई ए क ल ह्रीमित्याद्यन्यतमं स्वेष्टमन्त्रस्य वाग्भवकूटमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रीशनाथात्मके कामेश्वरीरुद्रात्मशक्तिदेवीश्रीपादुकायै नम इति मूलाधारे न्यसेदिति पर्यवस्यति। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे दशमपटले—

मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रे पदं ततः।
कामगिर्यालये पश्चान्मित्रीशपदमुच्चरेत्।।

नाथात्मके पदं पश्चात् कामेश्वरीपदं तत:।
रुद्रात्मशक्तिशब्दाच्छ्रीपादुकायै नमो न्यसेत्।
आधारे परमेशानि हृदये च तत: परम्।। इति।

अब पीठन्यास का निरूपण किया जा रहा है। यह पीठ न्यास षोढ़ान्यास के अन्तर्गत बताये गये पीठन्यास से सर्वथा भिन्न है।

'मूलवाग्भवमुच्चार्य' = अर्थात् इष्ट मन्त्र का प्रथम कूट। यथा—'कएईलह्रीं।' वाग्भव कूट के बाद—'कामगिर्यालये मित्रीशनाथ-आत्मके कामेश्वरी रुद्रात्मशक्ति देवीश्रीपादुकायै नम:'।

मन्त्रस्वरूप—कएईलह्रीं कामगिर्यालये मित्रीशनाथात्मके कामेश्वरी रुद्रात्मशक्तिदेवीश्रीपादुकायै नम:।

इस मन्त्र से मूलाधार में न्यास करें।।३६८-३६९।।

मूलद्वितीयमुच्चार्य सूर्यचक्रे पदं तत:।।३७०।।
जालन्धरपदात् पीठे षष्ठीनाथात्मके पदम्।
वक्त्रेश्वरीतिशब्दान्ते देवी विष्ण्वात्मशक्तित:।।३७१।।
पादुकाख्येन मनुना हृदये विन्यसेद् बुध:।

मूलद्वितीयमिति। तथा च, ह स क ह ल ह्रीमित्याद्यन्यतमं कामराजकूटमुच्चार्य सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीनाथात्मके वज्रेश्वरीदेवीविष्ण्वात्मकशक्तिश्रीपादुकायै नम इति हृदये न्यसेदिति पर्यवसितम्।

मूलमन्त्र का द्वितीय कूट; यथा—'हसकहलह्रीं'। इसके बाद—'सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीनाथात्मके वज्रेश्वरी विष्ण्वात्मशक्तिदेवी श्रीपादुकायै नम:'। इस मन्त्र से हृदय में न्यास करें।।३७०-३७१।।

शक्तिबीजं समुच्चार्य सोमचक्रे पदं तत:।।३७२।।
पूर्णगिरिपदस्यान्ते गह्वरे पदमुच्चरेत्।
उड्डीशनाथात्मके शब्दाद् भग पूर्वा च मालिनी।।३७३।।
देवी ब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकामनुमुच्चरन्।
भ्रूमध्ये विन्यसेत्—

शक्तिबीजमिति। तथा च, स क ल ह्रीमित्याद्यन्यतमं स्वेष्टमन्त्रशक्तिकूटमुच्चार्य सोमचक्रे पूर्णगिरिगह्वरे उड्डीशनाथात्मके भगमालिनीदेवीब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकायै नम इति भ्रूमध्ये विन्यसेदिति पर्यवसितम्।

मूलमन्त्र का तृतीय कूट; यथा—'सकलह्री'। इसके बाद 'सोमचक्रे पूर्णगिरिगह्वरे उड्डीशनाथात्मके भगमालिनी ब्रह्मात्मशक्तिदेवी श्रीपादुकायै नम:।' इस मन्त्र से भ्रूमध्य में न्यास करें।।३७२-३७३।।

—तुर्यबीजमुच्चार्य तत्परम्।।३७४।।
ब्रह्मचक्रे पदादुड्डीयानपीठे तदन्तरम्।
चर्यानाथात्मके पश्चान्महात्रिपुरसुन्दरीम्।।३७५।।
परंब्रह्मपदादात्मशक्तिपदं वदेत्ततः।
पादुकामनुमुच्चार्य ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत्।।३७६।।

तुर्येति। एकैकशः कूटत्रयोच्चारणानन्तरं समष्ट्या तदुच्चारणस्य तुर्यत्वेन तुर्यबीजपदेन कूटत्रयात्मको मन्त्र उच्यते। तथा च, ई ए क ल ह्रीं। ह स क ह ल ह्रीं। स क ल ह्रीमित्याद्यन्यतममन्त्रमुच्चार्य ब्रह्मचक्रे उड्डीयानपीठे चर्यानाथात्मके महात्रिपुरसुन्दरीदेवीपरंब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकायै नम इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेदित्यर्थः। व्यक्तमाह तन्त्रसारधृतकुलामृते—

* * समस्तञ्च मन्त्रमुच्चार्य पार्वति।
परं ब्रह्मपदं चक्र उड्डीयानपदं ततः।।
पीठे पदं योजयित्वा चर्यानाथात्मके पदम्।
महात्रिपुरशब्दान्ते सुन्दरीति पदं ततः।
देवीब्रह्मपदात्मान्ते शक्तिश्रीपादुकां ततः।। इति।

इति पीठन्यासः।

तुर्यबीज अर्थात् मूल मन्त्र के तीनों कूट। इनके बाद 'ब्रह्मचक्रे उड्डीयानपीठे चर्यानाथात्मके महात्रिपुरसुन्दरी परंब्रह्मआत्मशक्तिश्रीपादुकायै नमः' इस मन्त्र से ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करें।।३७४-३७६।।

यह न्यास सुगम है; अतः प्रयोग-क्रम नहीं लिखा जा रहा है। इसके बाद तत्त्वन्यास करें।

[तत्त्वन्यासः]

तत्त्वन्यासमथो वक्ष्ये सर्वपापनिकृन्तनम्।।३७७।।
वाग्भवान्ते चात्मतत्त्वव्यापिकायै पदं ततः।
महात्रिपुरसुन्दर्यै नम इत्यनुना न्यसेत्।।३७८।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तदादिभ्रूलतावधि।

एवं पीठन्यासमभिधाय तत्त्वन्यासं वक्तुं प्रतिजानीते—**तत्त्वन्यासमित्यादिना।** तत्त्वन्यासपरिपाटीं दर्शयति—**वाग्भवान्त इति।** अत्रापि पूर्ववत् क्रमेण समष्ट्या च कूटत्रययोगः। तथा च मूलमन्त्रस्य वाग्भवकूटमुच्चार्य आत्मतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्राच्च भ्रूलतापर्यन्तं न्यसेत्।

तत्त्वन्यास—अब मैं पापजाल को काटने वाला तत्त्वन्यास बता रहा हूँ। मूलमन्त्र का वाग्भव कूट (कएईलह्रीं)। इसके बाद 'आत्मतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुर-

सुन्दर्यै नम:।' इस मन्त्र से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त और फिर ब्रह्मरन्ध्र से भ्रूमध्य-पर्यन्त न्यास करें।।३७७-३७८।।

कामराजं समुच्चार्य विद्यातत्त्वादि पूर्ववत्।।३७९।।
नाभ्यादिभ्रूलतान्तञ्च तदादिहृदयावधि।

कामराजमिति। ततश्च कामराजकूटमुच्चार्य विद्यातत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति नाभिदेशतो भ्रूलतापर्यन्तं भ्रूलताया हृदयपर्यन्तं न्यसेत्।

मूलमन्त्र का कामराज कूट (हसकहलह्रीं)। इसके आगे 'विद्यातत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम:।' इस मन्त्र से नाभि से भ्रूमध्य और भ्रूमध्य से हृदय-पर्यन्त न्यास करें।।३७९।।

शक्तिबीजं समुच्चार्य शिवतत्त्वादिकं तथा।।३८०।।
मूलादिहृदयान्तञ्च तदादिलिङ्गमूलकम्।
अमुना विन्यसेत्तुर्यबीजान्ते सर्वतत्त्वत:।।३८१।।

शक्तिबीजमिति। शक्तिकूटमित्यर्थ:। तथा च, पूर्ववच्छक्तिकूटमुच्चार्य शिवतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति मूलाधारतो हृदयान्तं हृदयाच्च लिङ्गमूलान्तं न्यसेत्।

मूलमन्त्र का शक्तिकूट—'सकलह्रीं'। इसके आगे—'शिवतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम:।'—इस मन्त्र से मूलाधार से हृदय तथा हृदय से लिंगमूल तक न्यास करें।।३८०-३८१।।

व्यापिकायै ङेनमोऽन्तो महात्रिपुरसुन्दरी।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तदादिचरणं न्यसेत्।।३८२।।

अमुनेति। तथा च, पूर्ववत्तुर्यबीजान्ते त्रिकूटात्मकं मन्त्रमुच्चार्येत्यर्थ:। सर्वतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति मूलाधारतो ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं पुनर्ब्रह्मरन्ध्रादाचरणं न्यसेदिति तत्त्वन्यासक्रम: पर्यवस्यति।

तुर्यबीज अर्थात् मूल मन्त्र के तीनों कूट—कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं—इन तीनों कूटों के आगे 'सर्वतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नम:'—इस चतुर्थ मन्त्र से सर्व (सभी) तत्त्वों का मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र और ब्रह्मरन्ध्र से चरण-पर्यन्त न्यास करें।।३८२।।

इन न्यासों का भी प्रयोग-क्रम सुगम है।

[अस्त्रन्यास:]

अस्त्रन्यासं तत: कुर्याद्देव्या: प्रीतिकरं क्रमात्।
पञ्चबाणं समुच्चार्य कामेशीबाणमुच्चरेत्।।३८३।।

त्वगादिपञ्चवर्णन्तु क्रमेण विलिखेत् सुधीः।
अनन्तेन समायुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्।।३८४।।
कामेश्वरीपञ्चबाणाः कथिताः कामदायकाः।।३८५।।

अथास्त्रन्यासमुपदिशति—**अस्त्रन्यासमित्यादिना।** पञ्चबाणमिति। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इति पञ्चबाणमन्त्रः पूर्वमेव ग्रन्थकारैरुपदिष्टः। एवं पञ्चबाणमुच्चार्य कामेश्वरीपञ्चबाणमुच्चरेदित्यर्थः।

क्रामेश्वरीबाणपञ्चकमाह—**त्वगादीत्यादिना।** य-र-ल-व-शाः पञ्चवर्णाः क्रमेण त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिरूपा इति श्रीकण्ठन्यासादेरवगन्तव्यम्। मूले त्वगादिपञ्चवर्णन्त्वित्यनेन निरुक्तयकारादिवर्णपञ्चकमुक्तम् । तच्च अनन्तेन आकारेण समन्वितं तथा बिन्दुनादकलायुक्तम्। एतेन यां रां लां वां शामिति कामेश्वरीबाणपञ्चकमित्युक्तं भवति। व्यक्तमाह तन्त्रसारधृतगुप्तार्णवे—

द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इत्येते कामबाणाः प्रकीर्त्तिताः।
यां रां लां वां शामिदं कामेश्वरीबाणपञ्चकम्।। इत्यनेन।

तत्त्व-न्यास करने के बाद साधक अस्त्र-न्यास करें। यह न्यास भगवती को अत्यन्त प्रीतिकर है।

पञ्च बाण-बीज हैं—'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः'। ये कामदेव के पाँच बाणों के बीज हैं। इनके आगे कामेश्वरी के पाँच बाणों के बीजों की योजना करें।

त्वगादि अर्थात् 'त्वक्-असृग्-रक्त-मेद और अस्थि; इनके बीजाक्षर हैं—'य र ल व श'। इन पाँचों अक्षरों के साथ बिन्दु-नाद-कलासमन्वित अनन्त अर्थात् 'आ' की योजना करें। 'आं' की योजना करने से पाँच वर्णबीज बने—'यां रां लां वां शां'। ये पाँच कामेश्वरी के पाँच बाणों के बीज हैं।।३८३-३८५।।

[न्यासपरिपाटी तत्र बाणन्यासः]

मणिरन्ध्रं ततो बाणं जम्भलेभ्यः समालिखेत्।
कामेश्वरेति बाणेभ्यो हृद्दक्षाधः करे निजे।।३८६।।
यादिद्रादीनि जं बीजं जम्भलेभ्यः समालिखेत्।
कामेश्वरीति बाणेभ्यो नमोऽन्तञ्च समालिखेत्।।३८७।।
देव्याः प्रविन्यसेद् बाणान् पौष्पान् साधकसत्तमः।

न्यासपरिपाटीमाह—**मणीत्यादिना साधकसत्तम इत्यन्तेन।** तथा च, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नम इति प्रयोगः। न्यासस्थानमाह—**हृदिति। यादीति।** तथा च यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नम इति प्रयोगः। न्यासस्थानन्तु पूर्ववत्।

कामेश्वर के पञ्च बाणबीजों के बाद कामेश्वरी के पञ्च बाणबीज और इनके बाद 'जं जम्भलेभ्य: कामेश्वरबाणेभ्यो नम:' की योजना करके कामेश्वरबाणों का हृदय के दाहिने भाग में नीचे की ओर न्यास करें। मन्त्रस्वरूप है—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: यां रां लां वां शां जं जम्भलेभ्यो कामेश्वरबाणेभ्यो नम:—हृदये।

कामेश्वरी के पाँच बाणबीजों अर्थात् 'यां रां लां वां शां' के आगे 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स:' और इसके आगे 'जं जम्भलेभ्यो कामेश्वरीबाणेभ्य: नम:' की योजना करें। मन्त्रस्वरूप है—

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: जं जम्भलेभ्य: कामेश्वरीबाणेभ्यो नम:'।

बुद्धिमान् साधक उपर्युक्त मन्त्र से हृदय में ही कामेश्वरी के बाणों का न्यास करें। बाणन्यास के बाद क्रम से धनु:न्यास, पाशन्यास और अंकुशन्यास किया जाता है।

[धनुर्न्यास:]

द्रादियादीनि धं ङेऽन्तं सम्मोहनपदं तत:।।३८८।।
ङेऽन्तं कामेश्वरधनुर्नमोऽन्तञ्च प्रविन्यसेत्।
अनेन मनुना मन्त्री वामाधश्च करे निजे।
यादिद्रादीनि थं ङेऽन्तं सम्मोहनपदं तत:।।३८९।।
कामेश्वरीधनुर्ङेऽन्तं नमोऽन्तेन तु साधक:।
वामदेव्या वामहस्ते विन्यसेदैक्षवं धनु:।।३९०।।

अथ कामेश्वरसम्मोहनधनुर्न्यासमाह—द्रादीति। तथा च, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: यां रां लां वां शां धं सम्मोहनाय कामेश्वरधनुषे नम इति प्रयोग:। निरुक्तमन्त्रकरणकन्यासस्य स्थानमाह—अनेनेत्यादिना। अथ कामेश्वरीसम्मोहनधनुर्न्यासमाह—यादीत्यादिना। तथा च, यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: थं सम्मोहनाय कामेश्वरीधनुषे नम इति प्रयोग:।

धनुर्न्यास—'द्रादि' अर्थात् 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स:' और 'यादीन्' अर्थात् 'यां रां लां वां शां'—इन दस बीज वर्णों के बाद 'धां' तथा चतुर्थ्यन्त 'सम्मोहनकामेश्वरधनु:' नाम की योजना करने से धनुषन्यास का मन्त्र निष्पन्न होता है। मन्त्रस्वरूप है—

'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: यां रां लां वां शां धनसम्मोहनाय कामेश्वरधनुषे नम:'।

इस मन्त्र से अपने बाँयें हाथ में न्यास करें।

'यां रां' एवं 'द्रा द्रां' आदि दस बीजाक्षर के बाद 'थं सम्मोहनाय कामेश्वरीधनुषे नम:' की योजना करने से कामेश्वरी के इक्षु-धनुष के न्यास का मन्त्र बनता है—'यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: थं सम्मोहनाय कामेश्वरीधनुषे नम:'। इस मन्त्र से साधक भगवती के वाम हस्त के इक्षुधनुष का न्यास करे।।३८८-३९०।।

[पाशन्यासः]

द्रादियादीनि बीजानि मुखवृत्तं सबिन्दुकम्।
स्याद्वशीकरणायेति कामेश्वरपदं ततः।।३९१।।
पाशाय नम इत्येवं वामोद्र्ध्वे विन्यसेत् करे।
यादिद्रादीनि गगनं वह्निमायेन्दुबिन्दुमत्।।३९२।।
स्याद् वशीकरणायेति कामेश्वरीपदं ततः।
पाशाय नम इत्येवं देव्या वामोद्र्ध्वगे न्यसेत्।।३९३।।

अथ पाशन्यासमाह—द्रादीति। तथा च, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नम इति प्रयोगः।

यादीत्यादि। एवञ्च यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नम इति प्रयोगः।

पाश-न्यास—'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः' यह कामेश्वरपाश का न्यासमन्त्र है।

'यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः'—यह कामेश्वरीपाश का न्यासमन्त्र है।

इन मन्त्रों से बाँयें ऊर्ध्व करों में 'पाश' नामक अस्त्र का न्यास करें। 'पाश' नामक यह अस्त्र कामेश्वर और कामेश्वरी के ऊपरी बाँयें हाथ में सुशोभित है।।३९१-३९३।।

[अङ्कुशन्यासः]

द्रादियादीनि बीजानि क्रों ङेऽन्तं स्तम्भनं ततः।
कामेश्वराङ्कुशायान्ते नमोद्र्ध्ववामहस्तके।।३९४।।
यादिद्रादीनि बीजानि क्रों ङेऽन्तं स्तम्भनं पदम्।
कामेश्वर्यङ्कुशायान्ते देव्या दक्षोद्र्ध्वगे न्यसेत्।।३९५।।

अथानयोरङ्कुशन्यासमाह—द्रादीत्यादिना। तथा च, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां क्रों स्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नम इति प्रयोगः पर्यवस्यति।

यादीत्यादि। तथा च, यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रौं स्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नम इति प्रयोगः पर्यवस्यति। इत्यस्त्रन्यासः। अयं न्यासस्तत्त्वमुद्रया कार्य इति त्रिपुरार्चनरहस्ये।

अंकुशन्यास—'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां क्रों स्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः'—यह कामेश्वर के अंकुश का न्यासमन्त्र है।

'यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रों स्तम्भनाय कामेश्वरी अंकुशाय नमः'—यह कामेश्वरी अंकुश का न्यासमन्त्र है।

इस मन्त्र से दाहिने हाथ में न्यास करें।।३९४-३९५।।

[कूटन्यासः]

कूटन्यासं ततः कुर्यात् क्रमेण साधकोत्तमः।
करयोर्मूलमध्याग्रे मूलहृद्भ्रूयुगान्तरम्।।३९६।।
मूलखण्डत्रयावृत्त्या स्थानेष्वेषु प्रविन्यसेत्।
ब्रह्मरन्ध्रे तुरीयञ्च तेनैव व्यापकं न्यसेत्।।३९७।।

एवमस्त्रन्यासमभिधाय कूटन्यासमाह—कूटन्यासं ततः कुर्यादित्यादिना। अत्र क्रमेण मूलखण्डत्रयावृत्त्या करयोर्मूलमध्याग्रेषु तथा मूलाधारो हृदयं भ्रुवोर्मध्यमित्येषु स्थानेषु च प्रविन्यसेदिति सम्बन्धः। अत्रेदमवधेयम्—पूर्वोदितानां वाग्भवकामराजशक्त्यात्मककूटत्रयात्मकानां स्वस्वेष्टमन्त्राणां वाग्भवकूटमुच्चार्य दक्षिणकरस्य मूले, कामराजकूटमुच्चार्य मध्ये, शक्तिकूटमुच्चार्याग्रे न्यसेत्। ततो वामकरस्य मूलमध्याग्रेष्वप्यनयैव रीत्या न्यासः कर्त्तव्यः। ततः पुनर्वाग्भवकूटमुच्चार्य मूलाधारे, कामराजकूटमुच्चार्य हृदि, शक्तिकूटमुच्चार्य च भ्रुवोर्मध्ये न्यसेदिति बोध्यम्। ब्रह्मरन्ध्र इति। तुरीयं बीजं कूटत्रयसमष्टिरूपं मन्त्रम्। तुरीयत्वञ्चास्य त्रिरावृत्त्या प्रयुक्तं मन्त्रमपेक्ष्येति बोध्यम्।

एवञ्च ए ई क ल ह्रीं नम इति दक्षकरस्य मूले, ह स क ह ल ह्रीं नम इति मध्ये, स क ल ह्रीं नम इत्यग्रे न्यसेत्। एवमन्येष्वपि निरुक्तेष्वङ्गेषु बोध्यम्। तेनैवेति। कूटत्रयसमष्टिरूपेण तुरीयेणेत्यर्थः।

कूटन्यास—वाग्भव-कामराज और शक्ति—इस क्रम से त्रिपुरा मन्त्र के तीन खण्ड हैं। बुद्धिमान् साधक इनमें से प्रथम कूट (वाग्भव) का हाथ के मूल में, दूसरे (कामराज) कूट का हाथ के मध्य भाग में तथा तीसरे (शक्ति) कूट का हाथ के अग्रभाग में न्यास करे। यह न्यास दोनों हाथों में किया जाता है।

हाथों के बाद मूलाधार, हृदय और भ्रूमध्य में तीनों कूटों का क्रमशः न्यास करें।

तुरीय अर्थात् सम्पूर्ण मन्त्र का ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करके मूल मन्त्र से ही व्यापक न्यास करें।।३९६-३९७।।

प्रयोग-क्रम—(१) कएईलह्रीं—दक्षिण करमूले, (२) हसकहलह्रीं—दक्षिणकरमध्ये, (३) सकलह्रीं—दक्षिण कर-अग्रे।

(१) कएईलह्रीं—वामकरमूले। (२) हसकहलह्रीं—वामकरमध्ये। (३) सकलह्रीं—वामकरअग्रे।

(१) कएईलह्रीं—मूलाधारे, (२) हसकहलह्रीं—हृदये, (३) सकलह्रीं—भ्रूमध्ये।

कएइलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं—ब्रह्मरन्ध्रे।

तत्पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से सिर से पैर और पैर से सिर-पर्यन्त व्यापक-न्यास करें।

[त्रिपुरान्यासः]

पञ्चाशत् त्रिपुरान्यासं मातृकार्णैर्न्यसेदथ।

[तत्र पञ्चाशत्त्रिपुरानिर्णयः]

कामिनी मोदिनीनाम्नी मदनोन्मादिनी भुवि।।३९८।।
खेचरी कामिनीनाम्नी घण्टिका क्लेदिनी ततः।
शिवदूती च सुभगा भगा विद्येश्वरी ततः।।३९९।।
महालक्ष्मीः कौलिनी स्यात् कामेशी कुलमालिनी।
अन्या स्याद् व्यापिनीनाम्नी भगावहाभिधा ततः।।४००।।
वागीश्वर्यभिधा कामा पिङ्गला भगसर्पिणी।
अथ स्यात् सुन्दरीनाम्नी नीलपूर्वा पताकिनी।।४०१।।
सिद्धेश्वरी ह्यमोघा च मोघा तद्रक्तमालिनी।
मङ्गला भगमालिन्या रौद्री योगेश्वरीति च।।४०२।।
अम्बिका स्यादट्टहासा व्योमतो व्यापिनीपदम्।
वज्रेश्वरी क्षोभिणी च शाम्भवी स्यात्तथाऽणिमा।।४०३।।
लोकेश्वर्यभिधा रक्ता सूक्ष्मा श्वेताऽपराजिता।
संवर्त्ता विमला मोघा भैरवी घोरसंज्ञका।।४०४।।
ततः सर्वाकर्षिणी च त्रिपुरान्त इमाः स्मृताः।
मातृकावन्न्यसेदेतास्त्रिपुराप्रीतिहेतवे ।।४०५।।

अथ त्रिपुरान्यासमाह—पञ्चाशदित्यादिना त्रिपुराप्रीतिहेतवे इत्यन्तेन। पञ्चाशत्त्रिपुरास्तु कामिन्यादिसर्वाकर्षिण्यन्ताः। मातृकार्णैरकारादिक्षकारान्तैर्मातृका-वर्णैर्निरुक्तास्त्रिपुरास्त्रिपुराशब्दान्ता न्यसेदिति सम्बन्धः। अत्र मातृकावन्न्यसेदेता इत्यभि-धानाल्ललाटादिमातृकास्थानेष्वयं न्यासः कर्त्तव्य इति बोध्यम्। एवञ्च अं कामिन्यै नम इति ललाटे, आं मोदिन्यै नम इति मुखवृत्ते न्यसेत्। एवमन्येष्वपि मातृकान्यास-क्रमोक्तेष्वङ्गेषु मदनादीनां सर्वाकर्षिण्यन्तानां न्यासः कर्त्तव्य इति ज्ञेयम्। स्पष्टमन्यत्।

त्रिपुरान्यास—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के प्रीति-सम्पादन के लिये बुद्धिमान् साधक ५१ त्रिपुरामूर्तियों का न्यास करे। यह 'त्रिपुरा-न्यास' कहा जाता है। एक-एक 'अक्षर' के साथ एक-एक त्रिपुरामूर्ति के नाम की योजना करके सृष्टि मातृका-क्रम से यह न्यास किया जाता है। इसका प्रयोग-क्रम निम्नानुसार है—

त्रिपुरान्यास प्रयोग-विधि—

१. ह्रीं श्रीं क्लीं अं कामिनी-त्रिपुरायै नमः — ललाटे
२. ह्रीं श्रीं क्लीं आं मोदिनी-त्रिपुरायै नमः — मुखे
३. ह्रीं श्रीं क्लीं इं मदना-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणनेत्रे
४. ह्रीं श्रीं क्लीं ईं उन्मादिनी-त्रिपुरायै नमः — वामनेत्रे
५. ह्रीं श्रीं क्लीं उं खेचरी-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणकर्णे
६. ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं कामिनी-त्रिपुरायै नमः — वामकर्णे
७. ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं घण्टिका-त्रिपुरायै नमः — दक्षनासायाम्
८. ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं क्लेदिनी-त्रिपुरायै नमः — वामनासायाम्
९. ह्रीं श्रीं क्लीं ऌं शिवदूती-त्रिपुरायै नमः — दक्षगण्डे
१०. ह्रीं श्रीं क्लीं ॡं सुभगा-त्रिपुरायै नमः — वामगण्डे
११. ह्रीं श्रीं क्लीं एं भगा-त्रिपुरायै नमः — ओष्ठे
१२. ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं विद्येश्वरी-त्रिपुरायै नमः — अधरे
१३. ह्रीं श्रीं क्लीं ओं महालक्ष्मी-त्रिपुरायै नमः — ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
१४. ह्रीं श्रीं क्लीं औं कौलिनी-त्रिपुरायै नमः — अधोदन्तपंक्तौ
१५. ह्रीं श्रीं क्लीं अं कामेशी-त्रिपुरायै नमः — शिरसि
१६. ह्रीं श्रीं क्लीं अः कुलमालिनी-त्रिपुरायै नमः — मुखे
१७. ह्रीं श्रीं क्लीं कं व्यापिनी-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणबाहुमूले
१८. ह्रीं श्रीं क्लीं खं भगावहा-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणकूर्परे
१९. ह्रीं श्रीं क्लीं गं वागीश्वरी-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणमणिबन्धौ
२०. ह्रीं श्रीं क्लीं घं कामा-त्रिपुरायै नमः — दक्षिण अंगुलिमूले
२१. ह्रीं श्रीं क्लीं ङं पिंगला-त्रिपुरायै नमः — दक्षिण अंगुल्यग्रे
२२. ह्रीं श्रीं क्लीं चं भगसर्पिणी-त्रिपुरायै नमः — वामबाहुमूले
२३. ह्रीं श्रीं क्लीं छं सुन्दरी-त्रिपुरायै नमः — वामकूर्परे
२४. ह्रीं श्रीं क्लीं जं नीलपताकिनी-त्रिपुरायै नमः — वाममणिबन्धौ
२५. ह्रीं श्रीं क्लीं झं सिद्धेश्वरी-त्रिपुरायै नमः — वाम अंगुलिमूले
२६. ह्रीं श्रीं क्लीं ञं अमोघा-त्रिपुरायै नमः — वाम अंगुल्यग्रे
२७. ह्रीं श्रीं क्लीं टं मोघा-त्रिपुरायै नमः — दक्षपादमूले
२८. ह्रीं श्रीं क्लीं ठं रक्तमालिनी-त्रिपुरायै नमः — दक्षजानुनि
२९. ह्रीं श्रीं क्लीं डं मंगला-त्रिपुरायै नमः — दक्षगुल्फे

३०. ह्रीं श्रीं क्लीं ढं भगमालिनी-त्रिपुरायै नमः — दक्षपाद अंगुलिमूले
३१. ह्रीं श्रीं क्लीं णं रौद्री-त्रिपुरायै नमः — दक्षपाद अंगुल्यग्रे
३२. ह्रीं श्रीं क्लीं तं योगेश्वरी-त्रिपुरायै नमः — वामपादमूले
३३. ह्रीं श्रीं क्लीं थं अम्बिका-त्रिपुरायै नमः — वामजानुनि
३४. ह्रीं श्रीं क्लीं दं अट्टहासा-त्रिपुरायै नमः — वामगुल्फे
३५. ह्रीं श्रीं क्लीं धं व्योमा-त्रिपुरायै नमः — वामपाद अंगुलिमूले
३६. ह्रीं श्रीं क्लीं नं व्यापिनी-त्रिपुरायै नमः — वामपाद अंगुल्यग्रे
३७. ह्रीं श्रीं क्लीं पं वज्रेश्वरी-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणपार्श्वे
३८. ह्रीं श्रीं क्लीं फं क्षोभिणी-त्रिपुरायै नमः — वामपार्श्वे
३९. ह्रीं श्रीं क्लीं बं शाम्भवी-त्रिपुरायै नमः — पृष्ठे
४०. ह्रीं श्रीं क्लीं भं अणिमा-त्रिपुरायै नमः — नाभौ
४१. ह्रीं श्रीं क्लीं मं लोकेश्वरी-त्रिपुरायै नमः — उदरे
४२. ह्रीं श्रीं क्लीं यं रक्ता-त्रिपुरायै नमः — हृदये
४३. ह्रीं श्रीं क्लीं रं सूक्ष्मा-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणस्कन्धे
४४. ह्रीं श्रीं क्लीं लं श्वेता-त्रिपुरायै नमः — ककुदि
४५. ह्रीं श्रीं क्लीं वं अपराजिता-त्रिपुरायै नमः — वामस्कन्धे
४६. ह्रीं श्रीं क्लीं शं संवर्ता-त्रिपुरायै नमः — दक्षिणबाहौ
४७. ह्रीं श्रीं क्लीं षं विमला-त्रिपुरायै नमः — वामबाहौ
४८. ह्रीं श्रीं क्लीं सं मोघा-त्रिपुरायै नमः — हृदयात् दक्षपादे
४९. ह्रीं श्रीं क्लीं हं भैरवी-त्रिपुरायै नमः — हृदयात् वामपादे
५०. ह्रीं श्रीं क्लीं ळं घोरा-त्रिपुरायै नमः — हृदयात् जठरे
५१. ह्रीं श्रीं क्लीं क्षं सर्वाकर्षिणी-त्रिपुरायै नमः — हृदयात् मुखे

[चक्रन्यासः, तत्र सप्रशस्तिकन्यासप्रतिज्ञा]

चक्रन्यासं प्रवक्ष्यामि सर्वोत्कृष्टं शुभप्रदम्।
देहशुद्धिकरं नित्यं सिद्धिदं पापनाशनम्।।४०६।।

अथ फलप्रदर्शनपूर्वकं चक्रन्यासं वक्तुं प्रतिजानीते—**चक्रेत्यादिना।**

इसके बाद बुद्धिमान् साधक चक्रन्यास करे। यह चक्रन्यास देह को शुद्ध करने वाला तथा पापों का नाश करके सिद्धियाँ प्रदान करने वाला है।।४०६।।

[न्यासपरिपाटी, तत्र प्रथमावरणन्यासः]

चतुरस्राद्यरेखायै नमोऽन्ते व्यापकं न्यसेत्।
मायाश्रीबीजपूर्वञ्च कृत्वा साधकसत्तमः।।४०७।।

दक्षांसपृष्ठपाण्यग्रे स्फिचि पादाङ्गुलीषु च।
वामपादाङ्गुलिकटौ पाण्यग्रे पृष्ठ अंशके।।४०८।।
अत्रैव स्थानदशकेष्वणिमाद्या न्यसेद्दश।

तत्र न्यासपरिपाटीं दर्शयति—चतुरित्यादिना। माया-श्रीबीजपूर्वञ्चेत्यस्य चतुरस्रेत्यादिना अणिमाद्या इत्यादिना च सम्बन्धः। एवं दक्षांसेत्यादेरपि। तथा चामृतानन्दनाथेनापि योगिनीहृदयटीकायां 'चतुरस्राद्यरेखायै नम इति मन्त्रेणाऽऽदितो दक्षांसपृष्ठादिचूलिपृष्ठान्तस्थानेषु दशसु व्यापकत्वेन न्यासे'दित्युक्तम् । एवञ्च ह्रीं श्रीं चतुरस्राद्यरेखायै नम इति व्यापकत्वेन दक्षांसादिस्थानदशके न्यसेदित्यर्थः।

अथ निरुक्तदक्षांसादिष्वणिमादीनां न्यासमाह—अत्रैवेति। अत्रैव स्थानदशके दक्षांसादिरूपे अणिमाया दश न्यसेदिति सम्बन्धः। अणिमाद्यास्तु अणिमा-लघिमा-महिमेशित्व-वशित्व-प्राकाम्यभुक्तीच्छा-प्राप्ति-सर्वकामाख्यास्त्रिपुरार्चनरहस्यादिभ्योऽवगन्तव्याः।

ननु दक्षांसपृष्ठेत्यादिपूर्ववचने दक्षांसपृष्ठ-दक्षपाण्यग्र-दक्षस्फिग्-दक्षपादाङ्गुलि-वामपादाङ्गुलि-वामकटि-वामपाण्यग्र-वामांसपृष्ठरूपस्थानाष्टकमात्रलाभात् 'अत्रैव स्थानदशक' इति कथमुपपद्यते? उच्यते। योगिनीहृदये तृतीयपटले—

दक्षांसपृष्ठपाण्यग्रस्फिक्कपादाङ्गुलीष्वथ ।
वामाङ्घ्र्यङ्गुलिषु स्फिक्के पाण्यग्रे चांसपृष्ठके।।
सचूलीमूलपृष्ठेषु व्यापकत्वेन सुन्दरि।
अत्रैव स्थानदशके अणिमाद्यास्तु विन्यसेत्।।

इत्येतद्वचनस्थसचूलीमूलपृष्ठेष्वित्यनेन शिरःपुरोभागपश्चाद्भागयोः संग्रहात् स्थानानां दशसंख्याकत्वमुपपन्नम्। त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्येवमेव स्थानदशकनिरूपणक्रमो दृश्यते। तन्नूनं लेखकप्रमादतः शिरःपुरःपश्चाद्भागप्रतिपादकोंऽशो मूलात् प्रत्युत इति प्रतिभाति। कल्पनेयं समीचीना न वेति साभिनिवेशं विमृशन्तु सुधियः साधकाः। अथ प्रकृतमनुसरामः—एवञ्च ह्रीं श्रीं अणिमासिद्ध्यै नम इति दक्षांसपृष्ठे। ह्रीं श्रीं लघिमासिद्ध्यै नम इति दक्षपाण्यग्रे। एवमन्येष्वपि निरुक्तेष्वङ्गेषु यथायोगमूहनीयम्।

'ह्रीं श्रीं चतुरस्राद्यरेखायै नमः'—इस मन्त्र से व्यापक-न्यास करने के बाद अणिमा आदि सिद्धियों का दक्षिणांस आदि दस स्थानों में न्यास करें। इस न्यास का प्रयोग-क्रम इस प्रकार है—

१. ह्रीं श्रीं अणिमासिद्ध्यै नमः
२. ह्री श्रीं लघिमासिद्ध्यै नमः
३. ह्रीं श्रीं महिमासिद्ध्यै नमः
४. ह्रीं श्रीं ईशित्वसिद्ध्यै नमः

५. ह्रीं श्रीं वशित्वसिद्ध्यै नमः
६. ह्रीं श्रीं प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः
७. ह्रीं श्रीं मुक्तिसिद्ध्यै नमः
८. ह्रीं श्रीं इच्छासिद्ध्यै नमः
९. ह्रीं श्रीं प्राप्तिसिद्ध्यै नमः
१०. ह्रीं श्रीं सर्वकामसिद्ध्यै नमः।

चतुरस्रमध्यरेखां विन्यसेत् पूर्ववत् पुनः।।४०९।।
पादाङ्गुष्ठद्वये पार्श्वद्वये जानुद्वये बुधः।
बहिरंसद्वये पश्चाद् ब्रह्माण्याद्याः प्रविन्यसेत्।।४१०।।
शिष्टे द्वे द्वादशान्ते तु पादाङ्गुष्ठे प्रविन्यसेत्।
एताः सर्वास्तु योगिन्यो रक्षन्तु सर्वभूतले।।४११।।
ब्रह्माण्याद्यष्टकस्थाने तासामष्टौ न्यसेद् बुधः।
अनेन व्यापकं कृत्वा चक्रेशीं विन्यसेत्ततः।।४१२।।
आधारे त्रिपुरां देवीं श्रीचक्रनायिकां पराम्।
सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां तथा वै बौद्धदर्शनम्।।४१३।।

एवं वह्निस्त्रिरेखात्मकचतुरस्रस्य प्रथमरेखान्यासमभिधाय मध्यमरेखान्यास-माह—चतुरस्रेति। पूर्ववदिति व्यापकत्वेनेत्यर्थः। एवञ्च ह्रीं श्रीं चतुरस्रमध्यरेखायै नम इति देहव्यापकत्वेन पादाङ्गुष्ठादिष्वष्टसु स्थानेषु विन्यस्य तास्वेव ब्रह्माण्याद्या अष्टशक्तीः क्रमेण विन्यसेदिति बोध्यम्। ब्रह्माण्याद्याश्च ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराहीन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीश्चेत्यष्टौ। एवञ्च ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्यै नम इति दक्षपादाङ्गुष्ठे, ह्रीं श्रीं माहेश्वर्यै नम इति वामपादाङ्गुष्ठे इत्येवं क्रमेण पार्श्वादिष्वपि कौमार्यादीनां न्यासः कर्त्तव्यः।

अत्रास्मदुपजीव्ये पुस्तकत्रयेऽपि चतुरस्रान्त्यरेखान्यासप्रक्रिया न दृश्यते। तदिदं लेखकप्रमादस्खलितमिति बुद्ध्या योगिनीहृदय-त्रिपुरार्चनरहस्यसंवादेनेयं प्रक्रिया यथायथं प्रदर्श्यते। यथा योगिनीहृदये तृतीयपटले—

न्यस्तव्याश्चतुरस्रान्त्यरेखायै नम इत्यपि।
विन्यसेद् व्यापकत्वेन पूर्वोक्तान्तश्च विग्रहे।
तस्याः स्थानेषु दशसु मुद्राणां दशकं न्यसेत्।
ब्रह्माण्याद्यष्टस्थानान्तस्तासामष्टौ न्यसेत्ततः।
शिष्टे द्वे द्वादशान्ते च पादाङ्गुष्ठे च विन्यसेत्।। इति।

एवञ्च ह्रीं श्रीं चतुरस्रान्त्यरेखायै नम इति व्यापकत्वेन पूर्वोक्तान्तः पूर्वोक्तानां ब्रह्माण्यादिस्थानानामन्तर्न्यस्तव्या इत्यर्थः। तस्या इति। तस्या निरुक्तचतुरस्रान्त्यरेखाया

दशसु स्थानेषु मुद्राणां सर्वसंक्षोभिण्यादीनां दशकं न्यसेदित्यर्थः। सर्वसंक्षोभिण्यादयश्च—सर्वसंक्षोभिणी–सर्वविद्राविणी–सर्वाकर्षणी–सर्ववशङ्करी–सर्वोन्मादिनी–सर्वमहाङ्कुशा–सर्वखेचरी–सर्वबीजाख्या अष्टौ सर्वयोनिः सर्वत्रिखण्डेति द्वे। मिलित्वा दश इति त्रिपुरार्चनरहस्ये। न्यासस्थानमेतासां निर्वक्ति—ब्रह्मेत्यादिना। ब्रह्माण्याद्यष्टकस्थाने दक्षांसादौ सर्वसंक्षोभिण्यादिसर्वबीजान्ता अष्टौ न्यसेदिति सम्बन्धः। शिष्टे इति। प्रागुक्तावशिष्टे द्वे सर्वयोनि–सर्वत्रिखण्डे क्रमेण द्वादशान्ते ललाटोद्ध्र्वदेशे तथा पादाङ्गुष्ठद्वये च प्रविन्यसेदित्यर्थः। एवञ्च ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नम इति दक्षपादाङ्गुष्ठे। ह्रीं श्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रायै नम इति वामपादाङ्गुष्ठे, इत्येवं क्रमेणावशिष्टाः षड् वामांसावधि न्यस्य सर्वयोनिमुद्रायै नम इति ललाटोद्ध्र्वे सर्वत्रिखण्डामुद्रायै नम इति पादाङ्गुष्ठद्वये न्यसेदिति पर्यवस्यति। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु पूर्वतो बीजयोगे क्रमान्तरं दृश्यते। निरुक्तयोगिनीहृदयवचनस्थद्वादशान्तशब्देन ललाटोद्ध्र्वदेशो बोध्यः। तदुक्तं तट्टीकाधृतश्रीस्वच्छन्दसंग्रहे—

षोडशान्तमिति ख्यातं व्योमस्थानेन्दुमण्डलम्।
तदधःस्थानगं सूर्यबिम्बं द्वादशशक्तिकम्।
द्वादशान्तमिति ख्यातं स्थितं व्योमप्रदेशकम्।। इति।

अथ चक्रेश्वर्यास्त्रिपुराया न्यासमाह—चक्रेशीमित्यादिना। तथा च ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रेश्वर्यै नमः, सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नमः, बौद्धदर्शनाय नम इति मूलाधारे न्यसेत्।

चतुरस्र की प्रथम रेखा पर पूज्य अणिमा आदि सिद्धियों का न्यास करने के बाद मध्य रेखा पर पूजनीय ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का न्यास दोनों पैरों के अंगूठों, दोनों पार्श्व, दोनों जानु (घुटनों) तथा दोनों कन्धों पर करे। यथा—

१. ह्रीं श्रीं ब्राह्म्यै नमः — दक्षपाद अंगुष्ठे
२. ह्रीं श्रीं माहेश्वर्यै नमः — वामपाद अंगुष्ठे
३. ह्रीं श्रीं कौमार्यै नमः — दक्षिणपार्श्वे
४. ह्रीं श्रीं वैष्णव्यै नमः — वामपार्श्वे
५. ह्रीं श्रीं वाराह्यै नमः — दक्षिणजानुनि
६. ह्रीं श्रीं इन्द्राण्यै नमः — वामजानुनि
७. ह्रीं श्रीं चामुण्डायै नमः — दक्षिणस्कन्धे
८. ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः — वामस्कन्धे।

'ह्रीं श्रीं चतुरस्र अन्त्यरेखायै नमः' से व्यापक न्यास करने के बाद सर्वसंक्षोभिणी आदि प्रथम ८ मुद्रा देवियों का उपर्युक्त अंगुष्ठ आदि स्थानों में न्यास करें। शेष दो मुद्राओं अर्थात् योनिमुद्रा और त्रिखण्डा मुद्रा का न्यास क्रमशः द्वादशान्त और दोनों पैरों के अंगूठों में करें। 'द्वादशान्त' का अर्थ है—ललाट का ऊपरी भाग।

चक्रनायिका त्रिपुरा, सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा और बौद्ध दर्शन का मूलाधार में न्यास करें।।४०९-४१३।।

प्रयोग-क्रम इस प्रकार है—

१. ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नम: — दक्षपाद अंगुष्ठे
२. ह्रीं श्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रायै नम: — वामपाद अंगुष्ठे
३. ह्रीं श्रीं सर्वाकर्षिणीमुद्रायै नम: — दक्षिणपार्श्वे
४. ह्रीं श्रीं सर्ववशङ्करीमुद्रायै नम: — वामपार्श्वे
५. ह्रीं श्रीं सर्वोन्मादिनीमुद्रायै नम: — दक्षिणजानुनि
६. ह्रीं श्रीं सर्वमहाङ्कुशामुद्रायै नम: — वामजानुनि
७. ह्रीं श्रीं सर्वखेचरीमुद्रायै नम: — दक्षिणस्कन्धे
८. ह्रीं श्रीं सर्वबीजामुद्रायै नम: — वामस्कन्धे
९. ह्रीं श्रीं सर्वयोनिमुद्रायै नम: — द्वादशान्ते (ललाट-ऊर्ध्वे)
१०. ह्रीं श्रीं सर्वत्रिखण्डामुद्रायै नम: — पाद अंगुष्ठयो:

ह्रीं श्रीं त्रिपुरायै नम:। ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नम:। ह्रीं श्रीं बौद्धदर्शनाय नम:—मूलाधारे।

[द्वितीयावरणन्यास:]

ततः षोडशपत्राय नमोऽन्ते व्यापकं न्यसेत्।
कामाकर्षिणिकाद्याश्च विन्यसेदेषु साधकः।।४१४।।
दक्षकर्णे दक्षपृष्ठे कूर्परे करपृष्ठके।
दक्षोरुजानुगुल्फेषु पादतले क्रमेण तु।।४१५।।
विलोमेनैषु देशेषु वामेषु च प्रविन्यसेत्।
सर्वाशापूरके सृष्टिचक्रे षोडशपत्रके।।४१६।।
एताः सर्वास्तु योगिन्यो गुप्ता रक्षन्तु भूतले।
अनेन व्यापकं कृत्वा नायिकां त्रिपुरेश्वरीम्।।४१७।।
सर्वविद्राविणीं मुद्रां तथा वै ब्रह्मदर्शनम्।
एतत्त्रयं न्यसेल्लिङ्गे गुरुणोक्तविधानतः।।४१८।।

अथ वृत्तान्तः षोडशदले सर्वशापरिपूरके सृष्टिचक्रे न्यासमाह—तत इत्यादिना। तथा च, ह्रीं श्रीं षोडशदलपद्माय नम इति वक्ष्यमाणदक्षकर्णादिषु व्यापकत्वेन विन्यसेदित्यर्थः। कामाकर्षिणिकाद्याश्चेति। दक्षकर्णादिपादतलान्तेष्वष्टस्वङ्गेषु, विलोमेनैषु देशेष्वित्याद्यभिधानात् पादतलादिवामकर्णान्तेषु चाष्टस्वङ्गेष्विति षोडशाङ्गेषु षोडशपत्ररूपेषु कामाकर्षिणीप्रभृतयः षोडश गुप्तयोगिन्यो न्यस्तव्या इत्यर्थः। व्यक्तमाह योगिनीहृदये तृतीयपटले—

तदन्तः षोडशदल-पद्माय नम इत्यपि।
विन्यस्य तद्दले कामाकर्षिण्याद्याश्च विन्यसेत्।
दलानि दक्षिणश्रोत्रपृष्ठमंसञ्च कूर्परम्।
करपृष्ठं चोरुजानुगुल्फपादतलं तथा।
वामपादतलाद्येवमेतदेवाष्टकं मतम्।। इति।

कामाकर्षिण्याद्यास्तु–कामाकर्षिणी–बुद्ध्याकर्षिण्यहङ्काराकर्षिणी–शब्दाकर्षिणी–स्पर्शाकर्षिणी–रूपाकर्षिणी–रसाकर्षिणी–गन्धाकर्षिणी–चित्ताकर्षिणी–धैर्याकर्षिणी–स्मृत्याकर्षिणी–नामाकर्षिणी–बीजाकर्षिण्यात्माकर्षिण्यमृताकर्षिणीशरीराकर्षिण्यः षोडश। एतत्प्रमाणादयस्त्वष्टादशप्रकाशे पूजाप्रकरणे वक्ष्यन्ते। तत्र च—

बीजद्वयस्वराद्याश्च आकर्षिण्यन्तकाः क्रमात्।
नित्याकलेति च ततः सप्ताक्षर्याऽर्चयेत् क्रमात्।।

इति तन्त्रराजचतुर्थपटलोक्तेः पूर्ववद् ह्रीं श्रीमिति बीजद्वयपूर्वकमेकैकस्वरयोगेण न्यासः कर्त्तव्यः। तथा च ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणीनित्याकलायै नम इति दक्षकर्णे। ह्रीं श्रीं आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलायै नम इति दक्षपृष्ठे। एवं दक्षपादतलावधि गन्धाकर्षिण्यन्ता विन्यस्य पुनर्वामपादतलाद् दक्षकर्णावधि चित्ताकर्षिण्याद्यां अष्टौ न्यसेत्। तत्क्रमस्तु ह्रीं श्रीं ॡं चित्ताकर्षिणीनित्याकलायै नम इति वामपदतले। ह्रीं श्रीं ॡं धैर्याकर्षिणीनित्याकलायै नम इति वामगुल्फे। एवमन्येषामपि प्रयोगक्रमो बोध्यः।

एता इति। एताः सर्वास्त्वित्यादि निरुक्तसृष्टिचक्रे व्यापकत्वेन विन्यस्य इत्यर्थः। नायिकामिति श्रीचक्रनायिकामित्यर्थः। तथा च पूर्ववत् बीजद्वयमुच्चार्य त्रिपुरेश्वरीचक्रनायिकायै नमः, सर्वविद्राविणीमुद्रायै नमः, तथा ब्रह्मदर्शनाय नम एतत्त्रयं लिङ्गे न्यसेत्। **गुरुणोक्तविधानत इति**। त्रिपुरार्चनरहस्य–तन्त्रसारीयपूजाप्रकरणयोस्तु चक्रनायिकाया बालाबीजपूर्वकत्वं सर्वविद्राविणीमुद्रायाश्च मायाबीजपूर्वकत्वं दृश्यते। तन्त्रसारे ब्रह्मदर्शनायेत्यत्र बौद्धदर्शनायेति। त्रिपुरार्चनरहस्ये त्वस्य परिग्रहो न कृतः। एवञ्चात्र नानातन्त्रेषु मतभेददर्शनात् स्वस्वगुरूपदेशानुसारेण प्रवर्त्तितव्यमित्येवाऽऽह—**गुरुणोक्तविधानत इत्यनेन**।

प्रथम आवरण की २८ देवियों का न्यास करने के बाद द्वितीय आवरण की कामाकर्षिणी आदि १६ गुप्तयोगिनियों का न्यास करे।

'ह्रीं श्रीं षोडशदलपद्माय नमः'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद (१) दाहिने कान, (२) दाहिनी पीठ, (३) दाहिनी कोहनी, (४) दाहिने करपृष्ठ, (५) दाहिने ऊरु, (६) दाहिने घुटने, (७) दाहिने गुल्फ (एड़ी) और (८) दाहिने पग तल में न्यास करने के बाद वाम पगतल से प्रारम्भ कर क्रमशः इन्हीं ८ अवयवों में न्यास करें। कामाकर्षिणी आदि योगिनियों के नाम के आगे 'अ-आ' आदि एक-एक स्वर की योजना कर लें।

चक्रनायिका त्रिपुरेश्वरी, सर्वविद्राविणी मुद्रा और ब्रह्मदर्शन का गुरु-उपदिष्ट विधान से लिंग में न्यास करें।।४१४-४१८।।

प्रयोग-क्रम—

१. ह्रीं श्रीं अं कामकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणकर्णे
२. ह्रीं श्रीं आं बुद्ध्याकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणपृष्ठे
३. ह्रीं श्रीं इं अहंकाराकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणकूर्परे
४. ह्रीं श्रीं ईं शब्दाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणकरपृष्ठे
५. ह्रीं श्रीं उं स्पर्शाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणउरौ
६. ह्रीं श्रीं ऊं रूपाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणजानुनि
७. ह्रीं श्रीं ऋं रसाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिणगुल्फे
८. ह्रीं श्रीं ॠं गन्धाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — दक्षिण पगतले
९. ह्रीं श्रीं ऌं चित्ताकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वाम पगतले
१०. ह्रीं श्रीं ॡं धैर्याकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामगुल्फे
११. ह्रीं श्रीं एं स्मृत्याकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामजानुनि
१२. ह्रीं श्रीं ऐं नामाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वाम उरौ
१३. ह्रीं श्रीं ओं बीजाकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामकरपृष्ठे
१४. ह्रीं श्रीं औं आत्माकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामकूर्परे
१५. ह्रीं श्रीं अं अमृताकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामकरपृष्ठे
१६. ह्रीं श्रीं अ: शरीराकर्षिणी-नित्याकलायै नम: — वामकर्णे

ह्रीं श्रीं त्रिपुरेश्वरी चक्रनायिकायै नम:। ह्रीं श्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रायै नम:। ह्रीं श्रीं ब्रह्मदर्शनाय नम:—मूलाधारे।

विमर्श—इस आवरण में पूज्य दर्शन को लेकर तन्त्रग्रन्थों में मतभेद है। अत: ग्रन्थकार का कहना है—गुरुदेव के बताये गये अनुसार इस चक्र में पूज्य दर्शन के नाम का समावेश करें।

[तृतीयावरणन्यास:]

ततोऽष्टदलपद्माय नमोऽन्ते व्यापकं न्यसेत्।
अनङ्गकुसुमादीनि दैवतानि न्यसेत्तत:।।४१९।।
दक्षगण्डे स्तनोद्ध्र्वे च दक्षोरौ दक्षगुल्फके।
वामगुल्फादिकं कृत्वा विलोमेनैषु साधक:।।४२०।।

एवं द्वितीयावरणे षोडशदले न्यासस्य प्रक्रियामभिधाय तदन्तस्तृतीयावरणेऽष्टदले न्यासस्य प्रक्रियामाह—तत इत्यादिना। अत्रापि विशेषानभिधानात् पूर्ववन्मायाश्रीबीज-

पूर्वकत्वमवगन्तव्यम्। तथाऽष्टादशप्रकाशे चक्रपूजाप्रकरणे 'अष्टपत्रे यजेन्मन्त्री कादिवर्गान्तकेन च' इति वक्ष्यमाणत्वात् त्रिपुरार्चनरहस्यकारैरपि तथैव न्यासप्रयोगस्याभिधानाच्च वर्गाद्यवर्णपूर्वकमनङ्गकुसुमादीनामष्टानां न्यासः कर्त्तव्य इति तत्त्वम्। तथा च ह्रीं श्रीं अष्टदलपद्माय नम इति व्यापकत्वेन विन्यसेदित्यर्थः। त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि— ततोऽनङ्गकुसुमादिस्थानेषु अष्टदलपद्मचक्राय नम इति संव्याप्येत्युक्तम्। अनङ्गेति। ततो दक्षगण्डादिदक्षगुल्फान्ते स्थानचतुष्टये तथा विलोमेन वामगुल्फादिवामगण्डान्ते स्थानचतुष्टये क्रमेणानङ्गकुसुमाद्या अष्टौ न्यसेदिति सम्बन्धः। अनङ्गकुसुमाद्याश्च अनङ्गकुसुमानङ्गमेखलानङ्गमदनानङ्गमदनातुरानङ्गरेखानङ्गवेगिन्यनङ्गाङ्कुशानङ्गमालिन्यः। प्रमाणादयस्तु अष्टादशे वक्ष्यन्ते। तथा च ह्रीं श्रीं कं अनङ्गकुसुमायै नम इति दक्षगण्डे। इत्यादिक्रमेण दक्षगुल्फावधि विन्यस्य पुनर्विलोमेन ह्रीं श्रीं पं अनङ्गरेखायै नम इत्यादिक्रमेण वामगुल्फतो वामगण्डावधि अनङ्गमालिन्यन्ता विन्यसेदिति फलितम्। शिष्टं सुगमम्।

तृतीयावरण न्यास—द्वितीयावरण न्यास करने के बाद 'ह्रीं श्रीं अष्टदलपद्माय नमः' इस मन्त्र से व्यापक न्यास करें। तत्पश्चात् (१) दक्ष गण्ड, (२) दक्षिण स्तन (ऊर्ध्वभाग), (३) दक्षिण ऊरु, (४) दक्षिण गुल्फ के बाद, (५) वामगुल्फ से प्रारम्भ कर क्रमशः, (६) वाम ऊरु, (७) वाम स्तन और (८) वाम गण्ड में अनंगकुसुमा आदि गुप्ततर योगिनियों का न्यास करें। अनंगकुसुमा आदि के नाम के आगे 'ककारादि' प्रथम वर्गाक्षरों की योजना कर लें।

तृतीयावरणे सृष्टिचक्रे संक्षोभकारके।
एता गुप्ततराः सर्वाः पान्तु चाष्टदले स्थिताः।।४२१।।
अनेन व्यापकं कृत्वा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
आकर्षिणीं महामुद्रां तथा वै शैवदर्शनम् ।
एतन्न्यासं नाभिदेशे विन्यसेत् साधकोत्तमः।।४२२।।

अनेनेति तृतीयावरण इत्यादिनेत्यर्थः। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु एता गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसंक्षोभणे चक्रे समुद्रा इति चतुष्टयं हृदये विन्यस्येत्युक्तम्। **श्रीमदिति।** श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः सर्वाकर्षिण्यै नमः शैवदर्शनाय नम इति च नाभिदेशे न्यसेदिति फलितम्।

सर्वसंक्षोभण नामक इस तृतीय चक्र में आठ कमलदल हैं, जिनमें से प्रत्येक कमलदल में अनंगकुसुमा आदि गुप्ततर योगिनियों का निवास है। त्रिपुरसुन्दरी इसकी चक्रनायिका हैं। आकर्षिणी, महामुद्रा और शैवदर्शन की इस चक्र में पूजा होती है। अनंगकुसुमा आदि का न्यास करने के बाद चक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी, आकर्षिणी महामुद्रा और शैवदर्शन का नाभि में न्यास करें।।४२१-४२२।।

प्रयोग-क्रम इस प्रकार है—

‘ह्रीं श्रीं अष्टदलपद्माय नमः’ से व्यापक न्यास करें। इसके बाद—

(१) ह्रीं श्रीं कं —अनंगकुसुमायै नमः — दक्षगण्डे
(२) ह्रीं श्रीं चं —अनंगमेखलायै नमः — दक्षस्तने
(३) ह्रीं श्रीं टं —अनंगमदनायै नमः — दक्ष ऊरौ
(४) ह्रीं श्रीं तं —अनंगमदनातुरायै नमः — दक्षगुल्फे
(५) ह्रीं श्रीं पं —अनंगरेखायै नमः — वामगुल्फे
(६) ह्रीं श्रीं यं —अनंगवेगिन्यै नमः — वाम ऊरौ
(७) ह्रीं श्रीं शं —अनंगाङ्कुशायै नमः — वामस्तने
(८) ह्रीं श्रीं ळं क्षं —अनंगमालिन्यै नमः — वामगण्डे

ह्रीं श्रीं चक्रनायिकात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। ह्रीं श्रीं आकर्षिणीमहामुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं शैवदर्शनाय नमः—नाभौ।

[चतुर्थावरणन्यासः]

चतुर्दशारचक्राय नमोऽन्ते व्यापकं न्यसेत्।
सर्वसंक्षोभिणीत्याद्यास्तस्य कोणेषु साधकः।।४२३।।
ललाटदक्षिणे भागे गण्डांस-पृष्ठकेषु च।
पार्श्वान्तरूरुजङ्घासु दक्षावर्त्तेन विन्यसेत्।।४२४।।
विलोमेनैषु देशेषु पृष्ठे पश्चादियान् क्रमः।
चक्रे सत्सम्प्रदायिन्यः पान्तु कोणे चतुर्दशे।।४२५।।
अनेन व्यापकं कृत्वा त्रिपुरावासिनीं बुधः।
वश्यमुद्रां तथा सूर्यदर्शनं हृदये न्यसेत्।।४२६।।

अथाष्टदलान्तश्चतुर्दशारचक्रप्रक्रियां निरूपयति—**चतुर्दशेत्यादिना**। अत्रापि पूर्ववन्मायाश्रीबीजपूर्वकं कादिढान्ताक्षरयोजनया विन्यसेत् । तथा च चतुर्दशारचक्रायेति संव्याप्य ललाटदक्षिणभागादिदक्षजङ्घान्तेषु सप्तस्थानेषु सर्वसंक्षोभिण्याद्याः सप्त विन्यस्य पुनर्विलोमक्रमेण वामजङ्घादिललाटवामभागान्तेषु पृष्ठवर्जं विन्यस्य पश्चादिति सर्वावसाने पृष्ठे योगिनीमन्त्यां विन्यसेदित्यर्थः। योगिनीहृदये तृतीयपटले तु—

ललाटं दक्षभागञ्च दक्षगण्डांसमध्यतः।
पार्श्वान्तरूढजङ्घान्तर्वामजङ्घादि पार्वति।।
वामोर्वन्तं वामपार्श्वं वामांसे वामगण्डकम्।
ललाटयाममध्ये च तथा वै पृष्ठमित्यपि।।

इति वचने दक्षपृष्ठे न्यासमनभिधाय ललाट-ललाटदक्षभागभेदेन दक्षांशे स्थानसप्तकमुक्तम्। अत्र तु दशपृष्ठोपादानात् ललाटदक्षभाग एव न्यासो न तु

ललाटमध्यदेशेऽपीति पूर्णानन्दानामाशय: प्रतिभातीति ध्येयम्। अत्र पृष्ठशब्द: शिर:-पृष्ठबोधक:। तदुक्तममृतानन्दनाथेन योगिनीहृदयटीकायाम्—'पृष्ठमिति शिरस: पृष्ठमिति ज्ञेयम्' इति।

सर्वसंक्षोभिण्याद्यास्तु—सर्वसंक्षोभिणी-सर्वविद्राविणी-सर्वाकर्षिणी-सर्वाह्लादिनी-सर्वसम्मोहिनी-सर्वस्तम्भिनी-सर्वजृम्भिणी-सर्ववशङ्करी-सर्वरञ्जनी-सर्वोन्मादिनी-सर्वार्थसाधिनी-सर्वसम्पत्तिपूरणी-सर्वमन्त्रमयी-सर्वद्वन्द्वक्षयङ्कर्यश्चतुर्दश। विशेषोऽष्टादशे द्रष्टव्य:।

एवञ्च ह्रीं श्रीं कं सर्वसंक्षोभिणीशक्त्यै नम इति दक्षललाटे, ह्रीं श्रीं खं सर्वविद्राविण्यै नम इति दक्षगण्डे इत्येवं क्रमेण न्यस्य पुन: ह्रीं श्रीं जं सर्ववशङ्कर्यै नम इत्यादिक्रमेण वामजङ्घादिषु ललाट-दक्षभागान्तेषु न्यसेदिति फलितम्।

तत: करणीयमाह—**चक्र इत्यादिना**। एवञ्च, चक्रे सत्सम्प्रदायिन्य इत्यादि-व्यापकत्वेन विन्यस्य हृदये प्रथमं त्रिपुरावासिनीं चक्रेश्वरीं ततो वश्यमुद्रां तत: सूर्यदर्शनञ्च विन्यसेदित्यर्थ:।

चतुर्थावरण न्यास—सर्वसौभाग्यदायक नामक इस चतुर्थ चक्र में चौदह त्रिकोण हैं। इन त्रिकोणों में सर्वसंक्षोभिणी आदि सम्प्रदाययोगिनियों का वास है। पूजन और न्यास के समय इनमें से प्रत्येक योगिनी के नाम के आगे 'क'कारादि क्रम से एक-एक वर्ण की योजना की जाती है। त्रिपुरवासिनी इसकी चक्रनायिका हैं। इस चक्र में वश्य मुद्रा और सूर्यदर्शन की पूजा की जाती है।

सर्वसंक्षोभिणी आदि योगिनियों का (१) दक्ष ललाट, (२) दक्षिण गण्ड, (३) दक्षिण स्कन्ध, (४) दक्षिण पृष्ठ, (५) दक्षिण पार्श्व, (६) दक्षिण ऊरू तथा (७) दक्षिण जंघा में न्यास करके (८) वाम जंघा, (९) वाम ऊरू, (१०) वाम पार्श्व, (११) वाम पृष्ठ, (१२) वाम स्कन्ध, (१३) वाम गण्ड और (१४) वाम ललाट में न्यास किया जाता है।

'ह्रीं श्रीं चतुर्दशारचक्राय नम:'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करके सर्वसंक्षोभिणी आदि योगिनियों का न्यास करें। यथा—

१. ह्रीं श्रीं कं सर्वसंक्षोभिणीशक्त्यै नम: — दक्षललाटे
२. ह्रीं श्रीं खं सर्वविद्राविणीशक्त्यै नम: — दक्षगण्डे
३. ह्रीं श्रीं गं सर्वाकर्षिणीशक्त्यै नम: — दक्षस्कन्धे
४. ह्रीं श्रीं घं सर्वाह्लादिनीशक्त्यै नम: — दक्षपृष्ठे
५. ह्रीं श्रीं ङं सर्वसम्मोहिनीशक्त्यै नम: — दक्षपार्श्वे
६. ह्रीं श्रीं चं सर्वस्तम्भिनीशक्त्यै नम: — दक्ष उरौ
७. ह्रीं श्रीं छं सर्वजृम्भिणीशक्त्यै नम: — दक्षजंघे

८. ह्रीं श्रीं जं सर्ववशंकरीशक्त्यै नमः — वामजंघे
९. ह्रीं श्रीं झं सर्वरञ्जिनीशक्त्यै नमः — वामउरौ
१०. ह्रीं श्रीं ञं सर्वोन्मादिनीशक्त्यै नमः — वामपार्श्वे
११. ह्रीं श्रीं टं सर्वार्थसाधिनीशक्त्यै नमः — वामपृष्ठे
१२. ह्रीं श्रीं ठं सर्वसम्पत्तिपूरणीशक्त्यै नमः — वामस्कन्धे
१३. ह्रीं श्रीं डं सर्वमन्त्रमयीशक्त्यै नमः — वामगण्डे
१४. ह्रीं श्रीं ढं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरीशक्त्यै नमः — वामललाटे

ह्रीं श्रीं चक्रेश्वरीत्रिपुरवासिन्यै नमः। ह्रीं श्रीं सर्ववश्यमुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं सूर्यदर्शनाय नमः—हृदये।

[पञ्चमावरणन्यासः]

बहिर्दशारचक्राय नमोऽन्ते व्यापकं चरेत्।
दक्षाक्षिनासिकामूलनेत्रेषूदरदक्षिणे ।।४२७।।
वायुकोणे जानुयुग्मे गुह्यदेशे न्यसेदपि।
वामकुक्षौ निर्ऋतौ च सर्वसिद्ध्यादिदेवताम्।।४२८।।
सर्वार्थसाधके चक्रे पञ्चमावरणे स्थिताः।
चक्रे मां कुलयोगिन्यो रक्षन्तु दश देवताः।।४२९।।
अनेन व्यापकं कृत्वा त्रिपुराश्रियमप्यथ।
उन्मादिनीं वैष्णवञ्च दर्शनं गलकूपके।।४३०।।

श्रीयन्त्रे चतुर्दशारचक्रान्तर्दशकोणं चक्रद्वयं भवति। तयोर्बहिःस्थितं बहिर्दशारं तदन्तःस्थितञ्चान्तर्दशारमिति ज्ञेयम्। तत्र प्रथमं बहिर्दशारचक्रे सर्वार्थसाधकाख्ये न्यासस्य प्रक्रियामाह—**बहिरित्यादिना**। अत्रापि पूर्ववन्मायाश्रीबीजानन्तरं णादि-भान्ताक्षरं दत्त्वेति पूजाक्रमे वक्ष्यमाणत्वात् णकारादिभकारान्तमेकैकं वर्णमादौ योजयित्वा सर्वसिद्धिप्रदादिदशकुलकौलिकयोगिनीर्न्यसेत्। न्यासस्य स्थानान्याह—**दक्षाक्षीत्यादिना**। अत्रामृतानन्दनाथो योगिनीहृदयटीकायामाह—'बाहुद्वयमारभ्योरुद्वयपर्यन्तं कुक्षिशब्देन लक्ष्यते। तेन कुक्षेरुपरिभागः प्राची, अधोभागः प्रतीची, दक्षिणवामपार्श्वे दक्षिणोदीच्यौ। कोणशब्देन बाहू ऊरू च लक्ष्येते। तेन वामबाहुमूलमीशकोणो वामोरुमूलं वायुकोणो दक्षिणोरुमूलम्, नैर्ऋतकोणो दक्षिणबाहुमूलमग्निकोण' इति। एवञ्चात्र वायुकोण इत्यनेन वामोरुमूलम्, नैर्ऋत इत्यनेन च दक्षिणोरुमूलम् इत्यवगम्यते। तथा च दक्षचक्षुषि, नासिकामूले वामचक्षुषि ततश्चोदरदक्षिणे दक्षकुक्षावित्यर्थः, ततो वामोरुमूले दक्षजानुनि वामजानुनि गुह्यदेशे वामकुक्षौ दक्षिणोरुमूले च स्थानदशके क्रमेण सर्वसिद्ध्यादिदेवता न्यसेदिति फलितार्थः। सर्वसिद्ध्यादयश्च—सर्वसिद्धिप्रदा-सर्वसम्पत्प्रदा-सर्वप्रियङ्करी-सर्वमङ्गलकारिणी-सर्वकामप्रदा-सर्वदुःखमोचिनी-

सर्वमृत्युप्रशमनी–सर्वविघ्नविनाशिनी–सर्वाङ्गसुन्दरी–सर्वसौभाग्यदायिन्योऽष्टादशप्रकाशे वक्ष्यमाणाः। एवञ्च ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदायै नम इति दक्षचक्षुषि, ह्रीं श्रीं तं सर्वसम्पत्प्रदायै नम इति नासिकामूले एवं क्रमेणान्येष्वपि निरुक्तेष्वङ्गेषु न्यसेदिति फलितम्।

ततः करणीयमाह—**सर्वार्थेत्यादिना**। तथा च सर्वार्थेत्यादि व्यापकत्वेन विन्यस्य त्रिपुराश्रियं चक्रेश्वरीम् उन्मादिनीं वैष्णवदर्शनञ्च गलकूपे न्यसेदित्यर्थः। इति पञ्चमावरणन्यासः।

पञ्चम आवरण—श्रीचक्र में दो दशार चक्र हैं—अन्तर्दशार और बहिर्दशार। सर्वार्थसाधक चक्र-संज्ञक बहिर्दशार पञ्चम आवरण है। इस चक्र में सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस (१०) कुलोत्तीर्ण योगिनियों का वास है। इस चक्र की नायिका त्रिपुराश्री हैं। इस चक्र में सर्व उन्मादिनी मुद्रा और वैष्णव दर्शन की पूजा होती है।

'ह्रीं श्रीं बहिर्दशारचक्राय नमः'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद वक्ष्यमाण अंगों में सर्वसिद्धिप्रदा आदि कुलोत्तीर्ण योगिनियों का न्यास करें। यथा—

१. ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदादेव्यै नमः — दक्षिणनेत्रे
२. ह्रीं श्रीं तं सर्वसम्पत्प्रदादेव्यै नमः — नासिकामूले
३. ह्रीं श्रीं थं सर्वप्रियङ्करीदेव्यै नमः — वामनेत्रे
४. ह्रीं श्रीं दं सर्वमंगलकारिणीदेव्यै नमः — दक्षिणकुक्षौ
५. ह्रीं श्रीं धं सर्वकामप्रदादेव्यै नमः — वाम उरुमूले
६. ह्रीं श्रीं नं सर्वदुःखविमोचिनीदेव्यै नमः — दक्षजानुनि
७. ह्रीं श्रीं पं सर्वमृत्युप्रशमिनीदेव्यै नमः — वाम जानुनि
८. ह्रीं श्रीं फं सर्वविघ्ननिवारिणीदेव्यै नमः — गुह्यदेशे
९. ह्रीं श्रीं बं सर्वांगसुन्दरीदेव्यै नमः — वामकुक्षौ
१०. ह्रीं श्रीं भं सर्वसौभाग्यदायिनीदेव्यै नमः — दक्षिण उरुमूले

ह्रीं श्रीं त्रिपुरा श्री चक्रनायिकायै नमः। ह्रीं श्रीं सर्वोन्मादिनी मुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं वैष्णव दर्शनाय नमः—गलकूपके

[षष्ठावरणन्यासः]

अन्तर्दशारचक्राय नमोऽन्ते व्यापकं चरेत् ।
सर्वज्ञाद्यास्ततो मन्त्री न्यसेदेषु समाहितः।।४३१।।
नासायामथ सृक्कण्यां तले वै वृषणे गुदे।
ततो वामक्रमेणैव वृषणे विन्यसेत् स्तने।।४३२।।
सृक्कण्यां नासिकायाञ्च नयने साधकोत्तमः।
पान्तु नो दशकोणे ताः सर्वरक्षाकरे स्थिताः।।४३३।।

चक्रे निगर्भयोगिन्यः षष्ठकावरणे स्थिताः।
अनेन व्यापकं कृत्वा त्रिपुरामालिनीं तथा।।४३४।।
महाङ्कुशां महामुद्रां जिनदर्शनमेव च।
एतत्त्रयं भ्रुवोर्मध्ये विन्यसेत् साधकोत्तमः।।४३५।।

एवं बहिर्दशारचक्रन्यासमभिधायान्तर्दशारचक्रन्यासक्रममाह—**अन्तरित्यादिना।** अत्रापि पूर्ववन्मायाश्रीबीजयोगः कर्त्तव्यः। एवञ्च ह्रीं श्रीं अन्तर्दशारचक्राय नम इति कोणदशकव्यापकत्वेन विन्यसेदित्यर्थः। तत इति। मन्त्री मन्त्ररहस्यज्ञः समाहितः सन् सर्वज्ञाद्या दश एषु वक्ष्यमाणस्थानेषु विन्यसेत् । सर्वज्ञाद्यास्तु—सर्वज्ञा-सर्वशक्ति-सर्वैश्वर्यप्रदायिनी-सर्वज्ञानमयी-सर्वव्याधिविनाशिनी-सर्वाधारस्वरूपा-सर्वपापहरा-सर्वानन्दमयी-सर्वरक्षास्वरूपिणी-सर्वेप्सितफलप्रदाख्या वक्ष्यमाणाः।

पूर्ववचने न्यसेदेषु समाहित इत्युक्तम्, तानि न्यासस्थानानि निरूपयति—**नासायामित्यादिना। वामक्रमेणैवेति।** प्रथमं नासादिमुदान्तेषु सर्वज्ञाद्याः सर्वव्याधि-विनाशिन्यन्ताः पञ्च दक्षक्रमेण विन्यस्य पुनः सर्वाधारस्वरूपादिसर्वेप्सितफलप्रदान्ताः पञ्च वामवृषणादिनेत्रान्तेषु विन्यसेदिति फलितम् । योगिनीहृदये तृतीयपटले तु—

दक्षनासा सृक्किणी च स्तनं वृषणमेव च।
सांविनी वाममुष्कञ्च स्तनं सृक्किणि नासिके।
नासाग्रञ्चैव विज्ञेयं कोणानां दशकं तथा।।

इत्यनेन नयनस्य निरुक्तन्यासयोग्याङ्गत्वेन ग्रहणमकृत्वा तत्र नासाग्रे न्यासोऽभिहितः। एवमेव त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि। एवञ्चात्रागमभेदेन न्यासस्य क्रमभेदो वर्त्तत इति बोध्यम्। अत्राष्टादशप्रकाशे 'मादिक्षान्ताक्षरैर्यजेदि'ति वक्ष्यमाणत्वात् मायाश्रीबीजानन्तरं मकारादि-क्षकारान्तैकैकाक्षरयोगेण न्यासः कर्त्तव्य इति बोध्यम्। एवञ्च ह्रीं श्रीं गं सर्वज्ञायै नम इति दक्षनासायाम्, ह्रीं श्रीं यं सर्वशक्त्यै नम इति वामनासायाम्। एवंक्रमेण सृक्कण्यादिष्वपि न्यासः कर्त्तव्यः। ततश्च ह्रीं श्रीं शं सर्वाधारस्वरूपायै नम इत्यादिक्रमेण वामवृषणादिषु विन्यसेदिति बोध्यम्।

पान्त्वित्यादि। ततश्च पान्तु नो दशकोणे वा इत्यादिना संव्याप्य प्रथमं प्रागुक्तक्रमेण चक्रेश्वरीं त्रिपुरामालिनीं ततश्च महाङ्कुशमहामुद्रां जिनदर्शनञ्च भ्रूमध्ये न्यसेदिति षष्ठावरणन्यासः।

षष्ठ आवरण न्यास—दस कोणों वाला अन्तर्दशार चक्र श्री श्रीयन्त्र का छठवाँ चक्र है। सर्वज्ञा आदि निगर्भ योगिनियों का इस चक्र में वास है। भगवती त्रिपुर मालिनी इस चक्र की नायिका हैं। महाङ्कुशा मुद्रा और जिन दर्शन की इस चक्र में पूजा होती है। इसका नाम 'सर्वरक्षाकर चक्र' है।

'ह्रीं श्रीं अन्तर्दशारचक्राय नमः'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करके सर्वज्ञा आदि योगिनियों का क्रम से दक्षिण नासापुट, वाम नासापुट, सृक्कणी, वृषण, गुदा, वाम वृषण, सृक्कणी, नासिका और नयन में क्रमशः न्यास करें। प्रयोगक्रम है—

१. ह्रीं श्रीं मं सर्वज्ञायै नमः — दक्षनासायाम्
२. ह्रीं श्रीं यं सर्वशक्त्यै नमः — वामनासायाम्
३. ह्रीं श्रीं रं सर्वैश्वर्यप्रदायै नमः — सृक्कण्यां
४. ह्रीं श्रीं लं सर्वज्ञानमय्यै नमः — तले
५. ह्रीं श्रीं वं सर्वव्याधिविनाशिन्यै नमः — गुदे
६. ह्रीं श्रीं शं सर्वाधारस्वरूपायै नमः — वामवृषणे
७. ह्रीं श्रीं षं सर्वपापहरायै नमः — स्तने
८. ह्रीं श्रीं सं सर्वानन्दमय्यै नमः — सृक्कण्यां
९. ह्रीं श्रीं हं सर्वरक्षास्वरूपिण्यै नमः — नासिकायाम्
१०. ह्रीं श्रीं क्षं सर्वेप्सितफलप्रदायै नमः — नयने

ह्रीं श्रीं चक्रेश्वरी त्रिपुरामालिन्यै नमः। ह्रीं श्रीं महाङ्कुशामुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं जिनदर्शनाय नमः—भ्रूमध्ये।

[सप्तमावरणन्यासः]

अथाष्टारकचक्राय नमोऽन्तं व्यापकं न्यसेत्।
वशिन्याद्यष्ट वाग्देवीरेषु स्थानेषु विन्यसेत्।।४३६।।
चिबुके दक्षिणे कण्ठे हृदये नाभिदेशतः।
विलोमेनैषु देशेषु वामेषु विधिनाऽमुना।।४३७।।
एता रहस्ययोगिन्यः पान्तु कोणाष्टके सदा।
अनेन व्यापकं कृत्वा त्रिपुरां सिद्धिनायिकाम्।।४३८।।
खेचर्याख्यां महामुद्रां शक्तिदर्शनमप्यथ।
एतत्त्रयं ललाटे तु विन्यसेत् साधकाग्रणीः।।४३९।।

अथ निरुक्तान्तर्दशारचक्रान्तरष्टारचक्रन्यासमाह—**अथेति**। तथाच ह्रीं श्रीं अष्टारचक्राय नम इति व्यापकत्वेन विन्यस्य वशिन्याद्या अष्टौ वाग्देवता एषु वक्ष्यमाणेषु स्थानेषु प्रविन्यसेदिति सम्बन्धः। तानि स्थानान्याह—**चिबुक इत्यादिना**। **विधिनाऽमुनेति** वशिन्यादिन्यासक्रमोक्तविधिनेत्यर्थः। आदौ चिबुकादिनाभ्यन्तस्थानचतुष्टये दक्षभागे वशिन्यादिचतुष्कं विन्यस्य पुनर्विलोमेन नाभ्यादिचिबुकान्तवामांशेषु अरुणादिचतुष्कं विन्यसेत्। न्यासस्तु ह्रीं श्रीमिति बीजद्वयपूर्वकं प्रागुक्तवशिन्यादिन्यास-

क्रमानुसारेणैव कर्त्तव्य इत्यलमत्र विस्तरतस्तत्प्रदर्शनेन। तद्दिङ्मात्रं प्रदर्श्यते—ह्रीं श्रीं ततः अं इत्यतः अः इत्यन्तं ततो ब्लुं वशिनीवाग्देवतायै नम इति वामचिबुके। एवमन्यत्राप्यूह्यम्।

ततः करणीयमाह—**एता** इत्यादिना। तथा च एता रहस्ययोगिन्य इत्यादि व्यापकत्वेन विन्यस्य निरुक्तबीजपूर्वकं त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वर्यै नमः, खेचरीमुद्रायै नमः, शक्तिदर्शनाय नम इत्येतत्त्रयं ललाटे न्यसेदिति फलितम्। इति सप्तमावरणन्यासः।

सप्तमावरण न्यास—आठ कोणों वाला अष्टार चक्र श्रीयन्त्र का सातवाँ चक्र है। वशिनी आदि अष्ट वाग्देवताओं का यहाँ वास है। भगवती त्रिपुरासिद्धा इस चक्र की नायिका हैं। खेचरी मुद्रा तथा शक्ति दर्शन की यहाँ पूजा की जाती है।

'ह्रीं श्रीं अष्टारचक्राय नमः'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद वशिनी आदि वाग्देवताओं का न्यास करें। यथा—

(१) ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं
ओं औं अं अः ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः— दक्षिणचिबुके
(२) ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं क्ल्ह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नम— दक्षिणकण्ठे
(३) ह्रीं श्रीं चं छं जं झं ञं न्वलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः— दक्षिणहृदये
(४) ह्रीं श्रीं टं ठं डं ढं णं य्लू विमलावाग्देवतायै नमः— दक्षिणनाभौ
(५) ह्रीं श्रीं तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नम— वामनाभौ
(६) ह्रीं श्रीं पं फं बं भं मं हस्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै नम— वामहृदये
(७) ह्रीं श्रीं यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम— वामकण्ठे
(८) ह्रीं श्रीं शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः— वामचिबुके

दक्षिण चिबुक आदि का अर्थ है कि चिबुक आदि के दाहिने भाग में न्यास करके फिर विलोमक्रम से उन्हीं अंगों के बाँयें भाग में न्यास करें।

'ह्रीं श्रीं एताः रहस्ययोगिन्यः कोणाष्टके सदा पान्तु' इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद 'ह्रीं श्रीं त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वर्यै नमः। ह्रीं श्रीं खेचरीमुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं शक्तिदर्शनाय नमः'—इस मन्त्र से त्रिपुरासिद्धा आदि का ललाट में न्यास करें॥४३६-४३९॥

[अष्टमावरणन्यासः]

ततस्त्र्यस्राय चक्राय नमोऽन्तं व्यापकं न्यसेत्।
हृदयस्थत्रिकोणस्य चतुर्दिक्षु बहिः क्रमात्॥४४०॥
जम्भनादिपञ्चबाणं मोहनं धनुषस्ततः।
वशीकरणपाशञ्च स्तम्भनाङ्कुशमेव च॥४४१॥

षडङ्गयुवती तेषु न्यस्तव्या चाङ्गरूपिणी।
कामपीठञ्चाग्रकोणे जालन्धरन्तु दक्षिणे।।४४२।।
पूर्णपीठं तथा वामे वह्न्यर्कसोमसंज्ञके।
कोणत्रये च कामेशीं वज्रेशीं भगमालिनीम्।।४४३।।
एताः परातिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिदाः।
पदे त्रिकोणनिलये चक्रे पदं समुद्धरेत्।
श्रीदेव्यः पूजिताः सन्तु व्यापकत्वेन विन्यसेत्।।४४४।।
त्रिपुराम्बिकाञ्च चक्रेशीं मुद्रां बीजाभिधां तथा।
शाक्तन्तु दर्शनं मन्त्री ललाटे क्रमतो न्यसेत्।।४४५।।

अथाष्टारचक्रान्तस्त्र्यस्रचक्रन्यासं प्रदर्शयति—तत इत्यादिना। अत्रापि पूर्ववद् बीजयोगो बोध्यः। तथा च त्र्यस्राय चक्राय नमः इति व्यापकत्वेन विन्यसेदित्यर्थः। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु सान्तरालत्रिकोणचक्राय नम इति प्रयोगो दृश्यते। न्यासपरिपाटीं स्थाननिरूपणपुरःसरमाह—हृदयस्थेत्यादिना। अनाहताख्यहृत्पुण्डरीककर्णिकाभ्यन्तरीणत्रिकोणस्य बहिश्चतुर्दिक्षु क्रमेण जम्भनादिपञ्चबाणं सम्मोहनं धनुः वशीकरणपाशं स्तम्भनमङ्कुशञ्च न्यसेदिति सम्बन्धः। अत्र ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

पञ्चबाणान् समुच्चार्य कामकामेश्वरीमयान्।
जम्भनाख्यान् महेशानि पूजयेत् बाणदेवताम्।।

इत्यभिधानात् कामेश्वरबाणैः कामेश्वरीबाणैश्च न्यासः कर्त्तव्य इति ध्येयम्। अत एव त्रिपुरार्चनरहस्ये ब्रह्मानन्दपादैः द्रां द्रीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां जम्भनेभ्यः कामेश्वर-कामेश्वरीबाणेभ्यो नम इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः प्रदर्शितः। पञ्चबाणमन्त्रपूर्वकन्यासक्रमस्तु आयुधन्यासावसरे विशेषतः प्रदर्शित इति नात्र पुनरुच्यते। शिष्टं स्पष्टम्।

अष्टमावरण न्यास—श्री श्रीयन्त्र के मूल त्रिकोण का नाम 'त्र्यस्र' चक्र है। इस चक्र में कामेश्वर और कामेश्वरी के आयुधों, षडङ्ग युवतियों, कामपीठ आदि पीठत्रय तथा कामेशी आदि परापर रहस्य योगिनियों की पूजा होती है। इस आवरण का न्यास प्रयोग इस प्रकार है—

'ह्रीं श्रीं त्र्यस्राय चक्राय नमः' इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद हृदय-क्षेत्रवर्ती अनाहत चक्र में बने हुए त्रिकोण के बाहर चारो ओर क्रम से आयुधों का न्यास करें—

(१) द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं जम्भनेभ्यो कामेश्वरबाणेभ्यो नमः।
(२) यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जम्भनेभ्यो कामेश्वरीबाणाय नमः।
(३) द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां धं सम्मोहनाय कामेश्वरचापाय नमः।

(४) यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: धं सम्मोहनाय कामेश्वरीबाणाय नम:।

(५) द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: यां रां लां वां शां आं वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नम:।

(६) यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नम:।

(७) द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: यां रां लां वां शां क्रों स्तम्भनाय कामेश्वरअंकुशाय नम:।

(८) यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स: क्रों स्तम्भनाय कामेश्वरीपाशाय नम:।

आयुधों का न्यास करने के बाद सुन्दर अंगों वाली हृदयादि अंगदेवियों का न्यास करें। ये सब न्यास उक्त त्रिकोण के बाहर चारो ओर किये जाते हैं।

ऐं कएईलह्रीं हृदय देव्यै नम:।

क्लीं हसकहलह्रीं शिर:देव्यै नम:।

सौ: सकलह्रीं शिखादेव्यै नम:।

ऐं कएईलह्रीं कवचदेव्यै नम:।

क्लीं हसकहलह्रीं नेत्रदेव्यै नम:।

सौ: सकलह्रीं अस्त्रदेव्यै नम:।

षडङ्गों का न्यास करने के बाद त्रिकोण के सामने वाले कोण में कामपीठ का, दक्षिण कोण में जालन्धर पीठ का तथा बाँयें कोण में पूर्ण पीठ का न्यास करें। अग्नि-सूर्य और चन्द्रसंज्ञक इन कोणों में कामेशी, वज्रेशी तथा भगमालिनी का न्यास करें। यथा—

ह्रीं श्री क्लीं कामपीठाय नम: — अग्रकोणे
ह्रीं श्रीं क्लीं जालन्धरपीठाय नम: — दक्षिणकोणे
ह्री श्रीं क्लीं पूर्णपीठाय नम: — वामकोणे
ह्रीं श्रीं क्लीं कामेश्यै नम: — अग्रकोणे
ह्री श्रीं क्लीं वज्रेश्वर्यै नम: — दक्षिणकोणे
ह्रीं श्रीं क्लीं भगमालिन्यै नम: — वामकोणे

इसके बाद 'ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिकोणनिलये चक्रे एता: सर्वसिद्धिदा: परातिरहस्ययोगिन्य: पूजिता: सन्तु'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करें।

इसके बाद 'ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बिकायै नमः। ह्रीं श्रीं बीजमुद्रायै नमः। ह्रीं श्रीं शाक्तदर्शनाय नमः'—इस मन्त्र से क्रम से न्यास करें॥४४०-४४५॥

[नवमावरणन्यासः]

ततो बैन्दवचक्राय नमोऽन्ते व्यापकं न्यसेत्।
अतः परं ब्रह्मरूपां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्॥४४६॥
सर्वानन्दमये चक्रे त्रिकोणे नयनसंज्ञके।
श्रीदेव्यः पूजिताः सन्तु परापररहस्यगाः॥४४७॥
अनेन व्यापकं कृत्वा चक्रेशीं भैरवीं न्यसेत्।

अथ त्रिकोणान्तः सर्वानन्दमयबैन्दवचक्रन्यासव्यवस्थामाह—तत इत्यादिना। परंबिन्दुरूपश्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यधिष्ठितत्वादस्य बैन्दवचक्रत्वम्। तथा च बैन्दवचक्राय नम इति व्यापकत्वेन विन्यस्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीञ्च सर्वानन्दमये चक्रे विन्यस्य श्रीदेव्य इत्यादि व्यापकत्वेन विन्यसेदिति फलितम्। **चक्रेशीमिति।** त्रिपुरभैरवीचक्रेश्वर्यै नम इति निरुक्तचक्रे न्यसेदित्यर्थः। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु बैन्दवचक्राय नम इत्यनन्तरं मूलपूर्वकं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं नम इति विन्यस्य मूलमुच्चार्य त्रिपुरभैरवीचक्रेश्वर्यै नम इत्यादि न्यसेदिति क्रमो दृश्यते।

नवमावरण न्यास—मूल त्रिकोण में बना हुआ बिन्दु श्रीयन्त्र का नवम पूजन आवरण है।

'ह्रीं श्रीं बैन्दवचक्राय नमः'—इस मन्त्र से व्यापक न्यास करने के बाद 'ह्रीं श्रीं सर्वानन्दमये चक्रे श्रीमत् महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' मन्त्र से (ब्रह्मरन्ध्र) में न्यास करें।

'मूलमन्त्र' के बाद 'परापररहस्यगाः श्रीदेव्यः पूजिताः सन्तु' इस मन्त्र से व्यापक न्यास करें। व्यापक न्यास के बाद 'मूल मन्त्र' के आगे 'चक्रेश्वरीत्रिपुरभैरव्यै नमः' का उच्चारण कर चक्रेश्वरी का न्यास करें।

शिरः कण्ठं मुखं श्रोत्रं नेत्रं नासां भुजद्वयम्॥४४८॥
हृदि गुह्यं तथा पृष्ठं नाभिञ्च जठरं ततः।
गुह्यं पादञ्च गुल्फञ्च देव्याः पञ्चदशाक्षरम्॥४४९॥
एवं न्यस्तशरीरः सन् भाषा पञ्चतमं न्यसेत्।
पञ्चकूटं समुच्चार्य पञ्चमीं त्रिपुरेश्वरीम्॥४५०॥
सौभाग्यां वा तथा लोपां पञ्चविंशाक्षरीं तथा।
षडाम्नायप्रभेदेन शाक्तं शाम्भवमेव वा॥४५१॥

शिर इति। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीदेव्याः पञ्चदशाक्षरमन्त्रस्यैकैकमक्षरं शिरआदिषु पञ्चदशस्थानेषु न्यसेदित्यर्थः। पञ्चकूटमिति पूर्वोपदर्शितमित्यर्थः। पञ्चविंशत्यक्षरीं

पञ्चकूटात्मिकां त्रिपुरेश्वरीं त्रिकूटात्मिकां सौभाग्यां लोपामुद्रां वा न्यसेदिति सम्बन्ध:। षडाम्नायेति। पूर्वं षडाम्नायभेदेन शाक्तशाम्भवभेदेन च ये विद्याभेदा: प्रदर्शितास्तेषु पञ्चविंशत्यक्षरविद्ययाऽयं न्यास: कर्त्तव्य इत्यर्थ:।

इसके बाद (१) शिर, (२) कण्ठ, (३) मुख, (४) कान, (५) नेत्र, (६) नासापुट, (७) दोनों भुजाओं, (८) हृदय, (९) गुह्य, (१०) पीठ, (११) नाभि, (१२) जठर, (१३) गुह्य, (१४) पैर और (१५) गुल्फ—इन पन्द्रह स्थानों में भगवती के पञ्च दशाक्षरी मन्त्र के एक-एक अक्षर का न्यास करें। यथा—

(१) ह्रीं श्रीं क्लीं कं नम:—शिरसि।
(२) ह्रीं श्रीं क्लीं एं नम:—कण्ठे।
(३) ह्रीं श्रीं क्लीं ईं नम:—मूले।
(४) ह्रीं श्रीं क्लीं लं नम:—कर्णयो:।
(५) ह्रीं श्री क्लीं ह्रीं नम:—मुखे।
(६) ह्रीं श्रीं क्लीं हं नम:—नासिकायाम्।
(७) ह्रीं श्रीं क्लीं सं नम:—भुजद्वये।
(८) ह्रीं श्रीं क्लीं कं नम:—हृदये।
(९) ह्रीं श्रीं क्लीं हं नम:—गुह्ये।
(१०) ह्रीं श्रीं क्लीं लं नम:—पृष्ठे।
(११) ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं नम:—नाभौ।
(१२) ह्रीं श्रीं क्लीं सं नम:—जठरे।
(१३) ह्रीं श्रीं क्लीं कं नम:—गुह्ये।
(१४) ह्रीं श्रीं क्लीं लं नम:—पादयो:।
(१५) ह्रीं श्रीं क्लीं नम:—गुल्फयो:।

अक्षरन्यास करने के बाद भाषा-विद्याओं का न्यास करें। पाँच कूटों वाली पच्चीस अक्षरी त्रिपुरेश्वरी विद्या, तीन कूटों वाली सौभाग्यविद्या अथवा लोपामुद्रा विद्या तथा षडाम्नायभेद और शाक्त-शाम्भवभेद से जितनी विद्यायें बताई गई हैं, उनमें से पच्चीस अक्षरों वाली विद्या से यह न्यास किया जाय।।४४८-४५१।।

गणपतिं मूर्ध्नि देशे वटुकं कर्णयोर्न्यसेत्।
क्षेत्रपालन्तु हृदये योगिनीं विन्यसेद् गुदे।।४५२।।
निर्माल्यवासिनीं वक्त्रे बिन्दौ च शेषिकां न्यसेत्।
योनिमुद्रां मूर्ध्नि देशे परां शक्तिञ्च विन्यसेत्।।४५३।।

अथ मूर्द्धादिषु गणपत्यादीनां न्यासमुपदिशति—गणपतिमित्यादिना। स्पष्टम्।

मूर्धा में गणपति का, कानों में बटुक का, हृदय में क्षेत्रपाल का, गुदा में योगिनी का, मुख में निर्माल्यवासिनी का, बिन्दु में शेषिका का तथा मूर्धा में योनि मुद्रा तथा पराशक्ति का न्यास करें।।४५२-४५३।।

[श्रीचक्रन्यासोपसंहारः]

श्रीचक्रन्यास उद्दिष्टस्त्रैलोक्ये चातिदुर्लभः।
यस्मै कस्मै न दातव्यो न दातव्यः कदाचन।।४४४।।

यह श्रीचक्र न्यास संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। हर किसी व्यक्ति को यह न्यास नहीं बताना चाहिए।।४५४।।

[व्यापकन्यासः]

पञ्चधा सप्तधा वाऽपि नवधा वाऽपि साधकः।
मूलेन व्यापकं कृत्वा स्वयं श्रीत्रिपुरा भवेत्।।४५५।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ पञ्चदशः प्रकाशः।।१५।।

इसके बाद बुद्धिमान् साधक मूल मन्त्र से पाँच-सात अथवा नौ बार व्यापक न्यास करे। यह व्यापक न्यास करने से साधक स्वयं श्री त्रिपुरा स्वरूप हो जाता है।।४५५।।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के पन्द्रहवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१५।।

* * *

षोडशः प्रकाशः

[अन्तर्यागनिरूपणप्रतिज्ञा]

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये चतुर्वर्गफलप्रदम्।।१।।

एवं पञ्चदशभिः प्रकाशैर्न्यासप्रक्रियान्तमभिधाय अवसरसङ्गत्या पूजाक्रमे वक्तव्ये—

आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा बहिर्देवं विचिन्वते।
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते काचतृष्णया।।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये बहिस्थां पूजयेच्छिवाम्।
यस्य यस्य च देवस्य यथा भूषणवाहनम्।।
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् परमेश्वरि।

इत्यादि शाक्तानन्दतरङ्गिणीषष्ठोल्लासवचनेन,

अन्तर्यागविधिं कृत्वा बहिर्यागं समाचरेत्।
बहिर्यागे नाधिकारी अन्तर्यागविवर्जितः।।
बहिर्यागफलं नास्ति विनाऽन्तर्यजनं कदा।
तस्मात् प्रयत्नतो वीरश्चान्तर्यागं समारभेत्।।

इति कौलावलीनिर्णयतृतीयोल्लासवचनेन च बहिर्यागस्यान्तर्यागपूर्वकत्वश्रवणात् प्रकाशेऽस्मिन्नन्तर्यागक्रममभिधत्ते—**अथेत्यादिना**। अथेति पूजाङ्गन्यासनिरूपणानन्तरमित्यर्थः।

अन्तर्याग-निरूपण-प्रतिज्ञा—तन्त्रोपदिष्ट साधन-विधान में इष्टदेवता की दो विधियों से पूजा करने का निर्देश है। इनमें प्रथम है—अन्तर्याग अथवा मानस-पूजन, जिसमें इष्टदेवता के रूप में परिणत अपने ही आत्मदेव की मन से उत्पादित गन्ध-पुष्प आदि उपचारों से पूजा की जाती है। दूसरा है—बहिर्याग अर्थात् बाह्य पूजन। इष्टदेवता के रूप में परिणत अपने आत्मदेव को श्वासमार्ग से बाहर निकाल कर उन्हें यन्त्र या मूर्ति में स्थापित करके विभिन्न उपचारों से जो अर्चन किया जाता है, उसे बहिर्याग कहते हैं। तदनुसार साधक को पहिले अन्तर्याग करने के बाद देवता का बहिरंग अर्चन करना चाहिए। 'शाक्तानन्दतरंगिणी' नामक तन्त्रग्रन्थ में कहा गया है कि अन्तर्याग किये विना साधक को बहिर्याग करने का अधिकार नहीं मिलता; अतः अन्तर्याग करना अनिवार्य है। यदि साधक अन्तर्याग किये विना बहिर्याग करता

है तो उसे पूजा का कोई फल नहीं मिलता। अत: चारो ही आश्रमों के साधकों के लिये अन्तर्याग करना अनिवार्य है। इष्टदेवता के अंतरंग पूजा की यह विधि अत्यन्त भावनामयी और देवता-सान्निध्यकारिणी होने के कारण पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान करने वाली है। अत: पूजा की पात्रता के लिये न्यास आदि विधियों का निरूपण करने के बाद अन्तर्याग-नामक प्रथम पूजाविधि का निरूपण किया जा रहा है।

[निर्गुणस्यापि परमात्मन: सृष्टिप्रवृत्ति:]

एकमासीत् परं ब्रह्म सूक्ष्मं नित्यमतीन्द्रियम्।
जलीयभागे चातीते सिसृक्षा समपद्यत।।२।।

एवमन्तर्यागक्रमनिरूपणं प्रतिज्ञाय—

कारणे सर्वभूतानां तत्त्वान्यपि च चिन्तयेत्।
बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात् परमात्मनि।।
एवं विचिन्त्य देवेशि पार्थिवांशं जले गतम्।
जलञ्च तेजसो रूपं तेजोरूपं विचिन्तयेत्।।

इत्यादिगन्धर्वतन्त्रैकादशपटलोक्तदिशा तत्त्वान्तराणां क्रमेण कारणभूतायां प्रकृतौ प्रकृतेश्च परमात्मनि लये तन्मात्रस्वरूपनिर्भासलक्षणामवस्थामभिधत्ते—**एकमासीदित्यादिना**। तथाच प्रागुक्तलयक्रममभिधाय—

महान्तं प्रकृतौ लीनं चिन्तयेत् परमेश्वरि।
मुमुक्षुश्चिन्तयेल्लीनां प्रकृतिं परमात्मनि।।

इत्यनेन प्रकृत्यन्तानां परमात्मनि लयमुक्त्वा—

नाहो न रात्रिर्न सन्ध्या न सूर्यो नैव चन्द्रमा:।
इदं तमोमयं सर्वमासीत् भुवनवर्जितम्।
अप्रज्ञातमलक्ष्यञ्च प्रसुप्तमिव सर्वत:।
चिन्तयित्वा महेशानि न किञ्चिदपि भावयेत्।।
एकमासीत् परं ब्रह्म नित्यं सूक्ष्ममतीन्द्रियम्।
नित्यानन्दमयं धाम तेजोरूपं सनातनम्।।

इत्यादिना तात्कालिकी परमात्मनिर्भासमात्रात्मिकाऽवस्था तत्रैवाभिहिता। भगवता मनुनाऽपि—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वत:।।

इत्यादिना महाप्रलयावस्थाऽनयैव दिशोपवर्णिता। सिसृक्षायां हेतुमाह—**जलीयभाग इति**। जलमन्तरेण सृष्टे: सृष्टानां जीवानां स्थितेश्चासम्भवादित्यर्थ:। सिसृक्षेयम्

आपो जायन्तां क्षितिर्जायतामित्याद्यभिधानमात्रेण **'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायये'**ति छान्दोग्यश्रुते:।

महाप्रलय के पश्चात् जब पृथ्वी आदि सभी तत्त्वों का अपने-अपने कारण- तत्त्वों में और सभी तत्त्वों का प्रकृति में तथा प्रकृति का परमात्मा में विलय हो गया, तब केवल एकमात्र परं ब्रह्म की सत्ता थी—सूक्ष्म और अति-इन्द्रिय जलरूप ब्रह्मतत्त्व। उस सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय ब्रह्मतत्त्व में सिसृक्षा अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा हुई।।२।।

[समासत: सृष्टिप्रक्रिया]

संहारस्यान्तरं सृष्टं बुद्बुदाकारमुत्तमम्।
तदन्तर्भुवनानि स्युस्तदण्डं द्विविधं भवेत्।।३।।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तत्रैव भेकमव्ययम्।

अथ सृष्टिपरिपाटीं दर्शयति—**संहारस्येत्यादिना**। एतेन प्रथममेव जलसृष्टिरित्युक्तं भवति। गन्धर्वतन्त्रीयैकादशपटलेऽपि—

तयोर्योगादभूद् वृष्टि: परमामृतरूपिणी।
परिपूर्णमिदं देवि समस्तं प्लावयेत्तु या।।
तत्राम्भसि स्वमात्मानं चिन्तयेत् साधकोत्तम:।
बुद्बुदं चिन्तयेत्तत्र प्रकृतिं चिन्तयेत् पराम्।।

इत्यादिनाऽयमेवार्थोऽभिहित:। **तदन्तरिति**। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्र एकादश-पटले—

प्रकृतेर्हि महान्तं वै अहञ्च महतस्तथा।
अहङ्कारान्मनश्चैव मनस: खं समुत्थितम्।।
आकाशाद् वायुमाकृष्य वायोस्तेज: समुत्थितम्।
तेजसो जलमासाद्य जलाच्च पृथिवीं स्मरेत्।। इति।

द्विविधमिति। भागद्वयेन विभक्तमित्यर्थ:, विभागश्च प्रणवेन कर्त्तव्य:। तदुक्तं तत्रैव—

प्रणवेन द्विधा कृत्वा जलौघै: परिपूरयेत्। इति।

महाप्रलय के बाद एकमेव नित्य एवं अतीन्द्रिय परं ब्रह्म की सिसृक्षा से बुलबुले के आकार का जो अण्डा उत्पन्न हुआ, वह फूट गया और उसके दो भाग हो गये। इस अण्डे में ही सभी चौदह भुवन निहित थे। ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण इसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है। इस ब्रह्माण्ड में जल था और इस जल में था एक मेढक।।३।।

विमर्श—उपर्युक्त डेढ़ श्लोकों में अन्तर्याग के क्रम में महाप्रलय के बाद परं ब्रह्म से पुन: सृष्टि की उत्पत्ति का संकेतात्मक निदर्शन किया गया है। गन्धर्वतन्त्र

के द्वादश पटल में ध्यान-योग-निरूपण के प्रसंग में श्लोकसंख्या ४२ से ५५ पर्यन्त १४ श्लोकों में इसका विस्तार से निरूपण किया गया है।

[निरुक्तभेकपृष्ठे कालाद्यर्चा]

यजेत् पृष्ठे तस्य मन्त्री कालाग्निरुद्ररूपकम्।।४।।

दो टुकड़ों में विभक्त ब्रह्माण्ड-खण्ड के जल में मेढक का ध्यान करके उसकी पीठ पर कालाग्निरूप रुद्र का ध्यानपूर्वक अर्चन करें।।४।।

[आधारशक्त्यादीनां स्वरूपं पूजनोपदेशश्च]

आधारशक्तिं तत्रैव मूलप्रकृतिरूपिणीम्।
शरच्चन्द्रनिभां देवीं पङ्कजद्वयधारिणीम्।।५।।
कूर्माकारशिलारूढां कूर्मञ्च मूर्ध्नि धारिणीम्।
नीलाभं पूजयेत् कूर्ममनन्तं कुन्दसन्निभम्।।६।।
उद्र्ध्वं ब्रह्म समासीनं पूजयेत् साधकोत्तमः।।७।।
तस्य मूर्ध्नि स्थितं देवं श्वेतं वाराहरूपकम्।
तमालश्यामलां दन्ते धारयन्तं वसुन्धराम्।।८।।
नीलेन्दीवरहस्ताञ्च हारकेयूरभूषिताम्।
अभ्यर्चयेद् वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम्।।९।।
रक्तान्नममृतं दिव्यं शुद्धलाक्षारसोपमम्।।१०।।
हस्ताभ्यां पूजयेदप्सु द्वीपं विद्रुमसन्निभम्।
नवरत्नसमाकीर्णमष्टसिद्धिसमन्वितम् ।।११।।

कालाग्निरुद्र के ऊपर मूलप्रकृतिरूपिणी आधारशक्ति का ध्यान करें। देवी आधारशक्ति की देह-कान्ति शरद् के चन्द्र के समान शुभ्र और धवल है। उनके दोनों हाथों में लीलाकमल हैं। आधारशक्ति के मूर्धा पर नीले रंग का कूर्म (कच्छप) है। कूर्म के ऊपर कुन्द के समान शुभ्रवर्ण का अनन्त (नाग) तथा अनन्त के ऊपर ब्रह्म (ब्रह्मा) हैं। उनके सिर पर भगवान् श्वेत वराह हैं। वराह के तमाल के समान श्याम वर्ण के दाँतों पर पृथ्वी है। भगवती पृथ्वी के हाथ में नीलकमल है, वे हार और केयूर आदि से विभूषित हैं। उत्ताल तरंगों वाला सागर उनके कटिप्रदेश में मेखला (करधनी) के समान लहरा रहा है। इस सागर का जल शुद्ध लाक्षारस के समान लाल वर्ण का है तथा उसमें अमृत के समान गुण हैं। (सागर के मध्य में विद्रुम वर्ण का दीप है)। यह दीप नव प्रकार की मणियों से देदीप्यमान है।।५-११।।

विमर्श—अन्य तन्त्रग्रन्थों के अनुसार मण्डूक का मूलाधार में, कालाग्निरुद्र का स्वाधिष्ठान में तथा स्वाधिष्ठान से अनाहत (हृदय)-पर्यन्त आधारशक्ति से पृथ्वीपर्यन्त पीठदेवताओं का एक के ऊपर एक के क्रम से ध्यान और पूजन करें। यथा—'मं मण्डूकाय नमः' आदि।

[पीठचतुष्टयार्चा]

शक्तिनाभिकयोर्मध्ये उड्डीयानं प्रपूजयेत्।
जालन्धरं तथा वक्त्रे गुदे च कामरूपकम्।।१२।।
पूर्णगिरिं हृदिमध्ये श्रीहट्टं तालुकोपरि।
पूर्णगिरौ स्वर्णगिरिपीठं सम्पूजयेन्नरः।।१३।।

शक्तिनाभिकयोर्मध्य इति। अनाहतमणिपूरयोर्मध्य इत्यर्थः।

पृथ्वी एवं नवरत्नमय द्वीप का पूजन करने के बाद उत्तम साधक अपने शरीर में पीठों का पूजन करे। यथा—अनाहत और मणिपूरक चक्रों के मध्य में उड्डीयान पीठ का, मुख में जालन्धर पीठ का, गुदा में कामरूप पीठ का, हृदय में पूर्णगिरि पीठ का, पूर्णगिरि के ऊपर स्वर्णगिरि पीठ का तथा तालुका के ऊपर श्रीहट्ट पीठ का पूजन करे।।१२-१३।।

[कल्पोद्यानार्चा]

कल्पोद्यानं यजेत्तस्य परितो गन्धपुष्पकैः।

नवरत्नमय द्वीप में कल्प उद्यान है। इस उद्यान में भाँति-भाँति के सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं, जिनसे उद्यान का सम्पूर्ण वायुमण्डल सुरभित और सुवासित है।

[कल्पवृक्षस्य स्वरूपमर्चनोपदेशश्च]

मध्ये कल्पतरुं मन्त्री सर्वाशापरिपूरकम्।।१४।।
सर्वभूताश्रयं वृक्षं नित्यं वर्णमयं परम्।
पञ्चैव मादनं बीजं बिन्दुनादमहाशिफम्।।१५।।
पृथिव्यक्षरशाखाभिः सर्वाशासु विजृम्भितम्।
सलिलाक्षरपत्रैः स्वैः सञ्छादितजगत्त्रयम्।।१६।।
वह्निवर्णाङ्कुरैर्दीप्तं प्रवालाङ्कुरसन्निभैः।
मरुद्वर्णलसत्पुष्पैर्द्योतयन्तं वपुःश्रियम्।।१७।।
आकाशार्णफलैर्नम्रं सर्वभूताश्रयं परम्।
परामृताख्यमधुभिः सिञ्चन्तं परमेश्वरीम्।।१८।।
वेदागमादिभिः क्लृप्तं समुन्नतमनोहरम्।
शिवशक्तिमयं साक्षादाश्रितञ्च जगत्त्रयम्।।१९।।

सर्वाशापरिपूरकमिति। शाखाप्रशाखाभिः सर्वदिक्परिव्यापकमित्यर्थः।

बुद्धिमान साधक इस कल्पोद्यान के मध्य में कल्पतरु का ध्यान करें। इस कल्पतरु की शाखायें और प्रशाखायें दूर-दूर तक चारो दिशाओं में फैली हुई हैं। यह कल्पवृक्ष सभी भूतों का आश्रयस्वरूप है अर्थात् जिससे सभी प्राणियों की

इच्छायें पूरी होती हैं। यह कल्पवृक्ष नित्य वर्णमय है। इसमें मातृकाओं का वास है। बिन्दु-नादसहित यह कल्पवृक्ष पञ्च कामबीजों से युक्त है। पृथ्वीबीज (लं) से सुशोभित इसकी शाखायें सभी दिशाओं में झूम रही हैं। सलिलबीज (वं) से अलंकृत अपने पत्रों से इस कल्पवृक्ष ने तीनों लोकों को आच्छादित कर रखा है। अग्निवर्ण (रं) से यह वृक्ष प्रवाल-अंकुरों के समान शोभित है। इसके फूलों पर मरुद् वर्ण (यं) अंकित है, जिससे इसकी शोभा-श्री दमक रही है। आकाश वर्ण (हं) से युक्त फलों के भार से इसकी डालियाँ झुकी हुई हैं और इन फलों के कारण यह सभी प्राणियों का आश्रयस्वरूप है। परामृत नामक अपने मधु (शहद) से यह भगवती त्रिपुरा का पाद-सिंचन करता है। वेद और आगम आदि से युक्त यह कल्पवृक्ष शिव शक्तिमय तथा तीनों लोकों के लिये साक्षात् आश्रयस्वरूप है॥१४-१९॥

[पारिजातादिचिन्ता]

तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम्।
कदम्बनागपुन्नागचम्पकादीन् विभावयेत्।।२०।।
कल्पमूले रत्नभूमिं बालुकां काञ्चनप्रभाम्।

इस कल्पोद्यान के मध्य में पारिजात, कदम्ब, नागकेशर, पुन्नाग, चम्पक आदि सुगन्धित पुष्पों का ध्यान करके कल्पवृक्ष के नीचे सुनहरी बालू वाली रत्न-भूमि का ध्यान करें॥२०॥

[चिन्तामणिगृहादेः स्वरूपं तच्चिन्तनोपदेशश्च]

चिन्तामणिगृहं मध्ये ज्योतीरूपमनुत्तमम्।।२१।।
उद्यदादित्यसङ्काशं व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम्।
शतयोजनविस्तीर्णं नानारत्नोपशोभितम्।।२२।।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारशोभितम्।
रत्नसंक्लृप्तसंशोभि कवाटाष्टकशोभितम्।।२३।।
नवरत्नेन संक्लृप्तं तुङ्गतोरणशोभितम्।
हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।।२४।।
मध्यकोणस्थितस्तम्भनवरत्नसमन्वितम् ।
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरभूषितम् ।।२५।।
मुक्तादामवितानाढ्यं स्वर्णस्तम्भैर्विराजितम्।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धपुष्पैरलङ्कृतम्।।२६।।
बहुरत्नशङ्खघण्टानानाद्रव्यविभूषितम् ।
मधुमत्तभ्रमत्तुङ्गभ्रमरध्वनिशोभितम् ।।२७।।

गृहप्राकारसंलग्नफलका(शि?लि)विमण्डितम् ।
इन्द्रादिभिर्देवगणैर्विनम्रितदिगन्तरम् ।।२८।।
सुवर्णरत्नरचितं छत्रन्तु मण्डलोपरि।
परमोज्ज्वलरूपन्तु तन्मध्ये रत्नमण्डलम्।।२९।।

कल्पवृक्ष के मूल में चिन्तामणि गृह का ध्यान करे। यह चिन्तामणि गृह शत योजन विस्तीर्ण है। उगते हुए सूर्य के समान देदीप्यमान है और इसकी कान्ति और चमक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डल में व्याप्त है। चार दरवाजे वाले हेमप्राकारों से सज्जित इस चिन्तामणि गृह में आठ कपाट हैं। विभिन्न रत्नों से अलंकृत इस गृह में रत्नजटित सीढ़ियाँ और ऊँचे-ऊँचे तोरण हैं। सोने के डण्डों पर रंग-बिरंगे झण्डे लगे हुए हैं। बीच वाले कोष में लगाये गये स्वर्णस्तम्भ महामाणिक्य, शंख, वैदूर्य, मुक्ता आदि रत्नों से खचित हैं। मोतियों की लहराती हुई झालर वाले चन्दोबे लगे हुए हैं। सुगन्धित हवा चल रही है। पराग रस पीकर मधुमत्त भौंरों का गुञ्जन चारो ओर सुनाई दे रहा है। इन्द्र आदि देवता अपने-अपने स्थानों पर विराजित हैं। उसके मध्य में रत्नमयी सुरम्य वेदी बनी हुई है, जिसके ऊपर सोने के तारों से बना हुआ अत्यन्त मनोहर छत्र लगा हुआ है।।२१-२९।।

[रत्नवेदिकायाः स्वरूपं तच्चिन्तनोपदेशश्च]

नन्दनोद्यानमध्यस्थं वेदिकां रत्ननिर्मिताम्।
तत्रस्थां चिन्तयेद्रक्तां चतुरस्रोपशोभिताम्।।३०।।
नानारत्नसमायुक्तं सिंहासनं तदन्तरे।
तस्य मध्ये महाचक्रं पीयूषपूरपूरितम्।।३१।।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेत्त्रिशृङ्गं ज्योतिरात्मकम्।

[रक्षणादिपरिपाटी]

अस्त्रेण रक्षणं कुर्याद्रक्षेच्च धेनुमुद्रया।।३२।।

इस नन्दन वन के मध्य में रत्नों से निर्मित वेदी है। लाल रंग की इस रत्नमयी वेदी पर रत्नखचित सिंहासन है। उस सिंहासन पर पीयूष-पूरित महायन्त्र रखा हुआ है। धेनुमुद्रा दिखाकर अस्त्रमन्त्र से उसका रक्षण करें।।३०-३२।।

[योनिमुद्रा]

योनिमुद्रां ततो वक्ष्ये बाह्यमभ्यन्तरं तथा।
चिन्तयेद् गुदमाकुञ्च्य ब्रह्मसूत्रं तथाऽपरम्।।३३।।
ज्वलद्दीपशिखाकारां(?) संक्षोभ्यामृतमण्डलम्।
सुधाधारामृते भूय आयाति मूलपङ्कजे।।३४।।
एवञ्च सप्तधा कुर्याद्देवीसन्निधिहेतवे।

मूलेति। मूलाधारस्थपङ्कज इत्यर्थः।

इसके बाद योनि मुद्रा बाँधकर कुलकुण्डलिनी को अमृतपान कराये। गुदाद्वार को संकुचित करके मूलाधार में सोई हुई देवी कुण्डलिनी को जगाकर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार-स्थित अमृतमण्डल तक लायें। जब देवी कुण्डलिनी अमृतपान से तृप्त हो जायँ, उन्हें पुन: मूलाधार में ले आयें। कुछ क्षणों के बाद उन्हें पुन: अमृतमण्डल तक लाकर अमृतपान करायें। उन्हें पुन: मूलाधार में लायें। फिर से अमृतपान कराने के लिये ले जायें। देवी के सान्निध्य-लाभ के लिये यह क्रिया सात बार करें।।३३-३४।।

[ध्यानक्रम:]

मूलेन ध्यानयोगेन स्मृत्वा ब्रह्ममयीं पराम्।।३५।।
पूरकेण समापूर्य सङ्गोप्य कुम्भकेन च।
सुन्दरीं तां समाराध्य योगिनीगणवेष्टिताम्।।३६।।
स्रवदमृतसंयुक्तां देव्यङ्ककमलान्तरे।
ब्रह्मविष्णुभवैर्वन्द्यां महात्रिपुरसुन्दरीम्।।३७।।

मूलमन्त्र से पूरक करते हुए ब्रह्ममयी परा देवी का ध्यान करें। योगिनीगणों से घिरी हुई ब्रह्मा-विष्णु और शिव के द्वारा पूजिता अमृतवर्षिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का कुम्भक योगपूर्वक पूजन करें।।३५-३७।।

[सशक्तिकद्वारपालध्यानोपदेश:]

ततो ध्यायेद् द्वारपालान् प्रतिद्वारे सशक्तिकान्।।३८।।

इसके बाद चिन्तामणि गृह के प्रत्येक द्वार पर शक्ति-सहित द्वारपालों का ध्यान करें।।३८।।

[सहस्रारे देवीसंस्थापनम्]

सहस्रदलमध्ये तु स्थापयेत् सुन्दरीं पराम्।
भैरवानन्दलिङ्गन्तु तन्मध्ये योनिसंस्थितम्।।३९।।

[तयोरेकत्वचिन्ता]

एकीभावं तयो: कृत्वा श्रावयेदमृतं बुध:।
जिह्वाननसमायोगात् पिबेत्तदमृतं सदा।।४०।।

एकीभावमिति। तयो: सुन्दरीभैरवानन्दलिङ्गयो:। अमृतं तयो: सामरस्य-सम्भूतपरमामृतमित्यर्थ:।

सहस्रदल में भगवती को लाकर परमशिव के साथ उनका सामरस्य करायें। उनके सामरस्य से उद्भूत अमृतरस का जिह्वा से पान करें।।३९-४०।।

[देवीपूजा, मानसयाग आवाहननिषेधश्च]

हृदये तु समानीय सुन्दरीं पूजयेत्तत:।
अत्रैवाऽऽवाहनं नास्ति हृदये मानसार्चने।।४१।।
उभाभ्याममृतानन्दै: पूजयेद्रहसंक्रमात्।

जब वे सामरस्य से परितृप्त हो जायँ, उन्हें सहस्रार से हृदय में लायें तथा हृदयकमल पर उन्हें स्थापित करके मानसिक उपचारों से उनका पूजन करें। इस अर्चन के लिये उनका आवाहन नहीं किया जाता॥४१॥

[पाद्याद्युपचारपात्रसंख्यानिरूपणम्]

पाद्यपात्रत्रयं कुर्यादर्घ्यपात्रत्रयं तथा॥४२॥
षडाचमनपात्राणि मधुपात्रत्रयं ततः।
एकं सुभोगपात्रन्तु कारयेत् षोडशे दले॥४३॥

भगवती के अर्चन के लिये षोडश दलों में पात्रों की स्थापना की जाती है। तदनुसार तीन दलों में तीन पाद्यपात्र, तीन दलों पर तीन अर्घ्यपात्र, आचमन के लिये छः पात्र, तीन मधुपर्क पात्र और शेष रहे एक पात्र पर भोगपात्र स्थापित करें॥४३॥

[मानसपूजाक्रमः]

सहस्रदलभृङ्गारलम्बिकानालविच्युताम् ।
परामृतञ्च पानीयं भावपुष्पं सुवासितम्॥४४॥
यथाविधि करे कृत्वा स्वर्णपात्रे प्रपूरयेत्।
मानसैरुपचारैस्तु दीयते द्रव्यमुत्तमम्॥४५॥
कल्पयामीति मनसा उपचारान् प्रकल्पयेत्॥४६॥

भावेति। भावपुष्पाण्यग्रे वक्ष्यन्ते।

सहस्रार दल भृंगार में भरे हुए परामृत को लम्बिकानाल से स्वर्णपात्र में भरकर उसे यथाविधि भावपुष्पों से सुवासित करें। मानस-पूजन में विभिन्न उपचारों के लिये इसी परामृत की जल के रूप में और उपचार-दान के मन्त्र में 'कल्पयामि' पद की योजना की जाती है॥४४-४६॥

[तत्र पाद्याद्यर्पणनियमः]

पाद्यं पादाम्बुजे मौलावर्घ्यमाचमनं मुखे।
मधुपर्कं त्रिधा वक्त्रं मधु पानीयमुत्सृजेत्॥४७॥
पुनराचमनं दत्त्वा गन्धपुष्पादिकं बुधः॥४८॥

पाद्य द्रव्य भगवती के पैरों पर, अर्घ्य द्रव्य शिर पर, आचमन द्रव्य मुख में तथा मधुपर्क मुख में समर्पित किया जाता है। मधुपर्क देने के बाद पुनः आचमन कराकर गन्ध-पुष्प आदि उपचार प्रदान करें॥४७-४८॥

[उपचारदानमन्त्रे विशेषः]

हृद्वह्निवल्लभातोयमन्त्रं पाद्यादिषु क्रमात्।
नमो वौषट् गन्धपुष्पे हृदन्तान्यान् निवेदयेत्॥४९॥

अथोपचारदानमन्त्रे विशेषमाह—हृदिति। हृत् नमः। वह्निवल्लभा स्वाहा। **तोयमन्त्रं** स्वधा। एवञ्च पाद्यं नमोऽन्तेन, अर्घ्यं स्वाहान्तेन, आचमनीयं स्वधान्तेन. गन्धं नमोऽन्तेन, पुष्पं वौषडन्तेन, उपचारान्तराणि तु नमोऽन्तेन मन्त्रेण दद्यादिति फलितार्थः।

उपर्युक्त पाद्य आदि उपचार समर्पित करने के मन्त्र में क्रमशः (१) नमः, (२) स्वाहा, (३) स्वधा, (४) नमः, (५) वौषट् तथा अन्य उपचार-दानमन्त्रों के अन्त में 'नमः' की योजना की जाती है। यथा—पाद्यं समर्पयामि नमः। अर्घ्यं स्वाहा। आचमनीयम् स्वधा। गन्ध समर्पयामि नमः। पुष्पाणि समर्पयामि वौषट्। इसी तरह अन्य द्रव्य नमः-पूर्वक समर्पित किये जाते हैं; यथा—वस्त्रं समर्पयामि नमः॥४९॥

[अत्राऽऽगमान्तरसम्मतः क्रमभेदः]

कुलोड्डीशमतेनापि प्रकारान्तरमुच्यते॥५०॥
धूपे दीपे स्वधा स्वाहा नैवेद्याचमने स्वधा।
नमः सर्वोपचारेषु प्रथमान्तेषु योजयेत्॥५१॥

कुलोड्डीश तन्त्र के अनुसार धूप और दीप-समर्पण में 'स्वधा' एवं 'स्वाहा' तथा नैवेद्य एवं आचमन-समर्पण में स्वधा तथा अन्य उपचार-समर्पण में 'नमः' का प्रयोग किया जाय। यह प्रकारान्तर है॥५०-५१॥

[अत्रैव कल्पसूत्रकृतां मतम्]

उपचारेषु सर्वेषु कल्पसूत्रमते पुनः।
कल्पयामि नम इति योजनीयमनुर्मतः॥५२॥

'कल्पसूत्र' नामक तन्त्र-ग्रन्थ का कथन है कि प्रत्येक उपचार 'कल्पयामि नमः' की योजना करके समर्पित किया जाय। यथा—'पाद्यं कल्पयामि नमः' आदि॥५२॥

[स्वयम्भूकुसुमादयो विशिष्टाः पूजोपचाराः]

स्वयम्भूकुसुमैः कुण्डगोलोत्थैरपि साधकः।
भावपुष्पैः प्रयत्नेन पूजयेत् परमेश्वरीम्॥५३॥

विचक्षण साधक अमाय आदि भाव-पुष्पों के साथ ही स्वयम्भूकुसुम तथा कुण्डगोलोत्थ कुसुम भी भगवती को समर्पित करे॥५३॥

विमर्श—स्वयम्भूकुसुम तथा कुण्डगोलोत्थ कुसुम—किसी फूल के नाम नहीं; अपितु वामाचारी साधना के विशिष्ट द्रव्य हैं। इनको प्राप्त करने की प्रक्रिया गुरुमुख-गम्य है। अन्य भावपुष्पों के नाम अगले तीन श्लोकों में बताये गये हैं।

[तत्र पञ्चदश भावपुष्पाणि]

अमायमनहङ्कारमरागममदन्तथा।
अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषं क्षोभवर्जितम्॥५४॥
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः॥५५॥

दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम्।
इति पञ्चदशोक्तानि भावपुष्पाणि पूजने।।५६।।

भगवती को मानस पूजन में समर्पित किये जाने वाले १५ भावपुष्प हैं—(१) अमाय, (२) अनहंकार, (३) अराग, (४) अमद, (५) अमोह, (६) अदम्भ, (७) अद्वेष, (८) अक्षोभ, (९) अमात्सर्य, (१०) अलोभ। ये दस पुष्प हैं। शेष पाँच भावपुष्प हैं—(१) अहिंसा, (२) इन्द्रियनिग्रह, (३) दया, (४) क्षमा और (५) ज्ञान-पुष्प।।५४-५६।।

विमर्श—गुलाब, मोंगरा या कमल के समान ये कोई भौतिक पुष्प नहीं; अपितु मन की अत्यन्त उदात्त भावनायें हैं। जीवन को सुरभित कर देने वाले उच्च भाव हैं और चूँकि इन्हें पुष्प के रूप में समर्पित किया जाता है; अत: इन्हें 'भाव-पुष्प' कहते हैं।

[अन्ये उपचारा:]

सुधाम्बुधिं मांसशैलं मत्स्यराशिं निवेदयेत्।

भावपुष्प समर्पित करने के बाद साधक भगवती को सुधाम्बुधि (मदिरा का समुद्र), मांस-शैल (पर्वताकार मांसराशि) तथा मत्स्यराशि (भुनी हुई मछलियों का ढेर) भगवती के प्रीति-सम्पादन के लिये समर्पित करे।

विमर्श—कुलाचारी साधना के ये विशिष्ट उपचार-द्रव्य हैं। अत: केवल कुलाचारी साधक ही भगवती को ये विशिष्ट उपचार समर्पित करने के अधिकारी हैं। सामान्य साधक यदि ये द्रव्य समर्पित करते हैं तो प्रत्यवाय होगा।

[षडङ्गादिपूजा]

षडङ्गान्यथ नित्याश्च गुरुणा रतिमर्चयेत्।।५७।।

इस प्रकार भगवती की अर्चना करने के बाद हृदय आदि षडङ्गों की, कामेश्वरी आदि नित्याओं की तथा गुरुमण्डल की यथाशक्ति पूजा करें।।५७।।

स्नान और अभिषेक—धूप-दीप-पुष्प एवं नैवेद्य आदि उपचारों से भगवती को सन्तुष्ट और प्रसन्न करके उन्हें अभिषेक और मंगलस्नान के लिये स्नानमण्डप में लाये।

[स्नपनाङ्गमुद्वर्त्तनम्]

स्ववामे मण्डलं कृत्वा तत्र नीत्वा सुरेश्वरीम्।
उद्वर्त्तनं यथान्यायं विधाय सर्पिषा बुध:।।५८।।

अपने वामभाग में मण्डल बनाकर उसमें स्नानमन्दिर की भावना करें। धूप-दीप-पुष्प आदि उपचारों से सन्तुष्ट और प्रसन्न भगवती को सभामण्डप से इस स्नानमण्डप में लाकर (भावनापूर्वक) उन्हें रत्ननिर्मित चौकी पर प्रतिष्ठित करें। तत्पश्चात् यथाविधि उबटन की व्यवस्था करें।।५८।।

[देव्याः स्नपनम्]

सुगन्धिदिव्यतैलेन देवकन्यासहस्रकैः।
सहस्रैः स्वर्णकुम्भैस्तु सुगन्धिजलपूरितः।।५९।।
सिञ्चयेत् भक्तिभावेन भवानीं भक्तवत्सलाम्।
नानातीर्थोदकैः शुद्धैर्गजराजसहस्रकैः।।६०।।
नागकन्यासहस्रैस्तु किन्नरैरप्सरोगणैः।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्दुग्धैर्दध्ना गवामपि।।६१।।
नारिकेलोदकैरिक्षुजलैश्च शिशिरोदकैः।
सप्तमृत्तिकया युक्ततोयेन शीतलेन च।।६२।।
शीतलोष्णोदकैः शुद्धैस्तथा रत्नान्वितोदकैः।
जलैः सर्वौषधीनाञ्च सुवासितजलैरपि।।६३।।
सहस्रशीर्षमन्त्रेण पावमान्या समाहितः।
भृङ्गाराष्टककुम्भैश्च देव्याः स्नानं समाचरेत्।।६४।।

जलैः सर्वौषधीनामिति। सर्वौषधिगणमाह दीपिकायां तृतीयाध्याये—

मुरा मांसी वचा कुष्ठी शैलेयं रजनीद्वयम्।
शठी चम्पक-मुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः।। इति।

सहस्रेत्यादि। 'सहस्रशीर्षा पुरुष' इत्यादिपुरुषसूक्तमन्त्रेणेत्यर्थः। **पावमान्येति।** 'पावमानीः स्वस्तयनी सुदुघा हि घृतच्युत' इत्यादिपावमानीसूक्तेनेत्यर्थः।

आँवले आदि का सुगन्धित तेल, हल्दी तथा सरसों का चूर्ण आदि उद्वर्तन सामग्री (उबटन-सामग्री) प्रदान करके यह भावना करें कि हजारों देवकन्यायें भगवती के अंग-प्रत्यंग में उबटन लगा रही हैं। उबटन लगाने के बाद हजारों हाथियों, हजारों नाग-कन्याओं, किन्नरों तथा अप्सराओं द्वारा विभिन्न तीर्थों से लाये गये शुद्ध एवं सुगन्धित जल को हजारों स्वर्णकलशों में भरकर भक्त-वत्सला भवानी का अत्यन्त भक्तिभाव से स्नान कराया जा रहा है। तीर्थोदक से स्नान के पश्चात् उन्हें पञ्चामृत से, गाय के पञ्चगव्य से, दूध और दही से स्नान कराने के बाद क्रमशः नारियल के जल से, गन्ने के रस से, शिशिरोदक से, सप्तमृत्तिकायुक्त जल से, फिर गुनगुने शुद्ध जल से, रत्न-प्रक्षालित पवित्र जल से, सर्वौषधि के काढ़े के जल से स्नान कराने के बाद पुनः शुद्ध सुवासित जल से स्नान करायें। स्नान के बाद 'सहस्रशीर्ष' आदि १६ मन्त्रों (ऋचाओं) तथा पावमानी युक्त की ऋचाओं से आठ कुम्भोदक से भगवती का अभिषेक करें।।५९-६४।।

शिशिरोदक—शिशिर ऋतु में पड़ने वाले 'पाला' का जल। यह पानी अत्यन्त शीतल और पवित्र होता है।

[देवीशरीरालङ्करणक्रमः]

शरीरं तेजसामृज्य दुकूले परिधापयेत्।
कङ्कत्या केशसंस्कारं विधिवद् बन्धनं तथा।।६५।।
ललाटे तिलकं दद्यात् सिन्दूरं केशमध्यतः।
रक्तवस्त्रं तथा माल्यं रक्तालङ्करणं तथा।।६६।।
रक्तानुलेपनं कार्यं गन्धचन्दनसिह्लकैः।
सर्वालङ्करणं दद्याद् यत्र येन विराजते।।६७।।

विधिवद् बन्धनमिति। निरुक्तपरिपाट्या संस्कृतानां केशानामित्यर्थः।

सिह्लकैरिति। स्वार्थे कः। सिह्लको गन्धद्रव्यविशेषः। 'तुरष्कः पिण्डकः सिह्लो यावनोऽपी'त्यमरः। **सर्वालङ्करणमिति।** व्यक्तमाह कौलावलीनिर्णये तृतीयोल्लासे—

नागेन्द्रहाररचितं शङ्खं दद्यान्मनोहरम्।
हस्ते केयूरकञ्चैव कङ्कणं कटकं तथा।
पादङ्गुरीयकं दद्यान्नानारत्नोपशोभितम्।
पादयोर्नूपुरं दद्यात् कट्याञ्च क्षुद्रघण्टिकाम्।
शिरोरत्नं प्रदद्याच्च मुकुटं रत्ननिर्मितम्।
ताटङ्ककुण्डलं कर्णभूषणं सुपरिष्कृतम्।
नयने कज्जलं दद्यान्नासाग्रे गजमौक्तिकम्।
ग्रीवापत्रं कण्ठभूषां मुक्तामणिविभूषितम्।
आनन्दहारत्रितयमङ्गुरीयकरत्नकम् ।

इत्यादिना। शाक्तानन्दतरङ्गिणी-गन्धर्वतन्त्रादिष्वपि अलङ्कारभेदाः प्रदर्शिताः। **यत्र येन विराजत इति।** येषु येष्वङ्गेषु यद् यदलङ्करणं शोभाविशेषमावहति तत्तदलङ्करणं तत्र तत्र देयमित्यर्थः।

तत्पश्चात् स्नान से आर्द्र भगवती की देहयष्टि को आँखों के तेजस्तत्त्व से पोंछें। उन्हें दुकूल समर्पित करने के बाद विधिवत् वन्दना करके नाना प्रकार के रत्नों से जड़ित कंघी से उनके केशों को संवारें। फिर नाना प्रकार के रत्नों से जटित रेशम के गुच्छे से (परान्दा) चोटी गूँथें। ललाट में तिलक लगायें। केश-राशि के मध्य में अर्थात् 'माँग' में सिन्दूर समर्पित करें। लाल रंग के वस्त्र-उपवस्त्र तथा रत्नजड़ित कंचुकी समर्पित करके अंगों में रक्तचन्दन और सिह्लक का लेप करें। जिस अंग का जो अलंकार हो, उसे उस अंग में पहनायें।।६५-६७।।

विमर्श—'कौलावली निर्णय' (तृतीय उल्लास) में कहा गया है—हाथों में हाथी दाँत से बना शंख, केयूर, कङ्कण और कटक पहनायें। शिर में चूड़ामणि तथा रत्ननिर्मित मुकुट, कानों में ताटङ्क, कुण्डल, नासाग्र में गजमौक्तिक (बुलाक), गले

में रत्नजटित ग्रैवेय, तीन लड़ियों वाला आनन्दहार, कटकी, पैरों में बिछिया और छल्ला तथा हाथ की अंगुलियों में अंगूठियाँ तथा अँगूठे में आरसी पहनायें। आँखों को कजरारी बनाने के लिये काजल लगायें।

शाक्तानन्दतरंगिणी, गन्धर्वतन्त्र आदि ग्रन्थों में अलंकारभेद मिलते हैं।

[श्रीपादुकान्तोपचारदानानन्तरं नमस्कारोपदेशः]

रत्नश्रीपादुके दत्त्वा प्रवालदण्डचिह्निते।
यन्त्रमध्ये समानीय नमस्कुर्यात् समाहितः।।६८।।

भगवती को रत्ननिर्मित पादुका प्रदान करके उन्हें अलंकार-मण्डप से यन्त्र-मध्य अर्थात् सभा-मण्डप में लायें तथा सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके समाहित चित्त से उन्हें नमस्कार करें। नमस्कार का मन्त्र आगे बताया गया है।।६८।।

[नमस्कारमन्त्रः]

समायातामहं वन्दे श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।
सर्वसौभाग्यजननीं सर्वदेवस्वरूपिणीम्।।६९।।

विधिवत् अलंकृत होकर सभामण्डप में पधारी हुई भगवती को प्रणाम करने का यह मन्त्र है। इस मन्त्र से उन्हें नमस्कार करें।।६९।।

[पुनः पूजनोपदेशस्तत्क्रमश्च]

पुनः पाद्यादिकं दत्त्वा पूजयेत् परमेश्वरीम्।
नासारन्ध्रे तु तत्त्वेन गन्धं देव्यै निवेदयेत्।।७०।।
भावपुष्पैस्तु सम्पूज्य धूपं दद्यात् समीरणम्।
परं तेजः प्रदीपञ्च नैवेद्यानि निवेदयेत्।।७१।।
पृथ्वीतत्त्वात्तथा वायोस्तत्त्वेन चामरं शुभम्।
रविमण्डलमादर्शं छत्रं पूर्णनिशाकरम्।।७२।।
पद्मं समेखलां मालामानन्दहारमुज्ज्वलम्।
पुष्पं नानाविधं दिव्यं सप्तद्वीपसमुद्भवम्।।७३।।

अथ यन्त्रारूढाया देव्याः पुनः पूजनमुपदिशति—**पुनरित्यादिना**। पाद्यादिकमित्यादिपदेनार्घ्याचमनीये बोध्ये। गन्धाद्युपचारानाह—**नासेत्यादिना**। तत्त्वेन चतुर्विंशतितत्त्वेन। 'चतुर्विंशतितत्त्वेन गन्धं दद्याद्विचक्षणः' इति कौलावलीतृतीयोल्लासवचनसंवादात्। **भावपुष्पैरिति**। अष्टादश भावपुष्पाणि अमायमनहङ्कारमित्यादिना प्रागस्मिन्नेव प्रकाशे प्रदर्शितानि। **नैवेद्यानीति**। पृथ्वीतत्त्वान्नैवेद्यानि निवेदयेदिति सम्बन्धः।

पुष्पं नानाविधमिति शक्तिपूजायां विहितमिति बोध्यम्। विशिष्याऽऽह कौलावलीनिर्णये तृतीयोल्लासे—

करवीरं जवा द्रोणं चम्पकं नागकेशरम्।
अपराञ्च कदम्बञ्च पारिजातादिकन्तया।
दद्याद्देव्यै प्रयत्नेन माल्यं गन्धसमन्वितम्।। इति।

भगवती को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके पाद्य (पाद्य-आचमनीय) आदि उपचारों से पुनः उनकी पूजा करें। भावपुष्प समर्पित करके पृथ्वी तत्त्वात्मक गन्ध, वायुतत्त्वात्मक धूप, तेजस्तत्त्वात्मक दीप, सुधातत्त्वात्मक नैवेद्य, (अम्बररूप) चामर, सूर्यमण्डलरूप दर्पण, चन्द्रमण्डलरूप छत्र, सात-द्वीपों में उत्पन्न अनेक प्रकार के पुष्पों की समेखला माला एवं पद्मों का आनन्दहार प्रदान करें।।७०-७३।।

आ मूलाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं सुषुम्णामृतवायुना।
अनाहतध्वनिमयीं घण्टामेतां निवेदयेत्।।७४।।
प्रदीपैर्वन्दनं कृत्वा दत्त्वा च प्रतिबोधयेत्।।७५।।

अथ घण्टादानपरिपाटीमाह—आ मूलादित्यादिना। मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तव्यापिनी सुषुम्णाख्या नाडी वर्त्तते। तदुक्तं गान्धर्वे पञ्चमपटले—

मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मरन्ध्रगा।
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्णा वह्निरूपिणी।। इति।

अनयैव सुषुम्णया मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं वायुः सञ्चरति। तस्यैव वायोराघातेन अनाहताख्ये शब्दब्रह्ममये हृत्पुण्डरीके कश्चन शब्दोऽविरामः प्रवर्त्तते। स एव शब्दोऽत्रानाहतध्वनिपदेनाभिधीयते। तत्रैव ध्वनिं घण्टावाद्यत्वेन निवेदयेत् इति फलितार्थः।

मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त सुषुम्ना नाड़ी में प्रवहणशील वायु के आघात से अनाहत चक्र को घण्टे की तरह निवारित करके भगवती को दीप दिखाकर उनकी स्तुति-वन्दना करें।।७४-७५।।

विमर्श—कौलावलीनिर्णय (तृतीय उल्लास) में उत्तर-पूजन की विधि का विशद निरूपण किया गया है। एतदनुसार माँ सनातनी को प्रवाल-जड़ित सुवर्ण-पादुका प्रदान करके रत्ननिर्मित पालकी में बिठाकर सभा-मण्डप में लायें। अमाय आदि भावपुष्पों से पूजा करके उपर्युक्त पुष्पों की माला तथा उज्ज्वल आनन्दहार समर्पित करने के बाद कुण्डगोलोद्भव तथा वायुरूप धूप, सहस्रार की कर्णिका के पात्र में परम अमृतरूप तैल, मूलाधार में चिदग्निमय दीप, अनाहत ध्वनिरूप घण्टावादन, षट्रस व्यञ्जन, सुधासमुद्र, मांस-शैल, मत्स्यराशि, अनेकविध फल, सुपक्व चरु, घृताक्त परमान्न, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, चर्वण प्रदान करके अर्घ्य जल से पुनः आचमन कराकर मूलाधारोत्थ वायु के आघात से सतत निनादित अनाहत चक्ररूप घण्टा प्रदान करें। रज-सत्त्व गुणों से युक्त कर्पूर-चूर्णमिश्रित ताम्बूलवीटिका रत्नपात्र में रखकर भगवती को प्रदान करें।

मुद्रा-प्रदर्शन—माँ सनातनी को दीपदान और स्तुतिगान करने के बाद विचक्षण साधक विभिन्न मुद्रायें प्रदर्शित करे। इन मुद्राओं का लक्षण-निरूपण निम्न श्लोकों में किया गया है—

[दर्शयितव्यासु मुद्रासु सुन्दरीमुद्रा]

आधारादुत्थितं वायुं षोडशान्ते सुषुम्णया।
नयने नासिकाग्रस्थे निमेषोन्मेषवर्जिते।।७६।।
भ्रुवोर्मध्ये समानीय दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन्।
नोष्ठैर्नोष्ठं न वा तालुं जिह्वया ज्ञानखड्गकः।।७७।।
शक्तौ लक्षं बहिः कुर्यान्निमेषोन्मेषवर्जितम्।
एषा सा सुन्दरी मुद्रा भैरवीमोदकारिणी।।७८।।

सुन्दरी-मुद्रा—मूलाधार से उत्थित वायु को सुषुम्णा मार्ग से षोडशान्त तक लायें। दोनों आँखों को नासाग्र पर टिकाकर टकटकी लगाकर बिना पलक झपकाये देखें। इस समय न तो ओष्ठ से अधर, न अधोदन्तपंक्ति से ऊर्ध्वदन्तपंक्ति और न तालु से जीभ को सम्पृक्त होना चाहिए। भैरव को आमोद प्रदान करने वाली यह 'सुन्दरी' मुद्रा है।।७६-७८।।

विमर्श—इस मुद्रा में मुँह अधखुला रहता है तथा पूरी शक्ति नासाग्र को देखने में लगी रहती है।

[विस्मयमुद्रा]

दक्षिणा मिलिता मुष्टिर्नासिकार्पिततर्जनी।
मुद्रा विस्मयसंज्ञा स्याद् विस्मयावेशकारिणी।।७९।।

मिलिता मुष्टिरित्यत्र निविडा मुष्टिरिति तन्त्रसारे पाठः।

विस्मय मुद्रा—दाहिने हाथ की कसकर मुट्ठी बाँधकर उसकी तर्जनी अंगुली को नाक पर रखने से विस्मय मुद्रा बनती है।।७९।।

[नादमुद्रा]

मुष्टिरुद्धीकृताङ्गुष्ठा दक्षिणा नादमुद्रिका।

मुष्टीति। मुष्ट्या रुद्धीकृतोऽङ्गुष्ठो यस्यास्तथाभूता दक्षिणा नादमुद्रेत्यर्थः। अत्र दक्षिणकरस्याङ्गुष्ठमितरेणाङ्गुलिचतुष्टयेन रुद्धं कुर्यादिति फलितार्थः।

नाद-मुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी को ऊँची करके अँगूठे को खड़ा करने से 'नाद-मुद्रा' बनती है।

[बिन्दुमुद्रा]

तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगाद् बिन्द्वाख्या सैव कीर्तिता।।८०।।

बिन्दुमुद्रा—दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी को जोड़ने से 'बिन्दु' मुद्रा बनती है॥८०॥

[ज्ञानमुद्रा]

ज्ञानमुद्रा यदैव स्यान्नाऽऽभिमुख्येन संस्थिता।

ज्ञानमुद्रा—अंगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को मिलाने से ज्ञान-मुद्रा बनती है।

बिन्दु और ज्ञान—ये दोनों ही मुद्रायें दाहिने हाथ की तर्जनी और अंगूठे को जोड़कर बनाई जाती हैं; मगर इनमें अंगुलियों की स्थिति में फर्क है।

[योगमुद्रा]

हृत्प्रदेशे तु सम्बद्धा योगमुद्रेति कथ्यते।।८१।।

प्रागुक्ता तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगात्मिका बिन्दुमुद्रैव आभिमुख्येन न संस्थिता चेत् तदा ज्ञानमुद्रेति कथ्यते इत्यर्थः। तथाच कौलावलीनिर्णये सप्तमोल्लासे—

ज्ञानाख्यमुद्रया चैव पूजयेत् परमेश्वरीम्।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु ज्ञानमुद्रेयमीरिता।। इति।

हृदिति। सैव बिन्दुमुद्रा हृदि संयोजिता योगमुद्रेत्युच्यत इत्यर्थः।

योगमुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी को जोड़ने से जो 'बिन्दु' बनती है, उसे हृदयप्रदेश पर स्थापित करने से उसका नाम 'योग' मुद्रा हो जाता है॥८१॥

[बहिरन्तर्योनिमुद्रे]

योनिमुद्रां ततः कुर्यात् सैव चान्तर्भवेदपि।
तन्मांसशोणितस्वादप्रमत्ता मुक्तिहेतवे।।८२।।
एषा सा परमा मुक्तिः शृङ्गाररसभाविता।
तस्याः स्वेच्छा स्वयं भूतं परमानन्दभैरवम्।।८३।।
कन्दे स्थिता वायुशक्तिः सुषुम्णाद्वारगामिनी।
नीवारशूकवत्तन्वी विसतन्तुनीयसी।।८४।।
विद्युत्कोटिप्रतीकाशा सूर्यकोटिसमप्रभा।
अशेषजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी ।।८५।।
हृद्ग्रन्थितालुकाग्रन्थिकपाटास्फोटनाकुलम् ।
बिन्दुलम्बिकयोर्मध्ये त्रिकोणे शाम्भवे नयेत्।।८६।।
प्रविश्य रमते गाढं पुरुषेण सहानिशम्।
स्थिरचित्तः सदा ध्यायेद्यथा स्यान्मानसं स्थिरम्।।८७।।

योनीति। बहिरन्तर्भेदेन योनिमुद्रा द्विविधा भवति। तत्र बहिर्योनिमुद्रा प्रसिद्धा। अन्तर्योनिमुद्रामाह—सैवेत्यादिना।

योनिमुद्रा—बहिरन्तर भेद से योनिमुद्रा दो प्रकार की है। इनमें से बहिर्योनि मुद्रा अत्यन्त प्रसिद्ध है। अतः उसके लक्षण का यहाँ निरूपण नहीं किया गया है। अन्तर्योनि मुद्रा शृंगार रस से ओतप्रोत और मुक्तिदायिनी है।

कन्द अर्थात् मूलाधार में निवास करने वाली वायुशक्ति अर्थात् कुण्डलिनी कमलनाल के रेशे के समान सूक्ष्म है। करोड़ों बिजलियों से अधिक चमकीली तथा करोड़ों सूर्यों के समान जाज्वल्यमान है। सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और संहार की हेतु है। इस कुण्डलिनी शक्ति को हृदयग्रन्थि और तालुकाग्रन्थि के कपाटों का भेदन करते हुए अकुल क्षेत्र में बिन्दु और लम्बिका के मध्यवर्ती त्रिकोण में लायें। इस त्रिकोण मण्डल में आकर वह परं शिवरूप पुरुष को अपने गाढ आलिंगन में बाँधकर रमण करती है। उनके इस सामरस्य का उस समय तक तन्मय होकर ध्यान करें, जब तक मन पूर्णतः स्थिर न हो जाय॥८२-८७॥

विमर्श—'यथा स्यान्मानसं स्थिरम्'—मन पूर्णतः स्थिर हो जाय। मन के स्थिर हो जाने का अर्थ है कि उसकी सारी वृत्तियों का निरोध हो गया है। अतः मन के स्थिर हो जाने की परिणति समाधि में होती है। यह समाधि दो प्रकार की होती है। यथा—

[स्वयम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन समाधेर्द्वैविध्यम्]

समाधिर्जायते तत्र संज्ञाद्वयविराजितः।
स्वयम्प्रज्ञातनामैको ह्यसम्प्रज्ञातनामधृक्॥८८॥

समाधिरिति। सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन समाधेर्द्वैविध्यं विविधस्य च तस्य तीव्रतीव्र-तरत्वादिभेदेन ते ते भेदाः पातञ्जलसूत्रव्यासभाष्ये विशिष्य प्रदर्शिताः।

मन के स्थिर हो जाने से जो समाधि लगती है, उसके दो भेद या दो प्रकार हैं। इनमें से एक का नाम है—स्वयम्प्रज्ञात और दूसरे का नाम है—असम्प्रज्ञात॥८८॥

[तत्र स्वयम्प्रज्ञातः]

स्वयम्प्रज्ञातसंज्ञस्तु शिवाधिक्येन जायते।

इनमें से स्वयं प्रज्ञात नाम का जो प्रथम समाधिभेद है, उसमें 'शिवा' अर्थात् शक्ति का अधिक प्रभाव होता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि शक्ति का प्रभाव अधिक होने पर स्वयम्प्रज्ञात समाधि लगती है।

[असम्प्रज्ञातः]

असम्प्रज्ञातनामा तु शिवतत्त्वेन वै भवेत्॥८९॥

असम्प्रज्ञात नामक समाधि शिव का प्रभाव अधिक होने पर लगती है॥८९॥

विमर्श—उपर्युक्त दोनों श्लोक श्री 'ज्ञानार्णवतन्त्र' के हैं। पटल १६ श्लोक-संख्या ६ और ७। ज्ञानार्णव में स्पष्ट रूप में कहा गया है—

स्वयम्प्रज्ञातसंज्ञस्तु शक्त्याधिक्येन जायते।
असम्प्रज्ञातनामैको शिवाधिक्येन वै भवेत्॥१६/७

अगले दो श्लोकों में इन दोनों प्रकार की समाधियों के उपभेदों और उनके लक्षणों का निरूपण किया गया है।

[स्वयम्प्रज्ञातभेदौ]

स्वयम्प्रज्ञातभेदस्तु तीव्रस्तीव्रतरो भवेत्।

स्वयम्प्रज्ञात समाधि के दो भेद हैं—तीव्र एवं तीव्रतर।

[असम्प्रज्ञातभेदौ]

असम्प्रज्ञातभेदस्तु मन्दो मन्दतरस्तथा।।९०।।

असम्प्रज्ञात के भी दो भेद हैं—मन्द और मन्दतर॥९०॥

[तत्र प्रथमस्य भेदयोः स्वरूपम्]

हास्यरोदनरोमाञ्चकम्पस्वेदादिलक्षणः ।
तीव्रस्तीव्रतरश्चैव समाधिरुपलक्षितः।।९१।।

लक्षण—हास्य, रोदन, रोमाञ्च, कम्पन और स्वेद—ये शक्ति आधिक्यजन्य स्वयम्प्रज्ञात समाधि के तीव्र और तीव्रतर भेदों के लक्षण हैं॥९१॥

[द्वितीयस्य भेदयोः स्वरूपम्]

निमेषवर्णि(र्जि)ते नेत्रे वपुस्तल्लक्षणं स्थितम्।
मन्दो मन्दतरश्चैव समाधिरुपलक्षितः।।९२।।

लक्षण—पलकों का नहीं गिरना अर्थात् टकटकी लग जाना तथा शरीर का स्थिर एवं निश्चल (जड़) हो जाना शिव-प्रभाव की अधिकता वाली असम्प्रज्ञात समाधि के मन्द और मन्दतर भेदों का लक्षण है॥९२॥

विमर्श—हास्य, रुदन, प्रस्वेदन, निर्निमेषिता आदि ऐसी शारीरिक क्रियायें तथा चेष्टायें हैं, जो मन के सक्रिय रहने पर ही होती है। अतः जब मन स्थिर हो गया हो तो ये चेष्टायें या क्रियायें नहीं होनी चाहिए। अतएव मन के स्थिर हो जाने पर भी यदि शरीर में ये चेष्टायें या क्रियायें परिलक्षित होती हैं तो यह समझा जाना चाहिए कि साधक को भावसमाधि लग गई है। इन लक्षणों को देखकर समाधि-भेद और समाधि की अवस्था का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

शाम्भवेन तु योगेन सुखी भूयान्निरन्तरम्।
तयोः संयोगमाहूय परमामृतगोकुलम्।।९३।।
पानीयं मनसा दत्त्वा पुनर्जन्म न विद्यते।
तदानन्दमयं ज्ञानं प्रीता भवति सुन्दरी।।९४।।

यह भावसमाधि शाम्भव योग अर्थात् शिवसान्निध्य की प्राप्ति है। शिव का सान्निध्य प्राप्त कर लेने पर साधक का पुनर्जन्म नहीं होता। वह सदैव सुखी रहता है।

'तयो:' अर्थात् इन दोनों—शिव और शक्ति के सामरस्य से उद्भूत द्रव 'परम-अमृत' है। यह परम अमृत पेय जल के रूप में 'गोकुल' (इन्द्रिय समूह) को प्रदान करने से पुनर्जन्म नहीं होता। साथ ही शिव के सामरस्य से सुन्दरी भी प्रसन्न एवं प्रमुदित हो जाती हैं॥९३-९४॥

[विश्रामार्थं कुसुमशयने देव्या: स्थापनं प्रीतिसम्पादनञ्च]

पुष्पशय्यां ततः कृत्वा तत्र नीत्वा सुरेश्वरीम्।
मनोनर्त्तकतालैश्च शृङ्गारादिरसोद्भवैः।।९५।।
नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम्।
तस्मात् कामेश्वरी माता पि(प्री)ता कामेश्वरश्च सः।।९६।।

सामरस्य के बाद क्लेद-निवारण और विश्रान्ति के लिये सुरेश्वरी को शिव-पद से लाकर फूलों की (कल्पित) शय्या पर बैठायें। जब वे सुस्थिर चित्त से बैठ जायँ, मनरूपी नर्तक के लास्य, नृत्य एवं शृङ्गार रस में पगे मधुर गीतों तथा सुमधुर संगीत से उन्हें प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करें। प्रमुदित मन से कामेश्वरी और कामेश्वर के साथ अपने एकत्व की भावना करें॥९५-९६॥

[मानसयागफलम्]

मनसैकां महापूजामन्तरार्चनमुत्तमम्।
कृत्वा सिद्धिमवाप्नोति न स बन्धेन बध्यते।।९७।।

मन से की गई यह अन्तर्पूजा श्रेष्ठ महापूजा है। नित्यप्रति यह महापूजा करने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और साधक-आत्मा किसी बन्धन में नहीं बँधता, वह सभी बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है॥९७॥

विमर्श—गन्धर्वतन्त्र (द्वादश पटल, श्लोक ३०-३१) में बहिरंग अर्चन के समान ही अन्तरंग अर्चन में भी चक्र-पूजा तथा नव आवरणशक्तियों का मन से ही अर्चन के पश्चात् मन से ही मन्त्रजप करने का विधान बताया गया है। 'कौलावली-निर्णय' (तृतीय उल्लास) में भी मानसिक अर्चन के बाद अक्षमाला से मन्त्रजप का विधान मिलता है। साधक समाज में यह विधान प्रचलित भी है। अक्षमाला से मन्त्र-जप करने के बाद वे 'अन्तर्होम' करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में अक्षमाला से इष्ट मन्त्र के जप का विधान न बताकर पूजन के बाद सीधे 'अन्तर्होम' का विधान बताया गया है।

[ज्ञानहोमनिरूपणोपक्रम:]

ज्ञानहोमं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्ममयो भवेत्।

एवमन्तरार्चनमभिधाय तदङ्गं ज्ञानहोमं वक्तुमुपक्रमते—**ज्ञानहोममित्यादिना।** ज्ञानहोमो मानसहोम एव। ज्ञानमात्रेणैव वक्ष्यमाणहोमप्रक्रियासम्पादनादस्य ज्ञानहोमत्वम्। अस्य फलमाह—**येनेत्यादिना।**

अन्तर्याग की विधि का निरूपण करने के बाद अब 'ज्ञान-होम' की विधि बता रहा हूँ। यह होम करने से साधक ब्रह्ममय हो जाता है।।

[तत्र चतुरस्रकुण्डम्]

ज्ञानेन चतुरस्राख्यं कुण्डं सञ्चिन्त्य मन्त्रवित्।।९८।।

ज्ञानेनेति। ज्ञानेन केवलं मनोव्यापारेण चिन्तनमात्रेणेत्यर्थः। **चतुरस्राख्यमिति।** कुण्डमिदं सप्तमप्रकाशोक्तचतुरस्रकुण्डवत् कल्पनीयम्। एतदभिप्रायेणैव ज्ञानार्णवे द्वाविंशपटले—

ज्ञानेन चतुरस्राख्यं कुण्डं सञ्चिन्त्य पूर्ववत्।

इत्युक्तम्।

यह ज्ञानहोम करने के लिये साधक को सर्वप्रथम ज्ञानपूर्वक चतुरस्र कुण्ड (वर्गाकार कुण्ड) का चिन्तन करना चाहिए।।९८।।

[आत्मनां चातुर्विध्यम्]

आत्मानो वेदसंख्या हि ज्ञातव्याः साधकोत्तमैः।

आत्मान इति। वेदसंख्या आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मभेदेन चतुःसंख्याका इत्यर्थः। इतः प्रभृति प्रकाशान्तं यावज् ज्ञानार्णवीयद्वाविंशपटलेन प्रायः सर्वमेव संवदति। तत्राऽऽत्मान इत्यादिपादद्वयात् पूर्वम्—

आत्मभिश्चतुरस्रं तत् विज्ञेयं वीरवन्दिते।

इति पादद्वयं दृश्यते। अत्राऽऽत्मभिरित्यादिपादद्वयं लेखकप्रमादात् पतितमिति प्रतिभाति। अन्यथात्मचतुष्टयनिरूपणमसङ्गतिमापद्येत। एवञ्च निरुक्तज्ञानार्णववचनपर्यालोचनया निरुक्तात्मचतुष्केण चतुरस्रकुण्डं विधेयमित्यापतति, वक्ष्यति च स्वयमेव—

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः।
एतद्रूपं हि चित्कुण्डं चतुरस्रं विभावयेत्।। इति।

साधक को यह जानना चाहिए कि आत्मा के चार भेद हैं। ये चार भेद हैं— (१) आत्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा और (४) ज्ञानात्मा। पूर्ववर्ती श्लोक में जिस चतुरस्र कुण्ड का उल्लेख है, वह कुण्ड आत्मा के इन चारो भेदों को मिलाकर बना है।

[निरुक्तात्मज्ञानरूपम्]

एषां विज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते।।९९।।

आत्मा के उपर्युक्त चारो रूपों का ज्ञान हो जाने पर देशिक का पुनर्जन्म नहीं होता॥९९॥

विमर्श—पुनर्जन्म का कारण आत्मस्वरूप की विस्मृति से उपजा अज्ञान है। जैसे ही आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है, बार-बार जन्म का कारण ही समाप्त हो जाता है।

[आत्मनः स्वरूपम्]

साधारणेन पक्षेण वर्त्तते सर्वजन्तुषु।
स आत्मा प्राणरूपी तु हृदये परमात्मकः।।१००।।

आत्मनश्चातुर्विध्यं निरूप्य तस्य सर्वमूर्त्तसंयोगित्वादिलक्षणं स्वरूपं निरूपयति— **साधारणेनेत्यादिना भ्रान्तिरेव न संशय इत्यन्तेन**। अनेन जीवात्मपरमात्मनोरभेदः प्रतिपादितः। स सर्वप्राणरूपी चराचराखिलशरीरव्यापकः हंसस्वरूपी प्रकृतिपुरुषोभयात्मकश्च। तत्र श्वासोच्छ्वासाद्यखिलविलासवान् प्रतिदेहं व्यवस्थित आत्मैव भ्रान्तेर्जीवात्मत्वेन व्यपदिश्यते। परमार्थतस्तु परमात्मेतरस्य कस्यचिद् जीवात्मनः सत्ता नास्ति। श्वासप्रश्वासादीनां शरीरधर्मप्रतीतिस्तु भ्रमवशादेव। अत एव गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटले—

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।
एषः सम्भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः।
तस्माद् द्वैतं न मे चास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः।।

इत्यादिना नित्यत्वैकत्वव्यापकत्वादिकमात्मनः प्रतिपादितम्।

यह आत्मा सर्वव्यापक परं ब्रह्म का अंश होने के कारण सभी प्राणियों में प्राण बनकर सम्यक् रूप से व्यवस्थित है॥१००॥

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र में आत्मा के इस गुण को और भी स्पष्ट रूप से विवेचित किया गया है—

साधारणपक्षेण वर्तते सर्वजन्तुषु॥३॥
स आत्मा परमेशानि प्राणरूपी वरानने।
प्राणस्तु पवनो देवि! हृदयस्थानमन्दिरः॥४॥

यह आत्मा प्राणरूपी है और प्राण पवनस्वरूप हैं। प्राणों का निवास हृदयमन्दिर में है।

[आत्मनश्चराचरशरीरव्यापकत्वम्]

शरीरं व्याप्य सकलं चरस्याप्यचरस्य च।
हंसस्वरूपो विज्ञेयः श्वासोच्छ्वासविलासवान्।।१०१।।

प्राणियों के शरीर में इसकी अवस्थिति एकदेशीय नहीं है अर्थात् शरीर के किसी अंग या अवयवविशेष में ही इसकी अवस्थिति नहीं है; अपितु यह सम्पूर्ण

शरीर में व्याप्त है। प्राणरूपी होने के कारण यद्यपि यह आत्मा श्वास लेती है और श्वास छोड़ती है; परन्तु यह श्वासोच्छ्वास इसका नैसर्गिक धर्म नहीं; अपितु विलासमात्र है। वस्तुतः इसे हंस के समान निःसंग समझना चाहिए॥१०१॥

[भ्रमवशादस्यैव जीवसंज्ञा]

जीवस्तस्यैव नाम स्याद् भ्रान्त्या श्वासोपलक्षितः।
श्वासोच्छ्वासौ देहभावौ भ्रान्तिरेव न संशयः॥१०२॥

यथार्थ यह है कि परं ब्रह्म का अंश होने के कारण यह आत्मा परं ब्रह्म के समान ही सत्-चित्-आनन्दमय तथा नित्य-सनातन है और परमात्मा को छोड़कर और कोई वस्तु इसकी सत्ता का आधार नहीं है; लेकिन विडम्बना यह है कि यह आत्मा स्वयं को देह तथा देह के श्वासोच्छ्वास आदि गुण-धर्म को अपना गुण-धर्म समझती है। स्वयं को देह तथा श्वासोच्छ्वास को अपना गुण-धर्म समझना उसकी भ्रान्ति है—सरासर अज्ञान है और इसी अज्ञान या भ्रान्ति के कारण उसे जीव कहा जाता है॥१०२॥

कुलालचक्रभेदेन घटाकाशं यथा घटे।
घटे भवति भिन्नत्वं नाऽऽकाशे भिन्नता भवेत्॥१०३॥
तथा देहगतो जीवो देहनाशे जगत्स्वयम्।
व्याप्य तिष्ठति सर्वत्र तस्मादात्मपदं महत्॥१०४॥
आत्मज्ञानं शिवेनोक्तं द्वितीयञ्च शृणुष्व च॥१०५॥

ननु तत्तद्देहावच्छेदेनाऽऽत्मनो भेदस्यानुभवसिद्धत्वात् कथं तस्यैकत्वादिकं सिध्यतीत्याशङ्कां दृष्टान्तदर्शनमुखेन परिहरति—**कुलालेत्यादिना**। यथा आकाशस्यैकत्वेऽपि कुलालचक्रभेदेन समुत्पन्नेषु घटेषु तत्तद्घटावच्छिन्नमाकाशं भिन्नतया प्रतिभाति वस्तुतस्तु घट एव भिन्नत्वं भेदो भवति आकाशे तु भिन्नता न भवेत्। आकाशमेकमेव, उपाधिभेदादेव तस्य भेदव्यवहारः। अत एव विश्वनाथेन 'एकः सन्नप्युपाधित' इत्युक्तम्। एवं दृष्टान्तमुपन्यस्य दार्ष्टान्तिकं प्रदर्शयति—**तथेत्यादिना**। प्रागुपदर्शितघटाद्यवच्छिन्नाकाशवद् देहगतो देहावच्छिन्नः परमात्मा जीव इत्युच्यते; परन्तु देहनाशेऽनुपहितोऽयं स्वयं जगद् व्याप्य सर्वत्र तिष्ठति, सर्वत्र जगत्सु अयं व्याप्य सर्वं वस्तुजातमिति शेषः, इति वा सम्बन्धः। यथा तत्तद्घटनाशे तत्तद्घटावच्छिन्नाकाशो महाकाश एव तथा तत्तद्देहनाशे तत्तद्देहावच्छिन्न आत्मा परमात्मैव, न तु जीवत्वेनाऽऽत्मनः काचित् स्वतन्त्रा सत्ताऽऽस्तीति फलितार्थः। एतदभिप्रायेणैव गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटले—

यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः।
तथा भ्रान्तिर्द्विधा प्रोक्ता ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना॥ इति।

यह आत्मतत्त्व आकाश की तरह सर्व-व्यापक, विभु और अविनाशी है। जो आकाश सर्वत्र व्याप्त है, वही आकाश कुम्हार के चाक पर स्थित घट (घड़े) में भी व्याप्त है। जब कुम्हार डण्डे से चाक को घुमाता है, घड़े में स्थित आकाश भी घूमता हुआ प्रतीत होता है; लेकिन जब घड़ा फूट जाता है, उसमें स्थित या व्याप्त आकाश नहीं फूटता; अपितु वह बाह्य आकाश में लीन हो जाता है। उसी तरह देह का नाश हो जाने पर देह में स्थित आत्मा का नाश नहीं होता; अपितु वह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो जाती है। देह से निरपेक्षता, नित्यता और विभुता आत्मा के गुण-धर्म हैं। उसके इन गुण-धर्मों की प्रतीति ही आत्मज्ञान है। अब आत्मा के दूसरे भेद (अन्तरात्मा) का गुण-धर्म सुनिये॥१०३-१०५॥

[अन्तरात्मस्वरूपम्]

अन्तःशब्देन सकलं रहस्यं सूक्ष्मरूपकम्।
परमात्मस्वरूपेण सर्वं व्याप्य विजृम्भते॥१०६॥
अन्तरङ्गतया तेन चरं वाऽप्यथवाऽचरम्।
व्याप्यते सकलं यस्मादन्तरात्मेति गीयते॥१०७॥

'अन्तः' शब्द का अर्थ है—अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप रहस्य। यह सूक्ष्म स्वरूप रहस्य (परमाणुरूप से) सर्वत्र व्याप्त है। चराचर प्राणि-जगत् के अन्तरंग में यह विद्यमान है। समस्त प्राणि-जगत् के अन्तरंग में (परमाणुरूप से) विद्यमान या अनुस्यूत रहने के कारण इसे 'अन्तरात्मा' कहते हैं॥१०६-१०७॥

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र (पटल २१, श्लोक संख्या ११) में 'परमात्मस्वरूपेण' का पाठ है—'परमाणुस्वरूपेण'। यह पाठ अधिक सटीक प्रतीत होता है; अतः इसे कोष्ठक में लिख दिया गया है।

[परमात्मनः स्वरूपम्]

स एव हंस आत्मा हि योगिगम्यो यदा भवेत् ।
तावच्चञ्चुर्भवेच्चैव निगमागमपक्षवान्॥१०८॥
शिवशक्तिपदद्वन्द्वो बिन्दुत्रयविलोचनः।
यश्च परमहंसस्तु यस्मात् सर्वत्र चैव हि॥१०९॥
तदा भूतानि जायन्ते क्रमेणैव च तच्छृणु।
आकाशः पवनो ह्यग्निर्जलं पृथ्वी क्रमेण तु॥११०॥
एतेषां पञ्चभूतानां प्रथमं बीजमुच्यते।
अविद्याख्यसरोमध्ये मोहपङ्कजपूरिते॥१११॥
प्रपञ्चकमले भूतपद्माक्षपरिजृम्भिते।
विहारोऽस्यैव मोहस्य दृष्ट्वा मायामयो भवेत्॥११२॥

अयमेव महाकाले निष्प्रपञ्चो यदा भवेत्।
संहाररूपी हंसस्तु तदात्मानं प्रदर्शयेत्।।११३।।
पक्षित्वमस्य नास्त्येव सोऽहमात्मा प्रतिष्ठितः।
परमात्मेति जानीहि एवमेतदुदाहृतम्।।११४।।

परमात्मस्वरूपमाह—**स एवेत्यादिना।** तावदित्यादिना रूपपरिग्रहः सूचितः।

वही हंस आत्मा है और केवल योगिजन ही इसके स्वरूप की प्रतीति कर सकते हैं। तार (ॐ) ही इस हंसरूपी आत्मा का चोंच है, निगम और आगम इसके पंख हैं, शिव और शक्ति इसके पैर हैं तथा बिन्दुत्रय (अनुस्वार और विसर्ग) इसके नेत्रत्रय हैं। यह परमहंस सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। इसके प्रसार के कारण ही आकाश-वायु-अग्नि-जल एवं पृथ्वी नामक पञ्च महाभूतों की एक-एक क्रम से उत्पत्ति होती है। ये पाँच महाभूत सृष्टि के प्रथम बीज हैं। अविद्या एक गहरा सरोवर है, जिसमें मोह का कीचड़ ही कीचड़ भरा हुआ है। इस दलदलमय सरोवर में उपर्युक्त पाँच महाभूतों के मेल से प्रपञ्चकमल की उत्पत्ति हुई। सृष्टि के आदि काल से ही इस प्रपञ्चकमल का स्वाद लेते हुए इस अविद्या सरोवर में विहार करने से यह आत्मा माया में फँसता ही जाता है। जब यह हंसरूपी आत्मा समय पाकर निष्प्रपञ्च हो जाता है अर्थात् संसार के आकर्षण और प्रलोभन से मुक्त होकर अपने शुद्ध-बुद्ध 'सोऽहम्' रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसका पक्षीत्व समाप्त हो जाता है। पक्षीत्व समाप्त होते ही वह 'परमात्मा' पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।।१०८-११४।।

विमर्श—उपर्युक्त सात श्लोक श्री 'ज्ञानार्णवतन्त्र' (पटल २१, श्लोक १३ से १९) से कतिपय पाठभेद-सहित उद्धृत हैं। परिलक्षित पाठभेद इस प्रकार है—

(१) श्लोकसंख्या १०८—'तावच्चञ्चु'—'तारश्चञ्चु'। इस श्लोक में 'तावच्चञ्चु' पाठ निरर्थक है।

(२) श्लोकसंख्या १०९। 'यश्च'—अयम्। 'यस्मात् सर्वत्र चैव हि'—के स्थान पर 'सृष्टिं व्याप्यावतिष्ठति।

(३) श्लोकसंख्या १११ की प्रथम पंक्ति—'एतेषां·······मुच्यते' के स्थान पर 'पञ्चकस्यास्य देवेशि प्रथमं चित्तमुच्यते।'

(४) श्लोकसंख्या ११२। 'मोहस्य दृष्ट्वा'—हंसस्य सृष्ट्या।

(५) श्लोकसंख्या ११३। महाकाले—'महादेवि'।

(६) श्लोकसंख्या ११४ 'परमात्मेति ············' के बाद 'ज्ञानार्णव' में एक और पंक्ति है, जो अर्थ एवं सन्दर्भ की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

पक्षपुच्छशिरो देवि! आकारप्रतिभासकः।

'पंख-पूँछ और शिर आदि अवयव उस हंस के आकार के प्रतिभासक मात्र हैं। वस्तुतः निर्गुण, निराकार परब्रह्म का अंशस्वरूप आत्मा भी निर्गुण और निराकार है।'

[ज्ञानात्मनः स्वरूपम्]

येनेदं ज्ञायते सर्वं समत्वेन च सर्वदा।।११५।।
चन्द्रः सूर्यो यथा नित्यं नीरक्षीरेषु दृश्यते।
तद्वत् क्षीरस्य समता नीरक्षीरविभेदतः।।११६।।
कर्दमे चन्दने भिन्नं न भवेदन्त्यजे द्विजे।
साक्षी तु सर्वभूतानां ज्ञानात्मा परिकीर्त्तितः।।११७।।

येनेदं ज्ञायत इति। स ज्ञानात्मा परिकीर्त्तित इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः।

इन तीन श्लोकों में 'ज्ञानात्मा' का स्वरूप बताया गया है। जिससे सभी वस्तुओं में पारमार्थिक रूप से समत्व और अभेद की प्रतीति होती है, वह ज्ञानात्मा है। सूर्य और चन्द्रमा दूध और पानी में समान रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिबिम्बित होने के लिये वे पानी और दूध में कोई भेद नहीं करते। कीचड़ और चन्दन, अन्त्यज और द्विज को जो समान दृष्टि से देखता है और सभी प्राणियों में साक्षीरूप से प्रतिष्ठित है, वह ज्ञानात्मा है।।११५-११७।।

विमर्श—ज्ञानार्णव (२१वाँ पटल)।

ज्ञानात्मा कथ्यते भद्रे यः साक्षात् साक्षिरूपकः।
येनेदं ज्ञायते सर्वं समत्वेन वरानने।।२०।।
चन्द्रबिम्बं यथा देवि! जलक्षीरेषु दृश्यते।
न लिप्तस्त(सं त)स्य देविशि नीरक्षीरविभेदतः।।२१।।
कर्दमे चन्दने बिम्बं न भवेल्लिप्तमद्रिजे।
सर्वसाक्षी तथा भद्रे! ज्ञानात्मा परिकीर्तिता।।२२।।

इस तरह निस्संगता, निर्लिप्तता, समता, अभेददृष्टि एवं साक्षीभाव 'ज्ञानात्मा' की विशिष्टतायें हैं।

[आत्मचतुष्टयनिरूपणोपसंहारः]

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः।
एतद्रूपं हि चित्कुण्डं चतुरस्रं विभावयेत्।।११८।।

आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा एवं ज्ञानात्मा—इन चार आत्मरूपों के मेल से निर्मित चतुरस्र चित्कुण्ड की (मूलाधार में) भावना करें।।११८।।

[कुण्डस्य स्वरूपम्]

आनन्दमेखलारम्यं बिन्दुत्रिवलयान्वितम्।
अर्धमात्रायोनिरूपं ब्रह्मानन्दमयं सदा।।११९।।

आनन्द इसकी मेखला है, यह तीन बिन्दुओं से विभूषित है और अर्धमात्रा इस कुण्ड में निर्मित योनि है। यह सर्वदा ब्रह्मानन्दमय है।।११९।।

[तत्र कुण्डे होम:]

परदेवमये सर्वज्ञानदीपविजृम्भिते।
जुहुयात् सन्निभे वह्नौ प्रपञ्चाहुतिमुत्कटम्।।१२०।।
शब्दाख्यमातृकारूपमक्षवर्णविराजितम् ।
अक्षराणि हुतान्यत्र नि:शब्दं ब्रह्म जायते।।१२१।।

सन्निभ इति। सती निभा दीप्तिर्यस्य तस्मिन्, सन्दीपित इत्यर्थ:।

इस कुण्ड में सर्वज्ञान-विजृम्भित परदेवमय अग्नि प्रज्ज्वलित है। इस अग्नि में प्रपञ्चरूप हवि की आहुति देनी चाहिए। शब्द के नाम से विख्यात 'अ'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त सभी अक्षरों की इस 'अन्तर्हवन' में आहुति दे देने से 'नि:शब्द ब्रह्म' का आविर्भाव होता है।।१२०-१२१।।

विमर्श—सच्चिदानन्दस्वरूप परं ब्रह्म से सृष्टि उन्मुखी शक्ति का आविर्भाव हुआ। शक्ति से बिन्दु और नाद तथा इनसे 'शब्दब्रह्म' तथा 'शब्दब्रह्म' से सृष्टि के संघटक तत्त्वों और इनसे चराचर सृष्टि की रचना हुई। यह 'सृष्टिक्रम' है। संहार-क्रम में जब मातृकाक्षर भी संविद् अग्नि में आहुतिस्वरूप समर्पित कर दिये गये तब 'शब्दब्रह्म' शब्दरहित अर्थात् 'नि:शब्द ब्रह्म' बन गया।

[तत्र हवि:कल्पनम्]

कृत्याकृत्ये पापपुण्ये सङ्कल्पञ्च विकल्पकम्।
धर्माधर्मैः साधकेन्द्रो हविस्तेन प्रकल्पयेत्।।१२२।।

कृत्य और अकृत्य, पाप और पुण्य, संकल्प और विकल्प, धर्म और अधर्म—ये सब कुछ इस अन्तर्होम के लिये हवि अर्थात् हवनीय द्रव्य हैं।।१२२।।

[तेन हविषा होमस्योपदेश:]

जुहुयाच्चित्स्वरूपाग्नौ मनुभिस्तेन याजक:।
मूलविद्यां ब्रह्मरूपां ध्यात्वा संविन्मयीं पराम्।।१२३।।

जुहुयादिति। मनुभि: धर्माधर्मेत्यादिवक्ष्यमाणमन्त्रै:। तेन प्राक् प्रकल्पितेन हविषेत्यर्थ:। शिष्टं स्पष्टम्।

ब्रह्मरूपा संविन्मयी परा स्वरूपा मूल विद्या का ध्यान करते हुए चित्-स्वरूप अग्नि में उपर्युक्त हविद्रव्यों की आहुति देनी चाहिए। आहुतिदान के मन्त्रों का स्वरूप मूल संस्कृतपाठ में ही स्पष्ट कर दिया गया है। आहुतिदान के मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद इस तरह है।।१२३।।

[तत्र प्रथमो मन्त्र:]

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।
अग्निजायान्वितो मन्त्रो मूलान्ते प्रकटीकृत:।१२४।।

ज्ञानहोमस्य प्रथमं मन्त्रमाह—**धर्मेति**। एवञ्चाऽऽदौ मूलं ततो धर्माधर्मेत्यादि-जुहोम्यहमित्यन्तं ततः स्वाहेत्युक्त्वा प्रथमाहुतिम् आत्मस्वरूपाग्नौ जुहुयादित्यर्थः। अक्षवृत्तीरिन्द्रियवृत्तीः।

'मूल मन्त्र'—'मैं धर्म और अधर्मरूप हवि के द्वारा दीप्त आत्मरूप अग्नि में मनोरूप स्रुव के द्वारा सुषुम्ना मार्ग से इन्द्रियों की नित्य वृत्तियों की आहुति प्रदान कर रहा हूँ।। स्वाहा।।१२४।।

[द्वितीयो मन्त्रः]

नाभौ चैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो मूलान्ते समुदाहृतः।।१२५।।

द्वितीयमाह—**नाभाविति**। अत्रापि पूर्ववन्मूलं ततो नाभावित्यादि जुहोम्यह-मित्यन्तं ततः स्वाहेति द्वितीयाहुतिं नाभिस्थे चैतन्यरूपाग्नौ जुहुयादित्यर्थः।

मूल-मन्त्र—'नाभि में स्थित तथा ज्ञान से उद्दीप्त चैतन्यरूप अग्नि में इन्द्रियों की नित्य वृत्तियों का मनोरूप स्रुव के द्वारा हवन कर रहा हूँ।।१२५।।

[तृतीयो मन्त्रः]

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।
अग्निजायान्वितो मन्त्रो मूलान्ते च महात्मना।।१२६।।

प्रकाशेति। अत्रापि होमक्रमः पूर्ववत्।

मूलमन्त्र—'प्रकाश और अप्रकाशरूप दोनों हाथों से पकड़कर उन्मनीरूप स्रुव के द्वारा मैं ज्ञानदीप्त आत्माग्नि में अक्ष-वृत्तियों की आहुति दे रहा हूँ।।१२६।।

[चतुर्थो मन्त्रः]

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकाशभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्।।१२७।।

अन्तरिति। अन्तर्देहाभ्यन्तरे निरिन्धनं दाह्यमिन्धनमन्तरेण एधमाने प्रज्वलति तथा मायान्धकारपरिपन्थिनि मायारूपतमःप्रतिबन्धके अद्भुतमरीचिविकाशभूमौ अलौकिक-रश्मिप्रकरप्रकाशाकरे कस्मिंश्चिदनिर्वाच्यस्वरूपे संविच्चैतन्यं तद्रूपाग्नौ वसुधादिशिवा-वसानं पृथ्वीतत्त्वादिशिवतत्त्वान्तात्मकं विश्वं जुहोमीत्यर्थः। अत्रेदमवधेयम्—शैवागमे शिवादीनि क्षित्यन्तानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानि प्रतिपादितानि। तानि च पञ्चमप्रकाशीय-११३-११४-श-श्लोकटीकायां षडध्वनिरूपणप्रसङ्गेन विशिष्य प्रदर्शितानि। तत्र सृष्टिक्रमेण शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वनिर्णयः कृतः। अत्र तु विश्वविलयार्थं विधेये ज्ञानहोमे

लयक्रमेण क्षित्यादिशिवान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वोपदेशः। इत्यभिप्रायेणैव वसुधादिशिवावसानमित्युक्तम्। होमक्रमस्तु पूर्ववत्।

मूल मन्त्र—अद्भुत किरणों वाली किसी विकासभूमि में बिना ईंधन के निरन्तर जलती रहने वाली संविद् अग्नि में पृथ्वी से शिव-पर्यन्त समस्त विश्व को मैं हवन कर रहा हूँ।। स्वाहा।।१२७।।

जुहुयान्मूलमन्त्रान्ते ब्रह्मप्राप्त्यै च साधकः।।१२८।।

ब्रह्मप्राप्ति के लिये विचक्षण साधक मूल मन्त्र के अन्त में उपर्युक्त मन्त्रों की योजना करके हवन करे।।१२८।।

विमर्श—शाक्तानन्दतरंगिणी (षष्ठ उल्लास) में इन चार मन्त्रों के बाद पूर्णाहुति के लिये पाँचवाँ मन्त्र भी बताया गया है। यथा—

मूलमन्त्र— अहन्ता पात्रभरितं इदन्ता परमामृतम्।
पराहन्तामये वह्नौ पूर्णहोमं जुहोम्यहम्।। स्वाहा

'अहन्तारूप पात्र में इदन्तारूप परमामृत को भरकर मैं पराहन्तामय अग्नि में पूर्णाहुति के रूप में हवन करता हूँ।'

[होतुर्ब्रह्मरूपत्वम्]

निष्प्रपञ्चो यदा काले जायते ब्रह्मविन्नरः।
तदा संविन्मयः साक्षात् केवलं ब्रह्मरूपकः।।१२९।।

इस प्रकार निरन्तर साधना करते-करते जिस समय भी ब्रह्मविद् साधक निष्प्रपञ्च हो जाता है, उसी समय वह संविन्मय साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। निष्प्रपञ्च अर्थात् दुनिया और दुनियादारी से सर्वथा मुक्त।।१२९।।

[उपसंहारः]

अन्तर्होममनुः प्रोक्तः सर्वपापनिकृन्तनः।।१३०।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ षोडशः प्रकाशः।।१६।।

यह अन्तर्होम और अन्तर्होम के लिये बताये गये मन्त्र सभी पापजाल को काटने वाले हैं। इन मन्त्रों से अन्तर्होम करने से साधक के सब पाप कट जाते हैं।।१३०।।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के सोलहवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१६।।

●

सप्तदशः प्रकाशः

[श्रीचक्रस्वरूपम्, मुद्रास्वरूपम्, यन्त्रनिर्माणोपकरणादिनिर्णयः, रात्रौ यन्त्रनिर्माणनिषेधः, तत्र व्यवस्था, श्रीचक्रोद्धारः, तत्र विशेषः, नवचक्रभेदाः, चक्ररहस्यम्, पाठार्चा]

[यन्त्रनिरूपणप्रतिज्ञा]

यन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।१।।

एवं पूर्वप्रकाशेऽन्तर्यागमभिधाय प्रकाशेऽस्मिन् श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीदेव्याः पूजायन्त्रमभिधातुं प्रतिजानीते—**यन्त्रोद्धारमित्यादिना**। अत्रेदमवधेयम्—श्रीमत्त्रिपुरायास्त्रिविधः सङ्केतो भवति यन्त्रसङ्केतो मन्त्रसङ्केतः पूजासङ्केतश्चेति। तदुक्तं योगिनीहृदये प्रथमपटले—

चक्रसङ्केतको मन्त्र-पूजासङ्केतकस्तथा।
त्रिविधस्त्रिपुरादेव्याः सङ्केतः परिकीर्त्तितः।।
यावदेतन्न जानाति सङ्केतत्रयमुत्तमम्।
न तावत् त्रिपुराचक्रे परमाज्ञाधरो भवेत्।। इति।

चक्रयन्त्रशब्दावभिन्नार्थकौ। तत्र च मन्त्रसङ्केतः पूर्वमभिहितः। पूजासङ्केतश्चाष्टादशप्रकाशे वक्ष्यते। यन्त्रसङ्केतस्य निरूपणार्थमेतत्प्रकाशारम्भः। सङ्केतपदार्थञ्च व्याख्यातो योगिनीहृदयटीकायाममृतानन्दनाथेन—'सङ्केतवत् सङ्केतकः, यथा कृतसमयौ कामिनीकामुकौ यत्र क्वापि वसत एवमस्मिन् शिवादिति'। एवञ्च भगवती कामकलात्मिका श्रीमत्त्रिपुरादेवी भगवता कामेश्वरेणात्र चक्रे वसतीति सङ्केतपदादवगम्यते।

पिछले अध्याय (प्रकाश) में अन्तर्याग-विधि का सांगोपांग निरूपण करने के बाद अब बहिर्याग-विधान के प्रसंग में सर्वप्रथम 'यन्त्र-संकेत' बताया जा रहा है; क्योंकि 'योगिनी-हृदय' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि यन्त्र-संकेत, मन्त्र-संकेत और पूजा-संकेत को भली-भाँति हृदयङ्गम कर लेने के बाद ही सिद्धिकामी साधक को त्रिपुरा-साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। 'यन्त्र-संकेत' का अर्थ है—यन्त्र की रूपरेखा अर्थात् स्वरूप, यन्त्र-निर्माण की विधि, यन्त्र में पूजित परिवार-देवताओं का विवरण तथा यन्त्र का आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक रहस्य। उपर्युक्त श्लोक-वाक्य 'यन्त्र-संकेत'-निरूपण का प्रतिज्ञावाक्य है।।१।।

[यन्त्रपदव्युत्पत्ति:]

यमयत्यखिलं पापं त्रायते महतो भयात्।
साधकं पूजनाद्ध्यानात्तस्माद्यन्त्र: प्रकीर्त्त्यते।।२।।
अत: शरीरं यन्त्रञ्च मन्त्रं ज्ञानमण्डितम्।।३।।

यन्त्रपदव्युत्पत्तिमाह—**यमयतीत्यादिना।** एतेन पातकनियन्तृत्वाद् भयत्राण-कर्त्तृत्वाच्चास्य यन्त्रसंज्ञा। तन्त्रसारे तु—

कामक्रोधादिदोषोत्थ-सर्वदु:खनियन्त्रणात्।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देव: प्रीणाति पूजित:।
तथा—दु:खनियन्त्रणाद् यन्त्रमित्याहुस्तन्त्रवेदिन:।।

इति यन्त्रपदव्युत्पत्ति: प्रदर्शिता।

यन्त्रस्य देवीशरीररूपत्वमभिधत्ते—**अत इत्यादिना।** अत: प्रागुक्ताखिलपाप-नियन्तृत्वादिगुणकत्वाद् यन्त्रं देव्या: शरीरमित्यर्थ:। ननु यन्त्रं देव्या: शरीरं चेत् किं तत्र ज्ञानमित्यत आह—**मन्त्रं ज्ञानमिति।** जन्यज्ञानव्यावर्त्तनाय अखण्डितमिति, नित्य-मित्यर्थ:। अत एव गन्धर्वतन्त्रे चतुर्थपटले श्रीचक्रनिर्माणपरिपाटीमभिधाय—

एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीत्रिपुरामयम्।
यन्त्रं शरीरमित्याहुर्मन्त्रं ज्ञानमखण्डितम्।।

इत्यनेनायमेवार्थो व्यक्तमुक्त:।

'यन्त्र' पद की व्युत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि देवता का वह विग्रह, जो ध्यान और पूजन किये जाने पर साधक के सभी पापों का शमनपूर्वक नियन्त्रण तथा सर्वविध विघ्नों और आपदाओं से उसकी (साधक की) रक्षा करता है, उसे यन्त्र कहते हैं। यन्त्र-देवता का ज्यामितीय विग्रह है तो मन्त्र है—देवता का अखण्डित ज्ञान-विग्रह।।२-३।।

विमर्श—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि 'वाचक और वाच्य की तरह मन्त्र और देवता में अभेद है। मन्त्र वाचक है और देवता वाच्य है। मन्त्र देवता का विग्रह है और यन्त्र मन्त्रमय अर्थात् देवतामय होता है; अत: यन्त्र और देवता का सम्बन्ध देह और आत्मा के समान है। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

[शरीरस्य त्रैविध्यम्]

शरीरं त्रिविधं प्राहुर्भौतिकञ्च मनोमयम्।
परं ज्ञानमयं नित्यं यदनाशि निरन्तरम्।।४।।

देवीशरीरस्य त्रैविध्यं दर्शयति—**शरीरमित्यादिना।** भौतिकं मनोमयं ज्ञान-मयञ्चेति त्रिविधं शरीरमित्यर्थ:। तत्र ज्ञानमयशरीरस्य विशेषमाह—**परमिति।** निरुक्तशरीरेषु ज्ञानमयं शरीरं परं श्रेष्ठमित्यर्थ:। श्रेष्ठत्वे हेतुमाह—**नित्यमित्यादिना।**

नित्यम् उत्पत्तिरहितम् अनाशि विनाशरहितञ्च। नित्यमित्यनेनैवोत्पत्तिविनाशराहित्यार्थावगमसम्भवेऽपि अविनाशीति पुनरुपादानादत्र नित्यपदेनोत्पत्तिरहितत्वमात्रं विवक्षितमिति बोध्यम्। फलितमाह—**निरन्तरमिति**। कालत्रयावच्छेदेन वर्त्तमानमित्यर्थ:।

जिस तरह मनुष्य के तीन शरीर होते हैं, उसी तरह देवता के भी तीन शरीर हैं; यथा—(१) भौतिक शरीर, (२) मनोमय शरीर और (३) ज्ञानमय शरीर। इन तीनों शरीरों में ज्ञानमय शरीर देवता का नित्य शरीर है, इसकी कभी भी नाश नहीं होता; अत: वह देवता का सर्वश्रेष्ठ शरीर है।।४।।

[तत्स्वरूपम्]

मुद्रा भौतिकमित्याहुर्यन्त्रं विद्धि मनोमयम्।
मन्त्रं ज्ञानमयं प्राहुरेवं त्रिधा वपुर्भवेत्।।५।।

क्रमेणैतेषां स्वरूपं निर्वक्ति—**मुद्रेत्यादिना**। तथाच मुद्रा भौतिकं शरीरम्, यन्त्रो मनोमयशरीरम्, मन्त्रं ज्ञानमयशरीरमिति त्रिविधं शरीरमित्यर्थ:।

देवता का अर्चन करते समय दोनों हाथों की अंगुलियों से विभिन्न प्रकार की जो संरचनायें और आकृतियाँ बनाई जाती हैं, उन्हें 'मुद्रा' कहते हैं। ये मुद्रायें ही देवता की भौतिक काया अर्थात् भौतिक शरीर हैं। जिस ज्यामितीय आकृति पर देवता का अर्चन किया जाता है, उसे यन्त्र कहते हैं। यह यन्त्र ही देवता का मनोमय शरीर है। देवता का मन्त्र ही उसका ज्ञानमय अर्थात् ब्रह्मरूप विग्रह है।।५।।

विमर्श—तन्त्रोपदिष्ट साधन-विधान में परदेवता के रूप में 'चित्-शक्ति' की पूजा की जाती है और दोनों हाथों की अंगुलियों से बनाई जाने वाली मुद्रायें परदेवतारूपी 'चित्-शक्ति' की भौतिक काया हैं। 'योगिनी तन्त्र' में भी कहा गया है—

चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शने यदा।
करोति स्वेच्छया पूर्णविचिकीर्षासमन्विता।।
क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनात् द्रावणात् तथा,
मुद्रेति कथिता देवि! ------------------------------

अन्यत्र भी कहा गया है—'यदा विमर्शशक्ति: विश्वरूपेण विहर्तुमिच्छति, तदा क्रियाशक्तिर्भूत्वा विश्वस्य परचिदानन्दलक्षणेन मोदमानेन तदैकरस्यलक्षणेन द्रावणेन च मुद्राख्यामापन्नेत्यर्थ ---------।'

तात्पर्य यह कि भगवती त्रिपुरेश्वरी जब विश्व का उन्मीलन करने की इच्छा करती हैं तब उनका स्वरूप क्रियात्मक हो जाता है। इस क्रियात्मिका चित् शक्ति के द्वारा विश्व की विचीकीर्षा काल में अनुमोदन और द्रावणरूप से व्यापार (क्रियायें) किये जाते हैं। अनुमोदन का अर्थ है—विश्व की उत्पत्ति एवं संवर्धन के प्रति अनुकूलता या अनुग्रहभाव। 'द्रावण' का अर्थ है—महाप्रलय की अवस्था में चित्

तत्त्व में लीन घनीभूत विश्व के घनत्व में विशरण का आपादन, जिससे सावयव प्रपञ्च के रूप में उसका फिर से उन्मीलन हो सके। इस अनुमोदन और द्रावण व्यापार के कारण क्रियात्मिका चित् ही मुद्रा है।

शारदातिलक (२६/१०६ की टीका) में कहा गया है कि हाथों की अंगुलियाँ पञ्च महाभूत की प्रतीक हैं। अंगूठा आकाश का, तर्जनी वायु की, मध्यमा अग्नि की, अनामिका जल की तथा कनिष्ठा भूमि की भौतिक प्रतिकृति हैं। अत: पञ्च महाभूतों की स्वरूपभूता अंगुलियों के परस्पर संघटन से निर्मित 'मुद्रा' को क्रियात्मिका, चित्-शक्ति का भौतिक शरीर कहना सर्वथा बोधगम्य तथ्य है।

अत्रापि मानसध्वंसे भौतिकं नास्ति निश्चितम्।
विनाशि स्याद्द्वयं तस्मादेकं सत्यमिति स्थितम्।।६।।

मनुष्य के तीनों शरीरों की तरह देवता के इन तीनों शरीरों में यद्यपि परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथापि इनमें से भौतिक और मनोमय शरीर नश्वर और विनाशी है। मनोमय शरीर का नाश हो जाने पर भौतिक शरीर का भी नाश हो जाता है; लेकिन ब्रह्मरूप ज्ञानमय शरीर का कभी नाश नहीं होता। अविनाशी होने के कारण वह चिरसत्य है।।६।।

आद्यन्तमध्यशून्यत्वान्न किञ्चिन्नानुपश्यति।
केनापि जायते नैतत् सूतो ज्ञानमयं यतः।।७।।

चिर-अविनाशी होने के कारण इस विशुद्धतम ज्ञानमय शरीर का न तो कोई आदि है और न अन्त है और न ही मध्य है। अद्वय एवं सनातन होने के कारण यह स्वयम्भू है, इसका कोई जनक नहीं है।।७।।

न दृष्टं न श्रुतं कश्चित्ततो भावा भवन्ति हि।
दृश्यन्ते तत्र कायानिवेह नाना पृथग्विधाः।।८।।

यह ज्ञानमय शरीर न तो हृदय है और न श्रुत है। न तो इसे देखा जा सकता और न कानों से सुना जा सकता है। इस ज्ञानमय शब्दरूप शरीर से नाना प्रकार के शरीर तथा विभिन्न-विभिन्न आकृतियों वाले भावों अर्थात् अर्थ-सृष्टि की उत्पत्ति होती है और यह भाव (अर्थ) सृष्टि इसी में परिदृश्य होती है।।८।।

अधोऽधस्ते स्थूलरूपाः सूक्ष्माश्चैवोत्तरोत्तरम्।
नानावर्णाकृतिभिदा नानाजातिसमाश्रयाः।
प्रतिष्ठितार्थाः सर्वेषां लीयन्ते तत्र सर्वशः।।९।।

भाव-सृष्टि वाले ये दृश्यमान शरीर, जो निम्न से निम्न, सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूलतर होते हैं, इसी ज्ञानमय शरीर में ही प्रतिष्ठित होते हैं। दूसरे शब्दों

में भावरूप अर्थ-सृष्टि इस ज्ञानमयी शब्दसृष्टि पर आश्रित है और इसी से उत्पन्न होकर इसी में प्रतिष्ठित है। यह भावसृष्टि उत्पन्न होने के बाद जितने समय तक विद्यमान और दृश्यमान रहती है, तब तक संसार का स्थिति-काल रहता है। प्रलय होते ही यह भाव-सृष्टि (अर्थ-सृष्टि) इस ज्ञानरूप शब्द-सृष्टि में तिरोहित होकर विलीन हो जाती है। प्रलय के बाद भी देवता का यह ज्ञानमय वपु अवशिष्ट रहता है। इसका नाश नहीं होता।।९।।

[पूर्वप्रतिज्ञातमुद्रास्वरूपम्]

अथ मुद्राशरीरञ्च वक्ष्यामि परमाद्भुतम्।।१०।।
योनिरूपा महामुद्रा शरीरमिति कीर्त्यते।
संक्षोभण्यास्त्रिखण्डान्ता नवाङ्गानि प्रकीर्तिताः।।११।।

पूर्वोद्दिष्टेषु मुद्राशरीरं वक्तुं प्रतिजानीते—**अथेत्यादिना**। मुद्राशरीरं निरूपयन् मुद्राणामङ्गाङ्गिभावं दर्शयति—**योनिरूपेत्यादिना**। तत्र योनिमुद्रायास्त्रैलोक्योत्पत्ति-मातृकारूपतया प्राधान्यादङ्गित्वम् अत एव महामुद्रेत्युक्तम्। शरीरमिति अङ्गीत्यर्थः। अथाङ्गभूता मुद्रा उद्दिशति—**संक्षोभण्या इत्यादिना**। ताश्च सर्वसंक्षोभणी-सर्वविद्राविणी-सर्वाकर्षिणी-सर्ववश्यकरी-सर्वोन्मादिनी-महाङ्कुशा-खेचरी-बीज-त्रिखण्डाख्या नव। एवञ्चाङ्गाङ्गिभावेनावस्थितं मुद्रादशकमेव मुद्राशरीरमिति वक्तुराशयः। मुद्राणामेतासां स्वरूपाणि तु अष्टादशपटले वक्ष्यन्ते।

देवता के ज्ञानमय सनातन शरीर का निरूपण करने के बाद अब देवता के परम-अद्भुत मुद्रा-शरीर के बारे में बताया जा रहा है। देवी त्रिपुरा के प्रसंग में 'योनि-मुद्रा' शरीर और 'महामुद्रा' है। शरीर का अर्थ है—'अङ्गी'। तीनों लोकों की उत्पत्ति की मातृ-स्वरूपा होने के कारण 'योनिमुद्रा' महामुद्रा और अंगी मुद्रा है। संक्षोभिणी आदि नौ मुद्रायें 'अंग' मुद्रायें हैं। ये नौ मुद्रायें हैं—(१) सर्वसंक्षोभिणी, (२) सर्वविद्राविणी, (३) सर्वाकर्षिणी, (४) सर्ववशंकरी, (५) सर्वोन्मादिनी, (६) सर्व-महांकुशा, (७) खेचरी, (८) बीज और (९) त्रिखण्डा।।१०-११।।

विमर्श—ब्रह्मविद्या श्रीविद्या की अंगभूता होने के कारण ये संक्षोभिणी आदि मुद्रायें ज्ञान के एक विशिष्ट स्वरूप या भूमिका की प्रकाशिका हैं। 'श्रीविद्या-सपर्या-वासना' नामक तमिल ग्रन्थ में इन मुद्राओं का निम्नलिखित अर्थ बताया गया है—

(१) **सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा**—चित् शक्ति के ऊपर अध्यासित माया द्वारा जगत् की उत्पत्ति।

(२) **सर्वविद्राविणी मुद्रा**—संसार का रक्षण अर्थात् पञ्चेन्द्रियों द्वारा जगत् का उपभोग।

(३) **सर्वाकर्षिणी मुद्रा**—सूक्ष्म वासनायें अथवा इस प्रकार के उपभोग के अनन्तर 'मन' में स्थित 'संस्कार'।

(४) **सर्ववशङ्करी मुद्रा**—सुख और दुःख के रूप में इन्द्रिय और मन के द्वारा अनुभूत विषयों का परमात्मा में विलोपन।

(५) **सर्वोन्मादिनी मुद्रा**—सांसारिक विषयों के दोष-परिज्ञान से मुक्त होकर उनकी (विषयों की) सम्पूर्ण क्रियाओं से रहित होना।

(६) **सर्वमहाङ्कुशा मुद्रा**—धारणा अथवा पूर्ण संयोगों से प्रायः विषय पर जाने वाले नियमित मन का अधिक नियन्त्रण।

(७) **खेचरी मुद्रा**—अखण्डाकार-वृत्ति।

(८) **सर्वबीजा मुद्रा**—संसार के उत्पादक, पालक तथा प्रकाशक आत्मा का ज्ञान।

(९) **सर्वयोनि मुद्रा**—जीव और ब्रह्म की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव।

(१०) **सर्वत्रिखण्डा मुद्रा**—जीवन्मुक्ति दशा में जगत् को प्रकाश और विमर्श को प्रकृति तथा आनन्दमय अनुभव करना।

मुद्राविदों का कहना है कि चूँकि चित् शक्ति उपर्युक्त दश अवस्थाओं में से प्रत्येक अवस्था में विद्यमान है; अतः प्रत्येक अवस्था उचित (अनुकूल) ज्ञान को ग्रहण करती है। जब इस प्रकार से विरोधज्ञान में भेद पैदा करने वाली विशेषतायें भुला दी जाती हैं, तब शुद्धज्ञान अवशिष्ट रह जाता है। यह निर्विशेष ज्ञान है और यही परदेवता का स्वरूप है।

मुद्राओं के सर्वसंक्षोभिणी आदि नाम बताने के बाद मुद्रा को परिभाषित किया जा रहा है—

[मुद्रापदव्युत्पत्तिः]

आत्मानं मोदयत्येषा शान्तानन्दमयं द्रवम्।
जनयत्येव सा यस्मान्मुद्रा भूतमयं वपुः।।१२।।

आत्मानमिति। यस्मात् आत्मानं मोदयति शान्तानन्दमयं तमात्मानं द्रवं जनयति तस्माद् भूतमयं वपुर्मुद्रेत्युच्यत इति सम्बन्धः। तन्त्रसारे तु—

मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसन्ततेः।
तस्मान्मुद्रेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः।।

इत्यन्यथा व्युत्पत्तिक्रम उक्तः।

जिससे आत्मा को मोद (प्रसन्नता) मिलता है तथा शान्त एवं प्रमुदित मानस में रस (द्रव) का संचार होकर भूतमय वपु का निर्माण होता है, वह मुद्रा है।।१२।।

विमर्श—तन्त्रग्रन्थों में मुद्रा की जितनी परिभाषायें दी गई हैं, उनमें यह परिभाषा सर्वाधिक विलक्षण और विचक्षण है। 'मुदं (प्रसन्नतां) राति ददतीति मुद्रा'—जो प्रसन्नता प्रदान करे, वह मुद्रा है। इन मुद्राओं से देवता और साधक, पूज्य और पूजक—दोनों को युगपत् रूप से प्रसन्नता होती है, प्रसन्नता से मन की कठोरता विगलित होती है और वह इष्ट-अर्चन में तन्मयतापूर्वक तल्लीन हो जाता है।

मुद्रा की व्युत्पत्ति बताने के बाद यन्त्र (श्रीचक्र) के लेखन की औपचारिकताओं तथा प्रविधियों का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है।

[यन्त्रनिर्माणाधारोपकरणादिनिर्णयः]

गोमयेन च संलिप्ते भूप्रदेशे मनोरमे।
सिन्दूररजसा वाऽपि रजोभिः कुङ्कुमस्य वा।।१३।।
यन्त्रराजं लिखेन्मन्त्री स्वर्णरत्नशलाकया।
पुष्पेण विलिखेद् वाऽपि बिल्वस्य कण्टकेन वा।।१४।।

अथ श्रीचक्रनिर्माणाधारोपकरणादिकमभिधत्ते—गोमयेनेत्यादिना '**यन्त्रराजं समुद्धरेदि**'त्यन्तेन। अन्यच्चाह गन्धर्वतन्त्रे चतुर्थपटले—

ततः प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समारभेत्।
हेमरूपादिताम्राणां पट्टे वाऽतिमनोहरे।।
चतुरस्त्रे समे शुद्धे मध्योच्छूनविभूषिते।
युग्माङ्गमिलितं देवि पट्टस्येह समीरितम्।।
अथवा परमेशानि भूमौ चक्रं समालिखेत्।
हस्तमात्रमिते शुद्धे गोमयेनोपलेपिते।।
सिन्दूररजसा तत्र कुङ्कुमेनाथवा प्रिये।
आलिखेच्चक्रराजञ्च लेखन्या हैमया तथा।।
अथवा कुशमूलेन दर्भपाणिः समाहितः।
नेत्ररम्यं यथा चक्रं तथा कुर्यात् विचक्षणः।। इति।

ज्ञानार्णवे दशमपटलेऽपि—

श्रीचक्रन्तु वरारोहे श्रीविद्यावर्णसम्भवम्।
तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रराजं समालिखेत्।
भूप्रदेशे समे वर्ये सिन्दूररजसाऽथवा।
कुङ्कुमस्य रजोभिस्तु भूमौ चक्रं समालिखेत्।
ऋजुरेखं नेत्ररम्यं सन्धिभेदसमम् ऋजु।
अथवा हेमरौप्याभ्यां ताम्रेण बहुधातुभिः।

पट्टं विरच्य श्रीखण्डरक्तचन्दनसम्भवे।
पट्टे संस्थाप्य विलिखेल्लेखन्या हैमया प्रिये।
रोचनाकुङ्कुमाभ्यान्तु कस्तूरीचन्दनेन्दुभिः। इति।

एवमन्यानि च प्रमाणानि कौलावलीनिर्णयतृतीयपटलादावनुसन्धेयानि।

गोमय (गोबर) से लीपी गई सुन्दर, समतल और चिकनी भूमि पर स्वर्ण या रत्न की सलाई अथवा बेल के काँटे या फूल के डण्ठल से सिन्दूर अथवा कुंकुम-चूर्ण के द्रव से श्रीयन्त्र का अंकन किया जाय॥१३-१४॥

[तत्र कल्पान्तरम्]

अथवा हेमरजतताम्रदर्पणभूर्जके।
श्रीखण्डसम्भवे पीठे रक्तचन्दनसम्भवे।।१५।।
गण्डकीभवपाषाणे पदे वा रुचिपीठके।
रोचनाकुङ्कुमाभ्यान्तु चन्दनेन कुलोद्भवैः।।१६।।
इन्दुकस्तूरिकाभिश्च यन्त्रराजं समुद्धरेत्।
चतुरस्रं समारभ्य नवचक्राण्यनुक्रमात्।।१७।।

नवचक्राण्यनुक्रमादिति। नवचक्राणि त्रैलोक्यमोहनादीनि सर्वानन्दमयान्तानि। तानि चाग्रे विशिष्य वक्ष्यन्ते।

श्रीयन्त्र-अंकन के अन्य वैकल्पिक आधार भी हैं। हेम (स्वर्ण), रजत (चाँदी) या ताम्र (ताँबे) की समतल और सुचिक्कण प्लेट पर, भोजपत्र पर, श्रीपर्णी अथवा लाल चन्दन के पीठ पर, गण्डकी नदी के पाषाण पर (शालिग्राम पर) गोरोचन और कुंकुम से, चन्दन से, कुलोद्भूत द्रव से, इन्दु (कपूर) तथा कस्तूरी से, चतुरस्र से प्रारम्भ कर क्रम-क्रम से नौ चक्र खींचकर श्रीयन्त्र का अंकन किया जाय॥१५-१७॥

[चक्रस्य क्रमेणोन्नतमध्यत्वे फलभेदाः]

उन्नतादुन्नतं मध्यं चक्रं स्यान्निर्धनो धनी।
त्रित्रिक्रमादुन्नतं तत् पूजयित्वा श्रियं लभेत्।।१८।।
एकद्वित्रिक्रमाच्चैव श्रियै कीर्त्त्यै च कल्पते।
नवानि समरूपाणि सर्वतोऽभीष्टसिद्धये।।१९।।

उन्नतादुन्नतमिति। त्रैलोक्यमोहनचक्रतः सर्वानन्दमयचक्रं यावत् क्रमेण यथोन्नतिः स्यात्तथा चक्रं रचयेदिति फलितार्थः। तत्फलमाह—**निर्धन इति।** एवं कृते निर्धनोऽपि साधको धनवान् भवेदित्यर्थः। **त्रित्रीति।** प्रथमात् त्रैलोक्यमोहनचक्राद् द्वितीयं सर्वाशापरिपूरकं चक्रं त्रिगुणोन्नतम्, सर्वसंक्षोभणाख्यं तृतीयं ततस्त्रिगुणोन्नतम्, सर्वसौभाग्यदायकाख्यं चतुर्थं ततस्त्रिगुणोन्नतमित्येवंक्रमेण यदि औन्नत्यं विदधीत तर्हि तच्चक्रं पूजयित्वा श्रियं लभेदित्यर्थः। **एकद्वित्रीति।** प्रागुक्तक्रमोन्नतिपरिपाट्यां

प्रथमस्यैकगुणत्वं द्वितीयस्य पूर्वतो द्विगुणत्वं ततस्तृतीयस्य पूर्वतस्त्रिगुणत्वं एवं क्रमेण चतुर्थादिचक्राणां क्रमेणौन्नत्ये श्रीकीर्त्तिसाधकत्वं यन्त्रस्येत्यर्थ:। नवानीति। नवानां तुल्यौन्नत्येऽभीष्टसम्पादकत्वं चक्रस्येत्यर्थ:।

रचना-भेद से श्रीचक्र के तीन प्रकार हैं—(१) भूपृष्ठ, (२) कूर्मपृष्ठ और (३) मेरुपृष्ठ। पिछले श्लोकों में भू-पृष्ठ यन्त्र के अंकन का आधार बताया गया है। मेरुपृष्ठ यन्त्र में चक्रों की रचना एक के ऊपर एक के क्रम से की जाती है। अत: चक्रों के मध्य परस्पर ऊँचाई का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। प्रथम त्रैलोक्य-मोहन चक्र से दूसरा सर्वाशापूरक चक्र तीन गुना, तृतीय सर्वसंक्षोभण चक्र उससे तीन गुना, चौथा सर्वसौभाग्यप्रद चक्र उससे तीन गुना तथा शेष अन्य चक्र इसी क्रम से ऊँचे बनाये जायँ। दूसरा विकल्प यह है कि प्रथम चक्र एकगुना, दूसरा चक्र पहिले से दोगुना, तीसरा चक्र तीनगुना तथा अन्य चक्र इसी क्रम से ऊँचे बनाये जायँ। तीसरा विकल्प यह है कि सभी चक्र एक-दूसरे से समरूप से ऊँचे बनाये जायँ। इस प्रकार यथा-निर्धारित मान से चक्रों की स्थापना करके बनाये गये श्रीयन्त्र की पूजा करने से श्री, समृद्धि और सिद्धि प्राप्त होती है॥१८-१९॥

[श्रीचक्रनिर्माणस्थापनपूजनप्रशस्ति:]

कृत्वा श्रीचक्रनिर्माणं स्थापयेत् पूजयेदपि।
लक्ष्मीकान्तियश:पुत्रधनारोग्यादिसिद्धये ॥२०॥
सीसकांस्यादिषु कृतं पूर्वोक्तविपरीतकृत्॥२१॥

पूर्वेति। पूर्वोक्तविपरीतकृत् लक्ष्मीकान्त्यादिविनाशकृदित्यर्थ:।

श्रीचक्र का यथाविधि अंकन या निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठा और पूजन किये जाने से धन-सम्पत्ति, यश एवं लोकप्रतिष्ठा, शारीरिक-आरोग्य, पुत्र-पौत्र आदि सन्तति तथा मनचाही अन्य मुरादें मिलती हैं। श्रीचक्र-अंकन के लिये सीसा (राँगा) तथा काँसा सर्वथा अग्राह्य हैं। इन पर श्रीयन्त्र का निर्माण करके पूजन करने से विपरीत फल मिलता है॥२०-२१॥

[यन्त्रमन्त्रदेवतानामभेद:]

यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा देवतेति च।
पुरा भगवता प्रोक्तं तन्त्रे सम्मोहनाख्यके।
देहात्मनोर्यथाऽभेदोऽयन्त्रदेवतयोस्तथा ॥२२॥

सम्मोहन तन्त्र में भगवान् शिव ने कहा है कि देवता का पूजन यन्त्र-मन्त्रमय होता है अर्थात् पूजन यन्त्र में देवता के मन्त्र का वास होता है और मन्त्र है—देवता की आत्मा। अत: यन्त्र और देवता के बीच परस्पर शरीर और आत्मा की तरह घनिष्ठ सम्बन्ध होता है॥२२॥

[यन्त्रं विना पूजने दोषः]

अथ पीठे महायन्त्रं लिखित्वा पूजयेद् बुधः।
विना यन्त्रेण चेत् पूजा देवता न प्रसीदति।।२३।।

विना यन्त्रेणेति। स्पष्टम्। अत्रैतदवधेयम्—प्रशस्तमपीदं यन्त्रनिर्माणं देवतायाः पुरतो न कर्त्तव्यम्, 'देहात्मनोर्यथाऽभेदो यन्त्रदेवतयोस्तथे'ति पूर्ववचनेन यन्त्रदेवतयोर-भेदोक्तेरुभयोरेव तुल्यतया पूज्यत्वेन देवतापूजया यन्त्रपूजायाः सिद्धेरसम्भवात् । एतदभिप्रायेणैव मातृकाभेदतन्त्रे द्वादशपटले—

शालग्रामे च पूजायां न लिखेत् यन्त्रमुत्तमम्।
प्रतिमायाञ्च पूजायां न लिखेद् यन्त्रमुत्तमम्।।

इत्युक्तम् । प्रमादतः कृते तु पूजनादिकं द्विगुणमनुष्ठेयम्, तदुक्तं तत्रैव—

महायन्त्रन्तु देवेशि यदि कुर्याच्च साधकः।
तत्र मूर्त्तिं न कुर्याच्च कदाचिदपि मोहतः।।
यदि मूर्त्तिं प्रकुर्यात्तु तत्र यन्त्रं न कारयेत्।
यदि कुर्यात्तु मोहेन यजेद् वारद्वयं प्रिये।।
द्विगुणं पूजने तत्र द्विगुणं बलिदानकम्।
द्विगुणं प्रजपेन्मन्त्रं द्विगुणं होमयेत् सुधीः।।
अन्यथा विफला पूजा विफलं बलिदानकम्।
सर्वं हि विफलं यस्मात्तस्माद् यन्त्रं न कारयेत्।। इति।

अतएव यथाविहित पीठ (आधार) पर यन्त्र का अंकन (निर्माण) करके उस पर देवता का अर्चन किया जाय। चूँकि यन्त्र इष्टदेवता का शरीर-स्वरूप है, अतः यन्त्र के बिना पूजा किये जाने पर देवता प्रसन्न नहीं होता। दूसरी बात यह है कि यन्त्र पर ही इष्टदेवता का उनके आवरण और परिवारदेवताओं के साथ यथाक्रम और यथाविधि अर्चन करना सुगम और सुविधाजनक होता है।।२३।।

[रात्रौ यन्त्रनिर्माणनिषेधः]

न रात्रावङ्कयेद् यन्त्रं साधकस्तु कदाचन।
प्रमादादङ्किते यन्त्रे शापो भवति तत्क्षणात्।।२४।।

मनोरथ-सिद्धि के लिये जहाँ यन्त्रार्चन सर्वाधिक प्रशस्त है, वहीं इसमें सावधानी बरतना भी आवश्यक है। पहिली सावधानी तो यह है कि रात्रि के समय यन्त्र का अंकन (निर्माण) नहीं किया जाय। यदि प्रमादवश कोई ऐसा करता है तो उसे उसी क्षण देवता का शाप लगता है।।१२४।।

विमर्श—इसी तरह कतिपय अन्य सावधानियाँ भी हैं—

(१) मण्डूक आदि पीठदेवताओं तथा इष्टदेवता की पीठशक्तियों की स्थापना और अर्चन के बाद ही देवता का आवाहनपूर्वक अर्चन किया जाय।

(२) एक पीठ पर एक ही देवता के यन्त्र को स्थापित किया जाय और जो यन्त्र जिस देवता का है, उस पर उसकी ही पूजा की जाय।

(३) पूजन के समय यन्त्र पर हाथ नहीं घुमाया जाय। यन्त्र को पुष्पों से आच्छादित रखें।

(४) देवता की प्रतिमा और यन्त्र—दोनों को एक साथ स्थापित न करें। यदि यन्त्र और प्रतिमा एक साथ स्थापित हैं तो दूनी पूजा करें। जितनी पूजा यन्त्र पर की गई है, उतनी ही पूजा प्रतिमा की भी की जाय।

(५) स्थायी रूप से प्राण प्रतिष्ठित यन्त्र को पूजा के बाद अनावृत्त नहीं रखा जाय। यन्त्र के मध्य में हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज आदि कोई रत्न रखकर उसे आकर्षक एवं पवित्र वस्त्र से आच्छादित कर दें।

[तत्र यन्त्रपुष्पे पूजनोपदेशः]

भावचूडामणिमते तत्र पुष्पे प्रपूजयेत्।
यत्रापराजितापुष्पं जवापुष्पञ्च भैरव।।२५।।
करवीरे रक्तशुक्ले द्रोणं वा यत्र तिष्ठति।
तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे पूजनं मम।।२६।।

अपराजिता, जवा, करवीर तथा द्रोणपुष्प में देवी का नित्य वास है। भावचूड़ामणि का मत है कि यन्त्र या प्रतिमा का अभाव होने पर इनमें से किसी भी पुष्प में देवी की पूजा की जा सकती है।।२५-२६।।

श्रीयन्त्र-अंकन की विधि—देवता और यन्त्र के परस्पर सम्बन्धों का निरूपण करने के बाद अगले ११ श्लोकों में श्रीयन्त्र-अंकन की विधि बताई गई है। चूँकि इन श्लोकों के अनुवाद को पढ़कर श्रीयन्त्र बनाना अत्यन्त कठिन है, अतः इन श्लोकों का भाव लेकर आधुनिक शैली में श्रीयन्त्र-अंकन की विधि स्पष्ट की जा रही है।

श्री श्रीयन्त्र में एक (१) मूल त्रिकोण-सहित ८, १०, १० और १४ के क्रम से कुल ४३ त्रिकोण तथा आठ और सोलह के क्रम से कुल २४ (चौबीस) कमलदल, त्रिवृत्त और भूपुरत्रय होते हैं।

[श्रीचक्रनिर्माणपरिपाटी तत्र त्रिकोणमष्टकोणञ्च]

त्रिकोणं विलिखेदादौ तन्मध्याच्च त्रिकोणकम्।।२७।।
पूर्वशक्त्यग्रभागे तु मानयष्टिवदालिखेत्।।२८।।
सन्धिभेदक्रमेणैव तयोः शक्त्योस्ततः परम्।
रेखे आकृष्य कोणाभ्यां तदग्रे पूर्वगे गुरुः।।२९।।
एतत्त्रयात्मकेनैव नवकोणं प्रजायते।

अथ श्रीचक्रनिर्माणक्रममुपदिशति—**त्रिकोणमित्यादिना चतुर्द्वारं तथैव चेत्यन्तेन**। तत्र त्रिकोणान्तर्वर्त्तिनो बिन्दुचक्रस्य सर्वानन्दमयाख्यस्य निर्माणे विशेषाभावात् तदुपेक्ष्य त्रिकोणादिभूपुरान्तानामष्टानां निर्माणपरिपाटीमभिदधानः प्रथमं त्रिकोणस्य सर्वसिद्धिप्रदचक्रस्य तद्बहिरष्टकोणस्य सर्वरोगहरचक्रस्य च निर्माणं युगपदाह—**त्रिकोणमित्यादिना नवकोणं प्रजायते इत्यन्तेन**। आदौ प्रतीच्यग्रमेकं त्रिकोणं लिखेत्। तन्मध्यात् निरुक्तत्रिकोणमध्यप्रदेशात् त्रिकोणकं प्रतीच्यग्रमन्यत्त्रिकोणमालिखेत्। एतत्त्रिकोणस्याग्रं पूर्वत्रिकोणस्य मध्यदेशे मूलन्तु तद्बहिरिति ज्ञेयम्। अनन्तरकरणीयमाह—**पूर्वशक्त्यग्रभाग इति**। शक्तिशब्देन त्रिकोणमुच्यते। ततश्च पूर्वशक्त्यग्रभागे मध्यत्रिकोणाग्रे मानयष्टिवत् दक्षिणोत्तरायतमानदण्डवत् दक्षिणोत्तरायतामेकां सरलरेखामालिखेत्। **सन्धीति**। ततः परं निरुक्तत्रिकोणद्वयमध्यत्रिकोणाग्रसरलरेखानिर्माणानन्तरं गुरुः तयोः शक्त्योः कोणाभ्यां रेखे रेखाद्वयमाकृष्य तदग्रे तयो रेखयोरग्रे अग्रद्वयं पूर्वगे पूर्वदिग्गामिनी कुर्यादिति शेषः। प्रागुक्तसरलरेखाया दक्षोत्तराभ्याम् अग्राभ्यां तत्सम्बद्धं पूर्वत्रिकोणद्वयसन्धिभेदि पूर्वाग्रं रेखाद्वयं विदधीतेत्यर्थः। एतेन प्रागग्रं त्रिकोणान्तरं प्राप्तम्। एवञ्च पश्चिमाग्रं त्रिकोणद्वयं पूर्वाग्रञ्चैकं त्रिकोणमेतेपाञ्च प्रागुक्तरीत्या विन्यासे मध्ये त्रिकोणमेकं सर्वसिद्धिप्रदाख्यं तद्बहिःकोणञ्च सर्वरोगहराख्यं भवतः। इत्यभिप्रायेणैव मूले नवकोणं प्रजायत इत्युक्तम्। गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटलेऽपि—

प्रतीच्यग्रं लिखेदेकं त्रिकोणं तदुपर्यथ।
पूर्वत्रिकोणमध्याग्रं त्रिकोणान्तरमालिखेत्।।
अयं सन्धिद्वयं भित्त्वा प्रागग्रं विलिखेत् परम्।
त्रिकोणमध्यगं चक्रमष्टकोणं तथा भवेत्।।

इति वचने अष्टकोणपदस्य त्रिकोणमध्यगमिति विशेषणेन मध्ये त्रिकोणं तद्बहिरष्टकोणमिति स्फुटमवगम्यते।

अंकन की विधि—श्रीयन्त्र के अंकन की विधि को समझने के पूर्व कतिपय पारिभाषिक शब्दों को जान लेना आवश्यक है—

(१) **दिशा**—यन्त्र के शीर्ष भाग की ओर पूर्व तथा इसके नीचे की ओर पश्चिम दिशा होती है। साधक के दाहिने हाथ की ओर दक्षिण तथा बाँयें हाथ की ओर उत्तर दिशा होती है। ईशान-आग्नेय-नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों की परिकल्पना तदनुसार कर लेनी चाहिए।

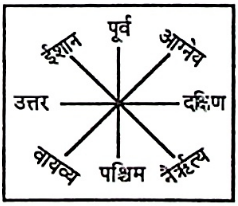

(२) **त्रिकोण और रेखायें**—

(क) अधोमुख त्रिकोण (∇) को शक्तित्रिकोण तथा अधोगामिनी रेखा को शक्तिरेखा कहते हैं।

(ख) ऊर्ध्वमुख त्रिकोण (∆) को शिवत्रिकोण तथा ऊर्ध्वगामी रेखा को शिव-रेखा कहते हैं।

(ग) ईशान से आग्नेय अथवा वायव्य से नैर्ऋत्य की ओर खींची जाने वाली (खड़ी) रेखाओं को तिर्यक् रेखा कहते हैं।

(घ) त्रिकोण के दाँयें या बाँयें हाथ की ओर जो रेखा होती है, उसे पार्श्व रेखा कहते हैं।

(३) **सन्धि और सन्धिभेद**—जिस बिन्दु पर दो रेखायें मिलती हैं, उसे सन्धि कहते हैं। इस सन्धि-बिन्दु को काटना सन्धिभेद है।

(४) **मर्म और ग्रन्थि**—जहाँ परस्पर तीन रेखायें मिलती हैं या काटती हैं, उसे मर्म कहते हैं। सन्धि और मर्म की अपर संज्ञा ग्रन्थि है।

अब श्रीयन्त्र का भूमि पर, भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र आदि पर अंकन प्रारम्भ करें। श्रीतत्त्वचिन्तामणि में सृष्टिक्रम से श्रीचक्र का अंकन-विधान बताया गया है। अत: सबसे पहिले मूल त्रिकोण और अष्टार बनायें। यथा—

(१) **मूल त्रिकोण और अष्टार**—मूल त्रिकोण और अष्टार बनाने के लिये सर्वप्रथम एक अधोमुखी त्रिकोण (मान लो—अ-ब-स) खीचें। इस 'अबस' त्रिकोण पर दूसरा अधोमुख त्रिकोण (∇) 'कखग' बनायें। इस तरह दो अधोमुखी त्रिकोण ('अबस' और 'कखग') बन गये। अब इन दोनों त्रिकोणों पर शिव त्रिकोण (∆) बनायें। यथा—

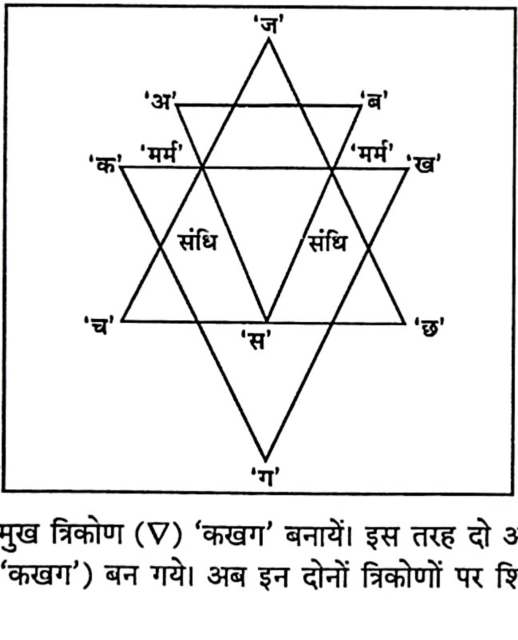

शक्तित्रिकोण 'अबस' के अधोवर्ती कोण के 'स' बिन्दु को आधार मानते हुए 'क' 'ख' रेखा के समानान्तर 'च-छ' रेखा खींचें। तत्पश्चात् 'अ ब' रेखा के ऊपर 'स' और 'ग' बिन्दु की सीध में समान दूरी पर 'ज' बिन्दु बनायें। अब 'च' बिन्दु से ऐसी ऊर्ध्वगामिनी शिवरेखा खींचें, जो 'अ-स' और 'क-ख' रेखाओं के मर्म को काटती हुई 'ज' बिन्दु से मिल जाय। इसी प्रकार की रेखा 'छ' बिन्दु से भी खींचें जो 'ब-स' और 'ख-क' रेखाओं के मर्म को काटती हुई 'ज' बिन्दु से मिल जाय। इस तरह 'च छ ज' नामक ऊर्ध्वमुख शिवत्रिकोण बन गया। इस तरह परस्पर गुम्फित दो शक्तित्रिकोण और एक शिवत्रिकोण बनने से मूल त्रिकोण-सहित आठ त्रिकोण (अष्टार) बन गये।

[अन्तर्दशारम्]

पूर्वशक्तीशवह्निभ्यां योनिरूपां लिखेत्ततः।।३०।।
दक्षिणोत्तरकोणात्तु श्रीकण्ठस्य लिखेद् बुधः।
रेखां षट्कोणरूपान्तु पूर्वशक्तीशवह्नितः।।३१।।
ऊर्ध्वरेखे समाकृष्य श्रीकण्ठाग्रविचुम्बिनी।
श्रीकण्ठस्य दक्षवामकोणात् पूर्ववदुद्धरेत्।।३२।।
दशकोणं भवेत्तत्र—

अथाष्टकोणाद् बहिर्लेखनीयमन्तर्दशारं सर्वरक्षाकराख्यं चक्रमाह—**पूर्वशक्तीत्यादिना दशकोणं भवेत्तत्रेत्यन्तेन।** पूर्वशक्त्या मध्यत्रिकोणस्य ईशवह्निभ्यां ईशानाग्निकोणाभ्यां योनिरूपां योन्याकारां पश्चिमाभिमुखीं त्रिकोणरेखां लिखेत्। त्रिकोणान्तरमाह—**दक्षिणेति।** श्रीकण्ठस्य दक्षिणोत्तरकोणाभ्यामपि पूर्वाग्रां तथैव योन्याकारां त्रिकोणरेखां लिखेत्। इमे च रेखे प्रागुक्तासु तिसृषु दक्षिणोत्तरायतासु सरलरेखासु पूर्वपश्चिमरेखे वर्द्धयित्वा ततः कर्त्तव्ये इति व्यक्तीकरिष्यामः। एवंकृते षट्कोणरूपा रेखा भवति। ततः करणीयमाह—**पूर्वेति।** पूर्वशक्तीशवह्नितः पूर्वशक्तेः पूर्वत्रिकोणस्य ईशानाग्निकोणाभ्याम् ऊद्ध्वरिखे सन्धिभेदपूर्वकमूद्ध्वरिखाद्वयमाकर्षेत्। श्रीकण्ठाग्रविचुम्बिनीति रेखाविशेषणेन सन्धिभेदपूर्वकं रेखाकर्षणमुक्तम्। विचुम्बिन्याविति वक्तव्ये विचुम्बिनीत्यार्षः प्रयोगः। श्रीकण्ठस्येति पूर्ववत् कोणरेखाकर्षणक्रमेण श्रीकण्ठस्य दक्षवामकोणात् पूर्वोपदर्शितदक्षोत्तरायतपश्चिमसरलरेखां यावत् प्रागुक्तक्रमेण कोणरेखाद्वयं सन्धिभेदपूर्वकमुद्धरेदित्यर्थः। एवं कृते दशकोणं सर्वरक्षाकरचक्रं निष्पद्यते। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटले—

ततो दशारचक्रस्य निर्माणं शृणु पार्वति।
दक्षिणोत्तरगा रेखास्तिस्रो यास्तत्र तास्वपि।

मध्यरेखां परित्यज्य रेखे द्वे परिवर्धयेत्।
तेन षट्कोणकं कृत्वा सन्धिभेदे चतुष्टयम्।
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद्दशकोणं यथा भवेत्।। इति।

अन्तर्दशार—(१) अष्टार के प्रथम शक्तिकोण △ अबस की दोनों पार्श्व रेखाओं 'अस' और 'बस' को ऊपर की ओर ∠ 'ज' की ऊँचाई तक क्रमशः बिन्दु 'इ' तथा 'ई' तक बढ़ायें। ∠ 'ज' का स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा खींचकर 'इ' तथा 'ई' बिन्दुओं को जोड़ दें। इस तरह ये दोनों बिन्दु शक्तित्रिकोण ▽ अबस के बिन्दु 'स' से जुड़ गईं तथा अन्तर्दशार का प्रथम शक्ति त्रिकोण ▽ 'इ ई स' बन गया।

(२) इसी शक्तित्रिकोण (▽ अबस) की तिर्यक् रेखा 'अ-ब' को ईशान और अग्निकोण की ओर क्रमशः 'अ-१' तथा 'ब-१' बिन्दुओं तक लम्बी करें। अष्टार के द्वितीय शक्तित्रिकोण (▽ कखग) के ∠ 'ग' के नीचे एक बिन्दु 'ग-१' बनायें। तत्पश्चात् 'अ-१' बिन्दु से एक अधोगामिनी शक्तिरेखा खींचें जो 'च' बिन्दु को काटती हुई 'ग-१' बिन्दु से मिल जाय। 'ब-१' बिन्दु से भी इसी प्रकार की रेखा खींचें, जो 'छ' बिन्दु को काटती हुई 'ग-१' बिन्दु से मिल जाय। इस तरह अन्तर्दशार का द्वितीय शक्तिकोण ▽ अ-१, ब-१, ग-१ बन गया।

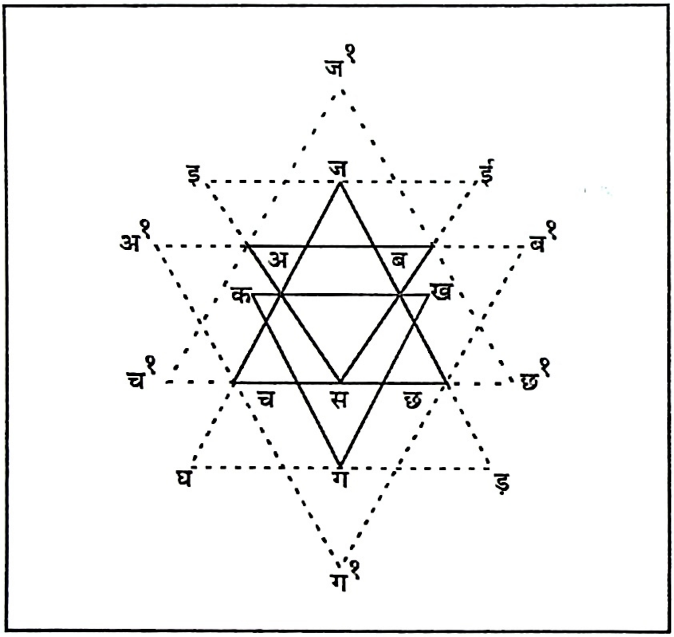

(३) अष्टार के प्रथम शिवत्रिकोण Δ 'चछज' की आधारभूता तिर्यक् रेखा 'च-छ' को वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर क्रमशः 'च-१' तथा 'छ-१' तक लम्बी करें। इसी त्रिकोण के ∠ 'ज' के ऊपर एक बिन्दु 'ज-१' बनायें। तत्पश्चात् 'च-१' और 'छ-१' बिन्दुओं से एक-एक ऊर्ध्वगामिनी शिवरेखा खींचें, जो क्रमशः 'अ' और 'ब' बिन्दुओं को काटती हुई 'ज-१' बिन्दु से मिल जाय। इस तरह अन्तर्दशार का प्रथम शिवत्रिकोण (Δ च१-छ१-ज१) बन गया।

(४) अष्टार के द्वितीय शक्ति त्रिकोण ∇ 'कखग' के ∠ 'ग' का स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा 'घ-ड़' खींचें। इस रेखा के दोनों बिन्दुओं 'घ' और 'ड' को क्रमशः शिवत्रिकोण Δ चछज के 'च' और 'छ' बिन्दु से जोड़ दें। दूसरा शिवत्रिकोण Δ जघड बन गया।

इस तरह तीन शक्ति त्रिकाणों (अर्थात् ∇ ईईस ∇ अ१-ब१-ग१ तथा अन्तर्वर्ती ∇ कखग) तथा दो शिवत्रिकोणों (Δ च१-छ१-ज१ तथा Δ जघड) के परस्पर गुम्फन से इस अन्तर्दशार चक्र के चारो ओर १० छोटे-छोटे त्रिकोण बन गये।

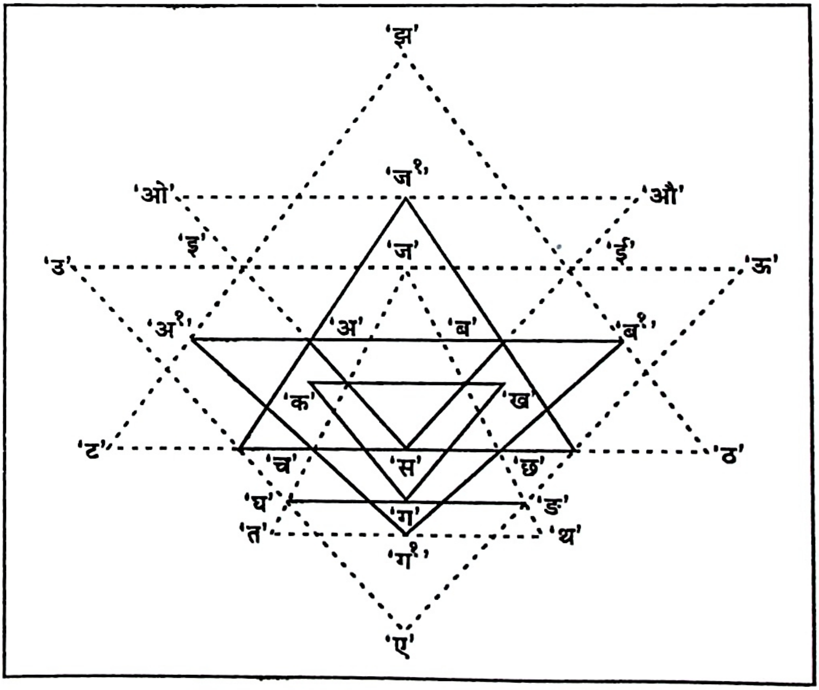

[बहिर्दशारम्]

—तथाऽन्यद्दशकं लिखेत्।

अथ बहिर्दशारं सर्वार्थसाधकं चक्रमाह—**तथेति**। तथा निरुक्तदशारक्रमेणैवेदं बहिर्दशारं कुर्यात् नात्र कश्चिदपि विशेषोऽस्ति। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटले—

तथान्यदशकोणस्य निर्माणं परिकीर्त्त्यते।
दक्षिणोत्तरगास्त्वेवं रेखाः पञ्च भवन्ति याः।।
तासां रेखाद्वयं (त्रयं) मध्ये हित्वा पूर्वापरन्ततः।
बाह्यरेखाद्वयं देवि पूर्ववत् परिवर्धयेत्।।
तेन षट्कोणकं कृत्वा सन्धिभेदचतुष्टयम्।
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद्दशकोणं यथा भवेत्।। इति।

बहिर्दशार—(१) अन्तर्दशार के प्रथम शक्ति-त्रिकोण ∇ 'इईस' की आधारभूता तिर्यक् रेखा 'इ-ई' को सीधी लम्बाई में क्रमशः 'उ' तथा 'ऊ' बिन्दुओं तक बढ़ायें। शक्ति-त्रिकोण ∇ 'अबस' के अधोवर्ती कोण ∠ 'स' के नीचे एक बिन्दु 'ए' बनायें। तत्पश्चात् 'इ' और 'ऊ' बिन्दुओं से दो अधोगामिनी शक्तिरेखायें इस प्रकार से खींचें, जो शिव-त्रिकोण Δ च१-छ१-ज१ के 'च-१' तथा 'छ१' बिन्दुओं को काटती हुई 'ए' बिन्दु से मिल जाय। इस तरह बहिर्दशार का प्रथम शक्ति-त्रिकोण ∇ 'उ ऊ ए' बन गया।

(२) शिव-त्रिकोण (Δ च१-छ१-ज१) के शीर्ष कोण ∠ ज-१ का स्पर्श करती हुई एक तिर्यक्-रेखा 'ओ-औ' खींचें। 'ओ' बिन्दु को 'इ' बिन्दु से और 'औ' बिन्दु को 'ई' बिन्दु से जोड़ दें। इस तरह ये दोनों बिन्दु (ओ-औ) अष्टार चक्र के प्रथम शक्ति-त्रिकोण 'अबस' के 'स' बिन्दु से जुड़ जायेंगी तथा अन्तर्दशार का द्वितीय शक्ति-त्रिकोण ∇ 'औ स औ' बन जायगा।

(३) अन्तर्दशार के शिव-त्रिकोण Δ च१-छ१-ज१ की आधारभूता 'च१-छ१' रेखा को दोनों ओर 'ट' और 'ठ' बिन्दुओं तक बढ़ायें। अब 'ट' बिन्दु से इस तरह ऊर्ध्वगामिनी पार्श्वरेखा खींचें, जो 'अ-१' तथा 'इ' बिन्दु का स्पर्श करती हुई ऊपर की ओर जाय। इसी तरह की पार्श्वरेखा 'ठ' बिन्दु से भी खींचें, जो 'ब-१' तथा 'ई' बिन्दु का स्पर्श करती हुई ऊपर की ओर जाय। ये दोनों रेखायें जिस बिन्दु पर परस्पर मिलें, उसे 'झ' बिन्दु कल्पित करें। इस तरह बहिर्दशार का प्रथम शिवत्रिकोण Δ 'टठझ' बन गया।

(४) शक्ति-त्रिकोण ∇ अ१-ब१-ग१ के अधोवर्ती कोण ∠ ग-१ का संस्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा 'त-थ' खींचें। इसके 'त' और 'थ' बिन्दुओं को शिव-त्रिकोण Δ को 'जघड' के 'घ' और 'ड' बिन्दुओं से जोड़ दें। इस तरह से दोनों बिन्दु 'ज' बिन्दु से भी जुड़ जायेंगी तथा बहिर्दशार का दूसरा शिव-त्रिकोण Δ तथज बन जायगा।

इस तरह चार शक्ति त्रिकोणों तथा तीन शिवत्रिकोणों से युक्त इस बहिर्दशार चक्र में चारो ओर १० छोटे-छोटे कोण हैं।

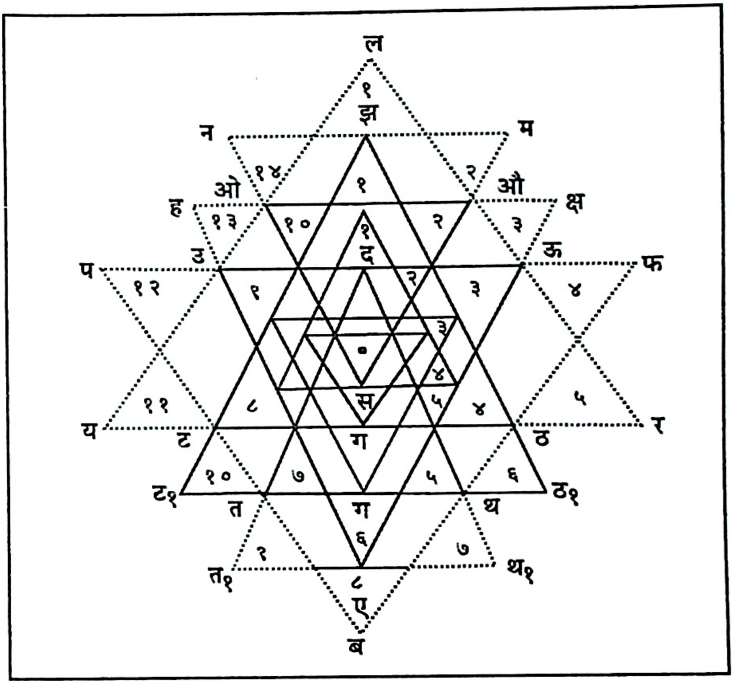
ल
१
झ
न
म
१४
२
ओ
औ
ह
क्ष
१३
३
१
१०
२
१
द
उ
ऊ
प
फ
१२
१
२
३
४
३
०
४
११
८
स
५
४
५
य
र
ट
ग
ठ
१०
७
५
६
ट१
ठ१
त
ग
थ
६
१
७
त१
थ१
८
ए
ब

[चतुर्दशारम्]

दशारवामदक्षे तु मध्यकोणचतुष्टयम्।।३३।।
वर्धयित्वा च षट्कोणं सन्धिभेदेन संलिखेत्।
कक्षमध्यगता रेखा वर्धयेत् कोणरूपत:।।३४।।
शेषं प्रवर्धयेन्मन्त्री दशकोणविधानत:।
यथा चतुर्दशारन्तु जायते चक्रमुत्तमम्।।३५।।

अथ चतुर्दशारं सर्वसौभाग्यदायकचक्रमाह—दशारेत्यादिना चक्रमुत्तममित्यन्तेन। प्रागुक्तदशारचक्रस्य वामतो दक्षतश्च मध्यकोणचतुष्टयं वर्धयित्वा, प्रागुक्तसन्धिभेदक्रमेण षट्कोणं संलिखेत्। एतदुक्तं भवति—दशारचक्रस्य पश्चिमतस्त्रिकोणत्रयस्य पूर्वतश्च त्रिकोणत्रयस्य त्यागे दशारस्य दक्षत: कोणद्वयं वामतश्च कोणद्वयमिति कोणचतुष्टयमवशिष्यते। तत् कोणचतुष्टयं कोणघटकसरलरेखा इत्यर्थ:, प्रागुक्तक्रमेण वर्धयित्वा तत: प्रागुक्तषट्कोणवामदक्षकोणघटकरेखाचतुष्टयमित्यर्थ:, कोणरूपेण वर्धयेत्। एवं कृते कोणाष्टकं जायते। शेषमिति। अवशिष्टं कोणषट्कं प्रागुक्तदशकोणरीत्या वर्धयेत्। पूर्वपश्चिमान्तसरलरेखाद्वयं पूर्ववद् वर्द्धयित्वा दशारस्य

पश्चिमतः पूर्वतश्चैकैकां दक्षिणोत्तरायतां सरलरेखामाकृष्य दशारक्रमेण षट् कोणान् वर्धयेदित्येवाऽऽह—**दशकोणविधानत इत्यनेन। यथेति।** तथा प्रवर्धयेद् यथा उत्तमं चतुर्दशारं चक्रं जायत इति सम्बन्धः। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चमपटले—

चतुर्दशारचक्रस्य निर्माणं कथ्यतेऽधुना।
दक्षिणोत्तरगास्वेवं रेखाः सप्त भवन्ति याः।।
तासां रेखाद्वयं हित्वा बाह्ये पूर्वापरन्ततः।
दीर्घं रेखाद्वयं मन्त्री पूर्ववत् परिवर्धयेत्।।
तेन षट्कोणकं कृत्वा सन्धिभेदचतुष्टयम्।
दशारीकृत्य तेनैव सन्धिभेदचतुष्टयात्।।
रेखाद्वयं वह्निः कुर्याद्रेखाः स्युर्नव पञ्च च।।
कल्पयेदथ तस्याग्रैरन्यकोणचतुष्टयम्।।
एवं चतुर्दशारं स्यात् विलोचनमनोहरम्।। इति।

चतुर्दशार चक्र—बहिर्दशार चक्र के शक्ति-त्रिकोण ▽ 'उ ऊ ए' की तिर्यक् रेखा 'उ-ऊ' की लम्बाई क्रमशः 'प' और 'फ' बिन्दुओं तक बढ़ायें। इसी त्रिकोण के अधोवर्ती कोण ∠ 'ए' के सिधान में एक बिन्दु 'ब' बनायें। अब 'प' बिन्दु से अधोगामिनी पार्श्वरेखा खींचें, जो 'ट' और 'त' बिन्दुओं को काटती हुई 'ब' रेखा से मिल जाय। इसी तरह की पार्श्वरेखा 'फ' बिन्दु से खींचें, जो 'ठ' और 'थ' बिन्दुओं को काटती हुई 'ब' बिन्दु से जुड़ जाय। इस तरह इस चक्र का प्रथम शक्ति-त्रिकोण ▽ 'प फ ब' बन गया।

(२) अन्तर्दशार के शिव-त्रिकोण Δ 'ट ठ झ' के शिरोवर्ती कोण ∠ 'झ' के सिधान में ऊपर की ओर एक बिन्दु 'ल' बनायें। इसी त्रिकोण की आधारभूता तिर्यक् रेखा 'ट ठ' को दोनों ओर 'य' और 'र' बिन्दु तक लम्बी करें। इस रेखा की लम्बाई 'प-फ' रेखा के बराबर होती है। अब 'य' बिन्दु से ऊर्ध्वगामिनी पार्श्व रेखा खींचें, जो 'उ' और 'ओ' बिन्दुओं को काटती हुई 'ल' बिन्दु से मिल जाय। इसी तरह 'र' बिन्दु से भी शिव-रेखा खींचें जो 'ऊ' और 'औ' बिन्दुओं को काटती हुई 'ल' बिन्दु से मिल जाय। इस तरह इस चक्र का प्रथम शिव-त्रिकोण Δ 'य र ल' बन गया।

शक्ति-त्रिकोण ▽ 'प फ ब' और शिव-त्रिकोण Δ 'य र ल' के परस्पर गुम्फन से चतुर्दशार चक्र का सम्पादक 'षट्कोण' बन जाने से इस चक्र के ६ छोटे-छोटे कोण बन गये। यथा—दाहिनी ओर ▽४ और Δ५। बाँयीं ओर ▽१२ तथा Δ११। पूर्व में Δ–१ तथा पश्चिम की ओर ▽८। (देखें चित्र)। अब इस चक्र के और ८ कोण बनाये हैं।

(३) शक्ति-त्रिकोण ▽ 'उएऊ' की दोनों पार्श्वरेखाओं को 'ओ-औ' रेखा की ऊँचाई तक क्रमशः 'ह' और 'क्ष' बिन्दु-पर्यन्त बढ़ायें। 'ह' बिन्दु को 'ओ' बिन्दु से तथा 'क्ष' बिन्दु को 'औ' बिन्दु से जोड़ दें। इस तरह इस चक्र का द्वितीय शक्ति-

त्रिकोण ∇ ‘हएक्ष’ बन गया। इस त्रिकोण के निर्माण से दो छोटे त्रिकोण बने। दाहिनी और ∇३ तथा बाँयी ओर ∇१३।

(४) शक्ति-त्रिकोण ∇ ‘ओ औ स’ की दोनों पार्श्वरिखाओं ‘ओस’ तथा ‘औस’ को ऊपर ‘झ’ बिन्दु की ऊँचाई के बराबर क्रमशः ‘न’ और ‘म’ बिन्दुओं तक बढ़ायें। कोण ∠ ‘झ’ का स्पर्श करती हुई तिर्यक् रेखा खींचकर ‘न’ और ‘म’ बिन्दुओं को परस्पर जोड़ दें। इस तरह इस चक्र का तृतीय शक्तिकोण ∇ ‘नसम’ बना। इस त्रिकोण से दाँयें और बाँयें बाजू में दो और त्रिकोण (∇२ और ∇१४) बन गये।

(५) दशार के शक्ति-त्रिकोण ∇अ१-ब१-ग१ के अधोवर्ती कोण ∠ग-१ का संस्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा ‘ट१’-ठ१’ खींचें। शिव-त्रिकोण Δ ‘झटठ’ के ‘ट’ और ‘ठ’ बिन्दुओं को इन ‘ट-१’ और ‘ठ-१’ बिन्दुओं से क्रमशः जोड़ दें। इससे पश्चिम की ओर दो और छोटे-छोटे (∇१० और ∇६) बन गये।

(६) बहिर्दशार के शिव-त्रिकोण Δ ‘तथद’ की दोनों पार्श्व रेखाओं ‘तद’ तथा ‘दथ’ को नीचे की ओर कोण ∠ ‘ए’ के बराबर क्रमशः ‘त१’ और ‘द१’ बिन्दुओं तक बढ़ायें। कोण ∠ ‘ए’ का संस्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा खींचकर इन दोनों बिन्दुओं को जोड़ दें। इस तरह दोनों पार्श्वों में दो और छोटे-छोटे त्रिकोण (त्रिकोणसंख्या ७ और ९) बन गये।

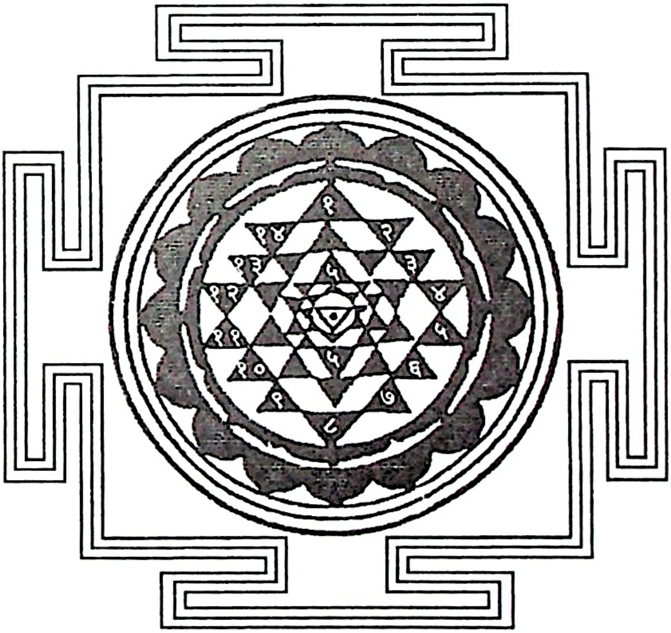

इस तरह चार नये त्रिकोणों के निर्माण-सहित बहिर्दशार चक्र के १० कोणों के विस्तार से १४ कोणों वाला चतुर्दशार चक्र बन गया।

[अष्टारादिचक्रत्रयम्]

वृत्तमष्टदलं वृत्तं षोडशारं त्रिवृत्तकम्।
भूबिम्बत्रितयं कार्यं चतुर्द्वारं तथैव च।।३६।।
तन्त्रचूडामणौ देव्या मतमीदृशमीरितम्।।३७।।

अथाष्टदलं सर्वसङ्क्षोभणाख्यं षोडशदलं सर्वाशापरिपूरकाख्यं चतुरस्रं त्रैलोक्यमोहनाख्यं चक्रञ्चाऽऽह—**वृत्तमित्यादिना**। स्पष्टम्। अत्राष्टदलषोडशदलयोर्मूले वृत्तं सीमार्थमेव। षोडशदलाद् बहिर्वृत्तत्रयमपि न पूजार्थम्—

वृत्तत्रयं महेशानि न पूजायां निगद्यते।

इति गन्धर्वतन्त्रपञ्चमपटलवचनात्। चक्रमिदं संक्षिप्याऽऽह तन्त्रसारधृतयामले—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसङ्गतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।। इति।

एतद्यन्त्रघटकपद्मे केशरकल्पननिषेधमाह तन्त्रसारधृतभूतभैरवे—

योऽस्मिन् यन्त्रे महेशानि केशराणि प्रकल्पयेत्।
योगिनीसहितास्तस्य हिंसां कुर्वन्ति भैरवाः।। इति।

अष्टदल और षोडशदल—चतुर्दशार चक्र बनाने के बाद उसे 'वृत्त' से घेर दें। इस 'वृत्त' के ऊपर यथा अनुपात पर्याप्त अन्तर देकर दूसरा 'वृत्त' बनायें। दोनों वृत्तों के मध्य में जो स्थान है, उसमें अष्टदल कमल बनायें। अष्टदल कमलों को वृत्त से घेर दें। इस वृत्त पर षोडशदल कमल बनायें। कमल दल बनाते समय यह ध्यान रखें कि चारो दिशाओं में कमलदलों के मुख भूपुर के द्वारों की ओर होना चाहिए।

जब सम्पूर्ण श्रीचक्र बन जाय तब मूल त्रिकोण के मध्य में बिन्दुचक्र अंकित करें।

षोडशदल कमलों पर तीन वृत्त बनायें। इन वृत्तों को घेरता हुआ चार द्वारों से युक्त तीन रेखाओं वाला 'भूपुर' बनायें। इस तरह सम्पूर्ण श्रीचक्र प्रस्तुत हो गया।

[अत्र विशेषः]

कुलोड्डीशमते दिक्षु मूलं पूर्वादितो भवेत्।

[बिन्दुचक्रस्य सर्वचक्रमध्यवर्त्तित्वम्]

सर्वमध्यत्रिकोणे तु बिन्दुचक्रं लिखेद् बुधः।।३८।।

एवं तन्त्रचूडामणिसंवादेन श्रीचक्रनिर्माणपरिपाटीमभिधाय कुलोड्डीशसंवादेन नव चक्राणि विभजते—कुलेत्यादिना। नव चक्राणि तेषां नामानि च योगिनीहृदये प्रथमपटले क्रमेण प्रदर्शितानि यथा—

चक्रस्य नवधात्वञ्च कथयामि तव प्रिये।
आदिमं भूत्रयेण स्याद् द्वितीयं षोडशारकम्।।

अन्यदष्टदलं प्रोक्तं मनुकोणमनन्तरम्।
पञ्चमं दशकोणं स्यात् षष्ठञ्चापि दशारकम्।।
सप्तमं वसुकोणं स्यान्मध्यत्र्यस्रमथाष्टमम्।
नवमं त्र्यस्रमध्यं स्यात् तेषां नामान्यतः शृणु।।
त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।
सर्वसंक्षोभणं देवि सर्वसौभाग्यदायकम्।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं परम्।।
सर्वरोगहरं देवि सर्वसिद्धिमयं तथा।
सर्वानन्दमयञ्चापि नवमं शृणु सुन्दरि।। इति।

एवञ्चात्र नवमं त्र्यस्रमध्यं स्यादित्यनेन यत् सर्वानन्दमयं चक्रमुक्तं तदेव सर्वमध्येत्यादिना मूले समुद्दिष्टम्—

अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।

इति योगिनीहृदयप्रथमपटलवचनेनास्य प्राधान्यात् प्रथममभिधानम्, विशेषस्त्वग्रे वक्ष्यते। बिन्दुचक्रं शिवात्मकमध्यबिन्दुमित्यर्थः—'सर्वानन्दमयं मध्यबिन्दुस्थानं शिवात्मकम्।' इति तन्त्रराजपञ्चमपटलवचनात्।

'कुलोड्डीश' तन्त्र के अनुसार श्रीयन्त्र का अंकन पूर्वादि क्रम से किया जाय। सर्वमध्य त्रिकोण अर्थात् मूलत्रिकोण के मध्य में बुद्धिमान् साधक बिन्दु-चक्र की रचना करे।।३८।।

[त्रैलोक्यमोहनचक्रम्]

त्रैलोक्यमोहनं नाम चतुरस्रं सुखप्रदम्।
मुक्ताभं चिन्तयेन्मन्त्री मातृकार्णैर्विमण्डितम्।।३९।।

अथ क्रमेण त्रैलोक्यमोहनादिनवचक्राणि विवृणोति—**त्रैलोक्येत्यादिना।** चतुरस्रं भूपुरम्, तच्च परितो रेखात्रयात्मकम्, भूबिम्बत्रितयं कार्यमिति प्रागुक्तत्वात्,

भूबिम्बत्रयमेतत् पश्यन्त्यादित्रिमातृविश्रान्तिः।

इति कामकलाविलासोक्तेश्च। मध्यत्रिकोणादाविर्भूता पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीशक्तयो निरुक्तभूपुरत्रयपर्यन्तं चकासतीत्यर्थः। मुक्ताभं श्वेतवर्णमित्यर्थः।

त्रैलोक्यमोहने चक्रे बुद्धञ्च परिपूजयेत्।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्यास्तास्तिस्रो रेखाश्च तन्निभाः।।

इति गन्धर्वतन्त्रचतुर्थपटलवचनेन तु रेखाणां क्रमेण तदधिष्ठातृब्रह्मविष्णुशिव-वर्णत्वमभिहितम्। तेन क्रमादेतासां रक्तकृष्णश्वेतवर्णत्वं निरुक्तगन्धर्ववचनादवगम्यते। मातृकार्णैरिति अकारादिक्षकारान्तमातृकावर्णैरित्यर्थः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे दशमपटले—

चतुरस्रं मातृकार्णैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे।
मुक्तामाणिक्यघटितं समस्थलविराजितम्।।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कल्पद्रुमफलप्रदम्।। इति।

त्रैलोक्यमोहन चक्र—चतुर्द्वारयुक्त त्रिरेखात्मक भूपुर का नाम त्रैलोक्यमोहन चक्र है। अकारादि-क्षकारान्त मातृकाओं से अलंकृत इस चक्र का वर्ण मोतियों की तरह धवल और शुभ्र है।।३९।।

विमर्श—मध्य-त्रिकोण से आविर्भूता पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाक्-शक्तियाँ मध्य त्रिकोण से भूपुर-पर्यन्त समस्त चक्रों में विलसित होती हैं। भूपुर की इन तीन रेखाओं पर ब्रह्मा-विष्णु और शिव का अधिष्ठान है। अत: अपने अधिष्ठातृ देवताओं के वर्णों के अनुरूप इन रेखाओं का वर्ण (रंग) भी यथाक्रम रक्त, कृष्ण और श्वेत है।

[सर्वाशापरिपूरकचक्रम्]

शरदिन्दुप्रतीकाशं षोडशारं मनोरमम्।
सर्वाशापूरकं नाम षोडशस्वरसंयुतम्।।४०।।

अथ षोडशदलात्मकं सर्वाशापरिपूरकचक्रमाह—शरदिन्द्वित्यादिना। शरदिन्दु-प्रतीकाशं शरत्कालीनचन्द्रसदृशवर्णविशिष्टम्। तदुक्तं ज्ञानार्णवे दशमपटले—

षोडशारं चन्द्रबिम्बरूपन्तु सकलालयम्।
सर्वाशापूरकं भद्रे स्रवत्पीयूषवर्षणम्।। इति।

षोडशारं षोडशदलम्। मनोमयम्। अत्र मन:पदं भूतपञ्चकेन्द्रियदशकमनसां देव्या: षोडशविकाराणामुपलक्षकम्। निरुक्तषोडशविकारा: कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्त्याकारेण षोडशदलान्यध्यासत इति तात्पर्यम्। व्यक्तमाह कामकलाविलासे—

भूतानीन्द्रियदशकं मनश्च देव्या विकारषोडशकम्।
कामाकर्षिण्यादिस्वरूपत: षोडशारमध्यास्ते।। इति।

षोडशस्वरसंयुतम् अकारादिषोडशस्वरविशिष्टम्। षोडशपत्रेषु क्रमेण षोडश स्वरा वर्त्तन्त इत्यर्थ:।

सर्वाशापूरक-चक्र—सोलह कमलदल वाले चक्र का नाम 'सर्वाशा-परिपूरक' है। इसका वर्ण शरत् कालीन चन्द्रमा की तरह धवल है। इसके एक-एक कमल-दल पर 'अ'कारादि एक-एक स्वरवर्ण अंकित हैं।।४०।।

[सर्वसंक्षोभणचक्रम्]

जवाकुसुमसङ्काशमष्टपत्रं सुशोभनम्।
सर्वसंक्षोभणं नाम कादिवर्गाष्टकैर्युतम्।।४१।।

अथाष्टदलात्मकं सर्वसंक्षोभणचक्रमाह—**जवेत्यादिना**। जवाकुसुमसङ्काशं जवाकुसुमवद्रक्तवर्णम्। अष्टपत्रमष्टदलम्। कादिवर्गाष्टकैर्युतम्, पञ्चदलेषु कादिपञ्चवर्गाः। षष्ठदले यरलवाः। सप्तमदले शषसहाः। अष्टमदले लक्षाविति वर्गाष्टकावस्थितिक्रमः।

सर्वसंक्षोभण चक्र—आठ कमल वाले चक्र का नाम सर्व-संक्षोभण चक्र है। इसका वर्ण जवा-कुसुम के समान लाल है। वर्णमाला के ‘क’कारादि आठ वर्ग इस चक्र के आठ दलों में क्रम से अंकित हैं।।४१।।

[निरुक्तत्रितयात्मकं सृष्टिचक्रम्]

एतच्चक्रमयं रम्यं सृष्टिकारकमुत्तमम्।।४२।।

एतत्त्रितयस्य सृष्टिचक्रत्वमाह—**एतदित्यादिना**। एतच्चक्रमयं निरुक्तत्रैलोक्यमोहनसर्वाशापरिपूरकसर्वसंक्षोभणाख्यचक्रत्रयमयमित्यर्थः। ज्ञानार्णवे दशमपटलेऽपि—

एतत्त्रयं महेशानि सृष्टिचक्रं सुखप्रदम्।

इत्युक्तम्। विशेषस्तु कामकलाविलास योगिनीहृदयादिषु द्रष्टव्यः।

त्रैलोक्यमोहन, सर्वाशापरिपूरक तथा सर्वसंक्षोभण चक्र को समष्टि रूप से ‘सृष्टिचक्र’ कहते हैं।

विमर्श—सर्वसंक्षोभण चक्र के पाँच दलों में क्रम से (१) ‘क’कार, (२) ‘च’कार, (३) ‘ट’कार, (४) ‘त’कार, (५) ‘प’कार वर्ग के सभी २५ व्यञ्जन वर्ण अंकित हैं। छठवें दल में ‘य-र-ल-व’ ये चार वर्ण, सातवें दल में ‘श-ष-स-ह’ ये चार वर्ण तथा आठवें दल में ‘ळ-क्ष’—ये दो वर्ण अंकित हैं।

[सर्वसौभाग्यदायकचक्रम्]

चतुर्दशारकोणन्तु नवीनार्कसमप्रभम्।
सर्वसौभाग्यदं नाम कादिढान्तैर्विभूषितम्।।४३।।

एवं सृष्ट्यात्मकचक्रत्रयमुक्त्वा स्थित्यात्मकचक्रत्रये वक्तव्ये क्रमप्राप्तं सर्वसौभाग्यदायकं चक्रमाह—**चतुर्दशारेत्यादिना**। चतुर्दशारकोणमिति स्पष्टम्। नवीनार्कसमप्रभं भास्वररक्तवर्णम्। तदुक्तं ज्ञानार्णवे दशमपटले—

चतुर्दशारं देवेशि दाडिमीकुसुमप्रभम्।
अनन्तफलदं भद्रे सर्वसौभाग्यसंप्रदम्।। इति।

कादीति। चतुर्दशकोणेषु ककारादिढकारान्ताश्चतुर्दश वर्णा एकैकशो वर्त्तन्त इत्यर्थः।

सर्वसौभाग्यदायक चक्र—चौदह (१४) त्रिकोण वाले इस चक्र का नाम सर्वसौभाग्यदायक चक्र है। बाल सूर्य के समान लाल वर्ण वाले इस चक्र के १४ कोणों में यथाक्रम ‘क’कार से ‘ढ’कार-पर्यन्त एक-एक वर्ण अंकित हैं।।४३।।

[सर्वार्थसाधकचक्रम्]

तप्तकाञ्चनसिन्दूरसदृशं दशकोणकम्।
सर्वार्थसाधकं नाम णादिभान्तैर्विभूषितम्।।४४।।

अथ सर्वार्थसाधकचक्रं विवृणोति—**तप्तेत्यादिना**। तप्तकाञ्चनसिन्दूरसदृशं रक्तवर्णम्। तदुक्तं ज्ञानार्णवे दशमपटले—

दशारं तप्तहेमाभं सिन्दूरसदृशं प्रिये।
सर्वार्थसाधकं चक्रं मनश्चिन्तितदं सदा।। इति।

दशकोणकं दशकोणविशिष्टम्। **णादीति**। णकारादिभकारान्ता दश वर्णा दशारेष्वेकैकशो विराजन्त इत्यर्थः।

सर्वार्थसाधक चक्र—दस कोणों वाले बहिर्दशार का नाम 'सर्वार्थसाधक' चक्र है। पिघलाये हुए सोने की तरह इसका वर्ण सिन्दूरी लाल है। वर्णमाला के 'ण'कार से 'भ'कार-पर्यन्त १० वर्ण इसके एक-एक कोण में अंकित हैं।।४४।।

[सर्वरक्षाकरचक्रम्]

तरुणारुणसङ्काशं द्वितीयं दशकोणकम्।
सर्वरक्षाकरं नाम मादिक्षान्ताक्षरैर्युतम्।।४५।।

द्वितीयदशकोणात्मकं सर्वरक्षाकरचक्रमाह—**तरुणेत्यादिना**। तरुणारुणसङ्काशं रक्तवर्णम्। **मादीति**। मकारादिक्षकारान्ता दश वर्णा एकैकशो दशारेषु वर्त्तन्त इत्यर्थः।

सर्वरक्षाकर चक्र—दस कोणों वाले अन्तर्दशार का नाम सर्वरक्षाकर चक्र है। तरुण-अरुण के समान इसका वर्ण लाल है। 'म'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त दस वर्ण इसके एक-एक कोण में स्थित हैं।।४५।।

[निरुक्तत्रितयात्मकं स्थितिचक्रम्]

स्थितिचक्रं त्रयञ्चैतन्महाज्ञानप्रदायकम्।।४६।।

एतत्त्रितयस्य स्थितिचक्रत्वमाह—**स्थितीत्यादिना**। एतत्त्रयं सर्वसौभाग्यदायक-सर्वार्थसाधक-सर्वरक्षाकराख्यं महाज्ञानप्रदायकं स्थितिचक्रमिति सम्बन्धः। ज्ञानार्णवे दशमपटलेऽपि निरुक्तचक्रत्रयमभिधाय—

एतत्त्रयं महेशानि स्थितिचक्रं सुखप्रदम्।

इत्युक्तम्।

स्थितिचक्र—सर्वसौभाग्यदायक चक्र, सर्वार्थसाधक चक्र तथा सर्वरक्षाकर चक्र—इन तीन चक्रों को स्थितिचक्र कहा जाता है। ये तीनों चक्र महाज्ञान-प्रदायक और सुख देने वाले हैं।।४६।।

[सर्वरोगहरचक्रम्]

पद्मरागप्रतीकाशमष्टकोणञ्च सिद्धिदम्।
सर्वरोगहरं नाम वर्गाष्टकैर्विमण्डितम्।।४७।।

एवं स्थित्यात्मकचक्रत्रयमभिधाय संहारात्मकचक्रत्रये वक्तव्ये क्रमप्राप्तं सर्वरोगहरचक्रमाह—**पद्मरागेत्यादिना**। पद्मरागमणिसवर्णं रक्तवर्णम्। वर्गाष्टकैर्विमण्डितम्। सर्वसंक्षोभणचक्रोक्तरीत्या कादिवर्गाष्टकमष्टारेषु वर्त्तन्त इत्यर्थः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे दशमपटले—

अष्टकोणं वरारोहे बालार्ककिरणारुणम्।
पद्मरागसमप्रख्यं सर्वरोगहरं सदा।। इति।

सर्वरोगहर चक्र—आठ कोण वाले अष्टार चक्र का नाम 'सर्वरोगहर' चक्र है। इसका वर्ण पुखराज के समान है। सर्वसंक्षोभण चक्र की तरह इसके भी एक-एक कोण में 'क'कार आदि आठ वर्ण अंकित हैं।।४७।।

[सर्वसिद्धिप्रदचक्रम्]

दाडिमीपुष्पसङ्काशं त्रिकोणं सर्वभूतिदम्।
सर्वसिद्धिप्रदं चक्रमकथादित्रिरेखगम्।।४८।।

सर्वसिद्धिप्रदचक्रमाह—**दाडिमीत्यादिना**। दाडिमीपुष्पसङ्काशं दाडिमीकुसुमवद्रक्तवर्णम्। सर्वभूतिदम् अखिलविभूतिसम्पादकम्। अ-क-थादित्रिरेखगम्। अकारादयः षोडश स्वराः, कादि-तान्तानि थादि-सान्तानि व्यञ्जनानि च क्रमेणैकैकरेखारूपेण वर्त्तन्त इत्यर्थः। ज्ञानार्णवे दशमपटले—

उद्यत्सूर्यसहस्राभं बन्धूककुसुमप्रभम्।
सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं सकलालयमीश्वरि।
त्रिकोणं सर्वसम्भूतिकारणं भूतिदं सदा।। इति।

सर्वसिद्धिप्रद चक्र—मूल त्रिकोण का नाम सर्वसिद्धिदायक चक्र है। अनार के फूल के समान लाल वर्ण वाले इस त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर 'अ'कारादि १६ स्वर, 'क'कार से 'त'कार और 'थ'कार से 'स'कार-पर्यन्त सभी व्यञ्जन इसमें अंकित हैं।।४८।।

[सर्वानन्दमयचक्रम्]

ह-क्षवर्णमध्यगतं सर्वेषां सिद्धिकारकम्।
सर्वानन्दमयं नाम बिन्दुचक्रं परं पदम्।।४९।।

अथेदानीं चरमं भगवत्या निवासस्थानं बिन्द्वाख्यं सर्वानन्दमयचक्रमाह—**ह-क्षेति**। परं पदं कामेश्वराङ्कनिलयाया देशकालाकारादिभिरनवच्छिन्नायाः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः परं पदं श्रेष्ठं निवासस्थानमित्यर्थः। अत एव योगिनीहृदये प्रथमपटले सर्वानन्दचक्रमभिधाय—

अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।

इत्युक्तम्। व्यक्तमाह कामकलाविलासे—

आसीना बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोर्त्तसा।।
पाशाङ्कुशेक्षुचाप-प्रसूनशरपञ्चकाञ्चितस्वकरा ।
बालारुणारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया।। इति।

अत्र बालारुणारुणाङ्गीत्यभिधानात् बिन्दोरपि रक्तत्वमुक्तं भवति। **हक्षवर्णमध्यगतमिति**। ह-क्षौ वर्णौ मध्यगतौ यस्येति विग्रहः।

सर्वानन्दमय चक्र—बिन्दुचक्र का नाम 'सर्वानन्दमय' चक्र है। 'ह'कार और 'क्ष'कार—इन दो वर्णों से विलसित यह सर्वसिद्धिदायक चक्र देश, काल एवं आकार-आदि से सर्वथा अनवच्छिन्न भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का परं पद है।।४९।।

[निरुक्तत्रितयात्मकं संहारचक्रम्]

सदाशिमयञ्चैतत्त्रयं संहारकारकम्।।५०।।

संहारचक्र—सर्वरोगहर चक्र, सर्वसिद्धिप्रद चक्र तथा सर्वानन्दमय चक्र को संहार-चक्र कहा जाता है। यह संहार-चक्र भगवान् सदाशिव का अधिष्ठान है।।५०।।

[निरुक्तचक्रे पुष्पाञ्जलिदानोपदेशः]

योगिनीमूलमन्त्रेण तत्र पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

योगिनी के मूल मन्त्र से इस चक्र पर भगवती को पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

[चक्रस्याशून्यतासम्पादनोपदेशः]

मुक्ता-मणि-प्रवालैर्वा विलोममूलविद्यया।।५१।।
अशून्यं सर्वदा कार्यं शून्ये विघ्नं सदा भवेत्।

मुक्तेति। यन्त्रं पूजयित्वा तत्र विलोममूलमन्त्रेण मुक्ताद्यन्यतमं स्थापयेत् कदाऽपि शून्यं न विदधीतेत्यर्थः।

पूजा के बाद यन्त्र का चरणोदक लेकर उसे खाली नहीं छोड़ना चाहिए। मूल मन्त्र का विलोम जप करते हुए उस पर मोती, हीरा, अथवा पुखराज आदि कोई रत्न रखकर उसे ढँक देना चाहिए। यदि यन्त्र को रिक्त या शून्य रखा जाता है तो घर में विघ्न होते हैं।।५१।।

[नवचक्रोपसंहारः]

नवचक्रमयं चक्रं बालादेव्या विराजितम्।।५२।।

उपसंहरति—**नवेति**। शिष्टं स्पष्टम्।

इस नवचक्र मय यन्त्र में भगवती बाला त्रिपुरसुन्दरी का नित्य वास है तथा वे इसमें विलसिता हैं।।५२।।

[चक्रेश्वरीणां नामानि]

प्रथमा त्रिपुरा देवी द्वितीया त्रिपुरेश्वरी।
तृतीया सुन्दरीनाम्नी तुर्या त्रिपुरवासिनी।।५३।।
पञ्चमी त्रिपुराश्रीश्च षष्ठे त्रिपुरमालिनी।
सप्तमे त्रिपुरा सिद्धा अष्टमे त्रिपुराम्बिका।।५४।।
नवमे श्रीमहादेवी महात्रिपुरभैरवी।

एवं त्रैलोक्यमोहनादीनि सर्वानन्दमयान्तानि नव चक्राण्युपदिश्य तेषु क्रमेण पूजनीयानां नवचक्रेश्वरीणां नामानि निरूपयति—**प्रथमेत्यादिना**। योगिनीहृदये प्रथमपटलेऽपि निरुक्तक्रमेण नामान्यभिधाय—

पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते।

इत्युक्तम्। **नवम इति**। महात्रिपुरभैरवीत्यत्र महात्रिपुरसुन्दरीति योगिनीहृदये।

त्रैलोक्यमोहन आदि इन नौ (९) चक्रों में से प्रत्येक चक्र की एक ईश्वरी अर्थात् अधिष्ठात्री देवता है। इनके शुभ नाम यथा-क्रम इस प्रकार हैं—(१) त्रिपुरा देवी, (२) त्रिपुरेश्वरी, (३) त्रिपुरसुन्दरी, (४) त्रिपुरवासिनी, (५) त्रिपुराश्री, (६) त्रिपुरमालिनी, (७) त्रिपुरासिद्धा, (८) त्रिपुराम्बिका और (९) महात्रिपुरभैरवी। इन नौ चक्रों में यथक्रम इन चक्रेश्वरियों की पूजा की जानी चाहिए।।५३-५४।।

[चक्रे स्वस्वस्थानेऽर्चनीया देवताः]

समस्ताः प्रकटा गुप्तास्तथा गुप्ततराश्रयाः।।५५।।
सम्प्रदायाः कुलाः कौला निगर्भाश्च रहस्यगाः।
परापररहस्याह परमातिरहस्यगाः।।५६।।
राजराजेश्वरी पूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी।
एताश्चक्रस्थिताः सर्वाः स्थानं ज्ञात्वा समर्चयेत्।।५७।।

समस्ता इति। आसामावरणशक्तीनां स्वस्वस्थाननामार्चाक्रमादीनि अष्टादशे वक्ष्यन्ते।

सम्पूर्ण श्रीचक्र में योगिनियों का वास है। त्रैलोक्यमोहन आदि चक्रों में प्रतिष्ठिता इन योगिनियों को क्रमशः (१) प्रकटयोगिनी, (२) गुप्तयोगिनी, (३) गुप्ततरयोगिनी, (४) सम्प्रदाययोगिनी, (५) कुलकौलयोगिनी, (६) निगर्भ-योगिनी, (७) रहस्ययोगिनी, (८) परापररहस्ययोगिनी और (९) परमाति-रहस्ययोगिनी कहा जाता है। श्रीचक्र में यथास्थान इनका पूजन किया जाना चाहिए।।५५-५७।।

[निरुक्तचक्रसङ्केतज्ञानवैभवम्]

नवधा चक्रसङ्केतं यो जानाति स साधकः।
नवधा यो न जानाति कथं देवीं प्रपूजयेत्।।५८।।

श्रीचक्र के उपर्युक्त नौ (९) संकेतों को जो जानता और समझता है, वही ज्ञानवान् साधक है। जिसे चक्र में योगिनियों की स्थिति तथा प्रत्येक चक्र की चक्रेश्वरी का ज्ञान ही नहीं हो, वह कैसा साधक है? ऐसा साधक किस तरह ज्ञानपूर्वक भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा कर पायेगा?।।५८।।

[निरुक्तश्रीचक्रज्ञानप्रशस्ति:]

एतच्छ्रीचक्रराजं सकललिपिमयं सर्वदेवस्य वन्द्यं
नित्यानन्दस्वरूपं भुवनवशकरं भोगमोक्षैकहेतुम्।
शुद्धो भूत्वा लिखित्वा यदि पशुरहितो धारयेत् पूजयेद् वा
सर्वा सिद्धिः करस्था भवति सुकृतिनस्तस्य सिद्धिः पराऽपि।।५९।।

यह श्रीचक्र सकल लिपिमय है अर्थात् पराशक्ति की अभिव्यञ्जना करने वाली सभी मातृकायें इसमें विराजिता हैं। यह केवल मनुष्यों द्वारा ही नहीं; अपितु सभी देवताओं के लिये भी प्रणम्य और नमनीय है। नित्यानन्द-स्वरूप यह श्रीचक्र भोग और मोक्षरूप ऐहिक एवं पारलौकिक सभी प्रकार के आनन्द तथा सुख का हेतु है। तीनों लोकों और चौदह भुवनों को वश में करने वाला है। पशुत्व भाव से क्रमोन्नत जो पुण्यशील साधक पवित्र शरीर तथा पवित्र मन से इसकी पूजा करते हैं अथवा इसे धारण करते हैं, उन्हें सभी सिद्धियाँ स्वयमेव एवं अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। ऐसे साधकों को कोई सिद्धि प्राप्त करने अथवा मनोकामना पूरा करने के लिये अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता।।५९।।

सर्वानन्दमयं समस्तजगतामेकाधिपं कामदं
सर्वव्याधिनिराकरञ्च शुभदं ज्ञानप्रदं कीर्त्तिदम्।
साक्षात् कल्पतरुं सुरासुरगणैः संवेष्टितं दृश्यते
येनेदं स तु सर्वतीर्थगमनस्नानस्य पुण्यं लभेत्।।६०।।

यह श्रीचक्र सर्वानन्दमय है। संसार का एकमात्र स्वामी है। सभी प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने वाला है। सभी प्रकार की आधियों और व्याधियों से रक्षा करता है। ज्ञानप्रद, कीर्तिप्रद और शुभप्रद है। साक्षात् कल्पवृक्ष है, जिससे सभी कामनायें पूरी होती हैं। सभी सुर और असुर पूजा करके इसकी परिक्रमा करते हैं। श्रीचक्र के पूजन से पृथ्वी के सभी तीर्थों के दर्शन और अर्चन का फल मिलता है।।६०।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोकों में जो नौ (९) चक्र बताये गये हैं, उनमें चार शिवचक्र तथा पाँच शक्तिचक्र हैं। बिन्दुचक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और भूपुर—ये शिव- चक्र हैं। शेष त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार और बहिर्दशार तथा चतुर्दशार—ये पाँच शक्तिचक्र हैं। ये शिव और शक्तिचक्र परस्पर संश्लिष्ट या सम्बद्ध हैं, जैसा कि ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है—

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारे दलाम्बुजम्।
दशारयो: षोडशारं भूगृहं भुवनास्त्रके।।

बिन्दुचक्र त्रिकोण के साथ, अष्टकोण चक्र अष्टदल कमल के साथ, दोनों दशार षोडशदल कमल के साथ और चतुर्दशार भूपुर के साथ संश्लिष्ट है। इस तरह यह श्रीचक्र जगत् के माता-पिता शक्ति और शिव के संश्लिष्ट युग्मरूप का प्रतीक है। भगवान् शंकराचार्य का कथन है कि श्रीयन्त्र में शिव और शक्ति का पञ्चविध साम्य है—(१) अवस्थानसाम्य, (२) अधिष्ठानसाम्य, (३) अनुष्ठानसाम्य, (४) रूपसाम्य और (५) नामसाम्य। इस पञ्चविध साम्य के कारण श्रीयन्त्र पर शिव-दम्पति का युगपत् अर्चन किया जाता है।

[श्रीचक्ररहस्यनिरूपणप्रतिज्ञा]

रहस्यं चक्रराजस्य कथयामि यथाक्रमम्।

अथ श्रीचक्ररहस्यं वक्तुमुपक्रमते—**रहस्यमित्यादिना।**

श्रीचक्र की महिमा का बखान करने के बाद ग्रन्थकार कहते हैं कि अब श्रीयन्त्र के रहस्य अर्थात् इसकी पूजनीयता के कारणों का निरूपण किया जायगा।

विमर्श—श्रीचक्र के रहस्यों को समझने के सन्दर्भ में सर्वप्रथम इसके आविर्भाव की कथा को समझना-जानना जरूरी है। चक्र के आविर्भाव के सम्बन्ध में योगिनीहृदय में कहा गया है—

यदा सा परमा शक्ति: स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मन: पश्येत् तदा चक्रस्य सम्भव:।।

विश्वरूपिणी परमा शक्ति ने जब अपनी इच्छा से अपनी स्फुरत्ता को देखा, तब चक्र का आविर्भाव हुआ। चक्र का अर्थ है—चतुर्सृष्टिमय विश्वचक्र। आविर्भाव हुआ अर्थात् आविर्भाव की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। महाशक्ति के गर्भ से विश्व का प्रकटन प्रारम्भ हुआ। यह श्रीचक्र महाशक्ति के गर्भ से ब्रह्माण्ड के क्रमिक आविर्भाव या प्रकटन की प्रक्रिया का पर्याय है। संसृति विज्ञान की समस्त दार्शनिक और आध्यात्मिक संकल्पनायें और अवधारणायें तथा परम सत्ता का यथार्थ ज्ञान इसमें पुञ्जीभूत है। यह इसकी महत्ता और महिमा का पण्डिताउ बखान नहीं; अपितु ऐसा तथ्य है, जिसे घोर साम्यवादी देश सोवियत-रूस के वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया

है। मास्को विश्वविद्यालय के भौतिक-विज्ञान एवं गणित-शास्त्र के शोधकर्ता एवं वैज्ञानिक श्री अलेक्सेई कुलाइचेव ने अनेक वर्षों तक शोध करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि 'इस दुर्लभ ज्यामितीय रेखाकृति (श्रीयन्त्र) का प्राचीन ज्यामितीय एवं दार्शनिक शिक्षा से गहरा सम्बन्ध है। यह श्रीयन्त्र प्रकृति-विज्ञान के तथ्यों की समरूपता को उजागर करता है। ब्रह्माण्ड के सार्वभौमिक सिद्धान्तों के साथ श्रीयन्त्र की आश्चर्यजनक सन्निकटता है।'

कल्याण के 'शक्ति-उपासना' विशेषांक (वर्ष १९८७) में पृष्ठ २५८ पर प्रकाशित श्री राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी के लेख 'सोवियत विश्वविद्यालय में श्रीयन्त्र पर शोधकार्य' में बताया गया है कि—

मास्को विश्वविद्यालय के ही एक अन्य प्राच्यविद् डा० देगा-दे-ओपिक का अभिमत है कि—

'श्रीयन्त्र में ऐसे पेचीदे गुण-धर्म हैं, जो आधुनिक विज्ञान के लिये भी समस्या प्रस्तुत करते हैं। विशेष रूप से ब्रह्माण्ड के उद्भव, तिथि-निर्धारण, संसृति-विज्ञान और मानव-विज्ञान की अवधारणाओं के साथ इसके सम्बन्ध का विश्लेषण ऐसी पहेली है, जिसे सुलझाने के लिये इतिहासकारों, मानव-शास्त्रियों और गणितज्ञों के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता है।'

अनास्थावादी देश के सर्वथा भौतिकतावादी भौतिकीविदों द्वारा आधुनिक भौतिक शास्त्र के मापदण्डों से श्रीयन्त्र का अध्ययन करके उसकी उत्कृष्टता के उपर्युक्त गुणगान के परिप्रेक्ष्य में इसकी आध्यात्म्यवादी दार्शनिक लोकोत्तरता तथा दिव्यता को हृदयङ्गम करना सर्वथा सन्दर्भ-सापेक्ष है। आइये देखें—

[त्रिकोणान्तर्बिन्दुरहस्यम्]

मध्ये बिन्दुः शिवो ज्ञेयः सृष्टिसंहारकारकः।।६१।।
बिन्दुमध्ये वसेन्नित्यं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
महाकामकला तत्र बिन्दुत्रितयरूपिणी।।६२।।

मध्ये सर्वसिद्धिप्रदाख्यत्रिकोणमध्ये। बिन्दुः शिवात्मकः श्वेतबिन्दुः। बिन्दुमध्ये शिवात्मकसितबिन्दुमध्ये शोणबिन्द्वात्मिका महाकामकला श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी विलसतीत्यर्थः। तां विशिनष्टि—बिन्द्वित्यादिना। बिन्दुत्रितयरूपिणी शिवशक्तिरूपं निरुक्तबिन्दुद्वयम्, तयोः समरसीभूतस्तृतीयो मिश्रबिन्दुः तत्त्रितयरूपिणीत्यर्थः। विशेषस्तु भूमिकायां द्रष्टव्यः।

बिन्दुचक्र—मूल त्रिकोण का अन्तर्वर्ती बिन्दुचक्र सृष्टिक्रम से श्रीयन्त्र का प्रथम चक्र है। यद्यपि इस चक्र में केवल एक बिन्दु दिखाई देता है, लेकिन इसमें श्वेत बिन्दु, रक्त-बिन्दु तथा मिश्र बिन्दु-संज्ञक तीन बिन्दुओं की अवस्थिति है। श्वेत

बिन्दु शिवात्मक तथा रक्त बिन्दु शक्त्यात्मक है, जिसमें महा-कामकला-रूपिणी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी विलास करती हैं। इन दोनों बिन्दुओं के सामरस्य से मिश्र बिन्दु का प्रादुर्भाव होता है॥६१-६२॥

विमर्श—उपर्युक्त श्लोकों में जिन बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है, उनमें से श्वेत बिन्दु की अपर संज्ञा महाबिन्दु है। यह महाबिन्दु विश्वोत्तीर्ण परब्रह्म की सर्वथा अनिर्वचनीय और तत्त्वातीत अवस्था का प्रतीक है। इस अवस्था में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने सूक्ष्म बीजरूप से महाशक्ति में तथा महाशक्ति परब्रह्म में विलीन रहती है। जब यह बिन्दु अपने उद्गार में क्रीडामय होता है तब शिव और शक्ति का एकीकृत साम्य भंग हो जाता है। निष्कल तथा तत्त्वातीत शिव में अन्तर्निहित महाशक्ति विश्व-रचना की इच्छा से बिन्दु के रूप में प्रकट होती है। श्वेत बिन्दु अन्तरित होकर रक्त बिन्दु बन जाता है। यह रक्त बिन्दु ही ललिता है, महात्रिपुरसुन्दरी है, महाकामकला है, शान्ता और अम्बिका की सामरस्यरूपा परावाक् है, जो बिन्दु के रूप में त्रिकोण का केन्द्र है। इस बिन्दु में (१) पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी, (२) वामा, ज्येष्ठा और रौद्री, (३) सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण आदि त्रयी विद्या के सभी विषय समाविष्ट हैं। ये सभी विषय तीन-तीन रूपों में प्रकट होकर त्रिकोण की सृष्टि करते हैं। विभिन्न ग्रन्थों में इसका विस्तार से निरूपण किया गया है।

[त्रिकोणरहस्यम्]

त्रिकोणं त्रिपुरा चैव बाला त्रिपुरसुन्दरी।
त्रिकोणरूपी रुद्रः स्यात्त्रिकोणत्वात् परा शिवा।।६३।।
त्रिषु पञ्चदशी नित्या समया च चतुर्दशी।
षडङ्गयुवती देवी तत्र पूर्वादितः स्थिता।।६४।।

मूलत्रिकोण—श्रीयन्त्र का मूलत्रिकोण रुद्र (शिव)-सहित परा-शिवा का अभिव्यञ्जक है। श्री बाला त्रिपुरसुन्दरी और त्रिपुराम्बा का धाम है। इसकी तीन रेखाओं में पाँच-पाँच के क्रम से कामेश्वरी आदि नित्यायें, समया देवियाँ तथा हृदय-आदि षडङ्ग देवियाँ पूर्व-आदिक्रम से निवास करती हैं॥६३-६४॥

विमर्श—श्रीचक्र का द्वितीय चक्र त्रिकोण त्रैलोक्यप्रसविनी महाशक्ति का बहिर्मुखी विलास है। बिन्दुरूपा 'परावाक्' इस त्रिकोण का केन्द्र है। पश्यन्ती वाक् इसकी वाम रेखा, वैखरी वाक् दक्षिण रेखा तथा मध्यमा वाक् इसकी सरल अग्र रेखा है।

'प्रपञ्चसार' तथा 'शारदातिलक' के अनुसार यह बिन्दु काल पाकर तीन भागों में विभक्त हो जाती है। इन्हें क्रमशः (१) बिन्दु, (२) नाद और (३) बीज कहते हैं। इस द्वितीय बिन्दु से रौद्री, नाद से ज्येष्ठा तथा बीज से वामा का आविर्भाव होता

है। इनसे ही क्रमशः रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा का आविर्भाव होता है। प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो जाती है। सतोगुण आदि तीनों गुण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। वस्तुतः ये तीनों गुण इच्छा आदि शक्तियों के रूप हैं। इच्छाशक्ति रजोगुण है, ज्ञानशक्ति सतोगुण है और क्रियाशक्ति तमोगुण है।

जब बिन्दुरूपा परा वाक् पश्यन्ती आदि कार्यबिन्दुओं के सृजन में प्रवृत्त होती है तब इसे कारणबिन्दु—'अव्यक्त रव' कहा जाता है। यह 'रव' ही शब्दब्रह्म है, जो कुण्डलिनी के रूप में सभी प्राणियों के देह में स्थित है।

'श्रीचक्ररहस्य' के अनुसार 'त्रिकोण और महाबिन्दु एक महा यवनिका है। इस महा यवनिका के भीतर महाशक्ति सभी लोकों में और उनके भीतर की अव्यक्त आत्माओं में महत् तत्त्व, महद्-अहंकार, मन, वशीकरण, राग-द्वेष आदि को व्याप्त करके सबमें पुनः पञ्च-तन्मात्राओं का संचार करती है। इससे विश्व और उसके भीतर की तत्-तत् वस्तुयें अपने-अपने कारणरूप में प्रत्यक्ष हो जाती हैं। कालक्रम भी प्रारम्भ हो जाता है। दोनों ही पक्षों (पखवारों) की पन्द्रह नित्या तिथियाँ प्रकट हो जाती हैं, जिनके नाम कामेश्वरी आदि नित्यायें हैं। सोलहवीं नित्या स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी हैं। वे ही चौदह (१४) लोकों की स्वामिनी हैं, इसलिये उन्हें राज-राजेश्वरी कहा जाता है।'

[अष्टाररहस्यम्]

अष्टकोणेष्वष्टसिद्धिर्भूतयोऽष्टौ भवन्ति हि।
जृम्भमोहवशस्तम्भपाशाङ्कुशधनुःशराः ।।६५।।
निवसन्ति तत्र नित्यं वशिन्याद्यष्टदेवताः।।६६।।

अष्टार चक्र—अष्टार चक्र में आठ कोण हैं। इनमें वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं का निवास है। अष्ट सिद्धियों और विभूतियों का उत्स यह अष्टार चक्र है। कामेश्वर और कामेश्वरी के जृम्भण बाण, मोहन-धनुष, वशीकरण पाश तथा स्तम्भन अंकुश आदि आयुध मूलत्रिकोण के चारो ओर इसी चक्र के अन्तर्गत पूजित होते हैं।।६५-६६।।

विमर्श--आठ कोणों से बना हुआ यह अष्टार चक्र श्रीयन्त्र का तृतीय चक्र है। सृष्टिविकासक्रम में चित् और चैत्य का परस्पर सम्बन्ध जड़ और चेतन—इन दो भावों में विभक्त हो जाता है। जीव और शिव का साम्य भंग हो जाता है। शिव के चार तत्त्व (१) शिवतत्त्व, (२) शुद्धविद्यातत्त्व, (३) ईश्वरतत्त्व और (४) सदाशिवतत्त्व तथा जीव के चार तत्त्व (१) कला, (२) राग, (३) अविद्या और (४) कंचुक इस चक्र के आठ कोणों में फैल जाते हैं। मायाशक्ति चैतन्य की पूर्णता को भंग करके देश-काल तथा जीवन-मरण आदि द्वन्द्वों को प्रकट कर आत्माओं

को संहार-चक्र में डाल देती है। परा संवित् के परिवर्तन से सारा संसार (१) चित्, (२) चिति, (३) चित्त, (४) चैतन्य, (५) चेतना-कर्म, (६) इन्द्रिय-कर्म, (७) देह और (८) कलायुक्त आठ भूमिकाओं से युक्त हो जाता है। महाशक्ति वशिनी आदि वाग्देवताओं के रूप में अष्टार के प्रत्येक त्रिकोण की अधिष्ठात्री होकर प्रतिष्ठित हो जाती है। यह अष्टार चक्र क्रियाशक्तिरूपी अग्नि-खण्ड है। अग्नि की धूम्रार्चि आदि दस कलायें यहीं से विश्वव्यापी होकर फैलती हैं।

[अन्तर्दशाररहस्यम्]

दशेन्द्रियाणि देहेषु संस्थितानि वसन्ति च।
सर्वज्ञादिमहादेवाः संस्थिता दश देवताः।।६७।।
एवं दिक्कोणसन्ध्यग्रप्राणा दशकला दश।।६८।।

अन्तर्दशार चक्र—अन्तर्दशार चक्र में दस कोण हैं। शरीर की दसों इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ) का वास इस चक्र के दस कोणों में है। सर्वज्ञा आदि दस देवियों की पूजा इस चक्र के कोणों में होती है। इन दस कोणों की सन्धि के आगे प्राण आदि दस प्राणवायुओं का वास है।।६७-६८।।

विमर्श—अष्टार से अग्नि की धूम्रार्चि आदि जो १० कलाओं प्रसृत हुई थीं, वे महाशक्ति की सर्वज्ञा आदि दस शक्तियों के रूप में दस त्रिकोणों में फैल जाती हैं। अष्ट भूमिका-प्राप्त विश्व की स्वप्नावस्था के तन्मात्रामय देह के अन्तर्निहित अवयवों को क्रियाशील बनाने की तैयारी हो जाती है। प्राणियों के लिंगशरीर का प्रादुर्भाव होता है।

[बहिर्दशाररहस्यम्]

अपरं दशकोणन्तु दशदिक्पालदैवतम्।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ।।६९।।
वैकारिकात्तु ते जाता दशसंख्याः प्रकीर्त्तिताः।
सर्वसिद्ध्यादयस्तत्र सदा तिष्ठन्ति पूजिताः।।७०।।

मित्रका इति। मित्रस्तृतीयः सूर्यः इति राघवभट्टः। कः प्रजापतिः। कः प्रजापतिरुदिष्ट इत्येकाक्षरकोषः।

बहिर्दशार—इस चक्र में भी दस (१०) त्रिकोण हैं, जिनमें इन्द्र आदि दस दिक्पालों और दिक् आदि दस (१०) देवताओं का वास है। ये दस देवता हैं—(१) दिक्, (२) वात, (३) अर्क, (४) प्रचेता, (५) अश्विनीकुमार, (६) अग्नि, (७) इन्द्र, (८) उपेन्द्र, (९) मित्र तथा (१०) ब्रह्मा। सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस देवियों का इन दस त्रिकोणों में निवास है।।६९-७०।।

विमर्श—अन्तर्दशार क्रम में शिव-दम्पति का जो तेज-युग्म दस इन्द्रियों के रूप में प्रकाशित हुआ था, वही इन इन्द्रियों के विषयों (पाँच तन्मात्रा तथा पाँच महाभूत) के रूप में दशधा विभक्त होकर प्रकाशित होता है। जड़ तथा चेतन पूर्णतः पृथक् हो जाते हैं। पञ्च-तन्मात्राओं के आश्रय से जागृत चैतन्य का लीला-विलास प्रारम्भ हो जाता है। इस चक्र के उत्तर और दक्षिण में जो चार मर्म हैं, वे प्रकृति, अहंकार, बुद्धि तथा मन के प्रतीक हैं। दस इन्द्रियों, दस इन्द्रियविषयों तथा इन चार तत्त्वों के द्वारा महाशक्ति की सूक्ष्म लीला सूर्य की तपिनी-तापिनी आदि १२ कलाओं के सहयोग से स्थूल रूप ग्रहण करती हैं।

[चतुर्दशाररहस्यम्]

अनन्तरूपचक्रस्य तथा कोणचतुर्दश।
चतुर्दशाङ्गशास्त्राणि भुवनानि चतुर्दश।।७१।।
चतुर्दशारचक्रेषु संक्षोभण्यादिदेवताः।
एको धर्मो गुणान् सूते अधर्मस्तु तथा मतः।।७२।।

चतुर्दशार चक्र—श्रीयन्त्र के इस चतुर्दश त्रिकोणों वाले चक्र में शिव-दम्पति का तेजोपुञ्ज सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ देवियों के रूप में पूजित होता है। चारो वेद, उनके चार अंग तथा सभी ६ शास्त्र तथा समस्त चौदह भुवन इस चक्र में स्थित हैं।।७१-७२।।

विमर्श—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार वेद हैं। आयुर्वेद, यजुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र—ये चार उपवेद हैं। (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द और (६) ज्योतिष—ये छः शास्त्र हैं। (१) भूलोक, (२) भुवःलोक, (३) स्वर्लोक, (४) महर्लोक, (५) जनःलोक, (६) तपोलोक और (७) सत्यलोक भूमिसहित ये ७ ऊर्ध्ववर्ती तथा (१) अतल, (२) वितल, (३) सुतल, (४) रसातल, (५) तलातल, (६) महातल और (७) पाताल—ये सात अधोलोक हैं।

शिवदम्पत्ति का तेजोपुञ्ज सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ शक्तियों के रूप में इस चक्र में पूजित होता है। ब्रह्मा की सृष्टि आदि दस कलायें विश्व-सृजन के लिये इसी चक्र में उदित होती हैं। चतुर्दशात्मिका महामाया चतुर्दश त्रिकोण बिन्दुओं में विभक्त होकर पिण्डीकरण के लिये (१) अलम्बुषा, (२) कुहू, (३) विश्वोदरी, (४) वरुणा, (५) हस्तिजिह्वा, (६) यशस्विनी, (७) अश्विनी, (८) गान्धारी, (९) पूषा, (१०) शंखिनी, (११) सरस्वती, (१२) इडा, (१३) पिंगला तथा (१४) सुषुम्ना—इन चौदह प्रमुख नाड़ियों सहित बहत्तर हजार नाड़ियों का संचार करती हैं। अर्थ-सृष्टि के ३६ तत्त्वों में से अशुद्ध अथवा आत्मतत्त्व वर्ग के बुद्धि में लेकर पृथ्वी-पर्यन्त २३ तत्त्वों का विकास इस चक्र में होता है।

[अष्टदलरहस्यम्]

अष्टरूपाष्टपत्रेषु धर्मादीनि वसन्ति च।
अनङ्गकुसुमादीनि बोध्यानि सततं बुधैः।।७३।।

अष्टदल कमल—इस चक्र में आठ कमलदल हैं। इन आठ कमलदलों में अनंगकुसुमा आदि आठ देवियों का पूजन होता है। धर्म आदि अष्टक का वास इस चक्र के कमलदलों में है।।७३।।

विमर्श—इस चक्र में पूजिता अनंगकुसुमा आदि आठ शक्तियाँ बुद्धि के आठ भेदों—(१) वचन, (२) आदान, (३) गमन, (४) विसर्ग, (५) आनन्द, (६) हान, (७) उपेक्षा और (८) उपादान की अधिष्ठात्री शक्तियाँ हैं। 'धर्मादीनि' से तात्पर्य है—(१) धर्म, (२) ज्ञान, (३) ऐश्वर्य, (४) वैराग्य, (५) अधर्म, (६) अज्ञान, (७) अनैश्वर्य तथा (८) अवैराग्य। चतुर्दशार चक्र तक अनुस्वार और विसर्ग (अं-अः) तक की मातृका सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ था। प्रत्येक चक्र में अंकित मातृका-वर्णों का उल्लेख यथास्थान किया गया है। अष्टदल कमल से विसर्ग का बहिर्भाव प्रारम्भ होता है।

[षोडशदलरहस्यम्]

षोडशच्छदचक्रेषु तिथयः षोडश स्मृताः।
सर्वसौभाग्यदा नित्यं कामाकर्षणपूर्विकाः।।७४।।
त्रिवृत्ते चन्द्रसूर्याग्नित्रिरेखाकारवर्त्तिनः।।७५।।
शिवरेखा पूर्वसन्ध्या ब्रह्माणी ब्रह्मरेखगा।
अणिमाद्या ब्रह्मरेखाः क्रमेण परिकीर्त्तिताः।।७६।।
चतुःषष्टिस्तथा कोटिः कोटिकोटिविभूतयः।
योगिन्यो देवदेव्यश्च चक्रमाश्रित्य संस्थिताः।।७७।।
अस्य प्रभेदाः कोणानां दलानान्तु प्रकीर्त्तिताः।

त्रिवृत्त इत्यादिना चक्रमाश्रित्य संस्थिता इत्यन्तेनोक्ता आवरणशक्तयोऽष्टादशे पूजाक्रमे ग्रन्थकृद्भिर्विशिष्य वक्ष्यन्ते।

षोडशार और भूपुर—इन साढ़े चार श्लोकों में षोडशदल कमल तथा भूपुर का रहस्य बताया गया है।

सोलह कलात्मक चन्द्रस्वरूप षोडशदल कमल में कामाकर्षिणी आदि सोलह देवियों की अवस्थिति है। षोडशार के बाद चन्द्र-सूर्य और अग्निरूप तीन वृत्तों के बाहर तीन रेखाओं वाला जो भूपुर है, उसमें ब्राह्मी आदि मातृकाओं का निवास है। इस श्रीचक्र में ६४ कोटि योगिनियों एवं विभूतियों तथा कोटि-कोटि देवताओं का

वास है। इसके कोणों तथा दलों में आश्रित योगिनियों के मुख्य भेदों का निरूपण यहाँ किया गया है॥७४-७७॥

विमर्श—यह षोडशदल कमल विश्वाधार श्रीचक्र का अन्तिम रूपान्तरण है। अपनी अनेक शक्तियों से युक्त होकर भौतिक तत्त्वों का आविर्भाव करती हुई महाशक्ति इस चक्र में सारे विश्व को स्थूल रूप में परिणत कर देती है। इस मूल सत्ता के आधार पर विश्व के कारण—लिंग और स्थूलशरीर का निर्माण होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ तथा सभी मनोविकार प्रकट हो जाते हैं। महाशक्ति की कामकला और शृंगारकला द्वारा इस अण्डाकार विश्व और उसमें जो कुछ है, उन सबका जन्म हो जाता है तथा शिव और जीव का साम्य सम्पूर्ण रूप से भंग होकर सृष्टि व्यापार चलने लगता है। षोडश अवयवों की प्रकाशिका कामाकर्षिणी आदि शक्तियाँ महाशक्ति से प्रकट होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती हैं।

भूपुर—षोडशदल के बाहर तीन वृत्तों से परे तीन रेखाओं वाला भूपुर चौदह लोकों की सीमा का ज्ञापक है। मातृकाचक्रविवेक नामक तन्त्रग्रन्थ में कहा गया है—

तस्माच्चतुष्पदमिदं चतुरस्रबिम्बम्
चिच्चैत्यनिर्जरसरिद् यमुना प्रयागः॥

अर्थात् चतुर्द्वारयुक्त यह चतुरस्र गंगा और यमुना का संगम प्रयाग है, जहाँ चित् और चैत्यरूपी दो नदियाँ मिलती हैं। इस तरह यह भूपुर जड़ और चेतन अर्थात् शिव और जीव—दोनों का समष्टि रूप है। निराकार, निष्कल, शून्यवत् ब्रह्म में लीन समस्त विश्व के उद्भव के लिये महाशक्ति का यह जागतिक परिणाम है। महाशक्ति यहाँ ब्रह्मलीन विश्व को साकार और स्थूल रूप में प्रस्तुत करके अपने विशुद्ध प्रकाश को अन्तर्लीन कर लेती है। यहीं आदिशक्ति का लय होता है और यहीं से आदिशक्ति का उद्भव भी होता है।

भूपुर की प्रथम-द्वितीय और तृतीय रेखा पर शिव-दम्पत्ति का तेजोपुञ्ज क्रमशः अणिमा आदि १० सिद्धियों, ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं तथा सर्वसंक्षोभिणी आदि १० चक्रस्थ मूल शक्तियों के रूप में अर्चित होता है।

मेरे आराध्य चरणों के द्वारा निबन्धित 'श्रीयन्त्र-रहस्य' में श्रीचक्र के रहस्यों का विस्तार से निरूपण करने के पश्चात् कहा गया है कि—

यह श्रीचक्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवम् पिण्डाण्डों की एकता का परिचायक है। उपासक की चित् शक्ति और परशिव के ऐक्यभाव का प्रत्यक्ष निरूपण श्रीचक्र द्वारा होता है।

सृष्टिक्रम-वर्णन—(महाबिन्दु→बिन्दु→त्रिकोण→अष्टार→अन्तर्दशार→बहिर्दशार→चतुर्दशार→अष्टदल→षोडशदल और भूपुर) के अनुसार 'श्रीचक्र' ब्रह्माण्ड का प्रतीक है।

संहार या लयक्रम (भूपुर—जाग्रदावस्था। षोडशदल—स्वप्नावस्था। अष्टदल—सुषुप्त्यावस्था। चतुर्दशार—ईश्वरविचार। बहिर्दशार—गुरुप्राप्ति। अन्तर्दशार—श्रवण। अष्टार—मनन। त्रिकोण—निदिध्यासन। बिन्दु—सविकल्प समाधि) के अनुसार श्रीचक्र देवालयरूपी पिण्डाण्ड का प्रतीक है।

उच्च कोटि के साधक श्रीचक्ररहस्य की भावना अपने शरीर में करते हैं। उनकी दृष्टि में साधक का शरीर ही श्रीचक्र है। तदनुसार साधक का ब्रह्मरन्ध्र बिन्दु-चक्र है। मस्तक—त्रिकोण, ललाट—अष्टकोण, भ्रूमध्य—अन्तर्दशार, कण्ठ—बहिर्दशार, हृदय—चतुर्दशार, कुक्षि—वृत्त, नाभि—अष्टदल कमल, कटि—अष्टदल के बाहर का वृत्त, स्वाधिष्ठान—षोडशदल कमल, मूलाधार—षोडशदल के बाहर के तीन वलयाकार वृत्त, जानु—भूपुर की प्रथम रेखा, जंघा—भूपुर की द्वितीय रेखा तथा पाद (पैर)—भूपुर की तीसरी रेखा है।

योगिनीहृदय में कहा गया है—

त्रिपुरेशी महायन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि।
यो जानाति स योगीन्द्रः स शम्भुः स हरिर्विधिः।।

अर्थात् यह श्रीचक्र पिण्डात्मक और ब्रह्माण्डात्मक है। जो साधक इस बात को जानता है, वह योगीन्द्र शिव, हरि (विष्णु) और विधि अर्थात् प्रजापिता ब्रह्मा के समान है।

ब्रह्माण्डात्मक एवं पिण्डाण्डत्मक श्रीचक्र की साधना त्रिविध है—(१) अन्तः, (२) बाह्य, (३) भावना। विभिन्न पद्धतिग्रन्थों में साधना के अन्तः तथा बाह्य-विधान विस्तार से प्रकाशित हैं।

[यन्त्रस्य परिमाणभेदाः]

त्रिकोण(?)श्चैकतोलं वा चतुरङ्गुलिमानकम्।।७८।।
तत्रैव लेखयेच्चक्रं चतुरस्रं सुशोभनम्।
नवहस्तं द्विहस्तं वा तथैकहस्तमेव वा।।७९।।
लिखेद् यन्त्रं भूप्रदेशे रत्नादौ तु निजेच्छया।
मूलमुच्चारयन् स्वस्थ इति यामलसम्मतम्।।८०।।

अथ यन्त्रस्य मानभेदानाह—**त्रिकोण(?)मित्यादिना यामलसम्मतमित्यन्तेन**। अत्र 'त्रिकोणमि'ति पाठः प्रामादिक इति प्रतिभाति। चतुरस्रमिति वक्ष्यमाणेन

विरोधादेकतोलं वेति वाशब्दवैयर्थ्यात् स्वच्छन्दभैरवतन्त्रराजादिविरोधाच्च। तथाच तन्त्रसारधृतस्वच्छन्दभैरवे—

कुर्याच्च स्थण्डिले यन्त्रं हस्तमात्रं सुसुन्दरम्।
रत्नादिषु तु निर्माणे मानमिच्छावशाद् भवेत्।
एकतोलं द्वितोलं वा त्रितोलं वेदतोलकम्।
इतोऽधिकं नरः कृत्वा प्रायश्चित्ती भवेत् ध्रुवम्।
रक्तेन रजसापूर्य श्रीचक्रं भुवि पूजयेत्।
नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्राप्यते वाञ्छितं फलम्। इति।

तन्त्रराजे त्रयस्त्रिंशपटलेऽपि—

नवहस्तं त्रिहस्तं वा श्रीचक्रमभिषेचते।
कुर्यात् स्थण्डिलपूजायां हस्तमात्रेऽतिसुन्दरम्।
रत्नादिषु तु निर्माणे मानमिच्छावशाद् भवेत्।
सदा सुविहिते पूजा शुभान्यस्मिंस्तथाऽन्यथा। इति।

एवञ्चैतेषु वचनेषु त्रितोलपरिमाणदर्शनादत्रापि त्रितोलमित्येव साधीयान् पाठ इति मन्तव्यम्। मूलमिति मूलमन्त्रमुच्चारयन् यन्त्रं लिखेदिति सम्बन्धः।

सुन्दर एवं समतल स्थण्डिल (वेदी) पर नौ हाथ, दो हाथ, तीन हाथ अथवा एक हाथ प्रमाण का श्रीयन्त्र यथाविहित द्रव्य तथा यथाविहित लेखनी से बनाना चाहिए। यदि स्फटिक आदि रत्न पर यन्त्र बनवाना हो तो उसका वजन यथा इच्छा एक-दो तोला, तीन तोला, चार तोला रखना चाहिए। यन्त्र का निर्माण मूल मन्त्र का जप करते हुए किया जाय।।७८-८०।।

विमर्श—'स्वच्छन्दभैरव' तन्त्र में कहा गया है कि स्फटिक आदि रत्न का भार चार तोला से अधिक नहीं होना चाहिए। 'श्रीविद्यार्णव' (द्वादश श्वास) में कहा गया है कि स्वर्णपत्र पर निर्मित श्रीयन्त्र जीवन भर के लिये उपयोगी होता है, जबकि चाँदी पर बना यन्त्र ३२ वर्षों तक, ताम्बे का यन्त्र १२ वर्षों तक तथा भोजपत्र पर अंकित यन्त्र केवल ६ वर्षों तक उपयोगी होता है। स्फटिक आदि रत्नों पर अंकित यन्त्र सदा-सर्वदा उपयोगी होता है।

[बिन्दुचक्रे महाकामकलाया अवस्थितिः]

त्रिकोणचक्रमध्ये तु महाकामकलां लिखेत्।
कथितं परमं चक्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।८१।।
प्रार्थयेद् यदि मोक्षन्तु मोक्षद्वारमिदं महत्।
श्रीक्रमे परमं वस्तु कीर्त्तितं परमात्मना।।८२।।

त्रिकोणचक्रमध्य इति। मध्यत्रिकोणचक्रस्य मध्ये बिन्दावित्यर्थः।

'श्रीक्रमसंहिता' में भगवान् शिव ने कहा है कि मूल त्रिकोण के बैन्दव चक्र में भगवती महाकामकला की नित्य स्थिति है। ऐसा यन्त्र संसार में दुर्लभ है, जो प्रार्थना करने मात्र से मोक्ष भी प्रदान करने में सक्षम है॥८१-८२॥

[श्रीचक्रोद्धारे दिङ्नियमः]

उदङ्मुखो यदा मन्त्री चक्रराजं प्रपूजयेत्।
उदीची दिक् तदा चैव पूर्वाशैव निगद्यते।
ईशानन्तु तथाग्नेयं भवेदेवं न संशयः।।८३।।

पश्चिमाशा यदा मन्त्री चक्रराजं प्रपूजयेत्।
प्रतीची दिक् तदा चैव पूर्वाशैव न संशयः।
वायुकोणं तदाग्नेयमीशानं राक्षसं भवेत्।।८४।।

अथेदानीं श्रीचक्रोद्धारे दिङ्नियमः प्रतिपाद्यते। तत्र च—

तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रराजं समालिखेत्।

इति ज्ञानार्णवदशमपटलवचनेन,

ततः प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समारभेत्।

इति गन्धर्वतन्त्रचतुर्थपटलवचनेन च श्रीचक्रनिर्माणे साधकस्य पूर्वदिङ्मुखत्वमुपदिष्टम्। तदिदानीं पूर्वां दिशमेव नियमयति—**उदङ्मुख इत्यादिना।** साधक उदङ्मुखः सन् चक्रनिर्माणाय प्रवृत्तश्चेत्तर्हि उत्तरदिश एव पूर्वदिक्त्वम्, ईशानस्याग्निकोणत्वम्। अनया रीत्या सर्वत्र दिङ्नियम इत्युत्तरवचनेभ्योऽवगन्तव्यम्। एतानि दिङ्नियमप्रतिपादकवचनानि क्वचिच्छ्रीचक्रोद्धारविषये क्वचन वा श्रीमत्त्रिपुरापूजनविषयेऽभिहितानि दृश्यन्ते। यथा ज्ञानार्णवे दशमपटले—

उत्तराशामुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत्।
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव निगद्यते॥

इत्यादि। एवमेव कौलावलीनिर्णयेऽपि। वचनमिदं चक्रोद्धारे दिङ्नियमप्रतिपादकम्। तथा गन्धर्वतन्त्रे सप्तमपटले—

उत्तराभिमुखो भूत्वा यदा देवीं प्रपूजयेत्।
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव न संशयः।

ईशानमग्निकोणं स्याद्वायुकोणं तथेशकम्।
दक्षिणाशा तदा ज्ञेया पश्चिमाशा महेश्वरि।
राक्षसं वायुकोणं स्यादाग्नेयं राक्षसं भवेत्।

इत्यादिवचनैः पूजायां दिङ्नियमः प्रतिपादितः। एवञ्च निरुक्तज्ञानार्णव-गन्धर्व-तन्त्रादिवचनपर्यालोचनया श्रीचक्रोद्धारपूजनयोरुभयोरपि निरुक्तक्रमेण दिङ्नियमः कर्त्तव्य इति पर्यवस्यति। परन्तु 'तत्र प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समारभेत्' इति प्रागुपदर्शितगन्धर्ववचनेन चक्रोद्धारे प्राङ्मुखत्वनियमात्—

दिग्विभागेषु कौवेरी दिक् शिवाप्रीतिदायिनी।
तस्मात्तन्मुख आसीनः पूजयेत्त्रिपुरां सदा।।

इति गन्धर्वतन्त्रसप्तमपटलवचनेन पूजने उत्तरास्यत्वनियमाच्च चक्रोद्धारे पूर्वदिङ्मुखत्वस्य पूजने चोत्तरास्यत्वस्य प्रशस्ततरत्वमिति बोध्यम्। न च दिग्विभागेष्वित्यादिवचनेन पूजने पूर्वास्यत्वमात्रं कल्प्यतामिति वाच्यम्,

यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत्।
देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः।

इति गुप्तार्णवतन्त्रवचने यदाशाभिमुख इत्यनेन यत्किञ्चिद्दिङ्मात्राभिधानात्,

उदङ्मुखो यदा मन्त्री चक्रराजं प्रपूजयेत्।

इत्यादिमूलोक्तवचनेषु पूजने उत्तरास्यत्वादेर्व्यक्तमभिधानाच्च विरोधापत्तेः। तस्मात् चक्रोद्धारे प्राङ्मुखत्वस्य पूजने चोत्तरास्यत्वस्य प्रशस्ततरत्वं दिशामन्यासां प्रशस्तत्वमिति निष्कर्षः।

वैदिक तथा पौराणिक विधि से अर्चन में दिशाओं का महत्त्व तो है; मगर वहाँ दिशाओं का क्रम और स्थान नैसर्गिक ही रहता है। तान्त्रिक पद्धति में ऐसा नहीं होता। इन श्लोकों में यही बात कही गई है। यदि साधक उत्तर की ओर मुख करके श्रीयन्त्र का अर्चन करता है तो उसके सामने की दिशा पूर्व दिशा तथा नैसर्गिक ईशान कोण अग्निकोण बन जायगा।

यदि साधक पश्चिम की ओर मुख करके श्रीचक्र का अर्चन करता है तो उसके सामने की पश्चिम दिशा को पूर्व माना जाय। इस स्थिति में नैसर्गिक वायव्य क़ोण को परिकल्पित आग्नेय कोण तथा नैसर्गिक ईशान कोण को परिकल्पित नैर्ऋत्य कोण माना जाय।।८३-८४।।

दक्षिणाशामुखो मन्त्री यदा चक्रं प्रपूजयेत्।
पूर्वाशैव तदा सा दिग् रक्षःकोणन्तु वह्निवत्।।८५।।
आग्नेयन्तु तदेशानं वायुस्तु निर्ऋतिर्भवेत्।
बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रस्य मतमेतत् प्रकीर्त्तितम्।।८६।।

यदि साधक दक्षिण दिशा की ओर मुख करके श्रीचक्र का अर्चन करता है तो नैसर्गिक दक्षिण दिशा को पूर्व, नैसर्गिक नैर्ऋत्य कोण को अग्निकोण, नैसर्गिक अग्निकोण को ईशान कोण तथा नैसर्गिक वायव्य कोण को परिकल्पित ईशान माना जाय।।८५-८६।।

'बृहत् श्रीक्रम' का उपर्युक्त मत है।

पुरन्दरमुखो मन्त्री पूजयेत्त्रिपुरां यदा।
देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः।
गुप्तार्णवमतेनापि दिग्विभागः प्रकीर्त्तितः।।८७।।

'गुप्तार्णवतन्त्र' का कथन है कि जब पूर्व की ओर मुख करके भगवती त्रिपुरा की पूजा की जाती है तब देवी के सामने प्रतीची (पश्चिम) और पीठ के पीछे पूर्व दिशा होती है।।८७।।

विमर्श—उपर्युक्त पाँच श्लोकों में से प्रथम चार श्लोक श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (पटलसंख्या १०) और पाँचवाँ श्लोक 'नवरत्नेश्वरतन्त्र' का है। आचार्यप्रवर भास्करराय ने 'नित्याषोडशिकार्णव' के प्रथम विश्राम के 'अणिमा पश्चिमे द्वारे लघिमामपि चोत्तरे' (श्लोकसंख्या १६६-१६८) आदि श्लोकों की व्याख्या उपर्युक्त श्लोकों तथा 'गुप्तार्णव' के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर की है—

यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत्।
देवीपश्चात् भवेत् प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः।।

साधक जिस किसी भी दिशा की ओर मुख करके यन्त्र अर्चन करेगा, भगवती त्रिपुरा के पीछे की ओर पूर्व तथा सामने की ओर प्रतीची (पश्चिम दिशा) होगी। उनके दाहिने हाथ की ओर उत्तर और बाँयें हाथ की ओर दक्षिण दिशा होगी। ईशान आदि कोण भी तदनुसार होंगे।

[श्रीचक्रस्थापनाधारः]

अथ सिंहासने मन्त्री श्रीचक्रं पुरतो न्यसेत्।।८८।।

सोने, चाँदी अथवा ताँबे की प्लेट अथवा स्फटिक आदि रत्न पर अंकित या उत्कीर्ण श्रीयन्त्र को भूमि पर नहीं; अपितु सिंहासन पर ही रखा जाय।।८८।।

[सीसकादिषु चक्रस्थापननिषेधः]

सीसके कांस्यपात्रे वा रङ्गे वा साधकोत्तमः।
फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन।।८९।।
स्थापितं यदि लोभेन मोहादज्ञानतोऽपि वा।
कुलं वित्तमपत्यञ्च निर्मूलयति सर्वदा।।९०।।

कतिपय वस्तुओं पर श्रीयन्त्र का अंकन निषिद्ध है। तदनुसार सीसा, कांस्यपात्र, राँगा अथवा काँसे की प्लेट पर, फलक पर, कपड़े पर या दीवार पर श्रीयन्त्र का अंकन नहीं किया जाय। यदि लोभ, मोह अथवा अज्ञानवश निषिद्ध आधार पर श्रीचक्र का निर्माण/अंकन किया जाता है तो घर-परिवार आदि का नाश हो जाता है।।८९-९०।।

विमर्श—'तन्त्रसार' में अन्य तन्त्र-ग्रन्थों से उद्धृत करके कहा गया है—

जिसे पुत्र-पौत्र आदि की ममता हो, वह घर की दीवार पर, वस्त्र या फलक पर कोई भी यन्त्र स्थापित न करे।

किसी काष्ठफलक या घर की दीवार पर यन्त्र को लटकाने या स्थापित करने से पुत्र-पौत्र, धन-धान्य और आयु का नाश होता है।

सिंहासन पर श्रीयन्त्र को स्थापित करके पीठपूजा का विधान अगले २३ श्लोकों में बताया गया है। पीठपूजा का यह विधान प्रयोग-क्रम रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

[पीठपूजा]

पीठपूजां ततः कुर्यादुपर्युपरिभावतः।
मण्डूकं पूजयेदादौ रुद्रं कालाग्निरूपकम्।।९१।।
आधारशक्तिं कूर्मञ्च तथाऽनन्तं वराहकम्।
पृथ्वीं सुधासमुद्रञ्च रत्नद्वीपमतः परम्।।९२।।
स्वर्णशैलं रत्नभूमिं नन्दनोद्यानमेव च।
नानावृक्षमहोद्यानं तथैव कल्पवाटिकाम्।।९३।।
सन्तानबाटिकाञ्चैव हरिचन्दनवाटिकाम्।
मन्दारवाटिकां पारिजातवाटीं समर्चयेत्।।९४।।
कदम्बवनवाटीञ्च रत्नप्राकारकान् यथा।
पुष्परागं पद्मरागं गोमेदं वज्रमप्यथ।।९५।।
वैदूर्यमिन्द्रनीलञ्च मुक्तां मरकतं तथा।
विद्रुमञ्चेति नवकान् रत्नप्राकारसंयुतान्।।९६।।
माणिक्यमण्डपञ्चैव सहस्रस्तम्भमण्डपम्।
अमृतवापिकामेवमानन्दवापिकां ततः।।९७।।
विमर्षवापिकां बालातपोद्गारमतः परम्।
चन्द्रिकोद्गारकं महाशृङ्गारपरिखामपि।।९८।।

पीठपूजामाह—पीठपूजामित्यादिना समर्चयेदिति प्रकाशान्तेन।

पीठपूजा के क्रम में सर्वप्रथम मण्डूक की पूजा करके अन्य पीठदेवताओं की पूजा यह भावना करते हुए की जाय कि ये पीठदेवता एक के ऊपर एक के क्रम से स्थित हैं—

मं मण्डूकाय नमः। कां कालाग्निरुद्राय नमः। आधारशक्त्यै नमः। कूं कूर्माय **नमः। अं** अनन्ताय नमः। वं वराहाय नमः। पृं पृथिव्यै नमः। सुं सुधासागराय नमः। **अं-आं इं ईं ....** ळं क्षं रत्नद्वीपाय नमः।

रत्नद्वीप पर—स्वं स्वर्णशैलाय नमः। रं रत्नभूम्यै नमः। तत्र—नं नन्दनोद्यानाय नमः। नां नानावृक्षमहोद्यानाय नमः।

महाउद्यान में—कं कल्पवाटिकायै नमः। मन्दारवाटिकायै नमः। सं सन्तानवाटिकायै नमः। हं हरिचन्दनवाटिकायै नमः। मं मन्दारवाटिकायै नमः। पां पारिजातवाटिकायै नमः। कं कदम्बवनवाटिकायै नमः।

वाटिकाओं के अन्दर नौ रत्न-प्राकारों की पूजा करें। यथा—पुं पुष्परागप्राकाराय नमः। पं पद्मरागप्राकाराय नमः। गों गोमेदप्राकाराय नमः। वं वज्रप्राकाराय नमः। वैं वैदूर्यप्राकाराय नमः। इं इन्द्रनीलप्राकाराय नमः। मुं मुक्ताप्राकाराय नमः। मं मरकतप्राकाराय नमः। विं विद्रुमप्राकाराय नमः।

रत्नप्राकारों के अन्दर—मं माणिक्यमण्डपाय नमः। सं सहस्रस्तम्भमण्डपाय नमः। अं अमृतवापिकायै नमः। आं आनन्दवापिकायै नमः। विं विमर्षवापिकायै नमः। बां वालातपोद्गाराय नमः। चं चन्द्रिकोद्गाराय नमः। मं महाशृंगारपरिखायै नमः॥९१-९८॥

महापद्माटवीं कल्पवृक्षं सम्पूजयेन्नरः।
ततश्चिन्तामणिगृहं रत्ननिर्मितवेदिकाम्॥९९॥
पूर्वाम्नायमयं पूर्वं द्वारं पूर्वे समर्चयेत्।
दक्षिणे पश्चिमे सौम्ये तत्तदाम्नायमप्यथ॥१००॥
रत्नसिंहासनं श्वेतच्छत्रमूद्ध्र्वे प्रपूजयेत्।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं चाग्नितो यजेत्॥१०१॥
अ-पूर्वान् पूजयेदेतान् दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः क्रमेण तु॥१०२॥
चक्रमध्यस्थपद्मञ्च कन्दं वसुदलं ततः।
नालमूद्ध्र्वच्छदाधश्च तत्त्वरूपान्तु कर्णिकाम्॥१०३॥
मण्डलं वह्निसूर्येन्दो रजः सत्त्वं तमोऽपि च।
ज्ञानमायाकलाविद्यातत्त्वान्यत्र प्रपूजयेत्॥१०४॥

पूर्वेति। पूर्वद्वारे पूर्वाम्नायम्, एवं दक्षिणपश्चिमोत्तरेषु दक्षिणपश्चिमोत्तराम्नायान् क्रमेण पूजयेदित्यर्थः। एतेन पूर्वाम्नायमयपूर्वद्वाराय नमः दक्षिणाम्नायमयदक्षिणद्वाराय नम इत्यादिरूपः प्रयोग इत्यापतति। तन्त्रसारे तु पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय नम इत्यादिरूपः प्रयोग उक्तः। **अपूर्वानिति।** अधर्ममज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यञ्चेत्यर्थः।

महापद्माट्व्यै नमः। पद्माटवी में—कं कल्पवृक्षाय नमः। कल्पवृक्ष के नीचे—चिं चिन्तामणिगृहाय नमः। चिन्तामणिगृह में—रं रत्नवेदिकायै नमः।

चिन्तामणि गृह के चार द्वारों पर—

पूर्व में—पूं पूर्वाम्नायद्वाराय नम:। दक्षिण में—दं दक्षिणाम्नायद्वाराय नम:। पश्चिम में—पं पश्चिमाम्नायद्वाराय नम:। उत्तर में—उं उत्तराम्नायद्वाराय नम:।

रत्नवेदिका पर—

रं रत्नसिंहासनाय नम:। सिंहासन पर—श्वेतछत्राय नम:। सिंहासन की चारो दिशाओं और उपदिशाओं में—

आग्नेय कोण में—धं धर्माय नम:। नैर्ऋत्य कोण में—ज्ञां ज्ञानाय नम:। वायव्य में—वं वैराग्याय नम:। ईशान में—ऐं ऐश्वर्याय नम:।

पूर्व में—अं अधर्माय नम:। दक्षिण में—अं अज्ञानाय नम:। पश्चिम में—अं अवैराग्याय नम:। उत्तर में—अं अनैश्वर्याय नम:।

रत्नसिंहासन पर क्रम से—

आं आत्मने नम:। अं अन्तरात्मने नम:। पं परमात्मने नम:। ज्ञां ज्ञानात्मने नम:।

चक्र के मध्य में—

पं पद्माय नम:। कं कन्दाय नम:। अष्टदलकमलाय नम:। कमल के मूल में—नालाय नम:। उसके ऊपर—तत्त्वरूपा कर्णिकायै नम:।

कर्णिका पर—मं अग्निमण्डलाय नम:। अं अर्क मण्डलाय नम:। उं चन्द्रमण्डलाय नम:। रं रजसे नम:। सं सत्त्वाय नम:। तं तमसे नम:।

ज्ञां ज्ञानतत्त्वाय नम:। मां मायातत्त्वाय नम:। कं कलातत्त्वाय नम:। विं विद्यातत्त्वाय नम:।।९९-१०४।।

गणेशं वटुकं मन्त्री सव्ये दक्षे प्रपूजयेत्।
नामादिवर्णबीजानि' चतुरस्रान्तरे पुन:।।१०५।।
ईशाग्न्यन्तञ्च मित्रीशनाथमुड्डीशनाथकम्।
जालन्धराह्वयं पीठं पीठं पूर्णगिरिं तत:।।१०६।।
त्र्यस्रे सम्पूजयेन्मन्त्री क्रमेणानेन तत्परम्।
पूर्वादिक्रमयोगेण फलके आसनस्य तु।।१०७।।
पृथिव्याश्च पतिञ्चैव ब्रह्माणममृतेश्वरम्।
विष्णुतेजोऽधिपं रुद्रं वार्यधीशं तथेश्वरम्।।१०८।।
मध्ये प्रासादमुच्चार्य वियत्पदमुदीरयेत्।
ततोऽधिपतये प्रोच्य पञ्चवक्त्राय योजयेत्।।१०९।।
सदाशिवाय च महाप्रेतपद्मासनाय हृत्।
यजेदासनमन्त्रेण सर्वासनमथापि वा।।११०।।

प्रेतबीजं समुच्चार्य सदाशिवमहापदम्।
प्रेतपद्मासनायेति ह्रन्मनुर्मनुरीरितः।।१११।।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण तस्योपरि षडासनम्।।११२।।

चतुरस्रेति। श्रीचक्रचतुरस्रान्तरे ईशानाद्यग्निकोणान्तं क्रमेण जालन्धरादिपीठ-चतुष्टयं पूजयेदित्यर्थः। **प्रासादेति।** ह्रीं वियदधिपतये सदाशिवाय महाप्रेतपद्मासनाय नम इति प्रयोगः। **प्रेतेति।** प्रेतबीजं हसौरिति। तथाच हसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम इति प्रयोगः।

उत्तर में—गं गणेशाय नमः। दक्षिण में—वं वटुकाय नमः।

चतुरस्र में ईशान से अग्निकोण-पर्यन्त चार कोणों में मित्रीशनाथ एवं उड्डीशनाथ तथा जालन्धरपीठ तथा पूर्णगिरि पीठ का न्यास/अर्चन करें। यथा—

ईशान में — ऐं ह्रीं श्रीं मित्रीशनाथाय नमः।
वायव्य में — ऐं ह्रीं श्रीं उड्डीशनाथाय नमः।
नैर्ऋत्य में — ऐं ह्रीं श्रीं षष्ठीशनाथाय नमः।
अग्निकोण में— ऐं ह्रीं श्रीं चर्यानन्दनाथाय नमः।

इनके बाद इन्हीं कोणों में जालन्धर आदि पीठ का न्यास करें—

ईशान में — ऐं ह्रीं श्रीं जालन्धरपीठाय नमः।
वायव्य में — ऐं ह्रीं श्रीं पूर्णगिरिपीठाय नमः।
नैर्ऋत्य में — ऐं ह्रीं श्रीं कामरूपपीठाय नमः।
अग्निकोण में— ऐं ह्रीं श्रीं उड्डीयानपीठाय नमः।

तत्पश्चात् आसन के फलक (तख्ते पर) पूर्वादि क्रम से—

पूर्व — ऐं ह्रीं श्रीं पृथ्वीपतये ब्रह्मणे नमः।
दक्षिण — ऐं ह्रीं श्रीं अमृतपतये विष्णवे नमः।
पश्चिम — ऐं ह्रीं श्रीं तेजोऽधिपतये रुद्राय नमः।
उत्तर — ऐं ह्रीं श्रीं जलाधिपतये ईश्वराय नमः।

आसन के मध्य में—हौं वियदधिपतये पञ्चवक्त्राय सदाशिवाय महाप्रेतपद्मासनाय नमः—अथवा

हसौः सदाशिवाय महाप्रेतपद्मासनाय नमः।

मन्त्र से प्रेतासन का न्यास/अर्चन करके षडासन मन्त्रों से अर्चन करें; यथा—

अं आं सौः त्रिपुरा सुधार्णवासनाय नमः। ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी पोताम्बुजासनाय नमः। ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी देव्यासनाय नमः। हैं हक्लीं सौः त्रिपुरवासिनी

सर्वचक्रासनाय नमः। हसैं हस्कलीं ह्सौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः। ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनी साध्यसिद्धासनाय नमः।

तस्योपरि यजेन्मन्त्री प्रसूनतूलिकामपि।
कामेश्वरं तथा कामेश्वरीमूर्त्ति समर्चयेत्।।११३।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ सप्तदशः प्रकाशः।।१७।।

षडासन पर प्रसूनतूलिका का न्यास करके साधक उस पर कामेश्वर और कामेश्वरी का अर्चन करे। यथा—ऐं ह्रीं श्रीं प्रसूनतूलिकायै नमः। उस पर ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरकामेश्वरीभ्यां नमः।

विमर्श—पीठदेवताओं के न्यास और अर्चन का उपर्युक्त क्रम अन्य तन्त्र-ग्रन्थों में दिये गये क्रम से कुछ भिन्न है। यथा—

पूर्वाम्नाय आदि द्वारपूजाओं (श्लोकसंख्या १००) के बाद अन्य ग्रन्थों में बताया गया क्रम है—महामणिवेदिकायै नमः। रत्नसिंहासनाय नमः। श्वेतछत्राय नमः।

तत्पश्चात् सिंहासन के पायों के रूप में अग्निकोण से प्रारम्भ कर धर्म आदि की तथा पूर्व से प्रारम्भ कर अधर्म आदि की पूजा के बाद—

मायायै नमः। विद्यायै नमः। अनन्ताय नमः। आनन्दाय नमः। कन्दाय नमः। संविन्नालाय नमः। महापद्माय नमः। प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। विकृतिमयकेशरेभ्यो नमः। पञ्चाशत् वर्णबीजाढ्य सर्वतत्त्वात्मिका कर्णिकायै नमः। फिर कर्णिका में—अं अर्कमण्डलाय नमः। उं सोममण्डलाय नमः। मं वह्निमण्डलाय नमः। (इन तीनों मण्डलों पर) सं सत्वाय नमः। रं रजसे नमः। तं तमसे नमः। (इनके ऊपर) आं आत्मने नमः। अं अन्तरात्मने नमः। पं परमात्मने नमः। ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। (आत्मचतुष्टय के बाद) ज्ञानतत्त्वात्मने नमः। मायातत्त्वात्मने नमः। कलातत्त्वात्मने नमः।

इस योगपीठ पर केसरों में प्रदक्षिणाक्रम से दूतरी आदि पीठशक्तियों के न्यास-अर्चन का निम्नलिखित विधान मिलता है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में नहीं है—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दूतरी अम्बायै नमः। ४ सुन्दरी अम्बायै नमः। ४ सुमुखी अम्बायै नमः। ४ सुरूपा अम्बायै नमः। ४ विमलाम्बायै नमः। ४ अन्तरी अम्बायै नमः। ४ यदरी अम्बायै नमः। ४ पुरन्दरी अम्बायै नमः। (मध्य में) ४ पुष्पमर्दिनी अम्बायै नमः। (४ का अर्थ है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं)।

पीठशक्तियों के बाद चतुर्दल महापद्म की कर्णिका में षट्कोण-गर्भित चतुरस्र की भावना करके कमल के चारो दलों और मध्य में ब्रह्मा आदि प्रेतासनों की तथा

षट्कोण में प्रदक्षिणा क्रम से सुधार्णवासन आदि षडासनों तथा चतुरस्र के ईशान आदि कोणों में 'कामगिरि एवं मित्रेशनाथ' आदि पीठचतुष्टय तथा नाथचतुष्टय की न्यासपूर्वक पूजा का विधान मिलता है।

पीठपूजा के क्रम में किसी अन्य ग्रन्थ में गणेश और वटुक की पूजा का विधान नहीं मिलता।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के सत्तरहवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१७।।

●

अष्टादशः प्रकाशः

[सामान्यार्घ्यस्थापनादिविसर्जनान्तसपर्याक्रमः]

पिछले प्रकाश में अन्तर्याग और श्रीचक्र-अंकन की विधि तथा चक्र-संकेत का निरूपण करने के बाद इस प्रकाश में बहिर्याग की विधि का निरूपण किया जा रहा है। पिछले प्रकाश में पीठ-पूजन का जो विधान बताया गया है, वह अन्तर्याग और बहिर्याग की मध्यवर्ती कड़ी है। बहिर्याग के क्रम में सर्वप्रथम सामान्य अर्घ्य की स्थापना की जाती है। तमिल ग्रन्थ 'श्रीविद्या सपर्या वासना' के अनुसार जल ज्ञान का प्रतीक है। सामान्य अर्घ्य देवता के सामान्य ज्ञान और विशेष अर्घ्य देवता के विशिष्ट ज्ञान का परिचायक है।

[सामान्यार्घ्यस्थापनम् (तत्र मण्डलम्)]

विधाय वामभागे तु त्रिकोणवृत्तभूपुरम्।
अथवा चतुरस्रन्तु जलेन परिकल्पयेत्।।१।।
चतुरस्रन्तु तत् कुर्यात्त्रिकोणद्वयसंयुतम्।

एवं पूर्वप्रकाशे चक्रसङ्केतमभिधाय पूजासङ्केतमभिदधानः प्रथमं सामान्यार्घ्यस्थापनपरिपाटीमाह—**विधायेत्यादिना। त्रिकोणेति।** आदौ त्रिकोणं तद्बहिर्मूलं तद्बहिर्भूपुरं चतुरस्रमित्यर्थः। अत्र त्रिकोणमधोमुखं कार्यं शक्तिविषयत्वात्। तदुक्तं **तारारहस्यधृतरुद्रयामले**—

यत्र यत्र महाविद्या शक्तिविद्या उपासिता।
तत्र तत्र त्रिकोणञ्च अधोमुखमुदीरितम्।
देवत्रिकोणे कर्तव्ये ऊद्र्ध्वं तत् परिकीर्तितम्। इति।

कल्पान्तरमाह—अथवेति। जलेन चतुरस्रं परिकल्प्य तदन्तस्त्रिकोणद्वयं **कुर्यादित्यर्थः।**

सामान्य अर्घ्य की स्थापना के लिये अपने बाँयीं ओर भूमि पर जल से मण्डल बनाया जाता है। इस मण्डल के दो रूप हैं। प्रथम है—त्रिकोण-गर्भित वृत्त तथा भूपुर। दूसरा है, चतुरस्र के गर्भ में दो त्रिकोण। पहिले प्रकार के मण्डल में त्रिकोण अधोमुख होता है तथा दूसरे प्रकार के मण्डल में एक अधोमुख और दूसरा ऊर्ध्वमुख त्रिकोण (षट्कोण) होता है।।१।।

[शङ्खाधारस्थापनम्]

आधारं तत्र संस्थाप्य पूजयेद् वह्निमण्डलम्।।२।।
आधारेण विना पूजा निष्फला परिकीर्त्तिता।

मण्डल पर आधार स्थापित करके उस पर वह्निमण्डल की पूजा करें। आधार की स्थापना अनिवार्य है; क्योंकि इसके विना सम्पूर्ण पूजन-कार्य निष्फल हो जाता है।।२।।

[आधारभेदाः]

आधारं विविधञ्चैव षट्पदं वा चतुष्पदम्।।३।।
अथवा वर्त्तुलाकारं त्रिकोणं वा समाचरेत्।
सुवर्णरूप्यरचितं त्रिपदं वाऽपि पूजयेत्।।४।।

आधार-पात्र अनेक प्रकार के होते हैं। त्रिपाद, चतुष्पाद, षट्पाद अथवा वृत्ताकार। इनमें से किसी भी आकार का अथवा सोना या चाँदी का बना हुआ त्रिपाद पात्र स्थापित करके पूजन करना चाहिए।।३-४।।

विमर्श—आधार के अभाव में वेलपत्र रखकर उसमें आधार की भावना की जाती है।

[मन्त्रोपदेशः]

बीजोक्तौ तदनुक्तौ वा मायाश्रीपूर्वमर्चनम्।
मन्त्रानुक्तौ नाममन्त्रं सर्वत्रैवोपयोजयेत्।।५।।

त्रिपदं वाऽपि पूजयेदित्युक्तं तत्पूजामन्त्रं निर्दिशति—**बीजोक्ताविति**। मायाबीजं ह्रीं, श्रीबीजं श्रीं। तथाच ह्रीं श्रीं मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्राधाराय नम इति प्रयोगः। तन्त्रसारकारस्तु निरुक्तमायाबीजात् पूर्वं वाग्भवबीजस्यापि योजनया त्रितारीप्रयोगमुपदिदेश। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु मूल मन्त्रानन्तरं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-सामान्यार्घ्याधारमण्डलाय नम इति मण्डलं सम्पूज्य ॐ दशकलात्मनेऽग्निमण्डलाय श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसामान्यार्घ्याधाराय नम इत्यर्घ्याधारपूजाक्रम उक्तः, तत्र माया-श्रीबीजयोरुल्लेखो न दृश्यते। **मन्त्रानुक्ताविति**। नाममन्त्रं तत्तद्देवतानामरूपं मन्त्रमित्यर्थः। अत्र विशिष्यानुक्तावपि नाम्नः प्रणवपूर्वकत्वमवगन्तव्यम्। व्यक्तमाह दुर्गापूजातत्त्वधृतयोगियाज्ञवल्क्य-ब्रह्मपुराणयोः—

ध्यात्वा प्रणवपूर्वन्तु दैवतन्तु समाहितः।
नमस्कारेण पुष्पादि विन्यसेत्तु पृथक्-पृथक्।।

तथा— ॐकारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्तितम्।
स्वनाम सर्वदेवानां मन्त्र इत्यभिधीयते।। इति।

बीजाक्षर के पहिले माया (ह्रीं) तथा श्री (श्रीं) की योजना करके मण्डल का पूजन किया जाय।।५।।

विमर्श—तन्त्रसार के अनुसार बीजाक्षर के पहिले 'ऐं ह्रीं श्रीं' अथवा 'त्रिपुरार्चनरहस्य' के अनुसार प्रणव (ॐ) की योजना करके मण्डल का पूजन किया जा सकता है। मन्त्रस्वरूप—'ह्रीं श्रीं मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्राधाराय नमः'।

[पादुकामन्त्रप्रयोगः]

श्रीपादुकाख्यमन्त्रन्तु दद्यादन्ते यथाक्रमम्।।६।।

श्रीपादुकेति। प्रथमं देवतानाम ततः श्रीपादुकां पूजयामि नम इति पादुकामन्त्रः।

देवता के नाम के बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' की योजना करने से देवता का पादुका-पूजन मन्त्र बनता है।।६।।

[वह्नेर्दशकलाः]

धूम्रा च नीलवर्णा च कपिला विस्फुलिङ्गिनी।
ज्वाला हैमवती कव्यवाहिनी हव्यवाहिनी।
रौद्री सङ्कर्षिणी वह्नेरेताः कलाः परा यथा।।७।।

एवमाधारं तत्रेत्यादिना वह्निमण्डलपूजामुपदिश्य तत्रैव वह्निकलार्चामुपदिशति—**धूम्रा चेत्यादिना।** योगिनीहृदयटीकाधृतस्वच्छन्दसंग्रहेऽपि—

षट्कोणान्तस्त्रिकोणे तु वह्निबिम्बं कलायुतम्।
आवाह्याऽऽधारतो देवि पूजयेन्मन्त्रवित्तमः।।

इत्युक्तम्। यद्यप्यत्र वचने षट्कोणान्तस्त्रिकोण इत्यनेन विशेषार्घ्यस्थापन एव वह्न्यादिकलानामर्चनमुपदिष्टं न तु सामान्यार्घ्यस्थापनावसरे, त्रिपुरार्चनरहस्य-कौलावलीनिर्णय-तन्त्रसारादिष्वपि तथैव दृश्यते, तथाऽपि मूले तद्वैपरीत्येन सामान्यार्घ्यस्थापन एव वह्न्यादिकलापूजनोपदेशात् विशेषार्घ्ये तदनभिधानाच्चाऽऽगमान्तरसम्मतोऽयं क्रमो मूलकृद्भिः परमहंसपादैः परिगृहीत इति प्रतिभाति। **धूम्रेति।** **धूम्रादिसङ्कर्षिण्यन्ता वह्नेर्दश कला इत्यर्थः।**

(१) धूम्रा, (२) नीलवर्णा, (३) कपिला, (४) विस्फुलिङ्गिनी, (५) ज्वाला, (६) हैमवती, (७) कव्यवाहिनी, (८) हव्यवाहिनी, (९) रौद्री तथा (१०) संकर्षिणी—ये अग्नि की दस कलायें हैं।।७।।

[तत्र कल्पान्तरम्]

धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे तथा।
आभिर्वा पूजयेद् वह्निं यादिक्षान्तादिभिः क्रमात्।।८।।

कल्पान्तरमाह—धूम्रार्चिरिति। तथा चैतत्कल्पे धूम्रार्चिराद्याः कव्यवहान्ता दश **कला इत्यर्थः।** अत्र तन्त्रसारादिषु नाम्नां क्रमभेदः स्वरूपभेदश्च दृश्येते। **आभिर्वेति।**

वाशब्दः कल्पान्तरबोधकः। आभिर्धूम्रादिभिः धूम्रार्चिरादिभिर्वेति सम्बन्धः। अभिरिति विशेषयति—**यादिक्षान्तादिभिरिति**। यकारादिक्षकारान्तदशवर्णानामेकैकमादौ नियोज्य नमोऽन्तेन पूजयेदित्यर्थः। अत्र यकारादिवर्णाः सबिन्दुका ग्राह्याः। तथाच कौलावली-निर्णये षष्ठोल्लासे धूम्रार्चिरित्याद्यभिधाय—

यादिसेन्दुक्षकारान्ता अब्जाद्या परिकीर्तिताः।
ङे-युता वै नमोऽन्ताश्च कला वह्नेरितीरिताः।।

इत्यनेनानुस्वारयुक्तत्वं यकारादीनामुक्तम्, अब्जाद्या इत्यनेन श्रीबीजपूर्वकत्वमप्युक्तम्, एतेनैतन्मते श्रीं यं धूम्रायै नम इति प्रयोगक्रमः पर्यवस्यति। मूलकृन्मते तु 'बीजोक्तौ तदनुक्तौ वा मायाश्रीपूर्वमर्चनम्' इति प्रागुक्तवचनानुसारेण ह्रीं श्रीं यं धूम्रायै नम इत्यादिरूपः प्रयोग इति प्रतिभाति। तन्त्रसारकृता तु यादीनां पूर्वं त्रितारीप्रयोग उक्तः। योगिनीहृदयटीकाधृतस्वच्छन्दसंग्रहेऽपि—

यादिक्षान्तात्मवर्णानि कला वह्नेर्महेश्वरि।
एताः कलाः समभ्यर्च्य स्वस्ववर्णैर्यथाविधि।।
स्वबीजाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नाममध्या नमोऽन्तिकाः।
प्रोक्ता वह्निकला मन्त्रनामानि शृणु साम्प्रतम्।।
धूम्रार्चिर्नीलरक्ता च कपिला विस्फुलिङ्गिनी।
ज्वालामालिन्यर्चिष्मती तदूर्ध्वं हव्यवाहिनी।
अष्टमी कव्यवाहा च रौद्री संवाहिनी तथा।।

इति वचने स्वबीजाद्या इत्यनेन श्रीबीजाद्यं वा मायाश्रीबीजाद्यं वा वाग्भव-माया-श्रीबीजरूपत्रितारीपूर्वकस्य वाऽभिप्रेतमिति संक्षेपः।

कल्पान्तर से अग्नि की दस कलाओं के नाम हैं—(१) धूम्रार्चि, (२) ऊष्मा, (३) ज्वलिनी, (४) ज्वालिनी, (५) विस्फुलिंगिनी, (६) सुश्री, (७) सुरूपा, (८) कपिला, (९) हव्यवहा और (१०) कव्यवहा। 'य'कार से 'स'कार-पर्यन्त १० (दस) वर्ण हैं; यशा—'य र ल व श ष स ह ळ क्ष'। इनमें से एक-एक वर्ण को यथाक्रम अग्नि-कलाओं के नाम के आगे जोड़कर उनकी (अग्निकलाओं की) पूजा की जाय।।८।।

[कलानामासां स्वरूपम्]

तरुणारुणसङ्काशा वराभयकरा इमाः।

निरुक्तानां वह्निकलानां स्वरूपमाह—**तरुणेति**। नवोदितसूर्यसवर्णाः। वराभयकराः एकेन करेण वरमपरेण वाभयं दधत्य इत्यर्थः।

अग्नि की इन सभी कलाओं का वर्ण नवोदित सूर्य की तरह अरुण है। इनके एक हाथ में वर तथा दूसरे हाथ में अभय मुद्रा है।

[तत्र सकल-वह्निमण्डलार्चाक्रमः]

उदरार्णः वाग्भवं वा दत्त्वा तन्मण्डलं यजेत्।।९।।

पूर्वं 'पूजयेद् वह्निमण्डलम्' इत्युक्तम्, तद्वह्निमण्डलपूजाक्रममुपदिशति—**उदरार्णमित्यादिना**। उदरार्णं मं वाग्भवं ऐँ इति बीजं वा दत्त्वा तन्मण्डलं वह्निमण्डलं यजेदित्यर्थः। एवञ्च निरुक्तयोर्बीजयोरन्यतरदुच्चार्य वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्य-पात्राधाराय नमः इत्यनेन पूजयेदिति बोध्यम्। व्यक्तमाह कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा सम्पूज्य तेन वर्त्मना।
आदौ सेन्दुं महाकालं वह्निमण्डलं ङेयुतम्।
हृदन्तं मन्त्रमुच्चार्य आधारे पूजयेत्ततः। इति।

महाकालं मकारम्। तत्रापि ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

वह्निं तत्र विचिन्त्याथ पूजयेद् यन्त्रिकामयम्।

इत्यभिधानाद् अर्घ्यपात्राधाराय नम इत्याधारपात्रपदोल्लेखः कार्यः। त्रिपुरार्चन-रहस्यादिप्रामाणिकपूजाप्रयोगेष्वपि तथैव दृश्यते।

अग्नि की इन सभी कलाओं का समष्टि रूप से यथोक्त ध्यान करके उनके नाममन्त्रों से उनमें से प्रत्येक कला की पूजा करने के बाद 'मं' अथवा 'ऐं' लगाकर समग्र मण्डल का पूजन करें। यथा—

(१) यं धूम्रार्च्यै नमः।

(२) मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्राधाराय नमः।

[सकलसूर्यमण्डलार्चा]

पात्रं निधाय तत्रैव कलाभिः सूर्यमर्चयेत्।

अथ सकलसूर्यमण्डलपूजनमुपदिशति—पात्रमित्यादिना। तत्रैवेति प्रागुक्त-षट्पदाद्यन्यतमाधारे इत्यर्थः। व्यक्तमाह कौलावलीनिर्णये षष्ठोल्लासे—

एषामन्यतमं पात्रं स्थापयेत्त्रिपदोपरि। इति।

अत्रापि पूर्ववन्मण्डलमालिख्य सम्पूज्य च सूर्यमण्डलमर्चयेदिति ज्ञेयम्। तथा **चोक्तं तत्रैव विशेषार्घ्यप्रकरणे—**

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा पूजयेत् पूर्ववर्त्मना।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चिन्तयित्वाऽथ पूजयेत्।। इति।

उक्त आधार पर अर्घ्यपात्र रखकर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करें। सूर्यकलाओं के नाम अगले श्लोकों में बताये गये हैं।

[द्वादश सौरकलाः]

तपिनी तापिनी चान्या विबुधा बोधिनी तथा।।१०।।
कलिनी षोडशी चैव वारुण्याकर्षिणी तथा।
माया विश्वावती हेम(१)प्रभा एताः कला रवेः।।११।।

द्वादश सूर्यकला निरूपयति—**तपिनीत्यादिना**। तपिन्याद्याः प्रभान्ता रवेर्द्वादश कलाः।

(१) तपिनी, (२) तापिनी, (३) विबुधा, (४) बोधिनी, (५) कलिनी, (६) षोडशी, (७) वारुणी, (८) आकर्षिणी, (९) माया, (१०) विश्वावती, (११) हेमा और (१२) प्रभा—सूर्य की ये बारह कलायें हैं॥१०-११॥

[तत्र प्रकारान्तरम्]

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा।
यजेदाभिः कलाभिर्वा तत्तन्मन्त्रेण साधकः॥१२॥

कल्पान्तरमाह—**तपिनीत्यादिना**। कल्पेऽस्मिंस्तपिन्याद्याः क्षमान्ता द्वादश सूर्यकलाः। कौलावलीनिर्णये षष्ठप्रकाशेऽयमेव क्रमः परिगृहीतो दृश्यते। **यजेदिति**। तपिन्यादिप्रभान्ताभिः तपिन्यादिक्षमान्ताभिर्वा यजेदित्यर्थः। **तत्तन्मन्त्रेणेति**। पूर्ववन्मायाश्रीबीजादिपूर्वकमन्त्रेणेत्यर्थः।

कल्पान्तर से सूर्य की कलाओं के नाम हैं—(१) तपिनी, (२) तापिनी, (३) धूम्रा, (४) मरीचि, (५) ज्वालिनी, (६) रुचि, (७) सुषुम्णा, (८) भोगदा, (९) विश्वा, (१०) बोधिनी, (११) धारिणी और (१२) क्षमा।

इनमें से किसी भी कल्प के अनुसार सूर्य-कलाओं की उनके नाममन्त्रों से पूजा करनी चाहिये॥१२॥

[कलार्चाक्रमः]

कादि-ठान्तान् बिन्दुयुतान् भादि-डान्तान् सबिन्दुकान्।
अन्योऽन्यक्रमयोगेण कलादौ योजयेत् क्रमात्॥१३॥

तत्राऽऽदौ वर्णयोजनमाह—**कादीत्यादिना**। कादि-ठान्तान् ककारादि-ठकारान्तान् तथा भादि-डान्तान् भकारादि-डकारान्तान विलोमपरिपठितान्, बिन्दुयुक्तान् निरुक्तानां द्वादशकलानामादौ योजयेदित्यर्थः। एवञ्च प्रागुक्तक्रमेण बीजमुच्चार्य कं भं तपिन्यै नमः, कं मं तापिन्यै नम इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः पर्यवस्यति। व्यक्तमाह योगिनीहृदयटीकाधृतस्वच्छन्दसंग्रहे—

अस्त्रप्रक्षालितं शङ्खं स्थापयित्वा तथोपरि।
हृदयात् सूर्यबिम्बञ्च समावाह्य स्वमन्त्रतः॥
कादि-ठान्तं भादि-डान्तं वर्णजातं क्रमोत्क्रमात्।
द्वयं द्वयं प्रयोक्तव्यं कलाश्च तदनन्तरम्॥ इति।

अत्रापि कौलावलीनिर्णय-योगिनीहृदयादिषु पूर्ववत् कलानां नामभेदः स्वरूपभेदश्च दृश्येते।

'क'कार से 'भ'कार-पर्यन्त २४ व्यञ्जन वर्ण हैं। इन्हें १२-१२ वर्णों के दो समूहों में विभक्त कर लें। प्रथम समूह के सबिन्दु एक वर्ण के साथ दूसरे समूह के एक सबिन्दु अक्षर को विपरीत क्रम से जोड़ते हुए १२ वर्णयुग्म बनायें। यथा—कं भं, खं-बं आदि। अब इनमें से एक-एक वर्णयुग्म को सूर्यकलाओं के चतुर्थ्यन्त नाम के साथ जोड़कर पूजन मन्त्र बना लें। यथा—'कं भं तपिन्यै नमः। खं बं तापिन्यै नमः' आदि। मन्त्र के आदि में पूर्ववत् 'ह्रीं श्रीं' भी लगायें। यथा—ह्रीं श्रीं कं भं तपिन्यै नमः।

[कलानां स्वरूपम्]

वराभयकराः सर्वा अतसीपुष्पसोदराः।

कलानामासां स्वरूपमाह—**वराभयेति**। सर्वा एव एकेन हस्तेन वरमपरेण वाभयं दधत्यः। **अतसीपुष्पसोदराः** अतसीपुष्पसवर्णाः।

सूर्य-कलाओं का रंग अलसी के फूल के समान है। इनके एक हाथ में वर तथा दूसरे हाथ में अभय मुद्रा है।

[सौरमण्डलार्चाक्रमः]

ललाटं कामबीजं वा संयोज्य मण्डलं रवेः।।१४।।

पूर्वं कलाभिः सूर्यमर्चयेदित्युक्तम्, तत्क्रममुपदिशति—**ललाटमिति**। ललाटम् अं, कामवीजं क्लीं। बीजयोरेतयोरन्यतरमादौ संयोज्य रवेर्मण्डलं पूजयेदित्यर्थः। पूजाक्रममाह कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

मण्डलं पूर्ववत् कृत्वा पूजयेत् पूर्ववर्त्मना।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चिन्तयित्वाऽथ पूजयेत्।
स्वराद्यं बिन्दुसहितमर्कमण्डलं ङेयुतम्।
नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य पूजयित्वाऽर्घ्यपात्रकम्।
कलाः सम्पूजयेत्तत्र भानोर्द्वादशसंज्ञकाः। इति।

एवञ्च ललाटकामबीजयोरन्यतरमुच्चार्य अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नम इति प्रयोगः।

कलाओं का पूजन करने के बाद समग्र भाग में सूर्यमण्डल का पूजन करें। मन्त्र के आदि में ललाट (अं) अथवा कामबीज (क्लीं) की योजना करें। यथा—अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नमः।

[अर्घ्यपात्रापूरणं सोमकलार्चोपदेशश्च]

तीर्थोदकेन शुद्धेन पूरयेन्मूलमुच्चरन्।
प्रणवेन गन्धपुष्पे दत्त्वा सोमकलार्चनम्।।१५।।

अथार्घ्यपात्रस्याऽऽपूरणादिकमाह—**तीर्थेत्यादिना**। पूरयेत् अर्घ्यपात्रमिति शेषः। मूलमुच्चरन्नित्यन्तर्भूतण्यर्थः उच्चारयन्नित्यर्थः। ततस्तत्र प्रणवेन गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य सोमकलार्चनं सोममण्डलार्चनं कुर्यादित्यर्थः। तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे—

एलालवङ्गकक्कोलजातीफलसुसंयुतान् ।
सुगन्धिकुसुमैर्द्रव्यैः सह तस्मिञ्जले क्षिपेत्।
नवयोनिं समालिख्य पूर्ववज्जलमध्यतः।
निशुद्धितः समावाह्य चन्द्रमण्डलमर्चयेत्।। इति।

मूल मन्त्र का जप करते हुए अर्घ्यपात्र को तीर्थजल से भरें। जल में प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए गन्ध-पुष्प डालकर उसमें चन्द्रकलाओं का पूजन करें।।१५।।

विमर्श—पद्धतिग्रन्थों के अनुसार 'अंकुश' मुद्रा बनाकर सूर्यमण्डल से गंगा आदि सरित् तीर्थों का अर्घ्यपात्र के जल में आवाहन किया जाता है। आवाहन मन्त्र है—

ॐ।। गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

[षोडश सोमकलाः]

अमृता मानसी तुष्टिः पुष्टिः प्रीती रतिस्तथा।
श्रीश्च ह्रीश्च स्वधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा।।१६।।
छायाऽन्या पूर्णिमा विद्या अमावास्या च षोडशी।
आभिर्वा पूजयेत् सोमं पराभिर्वा यथाक्रमात्।।१७।।

अथ षोडश सोमकलास्तत्पूजनञ्चोपदिशति—**अमृतेत्यादिना**। अमृताद्या अमावास्यान्ताः षोडश कलाः। आभिर्निरुक्ताभिः कलाभिः। कल्पान्तरमवतारयति—**पराभिर्वेति**। वक्ष्यमाणाभिर्वेत्यर्थः।

चन्द्रमा की १६ कलायें हैं—(१) अमृता, (२) मानसी, (३) तुष्टि, (४) पुष्टि, (५) प्रीति, (६) रति, (७) श्री, (८) ह्री, (९) स्वधा, (१०) रात्रि, (११) ज्योत्स्ना, (१२) हैमवती, (१३) छाया, (१४) पूर्णिमा, (१५) विद्या तथा (१६) अमावस्या।

चन्द्रमा की इन सोलह कलाओं का पूजन उनके नाम-मन्त्रों से करना चाहिए। एक अन्य कल्प के अनुसार चन्द्र-कलाओं के नाम हैं।।१६-१७।।

[तत्र प्रकारान्तरम्]

अमृता-मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा।।१८।।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरगाः कलाः।

ता एवाऽऽह—**अमृतेति**। कल्पेऽस्मिन् अमृतायाः पूर्णामृतान्ताः कामदायिन्यः वाञ्छितार्थप्रदाः षोडश कलाः, एताः पूजयेदित्यर्थः। अयमेव कल्पः समानानुपूर्वीकवचनेन प्रतिपादितः कौलावलीनिर्णये। स्वरगाः अकारादि-षोडशस्वरगताः कला इत्यर्थः। अत्र स्वरजाः कला इत्युक्तं कौलावलीनिर्णये। एवञ्चाकारादिषोडशस्वराणामेकैकमादौ नियोज्य एकैकमर्चयेदिति बोध्यम्। व्यक्तमाह योगिनीहृदयटीकाधृतस्वच्छन्दसंग्रहे—

आदिकाद्यन्तिकाः सौम्याः कलाः षोडश कीर्त्तिताः। इति।

बीजयोगश्च पूर्ववत्। एवञ्च पूर्ववद् बीजमुच्चार्य अं अमृतायै नमः। आं मानदायै नम इत्यादिरूपः प्रयोगक्रमः पर्यवस्यति।

(१) अमृता, (२) मानदा, (३) पूषा, (४) तुष्टि, (५) पुष्टी, (६) रति, (७) धृति, (८) शशिनी, (९) चन्द्रिका, (१०) कान्ति, (११) ज्योत्स्ना, (१२) श्री, (१३) प्रीति, (१४) अंगदा, (१५) पूर्णा और (१६) पूर्णामृता।

चन्द्रमा की इन कामदायिनी कलाओं का पूजन उनके चतुर्थ्यन्त नाम के आगे एक-एक स्वर की योजना करके करनी चाहिए।।१८।।

[सोमकलानां स्वरूपमर्चाक्रमश्च]

तरुणारुणसङ्काशा वराभयकराः स्मृताः।।१९।।
पश्चिमादिक्रमेणापि कलाः सर्वाः प्रपूजयेत्।

[सोममण्डलार्चा]

शक्त्यर्णं दक्षकर्णं वा नियोज्य मण्डलं विधोः।।२०।।

कलानामासां स्वरूपमाह—**तरुणेति**। स्पष्टम्। पश्चिमादिक्रमेण वृत्ताकारेण पूजयेत्। तन्त्रसारेऽप्येवमेव।

अथ चन्द्रमण्डलपूजाक्रममाह—**शक्त्यर्णमिति**। शक्त्यर्णं सौः इति, दक्षकर्णम् उं। बीजयोगः पूर्ववत्। एवञ्च निरुक्तबीजमुच्चार्य उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यपात्रामृताय नम इति प्रयोगः।

चन्द्रकलाओं का वर्ण तरुण अरुण के समान है। उनके एक हाथ में वर और दूसरे हाथ में अभय मुद्रा है। पश्चिम आदि क्रम से चन्द्रकलाओं का पूजन करके समग्र चन्द्रमण्डल का पूजन करें। पूजन-मन्त्र के आदि (प्रारम्भ) में शक्तिबीज (सौः) अथवा दक्षकर्ण (उं) की योजना की जाय। यथा—'सौः (उं) चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यपात्र अमृताय नमः'।

[आनन्दभैरवयोः पूजनम्]

आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीमपि।

अथाऽऽनन्दभैरवानन्दभैरव्योस्तत्र पूजामुपदिशति—**आनन्देत्यादिना**। आदावानन्दभैरवं तत आनन्दभैरवीं, प्रपूजयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः।

चन्द्रमण्डल का पूजन करने के बाद सामान्य-अर्घ्य में आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का पूजन करें।

विमर्श—प्रस्तुत ग्रन्थ में आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का ध्यान नहीं बताया गया है। गन्धर्वतन्त्र (त्रयोदश पटल) के अनुसार इनका ध्यान है—

आनन्दभैरव का ध्यान—

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोट्ययुतप्रभम्।
तथा दशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।।
खड्गखट्वाङ्गपट्टीशमुद्गरं शूलकुन्तकम्।
विभ्रतं खेटकं शक्तिं वरदाभयपाणिनम्।।

आनन्दभैरवी का ध्यान—

तस्योत्सङ्गे सुरां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम्।
हिमकुन्देन्दुधवलां पूर्वायुधकरोद्यताम्।।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम्।

आनन्दभैरव का ध्यान करके उनके पूजन मन्त्र से आनन्दभैरव का और आनन्दभैरवी का ध्यान करके उनके पूजन यन्त्र से देवी आनन्दभैरवी का पूजन करें। पूजन मन्त्रों का उद्धार निम्न श्लोकों में बताया गया है।

[आनन्दभैरवमन्त्रः]

शिवसोमौ मातृकान्तं कालभूवरुणानलम्।।२१।।
वामकर्णसमायुक्तं वायुमर्धेन्दुमण्डितम्।
आनन्दभैरवायेति शिखामन्त्रं ततो वदेत्।।२२।।
आनन्दभैरवः सोम(?) आनन्दभैरवीं शृणु।

तत्राऽऽनन्दभैरवमन्त्रमाह—**शिवेत्यादिना**। शिवो हकारः, सोमश्चन्द्रबीजं सकारः, मातृकान्तं क्षकारः, कालो मकारः, भूः पृथ्वीबीजं लकारः, वरुणबीजं वकारः, अनलं वह्निबीजं रकारः, वायुबीजं यकारः, तच्च वायुबीजं वामकर्णेन षष्ठस्वरेण समायुक्तं तथा अर्धेन्दुना अनुस्वारेण मण्डितम्। एवञ्च ह स क्ष म ल व र यूं इति प्राप्तम्। तत आनन्दभैरवायेति। ततश्च शिखामन्त्रं वषट् इति। एवञ्च ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषडित्यानन्दभैरवमन्त्रः पर्यवस्यति।

आनन्दभैरवमन्त्रमुपसंहरति—**आनन्देति**। अत्र 'सोम' इति प्रामादिकः पाठः, 'प्रोक्त' इत्येव समीचीन इति प्रतिभाति।

अथाऽऽनन्दभैरवीमन्त्रमाह—**आनन्दभैरवीमित्यादिना**। पूर्ववदानन्दभैरवक्रमेण हकारादिवर्णाष्टकमालिख्येत्यर्थः। चन्द्रं हित्वा द्वितीयवर्णं सकारं उल्लङ्घ्य आदिमं हकारं नयेत् द्वितीयाक्षरात् सकारात् परतः प्रयुञ्जीतेत्यर्थः, अनेन ह स इत्यत्र स ह इति प्राप्तम्। तथा कर्णे निरुक्तमन्त्रस्थवामकर्णस्थाने वामाक्षि चतुर्थस्वरं संयोज्य। अनेन यूं इत्यत्र यीं

इति प्राप्तम्। ततः सुधादेव्यै इति। ततश्च दृशोर्मनुं वौषडिति पदं योजयेदिति शेषः। एवञ्च **सहक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषडित्यानन्दभैरवीमन्त्रः पर्यवस्यति।**

आनन्दभैरव मन्त्र—शिव (ह), सोम (स), मातृकान्त (क्ष), काल (म), भू (ल), वरुण (व), अनल (र) तथा अर्धेन्दुमण्डित वामकर्ण (ऊं) से युक्त वायुबीज (य) अर्थात् (यूं) की क्रमशः योजना करने से आनन्दभैरव का बीज निष्पन्न हुआ—'हसक्षमलवरयूं'। इसके बाद—'आनन्दभैरवाय' के बाद शिखामन्त्र 'वषट्' की योजना करें। मन्त्रस्वरूप प्राप्त हुआ—हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्।

अब इसके बाद देवी आनन्दभैरवी का मन्त्र सुनो।

[आनन्दभैरवीमन्त्रः]

पूर्ववद् वर्णमालिख्य चन्द्रं हित्वादिमं नयेत्।।२३।।
कर्णे वामाक्षि संयोज्य सुधादेव्यै मनुं दृशोः।

आनन्दभैरवी का मन्त्र—आनन्दभैरव के उपर्युक्त बीजाक्षरों में चन्द्र (स) को 'ह'कार के पूर्व स्थापित करें। अन्तिम वर्ण 'यूं' में से 'ऊं' को हटाकर 'य्' के साथ 'ईं' की योजना करें। आनन्दभैरवी का 'बीज' प्राप्त हुआ—'सहक्षमलवरयीं'। इसके आगे 'सुधादेव्यै' के बाद नेत्र-मन्त्र 'वौषट्' की योजना करें। भगवती आनन्दभैरवी का मन्त्रस्वरूप हुआ—सहक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वौषट्।।२३।।

[अर्घ्ये जपक्रमः]

अस्योपरि जपेन्मूलं तारं वा सप्तधा बुधः।।२४।।

अस्येति। अस्य सामान्यार्घ्यस्योपरि मूल मन्त्रं तारं प्रणवं वा सप्तधा जपेदित्यर्थः।

आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का ध्यान करके उनके मन्त्रों से सामान्य अर्घ्य में गन्ध-पुष्प आदि से उनका पूजन करके उस पर सात बार प्रणव (ॐ) अथवा मूल मन्त्र का जप करे।।२४।।

[उपसंहारः]

सामान्यार्घ्यमिदं प्रोक्तं विशेषार्घ्यमथोच्यते।।२५।।

सामान्यार्घ्यमुपसंहरति—सामान्येति। एवं सामान्यार्घ्यपरिपाटीमभिधाय विशेषार्घ्यस्थापनप्रक्रियामभिधत्ते—विशेषार्घ्यमित्यादिना।

सामान्य अर्घ्य-स्थापना की विधि का निरूपण करने के बाद अब विशेषार्घ्य स्थापित करने की विधि बताई जा रही है।।२५।।

[श्रीपात्रकल्पना]

गृहीत्वाज्ञां महादेव्याः श्रीपात्रं परिकल्पयेत्।

विशेष अर्घ्य की स्थापना के लिये के पहिले भगवती त्रिपुरा से एतदर्थ अनुमति माँगें।

[मण्डलनिर्माणम्]

आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये मण्डलं रचयेद् यथा।।२६।।
ईकारेणान्वितं त्र्यस्त्रं षडस्त्रं वृत्तभूपुरे।
त्र्यस्त्रबाह्येऽथवा वृत्तं तदभ्युक्षेत्तदम्बुना।।२७।।

अथ पात्रस्थापनयोग्यमण्डलनिर्माणस्थानमुपदिशति—**आत्मेति**। आत्मश्री-चक्रयोर्मध्ये आत्मनः श्रीचक्ररूपाया देवतायाश्च मध्यवर्त्तिन्यां भूमौ मण्डलं वक्ष्यमाणक्रमेण रचयेदित्यर्थः। तदुक्तं कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

आत्मदेवीद्वयोर्मध्ये भूमौ चक्रं लिखेत्ततः। इति।

मण्डलरचनापरिपाटीमाह—**ईकारेणेति**। ईकारेणान्वितमीकारगर्भं त्रिकोणम्। कौलावलीनिर्णये षष्ठपटलेऽपि—

मध्ये मायां समालिख्य प्रोक्षयेत्तदनन्तरम्। इति।

तत्रापि मायापदेन चतुर्थस्वर एव बोध्यः। एवञ्च चतुर्थस्वरगर्भं त्रिकोणं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिश्चतुरस्त्ररूपं भूपरम् इत्येको मण्डलरचनाकल्पः। कल्पान्तरमाह—**त्र्यस्त्रेति**। अथवा प्रागुक्तत्र्यस्त्रबाह्ये वृत्तं विदधीत। एवञ्चात्र कल्पे आदावीकारगर्भं त्रिकोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिःषट्कोणं तद्बहिश्चतुरस्त्रमिति विशेषः। एवं मण्डलरचनायां कल्पद्वयमन्यत्रापि दृश्यते। यथा कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

आत्मदेवीद्वयोर्मध्ये भूमौ चक्रं लिखेत्ततः।
त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं वृत्तं भूगृहसंयुतम्।। इति।

वचनमिदं पूर्वकल्पप्रतिपादकम्। तथा ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

त्रिकोणवृत्तषट्कोणं चतुरस्त्रन्तु मण्डलम्। इति।

वचनमिदमुत्तरकल्पप्रतिपादकम्। एवञ्च तन्त्रभेदेन कल्पभेददर्शनात् स्वस्व-गुरुसंप्रदायानुसारेणैकतरः पक्षः समाश्रयणीय इति दिक्। **तदिति**। तन्मण्डलं तदम्बुना सामान्यार्घ्यजलेनाभ्युक्षेदित्यर्थः। व्यक्तमुक्तं कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

मध्ये मायां समालिख्य प्रोक्षयेत्तदनन्तरम्।
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्यजलेन च।। इति।

विशेष अर्घ्य की स्थापना के लिये अपने आसन तथा श्रीचक्र के मध्य में (अपने बाँयीं ओर) जल से मण्डल बनायें। इस मण्डल के दो कल्प हैं। प्रथम है—'ईं' गर्भित त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, वृत्त और भूपुर। द्वितीय कल्प है—ईं-गर्भित त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण तथा भूपुर। मण्डल बनाकर उस पर सामान्य अर्घ्य का जल छिड़कें।।२६-२७।।

[तत्र पीठचतुष्टयाद्यर्चा]

चतुरस्त्रे पूर्णशैलमुड्डीयानाभिधं परम्।
जालन्धरं कामरूपं षट्कोणेषु षडासनम्।।२८।।

अथ प्रागुक्तमण्डले चतुरस्त्रादिक्रमेण पूजनमुपदिशति—**चतुरस्त्र** इत्यादिना। चतुरस्त्रे पूर्णशैलादिपीठचतुष्टयमर्चयेत्। पूजनञ्च पूर्वादिक्रमेण, तदुक्तं कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

चतुरस्त्रे पूर्णशैलमुड्डीयानं जलन्धरम्।
पूजयेत् कामरूपञ्च पूर्वादिक्रमयोगतः।। इति।

अथ निरुक्तचतुरस्त्रान्तःषट्कोणे पूजनमाह—**षडिति**। षट्कोणेषु षडासनं पूजयेदिति परेण सम्बन्धः। षडासनानि च अमृतार्णवासनपोताम्बुजासनात्मासन-चक्रासनसर्वमन्त्रासनसाध्यसिद्धासनानि त्रिपुरार्चनरहस्ये व्यक्तमुक्तानि वेदितव्यानि। प्रयोगस्तु ह्रीं श्रीमिति द्वितारीं ऐँ ह्रीं श्रीमिति त्रितारीं वोच्चार्य अमृतार्णवासनाय नमः इत्यादिरूपः।

चतुरस्त्र पर पूर्वादि क्रम (पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर) से क्रमशः पूर्णगिरि पीठ, उड्डीयान पीठ, जालन्धर पीठ तथा कामरूप पीठ का अर्चन करें। षट्कोण में पर-देवता के छः आसनों का तत्-तत् मन्त्रों से पूजन करें। ये आसन हैं—(१) अमृतार्णवासन, (२) पोताम्बुज आसन, (३) आत्मासन, (४) चक्रासन, (५) सर्वमन्त्रासन, (६) साध्यसिद्धासन। पीठों और आसनों के पूजन मन्त्र के आदि में 'ह्रीं श्रीं' अथवा 'ऐं ह्रीं श्रीं' की योजना करें।

प्रयोगक्रम—चतुरस्त्र पर पूर्व में—ऐं ह्रीं श्रीं पूर्णगिरिपीठाय नमः। दक्षिण में—ऐं ह्रीं श्रीं उड्डीयानपीठाय नमः। पश्चिम में—ऐं ह्रीं श्रीं जालन्धरपीठाय नमः। उत्तर में—ऐं ह्रीं श्रीं कामरूपपीठाय नमः।

षट्कोण में पूर्व से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा-क्रम से—ऐं ह्रीं श्रीं अमृतार्णवासनाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं पोताम्बुजासनाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं आत्मासनाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं चक्रासनाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं सर्वमन्त्रासनाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं साध्य-सिद्धासनाय नमः।

[षट्कोणार्चायां विकल्पः]

षडङ्गं पूजयेद् वाऽपि तत्तन्मन्त्रमुदीरयन्।

कल्पान्तरमाह—**षडङ्गमिति**। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटले—

द्विरावृत्त्या षडङ्गानि षट्कोणेषु प्रपूजयेत्। इति।

एवञ्चाग्न्यादिक्रमेण प्रथमं वाग्भवकूटं ततः कामराजकूटं ततः शक्तिकूटं पुनरपि निरुक्तवाग्भवादिकूटत्रयमुच्चार्य पूजयेदित्यर्थः। तन्त्रसारकारैरपि 'अग्न्यादिक्रमेण

षट्कोणे मूलविद्यया द्विरावृत्त्या षडङ्गानि पूजयेदि'त्युक्तम्। त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्येवमेव। 'तत्तन्मन्त्रमुदीरयन्नि'त्यस्याप्ययमेवाभिप्रायो ज्ञानार्णवतन्त्रसारादिसंवादेनावगम्यते।

षट्कोणों पर पूजन का दूसरा कल्प षडङ्ग-पूजन का है, जैसा कि ज्ञानार्णवतन्त्र में कहा गया है।

प्रयोग-क्रम—अग्निकोण में—ऐं क्लीं सौः कएईलह्रीं हृदयाय नमः। ईशान में—ऐं क्लीं सौः हसकहलह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य में—ऐं क्लीं सौः सकलह्रीं शिखायै वषट्। वायव्य में—ऐं क्लीं सौः कएईलह्रीं कवचाय हुम्। मध्य में—ऐं क्लीं सौः हसकहलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। चारो दिशाओं में—ऐं क्लीं सौः सकलह्रीं अस्त्राय फट्।

[त्रिकोणाद्यर्चा]

त्रिकोणञ्च त्रिभिः कूटैर्मध्य आधारशक्तिकाम्।।२९।।
त्रिकोणवृत्तषट्कोणमाधारं पूर्वमेव वा।

अन्तस्त्रिकोणपूजनमाह—त्रिकोणेति। त्रिभिः कूटैर्व्यस्तकूटत्रयेणेत्यर्थः। ज्ञानार्णवे चतुर्दशपटलेऽपि—

व्यस्तकूटैर्यजेत्तत्र त्रिकोणे परमेश्वरि।

इत्युक्तम्। **मध्य इति**। त्रिकोणमध्ये आधारशक्तिं पूजयेदित्यर्थः।

त्रिकोण के तीनों कोणों में मूल मन्त्र के एक-एक कूट (वाग्भव-कामराज और शक्तिकूट) से पूजन करने के बाद मध्य में आधारशक्ति का पूजन करें। यथा—

अग्निकोण में—(वाग्भव कूट)
ईशान में—(कामराज कूट)
सामने—(शक्ति कूट)

दूसरे कल्प के अनुसार बनाये गये मण्डल के त्रिकोण, वृत्त और षट्कोण तथा आधार पर भी पूर्वक्रम से अर्चन करना चाहिए।

[मण्डलेऽर्घ्याधारस्थापनक्रमः]

हृदा प्रोक्षितमाधारं स्थापयेन्मण्डलोपरि।।३०।।

हृदा नम इत्यनेन।

इस प्रकार मण्डल का पूजन करने के बाद 'नमः' का उच्चारण करते हुए आधार को धोकर मण्डल पर रखें।

[आधारार्चा]

बालात्रिबीजं त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यासनं वदेत्।
साधयामि नमोऽन्तेन मनुनाधारमर्चयेत्।।३१।।

प्रपूज्य पूर्ववद् वह्नेः कलान्तमन्त्रमुच्चरन्।
स्याद् वह्निमण्डलायेति रूपं दशकलात्मने।।३२।।
अर्घ्यपात्रासनायेति हृदाधारे समर्चयेत्।
षट्कोणेषु षडङ्गानि व्यस्तैर्मध्ये शिवां मनोः।।३३।।

अथार्घ्यपात्राधारार्चामन्त्रमाह—**बालेति**। तथात्र ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यासनं साधयामि नम इति मन्त्रः पर्यवस्यति।

पूर्ववदिति। सामान्यार्घ्योक्तक्रमेण वह्नेर्दश कलाः सम्पूज्य वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्रासनाय नम इत्याधारे समर्चयेदित्यर्थः।

'ऐं क्लीं सौ: त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यासनं साधयामि नम:' इस मन्त्र से आधार की पूजा करके उसे मण्डल पर रख दें।

आधार पर अग्नि की दस कलाओं का सामान्य अर्घ्यस्थापन में बताई गई विधि के अनुसार पूजन करके 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्रासनाय नम:' से वह्निमण्डल की पूजा करें।

षट्कोण में षडङ्गों तथा मध्य में आधारशक्ति का पूजन करें।।३१-३३।।

विमर्श—किसी अन्य ग्रन्थ में आधार पर षडङ्ग-अर्चन का विधान नहीं मिलता।

[अर्घ्यपात्रनिर्णय:]

पात्रं काञ्चनकाचरूप्यजनितं मुक्ताकपालोद्भवं
विश्वामित्रमयञ्च कामदमिदं हैमं प्रियं स्फाटिकम्।
ताम्रं प्रीतिदमष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं
कापालं स्फुटमन्त्रसिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम्।।३४।।

इन सात श्लोकों में अर्घ्यपात्र के निर्माण के लिये ग्राह्य धातुओं एवं अन्य पदार्थों का विवरण दिया गया है। भगवती त्रिपुरा के अर्चन में स्वर्ण, रजत, काँच, मोती, नरकपाल तथा विश्वामित्र (नारियल) से निर्मित पात्र प्रशस्त हैं। स्वर्णपात्र से कामनायें पूर्ण होती हैं तथा स्फटिकपात्र प्रीतिकर होता है। ताँबे का पात्र भी प्रीति प्रदान करने वाला होता है। कपालपात्र से मन्त्र-सिद्धि और नारियल के पात्र से अष्ट सिद्धियाँ मिलती हैं। मुक्तापात्र मुक्तिदायक होता है।।३४।।

शंखमलावुपात्रञ्च तथा पुण्यतरूद्भवम्।
मृन्मयं ताम्रजं वाऽपि तथा लोहसमुद्भवम्।।३५।।

शंख, तुम्बी, पवित्र वृक्षों की लकड़ी से निर्मित, ताँबा, मिट्टी और त्रिलौह के पात्र भी प्रशस्त एवं ग्राह्य हैं।।३५।।

पुरा वै निर्मितं पात्रं विश्वामित्रेण धीमता।
विश्वामित्रकपालञ्च सर्वपात्रोत्तमोत्तमम्।।३६।।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथा विश्वासघातकम्।
दृष्ट्वा पात्रं नारिकेलं सर्वपापं प्रणश्यति।।३७।।

प्राचीन काल में महर्षि विश्वामित्र ने नारियल की खोपड़ी से बने पात्रों का प्रयोग किया था। नारियल की खोपड़ी का बना पात्र सभी पात्रों में सर्वोत्तम है। त्रिपुरा के अर्चन में इसके उपभोग से ब्रह्महत्या तथा विश्वासघात-जैसे भीषण पाप भी नष्ट हो जाते हैं।।३६-३७।।

कल्पकोटिप्रदानानि तथा हेमशतानि च।
यो ददाति मुनीन्द्राय राहुग्रस्ते निशाकरे।।३८।।
तत्फलात् कोटिगुणितं नारिकेलार्घ्यपात्रतः।
अभावे तस्य पात्रस्य पात्रमन्यत् प्रकल्पयेत्।।३९।।
दृष्ट्वाऽर्घ्यपात्रं परमं ब्रह्माद्या देवताः सदा।
नृत्यन्ति सर्वयोगिन्यः प्रीत्या सिद्धिं ददात्यलम्।।४०।।

करोड़ों कल्पों तक चन्द्र-ग्रहण के समय मुनिराज को सोने के करोड़ों सिक्कों का दान करने का जो फल होता है, उससे करोड़ों गुना अधिक फल त्रिपुरा-अर्चन में नारियल की खोपड़ी का पात्र स्थापित करने से मिलता है। जब यह पात्र नहीं मिले तब ही अन्य धातुओं से बने पात्रों को स्थापित किया जाय। नारियल की खोपड़ी का पात्र स्थापित होते ही ब्रह्मा आदि देवता प्रसन्न हो जाते हैं और योगिनियाँ हर्षातिरेक से नाचने लगती हैं।।३८-४०।।

[कामनाभेदेन पात्रभेदाः]

वश्याकर्षणकार्ये तु हेमपात्रं प्रशस्यते।
शान्तिके पौष्टिके चैव राजतं कारयेद् बुधः।।४१।।
लौहपात्रं विजानीयान्मारणोच्चाटने तथा।
स्तम्भकार्येषु पाषाणं विद्वेषे लौहमृन्मयम्।।४२।।
कुलोत्सादनकार्येषु काचपात्रं प्रशस्यते।
काष्ठपात्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि।।४३।।

पात्रभेदेन फलभेदमाह हरतत्त्वदीधितिधृतशिवरहस्ये—

हेमपात्राणि सर्वाणि गृहीतानि भवन्तु मे।
अर्घ्यं दत्त्वा तु रौप्येण लोके पूज्यसुताँल्लभेत्।।
ताम्रपात्रेण सौभाग्यं धर्मं मृन्मयसम्भवे।
सर्वालाभे तु माहेयं स्वहस्तघटितं यदि।।

आ(मल ? सन)श्चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमासादयेन्न तु।
सर्वत्र स्वर्णवत्ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम्॥
पात्राणामादरः कार्यः पात्राण्येवोत्तमानि तु।
बहिर्होमक्रियायान्तु विना पात्रं न सिध्यति॥ इति।

अधिकारिभेदेन पात्रभेदमाह गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—

शङ्खशुक्तिरजत्स्वर्णैर्दिव्यानां पात्रमिष्यते।
महाशङ्खैस्तु वीराणां फलजं वनवासिनाम्॥ इति।

अर्घ्यादौ ताम्रपात्रस्य प्राशस्त्यमाह—

पूजार्घ्यपात्रं नैवेद्याद्याधारपानपात्रकम्।
सर्वं ताम्रमयं कुर्याद् यत्किञ्चिदिह पूजने॥
ताम्रं देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा।
देवीप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात्ताम्रं प्रयोजयेत्॥

षट्कर्म-प्रयोजन के लिये पात्रों के फलभेद का निरूपण किया जा रहा है। वशीकरण और आकर्षण के लिये सोने का पात्र, शान्ति और पुष्टिकार्य के लिये चाँदी का पात्र, मारण और उच्चाटन के लिये लोहे का पात्र, स्तम्भन के लिये पत्थर का पात्र तथा विद्वेषण के लिये मिट्टी और लोहे का पात्र प्रशस्त है। शत्रुकुल का विनाश करने के लिये काँच (शीशा) का पात्र प्रशस्त है तो मिट्टी के पात्र से मन्त्रसिद्धि होती है॥४१-४३॥

[सर्वत्र विश्वामित्रपात्रस्य प्राशस्त्यम्]

सर्वकार्येषु कर्त्तव्यं विश्वामित्रमनुत्तमम्।

[पात्रभेदेन फलभेदाः]

शङ्खं ज्ञानप्रदं प्रोक्तमलावु सर्वसिद्धिदम्॥४४॥
उक्तं महाराजतन्त्रमतं परमदुर्लभम्।

'महाराज-तन्त्र' में कहा गया है कि सभी कार्यों के लिये विश्वामित्र (नारियल) पात्र प्रशस्त और ग्राह्य है। इसका अर्थ यह है कि यदि नारियल की खोपड़ी का पात्र है तो भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिये भिन्न-भिन्न पात्र-संग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। शंख का पात्र ज्ञानप्रद और अलावु (तुम्बी) का पात्र सर्वसिद्धिदाता है॥४४॥

विमर्श—अन्य तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार ताँबे का पात्र सभी कार्यों में स्वर्ण-पात्र की तरह प्रशस्त है। पूजा-अर्घ्य-नैवेद्य आदि सभी प्रयोजनों के लिये यह ग्राह्य है।

[अर्घ्यपात्रपरिमाणम्]

षोडशाङ्गुलमानं तत् पात्रं सर्वसमृद्धिदम्॥४५॥
द्वादशाङ्गुलमानं वा वस्वङ्गुलमथापि वा।
एतन्न्यूनञ्च यत् पात्रं तत् पात्रमधमं स्मृतम्॥४६॥

अर्घ्यपात्रस्य परिमाणमाह—**षोडशेत्यादिना**। विशिष्याऽऽह कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

उक्तेष्वेतेषु पात्रेषु पात्रमेकं प्रकल्पयेत्।
षोडशाङ्गुलविस्तारं षडङ्गुलसमुच्छ्रयम्।।
अथवाऽपि तदर्धं स्यात्तदर्धं वाऽपि कारयेत्।
एकाङ्गुलं तथा सार्धं षट्कञ्चैव प्रमाणतः।।
अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं सच्छिद्रं परिवर्जयेत्।
न योजयेद् भग्नपात्रं स्वप्रादेशं प्रशस्यते।। इति।

शिवार्चनचन्द्रिकाधृतशिवरहस्येऽपि—

षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्त्तितम्।
मध्यमन्तु त्रिभागोनं कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम्।।
वस्वङ्गुलविहीनन्तु न पात्रं कारयेत् क्वचित्।।
नाभीविवरयुक्तानि पुण्डरीकाकृतीनि च।
द्राक्षानीलोत्पलादीनि पात्राणि परिकल्पयेत्।। इति।

तथा हरतत्त्वदीधितिधृतश्यामार्चनचन्द्रिकायाम्—

भग्नं वस्वङ्गुलिन्यूनं क्षीणं सच्छिद्रमेव च।
विजातीयञ्च देवेशि वर्जयेत् सर्वथा प्रिये।। इति।

सोलह अंगुल का पात्र सर्वसमृद्धिदायक है। बारह और आठ अंगुल के पात्र भी ग्राह्य हैं। इससे छोटा पात्र निकृष्ट और अधम है।।४५-४६।।

[वर्जनीयपात्रनिरूपणम्]

अत्यन्तस्थूलपात्रन्तु सूक्ष्मपात्रन्तु वर्जयेत् ।
एतेषामाचरेदेकं पायसा साधकोत्तमः।।४७।।

सोलह अंगुल से बड़ा और आठ अंगुल से छोटा पात्र वर्जित है। सोलह, बारह अथवा आठ अंगुल—इनमें से किसी भी मान का एक पात्र जलसहित स्थापित करें।।४७।।

[पात्रस्थापनक्रमः]

अस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य स्थापयेद् यन्त्रिकोपरि।

आधारेऽर्घ्यपात्रस्थापनमाह—**अस्त्रेति**। अस्त्रमन्त्रेण फडित्यनेन। प्रक्षाल्य सामान्यार्घ्योदकेनेति शेषः। यन्त्रिकोपरि त्रिपदिकादिप्रागुक्ताधारे। तथाच गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—

तथैवास्त्रेण युतया सामान्यार्घ्योदकेन तु।
प्रक्षाल्य परमेशानि मण्डले स्थापयेत्ततः।।

इत्यनेन मण्डलेऽर्घ्यपात्राधारस्थापनस्य क्रममुपदिश्य—

पूर्ववत् परमेशानि पात्रं प्रक्षाल्य साधकः।

इत्यादिना आधारस्थापनक्रमेणैवार्घ्यपात्रस्यापि स्थापनमुक्तम्।

अर्घ्यपात्र को सामान्य अर्घ्य के जल से फट् मन्त्र का उच्चारण करते हुए धोकर ही आधार पर स्थापित किया जाय।

[पात्रप्रतिष्ठापनमन्त्रः]

बालाबीजत्रयस्यान्ते ततस्त्रिपुरसुन्दरी।।४८।।
विशेषार्घ्यपदात् पात्रं प्रतिशब्दादनन्तरम्।
स्थापयामीति मनुना प्रतिष्ठाप्य कला रवेः।।४९।।

अर्घ्यपात्रप्रतिष्ठामन्त्रमाह—**बालेति**। तथाच ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी-विशेषार्घ्यपात्रं प्रतिष्ठापयामीति प्रतिष्ठापनमन्त्रः पूर्ववत्। द्वितारीप्रयोगस्त्रितारीप्रयोगो वा सर्वत्र पूर्ववत्। **कला रवेरिति**। प्रागुक्तसामान्यार्घ्यक्रमेण द्वादश तपिन्यादिसूर्यकलाः प्रपूज्येत्यर्थः।

'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी विशेषार्घ्यपात्रं प्रतिष्ठापयामि'—इस मन्त्र से आधार पर पात्र को रखने के बाद उसपर सूर्य की कलाओं का पूजन करें।।४८-४९।।

[तत्र सूर्यकलामण्डलार्चा]

प्रपूज्य विधिवद् विद्वान् स्यात् सूर्यमण्डलाय च।
द्वादशेति कलात्मने चार्घ्यपात्राय हृन्मनुः।।५०।।

सूर्यमण्डलेति। (अं) सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नम इति मन्त्रेणार्घ्यपात्रं पूजयेदित्यर्थः।

सूर्य की तपिनी आदि द्वादश कलाओं का पूजन करने के बाद उस पर 'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नमः' इस मन्त्र से सूर्यमण्डल की पूजा करें। उक्त मन्त्र के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं' अथवा 'ह्रीं श्रीं' की योजना करें।।५०।।

[मण्डलविधिः]

त्रिकोणं वृत्तषट्कोणं पात्रमध्ये लिखेत्ततः।
समस्तव्यस्तकूटेन पूजयेत्तु त्रिकोणके।।५१।।

त्रिकोणमिति। निरुक्तार्घ्यपात्रमध्ये आदौ त्रिकोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिः षट्कोणं लिखेदित्यर्थः। अत्र कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

मण्डलं पूर्ववत् कृत्वा पूजयेत् पूर्ववर्त्मना।

इत्यभिधानात्, तन्त्रसारेऽपि पूर्ववद् यन्त्रमालिख्येत्युक्तेर्ज्ञानार्णवादावपि तथा दर्शनात् अत्रापि षट्कोणाद् बहिर्भूपुरं लिखेदिति हृदयम्। समस्तेति त्रिकूटात्मकमन्त्रेण; व्यस्तकूटेन पृथक् पृथक् वाग्भव-कामराज-शक्तिकूटेनेत्यर्थः।

पात्र में त्रिकोण, फिर वृत्त और उसके बाहर षट्कोणयुक्त पूजन मण्डल बनायें। मूल मन्त्र के एक-एक कूट से त्रिकोण के तीनों कोणों की मन्त्राक्षत से पूजा करें।

[पात्रापूरणक्रमः]

बालात्रिबीजं त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यपदोपरि।
पात्रं सम्पूरयामीति सङ्कल्प्य मनुनाऽमुना।।५२।।
अनुलोमविलोमाभ्यां मातृकार्णं समुच्चरन्।
अमृतामृतबुद्ध्या तु श्रीपात्रं परिपूरयेत्।।५३।।

अथ पात्रापूरणक्रममाह—**बालेति**। तथाच ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यपात्रं सम्पूरयामीति मन्त्रेण संकल्प्येत्यर्थः। **अनुलोमेति**। अकारात् क्षकारान्तं पुनः क्षकारादकारान्तं मातृकावर्णं समुच्चरन्। अमृतामृतबुद्ध्या परमामृतत्वेन विभाव्येत्यर्थः। श्रीपात्रमर्घ्यपात्रम्।

'ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दर्यर्घ्यपात्रं सम्पूरयामि' इस मन्त्र से संकल्प लेकर अनुलोम-विलोमक्रम से मातृका का जप करते हुए अमृतबुद्धि से श्रीपात्र को द्रव्य से भरें। अमृत-बुद्धि अर्थात् पूरणीय द्रव्य को अमृत समझते हुए।।५३।।

[पात्रापूरणद्रव्याणि]

जलाच्छतगुणं प्रोक्तं दुग्धोदकमनुत्तमम्।
दुग्धाद्दधि शतगुणं दध्नः शतगुणं घृतम्।।५४।।
घृताच्छतगुणो हेतु(?) देवीदक्षिणसाधने।

अथ पात्रापूरणद्रव्याणि द्रव्यभेदेन फलभेदांश्चाऽऽह—**जलादिति**। जलाद् दुग्धोदकस्य शतगुणफलजनकत्वं तत दध्नः शतगुणफलजनकत्वमित्येवं क्रमेणोक्तानां फलजनकत्वमवगन्तव्यमित्यर्थः। **दक्षिणसाधन इति**। दक्षिणाचारक्रमेण साधन इत्यर्थः। विशिष्याऽऽह गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—

मातृकां प्रतिलोमेन मूल मन्त्राभिमन्त्रितैः।
आदिमैः पूरयेद् वाऽपि तथा पुष्पासवैरपि।।

कपिलायास्तथा क्षीरैर्नारिकेलामृतैरपि।
इक्षुरसैः सुगन्धैश्च मधुरत्रितयेन वा।।

पूरयेत्तन्महापात्रं नानाद्रव्यैः कदाचन।
अधिकारिप्रभेदेन द्रव्यभेदा भवन्ति हि।।

स्वयम्भूकुसुमन्तत्र कर्पूरागुरुचन्दनैः।
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रं कस्तूरीपरिभावितम्।
निक्षिपेत् परमेशानि शर्करां मधुसंयुताम्।। इति।

देवी त्रिपुरा की दक्षिणाचारी साधना में हेतु (कारण) के रूप में जल श्रेष्ठ है। जल से सौगुना श्रेष्ठ दूध, दूध से सौगुना श्रेष्ठ दही, दही से शतगुना घृत और घृत से शतगुना श्रेष्ठ मधु है॥५४॥

विमर्श—उपर्युक्त श्लोक में 'हेतु' शब्द का प्रयोग सन्दर्भ-सापेक्ष नहीं है। हेतु कहते हैं—मद्य (शराब) को और दक्षिणाचारी साधना में मद्य सर्वथा अग्राह्य है। अतः 'हेतु' के स्थान पर 'मधु' शब्द होना चाहिए। वामाचारी साधना में तो मद्य ही एकमात्र पूरणीय द्रव्य है।

[अर्घ्यद्रव्याणि]

दूर्वाक्षतं रक्तपुष्पं विल्वपत्रञ्च चन्दनम्।।५५।।
नानासुगन्धिकद्रव्यं नवरत्नाष्टगन्धकम्।

अथ तत्रार्घ्यद्रव्यार्पणमाह—**दुर्वेति**। स्पष्टम्। **नवेति**। नवरत्नं गन्धाष्टकञ्च दत्त्वा यजेद् वक्ष्यमाणक्रमेणेति शेषः। नवरत्नानि पञ्चमप्रकाशे (५।९३ श्लो०) प्रदर्शितानि। गन्धाष्टकन्तु स्वयमेवाग्रे वक्ष्यति।

पात्र को यथा उपलब्ध उपर्युक्त द्रव्यों में से किसी द्रव्य से पूरित करने के बाद उसमें दूर्वा, अक्षत, लाल पुष्प, बिल्वपत्र, चन्दन, नवरत्न तथा अष्टगन्ध एवं अन्य सुगन्धित पदार्थ डालें॥५५॥

[सकलसोममण्डलार्चा]

दत्त्वा यजेत् सोमकलाः पूर्ववत् पश्चिमक्रमात्।।५६।।
स्यात् सोममण्डलायान्ते षोडशेति कलात्मने।
अर्घ्यामृताय नम इत्यस्य दद्याद् वामक्रमेण तु।।५७।।

यजेदिति। पूर्ववत् सामान्यार्घ्यक्रमेण अमृतादि-षोडशचन्द्रकला यजेदित्यर्थः। **सोमेति**। (उं) सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यामृताय नम इति प्रयोगः।

दूर्वा, अक्षत आदि डालने के बाद सामान्य-अर्घ्य की तरह इसमें भी चन्द्रमा की अमृता आदि सोलह कलाओं का पूजन करने के बाद 'उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यामृताय नमः' मन्त्र से समग्र चन्द्रमण्डल का पूजन करें॥५६-५७॥

[गन्धाष्टकम्]

चन्दनागुरुकस्तूरीचोरकुङ्कुमरोचनाः ।
जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः।।५८।।

पूर्वमष्टगन्धकमित्युक्तम्, तद् गन्धाष्टकं निरूपयति—**चन्दनेत्यादिना**। चोरः कृष्णशठी, कपिः गाठियाला इति तन्त्रसारः। शिष्टं स्पष्टम्।

देवियों के अर्चन के लिये बनाये गये अष्टगन्ध के घटक द्रव्य हैं—चन्दन, अगरु, कस्तूरी, चोर (कृष्ण शटी), कुंकुम, गोरोचन, जटामांसी तथा गाठियाला॥५८॥

[अर्घ्यामृते यन्त्रलेखनादिक्रमः]

पुष्पेण यन्त्रमालिख्य पूर्वसोमामृतान्तरे।
अकथादींस्त्रिरेखासु हं लं क्षं मध्यतो लिखेत्।।५९।।

पुष्पेणेति। पूर्वसोमामृतान्तरे सोमकलात्मकार्घ्यस्थामृताभ्यन्तरे। यन्त्रं त्रिकोण-वृत्तषट्कोणचतुरस्रात्मकयन्त्रमित्यर्थः। **अकथेति**। अन्तस्त्रिकोणघटकरेखात्रये क्रमेण अकारादिषोडशस्वरान्, ककारादितकारान्तान् थकारादिसकारान्तांश्च व्यञ्जनवर्णान्, तथा मध्यतो निरुक्तत्रिकोणाभ्यन्तरे हं लं क्षमिति वर्णत्रयं लिखेदिति फलितार्थः। अत्राकारा-दिककारादिथकारादिवर्णनियामकोऽकथशब्द इति ज्ञेयम्।

चन्द्रमण्डल का पूजन करने के बाद अर्घ्य के द्रव्य में फूल से त्रिकोण-वृत्त-षट्कोण एवं चतुरस्रयुक्त मण्डल बनायें। त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर 'अ क थ' और मध्य में 'हं ळं क्षं' लिखें। 'अकथ' का अर्थ है—त्रिकोण की बाँयीं रेखा (साधक की ओर से दाहिनी) पर नीचे के कोण से प्रारम्भ कर 'अ-आ' आदि १६ स्वर। त्रिकोण की ऊपरी रेखा पर 'क' से 'त' तक १६ वर्ण तथा दाहिनी रेखा पर 'थ' से 'स' तक १६ वर्ण लिखें। त्रिकोण के मध्य में 'ह ळ क्ष' लिखें।।५९।।

[तत्रार्चावाहने]

त्रिकोणं पूजयेन्मन्त्री त्रिकूटेन यथाक्रमात्।
हस्ताभ्यां पात्रमाच्छाद्य तीर्थावाहनमाचरेत्।।६०।।

त्रिकोणमिति। निरुक्तत्रिकोणं त्रिकूटेन वाग्भव-कामराज-शक्तिकूटैर्व्यस्तैः क्रमेण पूजयेदित्यर्थः। तीर्थावाहनमिति 'ॐ गङ्गे चे'त्यादिनेत्यर्थः।

मूल मन्त्र के एक-एक कूट से त्रिकोण के तीनों कोणों की पूजा करने के बाद पात्र को दोनों हाथों से ढाँककर तीर्थों का आवाहन करे। तीर्थावाहन मन्त्र है—ॐ गंगे च यमुने च०।।६०।।

[पञ्चरत्नार्चाक्रमः]

पूर्वादितो दिक्षु मध्ये पञ्चरत्नं प्रपूजयेत् ।।६१।।

पूर्वादित इति। पूर्वादिदिक्चतुष्टये चत्वारि मध्ये चैकमित्येवंक्रमेण पञ्चरत्नं प्रपूजयेदित्यर्थः।

अर्घ्य के द्रव्य में पूर्व से प्रारम्भ कर चारो दिशाओं में और मध्य में पञ्चरत्नों की पूजा करें।।६१।।

[पञ्चरत्नमन्त्रः]

कान्तान्तं सोमतपनं भान्तं धान्तं महीयुतम्।
दक्षकर्णेन्दुसंयुक्तं पञ्चरत्नमनुक्रमात्।।६२।।

पञ्चरत्नान्याह—**कान्तान्तमित्यादिना।** कान्तान्तो गकारः, सोमः सकारः, तपनः पकारः, भान्तो मकारः, धान्तो नकारः, एतद्वर्णपञ्चकं महीयुतं मह्या पृथ्वीबीजेन लकारेण युक्तं तथा दक्षकर्णेन पञ्चमस्वरेण इन्दुनाऽनुस्वारेण च संयुक्तम्। एतेन ग्लुं स्लुं प्लुं म्लुं न्लुं इति बीजपञ्चकं प्राप्तम्। एतत् पञ्चरत्नं क्रमेण गगनादीनां पूर्वं योजयेदित्यर्थः।

कान्तान्त (ग), सोम (स), तपन (प), भान्त (म), धान्त (न) के साथ मही (ल) तथा दक्षकर्ण (उ) तथा इन्दु (अनुस्वार) की योजना करने से पाँच 'बीज' प्राप्त होते हैं—ग्लुं-स्लुं-प्लुं-म्लुं एवं न्लुं। ये पाँच रत्न-मन्त्रों के बीज हैं।।६२।।

[पञ्चरत्नानि]

गगनं स्वर्गपातालं मर्त्त्यं नागमनन्तरम्।
पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तं देव्यानन्दकरं महत्।।६३।।

उपसंहरति—**पञ्चरत्नमित्यादिना।** एवञ्च ग्लुं गगनरत्नाय नमः, स्लुं स्वर्गरत्नाय नमः, प्लुं पातालरत्नाय नमः, म्लुं मर्त्यरत्नाय नमः, न्लुं नागरत्नाय नमः इति प्रयोगक्रमः। एवमेव त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि। कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले तु गगनरत्नेभ्यो नमः इत्यादिबहुवचनान्तः प्रयोगो दृश्यते। यथा—

सम्पूजयेत्ततः पश्चात् पञ्चरत्नं सुसाधकः।
पञ्चान्तकं बिन्दुयुतं दक्षकर्णसमन्वितम्।।
गगनान्ते च रत्नेभ्यो नमोऽन्तमनुमुद्धरेत्।
शीतलं शक्रसंयुक्तमग्रबिन्दुविभूषितम्।।
स्वर्गपदं समुच्चार्य रत्नेभ्यो नम इत्यपि।
पञ्चमं देवराजञ्च दक्षबीजसमन्वितम्।।
पातालपदरत्नेभ्यो नमोऽन्तश्चापरो मनुः।
महाकालं क्षितियुतं दक्षकर्णसमन्वितम्।।
मर्त्त्यरत्ने ततः पश्चाद्भ्यो नमोऽत्र समुद्धरेत्।
वामपादं क्षितियुतं दक्षश्रवणभूषितम्।
नागपदं समुच्चार्य रत्नेभ्यो नम इत्यपि।। इति।

अस्माभिस्तु मूले गगनमित्याद्येकवचनान्तपददर्शनात् ग्रन्थकृद्गुरुश्रीमद्-**ब्रह्मानन्दकृतत्रिपुरार्चनरहस्ये** गगनरत्नायेत्याद्येकवचनान्तप्रयोगदर्शनाच्चैकवचनान्त एव **प्रयोगष्टीकायां प्रदर्शितः।** परन्तु तत्र पातालरत्नात् पूर्वं मर्त्यरत्नस्य समावेशो दृश्यत इति **विशेषः।**

गगन, स्वर्ग, पाताल, मर्त्त्य एवं नाग—ये पाँच रत्न हैं, जो देवी को बहुत प्रिय हैं। इन पाँच रत्नों के नाम के आगे पूर्वोक्त 'ग्लुं' आदि पाँच बीजों में से एक-एक बीज की योजना करने से रत्नों का पूजन मन्त्र बन जाता है। यथा—ग्लुं गगनरत्नाय नमः।

स्लुं स्वर्गरत्नाय नमः। प्लुं पातालरत्नाय नमः। म्लुं मर्त्यरत्नाय नमः। न्लुं नागरत्नाय नमः। इन मन्त्रों से द्रव्य में यथाक्रम पञ्चरत्नों की पूजा करें॥६३॥

[आनन्दभैरवार्चा]

आनन्दभैरवं देवं पूर्ववत् परिपूजयेत्।
कुलद्रव्याणि निःक्षिप्य पञ्चमन्त्रैः समर्चयेत्॥६४॥

आनन्देति। पूर्ववत् प्राक्प्रदर्शितसामान्यार्घ्योक्तक्रमेण। अत्राऽऽनन्दभैरव्या अपि पूर्ववद् पूजनं विधेयं त्रिपुरार्चनरहस्य-तन्त्रसारादौ तथा दर्शनात्।

सामान्य अर्घ्य की तरह विशेष अर्घ्य में यथाविधि आनन्दभैरव तथा आनन्दभैरवी का अर्चन करके उसमें 'कुलद्रव्यों' को डालकर आगे बताये गये पाँच मन्त्रों से उनका पूजन करें॥६४॥

[तत्र प्रथमो मन्त्रः]

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेह्यकुलरूपिणि॥६५॥

मन्त्रपञ्चकमाह—**अखण्डैकेत्यादिना।** स्पष्टम्।

कुलद्रव्य-शोधन का यह प्रथम मन्त्र है। हे देवि! शिव-तादात्म्य का जो अखण्ड आनन्द सामरस्य है, तुम उसकी प्रतिमूर्ति हो। पारमेश्वर सद्भाव की सुधा तुम स्वयं हो। तुम कुलेश्वरी होते हुए भी अकुलरूपिणी हो। स्वच्छन्दभैरव भाव में स्पन्दमान शाक्त स्फूर्ति को इनमें भर दो॥६५॥

[द्वितीयः]

अकुलस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकरे परे।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि॥६६॥

कुलद्रव्य-शोधन का यह दूसरा मन्त्र है। अकुल (शिव) भाव में स्थित होने पर साधक को अमृतसागर में अवगाहन करने से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह आनन्द तुम ही हो। तुम ही सिद्धियाँ प्रदान करती हो तथा चिर-शिवत्व का बोध कराती हो। तुम क्लिन्नरूपिणी हो। हे देवि! इन वस्तुओं में अमृतत्व भर दो॥६६॥

[तृतीयः]

तद्रूपेणैकवश्यञ्च कृत्वाऽस्यै तत्स्वरूपिणि।
भूत्वा परामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु॥६७॥

उसी भैरवी-भाव में ऐक्य रस के अमृत रस का अर्घ्य अर्पित करने की कृपा करो। हे सामरस्यमयी परमेश्वरि! तुम परामृताकार होकर मेरे स्वात्मभाव में चित् तत्त्व को स्फुरित करने की कृपा करो॥६७॥

[चतुर्थः]

वाग्भवं (प्लु?प्लू)मात्मञ्च झ्रौँ हूँ सस्ततः पठेत्।
अमृतेऽमृतोद्भवे प्रोच्य अथामृतेश्वरीति च।।६८।।
अमृतवर्षि(णी?णि) पदममृतं स्रावयद्वयम्।
वह्निजायां समुद्धृत्य मन्त्रमन्यं समुद्धरेत्।।६९।।

चतुर्थं मन्त्रमाह—वाग्भवमित्यादिना। वाग्भवं ऐँ, ततः प्लुं ? (प्लूं), ततः झ्रौँ हूं स इति। अधोधृतपाठान्तरानुसारेण तु 'झ्रौँ हूँ सः' इत्यत्र हसौ हंस इति लभ्यते। कौलावलीनिर्णयषष्ठपटलोक्तक्रमेण तु क्षौं जूं सं इति लभ्यते। गन्धर्वतन्त्रद्वादशपटलानुसारेण तु क्लीं सौरिति बीजद्वयम्। एवञ्च बहुधा पाठभेददर्शनात् संशयविषदिग्धहृदयैर्मूलोक्तमेव पाठमनुरुध्य मन्त्रोद्धारः क्रियतेऽस्माभिरिति क्षमतां भूतभावनो भगवान् भवानीपतिः। तथाच निरुक्तप्रमाणानुसारेण, ऐँ प्लुं ? (प्लूं) झ्रौँ हूं सः अमृतेऽमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहेति मन्त्रः पर्यवस्यति। कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले—

वाग्भवं पञ्चमं क्षौणीं वामश्रोत्रसमन्वितम्।
क्षौं जूं सं अमृतेऽमृतोद्भवेऽमृतेश्वरि।।
अमृतवर्षिणि प्रोच्य अमृतं स्रावयद्वयम्।
वह्निजायान्तमुच्चार्य चोद्धरेदपरन्ततः।। इति।

अत्र प्लूमिति षष्ठस्वरसंयोगदर्शनात् तदपि दर्शितम्।

वाग्भव (ऐं) फिर उसके बाद क्रम से प्लुं (प्लूं) 'झ्रूं' 'हूं' और 'सः' इन पाँच बीजों के आगे क्रमशः 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि तथा अमृतं' की योजना करें। इसके बाद दो बार 'स्रावय' और अन्त में 'स्वाहा' की योजना करने से अन्य अर्थात् चतुर्थ मन्त्र का उद्धार होता है। मन्त्र स्वरूप है—'ऐं प्लुं झ्रौं हूं सः अमृतेऽमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।'

विमर्श—ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार के अनुसार इस मन्त्र के उक्त बीजाक्षरों और 'कौलावली-निर्णय' तथा 'गन्धर्व-तन्त्र' में बताये गये बीजों में अन्तर है। 'कौलावलीनिर्णय' में बताये गये बीज हैं—ऐं प्लूं क्षौं जूं सः।

गन्धर्व-तन्त्र (१३/६०) के अनुसार 'अमृते' के पूर्व केवल तीन बीजों (ऐं क्लीं सौः) की योजना की जानी चाहिए—

वाग्भवं कामबीजञ्च सर्गवान् मनुयुग् भृगुः।
तथामृते पदं ब्रूयात् पश्चादमृतोद्भवे तथा।।

कुलार्णव तन्त्र (षष्ठ उल्लास) में इसका मन्त्रोद्धार है—

वाग्भवं पार्श्वगं भूमि: पुष्टिरिन्दुसमन्वित:।
स्थितिश्च पावकानुग्रहार्थेन्दुसमलंकृता॥५३॥
स्थिरेन्धिकेन्दुसंयुक्ता श्वेताबिन्दुयुगान्विता।
तथामृतेपदं ब्रूयात् तत्पश्चादमृतोद्भवे॥५४॥

तदनुसार पाँच बीज हैं—वाग्भव बीज (ऐं), पार्श्वग: (प्), भूमि (ल), पुष्टि (ऊ), इन्दु (बिन्दु)। रूप निष्पन्न हुआ—प्लूं।

स्थिति (स), पावक (र्), अनुग्रह (औ), इन्दु (बिन्दु); रूप निष्पन्न हुआ—स्रौं।

स्थिरा (ज), इन्धिका (ऊ), इन्दु (बिन्दु) अर्थात् जूं।

श्वेता (स), बिन्दुयुग् अर्थात् विसर्ग। रूप बना—स:।

पाँच बीज बने—ऐं प्लूं स्रौं जूं स:। शेष भाग पूर्व मन्त्रवत्। मन्त्रस्वरूप—

ऐं प्लूं स्रौं जूं स: अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।

कुलार्णव में स्पष्ट रूप से इस मन्त्र को ३५ अक्षरों का बताया गया है—'अमृतेशी मनु: प्रोक्ता पञ्चत्रिंशदक्षरी॥५५॥

इस स्थिति में अपनी गुरुपरम्परा में प्रचलित मन्त्र का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर है।

[पञ्चम:]

वाग्भवं वदवदस्यान्ते वाग्वादिनि च वाग्भवम्।
क्लिन्ने-क्लेदिनि-शब्दात्तु क्लेदयेति समुद्धरेत्॥७०॥
महाक्षोभं कुरुद्वन्द्वं कामं शक्तिं समुद्धरेत्।
मोक्षं कुरुयुगं प्रोच्य हसौ: स्थौस्तु समुद्धरेत्॥७१॥

पञ्चमं मन्त्रमाह—वाग्भवमित्यादिना। तथाच ऐँ वदवद वाग्वादिनि ऐँ क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं ह्रीं मोक्षं कुरु कुरु हसौ: स्थौ: इति मन्त्र: पर्यवस्यति। अत्र कौलावलीनिर्णयगन्धर्वतन्त्रयोस्तु विशेषो दृश्यते; यथा कौलावल्यां षष्ठपटले—

वाग्भवं वदयुग्मञ्च वाग्वादिनि तत: परम्।
वाङ्मन:पदमाभाष्य क्लिन्ने क्लेदिनि तत्परम्॥
क्लेदयद्वितयं महामोक्षं कुरुद्वयं वदेत्।
कामबीजं शक्तिबीजं मोक्षं कुरुद्वयं वदेत्।
प्रेतबीजं समुच्चार्य हसौर्नमस्तत: परम्॥ इति।

अत्र वाग्वादिनीत्यतः परं वाङ्मनःपदं क्लेदयेत्यस्य द्विरावृत्तिः, महाक्षोभम् इत्यत्र महामोक्षम्, हसौरित्यतः पूर्वं प्रेतबीजं स्थौरित्यत्र नम इति विशेषः। तथा गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—

वाग्भवं वदयुग्मञ्च वाग्वादिनि च वाग्भवम्।
कामबीजं क्लिन्नेत्युत्त्वा क्लेदिनि क्लेदयेति च।।
महाक्षोभं कुरुयुग्मं कामबीजमतः परम्।
तार्त्तीयं मोक्षमित्युत्त्वा कुरुयुग्मं वदेत्ततः।।
शक्तिबीजं पुनश्चान्ते सन्दीपनमनुः प्रिये। इति।

अत्र क्लेदयेत्यस्य द्विरावृत्तिर्नास्तीति मूलेन संवदति, क्लिन्ने इत्यतः पूर्वं वाग्भवाच्च परं कामबीजप्रयोग इत्येवमादयो विशेषाश्च दृश्यन्ते। तदेवं मन्त्रस्वरूपभेद-दर्शनात् स्वस्वगुरुसम्प्रदायानुसारेणैकतमः पक्षः समाश्रयणीय इति दिक्।

दीपनी मन्त्र—वाग्भव (ऐं) का दो बार उच्चारण करके 'वद वद वाग्वादिनि 'ऐं' कहें। कामराज (क्लीं) के बाद 'क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय' 'महाक्षोभं' 'कुरु कुरु' 'क्लीं ह्रीं' 'मोक्षं' कुरु कुरु'—इन पदों की योजना करके अन्त में 'हसौ: स्थौ' लगाकर मन्त्र का उद्धार करें।।७०-७१।।

मन्त्रस्वरूप—ऐं वद वद वाग्भवादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं ह्रीं मोक्षं कुरु कुरु हसौ: स्थौ।

विमर्श—अन्य तन्त्रग्रन्थों में बताये गये उक्त मन्त्र में कुछ अन्तर है। कौलावलीनिर्णय में 'क्लिन्ने' के पूर्व 'क्लीं' नहीं है। वहीं 'क्लेदय' की द्विरावृत्ति है। कौलावलीनिर्णय, गन्धर्वतन्त्र तथा कुलार्णवतन्त्र में 'महाक्षोभं' के स्थान पर 'महामोक्षं' है। उसी तरह मन्त्र के अन्त में 'हसौ: स्थौ:' के स्थान पर 'कौलावली-निर्णय' के अनुसार 'स्हौ ह्सौ: नम:' तथा 'गन्धर्वतन्त्र' के अनुसार केवल 'सौ:' बीज है। कुलार्णव के अनुसार मन्त्र के अन्त में 'प्रासाद-परा' (ह्सौ: स्हौ:) होना चाहिए। वहीं इस मन्त्र को सप्तत्रिंशदक्षरी (३७ अक्षरी) बताया गया है। इसी तरह तीनों मन्त्रग्रन्थों में 'क्लीं' और 'मोक्ष' के मध्य में 'ह्रीं' के स्थान पर 'सौ:' बताया गया है। मन्त्र में 'पाठभेद' के परिप्रेक्ष्य में अपनी-अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार मन्त्र-प्रयोग करें।

[आवाहनादिक्रमः]

आवाहयेदर्घ्यमध्ये ध्यात्वा त्रिपुरसुन्दरीम्।
तालत्रयं ततो दत्त्वा तथाऽवगुण्ठनं चरेत्।।७२।।
धेन्वाख्ययाऽमृतीकृत्य दिग्बन्धनं शरेण तु।

[नवमुद्राप्रदर्शनम्]

मुद्राः सन्दर्शयेन्मन्त्री सर्वसंक्षोभणादिकाः।।७३।।

अवगुण्ठनमिति। अवगुण्ठनमुद्रामिति शेषः। अवगुण्ठनमुद्रा च पञ्चदशप्रकाशे (६७ श्लो०) टीकायां प्रदर्शिता।

धेन्वाख्येति। धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य अर्घ्योदकममृतत्वं प्रापय्येत्यर्थः। धेनुमुद्राऽपि पञ्चदशप्रकाशे (६७ श्लो०) टीकायां प्रदर्शिता। **दिगिति।** शरेण फडित्यस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनं कृत्वा, छोटिकाभिरिति शेषः। **मुद्रा इति।** सर्वसंक्षोभणादिका अस्मिन्नेव प्रकाशे वक्ष्यमाणा नव मुद्राः सन्दर्शयेदिति सम्बन्धः।

अर्घ्य में डाले गये कुलद्रव्यों का इस प्रकार शोधन करने के बाद भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करके अर्घ्य द्रव्य में उनका आवाहन करें। छोटिका मुद्रा से तीन बार ताली बजाकर अवगुण्ठन मुद्रा दिखायें। धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके शर मन्त्र (फट्) से दिग्बन्धन करें। तत्पश्चात् संक्षोभिणी आदि नौ (९) मुद्रायें दिखायें।।७२-७३।।

इन मुद्राओं का सचित्र निरूपण इसी प्रकाश में श्लोकसंख्या २२५ आदि में किया गया है। अर्चन से सम्बन्धी अन्य आवश्यक मुद्रायें भी वहीं द्रष्टव्य हैं।

[त्रिकोणे बीजयोगार्चाप्रक्रिया]

त्रिकोणे हंसमन्त्रञ्च लिखेत् कामकलाक्षरम्।
तार्त्तीये श्रीगुरोर्बीजं नमोऽन्तं तत्र पूजयेत्।।७४।।

त्रिकोण के मध्य में कामकलाक्षर 'ईं' लिखें। इसे वृत्त से घेर दें। तत्पश्चात् उसके दाहिने ओर हंसमन्त्र का 'हं' और बाँयीं ओर हंसमन्त्र का दूसरा अक्षर 'सः' लिखें। गुरुबीजमन्त्र से नमःपूर्वक (हंसाय नमः) से इसका पूजन करें।।७४।।

विमर्श—यह क्रिया अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती और साथ ही यह क्रिया-विधान पूर्णतः स्पष्ट नहीं है।

[शङ्खमुद्राप्रदर्शनोपदेशः]

शङ्खमुद्रां प्रदर्श्याथ सकलीकरणं चरेत्।

शङ्खेति। शङ्खमुद्रां वक्ष्यमाणलक्षणाम्। सकलीकरणमपि वक्ष्यमाणक्रमेण।

शंखमुद्रा दिखाकर सकलीकरण करें। शंखमुद्रा का स्वरूप-निरूपण और सकलीकरण का अर्थ-निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है।

[शङ्खमुद्रास्वरूपम्]

वामाङ्गुष्ठान्तरेऽङ्गुष्ठं नियोज्य सकलाङ्गुलीः।।७५।।
दक्षिणस्य करस्यैव वामाङ्गुष्ठेन संस्पृशेत्।
शङ्खमुद्रेयमाख्याता मुद्राशास्त्रविशारदैः।।७६।।

तत्र शङ्खमुद्रालक्षणमाह—**वामाङ्गुष्ठान्तर इति। सकलेति।** दक्षिणस्य करस्य सकलाङ्गुलीः वामाङ्गुष्ठेन संस्पृशेदिति सम्बन्धः। शिष्टं स्पष्टम्। व्यक्तमाह तन्त्रसारे—

वामाङ्गुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना।
कृत्योत्तानं ततो मुष्टिमङ्गुष्ठन्तु प्रसारयेत्।।
वामाङ्गुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंस्पृष्टा ज्ञेयैषा शङ्खमुद्रिका।। इति।

दाहिने हाथ से बाँयें हाथ के अंगूठे को पकड़ें। फिर मुट्ठी और अँगूठे को उत्तान करके फैलायें तथा बाँयें हाथ की सभी शेष अंगुलियाँ उसी प्रकार संयुक्त रूप से फैली रहें तथा दाहिने हाथ के अंगूठे से लगी रहें। मुद्राशास्त्र के विद्वानों द्वारा इसे शंखमुद्रा कहा गया है।।७५-७६।।

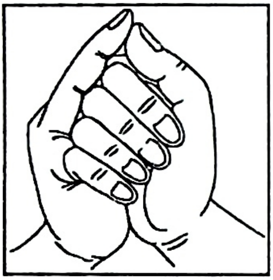

[सकलीकरणमुद्रा]

देवताङ्गे षडङ्गञ्च सकलीकरणन्त्विदम्।

सकलीकरणमुद्रामाह—**देवताङ्ग इति**। स्पष्टम्। तन्त्रसारेऽपि 'देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिरि'त्युक्तम्। गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

सम्पूर्णावस्थितेर्याञ्चा सकलीकरणं प्रिये। इति।

सकलीकरणन्तु षडङ्गमन्त्रैर्विधेयम्। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—'सकलीकरणं कुर्यात् षडङ्गेन च पूर्ववत्' इति।

देवता के शरीर में षडङ्गों का मन्त्रसहित न्यास सकलीकरण कहा जाता है।

सकलीकरण की यह क्रिया जीवन्यास मुद्रा से की जाती है। तर्जनी-मध्यमा (चित्र - लेलिहान) और अनामा को अधोमुख करके अंगूठे को अनामिका की जड़ में जोड़ दें। यह जीवन्यास की लेलिहान मुद्रा है।

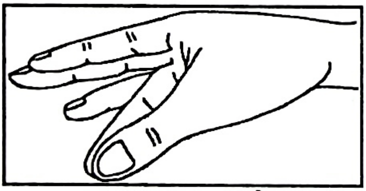

[तत्र जपस्य संख्याभेदः]

मीनाख्यमुद्रयाच्छाद्य सप्ताष्टदशधा जपेत्।।७७।।
इष्टदेवधियाऽर्घ्यन्तु धूपदीपैश्च वन्दयेत्।

मीनेति। मीनाख्यमुद्रया मत्स्यमुद्रयेत्यर्थः। मत्स्यमुद्रामाह तन्त्रसारे—

दक्षपाणिपृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत्।
अङ्गुष्ठौ चालयेत् सम्यङ् मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी।। इति।

सप्तेति। सप्तधाऽष्टधा दशधा वा जपेदित्यर्थः।

अर्घ्यपात्र को मत्स्यमुद्रा से आच्छादित करके मूल मन्त्र का सात, आठ या दस बार जप करके उसे अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात् अर्घ्यपात्र में इष्टदेव की भावना करते हुए धूप-दीप आदि निवेदित करें।

[तर्पणम्]

कौलिक्या तर्पयेन्मन्त्री तत्तन्मन्त्रेण वै त्रिधा।।७८।।
आनन्दभैरवं मूर्ध्नि गुरूंश्च हृदि देवताम्।

कौलिक्या तदाख्यया मुद्रयेत्यर्थः। आनन्दभैरवम्, गुरून्, हृदिस्थितां देवताञ्च तत्तन्मन्त्रेण आनन्दभैरवादिमन्त्रेण प्रत्येकं त्रिधा तर्पयेदिति सम्बन्धः।

तर्पण—कौलिकी मुद्रा से सिर पर आनन्दभैरव तथा गुरुदेव का तथा हृदय में इष्टदेवता का तीन-तीन बार तर्पण करें।।७८।।

[कौलिकी मुद्रा]

मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन मुद्रा तु कौलिकी स्मृता।।७९।।

कौलिकीं मुद्रामाह—**मध्यमेति।** स्पष्टम्।

मध्यमा और अंगूठे के योग से कौलिकी नामक मुद्रा बनती है।।७९।।

[कौलिकमुद्रया तर्पणस्योपयोगित्वम्]

अङ्गुष्ठे भैरवी देवी मध्यमे चण्डिका स्मृता।
अतः प्रयत्नतो मन्त्री तर्पयेदनया सदा।।८०।।

कौलिक्या तर्पणे युक्तिमाह—**अङ्गुष्ठ इति।** अङ्गुष्ठे भैरवी देवी मध्यमे मध्यमायां चण्डिका स्मृता। अतो भैरवी-चण्डिकासम्बन्धात् तर्पणद्रव्यस्यामृतत्वसम्पादनाय अनया कौलिक्या तर्पयेदिति सम्बन्धः। तर्पणक्रमोऽयं कुलार्णवसम्मत इति स्वयमेव वक्ष्यति। परन्तु कुलार्णवे षष्ठोल्लासे तर्पणप्रकरणे कौलिकी मुद्रा नोपलभ्यते, तत्र तु—

अङ्गुष्ठो भैरवो देवो अनामा चण्डिका प्रिये।
अनामाङ्गुष्ठयोगेन ------------------------------।।

इति वचनमुपलभ्यते। एतेन तु तत्त्वमुद्रयैव तर्पणमुक्तं भवति। तन्त्रसार-धृतस्वतन्त्रेऽपि—

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद् वामहस्तस्य पार्वति।
तर्पयेत् सुन्दरीं देवीं समुद्राञ्च सवाहनाम्।
तर्पयामि मुखे देव्यास्त्रिवारं मूलविद्यया।
अङ्गुष्ठानामिकायोगान्नखैर्निर्दिष्टमुद्धृतम् ।
श्रीपात्रस्योदकं बिन्दुं तर्पयेत् कुलनायिकाम्।
अङ्गुष्ठो भैरवो देवि अनामा चण्डिका प्रिये।
सव्येन हस्तयोगेन तर्पयेद् वा कुलेश्वरीम्। इति।

अत्रापि अङ्गुष्ठे भैरवस्यानामायां चण्डिकायाः स्थितिरङ्गुष्ठानामासंयोगरूपतत्त्वमुद्रया तर्पणञ्चोपदिष्टे इति मूलेन विसंवादः। तत् 'अतः प्रयत्नतो मन्त्री तर्पयेदनया सदा' इत्यन्तं मध्यमाङ्गुष्ठसंयोगात्मककौलिकमुद्राकरणकतर्पणप्रतिपादकवचनं तन्त्रान्तरीयं क्रमान्तरप्रतिपादकञ्च। अनामाङ्गुष्ठयोगेनेत्यादिवचनानि तु कुलार्णवोक्तानि इति सम्भावयामः। एवञ्चाविसंवादः सुतरामुपपद्यते।

अंगूठे में भैरव का तथा मध्यमा में चण्डिका देवी का शाश्वत निवास माना जाता है। अतः उनके परस्पर संयोग से कौलिकी नामक मुद्रा बनती है, जो तर्पण के लिये प्रशस्त है। इष्टदेवता का सदैव इसी मुद्रा में तर्पण करना चाहिये।।८०।।

विमर्श—श्रीकुलार्णवतन्त्र (षष्ठ उल्लास) में कहा गया है कि अंगूठे और मध्यमा के योग से 'कुलसन्तति' का तर्पण किया जाय। इस क्रम में इस मुद्रा को न तो 'कौलिकी' कहा गया है और न इससे इष्टदेवता का तर्पण करने के लिये कहा गया है। यह मुद्रा 'कुलसन्तति' के तर्पण के लिये विहित है।

कौलावलीनिर्णय, गन्धर्वतन्त्र, स्वतन्त्रतन्त्र आदि में अंगूठे और अनामा से बनी 'तत्त्वमुद्रा' से तर्पण का विधान बताया गया है।

[कामनाभेदेन तर्पणे मुद्राभेदाः]

अनामाङ्गुष्ठयोगेन वश्यकर्मणि तर्पयेत्।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु तर्पयेदभिचारके।।८१।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेत् स्तम्भने सुधीः।
कुलार्णवाख्यतन्त्रस्य मतं तर्पणमीरितम्।।८२।।

अथ कामनाभेदेन तर्पणेऽङ्गुलिनियममाह—**अनामेत्यादिना**। तन्त्रसारेऽप्येवमेव। कौलावलीनिर्णये सप्तमोल्लासे तु—

अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याञ्च वश्यकर्मणि तर्पयेत्।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेत्ततः।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेदभिचारके।

इति क्रमभेदो दृश्यते।

'कुलार्णवतन्त्र' का कथन है कि (१) वश्यकर्म में अनामा और अंगूठे के योग से, (२) अभिचार कर्म में अंगूठे और तर्जनी के योग से तथा (३) स्तम्भन कर्म में कनिष्ठा और अंगूठे के योग में तर्पण करें।।८१-८२।।

[तत्राऽऽगमान्तरसम्मतः क्रमः]

शुद्धं द्रव्यं समादाय तर्पयेत्तत्त्वमुद्रया।
अङ्गुष्ठानामिकामध्ये शुद्धिं संगृह्य यत्नतः।।८३।।
वामेन दक्षिणेनैव देवीं सन्तर्पयेद् बुधः।
एवं सन्तर्पणं प्रोक्तं समयाचारसम्मतम्।।८४।।

बाँयें हाथ की अनामिका और अंगूठे से बनी तत्त्वमुद्रा से शुद्धिखण्ड (मांस या उसका अनुकल्प) लेकर उसे शुद्धद्रव्य (हेतु या उसके अनुकल्प) में डुबोकर तर्पण करें। समयाचार के मत से यही सन्तर्पण है। दाहिने हाथ की इसी मुद्रा से देवता को गन्धाक्षत समर्पित करके पूजन किया जाता है॥८३-८४॥

[आत्मोपकरणादिप्रोक्षणक्रमः]

सामान्यार्घ्ये परं बिन्दुं निःक्षिपेत् साधकोत्तमः।
प्रोक्षयेत्तेन चाऽऽत्मानं पूजोपकरणानि च॥८५॥

सामान्य-अर्घ्य में किंचित् 'परबिन्दु' डालकर उससे अपने सिर पर तथा पूजन की सभी सामग्रियों पर प्रोक्षण (छिड़काव) करें॥८५॥

[प्रोक्षणफलम्]

एवं प्रोक्षणमात्रेण सर्वं ब्रह्ममयं भवेत्।

एवमिति। प्रागुक्तक्रमेण। प्रोक्षणमिदं त्रिधा अर्घ्योदकेनैव कर्त्तव्यम्, उदकान्तरेण तत्करणे दोषश्रवणात्। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे द्वादशपटले—

प्रोक्षयेत्तेन चाऽऽत्मानं मूलेन वारुणेन वा।
पूजोपकरणञ्चापि त्रिरभ्युक्ष्य तथैव हि।
अमृतैः प्रोक्षितं यत्तु सर्वं ब्रह्ममयं भवेत्।
यदन्यद्दीयते द्रव्यमलङ्कारादिकञ्च यत्।
वरुणस्यैव बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत्। इति।

तथा—

अन्यतोयैस्तु संसृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः।
तन्न गृह्णातीष्टदेवी दत्तं विधिशतैरपि। इति।

हरतत्त्वदीधितिधृतकालिकापुराणे—

यद्देयमर्घ्यपात्रस्थजलैरेव निवेदयेत्।
अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ॥
तन्न गृह्णाति वै देवी दत्तं विधिशतैरपि।

अर्घ्यं सामान्यार्घ्यमिति सम्प्रदायविद इति हरतत्त्वदीधितिः। मूलेऽपि सामान्यार्घ्यस्य तोयेनेत्यस्योभयत्र सम्बन्धात् तेन प्रोक्षणमङ्गदेवतातर्पणञ्चेत्युभयमेव प्राप्तमिति निर्विवादमेतत्। प्रोक्षणन्तूत्तानहस्तेन कर्त्तव्यम्—

उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहृतम्।

इत्येकादशीतत्त्वधृतवचनात्।

इस प्रकार प्रोक्षण करने से कर्ता, कर्म, क्रिया तथा कर्मोपकरण सभी ब्रह्ममय हो जाते हैं, जैसा कि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि: ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन मन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।। (४/२४)

[देव्यङ्गदेवतातर्पणविधि:]

सामान्यार्घ्यस्य तोयेन तर्पयेदङ्गदेवता:।।८६।।

सामान्येति। अत्र तर्पयेदित्यनेनाङ्गदेवतानां वक्ष्यमाणानां पूजनमपि अत्रैव कर्त्तव्यमिति ज्ञेयम्। अत एव तन्त्रसारकारै: 'सुन्दरीदेवताया अङ्गदेवतापूजनन्त्वर्घ्य-स्थापनानन्तरम्' इत्युक्तम्। परिवारपूजनन्त्वर्घ्यस्थापनानन्तरं 'गृहीत्वाज्ञां महादेव्या: परिवारांस्ततोऽर्चयेदि'ति तर्पणोपदेशानन्तरं मूले वक्ष्यमाणत्वात्।

सामान्य अर्घ्य के परबिन्दु-मिश्रित जल से भगवती के अंगदेवताओं का तर्पण करना चाहिए।।८६।।

विमर्श—पूजन-कर्म में सामान्य अर्घ्य के जल का ही उपयोग किया जाता है। पाद्य-आचमन-स्नानीय तथा पेय आदि सभी जल में सामान्य अर्घ्य का जल डालकर तत्तत् मन्त्रों से देवता को प्रदान करें; अन्य पात्र का जल देवता ग्रहण नहीं करते।

[वटुकादिपूजोपदेश:]

इदानीं वटुकादीनां बलिदानं समाचरेत्।

इसके बाद बटुक आदि देवताओं को बलि प्रदान करें।

[क्षेत्रपालादिबलिमदत्त्वा देवतान्तरपूजननिषेध:]

अदत्त्वा क्षेत्रनाथेभ्य: कथं क्षेत्रेषु पूजयेत्।।८७।।
यावन्न वटुके दद्यात्तावत् पूजा कथं भवेत्।
गणेशयोगिनीभ्यान्तु न दत्त्वा पूजयेत् कथम्।।८८।।

जिस क्षेत्र में पूजा की जा रही है, उस स्थान के अधिपति (स्वामी) को बलि प्रदान किये बिना पूजा कैसे की जा सकती है; अत: देवी की पूजा प्रारम्भ करने के पूर्व बटुक-योगिनी-क्षेत्रपाल और गणेश आदि को बलि प्रदान करें।।८७-८८।।

[बलिदानाकरणे दोषश्रुति:]

बलिदानं विनाकृत्य त्रिपुरां पूजयेद् यदि।
पूजा तु विफला प्रोक्ता विघ्नश्चैव पदे पदे।।८९।।

शक्तियामल तन्त्र में भगवान् शिव ने कहा है कि यदि बटुक आदि बलि-देवताओं को बलि प्रदान किये बिना त्रिपुरा की पूजा की जाती है तो कदम-कदम पर विघ्न आते हैं तथा पूजा भी सफल नहीं होती।।८९।।

[उपसंहार:]

इति ज्ञात्वा प्रयत्नेन बलिदानं समाचरेत्।
शक्तियामलतन्त्रे तु शिवेनेति प्रकीर्त्तितम्।।९०।।

अतः बलिदान की अनिवार्यता तथा महत्ता को समझकर बुद्धिमान् साधक अर्घ्य आदि स्थापना के बाद बटुक आदि को बलि प्रदान करने के बाद ही भगवती की पूजा करे॥९०॥

[वटुकपूजामकृत्वा सुन्दरीपूजानिषेधः]

यावन्न वटुके दद्यात्तावन्नैव कुलेश्वरीम्।
सुन्दर्यै प्रथमे दत्ते पूजा तु विफला भवेत्।।९१।।

[अत्राऽऽगमान्तरसम्मतिः]

बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रे तु शिवेनेति प्रकीर्त्तितम्।।९२।।

बृहत् श्रीक्रम तन्त्र में भगवान् शिव ने कहा है कि जब तक बटुक की पूजा नहीं हो जाती तब तक कुलेश्वरी की पूजा नहीं की जाय। यदि बटुक की पूजा के पहिले ही सुन्दरी की पूजा की जाती है तो वह पूजा विफल होती है॥९१-९२॥

विमर्श—कतिपय अन्य स्वतःप्रमाण तन्त्रग्रन्थों; यथा—श्रीज्ञानार्णवतन्त्र, श्रीगन्धर्वतन्त्र, तन्त्रसार, श्रीविद्यार्णव आदि में भगवती की नैवेद्यान्त पूजा की समाप्ति तथा नित्यहोम के बाद बटुक आदि को बलि प्रदान किये जाने का विधान बताया गया है। भगवती की पूजा के पूर्व ही अथवा भगवती की पूजा के बाद बलि-प्रदान का यह क्रम-भेद अपने-अपने सम्प्रदाय और गुरुपरम्परा के कारण है। इससे विचलित न होकर साधक को अपनी सम्प्रदाय एवं गुरु-परम्परा के अनुसार यथाक्रम बलि प्रदान करना चाहिए। अगले ३३ श्लोकों में बलि-विधान का निरूपण किया गया है।

[वटुकादिपूजाक्रमः, तदाऽऽदौ मण्डलनिर्माणम्]

ईशानाद् वायुकोणान्तं दिक्षु पूर्वादितोऽथवा।
मण्डलं रचयेन्मन्त्री त्रिकोणं वृत्तसंयुतम्।।९३।।
भूपुरेण युतं कृत्वा साधको भूमिजानुकः।
त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं चतुरस्रं स्ववामतः।।९४।।

अथ वटुकादिपूजाया मण्डलमाह—ईशानादित्यादिना। ईशानाद् वायुकोणान्तं पूर्वादिदिक्चतुष्टये वा श्रीचक्रस्येति शेषः, वक्ष्यमाणक्रमेण मण्डलचतुष्टयं रचयेदित्यर्थः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे पञ्चमपटले—

ईशाने च तथाग्नेये नैर्ऋत्ये च तथा प्रिये।
वायव्ये क्रमतो देवि मण्डलानां चतुष्टयम्॥
श्रीचक्रमभितो देवि त्रिकोणं व्योम चाऽऽलिखेत्। इति।

मण्डलस्वरूपमाह—त्रिकोणमित्यादिना। आदौ त्रिकोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिर्भूपुरमिति मण्डलक्रमः। पञ्चमं मण्डलमाह—त्रिकोणमिति। स्ववामभागे आदौ त्रिकोणं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिश्चतुरस्रं रचयेदिति सम्बन्धः।

भूमिजानुक साधक ईशान-आग्नेय-नैर्ऋत्य एवं वायव्य—इन चार कोणों में अथवा पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर—इन नगर दिशाओं में त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र-युक्त चार मण्डल बनाये। इनके बाद अपने वामभाग में त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-भूपुर-संयुक्त मण्डल बनाये। भूमिजानुक अर्थात् भूमि पर घुटने टेककर।

[मण्डलार्चामन्त्रः]

वाग्भवञ्च महामायां कवचं मण्डलाय च।
हृदन्तोऽयं मनुः प्रोक्तः पूजयेन्मण्डले बुधः।।९५।।

[वटुकार्चोपदेशः]

वटुकं पूजयेदादौ ध्यात्वा पाद्यादिभिः सदा।।९६।।

मण्डलपूजामन्त्रमाह—वाग्भवमित्यादिना। वाग्भवं ऐँ, महामाया ह्रीं, कवचं हुं, हृदन्तः नमोऽन्तः। एवञ्च ऐँ ह्रीं हुं मण्डलाय नम इति मण्डलपूजामन्त्रः पर्यवस्यति।

'ऐं ह्रीं हुं मण्डलाय नमः'—इस मन्त्र से मण्डल की पूजा करने के बाद सर्वप्रथम भगवान् बटुकभैरव का ध्यान करके पाद्य आदि उपचारों से उनका पूजन करें।।९५-९६।।

[वटुकध्यानम्]

पीयूषभाण्डमसिखण्डकपालखण्ड-
चण्डातिचण्डभुजदण्डमतिप्रचण्डम् ।
श्रीकुण्डलद्वयविमण्डितगण्डमीडे
नीलं वटुं वटुकनाथमहीन्द्रहारम्।।९७।।

नीले शरीर वाले भगवान् बटुकनाथ का स्वरूप देखने में अत्यन्त उग्र है। उनके गले में सर्पराज की माला है। उनके प्रचण्ड एवं शक्तिशाली चार हाथों में क्रमशः अमृत-भाण्ड (पानपात्र), तलवार, कपाल और दण्ड है। कानों में सोने के कुण्डल हैं, जिनकी आभा से उनके दोनों कपोल दमक रहे हैं।।९७।।

[वटुकबलिमन्त्रः]

ध्यात्वैवं पूजयेन्मन्त्री वाङ्कारबीजपूर्वकम्।
एह्येहि देवीपूजान्ते वटुकान्ते च नाथतः।।९८।।
कपिलान्ते जटाभार भासुरान्ते त्रिनेत्रतः।
ज्वालामुखेति सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय।।९९।।
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण द्विधा पदम्।
वह्निजायान्तमन्त्रेण वटुकस्य बलिं हरेत्।।१००।।

ध्यानानन्तरं वटुकस्य पूजनमाह—वामिति। एवञ्च वां वटुकाय नम इति पूजामन्त्रः। तदुक्तं तन्त्रसारे—

वामादिवटुकं ङेऽन्तं नमोऽन्तो मनुरीरित:। इति।

बलिमन्त्रमाह—**एह्येहीत्यादिना बलिं हरेदित्यन्तेन।** तथाच एह्येति देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचार-सहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा इति वटुकबलिमन्त्र: पर्यवस्यति। अनेन मन्त्रेण बलिं हरेदित्यर्थ:। कौलावलीनिर्णये षष्ठपटले तु—

विषं माया रमा देवीपुत्रवटुकनाथत:।
पिङ्गलपदतो जटाभास्वर प्रोच्य पिङ्गल।
त्रिनेत्र च इमं बलिं पूजां गृह्णयुगं तत:।
वह्निजायान्तमुच्चार्य वटुकस्य महात्मन:।
अनेन बलिमुत्सृज्य योगिनीश्चिन्तयेत्तत:।

इत्यनेन तेषु तेषु स्थानेषु बलिमन्त्रे भेदो दर्शित:।

इस प्रकार ध्यान के उपरान्त 'वां वटुकाय नम:' इस मन्त्र से पाद्य आदि उपचारों से पूजा करके बटुकनाथ को बलि प्रदान करें। बलि प्रदान करने का मन्त्र है—

'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभार त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।'

[वटुकबलिक्रम:]

अर्घान्नपूर्णसलिलं रत्नपुष्पादिसंयुतम्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन कनिष्ठाङ्गुष्ठतोऽपि वा।।१०१।।
वामानामाङ्गुष्ठतो वा साधको बलिमुत्सृजेत्।

वटुकबलेरुपचारं दानक्रमञ्चाऽऽह—**अर्घेत्यादिना।** स्पष्टम्।

बलिद्रव्य हैं—भात एवं अधपका अनाज, लाल फूल आदि। बलि प्रदान करने की तीन मुद्रायें हैं—(१) तर्जनी और अंगूठे के योग से, (२) कनिष्ठा और अंगूठे के योग से और (३) बाँयें हाथ की अनामा और अंगूठे के योग से बनी। इनमें से किसी भी योग से बलि प्रदान की जाय।।१०१।।

विमर्श—मूल ग्रन्थ या उसकी संस्कृत टीका में बलि प्रदान करने की विधि नहीं बताई गई है। साधक-समाज में प्रचलित विधि इस प्रकार है—ईशान कोण वाले मण्डल पर आधार रखकर उस पर बलिपात्र रखें। बलिपात्र पर घी से भीगी हुई एक बत्ती रखकर जलायें। उपर्युक्त बलिमन्त्र पढ़ते हुये उपर्युक्त किसी भी मुद्रा से बलिपात्र (विशेष अर्घ्यपात्र) का द्रव्य लेकर फूलबत्ती की लौ पर धीरे-धीरे टपकायें। इसी विधि से सभी देवताओं को बलि प्रदान की जाती है। बटुक भगवान् को बलि प्रदान करके उनका स्तवन करें—

बलिदानेन संतुष्टो बटुकः सर्वसिद्धिदः।
शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः।।

इन मंन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर योनिमुद्रा से प्रणाम करें। इसके बाद आग्नेय मण्डल पर योगिनियों को बलि प्रदान करें।

योगिनी-बलि—योगिनियों को अग्निकोण (अथवा दक्षिण दिशा के) के मण्डल पर बलि दी जाती है।

[योगिनीपूजोपदेशः]

ततश्च योगिनीं ध्यात्वा यजेद्दक्षादिभिः क्रमात्।।१०२।।

योगिनियों का ध्यान कर उन्हें दक्षिण आदि क्रम से बलि प्रदान करें।।१०२।।

[योगिनीध्यानम्]

योगिन्यः कामरूपाः सकलगुणभृतस्तप्तकार्त्तस्वराभा
मत्ताः कङ्कालमालाकलितगलतटा रक्तवस्त्रोत्तरीयाः।
शूलं पाशं कपालं शृणिमपि विधृताः सस्मिताः सुप्रसन्ना
भक्तानां साधकानामभिलषितफलं दीयमानाः सुवेशाः।।१०३।।

योगिनीनां ध्यानमाह—**योगिन्य इति**। तप्तकार्त्तस्वराभाः तप्तसुवर्णरक्तवर्णाः। कपालं नरशिरोऽस्थि। शृणिमङ्कुशम्। विधृता धारयन्त्यः। शूलं पाशमित्यादिना चतुर्भुजत्वमप्यासामर्थादायाति। दीयमाना ददत्य इत्यर्थः।

योगिनी का ध्यान—सभी योगिनियाँ इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाली अर्थात् कामरूपा हैं। शरीर का वर्ण तपाये हुए स्वर्ण की तरह लाल है। सुन्दर केश वाली योगिनियाँ मदिरापान से मत्त हैं। उनके गले में अस्थियों की माला है। उनके चार हाथ हैं, जिनमें वे क्रमशः शूल, कपाल, पाश और अंकुश धारण किये हुए हैं। मधुर मुस्कान वाली प्रसन्नवदना योगिनियाँ अपने साधकों को मनोवांछित फल प्रदान करती हैं।।१०३।।

[योगिनीपूजामन्त्रः]

याङ्कारं बीजमुच्चार्य योगिनीं पूजयेत्ततः।।१०४।।

योगिनीपूजामन्त्रमाह—**यामिति**। अत्र योगिनीमित्येकवचने सत्यपि योगिन्यः कामरूपा इति बहुवचनदर्शनात्,

एतदन्ते महेशानि यां बीजं योगिनी ततः।
भ्यः स्वाहा सर्ववर्णान्ते योगिनीपदमालिखेत्।।

इति ज्ञानार्णवपञ्चमपटलवचनदर्शनाच्च यां योगिनीभ्यो नम इत्येव प्रयोगः। एतेन योगिनीनां युगपद्वाक्याभेदेनार्चोपदिष्टा।

'यां योगिनीभ्यः स्वाहा'—इस मन्त्र से योगिनियों की पूजा करके उन्हें निम्नलिखित मन्त्र से बलि प्रदान करें—

[योगिनीबलिः]

ऊर्द्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वा वने वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः।।१०५।।

एतदन्ते वायुबीजं मुखवृत्तेन संयुतम्।
योगिनीभ्यः पदं वह्निजायाञ्च सर्वयोगिनीम्।।१०६।।
कवचास्त्राग्निजायान्ते बलिदानं समाचरेत्।

[तत्राङ्गुलिनियमः]

दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां कनिष्ठाङ्गुष्ठतोऽपि वा।।१०७।।

योगिनीनां बलिमन्त्रमाह—ऊर्द्ध्वमित्यादिना। स्पष्टम्। एतदन्त इति। आदावूर्द्ध्वमित्यादि वीरेन्द्रवन्द्या इत्यन्तमुक्त्वा तदन्ते यमिति वायुबीजं तच्च मुखवृत्तेन द्वितीयस्वरेण संयुतं वदेदित्यर्थः। एतेन यामिति प्राप्तम्। तथाच ऊर्द्ध्वमित्यादि ततश्च यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनी हुं फट् स्वाहेति योगिनीबलिमन्त्रः पर्यवस्यति। निरुक्तबलिदानेऽङ्गुलिनियममाह—दक्षेति। स्पष्टम्।

'यां योगिनीभ्यः स्वाहा' के बाद श्लोकसंख्या १०५ तथा उसके अन्त में सर्वयोगिनी हुं फट् स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ते हुए उपर्युक्त विधि से उन्हें दाहिने हाथ के अंगूठे तथा अनामिका अथवा कनिष्ठा एवं अंगूठे से बलि प्रदान करें।।१०५-१०७।।

[क्षेत्रपालार्चा]

क्षांकारं बीजमुच्चार्य ध्यात्वा क्षेत्रे समर्चयेत्।।१०८।।

अथ क्षेत्रपालपूजनमाह—क्षामित्यादिना। तथाच क्षां क्षेत्रपालाय नम इति पूजामन्त्रः।

क्षेत्रपाल-बलि—नैर्ऋत्य कोण वाले मण्डल पर उपर्युक्त मन्त्र से गन्धाक्षत समर्पित करके क्षेत्रपाल का ध्यान करें। यथा—

[क्षेत्रपालध्यानम्]

चञ्चत्कपालसुकृपाणकमू(शू)लदण्ड-
मुद्यत् (सदा?) डमरुमण्डितपाणिदण्डम्।
नीलाञ्जनप्रचयपुञ्जमिव प्रसन्नं
श्रीक्षेत्रनायकमहं शरणं श्रयामि।।१०९।।

क्षेत्रपाल का वर्ण अञ्जन के समान काला है। चार हाथ हैं। उन्होंने अपने इन हाथों में कृपाण, शूल, दण्ड और डमरू धारण कर रखा है। वे प्रसन्नमुख हैं। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।।१०९।।

[क्षेत्रपालबलिदानोपदेशः]

एवं ध्यात्वा तु सम्पूज्य बलिदानं समाचरेत्।।११०।।

ध्यानमुपदिश्य बलिदानमाह—**एवमित्यादिना**।

क्षेत्रपाल का इस प्रकार ध्यान करके निम्न मन्त्र से उन्हें बलि प्रदान करें।।११०।।

[बलिदानक्रमः]

षड्दीर्घस्वरसम्भिन्नं क्षकारं स्थानशब्दतः।।१११।।
क्षेत्रपालपदं धूपदीपादिसहितं बलिम्।
गृह्ण गृह्ण वह्निजायां समुद्धृत्य बलिं हरेत्।।११२।।

षडिति। आकारादिविसर्गान्तषड्दीर्घस्वरसंयुक्तं क्षकारम्। एवञ्च क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति क्षेत्रपालबलिमन्त्रः।

बलि मन्त्र—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थान क्षेत्रपाल धूप-दीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

[तत्राङ्गुलीनियमः]

वाममुष्टिं विधायाथ तर्जनीं सरलाञ्चरेत्।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां वा क्षेत्रपालबलिर्मतः।।११३।।

तत्र बलिदानक्रममाह—**वाममुष्टिमिति**। ज्ञानार्णवे पञ्चमपटले—

वाममुष्टिं विधायाऽऽदौ तर्जनीं सरलां कुरु।
अनया मुद्रया देवि क्षेत्रपालबलिर्भवेत्।। इत्युक्तम्।

बलि-मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी अंगुली को सीधी रखकर अथवा अंगूठा और तर्जनी के योग से बलिमुद्रा बनती है।।११३।।

इस मुद्रा से उपर्युक्त विधि से बलि प्रदान करें।।

[गणेशपूजनोपदेशः]

सम्पूजयेद् गणेशञ्च ध्यात्वा पाद्यादिभिः सुधीः।।११४।।

अथ गणेशस्य पूजनमुपदिशति—**सम्पूजयेदिति**। ध्यात्वा सम्पूजयेत् वक्ष्यमाण-क्रमेणेति शेषः।

गणेश-बलि—गणेशजी का ध्यान करके बुद्धिमान् साधक वायव्य कोण वाले मण्डल पर उन्हें बलि प्रदान करे।।११४।।

[गणेशध्यानम्]

पाशाङ्कुशामृतकपालकशूलहस्तं
हस्त्याननं विविधभूषणनीलदेहम्।
नित्योत्सवं सकलविघ्नविनाशहेतुं
श्रीमद्गजाननमहं प्रणमामि नित्यम्।।११५।।

गणेशजी का ध्यान है—'समस्त विघ्नों के विनाश के लिये मैं गजवदन गजानन को प्रणाम करता हूँ, जिनका नीलाभ शरीर विभिन्न रत्नालंकारों से अलंकृत है तथा जिनके चारो हाथ पाश-अंकुश-अमृतकपाल (पानपात्र) तथा त्रिशूल से शोभित हैं॥११५॥

[गणेशपूजाक्रमः]

गंकारबीजमुच्चार्य गणेशं पूजयेद् बुधः।

गमिति। गं गणेशाय नम इत्यनेन पूजयेदिति।

'गं गणेशाय नमः' इस मन्त्र से पाद्य आदि उपचारों से पूजा करके उन्हें बलि प्रदान करें।

[गणेशबलिमन्त्रः]

गंकारत्रयमुच्चार्य दीर्घयुक्तं समुद्धरेत्॥११६॥
ङेऽन्तं गणपतिं प्रोच्य वरं वरदशब्दतः।
सर्वजनं समालिख्य मे वशमानयेति च॥११७॥
बलिं गृह्णयुगं प्रोच्य वह्निजायां समुच्चरेत्।
अनेन मनुना मन्त्री गणेशस्य बलिं हरेत्॥११८॥

बलिमन्त्रमाह—गंकारमिति। दीर्घयुक्तं द्वितीय-चतुर्थ-षष्ठस्वरयुक्तं गंकारत्रयमुच्चार्येत्यर्थः। अत्र दीर्घयुक्तमिति विशिष्यानुक्तावपि प्रथमप्राप्तपरित्यागे प्रमाणाभावाद् द्वितीय-चतुर्थ-षष्ठस्वराणां ग्रहणमर्थादायातम् । एतेन गां गीं गूं इति प्राप्तम्। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे पञ्चमपटले—

गां गीं गूं त्रयमालिख्य ङेऽन्तं गणपतिं ततः। इति।

एवञ्च गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति गणेशबलिमन्त्रः पर्यवस्यति। ज्ञानार्णवपञ्चमपटले तु—

गां गीं गूं त्रयमालिख्य ङेऽन्तं गणपतिं ततः।
वरान्ते वरदान्ते च सर्वान्ते जनमालिखेत्।
मे वशं चाऽऽनय प्रोच्य सर्वोपपदमालिखेत्।
चारान्ते सहितं चोक्त्वा बलिं गृह्ण द्विधा पदम्।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो गाणपत्यबलिं हरेत्।

इत्यनेन निरुक्तमन्त्रे वशमानयेत्यनन्तरं सर्वोपचारसहितमिति बलिविशेषणमुक्तमिति विशेषो दृश्यते।

बलि-मन्त्र—'गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'।

[गजतुण्डामुद्रा]

संकोचिताङ्गुलीः कृत्वा दण्डवत् कारयेद् बुधः।
गजतुण्डाख्यमुद्रेयं गणेशस्य प्रकीर्त्तिता।।११९।।

अथ गणेशबलिदाने विहितां गजतुण्डामुद्रामाह—**संकोचितेति**। अङ्गुलीर्वामहस्तस्य सङ्कोचिताः कृत्वेत्यर्थः। दण्डवदिति मध्यमामङ्गुलिं दण्डवत् कारयेत्। इयमेव गणेशप्रिया गजतुण्डामुद्रेत्यर्थः। तथाच ज्ञानार्णवे पञ्चमपटले—'वाममुष्टिं विधायाऽऽदावि'ति क्षेत्रपालबलिमुद्रामभिधाय—

तथा मुष्टेस्तु मध्यस्थामङ्गुलीं दण्डवत् कुरु।
गजतुण्डा महामुद्रा गणपस्य बलिर्भवेत्।।

इत्यनेन वामहस्ते मुष्टिं बध्वा मध्यमाङ्गुलेर्दीर्घीकरणमेव गजतुण्डामुद्रेति व्यक्तमुक्तम्।

गजतुण्ड मुद्रा—भगवान् गणेशजी को गजतुण्ड मुद्रा से बलि प्रदान की जाती है। बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मध्यमा अंगुली को नीचे की ओर सीधी करके लटका देने से गजतुण्ड मुद्रा बन जाती है।।११९।।

उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए गजतुण्ड मुद्रा से गणेशजी को यथोक्त विधि से बलि प्रदान करें।

विमर्श—श्रीज्ञानार्णवतन्त्र में बताये गये मन्त्र में 'बलि' के पहिले 'सर्वोपचारसहितम्' पदद्वय अधिक हैं।

[मण्डलपूजा]

स्ववाममण्डलं मन्त्री साधारं परिपूजयेत्।
व्यापकान्ते मण्डलाय ऐँ परान्ते नमःपदम्।।१२०।।

एवं मण्डलचतुष्टये क्रमेण वटुकादीनां पूजनं बलिञ्चोपदिश्य प्रागुक्तस्ववामावस्थितमण्डलस्य पूजामाह। ऐँ परान्ते व्यापकमण्डलाय ततो नमःपदमिति सम्बन्धः। **एवञ्च ऐँ ह्रीं व्यापकमण्डलाय नम इति मण्डलपूजामन्त्रः**।

बटुक आदि देवताओं को बलि देने के बाद साधक अपने वामपार्श्व में बनाये गये मण्डल की 'ऐं ह्रीं व्यापकमण्डलमाय नमः'—इस मन्त्र से गन्धाक्षत से पूजा करे।।१२०।।

[सर्वभूतबलिः]

बलिं तत्रैव संस्थाप्य त्रिर्मूलेनाभिमन्त्रयेत्।
पूजयेत् सर्वभूतञ्च धूपदीपादिना सुधीः।।१२१।।

बलिमिति। तत्रैव प्रागुक्तत्रिकोण-षट्कोण-चतुरस्रमण्डल एव। **पूजयेदिति**। 'सर्वभूतेभ्यो नम' इत्यनेनेत्यर्थः।

उस मण्डल पर आधार-सहित बलिपात्र रखकर मूल मन्त्र से उसे तीन बार अभिमन्त्रित करे। 'सर्वभूतेभ्यो नम:' धूप-दीप आदि से बुद्धिमान् साधक उसका पूजन करें॥१२१॥

[बलिमन्त्र:]

तारञ्च भुवनेशानीं सर्वविघ्नपदन्तत:।
हृद्भ्यश्च सर्वभूतेभ्य: शब्दबीजञ्च ठद्वयम्।।१२२।।
इमं कलार्णमुच्चार्य त्रितारान्ते बलिं हरेत्।

बलिमन्त्रमाह—**तारमित्यादिना**। तार: प्रणव:, भुवनेशानी ह्रीं। एवञ्च ॐ ह्रीं सर्वविघ्नहृद्भ्य: सर्वभूतेभ्य: ऐँ स्वाहा। इति सर्वभूतबलिमन्त्र:।

बलि-मन्त्र—'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नहृद्भ्य: सर्वभूतेभ्य: ऐं स्वाहा।' त्रितार (ऐं ह्रीं श्रीं) के बाद उक्त १६ वर्णों की योजना करने से बलिमन्त्र निष्पन्न होता है।

[बलिमुद्रा]

अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च मुद्रया तत्त्वसंज्ञया।।१२३।।

अङ्गुष्ठेति। अङ्गुष्ठानामिकायोगात्मकतत्त्वमुद्रया सर्वभूतेभ्यो बलिं हरेदिति सम्बन्ध:।

बलि-मुद्रा—अंगूठा और अनामिका के संयोग से बनी तत्त्वमुद्रा से सर्वभूतों को बलि दी जाती है॥१२३॥

उपर्युक्त बलिमन्त्र का उच्चारण करते हुए उपर्युक्त मुद्रा से सर्वभूतों को बलि प्रदान करें।

[निरुक्तबलौ कल्पान्तरम्]

एकत्र वा पञ्च बलीन् दद्याद् व्यापकमण्डले।
वामभागे स्थिते मन्त्री सर्वविघ्नहरो भवेत्।।१२४।।

पूर्वं श्रीचक्रस्य चतुर्दिक्षु इति मण्डलचतुष्टये बलिचतुष्टयं स्ववामभागे कृते मण्डले बलिमेकं दद्यादित्युक्तम्। तत्र कल्पान्तरमाह—**एकत्र वेति**। मण्डलचतुष्टयमकृत्वा केवलं स्ववामकृतव्यापकमण्डले वटुकादिसर्वभूतान्तबलिपञ्चकं विदधीतेत्यर्थ:। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे पञ्चमपटले—

अथवा वामभागे तु मण्डलं चैकमालिखेत्।
तत्रैव बलिदानन्तु कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये॥ इति।

वामभागे विहितस्य बले: फलमाह—**वामेत्यादिना**।

सामान्य नियम है कि श्रीचक्र के चारो ओर एक-एक मण्डल तथा अपनी बाँयीं ओर एक मण्डल—इस तरह पाँच मण्डल बनाकर पाँचों बलि अलग-अलग दी जाय; लेकिन यदि स्थान आदि की कमी के कारण ऐसा करना सम्भव एवं सुविधाजनक न

हो तो अपने वामभाग में एक व्यापक मण्डल बनाकर पाँचों बलियाँ एक ही मण्डल में दी जा सकती हैं। एतदर्थ इस व्यापक मण्डल में चारो दिशाओं आदि में चार तथा मध्य में एक—इस प्रकार पाँच छोटे-छोटे मण्डल बना लिये जाते हैं।

[पुनः कल्पान्तरम्]

अथवा सर्वभूताय बलिमेकं समाचरेत्।

तत्रापि कल्पान्तरमाह—**अथवेति**। कल्पेऽस्मिन् अशक्तौ पूर्ववत् बलिपञ्चकमकृत्वा केवलेन सर्वभूतबलिनैव बलिफलं लभ्येत।

यदि साधक के लिये पृथक्-पृथक् पाँच बलियाँ देना सम्भव नहीं हो तो केवल सर्वभूतों के लिये एक बलि प्रदान करे। आशय यह कि साधक के लिये बलि प्रदान करना अनिवार्य कर्तव्य है। वह अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार चाहे पाँच बलि दे अथवा एक बलि दे।

[पुनः षडङ्गपूजा]

षडङ्गञ्च ततः कुर्यात् पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।।१२५।।

बटुक आदि बलि देवताओं को बलि देने के बाद यथाविधि पुनः षडङ्ग न्यास करे॥१२५॥

[हृदये मूर्त्तिकल्पना]

मायाबीजं समुच्चार्य कामबीजं ततः परम्।
बलिमात्मकमारोप्य हृदि मूर्त्तिं प्रकल्पयेत्।।१२६।।

[ध्याने विहितं मुद्राद्वयम्]

त्रिखण्डामुद्रया ध्यायेद् बद्ध्वा वा पाणिकच्छपाम्।
यथा ध्यात्वा साधकस्य मनो नान्यत्र सज्जते।।१२७।।

अथ त्रिपुराया ध्याने विहितं मुद्राद्वयं निरुक्तमुद्राद्वयेन कृतस्य ध्यानस्य प्रशस्तिञ्चाऽऽह—**त्रिखण्डेति**। तत्र त्रिखण्डामुद्रामाह तन्त्रसारे—

परिवर्त्त्य करौ स्पृष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ।
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती।।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि।
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराध्यानकर्मणि।। इति।

अनया मुद्रया त्रिपुरां ध्यायेदित्यर्थः। कल्पान्तरमाह—**बद्ध्वा वेति**। **पाणिकच्छपां** कूर्ममुद्रां बद्ध्वा वेत्यर्थः। कूर्ममुद्रालक्षणमाह तन्त्रसारे—

वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम्।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत्।।
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च।।

वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा।
अधोमुखे च ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च।।
कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद्दक्षपाणिञ्च सर्वतः।
कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यानकर्मणि।। इति।

एवमेव गन्धर्वतन्त्रे एकादशपटलेऽपि। **यथेति**। निरुक्तान्यतरमुद्रया ध्यायतः साधकस्य मनः अन्यत्र न सज्जते ध्येयविषय एव समाहितं भवतीत्यर्थः।

'ह्रीं क्लीं' का उच्चारण करके हृदय में स्थित देवता के निमित्त अपने सिर पर पुष्प-अक्षत रखकर त्रिखण्डा अथवा कर-कच्छप मुद्रा बाँधकर देवता का ध्यान करें। ऐसा करने से साधक का मन एकाग्र हो जाता है।।१२६-१२७।।

[ध्यानयोगः]

ध्यानयोगं समास्थाय पूरकेणापि कर्मणा।
मनो मूले तु संयोज्य कुञ्च्य प्राणानिरूकतः(?)।।१२८।।
मूलाधारे स्फुरद्दीपशिखाकारां शिवां स्मरेत्।
संयोज्य परमानन्दे ब्रह्मरन्ध्रान्तरस्थिते।।१२९।।
सामरस्यं तयोः कृत्वा विश्राम्य च पुनः पुनः।
शिवानन्दामृतालोलीभूतां चैतन्यरूपिणीम्।
तामात्मस्थानमानीय चिद्रूपां परिचिन्तयेत्।।१३०।।

मूल इति। मूलाधारे मनः संयोज्येत्यर्थः। इममेवार्थमाह तन्त्रसारे योगप्रक्रिया-प्रकरणे—

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत्।।

गुदमेढ्रान्तरे तां शक्तिमाकुञ्च्य निरुपमसूक्ष्मताकां सञ्चिन्त्य प्रवर्धयेत् (इति चास्य व्याख्या)।

मूलाधार इति। निरुक्तलक्षणां शिवां कुण्डलिनीं मूलाधारचतुर्दलाभ्यन्तरे स्मरेदित्यर्थः। **संयोज्येति**। ब्रह्मरन्ध्राभ्यन्तरीणे परमानन्दस्वरूपे परमशिवे तां कुण्डलिनीं संयोज्येत्यर्थः। **सामरस्यमिति**। सामरस्यञ्च—

स्त्रीपुंयोगे तु यत् सौख्यं सामरस्यं तदुच्यते।

इत्युक्तलक्षणम्। **तयोः** कुण्डलिनीपरमशिवयोर्निरुक्तसामरस्यं सम्पाद्येत्यर्थः। **शिवेति**। परमशिवसम्भोगस्रुतानन्दामृतचञ्चलीभूतामित्यर्थः। आत्मस्थानं हृदयमित्यर्थः।

ध्यानयोग में स्थित होने के लिये पूरक प्राणायाम के द्वारा प्राणों को आकुंचित करके मन को मूलाधार में नियोजित करें। मूलाधार में स्पन्दित दीपशिखा की भाँति प्रकाशयुक्ता 'शिवा' का ध्यान करके उन्हें सुषुम्णा मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र-स्थित अकुल

लोक में लाकर परमानन्दस्वरूप परमशिव के साथ संयोजित करायें। शिव-सामरस्य से परितृप्त शिवा को सहस्रार से मूलाधार में लायें। शिवानन्दरूपी अमृत के लिये सदैव लालायित चैतन्यरूपिणी शक्ति को बार-बार मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर उसका शिव के साथ कई बार संयोग करायें। बाद में उसे आत्म स्थान (हृदय) में लाकर उसका 'चित् रूप' से चिन्तन (ध्यान) करें।।१२८-१३०।।

चिन्तयेत् कर्णिकामध्ये रत्नसिंहासनं महत्।
सिद्धिषोडशकोणं तत् सूर्यकोटिसमप्रभम्।।१३१।।
तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री चक्रराजं सुशोभनम्।
चक्रमध्ये ततः शक्तिं त्रिकोणां परिचिन्तयेत्।।१३२।।
तन्मध्ये चिन्तयेत्तेजः सुप्रकाशं निरञ्जनम्।
प्रलयानलसङ्काशं सर्वदेवमयं शिवम्।।१३३।।
ब्रह्मतेजोमयं नित्यं मुनिसिद्धितपोमयम्।
सर्वव्रतफलमयं सर्वयज्ञफलात्मकम्।।१३४।।
सर्वशक्तिमयञ्चैव सर्वविद्यात्मकं पुनः।
सर्वात्मभावरूपञ्च सर्वानन्दमयं तथा।।१३५।।
सर्वज्ञानमयञ्चैव सर्वभूतात्मकं पुनः।
चिन्तयेच्च महादेवीं तेजः परिणतं हि तत्।।१३६।।

चिन्तयेदिति। कर्णिकामध्ये अनाहतपद्मस्येति शेषः। शिष्टं स्पष्टम्।

तन्मध्ये निरुक्तरत्नसिंहासनमध्यप्रदेशे चक्रराजं श्रीचक्रम्, तन्मध्ये त्रिकोणरूपां शक्तिम्, तन्मध्ये च वक्ष्यमाणरूपं तेजः; तत्तेजः परिणतिरूपां महादेवीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीं वक्ष्यमाणध्यानक्रमेण चिन्तयेदिति फलितार्थः।

हृदयक्षेत्रवर्ती कमल की कर्णिकाओं के मध्य में षोडश कोणों वाला रत्न-सिंहासन है, जो करोड़ों-करोड़ों सूर्यों की तरह जाज्वल्यमान है। इस सिंहासन पर चक्रराज प्रतिष्ठित है। इस चक्र के मध्य में त्रिकोण है। साधक इस त्रिकोण का शक्ति के रूप में चिन्तन करे। इस त्रिकोण में स्वच्छ, प्रकाशमान तेज का ध्यान करे; जो प्रलयकालीन अग्नि की तरह प्रकाशपुञ्ज, सर्वदेवमय तथा साधक के लिये सर्वथा आनन्दकारी है। शिव-स्वरूप है। यह तेज मुनियों और सिद्धों को उनकी तपस्या और सिद्धियों से प्राप्त ब्रह्मतेज के समान है। समस्त यज्ञों तथा व्रतों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला यह तेज समस्त शक्तियों और विद्याओं का अधिष्ठान है। सृष्टि के सभी जड़ एवं चेतन प्राणियों का उपादान एवं चेतन प्राणियों को प्राप्त होने वाले सभी आनन्द का उत्स है। समस्त भूतों की उत्पत्ति तथा समस्त ज्ञान का एकमात्र आधार है। सर्वाधार वही तेज महादेवी के रूप में परिणत हो रहा है, ऐसी भावना करनी चाहिए।।१३१-१३६।।

[देव्या ध्यानम्]

ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम्।
जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम्।।१३७।।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम्।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्य-किङ्किणीजालमण्डिताम् ।।१३८।।

अथ श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या ध्यानद्वयमभिधास्यन् प्रथमं ध्यानमाह—**ततः पद्मनिभामित्यादिना परमानन्दनन्दितामित्यन्तेन।** स्पष्टार्थमिदमिति न व्याख्यायते।

भगवती के निराकार ज्योतिस्वरूप एवं तेजोमय निराकार रूप का वर्णन करने के बाद २१ श्लोकों में उनके लावण्यमय साकार रूप का निरूपण किया गया है। साकार रूप में परिणत देवी की देहयष्टि का वर्ण रक्त-कमल के समान लाल, नवोदित सूर्य की किरणों के समान अरुण, जवा-कुसुम के समान लोहित, अनार-पुष्प के समान रक्तिम तथा पद्मराग मणि के समान कुंकुमाभ है। उनके शिरोप्रदेश में बहुमूल्य रत्नों से खचित किरीट है, जिसमें छोटी मणियों से निर्मित झालर लटक रही है।।१३७-१३८।।

कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ।।१३९।।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकिधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम्।।१४०।।

उनकी केश-राशि भौंरों के समान काली है। उस घुँघराली केशराशि की पल्लवों के समान वलयाकार अलकें मुखमण्डल पर झूल रही हैं। प्रफुल्लित कमल के समान मसृण तथा चिक्कण उनके मुखमण्डल में ऊषा की अरुणाई है। ललाट प्रदेश में द्वितीया के चन्द्रमा की कलगी है। उनकी भौंहें पिनाकी (शिव) के पिनाक (धनुष) के समान बंकिम हैं।।१३९-१४०।।

आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।।१४१।।
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रविस्पष्टनासिकाम् ।।१४२।।

हृदय की उत्ताल आमोद तरंगों के कारण उनके नेत्र चपल और चञ्चल हैं। कुण्डलों में जड़ी हुई मणियों के किरणों की झिलमिलाहट से उनका वह कपोल-मण्डल देदीप्यमान है, जिसने अपनी आभा के अमृत से परिपूर्ण विधु-मण्डल को पराजित कर दिया है। उनकी नासिका विश्वकर्मा के निर्माणसूत्र की तरह सुडौल और स्पष्ट है।।१४१-१४२।।

ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।।१४३।।
बीजपूरस्फुरद्बीजदन्तपङ्क्तियुगान्विताम् ।
रत्नद्वीपस्फुरद्रत्नजिह्वाममलभाषिणीम् ।।१४४।।

देवी के अमृत भरे रसीले होठों की कान्ति मूँगों, रक्त चन्दन अथवा बिम्बाफल के समान है, जिन पर खेलने वाली स्मित रेखा ने माधुर्य रस के सागर को भी जीत लिया है। उनकी दन्तपंक्ति बीजपूर (अनार) के दानों के समान धवल सुडौल है। रत्नद्वीपरूपी मुख में स्फुरत् जिह्वा रत्न के समान रतनारी है।।१४३-१४४।।

अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललतितैर्भुजैः ।।१४५।।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ।
कराम्बुजनखज्योतिर्विद्योतितनभस्तलाम् ।।१४६।।

उनके चिबुक (टुड्डी) प्रदेश की शोभा अनुपम है। विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिससे उनके चिबुक प्रदेश की उपमा दी जा सके। उनकी ग्रीवा शंख के समान वर्तुल, ऊपर की ओर कुछ मोटी, नीचे की ओर पतली तथा सुचिक्कण है। भुजायें कमलनाल के समान लम्बी तथा सुकोमल हैं। कर-कमल (मणिबन्ध के आगे का भाग) रक्तकमल की पंखुड़ियों के समान मसृण और मोहक है। उनके कर-कमलों के नखों से निकलने वाली ज्योतिपुञ्ज से पृथ्वी से लेकर आकाश तक सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित है।।१४२-१४६।।

मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ।
त्रिवलीवलयामुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ।।१४७।।
लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ।
अनर्घरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ।।१४८।।

समुन्नत स्तन-मण्डल पर मोतियों की माला है। मध्यदेश (कटिप्रदेश) त्रिवली की शोभा से अलंकृत है। नाभि लावण्य सरिता में पड़ने वाले भँवर के समान है। नितम्बप्रदेश पर अनमोल रत्नों की काञ्ची (मेखला—करधन) है।।१४७-१४८।।

नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ।।१४९।।
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ।
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।।१५०।।

नितम्बप्रदेश की रोमावली नितम्बरूपी हाथियों को नियन्त्रित करने वाले सुन्दर अंकुश के समान है। जाँघों की सुन्दरता, मसृणता तथा सुघड़ता केले के तने के

समान है। दोनों चरणों के ऊपरी भाग की बनावट के सामने कच्छप (कछुवे) के पीठ की बंकिम अवनतोन्नता फीकी है। पृथुलता के कारण गुल्फ प्रदेश गूढ़ है—स्पष्ट आभासित नहीं होता॥१४९-१५०॥

ब्रह्माविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ।
तनुदीर्घाङ्गुलिस्वच्छनखचन्द्रविभूषिताम् ॥१५१॥
शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ।
लौहित्यजितसिन्दूरजवादाडिमरागिणीम् ॥१५२॥

उनके चरण-कमल इतने दिव्य और पावन हैं, जिनका स्पर्श करके ब्रह्मा एवं विष्णु-सहित सभी देवताओं के मुकुटों की मणियाँ भी धन्य हो जाती हैं। पैरों की अंगुलियाँ लम्बी और छरहरी हैं तथा नखों की धवलता चन्द्रमा के समान है। जब वे हँसती हैं तब ऐसा लगता है, मानो सैकड़ों चन्द्रमाओं की ज्योत्स्ना एक साथ फैल गई हो। नखों की नैसर्गिक लालिमा के सामने सिन्दूर, जवा-कुसुम और अनार की लालिमा फीकी दिखाई देती है॥१५१-१५२॥

रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम्।
रक्तपद्मनिविष्टान्तु रक्ताभरणभूषिताम्॥१५३॥
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च पञ्चबाणधनुर्धराम्।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ॥१५४॥

वे लाल रंग के कमल पर बैठी हुई हैं। उनके वस्त्र और आभूषण भी चटख लाल रंग के हैं। मुँह में कपूरयुक्त पान का बीड़ा है, जिससे उनके अधरों की लालिमा बढ़ गई है तथा मुख से भीनी खुशबू निकल रही है। वे त्रिनयना और चतुर्भुजा हैं। उनके इन चार हाथों में पाश-अंकुश-धनुष तथा पञ्च-बाण शोभित हैं॥१५३-१५४॥

विमर्श—उनके ऊपर वाले बाँयें हाथ में ईख का धनुष तथा नीचे वाले हाथ में पाश है। नीचे वाले दाहिने हाथ में अंकुश तथा ऊपर वाले दाहिने हाथ में पाँच बाण हैं।

महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्॥१५५॥

उनका विग्रह (शरीर) कुंकुम के समान अरुण तथा कस्तूरी के समान सुवासित है। वे सर्व शृंगारमयी हैं। उनका अंग-प्रत्यंग यथोचित आभूषणों से अलंकृत है॥१५५॥

जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम्।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम्॥१५६॥

सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्।
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम्।।१५७।।

वे जगत्कारिणी हैं अर्थात् संसार की उत्पत्ति उनसे ही हुई है। उन्होंने ही सारे संसार को जन्म दिया है। संसार को आह्लाद एवं प्रसन्नता वे ही प्रदान करती हैं। वे ही संसार में आकर्षण की एकमात्र केन्द्र हैं। वे सर्वमन्त्रमयी, सर्वसौभाग्यमयी, सर्वलक्ष्मीमयी तथा परम आनन्द से नित्यप्रति आनन्दित रहती हैं।।१५६-१५७।।

सर्वमन्त्रमयी—सभी मन्त्रों की उत्पत्ति या निष्पत्ति कतिपय मातृकाओं के संयोजन से होती है। मन्त्रों में प्रयुक्त सभी मातृकायें भगवती के शरीर में स्थित हैं। अत: वे सभी मन्त्रमयी हैं।

कुण्डलिनी से ध्वन्यात्मक वर्णों की सृष्टि होती है। भगवती ही व्यष्टि शरीर में सार्ध त्रिवलया एवं समष्टि शरीर में एकपञ्चाशत् वलया महाकुण्डलिनी के रूप में स्थित हैं, अत: वे सर्वमन्त्रमयी हैं।

सभी मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवताओं की सृष्टि भी भगवती से हुई है और उन्होंने ही सभी देवताओं को मन्त्र-साधना का यथावांछित फल प्रदान करने का अधिकार और सामर्थ्य दिया है; अत: वे सर्वदेवमयी और सर्वमन्त्रमयी हैं।

सर्वसौभाग्यमयी—'सुभगाया: सुभगस्य वा भावं' इति सौभाग्यम्। इस व्युत्पत्ति के अनुसार पति और पत्नी का निरन्तर साहचर्य और परस्पर अनुकूलता 'सौभाग्य' है। भगवती के पति कामेश्वर शिव अभिन्न भाव के निरन्तर उनके साथ रहते हैं और वे 'स्वाधीनवल्लभा' हैं। अत: वे सर्वसौभाग्यमयी हैं। विश्व में स्त्रीजनों को जो सौभाग्य मिला है, वह उनका ही प्रसाद है, जैसा कि तन्त्रान्तर (चण्डी) में कहा गया है—

सौभाग्यञ्च यत्किंचिद् दृश्यते ललनाजने।
सर्वं तत्प्रसाद .... ।।

सर्वलक्ष्मीमयी—सभी शुभ लक्षणों से युक्ता होने के कारण, आधिभौतिक आधिदैविक एवं आध्यात्मिक लक्ष्मी-स्वरूपा होने के कारण तथा अष्ट लक्ष्मियों की समष्टि मूर्ति होने के कारण वे सर्वलक्ष्मीमयी हैं।

परमानन्दनन्दिता—भगवान् परमशिव चिर आनन्द के उत्स हैं, चिदानन्द-स्वरूप हैं। भगवती शिवा उनकी नित्य सहचरी होने के कारण परमानन्द-नन्दिता हैं।

[ध्यानान्तरम्]

अथवाऽन्यप्रकारेण ध्यायेद्देवीं सुलक्षणाम्।
जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमारुणाम्।।१५८।।

सिन्दूरपूररुचिरां बालार्ककिरणोपमाम्।
तप्तकाञ्चनसङ्काशां पद्मरागमणिप्रभाम्।।१५९।।

अथ ध्यानान्तरमाह—**अथवेत्यादिना साधकोत्तम इत्यन्तेन।**

'अथवा' विकल्प का सूचक है। भगवती कामेश्वरी की साकार मूर्ति का एक ध्यान उपर्युक्त ३४ श्लोकों में बताया गया है। यदि साधक चाहे तो दूसरे प्रकार से भी उनका ध्यान कर सकता है। उसका निरूपण इन छत्तीस (३६) श्लोकों में किया गया है।

शुभ लक्षणों वाली भगवती कामेश्वरी का वर्ण जवापुष्पों, अनार के फूलों, सिन्दूर की राशि, नवोदित सूर्य की किरणों, आग में तपाये गये स्वर्ण तथा पुखराज के समान लाल है।।१५८-१५९।।

नानासद्रत्नसंयुक्तकिरीटवरभूषणाम् ।
अर्द्धेन्दुमस्तकाक्रान्तकुटिलालकपल्लवाम् ।।१६०।।
चमरीबालकुटिलनिर्मलश्यामकेशिनीम् ।
मल्लिकामालतीमालाकवरीपरिवेष्टिताम् ।।१६१।।
नानासद्रत्नसंयुक्तपट्टगुच्छप्रलम्बिताम् ।
शरदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।।१६२।।

सिर पर सोने का मुकुट है, जिसमें विभिन्न प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं। मस्तक पर दूज का चन्द्रमा है। घुँघराली लटें हैं। घनी और काली केशराशि की जटा है, जिस पर मल्लिका-मालती आदि पुष्पों की माला है। पीठ के पीछे पट्टगुच्छ लटक रहा है, जिसमें तरह-तरह के रत्न जड़े हुए हैं।।१६०-१६२।।

केशमध्ये महाभास्वत्सिन्दूरलहरीयुताम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैस्तिलकोज्ज्वलाम् ।।१६३।।
कामकोदण्डसदृशसुभ्रुवं पद्मलोचनाम्।
आनन्दमुदितोल्लासलोचनत्रितयान्विताम् ।।१६४।।
शरत्पूर्णेन्दुसदृशसूत्रविस्पष्टनासिकाम् ।
नासाग्रे गजराजोत्थमहामुक्ताविराजिताम्।।१६५।।

केश-राशि के मध्य में अर्थात् मांग में सिन्दूर की पतली तथापि दमकती हुई रेखा है। कमल के समान सुन्दर तीन नेत्र हैं, जिनसे हृदय का आनन्द छलक रहा है। कामदेव के धनुष के समान बंकिम भौंहें हैं। सुघड़ एवं सुन्दर नासिका में शरत् चन्द्र के समान गोल नासिका-सूत्र (नथनी) है। नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता की बुलाक है।।१६३-१६५।।

सुचारुवृत्तगण्डेन विजितामृतमण्डलाम्।
शरत्पूर्णेन्दुसदृशमुखमण्डलमण्डिताम् ।।१६६।।
ईषत्सहास्यवदनजितमाधुर्यसागराम् ।
कर्णोपरिस्फुरद्रत्नपत्रिकावरराजिताम् ।।१६७।।
आनन्दरत्नघटितकर्णभूषणभूषिताम् ।
स्फुरद्रत्नसमूहेन विलसद्धेमकुण्डलाम्।।१६८।।
कर्णभूषणतेजोभिः कपोलस्थलमञ्जरीम्।
बन्धूकारुणसिन्दूरबिम्बोष्ठीममृतोपमाम् ।।१६९।।

अमृतमण्डप अर्थात् चन्द्रमा। भगवती कामेश्वरी के गोल कपोलमण्डल के सामने अमृतवर्षी चन्द्रमा की धवल कान्ति भी फीकी है अर्थात् उनके मुखमण्डल की शोभा शारदीय चन्द्रमा की शोभा एवं सौन्दर्य से भी कई गुना अधिक है। उनके मन्द मुस्कानयुक्त मुख की मधुरता के सामने सम्पूर्ण संसार की मधुरता हेय है, नगण्य है। कानों में सोने के कुण्डल और कर्णफूल हैं। इनमें खचित मणियों की चकाचौंध से उनका सम्पूर्ण मुख-मण्डल दमक रहा है॥१६६-१६९॥

बीजपूरस्फुरद्बीजदन्तपङ्क्तियुगान्विताम् ।
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकस्थलराजिताम् ।।१७०।।
नानारत्नसमायुक्तग्रीवाभूषणभूषिताम् ।
मुक्तामणिप्रवालस्य निकरैः कण्ठभूषिताम्।।१७१।।
प्रवालवल्लीसादृश्यबाहुवल्लीचतुष्टयाम् ।
कुङ्कुमारुणसङ्काशसुकोमलकराम्बुजाम् ।।१७२।।
पाणिपद्मनखज्योत्स्नावितानितनभस्थलाम् ।
सद्रत्नगणसंयुक्तकेयूरवरभूषिताम् ।।१७३।।

उनकी दन्तपंक्ति बीजपूर के दानों के समान सुडौल और धवल है। चिबुक का सौन्दर्य अनुपम है। नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित ग्रैवेय और कण्ठहार उनके गले की शोभा को बढ़ा रहे हैं। उनकी चारो भुजायें प्रवालवल्ली के समान हैं। कर-कमल कुंकुम के समान अरुणाभ हैं। हाथों के नख की ज्योति दिग्-दिगन्त तक व्याप्त है। बाजुओं में रत्न-खचित केयूर (बाजूबन्द) है॥१७०-१७३॥

नवरत्नसमायुक्तपट्टसूत्रप्रलम्बिताम् ।
नागेन्द्रदन्तशङ्खेन मणिबन्धविराजिताम्।।१७४।।
अनर्घ्यरत्नघटितकङ्कणैः परिमण्डिताम्।
अङ्गुलीयकरत्नेन विराजितदिगन्तराम्।।१७५।।

बाजूबन्द की रत्नखचित रेशमी डोर झूल रही है। कलाइयों में हाथी दन्त का बना शंख तथा अनेक अनमोल रत्नों से बना कंगन सुशोभित है। अंगुलियों में अंगूठियाँ हैं, जिनमें जड़े रत्नों की किरणें चारो ओर दिग्-दिगन्त तक फैल रही हैं।।१७४-१७५।।

विमर्श—'शंख' कलाईयों में पहना जाने वाला सफेद रंग का एक आभूषण है। इसे 'चूडा' भी कहते हैं।

सत्त्वरजस्तमोभूतपाशं वामकरे धृताम्।
भृङ्गपङ्क्तिगुणाक्रान्तमिक्षुचापविधारिणीम् ।।१७६।।
अष्टधातुसमायुक्तमङ्कुशं दक्षिणे करे।
रक्तोत्पलाब्जकुमुदकुन्दाम्राङ्कुरसम्भवान् ।।१७७।।
तदधः पञ्चबाणांश्च दधतीं त्रिपुरेश्वरीम्।
आयुधस्य प्रतीकाशैर्नभस्तलविराजिताम्।।१७८।।

भगवती कामेश्वरी के ऊपर वाले बाँयें हाथ में सत्त्व-रज और तमोगुण से उत्पन्न पाश है। नीचे वाले बाँयें हाथ में धनुष है, जो इक्षु-दण्ड का बना हुआ है और जिस पर भँवरे मँडरा रहे हैं। ऊपरी दाहिने हाथ में अष्टधातु से निर्मित अंकुश तथा नीचे वाले हाथ में पाँच बाण हैं। ये बाण रक्त कमल, श्वेत कमल, श्वेत कुमुद, कुन्द तथा आम्रमञ्जरी के बने हुए हैं। इन आयुधों का प्रकाश नभोमण्डल में चारो ओर फैला हुआ है।।१७६-१७८।।

आनन्दहारसन्दोहविराजितपयोधराम् ।
पृष्टदेशे स्फुरद्रत्नपट्टगुच्छप्रलम्बिताम्।।१७९।।
सुवृत्तनिविडोत्तुङ्गपीवरस्तनमण्डलाम् ।
पयोधरभरानम्रसुचारुक्षीणमध्यमाम् ।।१८०।।
नाभिपद्माद्रोमराजिलताकुचसमीपगाम् ।
गन्धचन्दनकस्तूरीविलेपितकलेवराम् ।।१८१।।

भगवती कामेश्वरी के दोनों स्तन गोल, स्थूल, उन्नत तथा अत्यन्त पुष्ट हैं। स्तन-मण्डल पर फूलों की माला झूल रही है। पीठ की ओर चमकीले रत्नों से बनी अनेक पट्टिकायें लटक रही हैं। स्तन-मण्डल के भार से वे सामने की ओर कुछ झुकी हुई हैं। नाभिरूपी कमल से उद्भूत रोमावली-रूपी लतायें स्तनों तक फैली हुई हैं।।१७९-१८१।।

काञ्चनाञ्चितकाञ्चोलीपरिपूरितभूषिताम् ।
सुचारुत्रिवलीयुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ।।१८२।।

क्वणत्काञ्चीसमायुक्तनितम्बबिम्बमण्डलाम् ।
सुवर्णसूत्ररचितरक्तपट्टपटान्विताम् ।।१८३।।
पटाञ्चलसमायुक्तसद्रत्नवरभूषिताम् ।
अनेकरत्नरचितचारुमेखलयाऽन्विताम् ।।१८४।।

लाल रंग की रेशमी चोली पर सोने के तारों से कशीदाकारी की गई है। साड़ी भी लाल रंग की रेशमी है, जिस पर छोटे-छोटे रत्न जड़े हुए हैं। साड़ी के आँचल और किनारी पर भी नगीने टाँके गये हैं। नितम्बप्रदेश के ऊपर रत्नजटित स्वर्ण-मेखला है, जिसमें छोटे-छोटे घुँघरू लगे हुए हैं। मध्यदेश अर्थात् उदर प्रदेश में त्रिवली की शोभा न्यारी है।।१८२-१८४।।

करीन्द्रकरसादृश्यसुकुमारोरुयुग्मकाम् ।
कदलीललितस्तम्भचारुजङ्घायुगान्विताम् ।।१८५।।
तरुणारुणपादाब्जरणन्नूपुरराजिताम् ।
मुक्तामणिप्रवालैश्च पादपद्मविभूषिताम्।।१८६।।
प्रवालाङ्कुरसादृश्यपादाङ्गुलिप्रकाशिताम् ।
पादाङ्गुलिनखज्योतिःशरदिन्दुतिरस्कृताम् ।।१८७।।
सुकोमललसन्मालापादपद्मप्रलम्बिताम् ।
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्नैः प्रकाशितपदाञ्चलाम्।।१८८।।
कामराजाङ्कमारूढां शिवसिंहासनस्थिताम्।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्।।१८९।।

उनके उरु-युग्म हाथी के सूँड़ की तरह सुडौल और दृढ़ हैं। जंघायें केले के तने के समान पुष्ट और चिकनी हैं। दोनों पैरों में नूपुर (पायल) है, जिनमें छोटे-छोटे घुँघरू लगे हुए हैं। मूँगे के समान लाल-लाल पैरों की अंगुलियों से निःसृत ज्योतिपुञ्ज पूर्णिमा के शरत् चन्द्र की कान्ति और धवलता को भी लज्जित कर रही है। देवी के कण्ठ में सुन्दर और सुकोमल पुष्पों की वनमाला है, जो चरणों तक लटक रही है। ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं के मुकुट की मणियों से भगवती के चरण-कमल झलक उठते हैं। वे शिवरूप सिंहासन पर कामेश्वर शिव के अंक (गोद) में सज-धजकर और बन-ठनकर बैठी हुई हैं।।१८५-१८९।।

शरदिन्दुसहस्रस्य कान्तिसन्तानहारिणीम् ।
कर्पूरादिसमायुक्तताम्बूलपूरिताननाम् ।।१९०।।
सुखप्रसादवचनैर्जितमाधुर्यसागराम् ।
कर्णचुम्बिस्फुरन्नीललोलाक्षक्षेपसुन्दरीम् ।।१९१।।

भगवती कामेश्वरी की अनुपम सौन्दर्य-सुषमा शरत् पूर्णिमा के हजारों चन्द्रमाओं से प्रसरित ज्योत्स्ना की शोभा का भी अपहरण करने वाली है। कपूर, लौंग, इलायची, सुपारी आदि से युक्त पान का बीड़ा भगवती के मुख में है। उनके मुख से निकलने वाले मधुर वचन मधु-सिन्धु की मधुरता को भी पराजित करने वाले हैं। उनकी चमकदार कजरारी आँखें कान तक फैली हुई हैं॥१९०-१९१॥

जगदाह्लादजननीं जगत्कारणरूपिणीम्।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं जगद्रञ्जनकारिणीम्।।१९२।।

सृष्टि की उपादान कारणस्वरूपा भगवती स्वयं अपनी प्रसन्नता के लिये स्वयं को संसार के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। संसार के सभी प्राणियों को उनके अनुकूल सुख-भोग देकर सुख और आह्लाद प्रदान करती हैं। जिन मन्त्र-साधनाओं से साधक को अभीष्ट की प्राप्ति होती है, उन मन्त्रों के रूप में वे स्वयं प्रतिष्ठिता हैं॥१९२॥

नानासद्रत्नसंयुक्तश्वेतच्छत्रविराजिताम् ।
कोटिकोटिधूपदीपैः परिवेष्टितमण्डलाम् ।
शब्दब्रह्ममयीं नित्यां भावयेत् साधकोत्तमः।।१९३।।

भगवती के सिंहासन पर सुन्दर, स्वच्छ तथा बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत श्वेत रंग का छत्र शोभायमान है। देवी जिस स्थान पर विराजिता हैं, उसके चारो ओर का स्थान कोटि दीपों से आलोकित तथा सुगन्धित धूपों के धूम्र से सुवासित है। वे शब्दब्रह्ममयी और नित्या हैं।

परमशिव ही परम ब्रह्म हैं। परब्रह्म से शब्दब्रह्म का आविर्भाव होता है। शब्द में ही अर्थ संश्लिष्ट है। अतः शब्द और अर्थ में अभेद है। शब्द ब्रह्म है और अर्थ शक्ति है। अतः आद्य शक्तिरूपिणी भगवती कामेश्वरी शब्दब्रह्ममयी हैं। शब्द वर्णों का समूह है। भगवती एकपञ्चाशत् वर्णरूपा होने के कारण शब्दरूपा हैं। शब्द ब्रह्म है। अतः भगवती शब्दब्रह्ममयी हैं। शब्दब्रह्म को हम चाहें 'शब्द और ब्रह्म' के रूप में व्यक्त करें अथवा 'शब्द ही ब्रंह्म' है, ऐसा कहें। दोनों ही दृष्टियों से देवी शब्दब्रह्ममयी सिद्ध होती हैं। वैयाकरण लोग स्फोट के रूप में शब्द को नित्य मानते हैं तथा ब्रह्म का स्वरूप सत् होने के कारण नित्य है—अविनाशी है। शब्दब्रह्ममयी होने के कारण भगवती नित्या हैं। इस प्रकार देवी के श्रेष्ठ साधक को एकाश्रयी मानस होकर उनका ध्यान करना चाहिए॥१९३॥

विमर्श—'नख-शिखवर्णन' संस्कृत और प्राचीन हिन्दी काव्य की एक उल्लेखनीय विधा है। इस सन्दर्भ में देवी के रूप का वर्णन नख से प्रारम्भ कर शिखा-पर्यन्त और सामान्य मानवी नायिका का रूप-वर्णन मुख से प्रारम्भ कर पद-पर्यन्त किये जाने का काव्यशास्त्रीय विधान है, जैसा कि महाकवि आचार्य केशव दास ने अपने लक्षणग्रन्थ 'कविप्रिया' में कहा है—

नख तें सिख लौं बरनिये, देवी दीपत देखि।
शिख तें नख लौं मानुसी, केशवदास विशेषि।।

केवल काव्यग्रन्थ ही नहीं; अपितु पुराणों और तन्त्रग्रन्थों में भी देवी के सांगोपांग रूप-निरूपण में इस काव्यशास्त्रीय परम्परा का निर्वाह मिलता है। यथा— श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (१६वें पटल) में भगवती कामेश्वरी का रूप-निरूपण 'पादपल्लवराजिताम्' (श्लोक १७) से प्रारम्भ कर 'स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटाम्' (श्लोक संख्या २५) तक किया गया है।

इसके बर-अक्स इस ग्रन्थ में ३४ और ३६ श्लोकों में जो दो साकार ध्यान बताये गये हैं, उनमें भगवती के सिर से पैर तक साकार रूप का निरूपण किया गया है। काव्यशास्त्र की मान्य परिपाटी के विरुद्ध भगवती के इस रूप-निरूपण का गहरा मनोवैज्ञानिक रहस्य है। इस रूप-निरूपण में उल्लेखनीय बात यह है कि ये दोनों ही ध्यान भगवती के सर्वथा स्वतन्त्र साकार रूप के ध्यान नहीं हैं; अपितु श्रीचक्र के त्रिकोण में पुञ्जीभूत उनके तेजोमय निराकार रूप का साकार रूप में क्रमिक रूपान्तरण का ध्यान है। इस प्रक्रिया में भगवती के निराकार रूप का ध्यान करके उनके तेजोमय निराकार रूप को क्रमिक रूप से साकार रूप में परिणत होते हुए देखना है। व्यक्ति की पहचान मुख-मण्डल से होती है; अत: जब निराकार साकार रूप ग्रहण करेगा, उस समय सर्वप्रथम मुखमण्डल की छवि ही उभरेगी। अत: यहाँ साकार रूप का निरूपण मुखमण्डल की छवि के निरूपण से प्रारम्भ किया गया है। प्रस्तुत सन्दर्भ की पृष्ठभूमि में यह निरूपण सर्वथा वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत है।

[निरुक्तध्यानप्रशस्ति:]

एवं परिणतां देवीमात्मानं चिन्तयेत् सदा।
तदाविष्टः सदा स स्यात्तथावेशः सदा भवेत् ।।१९४।।
तथाभिनयशीलश्च तथाचारस्तथा शुचिः।
सदा कामेश्वरो भूत्वा कामभोगान् समाचरेत्।।१९५।।
एवं हि ध्यानयोगेन भवेन्नान्यमना यदि।
तदा तन्मयतामेत्य जीवन्मुक्तो भवेत् सदा।।१९६।।

देवी का इस तरह ध्यान करके भाव-प्रवण साधक यह भावना करे कि वह स्वयं देवी के रूप में परिणत हो गया है। यह भावना करके वह स्वयं अपना ध्यान भगवती के रूप में करे। जो साधक इस प्रकार के भाव-ध्यान में सदैव निमग्न रहता है, वह सदा के लिये इसी भाव में अभिनिवेशित हो जाता है। देवी के समान अभिनय अर्थात् व्यवहार और आचरण करने वाला साधक कामेश्वर बनकर सभी

सांसारिक सुखों का भोग करता है। इस ध्यानयोग के प्रभाववश यदि साधक अन्यमनस्क हो जाता है, अर्थात् अपना स्वरूप विस्मृत करके देवी के साथ पूर्ण तन्मयता प्राप्त कर लेता है तो उसकी जीवन-मुक्ति हो जाती है॥१९४-१९६॥

निर्विकल्पः सदा ध्यानान्निःसङ्गो जायते सदा।
जरामरणमुक्तश्च महाभोगी महासुखी।।१९७।।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र विचरेद् भुवनत्रयम्।
नास्ति पापं नास्ति पुण्यं साक्षाद्देवः शिवो भवेत्।।१९८।।

इस ध्यानयोग के प्रभाव से जब साधक सर्वथा नि:संग और निर्विकल्प हो जाता है अर्थात् जब वह सांसारिक विषयों के प्रति सर्वथा अनासक्त हो जाता है और उसके मन में किसी वस्तु के लिये न तो कोई चाह होती है और न मन में कोई भाव ही उत्पन्न होता है, वह परमानन्दरूपी महान् भोग को प्राप्त कर परम सुखी हो जाता है। ऐसे सिद्ध साधक की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् उसकी कही हुई बात को सब लोग मानते हैं। वह तीनों लोकों में स्वतन्त्र और निर्बाध गति से विचरण करने में समर्थ होता है। कर्ता और भोक्ता के भाव से मुक्त ऐसे साधक को न तो कोई पाप लगता है और न पुण्य। वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है॥१९७-१९८॥

एवं सिद्धो दृढाभ्यासान्नानारूपाणि धारयेत्।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन दृश्यादृश्यश्च जायते।।१९९।।
पञ्चभूतात्मकं रूपं सूर्याचन्द्रमसोरपि।
ब्रह्मादीनां तथा रूपं देवगन्धर्वरक्षसाम्।।२००।।
पतत्रिणां पन्नगानामिच्छयैव हि जायते।
कल्पनादेव नश्यन्ति सिद्धयो वा जगत्त्रये।।२०१।।

ध्यानयोग के दृढ़ अभ्यास से सिद्ध साधक स्थूल अथवा सूक्ष्म, दृश्य या अदृश्य किसी भी प्रकार का रूप धारण कर सकता है। वह साधक अपने सामर्थ्य से पञ्चभूतात्मक कोई भी रूप धारण कर सकता है। वह अपनी इच्छामात्र से सूर्य- चन्द्रमा- ब्रह्मा आदि देवता, राक्षस, पक्षी या पन्नग (सर्प) का रूप धारण कर सकता है। यदि वह चाहे तो अपनी इच्छा मात्र से तीनों लोकों को ध्वस्त कर सकता है॥१९९-२०१॥

सर्वभूतानि संवेत्ति सर्वत्राव्याहता गतिः।
मारणोच्चाटनं चैव स्तम्भनं मोहनं तथा।।२०२।।
दृष्ट्वैव कुरुते सर्वं कल्पनादेव साधकः।
दासवत्त्रिजगत् सर्वं तस्मै बलिमुपाहरेत्।।२०३।।
कर्ता हर्ता तथा पाता शिवतुल्यो भवेत् सदा।

बलिं पूजाम्।

उसे सभी प्राणियों के तत्त्वरूप का ज्ञान होता है तथा सभी योनियों में निर्बाध रूप से उसकी गति होती है। उसे मारण-उच्चाटन या स्तम्भन आदि कर्म या प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती। उसकी इच्छामात्र से ये सभी कर्म स्वयमेव सम्पादित हो जाते हैं। चैतन्य प्राणी ही नहीं; अपितु वृक्ष, नदी, पर्वत आदि जड़ जगत् भी उसे उपहार देने के लिये लालायित रहता है। वह तीनों लोकों का सृष्टिकर्ता, सृष्टि-रक्षक तथा सृष्टि-हर्तारूप शिव बन जाता है॥२०२-२०३॥

[निरुक्तस्वरूपाया देव्या हृदयादावाहनम्]

एवं तां हृदयाम्भोजान्मुद्रयावाहयेत्ततः॥२०४॥

ततः अर्थात् इस प्रकार एकाग्रचित्त से और तन्मयतापूर्वक देवी का ध्यान (अर्चन एवं मन्त्रजप) करने के बाद भाव-प्रवण साधक यथाविहित मुद्रा-प्रदर्शन-पूर्वक हृदय से देवी का आवाहन करे॥२०४॥

[त्रिखण्डा मुद्रा]

परिवर्त्त्य करौ कृत्वा अङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ।
धारयेत्तर्जनीभ्याञ्च कनिष्ठाद्यद्वयं ततः॥२०५॥
मध्यमायुगलं मध्ये स्थापयित्वा कनिष्ठके।
निजस्थाने समायोज्य स्थापयेत् साधकोत्तमः॥२०६॥
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराह्वानकर्मणि।

त्रिखण्डामुद्रामाह तन्त्रसारे—

परिवर्त्य करौ स्पृष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ।
अनामाऽन्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती॥
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि।
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराध्यानकर्मणि॥

त्रिखण्डा-मुद्रा—दोनों करतलों को परस्पर जोड़ लें। अंगूठों को सीधा रखें। दोनों तर्जनी अंगुलियों को दोनों मध्यमाओं के बीच में तिरछा करके लगायें। दोनों कनिष्ठा अंगुलियों को अपने-अपने स्थान पर ही रहने दें। यह त्रिखण्डा मुद्रा है।

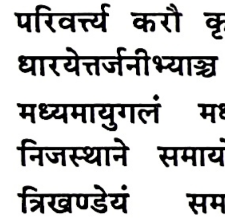
सर्वत्रिखण्डा

[त्रिखण्डया देव्या आवाहनम्]

अनयावाहयेद्देवीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्॥२०७॥

इस मुद्रा से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करें॥२०७॥

विमर्श—मूल ग्रन्थ में बताया गया त्रिखण्डा मुद्रा का लक्षण स्पष्ट नहीं है; अत: 'तन्त्रसार' से उद्धृत करके मुद्रा का लक्षण बताया गया है।

[पुष्पाञ्जलौ समानयनम्]

वहन्नासापुटेनैव वहन्तीं परमां कलाम्।
पुष्पाञ्जलौ समानीय पूर्वोक्तां भैरवीं जपन्।।२०८।।

[प्रार्थनामन्त्रः]

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।२०९।।

वहन्नासापुटेनेति। नासापुटप्रवाहितवायुना वहन्तीं विनिःसरन्तीम् । एवञ्च हृत्पङ्कजे देवीं ध्यात्वा नासारन्ध्रप्रवाहिवायुना तां विनिःसार्य पुष्पाञ्जलौ समानीय 'महापद्मे'त्यादिना तस्मादञ्जलेर्देवीं महायन्त्रे स्थापयेदिति क्रमः। अञ्जलिवियोजनन्तु स्थापनात् पूर्वं न कर्त्तव्यम्। स्फुटमाह गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

प्राणायामं ततः कृत्वा गृह्णीयात् कुसुमाञ्जलिम्।
पुष्पाञ्जलिं विना देवीं नाऽऽवाहयेत् कदाचन।
ततो ध्यायेन्महादेवीं यथोक्तां परमेश्वरीम्।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये जितप्राणोऽथ साधकः।
ऐक्यं सञ्चिन्तयेद्देव्या बाह्यान्तर्मूर्त्तियुग्मयोः।
ततस्तु वायुबीजेन वहन्नासापुटेन तु।
तच्चैतन्यं विनि:सार्य पुष्पाञ्जलौ निवेशयेत्।
नासिकावायुनि:सारात् पुष्पस्था देवता भवेत्।
यावत् संस्थापयेद्देवीं स्वहस्तं न वियोजयेत्।
कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात्तस्मान्महेश्वरि।
गन्धर्वैः पूज्यते देवीं पूजकैर्नाऽऽप्यते फलम्।। इति।

ध्यान करके त्रिखण्डा मुद्रा बनायें। उसमें कुछ पुष्प लें। त्रिपुरभैरवी मन्त्र-सहित आवाहन मन्त्र का जप करते हुए भगवती को बहिर्गामी श्वासमार्ग से हृदय से लाकर पुष्पों पर स्थापित करें। मन्त्र हैं—हस्रैं हस्कलह्रीं हस्रौ।।२०९।।

[यन्त्रे देव्याः स्थापनम्]

इत्युच्चार्य महायन्त्रे स्थापयेत् परदेवताम्।।२१०।।

उपर्युक्त मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करके उन्हें हृदय से हाथ में स्थित पुष्पों पर लाकर उन पुष्पों को भगवती के महायन्त्र पर स्थापित कर दें।।२१०।।

इसके बाद आवाहनी आदि मुद्रायें दिखायें। इन मुद्राओं के सचित्र लक्षण नीचे बनाये गये हैं। यथा—

[आवाहनी मुद्रा]

ऊद्ध्र्वाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत्।

ऊद्ध्र्वेति। ऊद्ध्र्वे स्थितमञ्जलिमधः कुर्यादवनमयेदित्यर्थः। न तु ऊद्ध्र्वमुखमञ्जलिमधोमुखं कुर्यादित्यर्थः कल्पनीयः, वक्ष्यमाणस्थापनीमुद्रया विरोधात्।

हस्ताभ्यामञ्जलिं बद्ध्वाऽनामिकामूलपर्वणोः।
अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत् ज्ञेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता।।

इति तन्त्रसारधृतवचने स्पष्टमभिधानाच्च। इयन्त्विति विपरीता अधोमुखी। तदुक्तं तन्त्रसारे—

अधोमुखी त्वियं चेत् स्यात् स्थापनीमुद्रिका स्मृता। इति।

आवाहनी मुद्रा—दोनों हाथों को अञ्जलिबद्ध करें। दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियों की जड़ में अंगूठों को लगायें। तत्पश्चात् अंजली को ऊपर उठायें। यह देवताओं के आवाहन करने की आवाहनी मुद्रा है।

आवाहनी मुद्रा के बाद स्थापिनी मुद्रा दिखायें। इसका सचित्र लक्षण इस प्रकार है—

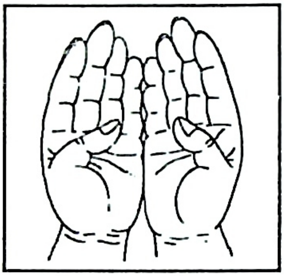

आवाहनी

[स्थापनी मुद्रा]

इयन्तु विपरीता स्यात्तदा वै स्थापनी भवेत्।।२११।।

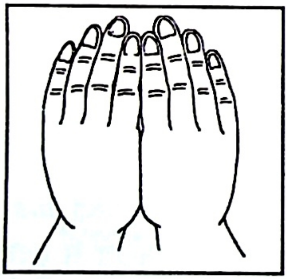

संस्थापनी

आवाहनी मुद्रा की दोनों हस्ताञ्जलि को नीचे यन्त्र के सामने लाकर अधोमुख कर देने से स्थापिनी मुद्रा बनती है।

स्थापिनी मुद्रा के बाद सन्निधापनी मुद्रा दिखायें। इस सन्निधापनी मुद्रा का सचित्र लक्षण इस प्रकार है—

[सन्निधापनी मुद्रा]

ऊद्ध्र्वाङ्गुष्ठौ मुष्टियुगं तदेयं सन्निधापनी।

दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधें। दोनों मुट्ठियों को परस्पर जोड़ लें। अंगूठों को सीधा खड़ा रखें। यह सन्निधापनी मुद्रा है।

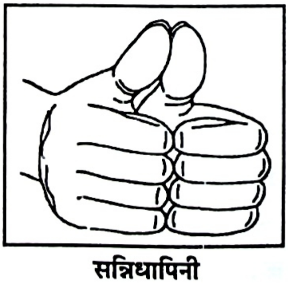

सन्निधापिनी

[सन्निरोधिनी मुद्रा]

अन्तराङ्गुष्ठमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निरोधिनी।।२१२।।

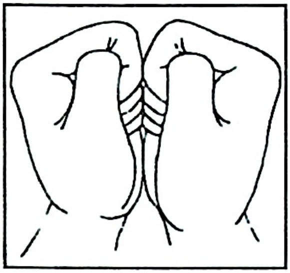

सन्निरोधिनी

सन्निरोधिनी मुद्रा—सन्निधापनी मुद्रा में अंगूठे सीधे खड़े रहते हैं। जब इन अंगूठों को मोड़कर मुट्ठी में दबा लिया जाता है, तब सन्निरोधिनी मुद्रा बनती है।।२१२।।

विमर्श—आवाहन, स्थापन, सन्निधापन एवं सन्निरोधन के बाद कतिपय अन्य क्रियामुद्रायें प्रदर्शित की जाती हैं। सर्वदेवोपयोगी इन मुद्राओं का उल्लेख इस ग्रन्थ में यहाँ नहीं किया गया है। क्रिया की पूर्णता के लिये इनका निरूपण अन्य ग्रन्थों के आधार पर किया जा रहा है।

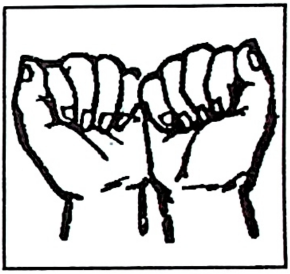

सम्मुखीकरणी

सम्मुखीकरण—सन्निरोधिनी मुद्रा की परस्पर अभिमुखी मुट्ठियों को सीधा कर देने से सम्मुखीकरण की मुद्रा बन जाती है। (तन्त्रसार)

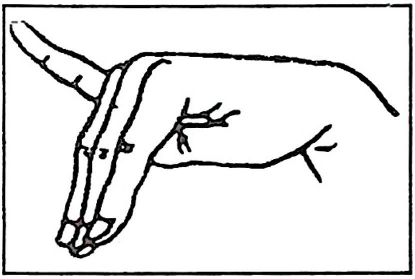

सकलीकरण की लेलिहान मुद्रा

सकलीकरण—सम्मुखीकरण करने के बाद आवाहित देवता का सकलीकरण किया जाता है। सकलीकरण की क्रिया लेलिहान मुद्रा से की जाती है। आगे श्लोकसंख्या २२१ में बताई गई लेलिहान मुद्रा का लक्षण इस प्रकार है—

दाहिने हाथ को अधोमुख करके तर्जनी, मध्यमा और अनामा को जोड़ दें। कनिष्ठा को अलग रखें। अंगूठे को मोड़कर अनामा अंगुलि के सिरे पर स्थापित कर दें। जीवन्यास की यह लेलिहान मुद्रा है।

अवगुण्ठन—सकलीकरण के बाद आवाहित देवता का अवगुण्ठन करें।

बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी अंगुली को सीधी करें। मुट्ठी को अधोमुख करके तर्जनी अंगुली को देवता के चारो ओर घुमायें। यह अवगुण्ठिनी मुद्रा है।

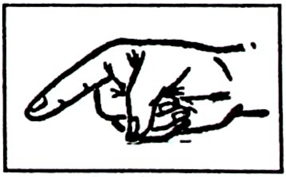

अवगुण्ठन

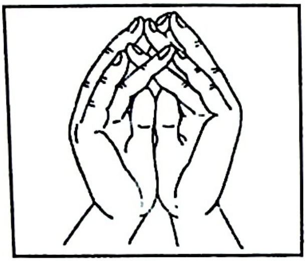
धेनु

अमृतीकरण (धेनुमुद्रा)—अवगुण्ठन के बाद देवता का अमृतीकरण किया जाता है। इस हेतु धेनुमुद्रा दिखाई जाती है—

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर जोड़ लें। दाहिनी अनामा को बाँयीं कनिष्ठ से, बाँयीं अनामा को दाहिनी कनिष्ठा से जोड़ दें। इसी प्रकार दाहिनी मध्यमा को बाँयीं तर्जनी से तथा बाँयीं मध्यमा को दाहिनी तर्जनी से जोड़ दें।

पूजन में यथा-यथाक्रम में अमृतीकरण के लिये यह धेनुमुद्रा दिखाई जाती है।

परमीकरण (महामुद्रा)—दोनों हाथों के अंगूठों को परस्पर फँसा लें। शेष सभी अंगुलियों को फैलायें। करतलों को अधोमुख रखें। देवता की आवाहन क्रिया में प्रयुक्त यह महामुद्रा है।

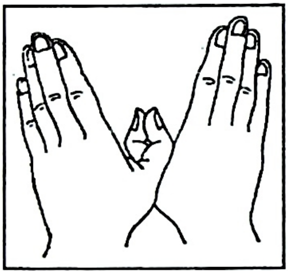
परमीकरण–मुद्रा

[आवाहनस्वरूपम्]

स्वत एवाभिपूर्णाया देवतायाः प्रपूजने।
सादरं सम्मुखीभाव आवाहनमिहोच्यते।।२१३।।

देवता के पूजन के लिये मुद्राओं के द्वारा जो उपर्युक्त क्रियायें सम्पन्न की गईं, उन क्रियाओं के अर्थ और प्रयोजन का निरूपण अगले १० श्लोकों में किया गया है। सर्वप्रथम आवाहन का भाव-निरूपण किया जा रहा है—

देवता स्वभावत: अपने-आपमें सम्पूर्ण है। वह अपने सम्पूर्ण रूप में पूजन के लिये उपस्थित है—देवता के प्रति सम्पूर्ण आदर और सम्मान के साथ यह भावना करना ही देवता का आवाहन है॥२१३॥

[स्थापनस्वरूपम्]

विभोर्निवेशनं यन्त्रे स्थापनं कथितं बुधैः।।२१४।।
पूजां प्रपूज्यमानस्तु गृहीत्वाऽनुग्रहादिकम्।

देवता एकदेशीय नहीं; अपितु विभु है—सर्वव्यापक है। उस सर्व-व्यापक देव-तत्त्व का पूजन के लिये 'यन्त्र' में निवेदन अर्थात् प्रवेश कराने की क्रिया को

बुद्धिमानों ने 'स्थापन' कहा है। देवता की अनुज्ञा प्राप्त करके ही उसका पूजन प्रारम्भ करना चाहिए॥२१४॥

[सन्निधापनस्वरूपम्]

कर्त्तुं सान्निध्यमस्यास्तु तत्सान्निध्यं प्रचक्षते॥२१५॥

इस सर्वव्यापी पूजनीय देवता के साथ स्वयं अपनी निकटता अर्थात् अभेद-स्वरूपता की अनुभूति ही सन्निधापन है॥२१५॥

[सन्निरोधस्वरूपम्]

आकर्मकाण्डपर्यन्तं सान्निध्यं हि विभोश्च यत् ।
स सन्निरोध उद्दिष्टो भक्तितो मन्त्रविन्नरैः॥२१६॥

आवाहन से लेकर विसर्जन-पर्यन्त सम्पूर्ण अर्चनकर्म में विभुस्वरूप देवता के साथ श्रद्धापूर्वक अभेदभाव बनाये रखना सन्निरोधन है॥२१६॥

[अवगुण्ठनम्]

आनन्दायतनं तत्त्वं सच्चिदानन्दलक्षणम्।
तदत्र सकले व्याप्तं ध्येयं स्यादवगुण्ठनम्॥२१७॥

सच्चिदानन्द जिसका स्वरूपलक्षण है और सघन आनन्द ही जिसका विग्रह है, ऐसे निष्कल ब्रह्मतत्त्व का 'सकल' अर्थात् अंगों-उपांगों-सहित पूजायन्त्र में व्याप्त होने की भावना करना अवगुण्ठन है॥२१७॥

[सकलीकरणम्]

सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षड्भिरथैकताम्।

सकलीकरण के स्वरूप और विधि का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है। यहाँ अमृतीकरण और परमीकरण का अर्थ बताया जा रहा है—

[अमृतीकरणम्]

अङ्गनामङ्गला(?)सार्द्धं विदध्यादमृतीकृतम्॥२१८॥

षडङ्ग मन्त्रों से सकलीकरण करने के बाद उन अंगों का परस्पर संयुक्तीकरण करना 'अमृतीकरण' है॥२१८॥

[परमीकरणम्]

क्षमा तस्यापराधानां विज्ञेया परमीकृतिः॥२१९॥

साधक के समस्त अपराधों को जानते हुए भी उन्हें क्षमा कर देने का भाव देवता के हृदय में प्रकाशित करना 'परमीकरण' है॥२१९॥

[जीवन्यासः]

जीवन्यासं ततः कुर्यात् पूर्वोक्तमन्त्रमुच्चरन्।
कुशस्य विष्टरेणापि लेलिहानेन वा बुधः॥२२०॥

सकलीकरण आदि करने के बाद बुद्धिमान् साधक प्राण-प्रतिष्ठामन्त्र से यन्त्र में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा या जीवन्यास करे। यह क्रिया लेलिहान मुद्रा अथवा कुश के विष्टर से की जाय।।२२०।।

[लेलिहामुद्रा]

तर्जनीमध्यमानामाः समं कुर्यादधोमुखम्(?)।
अनामायां क्षिपेद् वृद्धामृजुं कृत्वा कनिष्ठिकाम्।
लेलिहा नाम मुद्रेयं जीवन्यासे प्रकीर्त्तिता।।२२१।।

दाहिने हाथ को अधोमुख करके उसकी तर्जनी-मध्यमा और अनामा—इन तीन अंगुलियों को परस्पर जोड़ें। कनिष्ठा को अलग रखें। अंगूठे को मोड़कर अनामा के मूल से जोड़ दें। यह लेलिहान मुद्रा है।।२२१।। (चित्र ८४९ में द्रष्टव्य)

[सकलीकरणस्वरूपम्]

वह्न्यादिदिक्षु वा देव्यास्तत्तदङ्गेषु वा सुधीः।
षडङ्गं कल्पयेदेतत् सकलीकरणं भवेत्।।२२२।।

वह्न्यादीति। तत्तदङ्गेषु हृदयादिषडङ्गेषु। 'षडङ्गं कल्पयेदि'ति षडङ्गमन्त्रैरित्यर्थः। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

अङ्गमन्त्रात् न्यसेद्देवि देव्यङ्गे साधकोत्तमः।
सकलीकरणं नाम मुद्रेयं व्याप्तिरूपिणी।। इति।

यन्त्र में प्रतिष्ठित निष्कल देवतत्त्व में अग्निकोण आदि कोणों और दिशाओं में हृदय आदि अंगों की स्थापना या कल्पना करना देवता का सकलीकरण है।।२२२।।

[त्रितालादिपरमीकरणान्तं कर्म]

त्रितालं दशदिग्बन्धमवगुण्ठनमाचरेत्।
धन्वाख्ययाऽमृतीकृत्य परमीकरणञ्चरेत्।।२२३।।

त्रितालादिक्रमः पूर्वमेव विशदीकृतः। परमीकरणञ्चरेदिति परमीकरणमुद्रयेत्यर्थः। परमीकरणमुद्रामाह तन्त्रसारे—

अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितपराङ्गुली।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः।। इति।

परमीकरणस्वरूपमाह गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

सर्वापराधजातानां सहिष्णुत्वप्रकाशकम्।
परमीकरणं नाम सम्प्रार्थनमिहोच्यते।। इति।

बाँयीं हथेली पर दाहिने हाथ की अंगुलियों से त्रिताल देकर दिग्बन्धन करके अवगुण्ठन करे। फिर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके परमीकरण करे॥२२३॥

[परिवारदेवतास्वरूपम्]

एवं कृत्वा तच्छरीरान्मयूखनिकरान् बहिः।
विनिःसृत्य स्थिरीभूतं परिवारं विचिन्तयेत्।।२२४।।

एवमिति। देवीशरीरान्मयूखरूपेण बहिराविर्भूता देवता एव परिवारा इत्यर्थः।

देवी के शरीर से किरण-समुद्रों के रूप में बाहर आकर अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर स्थित देवताओं को देवी के परिवार के रूप में ध्यान करे॥२२४॥

[मुद्रानवकदर्शनोपदेशः]

वक्ष्यमाणोक्तविधिना नव मुद्राः प्रदर्शयेत्।

अयं त्रिपुरार्चने दर्शयितव्या नव मुद्राः क्रमेण निरूपयति—**वक्ष्यमाणेत्यादिना।**

इसके बाद देवी को यथाविधि ९ मुद्रायें दिखायें।

[तत्र सर्वसंक्षोभणी मुद्रा]

मध्यमामध्यमे कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठरोधिते।।२२५।।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके।
सर्वसंक्षोभणीनाम्नी मुद्रेयं क्षोभयेज्जगत्।।२२६।।

तत्र प्रथमां सर्वसंक्षोभणीमुद्रामाह—**मध्यमेत्यादिना।** अत्र कनिष्ठेऽङ्गुष्ठरोधित इति सन्धिरार्षः। हस्तयोर्मध्यमाङ्गुलेर्मध्यमे पर्वणि स्थापिते कनिष्ठे अङ्गुष्ठाभ्यां रोधिते कृत्वा तर्जनीद्वयं दण्डवत् सरलं कृत्वा अनामिकाद्वयं मध्यमाद्वयोपरि स्थापयेदिति फलितार्थः। सर्वजगत्संक्षोभणकारित्वादस्या मुद्रायाः सर्वसंक्षोभणीति संज्ञा। तदुक्तं तन्त्रसारे—

मध्यमामध्यगे कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके।
एषा च प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी। इति।

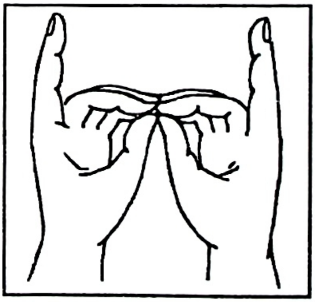

सर्वसंक्षोभिणी

सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा—दोनों हथेलियों को आमने-सामने लाकर दोनों हाथों की मध्यमा अंगुलियों को मध्य में स्थापित करें। दोनों अंगूठों से दोनों कनिष्ठा अंगुलियों को मोड़कर पकड़ें। दोनों अनामिकाओं को मध्यमाओं पर स्थापित करें तथा दोनों तर्जनी अंगुलियों को दण्ड के समान सीधी रखें। यह सारे संसार को क्षोभित करने वाली सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा है॥२२५-२२६॥

[सर्वविद्रावणी मुद्रा]

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा।
सर्वविद्रावणीनाम्नी मुद्रेयं द्रावयेत् क्षणात्।।२२७।।

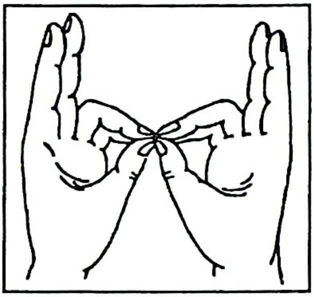

सर्वविद्राविणी

द्वितीयामाह—**एतस्या इति**। एतस्याः सर्व-संक्षोभण्या मुद्राया मध्यमाङ्गुल्यौ सरले अवक्रे चेत् सर्वविद्रावणी मुद्रा भवति। तन्त्रसारेऽप्याह—

एतस्या एव मुद्राया मध्यगे सरले यदा।
क्रियेते परमेशानि सर्वविद्राविणी तदा।। इति।

सर्वविद्राविणी मुद्रा—सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा में मध्यमा मुड़ी हुई है। यदि मध्यमा अंगुलियाँ भी सीधी रखी जायँ तो सारे संसार का द्रावण करने वाली सर्वविद्राविणी मुद्रा बन जाती है।।२२७।।

[सर्वाकर्षिणी मुद्रा]

मध्यमा तर्जनी युग्मे वक्रे कुर्याद् यथाविधि।
एतस्या एव मुद्रायास्तदाकर्षणकर्मणि।।२२८।।

तृतीयामाह—**मध्यमेति**। निरुक्तमुद्रया मध्यमातर्जन्योरुभयोर्वक्रत्वे सर्वाकर्षिणी मुद्रा भवति। मुद्रा चैषा साधकजगदाकर्षणशक्तिमाविर्भावयति।

मध्यमातर्जनीभ्याञ्च कनिष्ठानामिके समे।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि।
अङ्गुष्ठन्तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी परा।

इति तन्त्रसारधृतवचनानुसारेण तु कनिष्ठानामिकयोरवक्रत्वं कनिष्ठानामिकयोरुपर्यङ्गुष्ठस्थापनञ्चेति विशेषो दृश्यते।

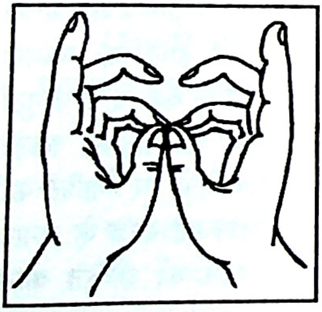

सर्वाकर्षिणी

सर्वाकर्षिणी मुद्रा—सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा बनाकर यदि मध्यमा और तर्जनी अंगुलियों को अंकुश के समान वक्र कर दिया जाय तो सर्वाकर्षणी मुद्रा बन जाती है। 'तन्त्रसार' के अनुसार मध्यमा पर अंगूठे को तथा अनामिका पर कनिष्ठा को लगायें।।२२८।।

[सर्ववश्यकरी मुद्रा]

परिवर्त्तनमार्गेण स्वाङ्गुलीः सम्मुखा यजेत् ।
अङ्गुष्ठयोर्वक्त्रदेशे तर्जन्यावङ्कुशाकृती।
सर्ववश्यकरीनाम्नी मुद्रेयं वशकारिणी।।२२९।।

चतुर्थीमाह—**परिवर्त्तनेत्यादिना**। अत्र पूर्वतो 'मध्यमातर्जनीयुग्म' इत्याद्यध्याहार्यम्। एवञ्चाऽऽभिमुख्येन वक्रयोस्तर्जन्योरधो मध्यमे तदधः परिवर्त्तनक्रमेणानामिके ततस्तेनैव क्रमेण कनिष्ठे अङ्गुष्ठयोर्वक्त्रदेशे अग्रे निविडं सङ्गताः कुर्यात् इत्येवाऽऽह—**स्वाङ्गुलीः सम्मुखा यजेदित्यनेन**। यजेत् परस्परं सङ्गमयेदित्यर्थः। तर्जन्यौ अङ्कुशाकृती अङ्कुशवद् वक्रे कुर्यात्। न तु अङ्कुशाकृती तर्जन्यौ अङ्गुष्ठयोर्वक्त्रदेशे निवेशयेदिति सम्बन्धः, तन्त्रसारे सर्वासामङ्गुलीनामुपरि अङ्गुष्ठनिवेशनस्य व्यक्तमुक्तत्वात्। तथाच तन्त्रसारे—

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावङ्कुशाकृती।
परिवर्त्तक्रमेणैव मध्यगे तदधोगते।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके तथा।
संयोज्य निविडाः सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता।। इति।

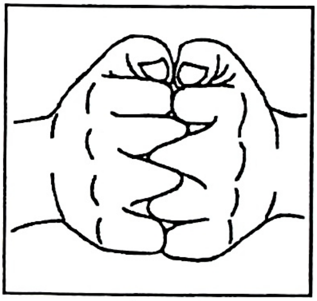
सर्ववशंकरी

सर्ववशंकरी मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर आमने-सामने से जोड़ें। तर्जनी अंगुलियों को अंकुशाकार बनायें। फिर दोनों हाथों की शेष मध्यमा, अनामा और कनिष्ठा अंगुलियों को मोड़कर एक-दूसरे से फँसा दें। अंगूठों के अग्रभाग को परस्पर जोड़ दें। यह सर्ववश्यकरी मुद्रा है।।२२९।।

[सर्वोन्मादिनी मुद्रा]

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम्।।२३०।।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ।
मुद्रैषोन्मादिनीनाम्नी क्लेदिनी सर्वयोषिताम्।।२३१।।

अथ पञ्चमीमाह—**सम्मुखाविति**। करौ परस्परं सम्मुखौ कृत्वा अन्त्यजे कनिष्ठिके मध्यमयोर्मध्यगे मध्यपर्वसंस्थे कुर्यात्। अनामिके सरले अवक्रे कृत्वा

तद्वहिस्तर्जनीद्वयं स्थापयेत्। ततो दण्डाकारौ सरलावङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ कुर्यात् मध्यमयोर्नखदेशे सरलावङ्गुष्ठौ योजयेदित्यर्थः। सर्वयोषितां क्लेदिनी आर्द्रतासम्पादिनीयमुन्मादिनी मुद्रा।

प्रायः समानुपूर्वीकवचनेनोक्तेयं मुद्रा तन्त्रसारेऽपि—

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे।
अनामिके तु सरले तद्वहिस्तर्जनीद्वयम्।।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम्ना कर्षिणी सर्वयोषिताम्।। इति।

सर्वोन्मादिनी मुद्रा—दोनों हाथों को आमने-सामने करके दोनों कनिष्ठाओं को मध्यमा के मध्य पर्व से मिलायें। दोनों अनामिकाओं को सीधी रख़ते हुए उनके ऊपर दोनों तर्जनियों को स्थापित करें। फिर दोनों अंगूठों को दण्डाकार बनाकर मध्यमा के नखप्रदेश में स्थापित करें। इस मुद्रा से सभी नारियों का आकर्षण होता है।।२३०-२३१।।

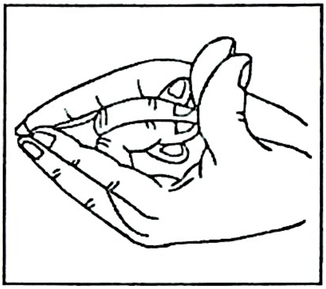

सर्वोन्मादिनी

[महाङ्कुशा मुद्रा]

एतस्या एव मुद्राया अनामातर्जनीक्रमात्।
अङ्कुशाकाररूपेण योजयेत् साधकोत्तमः।
इयं महाङ्कुशानाम्नी सर्वकार्यार्थसाधिका।।२३२।।

षष्ठीमाह—एतस्या इति। एतस्या उन्मादिनीमुद्राया क्रमेणानामिकाद्वयं तर्जनीद्वयञ्च अङ्कुशाकाररूपेण यदि योजयेत् तदा महाङ्कुशाख्या मुद्रा भवति। व्यक्तमाह तन्त्रसारे—

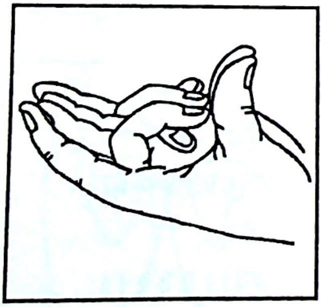

महांकुशा

अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधःकृत्वाऽङ्कुशाकृती ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्।।
इयं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिनी। इति।

अस्या इति उन्मादिनीमुद्रायाः।

महाङ्कुशा मुद्रा—पहिले उन्मादिनी मुद्रा बनायें। दोनों अनामिकाओं को अङ्कुशाकार बनाकर अधोभाग में स्थापित करते हुए दोनों तर्जनियों को भी अंकुशाकार बनाकर उनसे मिला दें। यह मुद्रा सभी कामनाओं को सिद्ध करती है।।२३२।।

[खेचरी मुद्रा]

सव्यं दक्षिणहस्ते तु दक्षिणं वामहस्तके।
परिवेष्टनमार्गेण कनिष्ठानामिके ततः।।२३३।।
तर्जनीभ्याञ्च संरुध्य मध्यमे सरले ततः।
योन्याकारस्वरूपेण योजयेत् साधकोत्तमः।।२३४।।
इयन्तु खेचरीनाम्नी मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा।।२३५।।

अथ सप्तमीमाह—सव्यमित्यादिना। सव्यं वामहस्तं दक्षिणहस्ते दक्षिणञ्च वामहस्ते योजयेत्, ततः परिवेष्टनमार्गेण कनिष्ठानामिके योजयेत् वामहस्तस्य कनिष्ठया दक्षहस्तस्य अनामिकां दक्षहस्तस्य कनिष्ठया वामहस्तस्यानामिकाञ्च परिवेष्टयेदित्यर्थः। तर्जनीभ्यामिति। तथा सरले अवक्रे मध्यमे प्रागुक्तरीत्या तर्जनीभ्याञ्च संरुध्य योन्याकारेण स्थापयेदिति खेचरी मुद्रा।

सव्यं दक्षिणदेशे तु सव्यदेशे तु दक्षिणम्।
बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्त्य च।।
कनिष्ठानामिके देवि युक्त्वा तेन क्रमेण तु।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोद्र्ध्वमपि मध्यमे।।
अङ्गुष्ठौ तु महेशानि सरलावपि कारयेत्।
इयं सा खेचरी नाम्ना पार्थिवस्थानयोजिता।।

इति तन्त्रसारधृतवचने तु अङ्गुष्ठयोः सारल्येन अवस्थानमिति विशेषो दृश्यते।

खेचरी मुद्रा—बाँयें हाथ को दाँईं ओर तथा दाँयें हाथ को बाँयीं ओर रखकर पलट दें। फिर बाँयें हाथ की कनिष्ठा और अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठा और अनामिका से संयुक्त कर दें। दोनों मध्यमाओं के ऊपरी भाग को दोनों तर्जनी अंगुलियों से दबायें तथा अंगूठों को सीधा रखें।।२३३-२३५।।

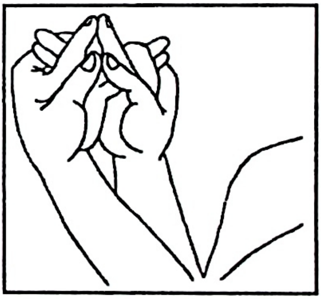

खेचरी

[खेचरीमुद्राप्रशस्तिः]

प्रयतोऽप्रयतो वाऽपि शुचिर्वाऽप्यथवाऽशुचिः।
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वाऽपि भुञ्जानो मैथुने रतः।।२३६।।
मुद्राया मध्यमाङ्गुल्यौ परिवर्त्तक्रमेण तु।
पार्थिवस्थानसंयुक्ताः सद्यः खेचरतां व्रजेत्।।२३७।।

एतया ज्ञातया चैव योगिनीनां भवेत् प्रियः।।२३८।।

इन तीन श्लोकों में खेचरी मुद्रा का प्रशस्ति-गान किया गया है। साधक चाहे संयमी हो अथवा असंयमी, पवित्र हो अथवा अपवित्र, चल रहा हो अथवा खड़ा हो, भोजन कर रहा हो या मैथुन कर रहा हो, गरज यह कि वह जिस स्थिति में हो, इस खेचरी मुद्रा में मध्यमा अंगुलियों को मोड़कर अंगूठे से जोड़ने पर आकाश में विचरण करने लगता है अर्थात् योगिनियों का प्रियपात्र होता है।।२३६-२३८।।

[बीजमुद्रा]

परिवर्त्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती भवेत्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं पुगपत् कारयेद् बुधः।।२३९।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्य सर्वाधस्तादनामिके।।२४०।।
बीजमुद्रेयमाख्याता सर्वसिद्धिप्रवर्त्तिनी।।२४१।।

अष्टमीमाह—**परिवर्त्त्येति।**

परिवर्त्त्य करौ स्पष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत् ततः।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके।।
बीजमुद्रेयमचिरात् सर्वसिद्धिविवर्धिनी। इति तन्त्रसारे।

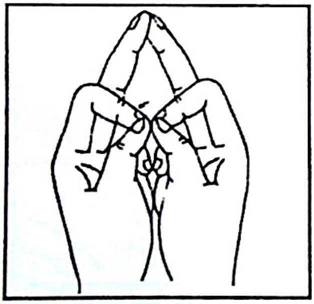

बीजम्

बीजमुद्रा—दोनों हाथों को परस्पर सटा कर अर्धचन्द्राकार बनायें। दोनों तर्जनी तथा अँगूठों को एक साथ रखें। दोनों मध्यमाओं के निचले भाग को कनिष्ठाओं से दबायें। सभी अंगुलियों के निम्न भाग में अनामाओं को टेढ़ा रखकर मध्यमा से मिलायें। बीज-मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध यह मुद्रा सभी सिद्धियों को सक्रिय करने वाली है।।२३९-२४१।।

[योनिमुद्रा]

मध्यमे कुटिलाकारे तर्जन्युपरिसंस्थिते।
अनामिकामध्यगते तथैव च कनिष्ठिके।।२४२।।
सर्वा एकत्र संयोज्य अङ्गुष्ठपरिपीडिताः।
योनिमुद्रेयमाख्याता त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।।२४३।।

अथ नवमीं योनिमुद्रामाह—**मध्यम इति**। कुटिलाकारे मध्यमे तर्जन्युपरिसंस्थिते कुर्यात्, तथा कनिष्ठिके अनामिकामध्यगते विदधीत। ततश्च सर्वा अङ्गुलीरेकत्र संयोज्य अङ्गुष्ठाभ्यामवष्टब्धाः कुर्यादिति योनिमुद्राबन्धनक्रमः। त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकेति सर्वोत्पत्तिभूमित्वाद् योनेरित्यर्थः।

मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरिसंस्थिते।
अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके।।
सर्वा एकत्र संयोज्य अङ्गुष्ठपरिपीडिताः।
एषा तु परमा मुद्रा योनिमुद्रेयमीरिता।। इति तन्त्रसारे।

एतासां मुद्राणां पूजाकाले प्रयोगमाह तत्रैव—

एता मुद्रा महेशानि त्रिपुराया मयोदिताः।
पूजाकाले प्रयोक्तव्याः सन्ध्यानुक्रमयोगतः।। इति।

योनि-मुद्रा—दोनों मध्यमाओं को मोड़कर दोनों अनामिकाओं पर स्थापित करें। तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को स्वाभिमुख मिलाकर रखें। दोनों कनिष्ठाओं को अनामिका अँगुलियों के मध्य में स्थापित करें। सभी अंगुलियों को जोड़कर उन्हें अंगूठों से दबायें। तीनों लोकों की उत्पत्ति-मातृकास्वरूप होने के कारण इसे योनि मुद्रा कहते हैं।।२४२-२४३।।

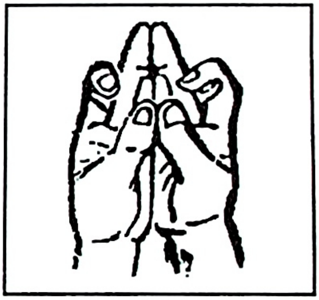

सर्वयोनि

विमर्श—तान्त्रिक पूजा में मुद्राओं का अत्यन्त महत्त्व है। यद्यपि तन्त्रग्रन्थों में इनके स्वरूप और लक्षण का निरूपण किया गया है, मुद्राओं के चित्र भी प्रकाशित हैं; मगर सभी व्यक्ति सभी मुद्रायें नहीं बना सकते। सक्षम गुरु से सीखकर ही मुद्रायें बनाने की कला आती है।

[निरुक्तमुद्राबीजनिरूपणम्]

बीजानि क्रमतो वक्ष्ये मुद्राणां तन्त्रवर्त्मना।
पञ्चबाणं समुद्धृत्य शूलबीजं लिखेत्ततः।।२४४।।
शिवः शक्तिः कान्तपान्तं भगरेफेन्दुमण्डितम्।
सदाशिवस्य बीजन्तु वाग्भवं नवमं स्मृतम्।।२४५।।

अथ क्रमेण निरुक्तसर्वसंक्षोभण्यादिमुद्रासु प्रयोज्यानि बीजानि निरूपयति—पञ्चबाणमित्यादिना। पञ्चबाणबीजानि तु पञ्चदशे 'थान्तद्वयमि'त्यादिना (३५३ श्लो०) मूले टीकायाञ्च प्रदर्शितानि। पञ्चबाणं समुद्धृत्य द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति बीजपञ्चक-मुद्धृत्येत्यर्थः। एवञ्च सर्वसंक्षोभण्यादिसर्वोन्मादिन्यन्तमुद्रापञ्चके निरुक्तबीजपञ्चकं

प्रयुञ्जीतेति बोध्यम्। ततश्च द्रामित्युक्त्वा सर्वसंक्षोभणीं मुद्रां प्रदर्शयेत्। एवं द्रीं सर्वविद्रावणीम्। क्लीं सर्वाकर्षिणीम्। ब्लूं सर्ववश्यकरीम्। सः सर्वोन्मादिनीम् । शूलबीजं क्रों। एवञ्च क्रोमित्युक्त्वा महाङ्कुशां मुद्रां प्रदर्शयेत्। अथ सप्तम्यां खेचरीमुद्रायां बीजयोजनमुपदिशति—**शिव** इत्यादिना। शिवो हकारः, शक्तिः सकारः, कान्तः खकारः, पान्तः फकारः, स च फकारो भगेनैकादशस्वरेण रेफेण इन्दुनाऽनुस्वारेण च मण्डितः। एतेन ह स ख फ्रें इत्युत्त्वा खेचरीमुद्रां प्रदर्शयेदिति बोध्यम्। अष्टम्यां बीजमुद्रायां बीजयोगमाह—**सदेति**। सदाशिवस्य बीजं ह्सौरिति। एवञ्च ह्सौरित्युत्त्वा बीजमुद्रां प्रदर्शयेदित्यर्थः। वाग्भवमिति ऐँ इति वाग्भवबीजपूर्विकां नवमीं योनिमुद्रां प्रदर्शयेदित्यर्थः। गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

सन्दर्शयेत् स्वस्वबीजपूर्वं मुद्रास्ततो नव।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मदमहाङ्कुशाः ।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्ततः क्रमात्।
एता मुद्रा महेशानि बन्धूककुसुमप्रभाः।।
स्वस्वमुद्राकराः सर्वाः श्रीविद्यासम्मुखी स्मरेत्।। इति।

तन्त्रशास्त्र में बताये गये मुद्राबीजों का निरूपण कर रहा हूँ। मुद्रायें ९ (नौ) हैं; अतः बीज भी ९ हैं। इनमें से पाँच बाणबीज हैं। जिनका स्वरूप पहिले ही बताया जा चुका है। यथा—द्रां-द्रीं-क्लीं-ब्लूं सः। शूल बीज (क्रौं)। ६ठा बीज है। शिव (ह), शक्ति (स), कान्त (ख), पान्त (फ) जो भग (ए), रेफ ('र') तथा इन्दु (अनुस्वार) से मण्डित है। इन वर्णों की योजना से सातवाँ बीज निष्पन्न हुआ—हसखफ्रें। सदाशिव बीज—'हसौः' आठवाँ तथा वाग्भव (ऐं) नवम बीज है।।२४४-२४५।।

'द्रां-द्रीं-क्लीं-ब्लूं-सः-क्रों-हसखफ्रें-हसौः तथा ऐं—ये क्रमशः ९ मुद्राओं के बीज हैं, जिनकी योजना मुद्रा के नाम के आगे की जाती हैं। यथा—द्रां सर्वक्षोभण्यै नमः' आदि।

[तर्पणोपदेशः]

तर्पणञ्च ततः कुर्यात्त्रिवारं तत्त्वमुद्रया।

तर्पणञ्चेति। तत्त्वमुद्रालक्षणमाह गन्धर्वतन्त्रे त्रयोदशपटले—

अङ्गुष्ठानामिकायोगं(:) तत्त्वमुद्रेयमीरिता।
अङ्गुष्ठं शिवमित्याहुरनामा शक्तिरुच्यते।।
तर्पणन्तु तयोर्योगादमृतैर्वामपाणिना।। इति।

मुद्राप्रदर्शन के बाद तत्त्व-मुद्रा से तीन बार तर्पण करें।

[षोडशोपचारैः पूजनस्योपदेशः]

उपचारैः षोडशभिः पूजयेत् परमेश्वरीम्।।२४६।।

उपचारैरिति। उपचारपदव्युत्पत्तिमाह तत्रैव—

भक्त्यैवैते कृता देवे साधकं देवसन्निधिम्।
चारयन्ति यतस्तस्मादुच्यन्ते चोपचारकाः।।
समीपे चरणाद् वाऽपि कलाकान्ते तथोदिताः।। इति।

तत्पश्चात् षोडश उपचारों से परमेश्वरी की पूजा करें।।२४६।।

त्रितत्त्वैर्वह्निजायान्तैस्त्रिधाऽर्घ्यं परिकल्पयेत्।।२४७।।
मूलस्य च त्रिषु त्रीणि बीजानि विनियोज्य च।
बालामन्त्रेण मन्त्रज्ञ उपचारान्निवेदयेत्।।२४८।।

मूल मन्त्र के तीन बीजों में से प्रत्येक बीज के साथ 'ऐं-ह्रीं-श्रीं' रूप तीन बीजों और 'स्वाहा' की योजना करके तीन तत्त्वों-सहित तीन बार अर्घ्य प्रदान करें। मन्त्रवित् साधक सभी उपचार बालामन्त्र से प्रदान करे।।२४७-२४८।।

[षोडशोपचाराः]

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च।।२४९।।
सुगन्धसुमनोदीपधूपनैवेद्यवन्दनाः।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश।।२५०।।

अथ क्रमेणोपचारान् विभजते—**आसनमित्यादिना पञ्चोपचारिका इत्यन्तेन।** स्पष्टम्। तत्राऽऽसने विशेषमाह गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

सौवर्णं राजतं वास्त्रं तथा रत्नविनिर्मितम्।
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा।।
न पत्रमासनं दद्यात् कदाचिदिह पूजने।
यथोक्तविधिना देव्यै रक्तकम्बलमेव वा।।
स्वमेरुपादपीठान्ते पद्मकल्पितमासनम्।
भोगमोक्षप्रदे मातस्तिष्ठस्व परमेश्वरि।।
अनेनैवाऽऽसनं देव्यै यो दद्याद्विहितं शिवे।
भुक्तिमुक्ती करे तस्य सर्वत्र स्थानवान् भवेत्।। इति।

अन्येषामप्युपचाराणां स्वरूपमत्रैव प्रदर्शितं नेहोच्यते विस्तरभयात्।

(१) आसन, (२) स्वागत, (३) पाद्य, (४) अर्घ्य, (५) आचमन, (६) मधुपर्क, (७) आचमन, (८) स्नान, (९) वस्त्र, (१०) आभूषण, (११) गन्ध, (१२) पुष्प, (१३) दीप, (१४) धूप, (१५) नैवेद्य तथा (१६) प्रणाम—पूजा के ये १६ उपचार हैं।।२४९-२५०।।

[तत्र कल्पान्तरम्]

अथवा कल्पयेन्मन्त्री पाद्यार्घ्याचमनीयकम्।
स्नानं वस्त्रं तथा भूषां गन्धप्रसूनधूपकम्।।२५१।।
प्रदीपकञ्च नैवेद्यमाचान्तार्थं जलं पुनः।
ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश।।२५२।।

अथवा विकल्पतः पूजन के षोडश उपचार हैं—(१) पाद्य, (२) अर्घ्य, (३) आचमनीय, (४) स्नान, (५) वस्त्र, (६) आभूषण, (७) गन्ध, (८) पुष्प, (९) धूप, (१०) दीप, (११) नैवेद्य, (१२) पुनराचमनीय, (१३) ताम्बूल, (१४) अर्चनास्तोत्र, (१५) तर्पण और (१६) प्रणाम॥२५१-२५२॥

[दशोपचाराः]

अर्घ्यं पाद्यं निवेद्याथ जलमाचमनीयकम्।
मधुपर्कञ्चाऽऽचमनं गन्धप्रसूनके ततः।
धूपदीपौ च नैवेद्यं दशोपचारकं स्मृतम्।।२५३।।

दशोपचार पूजा के अंग हैं—(१) अर्घ्य, (२) पाद्य, (३) आचमन, (४) मधुपर्क, (५) पुनराचमनीय, (६) गन्ध, (७) पुष्प, (८) धूप, (९) दीप और (१०) नैवेद्य॥२५३॥

[पञ्चोपचाराः]

गन्धादयो नैवेद्यान्ताः पूजाः पञ्चोपचारिकाः।

पञ्चोपचारानाह—**गन्धादय इति।** व्यक्तमाह निबन्धतन्त्रे पञ्चपञ्चाशत्तमपटले—

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यमिति पञ्चकम्।
निवेदयेत् सदाऽर्चायां पूजाः पञ्चोपचारिकाः।। इति।

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य यह पञ्चोपचार पूजा है।

[क्रमेणैतेषामुत्तममध्यमाधमत्वम्]

उत्तमा मध्यमा चैव बुधैरुक्ताऽधमा क्रमात्।।२५४।।

उत्तमेति। षोडशोपचारिका उत्तमा, दशोपचारिका मध्यमा, पञ्चोपचारिका अधमा पूजेत्यर्थः।

इनमें से षोडशोपचार पूजा उत्तम, दशोपचार मध्यम तथा पञ्चोपचार पूजा अधम पूजा है॥२५४॥

[उपचारेषु कस्यचिदलाभे व्यवस्था]

उपचारेषु सर्वेषु यत्किञ्चिद्दुर्लभं भवेत्।
तत् सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत्।।२५५।।

उपचारेष्विति। कस्यचिदुपचारस्याभावे पुष्पमेव तदुपचारत्वेन कल्पयित्वा देव्यै निवेदयेदित्यर्थः।

यदि पूजन के समय किसी उपचार का प्रत्यक्षतः अभाव हो तो मन से वह उपचार समर्पित करके पुष्प को उक्त उपचार के रूप में समर्पित करें॥२५५॥

[प्रत्युपचारानन्तरं जलदानम्]

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरा।

उपचार-समर्पण के बाद बीच-बीच में भगवती को जल समर्पित करना चाहिये। यथा—मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभूषण, नैवेद्य के बाद जल-समर्पण कर्तव्य है।

[देवीशिरसि पुष्पदानम्]

देवतायाः शिरः कुर्यात् कुसुमोपहितं सदा।।२५६।।

पूजा के समय देवता का सिर नग्न नहीं रहना चाहिए। अतएव पूजन यन्त्र को फूलों से ढँक देना चाहिए॥२५६॥

[देव्या ऊर्ध्वे करभ्रामणनिषेधः]

पूजाकाले देवताया नोपरि भ्रामयेत् करम्।

पूजा के समय देवता के सिर पर हाथ नहीं घुमाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पूजा के समय यन्त्र के ऊपर हाथ नहीं फेरना चाहिए।

[पुष्पाद्यभावे व्यवस्था]

पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावे तु पत्रकैः।।२५७।।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः।
ओषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत्।।२५८।।
अक्षतैर्वा जलैर्वाऽपि तदभावे तु सर्षपैः।
सितैस्तथाऽप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत्।।२५९।।

पूजयेदिति। पुष्पाभावे पत्रादिभिरर्चयेत्, परं तु कदाऽपि पूजालोपं न विदधीत, निरुक्तानामेकतमस्याप्यलाभे मानसीं पूजां विदधीत; तयैव पूजासिद्धिर्भवतीति भावः। व्यक्तमाह गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

पुष्पाभावे यजेत् पत्रैः पत्रालाभे च तत्फलैः।
अक्षतैर्वा जलैर्वाऽपि न पूजां व्यतिलङ्घयेत्॥
एतेषामप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाश्रयेत्। इति।

अत्र 'पुष्पाभावे यजेत् पत्रैरि'ति सामान्यतः पत्रविधाने सत्यपि—

पत्रेषु बिल्वपत्रञ्च तथा मदनपल्लवम्।
दूर्वाङ्कुरं तथा प्रोक्तं नान्यत् पत्रं प्रयोजयेत्॥

इति गन्धर्वतन्त्रचतुर्दशपटलवचनसंवादात् 'न पत्रैरर्चयेच्छिवामि'त्यनेन सामान्यत: पत्रकरणकार्चानिषेधाच्च पुष्पाभावे निरुक्तबिल्वादिपत्रैरेव पूजनं विधेयं न तु पत्रान्तरैरिति ज्ञेयम्।

यदि पूजा के समय पुष्प उपलब्ध न हों तो पत्रों से, पत्र भी उपलब्ध न हों तो तृण, गुल्म और औषधियों से, यदि ये भी उपलब्ध नहीं हों तो फलों से, उनके भी अभाव में अक्षतों से, अक्षत भी नहीं रहने पर जल से, जल भी न हो तो सफेद सरसों से और यदि यह भी उपलब्ध न हो तो मन से भक्तिपूर्वक पूजा की जाय। तात्पर्य यह कि द्रव्य या उपचार के अभाव में पूजा-लोप नहीं होना चाहिए। पूजा प्रमुख है, उपचार या द्रव्य गौण है। पूजा के लिये उपचार हैं, उपचार के लिये पूजा नहीं है॥२५७-२५९॥

[पुष्पाद्युपचाराणां परत्वापरत्वादि]

परापरोत्तमञ्चैव मध्यमञ्च तथाऽधमम्।
सौवर्णं परमं प्रोक्तमपरं चित्रवस्तुजम्॥२६०॥
वृक्षगुल्मोद्भवं पुष्पमुत्तमं परिकीर्त्तितम्।
अधमं पत्रतोयादि मध्यमन्तु फलात्मकम्॥२६१॥

पूजा के जो उपचार बताये गये हैं, उन्हें (१) पर, (२) अपर, (३) उत्तम, (४) मध्यम तथा (५) अधम—इन पाँच वर्गों में माना जा सकता है। स्वर्ण आदि के निर्मित पुष्प आदि उपचार 'पर' कोटि के हैं। चित्र-विचित्र वस्तुओं के उपचार 'अपर' कोटि के हैं। वृक्ष और लताओं के पुष्प उत्तम उपचार हैं। फलों का उपचार मध्यम तथा केवल पानी और पत्ते अधम उपचार हैं॥२६०-२६१॥

विमर्श—उपचारों का उपर्युक्त महत्त्वक्रम एक उपचारीय पूजन के लिये हैं। षोडशोपचार या दशोपचार पूजन में प्रत्येक उपचार समान रूप से श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

[पुष्पनिवेदनक्रम:]

ज्ञानाख्यमुद्रया मन्त्री चक्रे पुष्पं निवेदयेत्।

भगवती के पूजन-यन्त्र पर ज्ञान-मुद्रा से ही पुष्प-समर्पण करना चाहिये।

[ज्ञानमुद्रा]

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु ज्ञानमुद्रा प्रकीर्त्तिता॥२६२॥

अंगूठे और तर्जनी के ऊपरी सिरों को जोड़ने से ज्ञान-मुद्रा बनती है। तात्पर्य यह कि अंगूठे और तर्जनी से उठाकर पुष्पों को यन्त्र पर समर्पित किया जाय। पुष्प-समर्पण में अनामा-मध्यमा का उपयोग नहीं किया जाय॥२६२॥

[पुष्पादिदाने विशेषः]

यथोत्पन्नं तथा पुष्पं तथा दद्याच्च पत्रकम्।
पुष्पाञ्जलिप्रदाने तु न भवेन्नियमस्त्वयम्।।२६३।।
नाधोमुखं फलं दद्यादिति शास्त्रस्य निर्णयः।

फूल और फल जिस तरह वृक्ष में लगते हैं, उसी तरह उन्हें देवता को समर्पित किया जाय। अधोमुख करके फूल और फल समर्पित नहीं करें। पुष्पाञ्जलि के समय इस नियम का पालन आवश्यक नहीं है।।२६३।।

[तर्पणम्]

तर्पयेन्मूलमन्त्रेण त्रिवारं पूर्ववत् सुधीः।।२६४।।

षोडशोपचार पूजन प्रारम्भ करने के पहिले बुद्धिमान् साधक मूल-मन्त्र से तीन बार तर्पण करे।।२६४।।

[देव्या उद्वर्तनाद्यलङ्कारदानान्तं कर्म]

स्ववाममण्डले नीत्वा देवीमुद्वर्त्तनादिकम्।
मनःपूजाक्रमैः स्नानं वाससा तनुमार्जनम्।।२६५।।
सर्वालङ्करणं दत्त्वा मण्डले तां समानयेत्।

[पाद्याद्यर्पणम्]

पूर्ववद् वन्दनं कृत्वा पाद्यादीनि निवेदयेत्।।२६६।।

मनःपूजाक्रमैरिति। सप्तदशपटलोक्तमानसार्चनविहितस्नानक्रमैः देव्याः स्नानं निर्वर्त्तयेदित्यर्थः।

साधक अपने वाम-भाग में मण्डल की रचना करके वहाँ भगवती को भावनापूर्वक लाकर उद्वर्तन (उबटन) की सामग्री प्रदान करे। भावनापूर्वक स्नान कराकर उनका शरीर शुद्ध कपड़े से पोंछकर वस्त्र और अलंकार समर्पित करके उन्हें सभा-मण्डप में लाये। सभा-मण्डप में लाकर उन्हें स्तुतिपूर्वक फिर से पाद्य और आचमन समर्पित करें।।२६५-२६६।।

विमर्श—राजराजेश्वरी भगवती ललिता की यह पूजा अत्यन्त भावमयी और राजसी होती है। ध्यानपूर्वक आवाहन करने के बाद उन्हें सुपूजित मन्दिर के विधिवत् अर्चित रत्न-सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके स्वागत एवं कुशल-मंगल पूछने के बाद पाद्य-आचमन-अर्घ्य प्रदान करके मधुपर्क समर्पित करें। पुनः आचमन कराने के बाद उन्हें स्नान के लिये सभा-मण्डप से स्नान-मण्डप चलने के लिये प्रार्थना करें। रत्न-पादुका पहनाकर और रत्नों की पालकी में बैठाकर उन्हें भावनापूर्वक सभा-मण्डप से स्नान-मण्डप में लायें। स्नानागार में स्फटिक-वेदी पर बिठाकर उन्हें हलदी एवं

सुगन्धित तेल तथा उद्वर्तन की विविध सामग्रियाँ समर्पित करके यह भावना करें कि दिव्यांगनायें उनका उद्वर्तन कर रही हैं। उद्वर्तन के बाद दूध-दही-घृत-शहद-शर्करा-इक्षुरस आदि द्रव्यों से स्नान करायें। अलग-अलग द्रव्यों से स्नान के मध्य में जल-स्नान करायें। अन्त में पुष्प-जल तथा सहस्र घटतीर्थोदक से स्नान एवं अभिषेक करायें। स्नान से आर्द्र देहयष्टि के प्रोञ्छन के लिये शुद्ध कार्पासवस्त्र प्रदान करें। रत्न-पादुका पहनाकर उन्हें स्नान-मण्डप से वस्त्र-मण्डप में लायें। रत्न-चौकी पर बिठाकर अगरु आदि के धूप से उनकी आर्द्र केशराशि को सुखायें। लाल रंग के रत्नजटित रेशमी वस्त्र-उपवस्त्र (साड़ी और चोली) प्रदान करें। हाथी-दाँत अथवा सोने की कंघी से केशसंस्कार करायें। तत्पश्चात् उन्हें वस्त्रागार से अलंकार-मण्डप में लाकर विधिवत् उनका शृङ्गार करें। इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य, अष्टगन्ध का तिलक, सीमान्त भूषण सिन्दूर समर्पित करने के बाद स्वर्णनिर्मित एवं रत्नखचित विभिन्न अलंकार और मुकुट प्रदान करें। तत्पश्चात् उनके अंग-प्रत्यंग में बहिर्मातृका क्रम से मातृका अलंकार विन्यस्त करें। जब उनका शृङ्गार पूरा हो जाय, रत्न-पालकी में बिठाकर उन्हें अलंकारमण्डप से भावनापूर्वक सभा-मण्डप में लाकर यथापूर्व कामेश्वर शिव के अंक में विराजित कर दें। तत्पश्चात् पाद्य-आचमन समर्पित करके गन्ध-पुष्प-धूप-दीप आदि अन्य उपचार समर्पित करें।

[गन्धाद्यर्पणम्]

गन्धचन्दनधूपैस्तु दीपैर्नानाफलैरपि।
शर्करामिश्रपयसा घृतेन मधुना फलैः।
दध्ना च परमान्नेन भवानीं परितोषयेत्।।२६७।।

श्रद्धाभिभूत साधक भगवती को सुगन्धित पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, शर्करा-मिश्रित दूध, दही, घृत, खीर, नाना प्रकार के मीठे फल आदि समर्पित करके उन्हें संतुष्ट करे॥२६७॥

[नैवेद्यनिवेदनक्रमः]

मूलं देव्याः स्वनामान्ते नैवेद्यमिति चोच्चरन्।
गृहाण वह्निजायान्ते नैवेद्यमुत्सृजेदिति।।२६८।।

नैवेद्यनिवेदनक्रममाह—मूलमित्यादिना। आदौ मूलं ततो देव्याः स्वनाम ततो नैवेद्यमिति गृहाणेति च पदद्वयं वह्निजाया स्वाहेति। एवञ्च मूलं ततः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि नैवेद्यं गृहाण स्वाहेति मन्त्रः पर्यवस्यति।

इस श्लोक में भगवती को नैवेद्य समर्पित करने का मन्त्र बताया गया है। 'मूल मन्त्र' के बाद 'श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरि नैवेद्यं गृहाण स्वाहा' नैवेद्य अर्पित करने का मन्त्र है॥२६८॥

विमर्श—कुलाचारी साधक धूप, दीप के बाद और नैवेद्य के पूर्व भगवती को 'शुद्धि खण्ड' और 'आसव' एवं अन्य कुलद्रव्य प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् नैवेद्य, फिर आचमन-पानीय आदि के बाद फल एवं उसके बाद ताम्बूल समर्पित किया जाता है।

[बलिदाने विशेषः]

न राजा मेषमहिषबलिदानं समाचरेत्।
सिंहव्याघ्रनरांश्चैव न दद्याद् ब्राह्मणोत्तमः।।२६९।।

बलिदाने विशेषमाह—**न राजेति**। सामान्यतो बलिदाने विहितेष्वपि पशुषु राजा मेषमहिषबलिं तथा ब्राह्मणोत्तमः सिंहादिबलिं न विदधीतेत्यर्थः।

यद्यपि त्रिपुरा-अर्चनविधान में बलिदान ग्राह्य और प्रशस्त है; लेकिन राजा को मेष और महिष का तथा ब्राह्मण साधक को सिंह-व्याघ्र और नरबलि नहीं देनी चाहिए।।२६९।।

[व्यजनाद्युपचारैर्देव्याः परितोषविधानम्]

व्यजनैः शुद्धसिन्दूरैर्घण्टाचामरदर्पणैः।
वितानच्छत्रताम्बूलैः कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः।।२७०।।
रोचनागुरुकर्पूरैस्तथा लाक्षारसेन च।
नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम्।।२७१।।

ताम्बूल समर्पित करने के बाद (हवन और बलिदान के पूर्व) परमेश्वरी को छत्र-चामर-व्यजन (पंखा), घण्टा, दर्पण (गज, तुरग-रथ) आदि राजसी-उपकरण तथा उनके प्रिय सिन्दूर, कुंकुम, गोरोचन, अगरु-कपूर-लाक्षारस आदि प्रदान करके उन्हें नृत्य और गीत से प्रसन्न करें।।२७०-२७१।।

[तर्पणम्]

दत्त्वा नानाविधं द्रव्यं हेतुभिस्तर्पयेत् पराम्।

दत्त्वेति। हेतुभिः कारणैः। तत्रापि विशेषमाह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चदशपटले—

निर्विकल्पस्य देवेशि सुरैव विहितागमे।
अमृतञ्च तदेव स्यान्मद्यापि तदेव हि।।
नाऽऽमद्यपि द्विजो मद्यं दद्याद् देव्यै कदाचन।
मोहाद् यदि ददेन्मद्यं ब्राह्मण्यादेव हीयते।।
ब्रह्मघाती स एव स्यात् तस्मान्मद्यं विवर्जयेत्।

... ...

निर्विकल्पो यदा मद्यं महादेव्यै निवेदयेत्।
अश्वमेधसहस्रस्य ... ...
सविकल्पो यदा देवि पापभाङ् नात्र संशयः।। इति।

विविध-उपचार और द्रव्य प्रदान करने के बाद बुद्धिमान् साधक हेतुद्रव्य (अर्थात् श्रीपात्र के कारणद्रव्य) से भगवती का तर्पण करें।

[परिवारदेवतार्चोपदेशः]

गृहीत्वाज्ञां महादेव्याः परिवारांस्ततोऽर्चयेत्।।२७२।।

अथ परिवारार्चनमवतारयति—**गृहीत्वेति**। आज्ञाप्रार्थनक्रममाह त्रिपुरार्चनरहस्ये आदौ मूलम्, ततः—

संविन्मये परे देवि परामृतरसप्रिये।
अनुज्ञां त्रिपुरे देहि परिवारार्चनाय मे।। इति।

गन्धर्वतन्त्रे षोडशपटले—

रश्मिवृन्दानि ते देवि पूजयामि विधानतः।
आज्ञापय जगन्मातर्यतस्तमेव तानिव (?)।।
कृताञ्जलिर्महेशानि देव्याज्ञां साधकोत्तमः।
गृहीत्वा पूजयेत्तुष्टः प्रागुक्तक्रमयोगतः।। इति।

तत्पश्चात् भगवती से आज्ञा लेकर उनके परिवारदेवताओं का अर्चन करें।।२७२।।

एतदर्थ आज्ञा लेने का मन्त्र है—

ॐ।। सन्विन्मये परे देवि परामृतरसप्रिये।
अनुज्ञां त्रिपुरे देहि, परिवारार्चनाय मे।।

[तत्र षण्णामङ्गदेवतानां पूजा]

यथा सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधसंज्ञिका।
स्वतन्त्रता नित्यतृप्ताऽन्या तथाऽनन्तक्रमादिमाः।।२७३।।
षडङ्गदेवताः पूज्यास्तत्तन्मन्त्रं समुच्चरन्।

[तासां ध्यानम्]

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ।।२७४।।
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः।

[पूजास्थानम्]

अग्नीशासुरवायव्ये मध्ये दिक्षु यथाक्रमात्।।२७५।।

तत्राऽऽदौ षडङ्गदेवतार्चाक्रममभिधत्ते—**यथेत्यादिना**। तथाच सर्वज्ञताशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः, तृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीशिरसे स्वाहेत्यादिक्रमेण षडङ्गदेवताः पूजयेदित्यापतति। तन्त्रसारकृता तु सर्वज्ञतेत्यत्र सर्वज्ञा शक्तिरिति बालाबीजस्य द्विरावृत्त्या ऐँ क्लीं सौरित्याद्येकैकबीजपूर्वकत्वञ्चोक्तम्।

एतासामङ्गदेवतानां क्रमेण स्वरूपमाह—**तुषारेति**। सर्वज्ञताशक्तिस्तुषारवर्णा, तृप्तिशक्तिः स्फटिकवर्णा, अनादिबोधशक्तिः श्यामवर्णा, स्वतन्त्रा शक्तिर्नीलवर्णा, नित्यतृप्तिशक्तिः कृष्णवर्णा, अनन्तशक्तिररुणवर्णेत्युक्तं भवति। वरदेत्यादि साधारणम्। क्रमेणैतासां स्थानमाह—**अग्नीति**। अग्न्यादिक्रमेणैताः पूजयेदित्यर्थः।

(१) सर्वज्ञता, (२) तृप्ति, (३) अनादिबोध, (४) स्वतन्त्रा, (५) नित्यतृप्तता और (६) अनन्ता—भगवती महात्रिपुर सुन्दरी के ये ६ शक्तिरूप हैं। इनका वर्ण क्रमशः (१) तुषार (वर्फ), (२) स्फटिक, (३) श्याम, (४) नीला, (५) कृष्ण और (६) अरुण हैं। उनके इन छः शक्तिरूपों का उनके हृदय आदि षडङ्ग के रूप में क्रमशः (१) आग्नेय, (२) ईशान, (३) नैर्ऋत्य, (४) वायव्य, (५) मध्य अर्थात् पूर्व तथा (६) चारो दिशाओं में पूजन करें।।२७३-२७५।।

विमर्श—उपर्युक्त श्लोक में द्वितीय और पञ्चम क्रम में बताये गये 'समानार्थी' हैं। अतः यहाँ 'पुनरुक्ति' दोष प्रतीत होता है। तन्त्रसार तथा अन्य ग्रन्थों में द्वितीय शक्ति का नाम 'नित्यतृप्त' और पञ्चम-शक्ति का नाम 'अलुप्त' बताया गया है। अतः शक्तिनामों का शुद्ध क्रम है—(१) सर्वज्ञता, (२) नित्यतृप्तता, (३) अनादि-बोधिता, (४) स्वतन्त्रता, (५) अलुप्तता और (६) अनन्ता।

भगवती के इन छः रूपभेदों के कारण ही शिव (१) सर्वकर्ता, (२) सर्वज्ञ, (३) नित्यतृप्त, (४) सर्वदा नित्य, (५) सर्व व्यापक हैं। माया-शक्ति के कारण जब उक्त पाँचों शक्तियों का संकुचन होता है तब इसके फलस्वरूप क्रमशः—(१) कला, (२) विद्या, (३) राग, (४) काल और (५) नियति-संज्ञक पाँच कंचुकों का आविर्भाव होता है। इन कञ्चुकों से पाशबद्ध होकर शिव आत्मस्वरूप भूलकर पुरुष बन जाता है; जैसा कि प्रत्यभिज्ञाहृदय में कहा गया है—

सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व, शक्तयः संकोचं गृह्यमाना यथाक्रमं कला, विद्या, राग, काल, नियति, रूपतया भान्ति।

भगवती के इन छः शक्तिभेदों को उनके शरीर में हृदय आदि षडंग के रूप में न्यस्त करके आग्नेय आदि कोणों में षडङ्ग-मन्त्रों से उनका पूजन किया जाता है। यथा—

१. ऐं सर्वज्ञताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः—अग्निकोण में।
२. क्लीं नित्यतृप्तताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा—ईशाने।
३. सौः अनादिबोधिताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्—नैर्ऋत्ये।
४. ऐं स्वतन्त्रताशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुम्—वायव्ये।
५. क्लीं अलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्—पूर्वे।
६. सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्—चारो दिशाओं में।

[पुनस्तर्पणं पुष्पाञ्जलिदानञ्च]

तर्पणञ्च पुनः कृत्वा मूलमुच्चार्य सर्वतः।।२७६।।
शिरोवक्षःपदद्वन्द्वकरद्वन्द्वेषु च क्रमात्।
सर्वाङ्गेषु पुनः कुर्यात् पञ्चपञ्चाञ्जलीन् हृदा।।२७७।।

पञ्चपुष्पाञ्जलिदानमाह—मूलेत्यादिना। तथाच आदौ मूलं ततः शिरआदि-सर्वाङ्गान्तेषु पुष्पाञ्जलिपञ्चकमर्पयेदित्यर्थः।

मूल मन्त्र से तर्पण करके 'नमः' का उच्चारण करते हुए देवी के शिर, वक्ष, दोनों पैर, दोनों हाथ तथा सम्पूर्ण शरीर को एक-एक कर पाँच पुष्पाञ्जलि दें।।२७६-२७७।।

[परिवारपूजायामादौ बीजयोजनक्रमः]

सर्वावरणानामादौ मायां लक्ष्मीं नियोजयेत्।
वाङ्मायां कमलां वाऽपि त्रिभिः सम्पुटितञ्च वा।।२७८।।

अथाऽऽवरणपूजायामादौ बीजयोजने प्रस्थानत्रयमाह—मायामित्यादिना। तथाच मायां लक्ष्मीं ह्रीं श्रीमिति मायाबीजं श्रीबीजञ्च नियोजयेदिति द्वितारीप्रयोगक्रमः। वाङ्मायां कमलामिति ऐँ ह्रीँ श्रीमिति बीजत्रयं योजयेदिति त्रितारीप्रयोगक्रमः। त्रिभिः सम्पुटितं वेति तृतीयः कल्पः। त्रिभिः वाङ्मायाकलाबीजैः सम्पुटितम्। सम्पुट-लक्षणमाह तन्त्रसारे—

मन्त्रमादौ वदेत् सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम्।
विपरीतं पुनश्चान्ते बीजं तत् सम्पुटं स्मृतम्।।

एवञ्चात्र कल्पे प्रथमं ऐँ ह्रीं श्रीं ततः पूज्यदेवतानाम ततः श्रीं ह्रीं ऐँ इति विपरीतमुच्चारयेदिति फलितम्। तन्त्रसारकृताऽपि सर्वत्राऽऽदौ द्वितार्या त्रितार्या वा प्रयोग इत्युक्तम्। ज्ञानार्णवेऽपि—

मायालक्ष्मीमयं बीजयुग्मं पूर्वक्रमेण हि।
कथितं योजयेद्देवि त्रयं वा परमेश्वरि।। इति।

कल्पसूत्रेऽपि सर्वत्राऽऽदौ त्रितारीप्रयोग इति तन्त्रसारकारः। त्रितारी च—

वाङ् माया कमला चेति त्रितारी समुदाहृता। इति।

आवरण-पूजन के समय आवरण देवता के नाम के पूर्व 'ह्रीं श्रीं' अथवा 'ऐं ह्रीं श्रीं' की योजना करनी चाहिये। देवता के नाम के साथ अनुलोम-विलोमक्रम से भी त्रितार (ऐं ह्रीं श्रीं) की योजना की जा सकती है। यथा—ऐं ह्रीं श्रीं + देवता का नाम + श्रीं ह्रीं ऐं।।२७८।।

[पादुकामन्त्रः]

पादुकां पूजयामीति श्रीपूर्वं पादुकामनुः।
नमोऽन्ते योजयित्वा तु नमोऽन्तं सर्वमर्चयेत्।।२७९।।

अथ सर्वत्र परिवारार्चने प्रयोज्यं पादुकामन्त्रमाह—**पादुकामिति**। तथाच ऐँ ह्रीं श्रीं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि नम इत्येवं क्रमेण सर्वमर्चयेदित्यर्थः।

आवरण-पूजन के समय देवता के नाम के आगे 'श्री'-पूर्वक पादुकां पूजयामि और 'नमः' की योजना करनी चाहिये। यथा—'ऐं ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः' इत्यादि॥२७९॥

[न्यासेऽपि पादुकामनोः प्रयोज्यत्वम्]

न्यासेऽपि योजयेन्मन्त्री पादुका सर्वसिद्धदा।
रहस्यं परमं प्रोक्तमिति यामलसम्मतम्॥२८०॥

न्यासेऽपीति। न्यासकालेऽपि निरुक्तपादुकामन्त्रं प्रयुञ्जीतेत्यर्थः। तत्र पादुकायै नम इति विशेषः। अस्मिन्नर्थे प्रमाणभूतमागममुदाहरति—**रहस्यमिति**।

यामल में कहा गया है कि न्यास करते समय भी पादुका-मन्त्र की योजना की जाय। इससे सिद्धि मिलती है॥२८०॥

[तर्पणसंख्या]

तर्पणञ्च त्रिधा कार्यं सकृद्वाऽपि निजेच्छया।

परिवारदेवतानां तर्पणसंख्यामाह—**तर्पणञ्चेति**। स्पष्टम्। प्रकृते तु तर्पयामीत्यन्तेन तर्पणं कुर्यादिति बोध्यम्।

तर्पण या तो तीन बार किया जाय या एक बार किया जाय। यह साधक की इच्छा पर निर्भर है।

[होमादौ वाक्यभेदाः]

स्वाहा होमे तर्पणे च तर्पयामीति संस्मरेत्॥२८१॥

होमकर्म में 'स्वाहा' और तर्पण कर्म में 'तर्पयामि' की योजना देवता के चतुर्थ्यन्त और द्वितीयान्त नाम के आगे की जाय। यथा—श्रीबालात्रिपुरायै स्वाहा। श्रीबालात्रिपुरां तर्पयामि नमः॥२८१॥

[षोडशतिथिनित्यार्चायां स्वरविन्यासः]

मध्यत्रिकोणरेखासु स्वाग्रे दक्षोत्तरक्रमैः।
पञ्च पञ्च क्रमेणापि स्वरान् विभागतो लिखेत्।
अःस्वरञ्च लिखेन्मध्ये तिथिनित्यास्तथाऽर्चयेत्॥२८२॥

[कामेश्वर्यादिपूजनोपदेशः]

कामेश्वर्यादिकाः सर्वा ध्यात्वा तत्तन्मनुं चरेत्।
प्रतिपदादिपूर्णान्तं वामावर्त्तक्रमेण तु॥२८३॥

अथ कामेश्वर्यादिषोडशतिथिनित्यार्चनमभिधास्यन् प्रथमं श्रीचक्रमध्यत्रिकोणे अकारादिविसर्गान्तषोडशस्वरविन्यासमाह—**मध्येत्यादिना**। **स्वाग्रे दक्षोत्तरक्रमैः**

दक्षादिक्रमेण पञ्चशः स्वरान् अनुस्वारान्तान् रेखात्रये त्रिकोणमध्ये च विसर्गं लिखेदिति फलितार्थः। तत्र कामेश्वर्यादिका वक्ष्यमाणास्तिथिनित्या वक्ष्यमाणक्रमेण ध्यात्वा तत्तद्देवतामन्त्रेणार्चयेदित्यर्थः। तत्र क्रममाह—**प्रतिपदादीति**।

तिथिनित्या-पूजन—कामेश्वरी आदि तिथिनित्याओं का पूजन 'श्रीयन्त्र' के मूल त्रिकोण की तीन रेखाओं पर पाँच-पाँच के क्रम से किया जाता है। इसके लिये अपने सामने वाले त्रिकोण से प्रारम्भ करके त्रिकोण की वामरेखा पर 'अ-आ-इ-ई-उ'—ये पाँच स्वर लिखें। त्रिकोण की ऊपर वाली रेखा पर 'ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ' ये पाँच स्वर तथा त्रिकोण की दाहिनी रेखा पर 'ए ऐ ओ औ अं' ये पाँच स्वर लिखें। त्रिकोण के मध्य में १६वां स्वर 'अ:' लिखें। इस परिकल्पित 'अ:' बिन्दु पर महानित्या महात्रिपुरसुन्दरी की तथा 'अ'कारादि परिकल्पित बिन्दुओं पर शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर पूर्णिमा-पर्यन्त कामेश्वरी आदि एक नित्या देवी का तथा कृष्णपक्ष में विचित्रा से प्रारम्भ कर कामेश्वरी-पर्यन्त एक-एक नित्या देवी का ध्यान करके उनके मन्त्रों से पूजन करें॥२८२-२८३॥

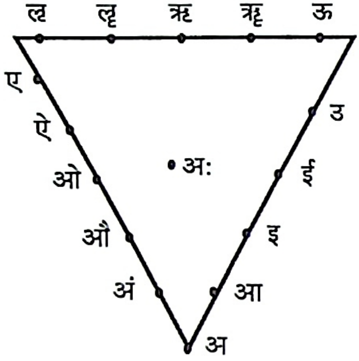

अगले ९ श्लोकों में कामेश्वरी आदि नित्या देवियों का संक्षिप्त ध्यान बताया गया है। 'तन्त्रराजतन्त्र' में इन नित्या देवियों के व्यापक ध्यान तथा आवरण-पूजन सहित विभिन्न प्रयोजनों के लिये उनके पूजन-विधान का विस्तार से निरूपण किया गया है। ग्रन्थगौरव के भय से 'तन्त्रराजतन्त्र' में बताये गये ध्यान तथा व्यापक पूजन-विधान को यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है, तथापि त्वरित सन्दर्भ-हेतु नित्या देवियों के पन्द्रहवें प्रकाश में बताये गये मन्त्र यहाँ प्रस्तुत हैं।

[कामेश्वर्या ध्यानम् (१)]

कामेश्वरीं रक्तवर्णां रक्तवस्त्रविभूषिताम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं विचिन्तयेत्।।२८४।।

अथ क्रमेण कामेश्वर्यादीनां विचित्रान्तानां प्रतिपदादिपञ्चदश्यन्तेषु पञ्चदशतिथिषु क्रमेणार्चनीयानां पञ्चदशतिथिनित्यानां साधारण्येन पञ्चदशतिथिषु समर्चनीयाया: श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याश्च ध्यानान्याह—**कामेश्वरीमित्यादिना साधकोत्तम इत्यन्तेन**। स्पष्टम्।

(१) कामेश्वरी नित्या—देवी कामेश्वरी नित्या का वर्ण (रंग) लाल है। उनके वस्त्र और आभूषण भी लाल हैं। वे चतुर्भुजा हैं। चारो हाथों में क्रमश: पाश-अंकुश, बाण और धनुष हैं॥२८४॥

पूजन-तिथियाँ—शुक्ल प्रतिपदा, कृष्णा अमावस्या।

मन्त्र—'अं' ऐं क्लीं सौः ॐ नमः कामेश्वरी इच्छा कामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वजगत् क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं।

उक्त मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति। छन्द—पंक्ति। देवता—श्री कामेश्वरी नित्या। बीज—ऐं। शक्तिः—सौः। कीलक—क्लीं।

[भगमालायाः (२)]

भगमालां शुक्लवर्णां भगमालाविभूषिताम्।
पाशाङ्कुश(ञ्च) सूत्रञ्च पुस्तकं बिभ्रतीं करैः।।२८५।।

(२) **भगमालिनी नित्या**—देवी भगमालिनी नित्या शुक्लवर्णा हैं। भगाकार माला से विभूषिता हैं। चारो हाथों में क्रमशः पाश-अंकुश-सूत्र और पुस्तक हैं।।२८५।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला द्वितीया, कृष्णा चतुर्दशी।

मन्त्र—'आं' ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोने भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे आनय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं भे ब्लूं भो ब्लूं हें ब्लूं क्लिन्ने सर्वभगानि मे वशमानय स्त्रीं हरब्लें ह्रीं।

इस मन्त्र के ऋषि—सुभग। छन्द—गायत्री। देवता—भगमालिनी। बीज—हरब्लें। शक्ति—स्त्रीं। कीलक—'ब्लूं'।

[नित्यक्लिन्नायाः (३)]

नित्यक्लिन्नां शुक्लवर्णां वराभयकराम्बुजाम् ।।२८६।।

(३) **नित्यक्लिन्ना**—भगवती नित्यक्लिन्ना शुक्ल वर्णा हैं और उनके दोनों हाथों में क्रमशः वर और अभय मुद्रायें हैं।।२८६।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्लपक्ष की तृतीया और कृष्णपक्ष की त्रयोदशी।

मन्त्र—इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि—ब्रह्मा। छन्द—विराट्। देवता—नित्यक्लिन्ना। बीज—ह्रीं। शक्ति—स्वाहा।

[भेरुण्डायाः (४)]

भेरुण्डां रक्तवर्णाञ्च रक्ताभरणभूषिताम्।
मुण्डवेदधरां देवीं द्विभुजां परिचिन्तयेत्।।२८७।।

(४) **भेरुण्डा**—देवी भेरुण्डा का वर्ण लाल है। वस्त्र और आभूषण लाल हैं। वे द्विभुजा हैं। एक हाथ में नर-मुण्ड और दूसरे हाथ में वेद (पुस्तक) है।।२८७।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला चतुर्थी एवं कृष्णा द्वादशी।

मन्त्र—ईं ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि—महाविष्णु। छन्द—गायत्री। देवता—महाशक्ति। बीज—भ्रों। शक्ति—स्वाहा। कीलक—क्रों।

[वह्निवासिन्याः (५)]

पिङ्गलाभां तथा हस्तां भावयेद् वह्निवासिनीम्।

(५) **वह्निवासिनी**—देवी वह्निवासिनी का वर्ण पिंगल है। 'तथा हस्तां' अर्थात् वे भी भेरुण्डा के समान द्विभुजा हैं। एक हाथ में नर-मुण्ड तथा दूसरे में वेद (पुस्तक) है।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला पञ्चमी और कृष्णा एकादशी।

मन्त्र—उं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः।

इस मन्त्र के ऋषि—वशिष्ठ। छन्द—गायत्री। बीज—ह्रीं। शक्ति—नमः। कीलक—वह्निवासिन्यै। देवता—वह्निवासिनी।

[महानित्येश्वर्याः (६)]

महानित्येश्वरीं खड्गचर्माक्षस्रग्धरां वराम्।।२८८।।

महानित्येश्वरीमिति। वज्रेश्वरीति ज्ञानार्णवे महावज्रेश्वरीति च तन्त्रराजे पाठः। अथ महानित्येश्वरीध्यानानन्तरम् एवं सुकृष्णां त्वरितामिति त्वरिताया ध्यानमुक्तम्। परन्तु—

प्रथमा सुन्दरी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
कामेश्वरी समाख्याता तथैव भगमालिनी।।
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा तथैव वह्निवासिनी।
वज्रेश्वरी च दूती च त्वरिता कुलसुन्दरी।।
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालाविचित्रान्ताः पञ्चदश प्रकीर्त्तिताः।।

इति तन्त्रसारधृतकुलार्णववचने त्वरितायाः पूर्वं शिवदूत्या निरूपणं दृश्यते। एवमेव तन्त्रराजतन्त्रेऽपि। त्रिपुरार्चनरहस्येऽप्येवमेव। मूलेऽपि पञ्चदशप्रकाशे षोडश-नित्यान्यासावसरे 'सप्तम्यां विन्यसेदेनां शिवदूतीं स्वयं हृदि' इत्यनेन शिवदूतीन्यासमभिधाय 'अष्टम्यां विन्यसेत् कण्ठे त्वरितां द्वादशाक्षरीमि'त्यनेन शिवदूत्यनन्तरं त्वरिताया निर्देशः कृतः। एतेन गणनया नित्यानां षोडशत्वमप्युपपद्यते, शिवदूत्या अग्रहणे तु न्यूनतैव स्यात् । तद् यदत्र मूले षोडशनित्यापूजाप्रकरणे शिवदूत्या ध्यानं न दृश्यते, तल्लेखकप्रमादकृतमिति प्रतिभाति।

(६) **महानित्येश्वरी**—भगवती महानित्येश्वरी (वज्रेश्वरी) चतुर्भुजा हैं। उनके चारो हाथों में क्रमश: खड्ग, वर्म (कवच), अक्षमाला तथा वरमुद्रा है।।२८८।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला षष्ठी, कृष्णा दशमी।

मन्त्र—ऊं ॐ ह्लीं फ्रें स: नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि—ब्रह्मा। छन्द—गायत्री। देवता—महानित्येश्वरी। बीज—ॐ। शक्ति—स्वाहा। कीलक—ह्लीं।

ज्ञानार्णवतन्त्र (१५/९९) में षष्ठी नित्या का नाम महाविद्येश्वरी तथा तन्त्रराजतन्त्र एवं तन्त्रसार में वज्रेश्वरी बताया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पन्द्रहवें प्रकाश में न्यासप्रकरण में षष्ठी नित्या का नाम महानित्येश्वरी बताया गया है।

[शिवदूती (७)]

× × × × × ।

(७) **शिवदूती**—प्रस्तुत ग्रन्थ में यहाँ पर न तो सप्तमी नित्या का नाम बताया गया है और न ही ध्यान का निरूपण किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पन्द्रहवें प्रकाश में न्यास-प्रकरण में सप्तमी नित्या का नाम 'शिवदूती' ही बताया गया है। तन्त्रान्तर में उनका ध्यान इस प्रकार बताया गया है—

दूर्वानिभां त्रिनेत्रां च महासिंहसमासनाम्
शंखारिबाणचापांश्च सृणि-पाशौ वराभये।
दधतीं चिन्तयेन्नित्यां शिवदूतीं महाकलाम्।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला सप्तमी और कृष्णा नवमी।

मन्त्र—ऋं ह्लीं शिवदूत्यै नम:।।

इस मन्त्र के ऋषि—रुद्र। छन्द—गायत्री। देवता—शिवा। बीज—ह्लीं। शक्ति—नम:। कीलक—शिवदूत्यै।

[त्वरिता-कुलसुन्दर्यो: (८, ९)]

एवं सुकृष्णां त्वरितां गौराङ्गीं कुलसुन्दरीम्।

(८) **त्वरिता**—भगवती त्वरिता कृष्णवर्ण की हैं।

विमर्श—प्रस्तुत ग्रन्थ में भगवती त्वरिता का केवल वर्ण बताया गया है—जो कि ध्यान करने के लिये पर्याप्त नहीं है। अत: श्रीविद्यार्णव में बताया गया ध्यान प्रस्तुत है—

श्यामाङ्गीं रक्तसत्पाणिं चरणाम्बुजशोभिताम्।
वृषलाहिसुमञ्जीरां फटारत्नविभूषितम्।।
स्वर्णांशुकां स्वर्णभूषां वैश्याहिद्वन्द्वमेखलाम्।
तनुमध्यां पीनवृत्तकुचयुग्मां वराभये।।

दधतीं शिखिपिच्छानां वलयाङ्गदशोभिताम्।
गुञ्जारुणनृपाहीन्द्रकेयूरां रक्तभूषणाम्।।
द्विजनागस्फुरत् कर्णभूषां मत्तारुणेक्षणाम्।
नीलकुञ्चितधम्मिल्लवनपुष्पकलापनीम् ।।
कैरातीं शिखिपत्राढ्यनिकेतनविराजिताम्।
स्फुरत् सिंहासनप्रौढ़ां स्मरेत् भयविनाशिनीम्।।

पूजन-तिथियाँ—दोनों पक्ष की अष्टमी।

मन्त्र—ॠं ॐ ह्रीं खे च ब्ल क्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट्। इस मन्त्र के ऋषि—ईश (ईश्वर)। छन्द—विराट्। देवता—पार्वती। बीज—ह्रीं। शक्ति—स्त्रीं। कीलक—हुं हैं।

(९) **कुलसुन्दरी**—'गौरांगी कुलसुन्दरी'—कुलसुन्दरी गौरवर्णा हैं। चूँकि त्वरिता के समान इनका भी ध्यान नहीं बताया गया है; अतः श्रीविद्यार्णव में बताया गया ध्यान प्रस्तुत है—

ध्यायेद् देवीं महेशानीं कदम्बवनमध्यगाम्।
रत्नमण्डपमध्ये तु महाकल्पवनान्तरे।।
मुक्तापत्रच्छायायां रत्नसिंहासने स्थिताम्।
अनर्घरत्नघटितमुकुटां रत्नकुण्डलाम्।।
शरग्रैवेयसद्रत्नचित्रितां कंकणोज्वलाम्।
हीरमुक्तालसद् भूषां शुक्लक्षौमविराजिताम्।।
हीरमञ्जीरसुभगां रक्तोत्पलमदाम्बुजाम्।
शुभ्राङ्गरागसुभगां कर्पूरशकलोज्ज्वलाम्।।
पुस्तकञ्चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्।
वरदानरतां दिव्यां महासारस्वतप्रदाम्।।
एवं ध्यायेन्महानित्यां देवेशीं कुलसुन्दरीम्।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ल नवमी, कृष्णा सप्तमी।

पूजन मन्त्र—ऌं ऐं क्लीं सौः। इस मन्त्र के ऋषि आदि बाला त्रिपुरा के समान हैं।

[नित्यायाः (१०)]

अष्टसिद्धिधरां देवीमष्टकोणान्तरस्थिताम्।।२८९।।

(१०) **नित्या नित्या कला**—भगवती नित्या अष्ट सिद्धियों को धारण करने वाली तथा श्रीचक्र के अष्ट कोणों में व्याप्त हैं।।२८९।।

श्रीविद्यार्णव में बताया गया ध्यान है—

तप्तकाञ्चनसंकाशां सर्वालंकारभूषिताम्।
वराभयकरां नित्यां विमलां प्रणमाम्यहम्॥

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला दशमी और कृष्णा षष्ठी।

पूजनमन्त्र—ॡं द्रां-द्रीं क्लीं ब्लूं सः।

[नीलपताकायाः (११)]

नित्यां नीलपताकाञ्च पाशाङ्कुशधरां स्मरेत्।

(११) **नीलपताकिनी**—भगवती नीलपताकिनी पाश-अंकुशधारिणी हैं। श्रीविद्यार्णवोक्त ध्यान है—

रक्तां रक्तांशुकप्रौढां नानारत्नविभूषिताम्।
इन्द्रनीलस्फुरन्नीलपताकां कमले स्थिताम्॥
काम-ग्रैवेयसंलग्न सृणी च वरदाभये।
दधतीं परमेशानीं त्रैलोक्याकर्षणक्षमाम्॥

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला एकादशी तथा कृष्णा पञ्चमी।

पूजन-मन्त्र—एं ॐ ह्रीं फ्रें स्रूं स्रूं ह्रीं क्रों नित्यमदद्रवै हुं क्रों।

[विजयायाः (१२)]

विजयां चण्डरूपाञ्च तथास्त्रां योगिनीवृताम्॥२९०॥

(१२) **विजया**—भगवती विजया अत्यन्त चण्डरूपा हैं और वे चारो ओर से योगिनियों से घिरी हुई हैं। श्रीविद्यार्णवोक्त ध्यान है—

एकवक्त्रां दशभुजां सर्पयज्ञोपवीतिनीम्।
दंष्ट्राकरालवदनां नरमालाविभूषिताम्॥
अस्थिचर्मावशेषां तां वह्निकूटसमप्रभाम्।
व्याघ्राम्बरां महाप्रौढशवासनविराजिताम्॥
रणे स्मरणमात्रेण भक्तेभ्यो विजयप्रदाम्।
शूलं सर्पं च टङ्कासि-सृणी घण्टाशनिद्वयम्॥
पाशमग्निमभीतिञ्च दधानां विजयां स्मरेत्।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला द्वादशी और कृष्णा चतुर्थी।

पूजन मन्त्र—ऐं भ्मरौं।

[सर्वमङ्गलायाः (१३)]

पद्मद्वयकरां रक्तां ध्यायेद् वै सर्वमङ्गलाम्।

(१३) **सर्वमङ्गला**—भगवती सर्वमङ्गला का वर्ण लाल है तथा उनके दोनों हाथों में कमल है।

श्रीविद्यार्णवोक्त ध्यान है—

शुभ्रपद्मासने रम्यां चन्द्रकुन्दसमद्युतिम्।
सुप्रसन्नां शशिमुखीं नानारत्नविभूषिताम्।।
अनन्तमुक्ताभरणां स्रवन्तममृतद्रवाम्।
वरदाभयशोभाढ्यां स्मरेत् सौभाग्यवर्धिनीम्।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला त्रयोदशी तथा कृष्णा तृतीया।

पूजन मन्त्र—ओं स्वों सर्वमङ्गलायै नम:।

[ज्वालांशुमालिन्या: (१४)]

ज्वालांशुमालिनीं धूम्रां त्रिनेत्रां श्वेतरूपिणीम्।।२९१।।

(१४) **ज्वालामालिनी**—भगवती ज्वालामालिनी त्रिनेत्रा हैं और उनका वर्ण धुयें के समान श्वेत है।।२९१।।

श्रीविद्यार्णव में बताया गया ध्यान है—

उद्यद् विद्युल्लताकान्ति स्वर्णाभरणभूषिताम्।
महासिंहासनप्रौढां ज्वालामालाकरालिनीम्।।
अरिशंखौ खड्गखेटे, त्रिशूलं डमरूं तथा।
पानपात्रं च वरदं दधतीं संस्मरेत् यजेत्।।

पूजन-तिथियाँ—शुक्ला चतुर्दशी और कृष्णा द्वितीया।

पूजन मन्त्र—ओं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवि देवि सर्वभूतसंहारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हुं हुं हुं रं रं रं हुं फट् स्वाहा।

[विचित्राया: (१५)]

विचित्रां श्वेतरूपाञ्च श्वेतपद्मधरां शुभाम्।
चित्रहस्तां महादेवीं सर्वाभरणभूषिताम्।।२९२।।

(१५) **विचित्रा**—भगवती विचित्रा का वर्ण श्वेत है। वे सभी आभूषणों से विभूषिता हैं। वे चित्रहस्ता हैं। कल्याणकारिणी भगवती विचित्रा के हाथों में श्वेत कमल है।।२९२।।

श्रीविद्यार्णव में बताया गया उनका ध्यान है—

शुभ्राङ्गी ज्ञानदा नित्यं विचित्रवसना सदा।
विचित्रतिलका नित्यं, विचित्रकुसुमोज्ज्वलाम्।।

पूजन-तिथियाँ—पूर्णिमा और कृष्णा प्रतिपदा।

पूजन मन्त्र—अं च्कौं विचित्रा नित्याकलायै नमः।

[श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः (१६)]

ततः श्रीसुन्दरीं ध्यात्वा पूजयेत् साधकोत्तमः।

[प्रतिपदादिष्वेकैकनित्यार्चायाः फलम्]

एकैकां पूजयेद् यो हि स सौभाग्यफलं लभेत्।।२९३।।

[सुन्दर्याः सर्वासु तिथिषु पूज्यत्वम्]

अःस्वरे षोडशीं नित्यां त्रिपञ्चतिथिगामिनीम्।

[पक्षभेदेनार्चायां क्रमभेदः]

कृष्णपक्षे विचित्राद्याः कामेश्वर्यन्तिका यजेत्।।२९४।।

एवं कामेश्वर्यादीनां विचित्रान्तानां पञ्चदशनित्यानां ध्यानान्यभिधाय षोडश्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या ध्यानमुपदिशति—**तत इत्यादिना**। ध्यानन्तु पूर्वमेव दर्शितम्। एकैकां निरुक्तासु नित्यास्वित्यर्थः।

षोडश्याः सुन्दर्याः पूजास्थानमाह—**अःस्वर इति**। अःस्वरे 'अःस्वरञ्च लिखेन्मध्ये' इति प्रागुक्त्या मध्यत्रिकोणमध्यलिखिते 'अः' इति षोडशस्वरे इत्यर्थः। षोडशीं विशिनष्टि—**त्रिपञ्चेति**। एवञ्च प्रतिपदादिपञ्चदशतिथिषु एकैकां नित्यां पूजयेत्, षोडशीन्तु सर्वास्वेव तिथिषु पूजयेदित्युक्तं भवति। यदेतत् कामेश्वर्यादीनां प्रतिपदादिष्वेकैकं पूजनमुक्तं तच्छुक्लपक्षविषयम्। कृष्णपक्षं विशेषमाह—**कृष्णेत्यादिना**। अत्र प्रतिपदि विचित्रां द्वितीयायां ज्वालांशुमालिनीमित्येवंक्रमेण कामेश्वर्यन्ता नित्याः पूजयेदित्यर्थः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे।
एकैकां पूजयेन्नित्यां महासौभाग्यमाप्नुयात्।।
कृष्णपक्षे महेशानि पूजयेत्तिथिमण्डलम्।
विचित्राया वरारोहे यावत् कामेश्वरीं भवेत्।। इति।

तन्त्रसारकृताऽपि 'महात्र्यस्त्रे वामावर्त्तेन आकारादिपञ्च ऊकारादिपञ्च एकारादिपञ्च विभाव्य मध्ये विसर्गं तेषु वामावर्त्तेन शुक्लपक्षे कामेश्वर्यादिविचित्रान्तं कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेदिति व्यक्तमुक्तम्। एवमेव त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि। **यजेदिति**। निरुक्तक्रमेण ध्यात्वा पञ्चदशप्रकाशीयतिथिनित्यान्यासोक्तरीत्या तत्तन्मन्त्र-मुच्चार्य श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यन्तेन पूजयेदित्यर्थः। तदुक्तं तन्त्रसारधृततन्त्रान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्य पादुकापदमुच्चरेत्।
पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः।। इति।

अत्रापि द्वितार्यास्त्रितार्या वा प्रयोगः कर्त्तव्यः साधारण्येनाङ्गदेवतार्चायां विहितत्वात्। तथाच **ऐँ ह्रीं (ऐँ ह्रीं श्रीं) अं ऐँ क्लीं सौः ॐ नमः कामेश्वरि**

इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभकरि हुं हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐँ कामेश्वरीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादिरूपः प्रयोगः कर्त्तव्यः। एवं भगमालिन्यादीनामपि मन्त्रा उन्नेयाः। षोडश्याः सुन्दर्याः पूजने तु आदौ द्वितारी त्रितारी वा ततः षोडशस्वरस्ततो मूलं ततः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी (महा) नित्याकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति प्रयोगः।

'ततः' अर्थात् यथानिर्दिष्ट स्वर-बिन्दु पर उस दिन की तिथिनित्या का पूजन करने के बाद मूल मन्त्र के अनुसार भगवती श्रीसुन्दरी का ध्यान करके त्रिकोण के मध्य में परिकल्पित 'अः' बिन्दु पर उनका पूजन करें। इनका पूजन प्रतिदिन किया जाता है।

शुक्ल पक्ष में कामेश्वरी से विचित्रा-पर्यन्त एक-एक नित्या का तथा कृष्ण पक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी-पर्यन्त एक-एक नित्या का प्रतिदिन पूजन करें॥२९३-२९४॥

पूजन मन्त्र—तिथिनित्या के मन्त्र के आदि में 'ह्रीं श्रीं' अथवा 'ऐं ह्रीं श्रीं' तथा उसके बाद यथाक्रम एक स्वर-वर्ण के बाद तिथिनित्या मन्त्र तथा उसके आगे नित्या का नाम एवं उसके आगे 'नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः' की योजना करने से तिथि-नित्या का पूजन मन्त्र निष्पन्न होता है। यथा—

'ह्रीं श्रीं (ऐं ह्रीं श्रीं) च्क्षौं विचित्रा नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

[नित्यायां तर्पणद्रव्यम्]

तर्पयेच्च मधुद्रव्यैः परमानन्दचेतसा।

तर्पयेदिति। तिथिनित्या इति शेषः।

गन्ध-पुष्प अक्षत से यथानिर्दिष्ट बिन्दु पर नित्या देवी का पूजन करके मधुर द्रव्य से उनका तर्पण करना चाहिए।

[पूजनम्]

वर्णानुक्रमयोगेण साधयेत्त्रिपुरेश्वरीम्॥२९५॥
स्वशक्त्या पूजनं कुर्यान्मूलविद्याञ्च पूजयेत्।

वर्णानुक्रमयोगेणेति। आदितोऽकारादि-विसर्गान्तषोडशस्वरयोगेणेत्यर्थः। मूलविद्यां त्रिपुरसुन्दरीम्। पूजनक्रमस्तु पूर्वमेव प्रदर्शितः।

तिथिनित्या का पूजन-तर्पण करने के बाद 'मूलविद्या' का पूजन-तर्पण करें। यथा—'ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः मूल मन्त्र श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी महानित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

[देव्यनुज्ञाग्रहणम्]

देव्याज्ञां मस्तके कृत्वा करोमि बाह्यपूजनम्॥२९६॥

भगवती से उनके परिवारदेवताओं के अर्चन के लिये प्राप्त अनुज्ञा को संकल्पपूर्वक शिरोधार्य करके बाह्य-पूजन के क्रम को आगे बढ़ायें। इस क्रम में सर्वप्रथम गुरुओं का पूजन करें॥२९५-२९६॥

[गुरुपूजनोपदेशः]

त्रिवृत्ते दिव्यसिद्धौघमानवौघान् प्रपूजयेत्।
बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रे तु शिवेनेति प्रकीर्त्तितम्।।२९७।।

अथ गुरुमण्डलपूजामभिधास्यन् प्रथमं गुर्वर्चनस्थानमाह—**त्रिवृत्त इति**। त्रिवृत्ते षोडशारबहिस्त्रिवृत्ते क्रमेण दिव्यौघान् सिद्धौघान् मानवौघांश्च पूजयेत् । इति बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रसिद्धान्तः।

'बृहत् श्रीक्रम तन्त्र' में भगवान् शिव ने कहा है कि षोडशार के बाहर जो तीन वृत्त हैं, उन पर क्रम से दिव्यौघ-सिद्धौघ और मानवौघ गुरुओं का पूजन करें।।२९७।।

[तत्र कल्पान्तरम्]

तिथिनित्यार्चनाद् बाह्ये त्रिरेखास्वथवा सुधीः।
प्रदक्षिणक्रमेणैव त्रिपङ्क्त्या पूजयेद् गुरून्।

तत्र कल्पान्तरमाह—**तिथीत्यादिना**। तिथिनित्यार्चनास्थानं प्रथमं प्रथमत्रिकोणं सर्वसिद्धिप्रदं नाम तद्बाह्यरेखात्रये प्रादक्षिण्येन त्रिपङ्क्त्या रेखात्रयेणेत्यर्थः, क्रमेण दिव्यौघान् सिद्धौघान् मानवौघांश्च गुरून् पूजयेदिति फलितार्थः।

अथवा—तिथिनित्या अर्चनमण्डल अर्थात् मूल त्रिकोण के बाहर तीन रेखाओं पर प्रदक्षिणाक्रम से गुरु-मण्डल का पूजन-तर्पण करें।

[तत्र प्रयोगक्रमः]

आनन्दनाथशब्दान्तामम्बान्तां मातरं क्रमात्।।२९८।।

पूजनक्रममाह—**आनन्देति**। तथाच अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि इति पुंगुरुपूजायाम्, अमुकाम्बा-श्रीपादुकां पूजयामीति स्त्रीगुरुपूजायां प्रयोगः। व्यक्तमाह तन्त्रसारे—

आनन्दनाथशब्दान्ता विज्ञेयाः परमेश्वरि।
अम्बान्ता गुरवः प्रोक्ताः स्त्रीलिङ्गा वीरवन्दिते।। इति।

श्रीपादुकादिपदव्यवहारबीजन्तु श्रीपदं पूर्वमुच्चार्येत्यादिना पूर्वमुपदर्शितम्।

पुरुषगुरुओं के नाम के अन्त में 'आनन्दनाथ' तथा स्त्रीगुरुओं के नाम के अन्त में अम्बा (या देव्यम्बा) की योजना करके पूजन करना चाहिए।।२९८।।

[गुरुक्रमनिरूपणप्रतिज्ञा]

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि षोडशीनां गुरुक्रमम्।।२९९।।

अब दिव्यौघ गुरुओं के शुभ नाम बता रहे हैं।

[तत्र सप्त दिव्यौघाः]

परप्रकाशको नाम परशिवो द्वितीयकः।
तृतीया परशक्तिश्च कौलेश्वरस्ततः परम्।।३००।।
शुक्लादेवी परेशानः कामेश्वर्यम्बिका ततः।
दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ताः पराख्याः सप्तमा इति।।३०१।।

अथ षोडशीनां गुरुपङ्क्तिमभिधास्यन् प्रथमं कामराजविद्यायास्तद्घटितानां विद्यानाञ्च गुरुक्रममाह—**परप्रकाशक इत्यादिना**। अनेन १ परप्रकाशः, २ परशिवः, ३ परशक्तिः, ४ कौलेश्वरः, ५ शुक्लादेवी, ६ परेशानः, ७ कामेश्वर्यम्बिका इति सप्त पराख्या दिव्यौघाः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

परप्रकाशो देवेशि ततः परशिवो मतः।
परा शक्तिस्तथा देवि कौलेश्वर इति प्रिये।
शुक्ला देवि(वी) कुलेशानकामेश्वर्यम्बिकाः क्रमात्।
मुनिसंख्यास्तु गुरवः पराख्या दिव्यरूपिणः। इति।

अथ ज्ञानार्णववचने परेशान इत्यत्र कुलेशान इति विशेषः। कौलेश्वर इत्यत्र कौलेश्वरीति च तन्त्रसारे।

(१) परप्रकाश, (२) परशिव, (३) परशक्ति, (४) कौलेश्वर, (५) शुक्ला देवी, (६) परेशान और (७) कामेश्वर्य-म्बिका—ये सात दिव्यौघ गुरु हैं।।२९९-३०१।।

[सिद्धौघाः पञ्च]

भोगक्रीडौ च समयः सहजो देवसंज्ञकः।
परापराख्याः सिद्धौघाः—

अथ क्रमप्राप्तान् परापराख्यान् सिद्धौघानाह—**भोगेत्यादिना**। तथाच—**१ भोगः, २ क्रीडः, ३ समयः, ४ सहजः, ५ देवः इति पञ्च परापराख्याः सिद्धौघाः। तदुक्तं तत्रैव—**

भोगक्लिन्नस्तु समयो वेदाख्यः सहजस्तथा।
परापराख्यसिद्धौघे मानवौघे शृणु प्रिये।। इति।

एवञ्च क्रीड इत्यत्र क्लिन्न इति ज्ञानार्णवे विशेषः। समयः सहजो वेद इति मूलतः क्रमभेदः, देव इत्यत्र वेद इति पाठभेदश्च ज्ञानार्णव-तन्त्रसारयोः। निरुक्तभोगेत्यादि-ज्ञानार्णववचनस्य—समयः सहजो वेदसंख्यकाः इति क्वचित् पाठभेदो दृश्यते। तत्र च भोगः क्लिन्नः समयः सहज इति वेदसंख्यकाश्चतुःसंख्यकाः सिद्धौघा इत्यर्थो लभ्यते। त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि भोगाद्याश्चत्वार एव सिद्धौघत्वेन परिगृहीताः। देव इत्यत्र ज्ञानार्णव-तन्त्रसारादिषु वेद इति दर्शनाद् वेद इति पाठस्य समीचीनत्वं सम्भावयताऽपि प्रबलतर-प्रमाणाभावान्मूलोक्तपाठो न परिहृतः।

(१) भोग, (२) क्रीड, (३) समय और (४) सहज—ये चार परापराख्य सिद्धौघ गुरु है॥३०२॥

[मानवौघाः सप्त]

—मानवौघान् ब्रवीम्यथ।।३०२।।

गगनो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा।
नीलमात्मप्रियश्चैव सप्तसङ्ख्यास्तु मानवाः।

[निगमनम्]

कामराजाख्यविद्याया गुरुपङ्क्तिरियं भवेत्।।३०३।।

अथ क्रमप्राप्तान् मानवौघानाह—**गगन इत्यादिना।** एवञ्च—१ गगनः, २ विश्वः, ३ विमलः, ४ मदनः, ५ भुवनः, ६ नीलम्, ७ आत्मप्रियः इति सप्तापराख्या मानवौघाः। अत्र ज्ञानार्णवे—

गगनो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा।
लीला स्वात्मा प्रियः पश्चान्नागसंख्यास्तु मानवाः।
अपरा परमेशानि नियता अक्षरा इमे।

इति वचने गुरूणां केषाञ्चिन्नामभेदा अष्टसंख्यत्वञ्च दृश्यन्ते। त्रिपुरार्चनरहस्य-तन्त्रसारयोरपि निरुक्तक्रमेणाष्टसंख्यत्वमेवोक्तमिति 'सप्तसंख्यास्तु मानवा' इति मूलोक्त्या महान् विरोधः। **कामराजेति।** निरुक्तो गुरुक्रमः कामराजाख्यविद्यायास्तद्-घटितानां विद्यान्तराणाञ्चेति बोध्यमित्यर्थः।

(१) गगन, (२) विश्व, (३) विमल, (४) मदन, (५) भुवन, (६) नीलम और (७) आत्मप्रिय—ये सात पराख्य मानवौघ गुरु हैं। कामराज विद्या की यह गुरु-पंक्ति है॥३०३॥

विमर्श—यहाँ बताये गये नामों तथा श्रीज्ञानार्णवतन्त्र में बताये गये नामों और संख्या में कुछ अन्तर है।

[स्वगुर्वादियागः]

मानवौघान्तिके मन्त्री स्वगुरुत्रितयं यजेत्।
परमेष्ठी च परमः स्वगुरुश्च त्रयो भवेत्।।३०४।।

मानवेति। मानवौघानां निरुक्तानामन्तिके गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुञ्च यजेदित्यर्थः।

मानवौघ गुरुओं के पास ही अपने परमेष्ठी गुरु, परमगुरु और स्वगुरु का भी उनके नामोल्लेख-पूर्वक पूजन करना चाहिए॥३०४॥

[गुरुवंशप्रकर्षः]

स्ववंशादधिको ज्ञेयो गुरुवंशो महाशुभः।

[मन्त्रदातुः प्रकर्षः]

पितुरप्यधिको ज्ञेयो मन्त्रदः परमो गुरुः।।३०५।।

सिद्धिकामी साधक को अपने जन्म-वंश से अधिक महत्त्व और सम्मान गुरुदेव के वंश को और अपने जन्मदाता पिता से अधिक सम्मान मन्त्रदाता गुरु को देना चाहिए।।३०५।।

[निरुक्तगुरुनामाज्ञाने कर्त्तव्यम्]

न जानाति गुरोर्नाम तदाऽनेन प्रपूजयेत्।
गुरुभ्यो नम उच्चार्य पादुकाभ्यो नमो वदेत्।।३०६।।
गुर्वन्ते परमान्ते च गुरुभ्यो नम इत्यपि।
एतेषां पादुकास्तद्वदाचार्येभ्यो नमो वदेत्।।३०७।।

यदि साधक को गुरु-पंक्ति का ज्ञान नहीं हो तो उसे गुरु-पूजन के लिये 'गुरुभ्यो नमः—गुरुपादुकेभ्यो नमः' का उच्चारण करके पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार परमगुरु के लिये 'परमगुरुभ्यो नमः—परमगुरुपादुकेभ्यो नमः' परापरगुरु के लिये 'परापरगुरुभ्यो नमः परापरगुरुपादुकेभ्यो नमः, परमेष्ठी गुरु के लिये 'परमेष्ठी-गुरुभ्यो नमः—परमेष्ठीगुरुपादुकेभ्यो नमः' मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। इसी तरह आचार्य की भी पादुका है—'आचार्येभ्यो नमः आचार्यपादुकेभ्यो नमः।'

[निगमनम्]

सामान्यगुरुशिष्याणां गुरुपङ्क्तिरियं भवेत्।

सामान्य गुरु-शिष्यों की यही गुरुपंक्ति है।

[गुरुपङ्क्तिपूजाप्रशस्तिः]

गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्याथ स्वयं श्रीत्रिपुरा भवेत्।।३०८।।

गुरुपंक्ति का पूजन करके साधक स्वयं त्रिपुरास्वरूप हो जाता है।।३०८।।

[लोपामुद्राया गुरुक्रमः]

लोपामुद्राख्यविद्यायाः प्रवक्ष्यामि गुरुक्रमम्।

लोपामुद्रा विद्या की गुरु-परम्परा बता रहा हूँ।

[तत्र दिव्यौघाः]

परमाद्यः शिवान्तश्च कामेश्वर्यम्बिका ततः।।३०९।।
दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वानन्दस्ततः परम्।
प्रज्ञादेवी प्रकाशश्च दिव्यौघे सप्तमो भवेत्।।३१०।।

एवं कामराजविद्याया गुरुक्रमं निरूप्य लोपामुद्रायास्तद्घटितानां विद्यान्तराणाञ्च गुरुक्रममाह—**परमाद्य इत्यादिना**। परमाद्यः शिवः परमशिवः। एवञ्च १ परमशिवः, २ कामेश्वर्यम्बिका, ३ दिव्यौघः, ४ महौघः, ५ सर्वानन्दः, ६ प्रज्ञादेवी, ७ प्रकाशश्चेति सप्त दिव्यौघा इति पर्यवस्यति।

(१) परमशिव, (२) कामेश्वर्यम्बिका, (३) दिव्यौघ, (४) महौघ, (५) सर्वानन्द, (६) प्रज्ञादेवी और (७) प्रकाश—ये सात दिव्यौघ गुरु हैं।

[सिद्धौघाः मानवौघाश्च]

दिव्यचित्रश्च कैवल्यदेव्यम्बा च महोदयः।
सिद्धौघे च चतुष्कः स्यान्मानवौघमथोच्यते।।३११।।
चिद्विश्वशक्तीश्वरकाश्चतुर्थ(ः) कमलो भवेत्।
मनोहरः परः स्वात्मा अलोभश्चाष्टमो मतः।।३१२।।

सिद्धौघानाह—**दिव्येति**। १ दिव्यः, २ चित्रः, ३ कैवल्यदेव्यम्बा, ४ महोदयः, इत्येते चत्वारः सिद्धौघाः। मानवौघानाह—**मानवेत्यादिना**। तथाच—१ चिद्, २ विश्वः, ३ ईश्वरः, ४ कमलः, ५ मनोहरः, ६ परः, ७ स्वात्मा, ८ अलोभः इत्यष्टौ मानवौघाः। तन्त्रसारकृता तु 'चिद्विश्वशक्तीश्वरकमलपरमानन्दमनोहरसुखानन्दप्रतिभान्। एतं मानवौघा' इत्यनेन मनोहरादिचतुष्टये नामभेदाः प्रदर्शिताः। ज्ञानार्णवे षोडशपटले लोपामुद्राया गुरुक्रम इत्थमुपदर्शितः—

लोपामुद्राख्यविद्याया गुरूञ् शृणु वरानने।
परमाद्यशिवश्चाऽऽद्या कामेश्वर्यम्बिका तथा।।
दिव्यौघश्च महौघश्च सर्वानन्दस्ततः परम्।
प्रज्ञादेव्यम्बिका पश्चात् प्रकाशः सप्तमो भवेत्।।
दिव्याः पराख्यगुरवो लोपामुद्राप्रभामयाः।
दिव्यश्चित्रश्च कैवल्यदेव्यम्बा च महोदयः।।
सिद्धाः परापरा ज्ञेया मानवौघं शृणु प्रिये।
विद्या शक्तिश्च विश्वश्च चतुर्थः कोमलो(?) भवेत्।।
पञ्चमस्तु परानन्दो मनोहर इति प्रिये।
स्वात्मानन्दः सप्तमस्तु प्रतिभोऽष्टम उच्यते।।
अपराख्या इमे देवि गुरवः परिकीर्त्तिताः।
पूर्ववत् योजयेत् पश्चादष्टानन्तरमेव च।।
त्रयं वा स्वगुरुं वाऽपि नवान्तं वाऽब्जलोचने।
दक्षिणामूर्त्तिशिष्याणां गुरुक्रम उदाहृतः।। इति।

निरुक्तज्ञानार्णववचने कैवल्यदेव्यम्बेति तृतीयगुरुनिर्देशात् सिद्धौघे च चतुष्कः स्यादिति मूलोक्तचतुःसंख्याकत्वं सम्यगुपपद्यते। यत्तु तन्त्रसारे दिव्यं चित्रं कैवल्यं दिव्याम्बां महोदयम् एते सिद्धौघाः पञ्च इत्यनेन सिद्धौघानां पञ्चत्वं प्रतिपादितम्, तज् ज्ञानार्णवश्रीतत्त्वचिन्तामणिविरोधाल्लेखकप्रमादकृतमिति प्रतीमः। मानवौघेष्वपि गुरूणां परस्परं संज्ञाभेदो दृश्यते।

(१) दिव्य, (२) चित्र, (३) कैवल्यदेव्यम्बा तथा (४) महोदय—ये चार सिद्धौघ गुरु हैं। मानवौघ गुरु हैं—(१) चिद्, (२) विश्व, (३) ईश्वर, (४) कमल, (५) मनोहर, (६) पर, (७) स्वात्मा और (८) अलोभ।

विमर्श—दिव्यौघ गुरुओं को 'पर', सिद्धौघ गुरुओं को 'परापर' तथा मानवौघ गुरुओं को 'परात्पर गुरु' कहते हैं। श्रीज्ञानार्णव तन्त्र, तन्त्रसार आदि अन्य ग्रन्थों में बताये गये नामों से यहाँ बताये गये नाम भिन्न हैं।

[विद्यान्तराणां गुरुक्रमः]

अन्यासां सर्वविद्यानां समाना गुरवः क्रमात्।।३१३।।
अथापरः प्रकारश्च परादिविश्व इत्यपि।
कामेश्वरी तृतीया स्याच्चतुर्थी स्यादथाम्बिका।।३१४।।
मोक्षश्चामृतसंज्ञश्च प्रकाशो घोर एव च।
अथ नाम सद्गुरुश्च सिद्धौघश्चोत्तरः क्रमात्।।३१५।।
उद्भवः परमश्चैव सर्वज्ञस्तत्त्व एव च।
सिद्धस्तथा च गोविन्दः शङ्करो मानवो भवेत्।।३१६।।
गुरुपङ्क्तिविहीनस्तु पुरुषः पङ्क्तिवर्जितः।
सम्प्रदायविहीनस्य न दद्यात् पङ्क्तिमुत्तमाम्।।३१७।।
गुरुं विना क्रमं यस्तु कुरुते यदि साधकः।
महानिष्टं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः।।३१८।।
दक्षिणामूर्तितन्त्रस्य मतमेतदुदीरितम्।

अन्यासामिति। लोपामुद्राघटितानाम्। समानाः 'मानवौघान्तिके मन्त्री'त्यादि-कामराजविद्यागुरुक्रमे प्रदर्शितैः स्वगुर्वादिभिस्तुल्या इत्यर्थः। एतेन कामराजविद्यागुरुक्रमे ये सामान्या गुरवस्तत्पादुकाश्च पूज्यतया निर्दिष्टा अत्रापि क्रमेण त एव प्रयोज्या इत्यर्थः। अत एव ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

साधारणास्तु गुरवः सर्वभेदेषु वै समाः। इत्युक्तम्।

लोपामुद्रा विद्या से सम्बन्धित अन्य सभी विद्याओं के सामान्य गुरुओं का क्रम एक-सा है। अन्य प्रकार के सिद्धौघ गुरुओं का क्रम इस प्रकार है—(१) पर, (२) विश्व, (३) कामेश्वरी, (४) अम्बिका, (५) मोक्ष, (६) अमृत, (७) प्रकाश तथा (८) घोर।

मानवौघ गुरु हैं—(१) उद्भव, (२) परम, (३) सर्वज्ञ, (४) तत्त्व, (५) सिद्ध, (६) गोविन्द और (६) शङ्कर।

जो व्यक्ति गुरुपंक्ति का पूजन नहीं करता, वह पंक्तिवर्जित या पंक्तिहीन है; लेकिन सामान्य गुरुपंक्ति का भी पूजन करने वाला साधक पंक्तिहीन नहीं कहलाता।

जो साधक विधिवत् सम्प्रदाय द्वारा दीक्षित नहीं है, उसे गुरुपंक्ति का ज्ञान नहीं देना चाहिए। जो साधक गुरु से विधिवत् दीक्षित हुए बिना गुरुपंक्ति का पूजन करता है, उसका महान् अनिष्ट होता है। यह दक्षिणामूर्तितन्त्र में कहा गया है॥३१३-३१८॥

गुरुमण्डल-पूजन–प्रयोग-क्रम—पाठकों को गुरु-मण्डलपूजन का प्रयोग-क्रम स्पष्ट करने के लिये कामराज विद्या के साधक-समाज में सम्प्रति प्रचलित गुरु-पूजन की विधि रेखाचित्र के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही है। यहाँ पूज्य गुरुओं के नाम ज्ञानार्णवतन्त्र के अनुसार हैं—

दिव्यौघ सिद्धौघ मानवौघेभ्यो नमः—पुष्पाञ्जलि दें।

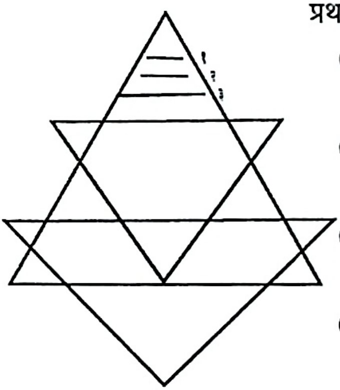

प्रथम रेखा पर—

(१) ऐं ह्रीं श्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(२) ऐं ह्रीं श्रीं परशिवानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(३) ऐं ह्रीं श्रीं पराशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(४) ऐं ह्रीं श्रीं कौलेश्वरानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(५) ऐं ह्रीं श्रीं शुक्लदेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(६) ऐं ह्रीं श्रीं कुलेश्वरानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(७) कामेश्वर्यानन्द नाथ श्री पादुकां पूज० तर्प० नमः।

द्वितीय रेखा पर—सिद्धौघ गुरु

(१) ऐं ह्रीं श्रीं भोगानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(२) ऐं ह्रीं श्रीं क्लिन्नानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(३) ऐं ह्रीं श्रीं समयानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(४) ऐं ह्रीं श्रीं सहजानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तृतीय रेखा पर—मानवौघ गुरु

(१) ऐं ह्रीं श्रीं गगनानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(२) ऐं ह्रीं श्रीं विश्वानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तपयामि नमः।
(३) ऐं ह्रीं श्रीं विमलानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(४) ऐं ह्रीं श्रीं मदनानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(५) ऐं ह्रीं श्रीं भुवनानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(६) ऐं ह्रीं श्रीं लीलाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(७) ऐं ह्रीं श्रीं स्वात्मानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(८) ऐं ह्रीं श्रीं प्रियानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

प्रथम रेखा पर परमेष्ठी गुरु का, द्वितीय रेखा पर परमगुरु का और तृतीय रेखा पर स्वगुरु का उनके पादुकामन्त्रों से पूजन-तर्पण करें।

[आम्नायदेवतापूजनोपदेशः]

गुरुक्रमं प्रपूज्याथ यजेदाम्नायदेवताः।।३१९।।

दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ और अपने गुरुओं का पूजन-तर्पण करने के बाद आम्नायदेवताओं का पूजन करें।।३१९।।

[तत्र पूर्वाम्नायार्चा]

त्रैलोक्यमोहने चक्रे सर्वाशापरिपूरके।
सर्वसंक्षोभणे चक्रे पूर्वाम्नायं समर्चयेत्।।३२०।।

एवं गुरुक्रमार्चामभिधायाऽऽम्नायदेवतार्चामभिदधानः प्रथमं पूर्वाम्नायसमर्चनक्रममाह—**त्रैलोक्येत्यादिना**। प्रागुक्ते त्रैलोक्यमोहनादिचक्रत्रये चतुरस्रषोडशदलाष्टदलात्मके सृष्टिचक्रे पूर्वाम्नायं समर्चयेदित्यर्थः। एवं दक्षिणाम्नायादीनामपि वक्ष्यमाणरीत्या चक्रे यथास्थानमर्चना ज्ञेया।

पूर्वाम्नाय—त्रैलोक्यमोहन चक्र (चतुरस्र), सर्वाशापरिपूरक चक्र (षोडश कमल दल) तथा सर्वसंक्षोभण चक्र (अष्टदल कमल) में पूर्वाम्नायदेवताओं का अर्चन करें।।३२०।।

[दक्षिणाम्नायार्चा]

सर्वसौभाग्यदे चक्रे तथा सर्वार्थसाधके।
सर्वरक्षाकरे चक्रे दक्षिणाम्नायमर्चयेत्।।३२१।।

सर्वसौभाग्यदे चतुर्दशारे, सर्वार्थसाधके बहिर्दशारे, सर्वरक्षाकरेऽन्तर्दशारे। एतत्त्रितये दक्षिणाम्नायमर्चयेदित्यर्थः।

दक्षिणाम्नाय—सर्वसौभाग्यदायक (चतुर्दशार), सर्वार्थसाधक (बहिर्दशार) तथा सर्वरक्षाकर (अन्तर्दशार) चक्रों में दक्षिण आम्नाय का पूजन करें।।३२१।।

[पश्चिमोत्तराम्नायार्चा]

मध्यचक्रे यजेद्देवीं पश्चिमाम्नायनायिकाम्।
अष्टचक्रे यजेद्देवीमुत्तराम्नायनायिकाम्।।३२२।।

मध्यचक्र इति। मध्यचक्रत्रये—

मध्यचक्रत्रये देवि पश्चिमाम्नायमर्चयेत्।

इति ज्ञानार्णवे षोडशपटले व्यक्तमभिधानात्। मध्यचक्रत्रयञ्च सर्वरोगहरचक्रम् अष्टकोणात्मकम्, सर्वसिद्धिप्रदचक्रं त्रिकोणात्मकम्, सर्वानन्दमयचक्रं मध्यबिन्द्वात्मकम्। **अष्टचक्र इति।** अत्र—

नवचक्रेषु देवेशि कौबेराम्नायमर्चयेत्।

इति ज्ञानार्णवे पाठः।

पश्चिम्नाय—मध्य के तीनों चक्रों (अष्टार-त्रिकोण और बिन्दु) में पश्चिम आम्नाय नायिका का तथा शेष आठ चक्रों में उत्तर आम्नाय नायिका का अर्चन करें॥३२२॥

[अध-ऊर्ध्व-आम्नायार्चा]

सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे अध-आम्नायमर्चयेत्।
सर्वाम्नायमये चक्र ऊर्ध्वाम्नायं प्रपूजयेत्।।३२३।।

सर्वसिद्धिप्रद इति। निरुक्तमध्यत्रिकोण इत्यर्थः। **सर्वेति।** सर्वाम्नायमये चक्रे मध्यबिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्र इत्यर्थः। तन्त्रसारकारैरपि बैन्दवचक्रे ऊर्ध्वाम्नायार्चाऽ-भिहिता। ज्ञानार्णवतन्त्रसारयोरध-आम्नायार्चाक्रमो न दृश्यते, आम्नायार्चाक्रमस्तु तन्त्रसारादावनुसन्धेयः।

सर्वसिद्धिप्रद चक्र (मध्य त्रिकोण) में अधो आम्नाय का पूजन करें। सर्वाम्नाय चक्र (बैन्दव चक्र) में ऊर्ध्वाम्नाय का पूजन करें॥३२३॥

[तर्पणम्]

पूर्वोक्तमन्त्रयोगेण ततः सन्तर्पयेत् क्रमात्।।३२४।।

पूर्वोक्त मन्त्रों से पूजन करने के बाद आम्नायदेवियों का तर्पण करें॥३२४॥

विमर्श—इनके पूजन-तर्पण के मन्त्र आगे बताये गये हैं।

[पञ्चपञ्चिकाः, तत्र पञ्चलक्ष्म्यः]

श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः पञ्च प्रकीर्त्तिताः।।३२५।।

अथ पञ्चपञ्चिकार्चामभिधास्यन् प्रथमपञ्चलक्ष्मीर्निरूपयति—**श्रीविद्येति।** श्रीविद्या लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्येति पञ्च लक्ष्म्यः। अत्र ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्या पञ्च लक्ष्म्याः प्रकीर्त्तिताः।। इति पाठः।

पञ्चलक्ष्मी—(१) श्रीविद्या, (२) लक्ष्मी, (३) महालक्ष्मी, (४) त्रिशक्ति, लक्ष्मी और (५) सर्वसाम्राज्य लक्ष्मी—ये लक्ष्मीपञ्चक की देवियाँ हैं॥३२५॥

[पञ्च कोशाः]

श्रीविद्या च परंज्योतिः परा निष्कलशाम्भवी।
अजपा मातृका चेति पञ्च कोशाः प्रकीर्तिताः।।३२६।।

श्रीविद्येति। ज्ञानार्णवे तु पञ्चलक्ष्मीनिरूपणात् पूर्वं पञ्चकोशनिरूपणं दृश्यते। शिष्टं स्पष्टम्।

कोषपञ्चक—(१) श्रीविद्या, (२) परं ज्योति, (३) परा निष्कल शाम्भवी, (४) अजपा और (५) मातृका—ये कोषपञ्चिका देवियाँ हैं॥३२६॥

[पञ्च कल्पलताः]

श्रीविद्या त्वरिता चेति पारिजातेश्वरी तथा।
त्रिपुटा पञ्चकामेशी पञ्च कल्पलताः स्मृताः।।३२७।।

कलालता विद्यायें—(१) श्रीविद्या, (२) त्वरिता, (३) पारिजातेश्वरी, (४) त्रिपुटा और (५) पञ्चकामेशी—ये पञ्चकल्प लतायें हैं॥३२७॥

[पञ्च कामदुघाः]

श्रीविद्या मृतपीठेशी सुधाश्रीरमृतेश्वरी।
अन्नपूर्णेति विख्याताः पञ्च कामदुघाः स्मृताः।।३२८।।

कामदुघाः कामधेनवः। तथाच ज्ञानार्णवे षोडशपटले—श्रीविद्येत्यादिसमानानुपूर्वीकवचने 'पञ्च कामदुघाः स्मृता' इत्यत्र 'पञ्चैता कामधेनव' इति पाठो दृश्यते। त्रिपुरार्चनरहस्ये तु कामदुघेत्येव पाठो वाक्ये विनियुक्तः।

पञ्च कामदुघा—(१) श्रीविद्या, (२) अमृतपीठेशी, (३) सुधाश्री, (४) अमृतेश्वरी और (५) अन्नपूर्णा—ये पाँच कामदुघा विद्यायें हैं॥३२८॥

[पञ्चरत्नाः]

श्रीविद्या सिद्धलक्ष्मीश्च मातङ्गी भुवनेश्वरी।
वाराहीति च सम्प्रोक्ताः पञ्चरत्नाः प्रकीर्त्तिताः।।३२९।।

पञ्चरत्नेश्वरी—(१) श्रीविद्या, (२) सिद्धलक्ष्मी, (३) मातङ्गी, (४) भुवनेश्वरी और (५) वाराही—ये पाँच रत्नेश्वरी देवियाँ हैं॥३२९॥

[पञ्चपञ्चिकार्चाख्यानम्]

श्रीविद्यापूजनस्थाने चक्रराजे महोदये।
महाकोषेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता ।।३३०।।

[पञ्चपञ्चिकार्चाक्रमः]

सर्वसौभाग्यजननीं पादुकां पूजयामि च।
इत्युच्चार्य परंज्योतिःकोशाढ्यां(?) परिपूजयेत्।।३३१।।
अनेनैव विधानेन पूजयेत् पञ्चपञ्चिकाम्।

[निगमनम्]

एवं सम्पूज्य सकलं श्रीविद्यां परितो यजेत्।।३३२।।

[तर्पणम्]

तर्पणानि पुनः कुर्यात् त्रिः सकृद्वा यथेच्छया।

श्रीविद्येति। श्रीविद्यापूजनस्थाने बैन्दवचक्रे इत्यर्थः,

श्रीविद्यापूजनस्थाने बैन्दवे पञ्चपञ्चिकाः।

इति त्रिपुरार्चनरहस्ये व्यक्तमभिधानात्।

निरुक्तपञ्चपञ्चिकापूजनक्रममाह—**सर्वेति**। विशेषस्तु ज्ञानार्णवे षोडशपटलेऽनुसन्धेयः। परंज्योतिःकोशाढ्यामिति लक्ष्मीविशेषणम्, परज्योतिर्मयीमित्यर्थः। कोशाद्यामिति ज्ञानार्णवपाठे तु पञ्चकोशादिपञ्चपञ्चिकामित्यर्थः, तत्र पञ्चकोशानामेव प्रथमं निरूपणम्।

श्रीचक्र में श्रीविद्या के पूजन-स्थान अर्थात् बैन्दन-चक्र में पञ्च-पञ्चिका देवियों का पूजन किया जाता है।

मूल मन्त्र—'महाकोषेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

इस मन्त्र से श्रीविद्या कोशेश्वरी का बिन्दु-चक्र में पूजन करने के बाद उनके चारो ओर अन्य कोशेश्वरी विद्याओं का पूजन तथा यथा इच्छा तीन या एक बार तर्पण करें। शेष चार पञ्चपञ्चिका वर्ग की विद्याओं का भी पूजन इसी विधान से किया जाय॥३३०-३३१॥

विमर्श—चूँकि प्रस्तुत ग्रन्थ में पञ्च-पञ्चिका विद्याओं के नामोल्लेख तथा पूजन करने का निर्देश करने के बाद पूजन का प्रयोग-विधान नहीं बताया गया है; अतः विषय-निर्वाह के लिये श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (पटलसंख्या १६) में बताया गया पूजन-क्रम निम्नानुसार प्रस्तुत है। तदनुसार सर्वप्रथम लक्ष्मीविद्याओं का पूजन करें। यथा—

(१) श्रीविद्या-लक्ष्मी—'मूल मन्त्र—महालक्ष्मीश्वरी वृन्द मण्डितासन संस्थिता सर्वसौभाग्यजननीश्रीपादुकां पूजयामि नमः'। बिन्दु पर पूजन करें।

(२) **एकाक्षरी लक्ष्मी**—'श्रीं लक्ष्मीपादुकां पूजयामि नमः'। इस मन्त्र से श्रीविद्या के पूर्व भाग में पूजन करें।

(३) **महालक्ष्मी**—'ॐ श्रीं ह्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः'। इस मन्त्र से दक्षिण भाग में पूजन करें।

(४) **त्रिशक्ति लक्ष्मी**—'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' इस मन्त्र से पश्चिम भाग में अर्चन करें।

(५) **सर्वसाम्राज्यलक्ष्मी**—'श्रीं सहकलह्रीं श्रीं सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' उत्तर भाग में पूजन करें।

पञ्चकोश विद्या—

(१) **श्रीविद्या-कौशेश्वरी**—मूल मन्त्र 'महाकोशेश्वरी वृन्द मण्डितासन संस्थिता सर्वसौभाग्यजननीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' मूलबिन्दु पर पूजन करें।

(२) **परंज्योति कोशेश्वरी**—'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा। परंज्योतिश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' पूजन दिशा—पूर्व।

(३) **परनिष्कल शाम्भवी**—'ॐ परनिष्कलशाम्भवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' पूजन दिशा—पूर्व।

(४) **अजपा-कोशेश्वरी**—'हंसः' अजपापादुकां पूजयामि नमः।' पूजन की दिशा—पश्चिम।

(५) **मातृका कोशेश्वरी**—'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं—मातृकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' इस मन्त्र से श्रीविद्या की उत्तर दिशा में पूजा करें।

पञ्च कल्पलता—

(१) **श्रीविद्या**—मूल मन्त्र—'महाकल्पलतेश्वरी वृन्द मण्डितासन संस्थिता सर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्याकल्पलताश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

(२) **त्वरिता**—मूल मन्त्र—'ॐ ह्रीं हुं खेचछेक्ष स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट् त्वरिताश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' श्रीविद्या के पूर्व भाग में पूजन करें।

(३) **पारिजातेश्वरी**—'ॐ ह्रीं हस्त्रैं ह्रीं सरस्वत्यै नमः पारिजातेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' श्रीविद्या के दक्षिण भाग में पूजन करें।

(४) **त्रिपुटा**—'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुटाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' श्रीविद्या के पश्चिम में पूजन करें।

(५) **पञ्च कामेशी**—'ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं—पञ्चकामेशीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'—श्रीविद्या के उत्तर में पूजन करें।

पञ्च कामदुघा—

(१) **श्रीविद्या**—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूल मन्त्र—'महाकामदुघेश्वरी वृन्द मण्डितासन संस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकामदुघाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'—श्रीचक्र के मूल बिन्दु पर पूजन करें।

(२) **अमृत पीठेशी**—श्री ज्ञानार्णव तन्त्र में द्वितीया कामधेनु विद्या का नाम 'मूलपीठेशी' बताया गया है। मन्त्र है—'ऐं ईं ॐ'।

तदनुसार—'ऐं ईं ॐ' मूलपीठेशी श्रीपादुकां पूजयामि नमः'—इस मन्त्र से श्रीविद्या के पूर्व भाग में पूजन करें।

'मन्त्रमहोदधि' और 'श्रीविद्यार्णव' में नाम 'अमृतपीठेशी' ही है; मगर मन्त्र भिन्न-भिन्न हैं। महोदधि में मन्त्र है—'ऐं क्लीं सौः'। पूजन की दिशा—यथावत् पूर्व।

(३) **सुधाश्री**—'ह्रीं श्रीं ऐं राज्यदे राज्यलक्ष्मि सः ऐं श्रीं ह्रीं—सुधाश्री-श्रीपादुकां पूजयामि नमः। श्रीविद्या के दक्षिण में पूजन करें।

(४) **अमृतेश्वरी**—श्रीज्ञानार्णव में अमृतेश्वरी विद्या का मन्त्र नहीं बताया गया है। मन्त्रमहोदधि में त्र्यक्षरी मन्त्र है—'सौः क्लीं हैं'।

तदनुसार श्रीविद्या के पश्चिम भाग में—'सौः क्लीं हैं—अमृतेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः'—इस मन्त्र से पूजा करें।

(५) **अन्नपूर्णा**—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'—श्रीअन्नपूर्णाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। उत्तर में पूजन करें।

पञ्चरत्नेश्वरी विद्या—

(१) **श्रीविद्यारत्नेश्वरी**—मूल मन्त्र—'महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननीश्रीविद्यारत्नेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः'। इस मन्त्र से मूल बिन्दु पर पूजन करें।

(२) **सिद्धलक्ष्मी**—'ऐं ह्रीं श्रीं हस्खफ्रें हस्त्रैं हसकलरीं ह्स्त्रौं ज्झ्रीं महाचण्ड संकर्षिणी काल महान हं ह्रीं—सिद्धलक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'—पूर्व दिशा में पूजन करें।

(३) **मातङ्गी**—'ऐं ह्री श्रीं मातङ्गिन्यै नमः श्रीं ह्रीं ऐं—मातङ्गिनीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' दक्षिण दिशा में पूजन करें।

(४) **भुवनेश्वरी**—'ह्रीं भुवनेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।' इस मन्त्र से पश्चिम भाग में पूजा करें।

(५) **वाराही**—'ऐं भगवति वार्तालि वाराहि वाराहि वाराहमुखि अन्धे अन्धिन्यै नमः रुन्धनि जम्भे जम्भिन्यै नमः मोहे मोहिन्यै नमः स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः अमुकं स्तम्भय स्तम्भय सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्र वश्यं कुरु कुरु (मूल मन्त्र) ऐं स्वाहा। वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'—इस मन्त्र से श्रीविद्या के उत्तर भाग में पूजा करें।

आवरण-पूजन—

(१) **षडङ्ग पूजन**—गुरुमण्डल अर्चन तथा पञ्च-पञ्चिका विद्याओं के अर्चन के बाद अब यहाँ से संहार-क्रम से आवरण-पूजन का क्रम प्रारम्भ होता है। त्रैलोक्य-मोहन चक्र अर्थात् भूपुर की प्रथम रेखा पर अणिमा आदि सिद्धियों का पूजन करने के पूर्व उनका समष्टि रूप से ध्यान करें। यथा—

[अणिमादिप्रकटयोगिनीध्यानम्]

अणिमाद्या रक्तवर्णास्त्रिनेत्राः शशिशेखराः।।३३३।।
सव्यदक्षिणहस्ताभ्यां विधृताभयपुस्तिकाः।
त्रैलोक्यमोहने चक्रे ध्यायेत् प्रकटयोगिनीम्?(:)।।३३४।।

अथाणिमादिप्रकटयोगिनीध्यानमाह—**अणिमेत्यादिना**। त्रैलोक्यमोहने षोडश-दलाद् बहिर्वृत्तत्रयात्मके चक्रे इत्यर्थः। स्पष्टमिदं प्रकरणम्।

अणिमा आदि सिद्धि-देवियों का वर्ण लाल है। वे त्रिनयना और भाल प्रदेश पर अर्धचन्द्र-धारिणी हैं। इनके बाँयें हाथ में अभय मुद्रा और दाहिने हाथ में पुस्तक है। सिद्धि देवियों का इस प्रकार ध्यान करके भूपुर की प्रथम रेखा पर उनका पूजन करें॥३३३-३३४॥

[अणिमाद्यर्चास्थानम्]

अणिमां पश्चिमद्वारि दक्षभागे प्रपूजयेत्।
लघिमामुत्तरद्वारि पश्चिमे परिपूजयेत्।।३२५।।
पूर्वद्वारे च महिमामुतरे तु समर्चयेत्।
दक्षिणद्वारदेशे च ईशित्वाख्याञ्च पूर्वतः।।३३६।।
वशित्वाख्याञ्च वायव्ये प्राकाम्यसिद्धिमीशके।
मुक्तिसिद्धिं तथाऽग्नेय्यामिच्छासिद्धिञ्च नैर्ऋते।।३३७।।
अधस्तात् प्राप्तिसिद्धिञ्च सर्वकामं तदूर्ध्वतः।

भूपुर की प्रथम रेखा पर (१) पश्चिम द्वार के दक्षिण भाग में अणिमा का, (२) उत्तर द्वार के पश्चिम भाग में लघिमा का, (३) पूर्व द्वार के उत्तर की ओर महिमा

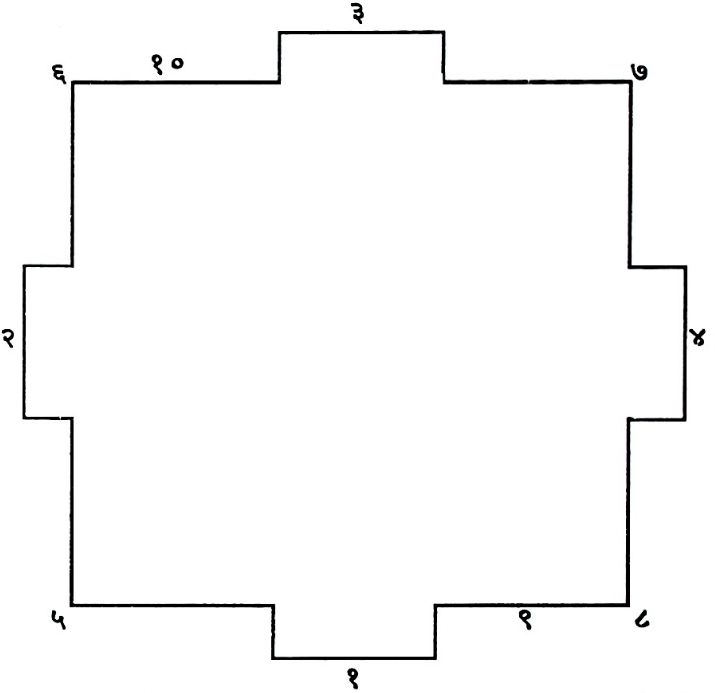

का, (४) दक्षिण द्वार में ईशित्व का पूजन करें। तत्पश्चात् (५) वायव्य कोण में वशित्व का, (६) ईशान कोण में प्राकाम्यसिद्धि का, (७) अग्नि कोण में मुक्ति (भुक्ति) सिद्धि का, (८) नैर्ऋत्य में इच्छासिद्धि का पूजन करें। इसके बाद (९) अधोभाग में प्राप्ति-सिद्धि तथा (१०) ऊर्ध्व भाग में सर्वकामसिद्धि का पूजन करें।।३३५-३३७।।

विमर्श—(१) श्रीचक्र पर भगवती त्रिपुरा की पूजा करते समय यह स्मरण रखें कि देवी के सम्मुख पश्चिम और उनके पृष्ठ भाग में पूर्व दिशा होती है। गुप्तार्णवतन्त्र के इस दिशा-निर्देश की व्याख्या करते हुए श्री भास्करराय ने 'नित्याषोडशिकार्णव' में स्पष्ट किया है—'ततश्च देव्या: पुरतोऽणिमासिद्धि:। देवीदक्षिणभागे लघिमा। अनयोर्मध्य कोणे वशित्वे त्याद्याकारक एक रूप एव नियमो ज्ञेय:।'

(२) **पूजन-मन्त्र**—'ऐं ह्रीं श्रीं' के बाद सिद्धि के नाम का बिन्दुयुक्त प्रथम अक्षर, उसके बाद सिद्धि का नाम तथा सिद्धि के नाम के बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:' की योजना करने से सिद्धियों का पूजन-मन्त्र निष्पन्न होता है। यथा—'ऐं ह्रीं श्रीं अं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।'

[असिताङ्गाद्यष्टभैरवनिरूपणम्]

मध्यद्वारे ततो ध्यायेत् पश्चिमादिक्रमेण तु।।३३८।।

असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तभैरवम्।
कपालिनं भीषणञ्च संहारञ्चाष्टभैरवम्।।३३९।।

मध्येति। अत्र प्रकटयोगिनीध्यानावसरेऽसिताङ्गादिभैरवध्यानोपदेशो ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिपूजार्थः। वक्ष्यति च—'भैरवाङ्कस्थिता एता पूज्या वै भैरवैः सहे'ति (३४९ श्लो०)। मध्यद्वारे मध्यचतुरस्रस्य द्वारचतुष्टये पश्चिमादिक्रमेण ध्यायेदिति सम्बन्धः।

अणिमा आदि सिद्धियों का पूजन-तर्पण करने के बाद भूपुर की मध्यरेखा पर पश्चिम आदि क्रम से असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहार—इन आठ भैरवों का ध्यान करें।।३३८-३३९।।

[भैरवाणां ध्यानम्]

एते श्यामास्त्रिनयना भृकुटीभीषणाननाः।
शूलं दण्डञ्च वेतालं कपालं क्षुद्रघण्टिकाम् ।
विधृता वेदहस्तेन गजधर्मोत्तरांशुकाः।।३४०।।

इन सभी भैरवों का वर्ण श्याम (काला) है। चेहरा डरावना है। तीन आँखें हैं। भौंहें घनी-काली और डरावनी हैं। इनके चार हाथ हैं। इन चारो हाथों में शूल-दण्ड-नर-कपाल और छोटी घण्टी है। शरीर के अधोभाग में हाथी की खाल लपेटे हुए हैं।।३४०।।

भैरवों के साथ उनकी शक्तियों का भी ध्यान करें। यथा—

[अष्टशक्तीनां ध्यानम्, तत्र ब्रह्माण्याः]

ब्रह्माणी पीतवर्णा च चतुर्भिः शोभिता मुखैः।
वरदाभयहस्ता च कुण्डिकाक्षलसत्कराः।।३४१।।

ब्रह्माणी—पीले रंग की देवी ब्रह्माणी के चार मुख और चार भुजायें हैं। उनके ऊपरी दो हाथों में वर और अभय मुद्रा तथा नीचे वाले दोनों हाथों में कमण्डलु और अक्षमाला है।।३४१।।

[माहेश्वर्याः]

माहेश्वरी श्वेतवर्णा त्रिनेत्रा शूलधारिणी।
कपालमालां परशुं दधाना सिद्धिदायिनी।।३४२।।

माहेश्वरी—साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाली देवी माहेश्वरी का वर्ण श्वेत है। तीन आँखें और चार हाथ हैं। हाथों में त्रिशूल और परशु है। कपाल-माला है।।३४२।।

[कौमार्याः]

कौमारी पीतवर्णा च शक्तितोमरधारिणी।
वरदाभयहस्ता च ध्यातव्या साधकोत्तमैः।।३४३।।

कौमारी—देवी कौमारी का वर्ण पीत है। वे चतुर्भुजा हैं। दो हाथों में शक्ति एवं तोमर (भाला) है तथा दो हाथों में नर और अभय मुद्रायें हैं।।३४३।।

[वैष्णव्याः]

वैष्णवी श्यामलच्छाया शङ्खचक्रगदाकरा।
बिभ्रती करपद्मञ्च दिव्यभूषणभूषिता।।३४४।।

वैष्णवी—दिव्य आभूषणों से विभूषित भगवती वैष्णवी साँवले रंग की हैं। उनके चार हाथों में भगवान् विष्णु के समान शंख-चक्र, गदा और पद्म है।।३४४।।

[वाराह्याः]

वाराही श्यामलच्छाया वराहवदना शुभा।
हलञ्च मूषलं खड्गं खेटकं दधती भुजैः।।३४५।।

वाराही—वराहमुखी देवी वाराही का वर्ण साँवला है तथा उनके चार हाथ हैं। हाथों में हल-मुसल-खड्ग और खेटक हैं।।३४५।।

[इन्द्राण्याः]

इन्द्राणी श्यामलच्छाया रक्तोत्पललसत्करा।।३४६।।

इन्द्राणी—साँवले रंग की देवी इन्द्राणी के हाथों में लाल रंग का लीला कमल है।।३४६।।

[चामुण्डायाः]

चामुण्डा कृष्णवर्णा च शूलं डमरुमेव च।
खड्गं वेतालकञ्चैव विधृता दक्षिणैर्भुजैः।
नागखेटकघण्टाञ्च दधानोच्चैः कपालकम्।।३४७।।

चामुण्डा—चामुण्डा कृष्णवर्णा हैं। अष्टभुजा भगवती चामुण्डा के दक्षिण कर में शूल, डमरू, खड्ग एवं वेताल तथा बाँयें हाथों में सर्प, खेटक घण्टा तथा कपाल हैं।।३४७।।

[महालक्ष्म्याः]

महालक्ष्मीस्तु पीताभा पद्मं दर्पणमेव च।
मातुलुङ्गफलञ्चैव दधाना परमेश्वरी।।३४८।।

महालक्ष्मी—भगवती महालक्ष्मी का वर्ण चम्पई है। वे चतुर्भुजा हैं। उनके ऊपर के दोनों हाथों में लीला कमल और नीचे के हाथों में दर्पण तथा मातुलुङ्ग हैं।।३४८।।

[निरुक्ताष्टशक्तीनां पूजायां विशेषः]

भैरवाङ्कस्थिता एताः पूज्या वै भैरवैः सह।।३४९।।

अथ निरुक्तानां ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीनां पूजायां विशेषमाह—**भैरवेति**। भैरवाङ्कस्थिताः प्रागुक्तासिताङ्गाद्यष्टभैरवक्रोडस्थिता एता ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः भैरवैरसिताङ्गादिभिः सह पूज्या इत्यर्थः।

ब्राह्मी आदि समस्त शक्तियाँ अपने-अपने भैरवों की गोद में बैठी हुई हैं। भैरव और शक्तियों का क्रम इस प्रकार है—(१) असितांग और ब्राह्मी, (२) रुरु और माहेश्वरी, (३) चण्ड एवं कुमारी, (४) क्रोध और वैष्णवी, (५) उन्मत्त एवं वाराही, (६) कपाली एवं इन्द्राणी, (७) भीषण एवं चामुण्डा तथा (८) संहार एवं महालक्ष्मी। शक्तियों का पूजन उनके भैरवों के साथ किया जाय।।३४९।।

[पूजास्थानम्]

महेन्द्रादीशपर्यन्तं पूजयेत् क्रमतोऽथवा।
पश्चिमोत्तरमाहेन्द्रदक्षद्वारे क्रमेण तु।।३५०।।
वाय्वीशवह्निरक्षःस्थयुग्मायुग्मस्वरैः सह।

[मन्त्रे विशेषः]

ह्रस्वार्णा भैरवा मन्त्रा मातॄणां दीर्घरूपकाः।।३५१।।

अथाष्टशक्तीनां पूजास्थानं विशिष्य निरूपयति—**महेन्द्रादिति**। एवञ्च पूर्वतः प्रादक्षिण्येनेशानकोणान्तं क्रमेण पूजयेदित्यर्थः। क्रमान्तरमाह—**अथवेति**। एवञ्च पश्चिमादिदक्षिणान्तद्वारचतुष्टये वायव्यादिनैर्ऋतान्तकोणचतुष्टये च पूजयेदित्यर्थः। **युग्मेति**। अयुग्मस्वरैः प्रथमतृतीयादिभिः युग्मस्वरैः द्वितीयचतुर्थादिभिश्च सह पूजयेदिति सम्बन्धः। इममेव स्वरविभागं विशिनष्टि—**ह्रस्वार्णा इति**। एवञ्च भैरवमन्त्रादौ अकारादिह्रस्वस्वरान् अष्टशक्तिमन्त्रादावाकारादिदीर्घस्वरान् योजयेदित्यर्थः। यद्यप्येकादशादिस्वरेषु ह्रस्वार्णत्वं व्यभिचरति तथाऽपि ह्रस्वार्णा इत्यस्य द्वयोर्द्वयोः पूर्वपूर्वस्वरोपलक्षकत्वाददोषः।

भैरवों-सहित शक्तियों के पूजा-स्थान के दो कल्प हैं। प्रथम तो यह कि पूर्व से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से ईशान-कोण पर्यन्त प्रत्येक दिशा और विदिशा में एक-एक भैरव एवं शक्ति की पूजा की जाय। दूसरा कल्प यह है कि पश्चिम-उत्तर-पूर्व-दक्षिण—इन चार दिशाओं में तथा वायव्य-ईशान-आग्नेय एवं नैर्ऋत्य—इन चार कोणों में शक्ति-युगलों की पूजा करें। इनका पूजन करते समय इनके नाम के आगे दो-दो स्वरों का प्रयोग करना चाहिये। यथा—'अं आं असितांगभैरवसहित ब्राह्मी श्रीपादुकाभ्यां पूजयामि नम:'। इनमें ह्रस्व स्वर भैरव का तथा दीर्घ स्वर शक्ति-स्वरूप है।।३५०-३५१।।

विमर्श—मातृकाओं के पूजन के जो दो कल्प बताये गये हैं, उनमें से पूर्वादि पूजन का क्रम अप्रचलित है। पश्चिम आदि दिशाओं तथा वायव्य आदि कोणों में

पूजन का विधान ही प्रचलित है। तदनुसार इनके पूजन का प्रयोगक्रम निरूपित किया जा रहा है—

१. अं आं असितांगब्राह्मीश्रीपादुकाभ्यां नमः।
२. इं ईं रुरुमाहेश्वरीश्रीपादुकाभ्यां नमः।

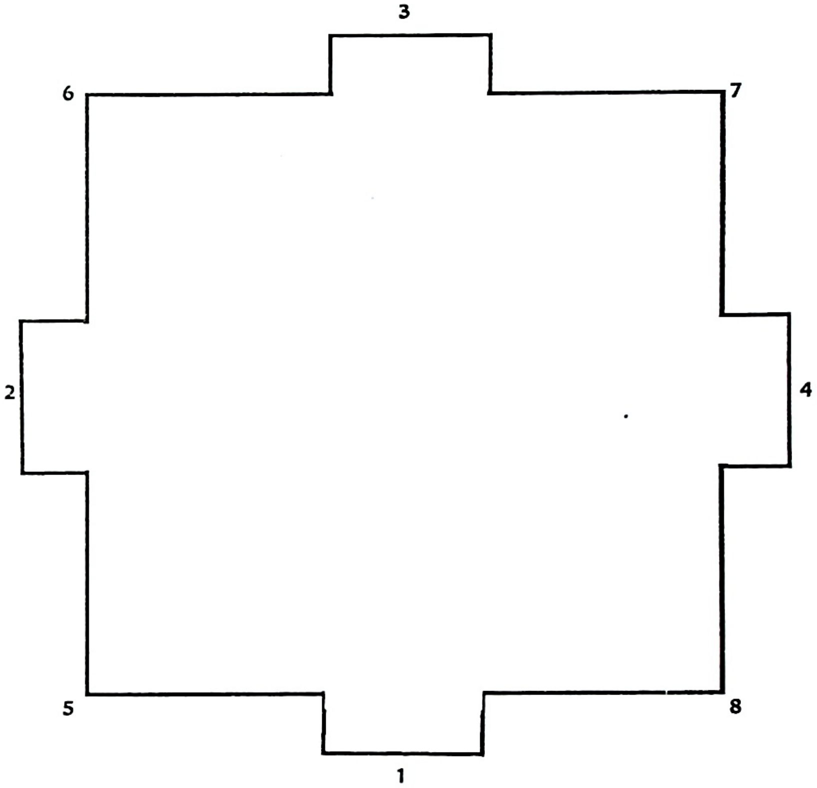

३. उं ऊं चण्डकुमारीश्रीपादुकाभ्यां नमः।
४. ऋं ॠं क्रोधवैष्णवीश्रीपादुकाभ्यां नमः।
५. ऌं ॡं उन्मत्तवाराहीश्रीपादुकाभ्यां नमः।
६. एं ऐं कपालीइन्द्राणीश्रीपादुकाभ्यां नमः।
७. ओं औं भीषणचामुण्डाश्रीपादुकाभ्यां नमः।
८. अं अः संहारमहालक्ष्मीश्रीपादुकाभ्यां नमः।

उपर्युक्त पूजन मन्त्रों के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं' तथा 'नमः' के बाद में 'पूजयामि तर्पयामि नमः' की योजना कर लें। यथा—'ऐं ह्रीं श्रीं अं आं असितांग-ब्राह्मी-श्रीपादुकाभ्यां नमः पूजयामि तर्पयामि नमः'।

[मुद्रार्चा]

अन्तर्द्वारि प्रतीच्याद्याः सर्वसंक्षोभणादिकाः।
रक्ताः पाशाङ्कुशधरा ध्यात्वा तत्तन्मनुं स्मरन्।।३५२।।
प्रपूजयेत्त्रिखण्डान्तु वाग्भवं बीजमुच्चरन्।
पश्चिमादिक्रमेणैव पूर्ववद्दिग्विदिक्षु च।।३५३।।
ऊर्ध्वाधःक्रमयोगेण खेचरीं योनिमर्चयेत्।

अन्तर्द्वारि अभ्यन्तरचतुरस्रद्वारचतुष्टये प्रतीच्याद्याः पश्चिमादिस्थिताः सर्वसंक्षोभणादिकाः प्रागुपदर्शिता मुद्राः प्रपूजयेत् इत्यर्थः। तत्तन्मनुं स्मरन्निति प्रागुक्तक्रमेण बीजमुच्चार्य सर्वसंक्षोभणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामीत्यादिरूपः प्रयोगः कर्त्तव्य इत्यर्थः। **पश्चिमादीति**। पूर्ववत् प्रागुक्ताष्टशक्तिपूजनक्रमेणेत्यर्थः।

खेचरीयोनिमुद्रयोर्विशेषमाह—**ऊर्ध्वाध इति**। ऊर्ध्वद्वारे खेचरीमुद्रामधश्च योनिमुद्रामर्चयेदित्यर्थः।

भूपुर की अन्दर वाली तीसरी रेखा पर सर्वसंक्षोभिणी आदि मुद्रादेवियों का ध्यान करें। सभी मुद्रादेवियों का वर्ण लाल है। उनमें से प्रत्येक के हाथ में पाश और अंकुश है। ध्यान करने के बाद वाग्भव बीज (ऐं) पूर्वक उनके बीजमन्त्रों का उच्चारण करते हुए मुद्रादेवियों का पूजन-तर्पण करें। संक्षोभिणी से त्रिखण्डा-पर्यन्त आठ मुद्रादेवियों का पूर्ववत् पश्चिम आदि तथा वायव्यादि क्रम से तथा खेचरी और योनिमुद्राओं का क्रमशः ऊर्ध्व और अधोभाग में अर्चन करें।।३५२-३५३।।

प्रयोग-क्रम—(अणिमा सिद्धि आदि के समान)।

१. ऐं द्रां सर्वसंक्षोभिणी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. ऐं द्रीं सर्वविद्राविणी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. ऐं क्लीं सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. ऐं ब्लूं सर्ववशङ्करी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. ऐं सः सर्वोन्मादिनी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. ऐं क्रों सर्वमहांकुशा मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
७. ऐं हस्ख्फ्रें सर्वखेचरी मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
८. ऐं ह्सौः सर्वबीजा मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
९. ऐं ऐं सर्वयोनि मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१०. ऐं हस्रैं ह्स्क्लरीं हस्रौः सर्वत्रिखण्डा मुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[निगमनम्]

एताः प्रकटयोगिन्यः पान्तु त्रिचतुरस्रगाः।।३५४।।

त्रिचतुरस्त्रगा इति। प्रागुक्तचतुरस्रत्रयस्थिताः।

भूपुर की तीनों रेखाओं पर यथाविधि २८ देवियों का पूजन-अर्चन करके उन्हें प्रणाम करें। त्रैलोक्यमोहन में पूजिता इन २८ देवियों को 'प्रकटयोगिनी' कहा जाता है। प्रणाम करने का मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं एताः त्रिचतुरस्रगाः प्रकटयोगिन्यः (माम्) पान्तु॥३५४॥

[चक्रार्चा]

त्रैलोक्यमोहनं नाम चक्रं सम्पूजयेत्ततः।

त्रैलोक्येति। त्रैलोक्यमोहनचक्राय नम इति पूजयेत्। एवमेव त्रिपुरार्चनरहस्येऽपि। तन्त्रसारे तु त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्राय नम इति प्रयोग उक्तः।

इसके बाद त्रैलोक्यमोहन चक्र की पूजा करें।

[त्रिपुरायाः स्वरूपं पूजनञ्च]

प्रथमावरणे देवीं त्रिपुरां चक्रनायिकाम्॥३५५॥
पाशाङ्कुशकरां रक्तां त्रिनेत्रां परिचिन्तयेत्।

प्रथमावरण इति। (अं आं सौः) त्रिपुरेश्वरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम इति प्रयोगः।

इस प्रथम आवरण की चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुरा हैं। उनका वर्ण लाल है। वे त्रिनेत्रा हैं तथा उनके दोनों हाथों में पाश और अंकुश शोभित हैं।

[अणिमासिद्ध्याद्यर्चा]

अणिमासिद्धिपुरतः पूजयेत्तन्मनुं स्मरन्।
सर्वसंक्षोभिणीं कृत्वा बुद्धञ्च परिपूजयेत्॥३५६॥

अणिमेति। पूर्वं यदणिमासिद्धेः स्थानं दर्शितं तत्रैव पश्चिमद्वारे सर्वसंक्षोभिणीमुद्रां पूजयेदित्यर्थः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे—

अणिमासिद्धिपुरतः सर्वकार्यार्थसाधिकाम्।
सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां दर्शयेत् कमलानने॥ इति।

तत्रैवाणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नम इति प्रयोगः। तथा सर्वसंक्षोभिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नम इति प्रयोगः।

अणिमा सिद्धि के सामने चक्रेश्वरी त्रिपुरा का ध्यान करके उनके मन्त्र का उच्चारण करते हुए उनका पूजन करें। बाद में संक्षोभिणी मुद्रा दिखाकर बुद्ध और बौद्ध दर्शन कापूजन करें॥३५५-३५६॥

प्रयोग-क्रम—'ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः' इस मन्त्र से त्रैलोक्य मोहन चक्र को पुष्पाञ्जलि दें।

त्रैलोक्यमोहन चक्र के पश्चिम द्वार पर अणिमा-सिद्धि के सामने (मतान्तर से द्वार-मध्य में) गन्धाक्षत से चक्रनायिका त्रिपुरा का पूजन करें।

अं आं सौ: त्रिपुरेश्वरी चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

चक्रेश्वरी के दाहिनी ओर अणिमा सिद्धि और बाँयीं ओर सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का उनके नाममन्त्रों से पूजन करके सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा दिखायें।

[बौद्धमन्त्रः]

प्रणवञ्च ततस्तारे चण्डारे भैरवद्वयम्।
वह्निजायानिगदितो बौद्धमन्त्रो मनीषीभिः।।३५७।।

तत्पश्चात् इस त्रैलोक्यमोहन चक्र पर बुद्ध और बौद्ध दर्शन का पूजन करें। बौद्ध मन्त्र है—ॐ तारे चण्डारे ब्रं ब्रं स्वाहा।।३५७।।

[बुद्धतद्दर्शनयोरर्चा]

बुद्धाय बौद्धपूर्वाय दर्शनाय नमः परम्।।३५८।।

बुद्धञ्च परिपूजयेदित्युक्तम्, तद्बुद्धमन्त्रमाह—**प्रणवञ्चेत्यादिना।**

'ॐ तारे चण्डारे ब्रं ब्रं स्वाहा। बुद्धाय बौद्धपूर्वाय दर्शनाय नम:।' इस संयुक्त मन्त्र से बुद्ध और बौद्ध-दर्शन की पूजा करें।।३५८।।

[देव्यै पूजार्पणम्]

एताः प्रकटयोगिन्य इति त्रैलोक्यमोहने।
चक्रे समुद्रा इति च ससिद्धयस्तु सायुधाः।।३५९।।
सवाहनाः सवर्णाद्याः परिवाराः सपूर्विकाः।
ततः सर्वोपचारैश्च पूजिताः सन्तु चोच्चरन्।।३६०।।
अर्घ्योदकाक्षतैः पुष्पैर्देव्यै पूजां समर्पयेत्।

अथ देव्यै प्रकटयोगिनीपूजासमर्पणमुपदिशति—**एता इत्यादिना।** तथाच एताः प्रकटयोगिन्यस्त्रैलोक्यमोहने चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु इति प्रयोगः। तन्त्रसारे तु पूजितास्तर्पिताः सन्तु इति प्रयोगो दृश्यते। स तु निरुक्तप्रमाणविरोधितया नात्र प्रदर्शितः।

आवरणपूजा समाप्त होने पर पुष्प-अक्षत तथा अर्घ्य जलपूर्वक भगवती को पूजन समर्पित करें। समर्पण का मन्त्र है—

ह्रीं श्रीं अं आं एता: प्रकटयोगिन्य: त्रैलोक्यमोहनचक्रे समुद्रा: सायुधा: सवाहना: सपरिवारा: सर्वोपचारै: पूजिता (तुष्टा वरदा:) सन्तु।

विमर्श—पूजा-समर्पण के बाद पद्धतिग्रन्थों में बताये गये विधान के अनुसार प्रार्थना करें—

ॐ।। अभीष्टसिद्धिं मे देहि, शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

जल छोड़कर योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

द्वितीयावरण अर्चन—सर्वाशापरिपूरक चक्र (षोडशदल कमल) में कामाकर्षिणी आदि नित्यकलाओं का पूजन करने के लिये उनका ध्यान करें।

[गुप्तयोगिनीनां स्वरूपमर्चाक्रमश्च]

जवाकुसुमसङ्काशाः कामाकर्षणिकादिकाः।।३६१।।
पाशशूलधराः पूज्या वामावर्त्तेन षोडश।
पश्चिमादिक्रमेणापि बिन्दुयुक्तैः स्वरैः सह।।३६२।।

अथ षोडशदले सर्वाशापरिपूरकचक्रे वक्ष्यमाणानां गुप्तयोगिनीनां पूजनमभिधास्यन् तासां स्वरूपमाह—**जवेत्यादिना। वामावर्त्तेनेति।** पश्चिमादिक्रमेण सबिन्दुकैः स्वरैः क्रमेणादित एकैकशो निवेशितैः स्वरैः सह पूजयेदिति सम्बन्धः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

पश्चिमादिविलोमेन षोडशारे स्वरान्विताः।
एता नित्याः कलाः पूज्याः स्रवत्पीयूषमण्डलाः।। इति।

एवञ्च अं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादिरूपः प्रयोगः कर्त्तव्य इति ज्ञेयः। द्वितार्यादिप्रयोगस्तु पूर्ववदेव।

'कामाकर्षिणी आदि षोडश नित्याकला देवियों का वर्ण जवा-कुसुम के समान रक्त (लाल) वर्ण का है। उनकी दो भुजायें हैं, जिनमें पाश और शूल शोभित हैं।'

षोडश कमलदल में पश्चिम आदि क्रम से इनका वामावर्त क्रम से पूजन करें। पूजन मन्त्र के आदि में एक-एक बिन्दुयुक्त स्वर की योजना करें।।३६१-३६२।।

[कामाकर्षिण्यादिषोडशगुप्तयोगिन्यः]

कामाकर्षणरूपाञ्च बुद्ध्याकर्षणरूपिणीम्।
अहङ्काराकर्षणीञ्च शब्दाकर्षणरूपिणीम्।।३६३।।
स्पर्शाकर्षणरूपाञ्च रूपाकर्षणरूपिणीम्।
स्मृत्याकर्षणरूपाञ्च नामाकर्षणरूपिणीम्।।३६४।।
बीजाकर्षणरूपाञ्च आत्माकर्षणरूपिणीम्।
अमृताकर्षिणीं देवीं शरीराकर्षिणीं तथा।।३६५।।

[तासामर्चास्थानम्]

एतास्तु गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके।

अथ कामाकर्षिण्यादिषोडशगुप्तयोगिनीर्निरूपयति—**कामाकर्षणरूपाञ्चेत्यादिना।** अत्र मूलोक्तः पादः प्रामादिक इति ज्ञानार्णवतन्त्रानुसारेण गुप्तयोगिनीनां नामानि निर्दिश्यन्ते। यथा ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

कामाकर्षिणिकां देवि बुद्ध्यकर्षिणिकां तथा।
अहङ्काराकर्षिणीञ्च शब्दाकर्षणरूपिणीम्।।
स्पर्शाकर्षिणि(?)रूपाञ्च रूपाकर्षिणि(?)रूपिणीम्।
रसाकर्षकरीञ्चैव गन्धाकर्षणकारिणीम्।।
चित्ताकर्षिणिकां तद्वद् धैर्याकर्षिणिकां प्रिये।
नामाकर्षिणिकाञ्चैव बीजाकर्षिणिकान्तथा।।
अमृताकर्षिणीञ्चैव स्मृत्याकर्षिणिकां प्रिये।
शरीराकर्षिणीञ्चैव आत्माकर्षणरूपिणीम्।।
पश्चिमादिविलोमेन षोडशारे स्वरान्विताः।
एता नित्याः कलाः पूज्याः स्रवत्पीयूषमण्डलाः।। इति।

अमृतानन्दनाथकृतायां योगिनीहृदयटीकायां तन्त्रसारे च योगिनीनामासां पूजने पौर्वापर्यक्रमभेदो दृश्यते।

इन तीनों श्लोकों में षोडशदल चक्र में अर्चनीय नित्या कलाओं में से केवल १२ नित्याकलाओं के नाम बताये गये हैं। पन्द्रहवें प्रकाश में नित्या कला न्यास के अवसर पर भी इन नित्याकलाओं के नाम नहीं बताये गये हैं। अत: तन्त्रसार में बताये गये नामों के अनुसार उनके पूजन का प्रयोग-क्रम बताया जा रहा है।।३६३-३६५।।

पूजनमन्त्र—'ह्रीं श्रीं' के बाद बिन्दुयुक्त एक स्वरवर्ण के आगे यथाक्रम 'नित्याकला' का नाम और उसके आगे 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' की योजना करने से इनका पूजन-मन्त्र निष्पन्न होता है।

'ह्रीं श्रीं षोडशदलचक्राय नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर नित्या कलाओं का पूजन तर्पण करें—

१. ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. ह्री श्रीं आं बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

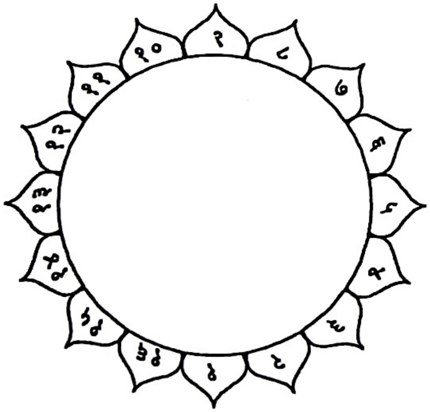

३. ह्रीं श्रीं इं अहंकाराकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. ह्रीं श्रीं ईं शब्दाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. ह्रीं श्रीं उं स्पर्शाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. ह्रीं श्रीं ऊं रूपाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
७. ह्रीं श्रीं ऋं रक्षाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
८. ह्रीं श्रीं ॠं गन्धाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
९. ह्रीं श्रीं ऌं चित्ताकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१०. ह्रीं श्रीं ॡं धैर्याकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
११. ह्रीं श्रीं एं स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१२. ह्रीं श्रीं ऐं नामाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१३. ह्रीं श्रीं ओं बीजाकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१४. ह्रीं श्रीं औं आत्माकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१५. ह्रीं श्रीं अं अमृताकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
१६. ह्रीं श्रीं अः शरीराकर्षिणी नित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[चक्रपूजा]

सर्वाशापूरकं नाम चक्रं सम्पूजयेत्ततः।।३६६।।

सर्वाशेति। सर्वाशापूरिपूरकचक्राय नमः इति प्रयोगः।

'ह्रीं श्रीं सर्वाशापरिपूरकचक्राय नमः'—इस मन्त्र से इस चक्र का गन्ध-पुष्प-अक्षत से पूजन करें।।३६६।।

[चक्रनायिकार्चा]

कामाकर्षणरूपायाः पुरतस्त्रिपुरेश्वरीम्।
द्वितीयावरणे मन्त्री त्रिनेत्रां चक्रनायिकाम्।।३६७।।
पाशशूलधरां देवीं तस्य मन्त्रेण पूजयेत्।

अथ निरुक्तचक्रनायिकार्चामाह—**कामेति।** कामाकर्षणरूपायाः प्रथमयोगिन्याः पुरतस्त्रिपुरेश्वरीं चक्रनायिकां पूजयेदिति सम्बन्धः। तथाच ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

चक्रेश्वरीं यजेद् देवीं त्रिपुरेशीं समृद्धिदाम्।
कामाकर्षणरूपायाः पुरतः पूजयेत् प्रिये।। इति।

प्रयोगस्तु द्वितार्याद्यन्यतमानन्तरं त्रिपुरेश्वरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः इति। तन्त्रसारे तु पूर्वतः ऐँ क्लीं सौरिति बीजत्रययोग उक्तः।

पाश-शूलधारिणी त्रिनेत्रा भगवती त्रिपुरेश्वरी इस चक्र की नायिका हैं। कामाकर्षिणी के सामने इनके मन्त्र से चक्रनायिका का अर्चन करें। यथा—ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।३६७।।

[मुद्रादर्शनम् ब्रह्मणः पूजनञ्च]

सर्वविद्रावणीं कृत्वा ब्रह्माणं परिपूजयेत्।।३६८।।

सर्वविद्रावणीमिति। पूर्वोपदर्शितां सर्वविद्रावणीमुद्रां प्रदर्श्येत्यर्थः।

'ह्लीं' सर्वविद्रावणी मुद्राश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।' इस मन्त्र से सर्वविद्राविणी का पूजन करके यह मुद्रा दिखायें तत्पश्चात् ब्रह्मा और वैदिक दर्शन का अर्चन करें।।३६८।।

[पूजामन्त्रः]

पतृतीयं वह्नियुतं शेषाख्येन्दुसमन्वितम्।

[दर्शनार्चा]

ब्रह्मणे वैदिकेत्युक्त्वा दर्शनाय नमः स्मरन्।।३६९।।

ब्रह्मणो मन्त्रमाह—**पतृतीयमिति**। पकारस्य तृतीयो वर्णो बकारः स च वह्निना रकारेण युक्तः। शेषाख्येण द्वितीयस्वरेण इन्दुना बिन्दुना च समन्वितः। एतेन ब्रां इति प्राप्तम्। एवञ्च ब्रां ब्रह्मणे नमः इति ब्रह्माणं परिपूजयेत् इति फलितार्थः। **वैदिकेति**। वैदिकदर्शनाय नमः इति प्रयोगः।

'प' से तीसरा वर्ण 'ब' जो वह्नि अर्थात् 'र'कार से युक्त तथा बिन्दु-सहित शेष अर्थात् 'आ' से समन्वित है—अर्थात् 'ब्रां'। इसके बाद ब्रह्मणे। 'ब्रां ब्रह्मणे नमः' से ब्रह्मा की तथा 'वैदिकदर्शनाय नमः' से वैदिक दर्शन की पूजा करें।।३६९।।

[पूजासमर्पणम्]

अथैता गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके।
चक्रे समुद्रा इत्यादिपूर्ववन्मनुनाऽमुना।
समर्प्य मूलदेव्यै तां पूजामर्घ्योदकादिभिः।।३७०।।

अथ देव्यै पूजासमर्पणमाह—अथैता इत्यादिना। एवञ्च—एता गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः पूजिताः सन्तु इति प्रयोगः।

पूजा-समर्पण—'ऐं ह्रीं श्रीं एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः पूजिताः सन्तु'—इस मन्त्र से सामान्यार्घ्य के जल आदि से भगवती को पूजा समर्पित करें।।३७०।।

विमर्श—'अभीष्टसिद्धिं मे देहि०' श्लोक से प्रार्थना करके पुष्पाञ्जलि देकर योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

[गुप्ततरयोगिनीनामर्चा स्वरूपञ्च]

अष्टपत्रे यजेन्मन्त्री कादिवर्गाष्टकेन च।।३७१।।

अनङ्गकुसुमारक्ता रक्तवस्त्रा स्त्रिलोचनाः।
अक्षस्त्रक्पुस्तकाभीतिवरदाढ्यकराम्बुजाः ।।३७२।।
अनङ्गकुसुमां पूर्वे दक्षिणेऽनङ्गमेखलाम्।
पश्चिमेऽनङ्गमदनामुत्तरे मदनातुराम्।।३७३।।
अनङ्गरेखाञ्चाऽऽग्नेय्यां नैर्ऋतेऽनङ्गवेगिनीम्।
अनङ्गाङ्कुशान्तु वायव्ये शम्भौ चानङ्गमालिनीम्।।३७४।।

[आसां तृतीयावरणवृत्तित्वम्]

एता गुप्ततराः सर्वास्तृतीयावरणे स्थिताः।

एवं षोडशदले सर्वाशापरिपूरकचक्रे कामाकर्षिण्यादीनां पूजनमभिधाय तदन्तरष्टदले सर्वसंक्षोभणचक्रेऽनङ्गकुसुमादीनां गुप्ततरयोगिनीनां पूजनमाह—**अष्टपत्र** इत्यादिना। कादीति। कादिवर्गाणामेकैकं सबिन्दुकमादौ योजयित्वा पूजयेदित्युत्तरत्र दर्शयिष्यामः। अनङ्गकुसुमारक्तेति स्पष्टम्। अत्र अनङ्गकुसुमारक्तेत्यादिना प्राथम्यादनङ्गकुसुमायाः स्वरूपं प्रदर्शितम्। अन्यासामपि स्वरूपमिदमेव बोध्यम्। योगिनीहृदये तृतीयपटले—

अनङ्गकुसुमाधास्तु रक्तकञ्चुकशोभिताः।
वेणीकृतलसत्केशाश्चापबाणधराः शुभाः।।

इत्यभिन्नरूपतादर्शनात्।

पूजास्थानमाह—**अनङ्गेत्यादिना**। पूर्वे पूर्वपत्रे यजेदिति सम्बन्धः। एवमन्यत्रापि। एवञ्च कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमादेवीश्रीपादुकां पूजयामीत्यादिरूपः प्रयोगः। त्रितार्यादिप्रयोगस्तु पूर्ववदेव। कादिवर्गाष्टकपूर्वकत्वं व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

सर्वसंक्षोभणे चक्रे यजेद् गुप्ततराभिधाः।
अनङ्गकुसुमां प्राच्यां क–वर्गेण प्रपूजयेत्।।
दक्षिणे च च–वर्गेण तथा चानङ्गमेखलाम्।
अनङ्गमदनां पश्चाट्ट–वर्गेण प्रपूजयेत्।।
त–वर्गेणोत्तरे पश्चादनङ्गमदनातुराम्।
अनङ्गरेखामाग्नेये प–वर्गेण प्रपूजयेत्।।
राक्षसेऽनङ्गवेगान्तु य–वर्गेण प्रपूजयेत्।।
वायव्ये तु श–वर्गेण तथाऽनङ्गाङ्कुशां यजेत्।
ईशान्ये ल–क्ष–वर्गेण पूज्याऽनङ्गादिमालिनी।। इति।

अत्रानङ्गादिमालिनी अनङ्गमालिनीत्यर्थः। **सर्वेति**। तथाच सर्वसंक्षोभणाष्टारचक्राय नम इति प्रयोगः।

तृतीयावरण—अष्टदल वाले सर्व-संक्षोभण चक्र में पूर्वादि क्रम से अनंग- कुसुमा आदि गुप्ततर योगिनियों का पूजन करें। इन योगिनियों का वर्ण लाल है, वस्त्र भी लाल हैं। वे चतुर्भुजा एवं त्रिलोचना हैं। उनके हाथों में अक्षमाला, पुस्तक, अभय एवं वरमुद्रायें हैं। प्रत्येक योगिनी के नाम के आगे वर्णमाला के एक-एक वर्ग की योजना करके उनका पूजन किया जाता है। प्रयोग-क्रम निम्नानुसार है—

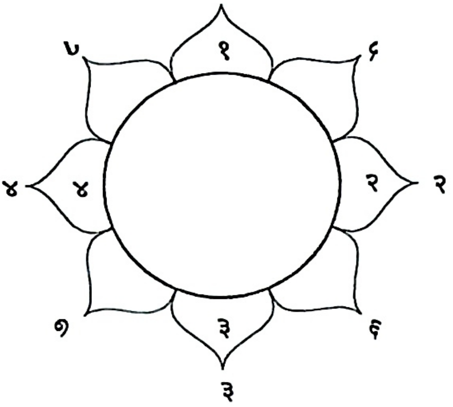

१. ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं अनंगकुसुमादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—पूर्वे।

२. ह्रीं श्रीं चं छं जं झं ञं अनंगमेखलादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—दक्षिणे।

३. ह्रीं श्रीं टं ठं डं ढं णं अनंगमदनादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—पश्चिमे।

४. ह्रीं श्रीं तं थं दं धं नं अनंगमदनातुरादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—उत्तरे।

५. ह्रीं श्रीं पं फं बं भं मं अनंगरेखादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—आग्नेयकोणे।

६. ह्रीं श्रीं यं रं लं वं अनंगवेगाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—नैर्ऋत्ये।

७. ह्रीं श्रीं शं षं सं हं अनंगाङ्कुशादेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—वायव्ये।

८. ह्रीं श्रीं ळं क्षं अनंगमालिनीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:—ईशाने।

[चक्रार्चा]

सर्वसंक्षोभणं चक्रमष्टारञ्च प्रपूजयेत्।।३७५।।

योगिनियों की पूजा करने के बाद अष्टदल कमलरूप सर्वसंक्षोभण चक्र का पूजन करें। 'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभण अष्टदलचक्राय नम:' ये पुष्पाञ्जलि समर्पित करें।।३७५।।

[चक्रनायिकार्चा]

अनङ्गकुसुमाग्रे तु चक्रेशीं सुन्दरीं यजेत्।।३७६।।

चक्रेश्वरीपूजनमाह—अनङ्गेति। अनङ्गकुसुमायाः प्रथमयोगिन्या अग्रे चक्रेश्वरीं त्रिपुरसुन्दरीं पूजयेदित्यर्थः। तथाच ज्ञानार्णवे षोडशपटले—

चक्रेश्वरीं यजेद्देवीं ततस्त्रिपुरसुन्दरीम्।
अनङ्गकुसुमाग्रे च सर्वसाम्राज्यदायिनीम्।। इति।

अत्र तन्त्रसारकृता त्रितारीप्रयोगानन्तरम् ऐँ क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः इति प्रयोगो दर्शितः।

अनंगकुसुमा के सामने इस आवरण की स्वामिनी भगवती त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करें। उनका पूजन मन्त्र है—'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

[मुद्राप्रदर्शनम्, शिवार्चा]

तत आकर्षिणीं कृत्वा प्रासादेन शिवं यजेत्।

[दर्शनार्चा]

शिवाय शैवरूपाय दर्शनाय नमः स्मरन्।।३७७।।

तत इति। ततश्चक्रेश्वरीपूजनानन्तरम् आकर्षिणीं कृत्वा सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्येत्यर्थः, 'सर्वाकर्षणमुद्राञ्च दर्शयेत् सुरवन्दिते' इति ज्ञानार्णवे षोडशपटले व्यक्तमभिधानात्। अनेन सर्वाकर्षिणीमुद्रायाः प्रदर्शनमेव प्रतीयते, न तु पूजनम्। अत्र तन्त्रसारकृता सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः इति यत् पूजनमुक्तं तत्रानुकूलं प्रमाणं किमपि नोपलभ्यते। प्रासादेन हौं इति प्रासादबीजेन। हौं शिवाय नमः। शैवदर्शनाय नमः इति। तन्त्रसारे तु जिनेन्द्रदर्शनाय नमः इति दृश्यते।

चक्रेश्वरी का पूजन करने के बाद सर्वाकर्षिणी मुद्रा दिखाकर 'ह्रौं शिवाय नमः' से भगवान् शिव का तथा 'ॐ शैवदर्शनाय नमः' इस मन्त्र से शैव-दर्शन का पूजन करें।।३७६-३७७।।

[पूजासमर्पणम्]

एता गुप्ततरेत्युक्त्वा योगिन्य इति शब्दतः।
सर्वसंक्षोभवर्णान्ते कारके चक्र इत्यपि।।३७८।।
समुद्रेत्यादिसर्वञ्च पूर्ववत् परिकल्पयेत्।
सर्वसिद्धिप्रदं नाम सृष्टिचक्रत्रयात्मकम्।।३७९।।

एता इति। तथाच एता गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसंक्षोभकारके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु इति मूलदेव्यै प्रागुक्तक्रमेण पूजां समर्पयेत्।

पूजा-समर्पण—ऐं ह्रीं श्रीं एता: गुप्ततरयोगिन्य: सर्वसंक्षोभणकारकचक्रे समुद्रा: ससिद्धय: सायुधा: सवाहना: सर्वोपचारै: पूजिता: सन्तु'—यह मन्त्र बोलकर अर्घ्योदक पुष्पाक्षत प्रदान-पूर्वक भगवती को पूजा समर्पित करें।

'अभीष्टसिद्धिं मे ······ तृतीयावरणार्चनम्'—इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान कर योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

उपर्युक्त प्रथम-द्वितीय और तृतीय चक्रों को सृष्टिचक्र कहा जाता है। इनका पूजन करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं॥३७८-३७९॥

[सत्सम्प्रदाययोगिनीनामर्चा]

चतुर्दशारचक्रे तु पूजयेत् पश्चिमक्रमात्।
वामावर्त्तेन मन्त्रज्ञ: सर्वसंक्षोभणादिका:॥

अथ चतुर्दशारे सर्वसौभाग्यदायकचक्रे सर्वसंक्षोभण्यादिशक्तीनां सत्सम्प्रदाययोगिनीनां पूजनमाह—**चतुर्दशारेत्यादिना।**

चतुर्थ आवरण—मन्त्रविद् साधक चतुर्दशारचक्र में पश्चिम से प्रारम्भ कर वामावर्त क्रम से सर्व संक्षोभणी आदि चतुर्दश सत्सम्प्रदाय योगिनियों का पूजन करे।

[तासां स्वरूपम्]

सूर्यकान्तप्रतीकाशा धनुर्बाणकराम्बुजा:॥३८०॥

एतासां ध्यानमाह—**सूर्येति।**

इन योगिनियों की कान्ति सूर्यकान्त मणि के समान है तथा ये अपने हाथों में धनुष और बाण धारण की हुई हैं॥३८०॥

[चतुर्दश सत्सम्प्रदाययोगिन्य:]

सर्वसंक्षोभणीं शक्तिं सर्वविद्रावणीं तथा।
सर्वाकर्षणशक्तिञ्च सर्वाह्लादनकारिणीम्॥३८१॥
सर्वसम्मोहनीं शक्तिं सर्वस्तम्भनरूपिणीम्।
सर्वजृम्भणशक्तिं च सर्वतोवशकारिणीम्।
सर्वरञ्जनशक्तिञ्च सर्वोन्मादस्वरूपिणीम्॥३८२॥
सर्वार्थसाधिनीं शक्तिं सर्वसम्पत्तिपूरणीम्।
सर्वमन्त्रमयीं शक्तिं सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीम्॥३८३॥

सर्वसंक्षोभणीशक्त्यादिचतुर्दशसत्सम्प्रदाययोगिनीराह—सर्वसंक्षोभणीमित्यादिना सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीमित्यन्तेन। सर्वत्र पूजयेदिति पूर्वेण सम्बन्ध:।

इस चक्र में पूजनीय सर्वसंक्षोभणी आदि १४ सत्सम्प्रदाय योगिनियों के नाम इन तीन श्लोकों में बताये गये हैं॥३८१-३८३॥

[एतासां प्रथमावरणवृत्तित्वम्]

सत्सम्प्रदाययोगिन्यः प्रथमावरणे स्थिताः।

ये सत्सम्प्रदाय योगिनयाँ चक्रत्रयात्मक स्थिति-चक्र के प्रथम आवरण में विराजिता हैं।

[अर्चाक्रमश्चक्रपूजनञ्च]

कादिढान्ताक्षरैरिष्ट्वा सर्वसौभाग्यदं यजेत्।।३८४।।

पूजने योगिनीनां पुरतो वर्णयोजनमाह—**कादीति**। ककारादि-ढकारान्तानि चतुर्दशाक्षराणि सबिन्दुकानि क्रमेणैकैकशः पूर्वतो योजयित्वाऽर्चयेदिति बोध्यम्, तथाच द्वितार्याद्यन्यतमप्रयोगानन्तरं कं सर्वसंक्षोभणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। खं सर्वविद्रावणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादिरूपाः प्रयोगा ज्ञेयाः। पूजनन्तु वामावर्त्तेन कर्त्तव्यम्;

सर्वसौभाग्यदे चक्रे पश्चिमादिविलोमतः।
वाममार्गेण देवेशि सम्पूज्याः सर्वसिद्धिदाः।।

इति ज्ञानार्णवे षोडशपटले विशिष्याभिधानात्। **सर्वेति**। तथाच सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्राय नम इति प्रयोगः।

'क'कार से 'ढ'कार-पर्यन्त चौदह व्यञ्जन वर्णों में से एक-एक वर्ण की इनके नाम के साथ योजना करके अधोलिखित प्रयोग-क्रम के अनुसार इनका पूजन किया जाय।।३८४।।

(१) ह्रीं श्रीं कं सर्वसंक्षोभिणी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(२) ह्रीं श्रीं खं सर्वविद्राविणी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(३) ह्रीं श्रीं गं सर्वाकर्षिणी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(४) ह्रीं श्रीं घं सर्वाह्लादिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

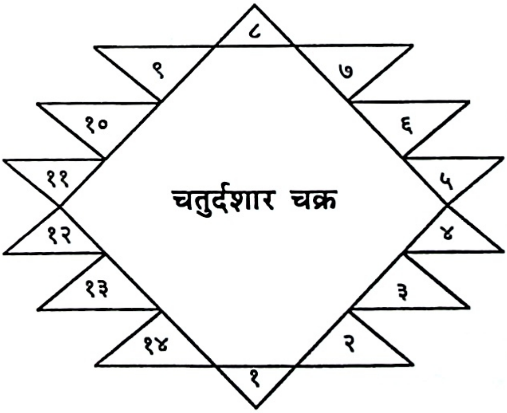

(५) ह्रीं श्रीं ङं सर्वसम्मोहिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(६) ह्रीं श्रीं चं सर्वस्तम्भिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(७) ह्रीं श्रीं छं सर्वजृम्भिणी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(८) ह्रीं श्रीं जं सर्ववशंकरी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(९) ह्रीं श्रीं झं सर्वरञ्जिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(१०) ह्रीं श्रीं ञं सर्वोन्मादिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(११) ह्रीं श्रीं टं सर्वार्थसाधिनी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(१२) ह्रीं श्रीं ठं सर्वसम्पत्तिपूरणी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(१३) ह्रीं श्रीं डं सर्वमन्त्रमयी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(१४) ह्रीं श्रीं ढं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी देवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[एतच्चक्रनायिकायाः पूजनं स्वरूपञ्च]

सर्वसंक्षोभणीं शक्तिं पुरतः पुरवासिनीम्।
हिमकुन्देन्दुधवलां श्रीचक्रनायिकां पराम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिकरां पीनपयोधराम्।।३८५।।

सर्वसंक्षोभणीमिति। निरुक्तासु चतुर्दशयोगिनीषु प्रथमायाः सर्वसंक्षोभणीशक्त्याः पुरतः पुरवासिनीं त्रिपुरवासिनीं पूजयेत्। तथाच त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम इति प्रयोगः। तन्त्रसारे तु पूर्वतः हैं हः क्लीं ह्सौः इति बीजचतुष्टययोगो दृश्यते।

'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर सर्वसंक्षोभणी के आगे इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरवासिनी का पूजन करें। मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

भगवती त्रिपुरवासिनी की देह-कान्ति हिम (बर्फ), कुन्द (पुष्प) तथा चन्द्रमा के समान श्वेत-धवल और उज्ज्वल है। स्तन पुष्ट और पीन हैं। वे चतुर्भुजा हैं। उनके हाथों में पाश-अंकुश-वर और अभय मुद्रा है। इनका इस प्रकार ध्यान करके उक्त मन्त्र से पूजन करें।।३८५।।

[मुद्राप्रदर्शनं सूर्यपूजनञ्च]

वश्यमुद्रां दर्शयित्वा सूर्यं तन्मनुना यजेत्।

[दर्शनार्चा]

सूर्याय सौरपूर्वाय दर्शनाय नमः स्मरन्।।३८६।।

वश्येति। प्रागुपदर्शितां सर्ववश्यकरीं मुद्रां प्रदर्श्येत्यर्थः। **सूर्यमिति।** सूर्यं सम्पूज्य सौरदर्शनाय नम इति पूजयेत् इत्यर्थः। तन्त्रसारे तु अत्र सांख्य-मीमांसान्यायदर्शनेभ्यो नम इति दृश्यते।

'ब्लूं' का उच्चारण करके सर्ववशंकरी मुद्रा दिखायें। सूर्य के मन्त्र (ॐ घृणि सूर्य आदित्य) से सूर्य का पूजन करें। तत्पश्चात् 'ॐ सूर्याय सौरदर्शनाय नमः' इस मन्त्र से सौर दर्शन का पूजन करें।।३८६।।

[पूजासमर्पणम्]

एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके।
चक्रे समुद्रा इत्यादि पूर्ववत् परिकल्पयेत्।।३८७।।

एता इति। तथाच एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु इति पूर्ववन्मूल-देव्यै पूजां समर्पयेत्।

पूजा-समर्पण—हाथ में अर्घ्य जल-पुष्प और अक्षत लेकर ‘एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु’ बोलकर पूजा का फल भगवती को समर्पित कर दें।।३८७।।

‘अभीष्टसिद्धिं मे ········· तुरीयावरणार्चनम्’ प्रार्थना करके पुष्पाञ्जलि प्रदान-पूर्वक योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

[कुलकौलिकयोगिनीनां स्वरूपं स्थापनञ्च]

वराभयकराः श्वेताः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः।
सर्वार्थसाधके चक्रे पञ्चमावरणे स्थिताः।।३८८।।

अथ बहिर्दशारे सर्वार्थसाधकचक्रे कुलकौलिकयोगिनीनां पूजनमभिधास्यन् तासां स्वरूपमाह—**वरेति**। **सर्वेति**। एवंलक्षणा वक्ष्यमाणाः सर्वसिद्धिप्रदादिकुल-कौलिकयोगिन्यः पञ्चमावरणे बहिर्दशारे स्थिता इत्यर्थः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे षोडश-पटले—

सर्वार्थसाधके चक्रे दशारे कुलयोगिनीः।
पूजयेत् सर्वकार्यार्थसिद्धिदाः पञ्चमे क्रमात्।। इति।

पञ्चम आवरण—सर्वार्थसाधक नामक बहिर्दशार चक्र पञ्चम आवरण है। इस चक्र में विराजिता सर्वसिद्धिप्रदा आदि कुलकौलिक योगिनियों का वर्ण श्वेत है। उनके हाथों में वर और अभय मुद्रा शोभित है।

[पूजापरिपाटी]

णादिभान्ताक्षरं दत्त्वा पश्चिमादिक्रमाद् यजेत्।।३८९।।

अथैतासां पूजापरिपाटीमाह—**णादीति**। णकारादिभकारान्तदशाक्षराणि सबिन्दुकानि एकैकशः क्रमेणाऽऽदौ नियोज्य पश्चिमतो वामावर्त्तेन पूजयेत्।

पश्चिमादिविलोमेन दशारे पूजयेदिमाः।

इति ज्ञानार्णवे षोडशपटले विशिष्याभिधानात्। तथाच द्वितार्याद्यन्यतमानन्तरं णं सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। तं सर्वसम्पत्प्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यादिरूपः प्रयोगः।

'ण'कार से 'भ'कार-पर्यन्त दश व्यञ्जन वर्णों में से यथाक्रम एक-एक वर्ण की इनके नाम के आगे योजना करके पश्चिमादि वामावर्तक्रम से इनका पूजन-तर्पण किया जाय। पश्चिमादि का अर्थ है कि देवी के सामने वाले कोण से प्रारम्भ करके पूजन करें।

[दश कुलकौलिकयोगिन्यः]

सर्वसिद्धिप्रदां देवीं सर्वसम्पत्प्रदां तथा।
सर्वप्रियङ्करीञ्चैव सर्वमङ्गलकारिणीम्।।३९०।।
सर्वकामप्रदां देवीं सर्वदुःखप्रमोचिनीम्।
सर्वमृत्युप्रशमनीं सर्वविघ्नविनाशिनीम्।।३९१।।
सर्वाङ्गसुन्दरीं देवीं सर्वसौभाग्यदायिनीम्।

[एतासां पूजनोपदेशः]

कुलकौलिकयोगिन्य एतास्तु परिपूजयेत्।।३९२।।

अथ दश कुलकौलिकयोगिनीराह—**सर्वसिद्धिप्रदामित्यादिना सर्वसौभाग्यदायिनीमित्यन्तेन।** सर्वेति सर्वार्थसाधकबहिर्दशारचक्राय नमः इति प्रयोगः।

इन दो श्लोकों में इस चक्र में अर्चनीय कुलकौलिक योगिनियों के नाम बताये गये हैं। इनका निम्नानुसार पूजन करें।।३९०-३९१।।

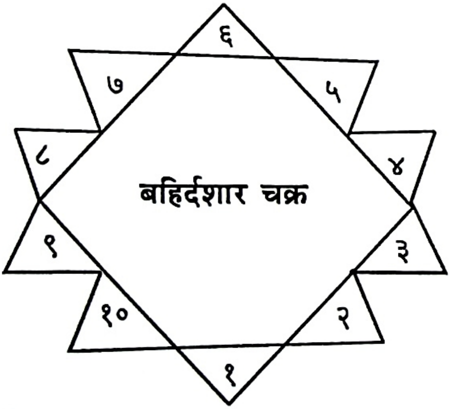

(१) ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदा देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(२) ह्रीं श्रीं तं सर्वसम्पत्प्रदा देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(३) ह्रीं श्रीं थं सर्वप्रियंकरी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(४) ह्रीं श्रीं दं सर्वमंगलकारिणी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(५) ह्रीं श्रीं धं सर्वकामप्रदा देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(६) ह्रीं श्रीं नं सर्वदुःख-विमोचिनी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(७) ह्रीं श्रीं पं सर्वमृत्युप्रशमनी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(८) ह्री श्रीं फं सर्वविघ्ननिवारिणी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(९) ह्रीं श्रीं बं सर्वांगसुन्दरी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(१०) ह्रीं श्रीं भं सर्वसौभाग्यदायिनी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[चक्रार्चा]

सर्वार्थसाधकं चक्रं ततः पूर्वोक्तलक्षणम्।

[चक्रनायिकार्चा]

सर्वसिद्धिप्रदाग्रे तु नायिकां त्रिपुराश्रियम्।।३९३।।

चक्रेश्वरीपूजनमाह—**सर्वसिद्धीति**। सर्वसिद्धिप्रदायाः प्रथमयोगिन्याः पुरतश्चक्रनायिकां त्रिपुराश्रियं पूजयेत्। तथाच त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नम इति प्रयोगः। तन्त्रसारे तु त्रितार्यनन्तरम् आदौ ह्सैं ह्सक्लीं ह्सौरिति बीजयोगो दृश्यते।

'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वार्थ साधक बहिर्दशार चक्राय नमः'—इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर सर्वसिद्धिप्रदा के सामने चक्र नायिका त्रिपुरा श्री का पूजन करें। उनका पूजन मन्त्र है—'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सैं ह्सक्लीं हसौः त्रिपुरा श्री चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'।

[मुद्राप्रदर्शनादि]

सन्दर्श्योन्मादिनीं मुद्रां नारायणं प्रपूजयेत्।
नमो नारायणं ङेऽन्तं प्रणवाद्यमथापि वा।
विष्णवे वैष्णवान्ते च दर्शनाय नतिं स्मरन्।।३९४।।

सन्दर्श्येति। उन्मादिनीं सर्वोन्मादिनीं प्रागुक्तलक्षणाम्। **नारायणमिति**। ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरमन्त्रेण विष्णवे नम इत्यनेन वा पूजयेदित्यर्थः। **वैष्णव इति**। वैष्णवदर्शनाय नम इति दर्शनं पूजयेत्।

'सः' का उच्चारण करके सर्वोन्मादिनी मुद्रा दिखायें। 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र से नारायण की पूजा करके 'ॐ विष्णवे वैष्णवदर्शनाय नमः' इस मन्त्र से वैष्णव दर्शन का पूजन करें॥३९४॥

एताः पदं समुद्धृत्य कुलकौलिकपदं ततः।
योगिन्य इति सर्वार्थसाधके चक्र इत्यपि।
ततः समुद्रा इत्यादिपूर्ववत् परिकल्पयेत्।।३९५।।

एता इति। तथाच एताः कुलकौलिकयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु इति प्रयोगः।

३ एताः कुलकौलिकयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तु'—इस मन्त्र से अर्घ्योदक एवं पुष्प-सहित भगवती को पूजा समर्पित करके प्रार्थना करें—'अभीष्टसिद्धिं ········ पञ्चमावरणार्चनम्'। योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

[निगर्भयोगिनीनां स्वरूपं स्थानञ्च]

पुस्ताभयज्ञानमुद्रा अक्षसूत्रकरा: सिता:।
सर्वरक्षाकरे चक्रे निगर्भयोगिनीगणा:।।३९६।।

[पूजापरिपाटी]

पश्चिमादिक्रमादेता मादिक्षान्ताक्षरैर्यजेत्।

अथान्तर्दशारे सर्वरक्षाकरचक्रे सर्वज्ञादीनां निगर्भयोगिनीनां पूजनमभिदधानस्तासां स्वरूपमाह—**पुस्तेति। पश्चिमेति।** पश्चिमतो वामावर्तेनैता: पूजयेत्।

पश्चिमादिविलोमेन पूजयेद् पङ्क्तियोनिके। इति।

मादिक्षान्ताक्षरैरिति। पूर्ववन्मकारादिक्षकारान्तदशाक्षराण्येकैकश: क्रमेण आदितो नियोज्य यजेदित्यर्थ:। तथाच मं सर्वज्ञादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। यं सर्व-शक्तिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यादिरूप: प्रयोग:। सर्वत्र द्वितार्याद्यन्यतमप्रयोग: पूर्ववत्।

षष्ठावरण—सर्वरक्षाकर-संज्ञक अन्तर्दशार चक्र में विराजिता सर्वज्ञा आदि दस निगर्भ योगिनियों का ध्यान करके पश्चिम से प्रारम्भ करके वामावर्त क्रम से इनका अर्चन करें। निगर्भयोगिनियों का वर्ण श्वेत है। वे चतुर्भुजा हैं। उनके हाथों में पुस्तक एवं अभय मुद्रा तथा ज्ञान मुद्रा एवं अक्षमाला है।। 'म'कार से 'क्ष'-पर्यन्त दस वर्णों में से यथाक्रम एक-एक वर्ण की नाम के आगे योजना करके उनका पूजन किया जाय।।३९६।।

[दश निगर्भयोगिन्य:]

सर्वज्ञां सर्वशक्तिञ्च सर्वैश्वर्यप्रदायिनीम्।।३९७।।
सर्वज्ञानमयीं देवीं सर्वव्याधिविनाशिनीम्।
सर्वाधारस्वरूपाञ्च सर्वपापहरां तथा।।३९८।।
सर्वानन्दमयीं देवीं सर्वरक्षास्वरूपिणीम्।
गन्धाद्यैरुपचारैस्तु सर्वेप्सितफलप्रदाम्।।३९९।।

अथ दश निगर्भयोगिनीराह—**सर्वज्ञामित्यादिना सर्वेप्सितफलप्रदामित्यन्तेन। गन्धाद्यैरुपचारैर्यजेदिति सर्वत्र सम्बध्यते।**

इन तीन श्लोकों में इस आवरण में पूजा की जाने वाली निगर्भ-योगिनियों के नाम बताये गये हैं। इनके अर्चन का प्रयोग-क्रम निम्नानुसार है।।३९७-३९९।। (३ का अर्थ है—ऐं ह्रीं श्रीं)

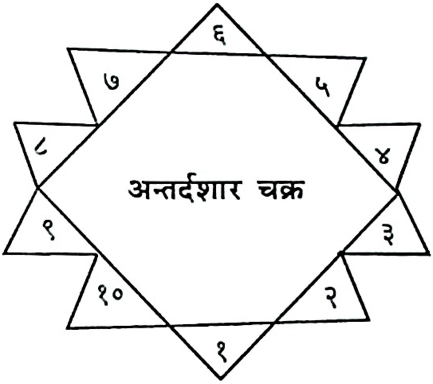

(१) ३ 'मं' सर्वज्ञादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(२) ३ यं सर्वशक्तिदेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(३) ३ रं सर्वैश्वर्यप्रदायिनीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(४) ३ लं सर्वज्ञानमयीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(५) ३ वं सर्वव्याधिविनाशिनीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(६) ३ शं सर्वाधारस्वरूपादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(७) ३ षं सर्वपापहरादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(८) ३ सं सर्वानन्दमयीदेवी श्रीपादुकां पूज्यामि तर्पयामि नम:।

(९) ३ हं सर्वरक्षाकररूपादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

(१०) ३ क्षं सर्वेप्सितफलप्रदादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

[चक्रार्चा चक्रनायिकार्चा]

सर्वरक्षाकरं चक्रं ध्यायेच्छ्रीचक्रनायिकाम्।
सर्वज्ञापुरतो मन्त्री त्रिपुरामालिनीं पराम्।।४००।।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां श्वेताम्बुजश्रियम्।

[मुद्राप्रदर्शनादि]

महाङ्कुशाख्यं सन्दर्श्य जिनेशं विष्णुमर्चयेत्।।४०१।।

सर्वरक्षेति। चक्रं यजेदिति सम्बन्ध:। तथाच सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्राय नम इति प्रयोग:। **ध्यायेदिति।** त्रिपुरामालिनीचक्रनायिका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम इति प्रयोग:। तन्त्रसारे तु त्रितार्यनन्तरमादौ ह्रीं क्लीं ब्लुमिति बीजयोगो दृश्यते। **महेति।** सर्वमहाङ्कुशमुद्रां प्रागुक्तलक्षणाम्।

गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि उपचारों से निगर्भयोगिनियों का पूजन करके 'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वरक्षाकर अन्तर्दशारचक्राय नम:'—इस मन्त्र से इस चक्र का पूजन करें। गन्ध आदि उपचार चढ़ायें।

सर्वज्ञा देवी के सामने चक्रनायिका त्रिपुरामालिनी का ध्यान करें। देवी त्रिपुरामालिनी की देह-कान्ति श्वेत कमल के समान है। वे चतुर्भुजा हैं। इनके चारो हाथों में पाश-अंकुश-धनुष और बाण शोभित हैं।

'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ब्लूं त्रिपुरामालिनी चक्रनायिका श्रीपादुकां पूजयामि नमः'—इस मन्त्र से भगवती त्रिपुरामालिनी की यथाविधि पूजा करें। (क्रों) महाङ्कुशा मुद्रा दिखायें और जिनेश विष्णु की पूजा करें॥४०१॥

विमर्श—यहाँ विष्णु-पूजन और दर्शन आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। अतः इस चक्र में अष्टाक्षरी मन्त्र से विष्णु की तथा वैष्णव-दर्शन का बहिर्दशारवत् अर्चन करें, जैसा कि 'श्रीविद्यार्णव' तन्त्र में बताया गया है।

[पूजासमर्पणम्]

एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे पदात्।
चक्रे समुद्रा इत्यादि पूर्ववत् परिकल्पयेत्।।४०२।।

अथ मूलदेव्यै पूजासमर्पणस्य क्रममाह—एता इति। तथाच एता निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु इति प्रयोगः।

पूजा-समर्पण—'एताः निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु'—इस मन्त्र से गन्धाक्षत तथा अर्घ्योदक-सहित पूजा का फल भगवती को समर्पित करके 'अभीष्टसिद्धिं मे -------- षष्ठावरणार्चनम्' मन्त्र से प्रार्थना करें। पुष्पाञ्जलि देकर योनिमुद्रा से प्रणाम करें॥४०२॥

[स्थितिचक्रोपसंहारः संहारचक्रनिरूपणप्रतिज्ञा च]

स्थितिचक्रं समाख्यातं संहारं कथयाम्यथ।।४०३।।

स्थितीति। सर्वसौभाग्यदायकं सर्वार्थसाधकं सर्वरक्षाकरञ्चेत्येतत्त्रितयात्मकं स्थितिचक्रमित्यर्थः। वक्ष्यमाणत्रितयात्मकं संहारचक्रं निरूपयितुं प्रतिजानीते—**संहारमित्यादिना।**

श्रीयन्त्र के मध्यवर्ती तीन चक्रों अर्थात् सर्वसौभाग्यदायक, सर्वार्थसाधक और सर्वरक्षाकर चक्र को स्थितिचक्र कहते हैं। स्थितिचक्र के बाद संहारचक्रों में पूजन का निरूपण किया जा रहा है॥४०३॥

[वशिन्याद्यष्टरहस्ययोगिन्यः]

पश्चिम्नायमार्गेण वशिन्याद्यष्टदेवताः।

[तासां स्वरूपम्]

नवीनार्कसमाभासाः सर्वालङ्कारभूषिताः।।४०४।।
धनुर्बाणाक्षमालाञ्च पुस्तकं बिभ्रतीः करैः।

[पूजाक्रमः]

न्यासोक्तमनुना मन्त्री यजेद् वर्गाष्टकेन तु।

[एतासामष्टारवृत्तित्वम्]

एता रहस्ययोगिन्यः प्रथमावरणे स्थिताः।।४०५।।

तत्र प्रथममष्टारे सर्वरोगहरे चक्रे वशिन्यादीनां रहस्ययोगिनीनां पूजनमभिदधानस्तासां स्वरूपमाह—**नवीनार्केति**। वशिन्याद्यास्तु वशिन्याद्यष्टवाग्देवीरेषु स्थानेषु विन्यसेदित्यादिना पञ्चदशे न्यासप्रकरणे समुद्दिष्टास्ताश्च तट्टीकायां वशिनी–कामेश्वरी–मोदिनी–विमलारुणा–जयिनी–सर्वेश्वरी–कौलिन्याख्या अष्टाविति विशिष्य प्रदर्शिताः। **न्यासोक्तेति**। पूर्वप्रदर्शितन्यासोक्तमन्त्रेणैवैताः पूजयेत्। **वर्गाष्टकेनेति**। वशिन्यादीनामष्टानां पुरतः क्रमेण वर्गाष्टक प्रयोज्य पूजयेदित्यर्थः। एवञ्च अकारादिषोडशस्वराण्युच्चार्य वरलूं वशिनीवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादिरूपः प्रयोगः; त्रितार्यादिप्रयोगस्तु पूर्ववदेव।

सप्तमावरणार्चन—तीन आवरणों वाले संहार-चक्र के प्रथम आवरण अर्थात् आठ कोणों वाले सर्वरोगहर चक्र में वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं का पश्चिमादि वामावर्त क्रम से पूजन करें।

वशिनी आदि वाग्देवताओं का वर्ण सद्यः उदित सूर्य के समान लाल और देदीप्यमान है। वे सभी आभूषणों से विभूषिता हैं। चतुर्भुजा वाग्देवताओं के चार हाथों में क्रमशः धनुष-बाण-अक्षमाला और पुस्तक है।

न्यास-क्रम (पन्द्रहवाँ प्रकाश) में बताये गये उनके बीजाक्षरों के साथ वर्णमाला के एक-एक वर्ग की योजना करके देवी के अग्रकोण से आरम्भ करके वामावर्तक्रम से उनकी पूजा करें।।४०४-४०५।।

प्रयोग-क्रम—प्रत्येक पूजन-मन्त्र के आदि में 'ह्रीं श्रीं' की पूर्ववत् योजना कर लें—

(१) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः 'ब्लूं' वशिनी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(२) कं खं गं घं ङं क्लह्रीं कामेश्वरी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(३) चं छं जं झं ञं 'न्व्लीं' मोदिनी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नगः।

(४) टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

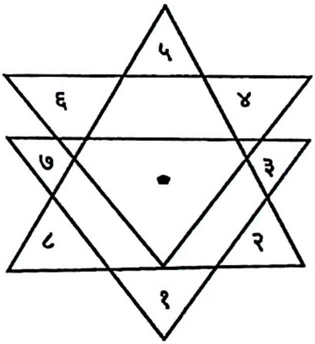

(५) तं थं दं धं नं 'ज्म्रीं' अरुणा वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(६) पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(७) यं रं लं वं झम्र्यूं सर्वेश्वरी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(८) शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[चक्रपूजा]

सर्वरोगहरं नाम चक्रं सम्पूजयेत्ततः।

[चक्रनायिकार्चा]

ध्यायेच्छ्रीत्रिपुरासिद्धां वशिनीपुरतः सुधीः।।४०६।।

[चक्रनायिकाया: स्वरूपम्]

जवाकुसुमसङ्काशां पाशाङ्कुशधनुःशराम्।

[मुद्राप्रदर्शनादि]

सन्दर्श्य खेचरीमुद्रां यजेच्छक्तिञ्च मायया।।४०७।।

[पूजासमर्पणम्]

एता रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे पदात्।
चक्रे समुद्रा इत्यादि पूर्ववत् परिकल्पयेत्।।४०८।।

सर्वरोगेति। सर्वरोगहराष्टारचक्राय नमः इति प्रयोगः। ध्यायेदिति। श्रीत्रिपुरासिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः इति प्रयोगः। अत्र मूले चक्रनायिकापदमनुपादत्तमपि सर्वत्र चक्रनायिकापदप्रयोगदर्शनान्निवेशितम्।

चक्र-पूजन—'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वरोगहर अष्टारचक्राय नम:'—इस मन्त्र से चक्र की पूजा करें।

वशिनी वाग्देवता के सामने चक्र-नायिका त्रिपुरा सिद्धा का ध्यान करके उनका पूजन करें। देवी त्रिपुरासिद्धा का वर्ण जवा-फूल की तरह लाल है। वे चतुर्भुजा हैं। उनके चार हाथों में पाश-अंकुश-धनुष और बाण शोभित हैं। 'ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीत्रिपुरासिद्धा चक्रनायिका श्रीपादुकां पूजयामि नम:' यह उनका पूजन मन्त्र है।

(ह्रीं) खेचरी मुद्रा दिखायें तथा जप-समर्पण करें।

ह्रीं श्रीं एता: रहस्ययोगिन्य: सर्वरोगहरे चक्रे समुद्रा: ससिद्धय: सवाहना: सपरिवारा: पूजिता सन्तु।'

हाथ में अर्घ्योदक, गन्ध-पुष्प और अक्षत लेकर उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर पूजा का फल भगवती को समर्पित करें।।४०६-४०८।।

'अभीष्टसिद्धिं मे देहि .... सप्तमावरणार्चनम्' से पुष्पांजलि देकर योनिमुद्रा से देवी को प्रणाम करें।

[बाणार्चा]

अष्टकोणान्तराले च त्रिकोणस्य बहि:स्थितः।
पश्चिमादिचतुर्दिक्षु बाणान् सम्पूजयेद् बुधः।।४०९।।

अष्टमावरणार्चन—अष्टकोण के अन्तराल में त्रिकोण के बाहर पश्चिम आदि चारो दिशाओं में बाणों का पूजन करें।।४०९।।

[बाणानां स्वरूपम्]

तरुणारुणसङ्काशान् रक्तवस्त्रविभूषितान्।
रक्तमाल्यविशोभाढ्यान् यौवनोन्मत्तविग्रहान्।।४१०।।
पाशाङ्कुशधनुःपञ्च पुष्पबाणविभूषितान्।
बाणधनुःपाशशृणियुग्मानि च क्रमादनु।।४११।।

बाणदेवताओं का स्वरूप उदयकालीन सूर्य के समान लाल वर्ण का है। वे सभी यौवन से परिपूर्ण हैं। लाल रंग के वस्त्र, लाल रंग के ही गन्ध और लाल रंग की माला से शोभित हैं। उनके हाथों में पाश-अंकुश-धनुष और पाँच पुष्पबाण हैं। इन बाणों के नाम के साथ क्रमशः बाण-धनुष, पाश तथा अंकुश की योजना करके इनका पूजन करना चाहिए।।४१०-४११।।

[बाणानां संज्ञाः पूजाक्रमश्च]

जृम्भणं मोहनञ्चैव वशं स्तम्भनमेव च।
न्यासोक्तक्रमयोगेण पूजयेत् साधकोत्तमः।।४१२।।

(१) जृम्भण, (२) मोहन, (३) वशीकरण और (४) स्तम्भन—ये बाणों अर्थात् आयुधों के नाम हैं। न्यास-क्रम में बताये गये मन्त्रों से इनका पूजन-तर्पण करना चाहिए।।४१२।।

यथा—(ऐं ह्रीं श्रीं) की योजना करके—

१. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां कामेश्वर-कामेश्वरी जृम्भणबाणाय नमः। श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां धं थं सम्मोहनाय कामेश्वर-कामेश्वरी धनुषे नमः। श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां आं ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वर-कामेश्वरी पाशाय नमः। श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

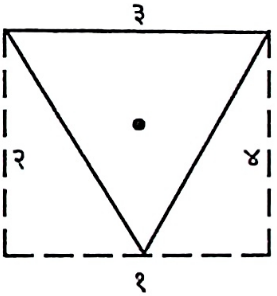

४. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर-कामेश्वरी अंकुशाय नमः। श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

[अङ्गदेवतार्चा]

अस्त्रत्रिकोणयोर्मध्ये पूजयेदङ्गदेवताः।।४१३।।
त्रिकोणमध्यचक्रे तु पूजयेन्मूलविद्यया।
अक्षराक्षरभेदेन समस्तव्यस्तया यजेत्।।४१४।।

बालाबीजत्रयेणापि भैरव्याः कूटकैस्त्रिभिः।
सुन्दर्याश्च त्रिभिः कूटैस्त्रिकोणं परिपूजयेत्।।४१५।।
कामेश्वरीं रुद्रशक्तिमग्निचक्रे प्रपूजयेत्।
वज्रेश्वरीं विष्णुशक्तिं सूर्यचक्रे प्रपूजयेत्।।४१६।।
भगमालां ब्रह्मशक्तिं सोमचक्रे प्रपूजयेत्।
बिन्दुचक्रे यजेद्देवीं परंब्रह्मस्वरूपिणीम्।।४१७।।
कामे मित्रीशनाथः स्याज्जाले षष्ठीशनाथकः।
पूर्णे चोड्डीशनाथश्च चर्यानाथस्तु ओड्रके।।४१८।।
कामेश्वरीं वाग्भवेन यजेद् ध्यात्वा तु पूर्ववत्।
एवं चक्रेश्वरीं ध्यात्वा कामराजेन पूजयेत्।।४१९।।
भगेशीं शक्तिकूटेन यजेद् ध्यात्वा तु पूर्ववत्।
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे द्वितीयावरणे नयेत्।।४२०।।
रहस्ययोगिनीस्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायिकाम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरां रक्तां सुशोभनाम्।।४२१।।
बीजमुद्राञ्च सन्दर्श्य परां शक्तिं प्रपूजयेत्।।४२२।।

इन श्लोकों में त्रिकोण के तीनों कोणों में पश्चिम से प्रारम्भ करके दक्षिण एवं वाम कोणों में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी देवी की पूजा का क्रम बताया गया है। त्रिकोण के तीनों कोणों में अधोलिखित विधि से पूजा करें—

(१) ऐं कएइलह्रीं अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रीशनाथात्मके रुद्रात्मशक्ति-कामेश्वरी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (अग्रकोण में)

(२) क्लीं हसकहलह्रीं सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्ण्वात्मक-शक्ति वज्रेश्वरी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (दक्षिण कोण में)

(३) सौः सकलह्रीं सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्ति भगमालिनी देवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (वामकोण में)

(४) मूल मन्त्र—ब्रह्मचक्रे महा उड्यानपीठे चर्यानन्दनाथात्मके परब्रह्मात्म-शक्ति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (बिन्दु पर)

'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः'—इस मन्त्र से समग्र चक्र को पुष्पाञ्जलि देकर कामेश्वरी के सामने चक्र नायिका देवी त्रिपुराम्बिका का ध्यानपूर्वक पूजन करें। देवी त्रिपुराम्बिका रक्तवर्णाः सुशोभना और चतुर्भुजा हैं। उनके चारो हाथों में क्रमशः पाश-अंकुश-धनुष और बाण हैं। पूजन-मन्त्र है—

'हस्रैं हस्क्ल्रीं हस्रौः त्रिपुराम्बिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।'

'ऐं ह्लीं श्रीं हस्रौः' का उच्चारण करके बीजमुद्रा दिखायें।

'ह्लीं शक्तिदर्शनाय नमः' से शाक्त दर्शन का पूजन करें।

एता अतिरहस्येति पदाद् योगिन्य इत्यपि।
सर्वसिद्धिमये चक्रे समुद्रेत्यादि पूर्ववत्।।४२३।।

एता इति। तथा च 'एता अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिमये चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु' इति प्रयोगः।

पूजा-समर्पण—एताः अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिमये चक्रे समुद्राः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तु।

पूर्ववत् अर्घ्योदक-गन्ध-पुष्प-अक्षत से पूजा-समर्पण करके प्रार्थना करें।

'अभीष्टसिद्धिं मे देहि .... अष्टमावरणार्चनम्' से पुष्पाञ्जलि देकर भगवती को योनिमुद्रा से प्रणाम करें।

विमर्श—तन्त्रसार, ज्ञानार्णव, गन्धर्वतन्त्र में बिन्दुमध्य में 'मूलविद्या' से पूजन का विधान नहीं मिलता। श्रीविद्यार्णव (दशम श्वास, श्लोक १०० इत्यादि) में यह विधान बताया गया है।

[बिन्दुचक्रे श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीसपर्या]

सर्वानन्दमये चक्रे बैन्दवे परमेश्वरीम्।
परंब्रह्मस्वरूपाञ्च परमामृतरूपिणीम्।।४२४।।
सर्वचक्रेश्वरीं देवीं सर्वमन्त्रेश्वरीं तथा।
सर्वमुद्रेश्वरीञ्चापि सर्वविद्येश्वरीं तथा।।४२५।।
सर्वपीठेश्वरीञ्चापि सर्ववीरेश्वरीं पुनः।
सर्वयोगेश्वरीञ्चापि सर्वसिद्धीश्वरीमपि।।४२६।।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं मातृकां पराम्।
समुद्रां सायुधाञ्चापि सचक्राञ्च सवाहनाम्।।४२७।।
परिवारसमेताञ्च ससिद्धिञ्च सदेवताम्।
परापरां महादेवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।।४२८।।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च मुनीन्द्रैरपि सेविताम्।
मनसैवं समालोक्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।।४२९।।
परंब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकामर्चयेद् बुधः।

नवमावरणार्चन—सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र पर परंब्रह्मस्वरूपा, परमामृतरूपिणी, समस्त चक्रों, मन्त्रों, मुद्राओं, विद्याओं, पीठों, वीरों, योगों, सिद्धियों की

एकमात्र अधीश्वरी, समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति एवं संहार की कारणभूता, पञ्चाशत् मातृकारूपा, भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी, पर-अपरप्रकृतिरूपिणी, ब्रह्मा-शिव-विष्णु आदि देवताओं तथा श्रेष्ठ मुनियों द्वारा सम्पूजिता परं ब्रह्मात्म शक्ति भगवती महात्रिपुरसुन्दरीश्री का मुद्राओं, आयुधों, वाहनों, चक्रों तथा परिवारदेवताओं-सहित पूजन करें॥४२३-४२९॥

प्रयोग-क्रम—'मूल मन्त्र'—परं ब्रह्मात्मशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।'

[बैन्दवचक्रार्चा]

सर्वानन्दमयं चक्रं बैन्दवं परिपूजयेत्॥४३०॥

'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वानन्दमयबैन्दवचक्राय नम:'—इस मन्त्र से चक्र को पुष्पाञ्जलि दें।

[चक्रनायिकार्चा]

आवाहनेन मन्त्रेण भैरवीचक्रनायिकाम्।
देव्यग्रे पूजयेन्मन्त्री गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥४३१॥

चक्रनायिका अर्चन—इस चक्र की अधीश्वरी स्वयं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी हैं, अत: चक्रनायिका के रूप में मूल मन्त्र से उनकी ही पूजा करें। यथा—'मूल मन्त्र' श्री महात्रिपुरसुन्दरी चक्रनायिका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।' 'ऐं' का उच्चारण करके योनिमुद्रा दिखायें।

[मुद्रादर्शनादि]

योनिमुद्राञ्च सन्दर्श्य परां शक्तिं प्रपूजयेत्।
शैवं वा पूजयेत्तत्र तत्त्वविमर्षिणीमते॥४३२॥
मध्यत्र्यस्त्रं सान्तरालं शैवं दर्शनमीरितम्।
हौँ ॐ नमः शिवाय हौँ भूयो नमोऽमुना शिवम्।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैः षोढाऽयं दर्शनक्रमः॥४३३॥

योनिमुद्रा दिखाने के बाद परा शक्ति का पूजन करें। श्रीतत्त्वविमर्षिणी तन्त्र का कथन है कि योनिमुद्रा दिखाने के बाद विकल्पत: 'ॐ नम: शिवाय ह्रौं नम:' मन्त्र से शिवजी का पूजन करें। अन्तराल-सहित मध्य त्रिकोण को शैव-दर्शनस्वरूप माना गया है। अत: इस चक्र पर 'ॐ शैवदर्शनाय नम:' इस मन्त्र से शैव-दर्शन का पूजन करें॥४३२-४३३॥

[मूलदेव्यै पूजासमर्पणम्]

एताः परापरेत्युक्त्वा रहस्येति पदोपरि।
योगिन्य इति चोद्धृत्य सर्वानन्दमये पदात्॥४३४॥

महाचक्रे बैन्दवे च परब्रह्मस्वरूपिणी।
परामृतपदाच्छक्ति सर्वचक्रेश्वरीपदम्।।४३५।।
सर्वमन्त्रेश्वरीशब्दात् सर्वविद्येश्वरीपदम्।
सर्ववीरेश्वरी सर्वपीठेश्वरी पदं ततः।।४३६।।
सर्वयोगेश्वरीशब्दात् सर्ववागीश्वरीपदम्।
सर्वसिद्धेश्वरी सर्वजगदुत्पत्तिमातृकाः।।४३७।।
सचक्रा च समुद्रा च ससिद्धि सायुधास्तथा।
सवाहनाः सपरिवाराश्च सर्वोपचारकैर्महा।
त्रिपुरान्ते सुन्दरीति परयापरयापदात्।।४३८।।
परापरा तृतीयान्ते सपर्या च तथाविधा।
पूजिताः सन्तु इत्युक्त्वा देव्यै पूजां समर्पयेत्।।४३९।।

अथ पूजासमर्पणमन्त्रमाह—एता इत्यादिना। तथाच एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वानन्दमये महाचक्रे बैन्दवे चक्रे परब्रह्मस्वरूपिणी-परामृतशक्ति-सर्वचक्रेश्वरी-सर्वमन्त्रेश्वरी-सर्वविद्येश्वरी-सर्ववीरेश्वरी-सर्वपीठेश्वरी-सर्वयोगेश्वरी-सर्ववागीश्वरी-सर्वसिद्धेश्वरी-सर्वजगदुत्पत्तिमातृकाः सचक्राः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सपरिवाराः सर्वोपचारकैर्महात्रिपुरसुन्दरीपरया परया परापरया सपर्यया पूजिताः सन्तु इति प्रयोगः।

तन्त्रसारे तु—अत्र सर्वानन्दमये बैन्दवचक्रे परब्रह्मस्वरूपिणी-परापरशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-समस्तचक्रनायिका-संवित्तिरूपचक्रनायिकाधिष्ठिते त्रैलोक्यमोहन-सर्वाशापरिपूरक-सर्वसंक्षोभकारक-सर्वसौभाग्यदायक-सर्वार्थसाधक-सर्वरक्षाकर-सर्वरोगहर-सर्वसिद्धिप्रद-श्रीचक्रसमुन्मीलितसमस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुल-कौलिनीनिगर्भरहस्यातिरहस्य-परापररहस्य-समस्तयोगिनीपरिवृत्त-श्रीत्रिपुरात्रिपुरेशी-त्रिपुरसुन्दरी-त्रिपुरवासिनी-त्रिपुराश्री-त्रिपुरमालिनी-त्रिपुरासिद्धा-त्रिपुराम्बा तत्तचक्र-नायिकावन्दितचरणकमलश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-नित्यादेवी-सर्वचक्रेश्वरी-सर्वमन्त्रेश्वरी-सर्वविद्येश्वरी-सर्वपीठेश्वरी-सर्वकामेश्वरी-सर्वतन्त्रेश्वरी-सर्ववीरेश्वरी-त्रैलोक्यमोहिनी जगदुत्पत्तिमातृका-सर्वचक्रमयी-तच्चक्रनायिकासहिताः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी परापरया सपर्यया पूजितास्तर्पिताः सन्तु इति विशेषार्घ्योदकाक्षतकुसुमैः प्रधानदेव्या वामहस्ते समर्पयेत् इत्युक्तम् ।

पूजा-समर्पण—हाथ में विशेष अर्घ्य का अमृत, गन्ध-पुष्प और अक्षत लेकर निम्नलिखित मन्त्र से देवी को पूजा-फल समर्पित करें—

'एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वानन्दमये महाचक्रे बैन्दवचक्रे परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्ति सर्वचक्रेश्वरी सर्वमन्त्रेश्वरी सर्वविद्येश्वरी सर्वपीठेश्वरी सर्वयोगेश्वरी सर्ववागीश्वरी सर्वसिद्धेश्वरी सर्वजगदुत्पत्तिमातृकाः सचक्राः समुद्राः

ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारकैः महात्रिपुरसुन्दरीपरयापरया परापरया सपर्यया पूजिताः सन्तु।'

उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करके गन्धाक्षत आदि भगवती को समर्पित कर दें।

'अभीष्टसिद्धिं मे देहि .... नवमावरणार्चनम्' से भगवती से प्रार्थना करके उन्हें पुष्पाञ्जलि देकर योनिमुद्रा से प्रणाम करें।।४३४-४३९।।

कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भुकुसुमैर्युतैः।
सुन्दरीं पूजयेन्मन्त्री शतमक्षततण्डुलैः।।४४०।।

नवम आवरण का अर्चन हो जाने के बाद मन्त्रविद् साधक भगवती को कुण्डगोलोद्भव द्रव्य तथा स्वयम्भूपुष्प एवं अक्षत समर्पित करके उनका पूजन करें।।४४०।।

विमर्श—कुण्डगोलोद्भव द्रव्य तथा स्वयम्भू कुसुम वाममार्गी अर्चन के विशिष्ट द्रव्य हैं और अधिकारी साधक ही इन द्रव्यों से भगवती के अर्चन के पात्र होते हैं। अक्षत के रूप में दिये जाने वाले चावलों की संख्या एक सौ से कम नहीं होनी चाहिए।

[पुनः सपर्योपदेशः]

पुनः पाद्यादिकं दत्त्वा श्रीविद्यां पूजयेद् यथा।

[पुनरर्घ्यत्रयदानम्]

पुनस्त्रितत्त्वमुच्चार्य दद्यादर्घ्यं त्रिधा पुनः।।४४१।।

[विविधोपचारैः पूजनम्]

गन्धचन्दनकस्तूरीरोचनागुरुकुङ्कुमैः।
रक्तचन्दनसिन्दूरैर्द्रव्यैर्नानाविधैर्यजेत्।।४४२।।

अथ देवीपूजायां प्रशस्तानुपचारान् सामान्यत आह—गन्धेति।

स्वयम्भू कुसुम आदि समर्पित करने के बाद पुनः पाद्य समर्पित करके तत्त्व-मन्त्रों से उन्हें तीन बार अर्घ्य प्रदान करें। ये मन्त्र हैं (१) ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, (२) क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा और (३) सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा।

विविध प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों, चन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम, अगरु तथा लाल चन्दन एवं सिन्दूर आदि द्रव्यों से भगवती का अर्चन करें।।४४१-४४२।।

भगवती को दिये जाने वाले उपचारद्रव्यों का निरूपण करने के बाद उपचार-समर्पण के मन्त्रात्मक श्लोक लिखे जा रहे हैं।

[उपचारदाने प्रार्थनामन्त्राः। तत्र पाद्यस्य प्रार्थनामन्त्रः]

गन्धपुष्पसमायुक्तं सुगन्धिजलसंयुतम्।
पाद्यं गृहाण देवेशि सर्वकामार्थसिद्धये।।४४३।।

पाद्य—हे देवेशि! सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये मैं आपके श्रीचरणों में गन्ध और पुष्प-समन्वित सुगन्धित जल समर्पित करता हूँ। हे देवि! आप कृपा करके इसे स्वीकार कीजिये।।४४३।।

[अर्घ्यस्य]

दूर्वाक्षतसमायुक्तं गन्धचन्दनचर्चितम्।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै गृहाणार्घ्यं सुरेश्वरि।।४४४।।

अर्घ्य—धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्षरूप चारो पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये मैं आपको दूर्वा और अक्षत-समन्वित चन्दनचर्चित सुगन्धित अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ। हे माँ! इसे स्वीकार करें।।४४४।।

[आचमनीयस्य]

सुवासितं जलं शुद्धं दुकूलैः परिशोधितम् ।
गृहाणाऽऽचमनीयं त्वं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि।।४४५।।

आचमनीय—कपड़े से छानकर यह सुवासित जल आपको प्रदान कर रहा हूँ। माँ! यह आचमन द्रव्य स्वीकार करें।।४४५।।

[मधुपर्कस्य]

दध्याज्यमधुसंयुक्तं सुवहं सुमनोहरम्।
मधुपर्कं गृहाण त्वं धर्मकामार्थसिद्धये।।४४६।।

मधुपर्क—दही, घी और शहद से मिलाकर बनाया गया यह मधुपर्क आपको समर्पित कर रहा हूँ। कृपा कर इसे स्वीकार करें।।४४६।।

[गन्धस्य]

चन्द्रचन्दनकस्तूरीरोचनागुरुकुङ्कुमैः ।
सम्भूतं सरलैरार्द्रं गन्धमाकल्पयाम्यहम्।।४४७।।

गन्ध—कपूर, चन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, अगरु, कुंकुम आदि के मिश्रण को देवदारु के सुगन्धित रस में घोलकर मैंने आपके लिये यह गन्ध बनाया है। हे माँ! इसे स्वीकार करें।।४४७।।

[पुष्पस्य]

विचित्रममलं रम्यं वासितं गन्धवारिभिः।
सुगन्धि विकसत् पुष्पमादरात् कल्पयाम्यहम्।।४४८।।

पुष्पदानमाह—**विचित्रमिति**। वासितमिति गन्धवारिभिश्चन्दनजलैर्वासितं सुरभीकृतमित्यर्थः। अत्रेदमवधेयम्—गन्धपुष्पधूपादय उपचाराः परकीयत्वघ्रातत्वादिदोषदुष्टाः पूजायां वर्जनीयाः। तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

परकीयांस्तथा घ्रातांस्तेषां कृत्याभिमर्दितान्।
पुष्पं धूपञ्च गन्धञ्च नोपचारांस्तथाऽपरान्।
घ्रातान्निवेद्य देवेशि नरो नरकमाप्नुयात्।
नैव पर्युसितैः पुष्पैः पत्रैश्चापि महेश्वरीम्।
पूजयेत् परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरीम्॥
सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं पत्रं पुष्पं फलं तथा।
पद्मानि सितरक्तानि कुमुदान्युत्पलानि च॥
एषां पर्युषिताशङ्का कार्या पञ्चदिनोर्ध्वतः।
अन्येषां कुसुमानाञ्च यावद् गन्धविपर्ययः॥ इति।

एवञ्च पद्मकुमुदोत्पलानां दिनपञ्चकं यावत्, इतरेषान्तु यावद् गन्धावस्थितिस्तावत् पर्युषितत्वं नास्तीत्युक्तं भवति। त्रिपुरार्चायां प्रशस्तानि पत्रपुष्पाण्याह तत्रैव—

वकुलं केशरं वज्रं माल्यं कुन्दञ्च शाल्मलम्।
करवीरञ्चार्कपुष्पं बन्धूककमले तथा॥
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा।
तगरः कर्णिकारश्च द्रोणश्चोत्पलचम्पकौ॥
अशोकः कुमुदश्चैव शेफालिका-कदम्बकौ।
केतकी वनमाला च कुसुम्भकिंशुकौ तथा॥
कह्लारवकुले चैव लवङ्ग-नागकेशरौ।
सर्वेषु पुष्पजातेषु त्रिपुरायाः सदैव हि॥
एतान्येव प्रियाणि स्युर्न पत्रैरर्चयेच्छिवाम्।
पत्रेषु विल्वपत्रञ्च तथा मदनपल्लवम्॥
दूर्वाङ्कुरन्तथा प्रोक्तं नान्यत् पत्रं प्रयोजयेत्।
मल्लिका मालती कुन्दो द्रोणश्चाथ सिताम्बुजः॥
शुक्लपक्षे महादेवि त्रिपुरायै निवेदयेत्।
सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्मं तथा जवा॥
देवीप्रीतिकरं प्राज्ञे सर्वकामफलप्रदम्।
रत्नपुष्पञ्च देवेशि तथा स्वर्णादिनिर्मितम्।
रक्तपद्मेन वज्रेण तुलां नाऽऽयाति कर्हिंचित्॥ इति।

तथा विहितानामपि पुष्पाणाम् उग्रगन्धत्वाशुद्धपात्रगतत्वादिदोषदुष्टत्वे तेषामर्पणं निषिद्धम्, यथा तत्रैव—

उग्रगन्धमगन्धञ्च कृमिकेशादिदूषितम्।
अशुद्धपात्रपाणिस्थं वासोभिः कुत्सितात्मभिः।।
आनीतं नार्पयेद्देव्यै प्रमादादपि दोषकृत्।
स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः।।
स्वयं विकशितैर्मुक्तैः स्वयञ्च पतितैर्भुवि।
नार्चयेत् कलिकाभिश्च विना चम्पकपङ्कजैः।।

इत्यादि। एवमन्यान्यपि विहिताविहितपुष्पप्रतिपादकप्रमाणानि मुण्डमाला-योगिनीतन्त्रकौलावलीनिर्णयादिषु ज्ञातव्यानि।

पुष्प—हे देवि! मैंने आपकी पूजा के लिये रंग-बिरंगे, सुवासित तथा सुगन्धित जल से प्रोक्षित पुष्पों का संग्रह किया है। हे माते! आप इन्हें स्वीकार करें।।४४८।।

विमर्श—देवपूजा में पुष्पों का अत्यन्त महत्त्व है। इसीलिये तन्त्रग्रन्थों में देवियों और देवताओं को प्रिय पुष्पों तथा पुष्पों की ग्राह्यता तथा अग्राह्यता पर काफी विस्तार से प्रकाश डाला गया है। भगवती त्रिपुरा को अशोक, कुमुद, शेफाली, कदम्ब, किंशुक, कल्हार, कमल, जवा, दमनक, नागकेशर, चम्पा बहुत प्रिय हैं। बासी और गन्धहीन फूल ग्राह्य नहीं हैं। किसी से माँगे गये, तोड़ने के बाद अपने पहने हुए कपड़ों में भरकर लाये गये फूल, मुरझाय हुए, स्नान करके तोड़े गये और बासी फूल पूजा में ग्राह्य नहीं हैं। कमल का फूल अपवाद है, वह तीन दिनों तक बासी नहीं माना जाता। एक बात और; काली तारा और त्रिपुरा की रात्रिकालीन रहस्य पूजा में तुलसी सदैव अग्राह्य है। कहा गया है—'तुलसी घ्राणमात्रेण क्रुद्धा भवति चण्डिका।' इसी तरह तीखी गन्ध वाले और निर्गन्ध फूल, वृक्ष से अपने-आप झड़कर गिरे फूल, कृत्रिम रूप से विकसित किये गये फूल ग्राह्य नहीं हैं। पूजा के लिये जो फूल प्रशस्त हैं, उनकी भी कलियाँ ग्राह्य नहीं है।

[षोडशाङ्गधूपप्रमाणम्]

गुग्गुलं सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम्।
ह्रीवेरमगुरुं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम्।।४४९।।
हरीतकीं नखं लाक्षां जटामांसीञ्च शैलजम्।
षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि।।४५०।।

षोडशाङ्गधूपप्रमाणमाह—गुग्गुलमित्यादिना। सरलो वृक्षविशेषः। 'पीतद्रुः सरलः पूतिकाष्ठमि'त्यमरः। दारु देवदारु, 'शक्रपादपः परिभद्रकः। भद्रदारुद्रुकिलिमम्, पीतदारु च दारु च। पूतिकाष्ठञ्च सप्त स्युर्देवदारुणी'त्यमरः। अत्र दारुशब्देन देवदारुरेवोच्यते,

हरीतकी मुस्तमथो नखी च मांसी जतुः शैलज-देवदारुः।
कुष्ठं गुडः सर्जरसस्तथैव दशाङ्गधूपः कथितो मुनीन्द्रैः।।

इति कौलावलीनिर्णयसप्तमोल्लासीयदशाङ्गधूपप्रमाणे तथा दर्शनात् । पत्रं तेजपत्रम्। मलयसम्भवं चन्दनम्। ह्रीबेरं नेत्रवालेति ख्यातो गन्धद्रव्यविशेषः। 'बालं ह्रीवेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च'त्यमरः। सर्जरसः सालनिर्यासः। 'यक्षधूपः सर्जरसोऽरालसर्वरसावपी'त्यमरः। घनो मुस्ता मुथेति प्रसिद्धा। 'घनः सान्द्रे दृढे दार्ढ्ये विस्तारे मुद्गरेऽम्बुदे। संघे मुस्ते घनं मध्यनृत्यवाद्यप्रकारयोरि'ति हैमः। नखं गन्धद्रव्यविशेषः, 'नखं पुनर्गन्धद्रव्ये नखः करजषण्डयोरि'ति हैमः। शैलजं 'शिलाजतु' इति ख्यातो गन्धद्रव्यविशेषः। 'कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु शैलेयमि'त्यमरः। 'शैलेयं गलपर्ण्याञ्च सैन्धवे। शैलजे ना तु मधुपे शिलातुल्येऽन्यलिङ्गकम्।' इति च मेदिनी। शिष्टं स्पष्टम्। गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

पत्रं मुस्तं नखं कुष्ठं जटामांसीञ्च शैलजम्।
सरलं देवकाष्ठञ्च जनुसर्जसचन्दनम्।।
कपिलाघृतकर्पूरशर्करापूरमिश्रितम् ।
षोडशाङ्गो महाधूपः षोडशीप्रीतिदायकः।। इति।

सोलह सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर जो धूप बनाया जाता है, उसे षोडशांग धूप कहते हैं। इसमें मिलाये जाने वाले द्रव्य हैं—गुग्गुल, देवदारु, तेजपात, मलयागिरि चन्दन, ह्रीबेर, अगरु, कुष्ठ (कूठ), गुड़, साल वृक्ष का निर्यास (गोंद), मुस्त, हरीतकी (हर्र), नख, लाख, जटामांसी और शिलाजीत।।४४९-४५०।।

विमर्श—'कौलावलीनिर्णय' के अनुसार चन्दन, अगरु, कपूर, चोर, केशर, गोरोचन, जटामांसी तथा कपिजटा से बना अष्टगन्ध भगवती को प्रिय है। हर, नागरमोथा, नख, जटामांसी, लाख, छरीला, देवदारु, कूट, गुड़ को मिलाकर दशांग धूप बनाया जाता है।

[अन्यादृशधूपप्रमाणम्]

मधुसर्पिः शर्करा च चन्दनागुरुगुग्गुलुः।
उशीरः सप्त एवैते धूपोऽयं चण्डिकाप्रियः।।४५१।।

मध्विति। उशीरो वीरणमूलम्।

मधु (शहद), घृत, शक्कर, चन्दन, अगुरु, गुग्गुल और खस को मिलाकर बनाया गया धूप चण्डिका को प्रिय है।।४५१।।

[अन्यादृशधूपप्रमाणम्]

अथवाऽगुरुकर्पूरचन्दनैः सह गुग्गुलुः।
मधुसर्पिर्जटामांसी शैलेयं कुङ्कुमं तथा।
एभिर्विमिश्रितः कार्यो धूपोऽयं पार्वतीप्रियः।।४५२।।

एक अन्य प्रकार का धूप भी भगवती को प्रिय है, जो अगुरु, कपूर, चन्दन, गुग्गुल, शहद, घृत, जटामांसी, शिलाजीत तथा कुंकुम को मिलाकर बनाया जाता है।।४५२।।

[धूपदानक्रमः]

धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदाऽनुना।
जयध्वनि ततो मन्त्रमातः स्वाहेति पूजिताम्।
वामेन वादयन् घण्टां धूपदीपौ निवेदयेत्।।४५३।।

धूपेति। अस्त्रेण फट् इत्यनेन। हृदाऽनुना, नम इति हृन्मन्त्रेणेत्यर्थः। तथाच फट् इत्यनेन धूपभाजनमभ्युक्ष्य धूपाय नम इत्यभ्यर्च्येत्यर्थः। धूपेति। धूपदीपौ निवेदयेदित्यनेन वक्ष्यमाणदीपदानेऽपि निरुक्तक्रमेण ओं जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति प्रयोजयेदिति बोध्यम्।

अस्त्र मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके धूपपात्र को अच्छी तरह धो-पोंछकर 'ॐ धूपपात्राय नमः' से उसका पूजन करें। धूपपात्र में अंगार रखकर उसमें धूप डालें। 'ॐ जयध्वनिमन्त्र मातः स्वाहा' इस मन्त्र से पूजित घण्टे को बाँयें हाथ से बजाते हुए धूप और दीप निवेदित करें।।४५३।।

[धूपस्य प्रार्थनामन्त्रः]

वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।४५४।।
अथवा धूपयेद्धूपैर्मूलमन्त्रपुरःसरम्।
सुरभीघृतसंयोगाद् वह्नेरुत्पन्नमुत्तमम्।
ध्वस्तदुर्वासनं दिव्यं धूपमुन्मीलयाम्यहम्।।४५५।।

धूपदान के दो प्रार्थना-मन्त्र हैं। पहिला है—'वनस्पतिरसोत्पन्नो -------- प्रतिगृह्यताम्' (४५४) तथा दूसरा मन्त्र है—'सुरभीघृत -------- उन्मीलयाम्यहम्' (४५५)। इनमें से किसी भी श्लोक-मन्त्र के आगे 'मूल मन्त्र' लगाकर देवता को धूप प्रदान करें।।४५४-४५५।।

[दीपस्य]

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।४५६।।

[तत्र कल्पान्तरम्]

अथवाऽन्यप्रकारेण दीपं दद्याद् विचक्षणः।।४५७।।

[प्रार्थनामन्त्रान्तरम्]

घृतसंयुक्तवर्त्त्यग्रे प्रज्वलन्तं निरन्तरम्।
दिव्यदर्शनदातारं दीपं सन्दर्शयाम्यहम्।।४५८।।

इसी तरह दीपदान के लिये भी दो मन्त्र हैं। पहिला मन्त्र है—'सुप्रकाशो ······· प्रतिगृह्यताम्' (४५६) तथा दूसरा है 'घृतसंयुक्त ········· सन्दर्शयाम्यहम्' (४५८)। इनमें से किसी भी मन्त्र के आगे मूल मन्त्र की योजना करके दीप-दान करें।।४५६-४५८।।

[धूपदाने दिङ्नियमः]

धूपन्तु वामतो दद्यात् सम्मुखे वा विचक्षणः।

[भूम्यादौ धूपस्थापननिषेधः]

न भूमौ स्थापयेद्धूपमासने वा घटे च वा।।४५९।।

[दीपदाने दिङ्नियमः]

घृतदीपं दक्षिणे च स्ववामे तैलदीपकम्।
अभितो दर्शयेन्मन्त्री दीपमालां सुशोभनाम्।।४६०।।

धूपदान करने के बाद धूपपात्र को देवता के सामने अथवा वाम-भाग में रखना चाहिए। इसी तरह दीपदान के बाद घृत के दीपक को अपने दाहिने ओर और तेल के दीपक को बाँयीं ओर रखना चाहिए। धूप और दीप को किसी आधार पर ही रखा जाय। भूमि पर, अपने आसन पर अथवा घट आदि पर नहीं रखना चाहिए। दीप-माला भगवती के आसन के चारो ओर सजाई जाय।।४५९-४६०।।

[सप्तविधाः प्रदीपाः]

घृतप्रदीपः प्रथमं तिलतैलसमुद्भवः।
सार्षपः फलनिर्यासजातो वा वारिजोद्भवः।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्त्तिताः।।४६१।।

सप्तविध दीप—दीपक सात प्रकार के होते हैं—(१) घी का दीपक, (२) तिलतैल का दीपक, (३) सरसों के तेल का दीपक, (४) फलों के तेल से बनाया गया दीपक (यथा—आँवले के तेल या महुये के तेल का दीपक), (५) जलीय वनस्पतियों के तेल का दीपक, (६) दधिज अर्थात् मक्खन/नवनीत का दीपक और (७) अनाज के तेल (जैसे—चावल के कोढ़े का तेल) का दीपक।।४६१।।

[पञ्चविधा वर्तिकाः]

पट्टसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवाऽथवा।
शालजा बादरी वाऽपि फलकोषोद्भवाऽथवा।
वर्त्तिका दीप कृत्येभ्यः सदा पञ्चविधाः स्मृताः।।४६२।।

पाँच प्रकार की बत्तियाँ—इसी प्रकार बत्तियाँ भी पाँच प्रकार की हैं—(१) धागों से बनाई गई, (२) कुश की जड़ से बनाई गई, (३) शालवृक्ष के रेशे से बनाई गई, (४) कपास से बनाई गई और (५) फलों के अन्दर वाले रेशे की रुई (जैसे—सेमल-आक) आदि से बनाई गई।।४६२।।

[प्रशस्तानि दीपपात्राणि]

तैजसं बादरं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम्।
तृणराजोद्भवं वाऽपि दीपपात्रं प्रशस्यते।।४६३।।
एवं दीपं प्रकुर्वीत नेत्ररञ्जनकारकम्।

प्रशस्त दीपपात्र—सोने-चाँदी के, शंख या सीप के, लोहे के, मिट्टी के, नारियल के तथा तृणराज (बाँस) के दीपक प्रशस्त होते हैं। इनमें से कोई भी सुन्दर और आकर्षक दीपपात्र का चयन करना चाहिये।।४६३।।

[दीपदानक्रमः]

दीपन्तु पद्मपर्यन्तमधो धूपं प्रकाशयेत्।।४६४।।

दीपन्त्विति। पद्मपर्यन्तमिति दृष्टिपर्यन्तमित्यर्थः। दीपे विशेषमाह गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

दीपमाला प्रकर्तव्या नैकदीपः कदाचन।
त्रयो दीपाः प्रदातव्याः पञ्च वा परमेश्वरि।
इतो न्यूनं न दातव्यं त्रिपुरायै कदाचन। इति।

दीपक को देवता के नेत्रपर्यन्त और धूप को देवता के अधोभाग में घुमाना चाहिए।।४६४।।

[माल्यदाने प्रार्थनामन्त्रः]

कमलोत्पलकह्लारकरवीरादियोगतः ।
सुरभीणि सुगन्धीनि माल्यान्यावेदयाम्यहम्।।४६५।।

कमलेति। माल्यदानफलमाह गन्धर्वतन्त्रे चतुर्दशपटले—

एतेषां पुष्पजातानां येन केन विनिर्मिताम्।
मालां कृत्वा महादेव्यै यत् फलं लभते नरः।
अपि वक्त्रसहस्रैस्तु वक्तुं नालं ततः प्रभुः। इति।

अत्रैतेषामित्यनेन पूर्वोपदर्शितानि विहितपुष्पाण्यभिहितानि।

हे माते! कमल, उत्पल, कल्हार एवं करवीर आदि पुष्पों को गूँथकर बनाई गई ये सुगन्धित मालायें आपको समर्पित कर रहा हूँ। कृपया इन्हें ग्रहण करें।।४६५।।

[मधुरद्रव्यदानन्तर्पणञ्च]

प्रदद्यान्मधुरं द्रव्यं परमानन्दमानसः।।४६६।।
तर्पयेन्मधुरैर्द्रव्यैरमृतैर्मधुमिश्रितैः ।
अमृतश्चामृतद्रव्यैस्तर्पयेत् परदेवताम्।।४६७।।

मधुर पदार्थों को मधु मिश्रित करके उससे अथवा अमृत के समान मधुर द्रव्यों से देवी का तर्पण करें। मन को आनन्द देने वाले रुचिकर और मीठी चीजें भगवती को समर्पित करें।।४६६-४६७।।

[चरुपाकोपदेशः]

ततश्च संस्कृते वह्नौ गोक्षीरचरुकं पचेत्।

[चरुपाकक्रमः]

अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्रमयादिके।।४६८।।
तण्डुलाञ् शालिसम्भूतान् मूल मन्त्राभिमन्त्रितान्।
प्रसृतीः पञ्चदशभिर्निक्षिप्यास्त्रमनुं स्मरन्।।४६९।।
पिधाय पात्रवदनं प्रक्षाल्य कवचानुना।
प्राङ्मुखो मूल मन्त्रेण साधकेन्द्रश्चरुं पचेत्।।४७०।।

ततश्चेति। संस्कृत इति अष्टमप्रकाशोक्तक्रमेणेति शेषः। चरुपाकपरिपाटीमाह—**अस्त्रेणेत्यादिना।** अस्त्रेण फडित्यनेन। शालिसम्भूतान् हैमन्तिकधान्यभवान्, पञ्चदशमुष्टिपरिमितान् ताम्रनिर्मितचरुस्थाल्यां निक्षिपेदित्यर्थः। **अस्त्रमनुमिति।** तथाच फट् इति चरुस्थालीमुखमाच्छाद्य कवचानुना हुँ इति मन्त्रेण प्रक्षाल्य चरुं पचेदिति सम्बन्धः।

चरु पकाने की विधि—अष्टम प्रकाश में बताई गई विधि के अनुसार संस्कृत की गई आग पर चरु (खीर) पकाई जाती है। एतदर्थ सबसे पहिले ताँबे आदि का नया पात्र लें। उसे 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए धोयें। पन्द्रह मुट्ठी अगहनी चावल लेकर कवचमन्त्र (हुं) का जप करते हुए धोयें। उस चावल को मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करें और उसे ताँबे के उक्त बर्तन में डाल दें। उस बर्तन को उक्त संस्कृत आग पर चढ़ा दें। कवचमन्त्र से धोये गये ढक्कन से उक्त पात्र को ढाँक दें। पूर्व की ओर मुँह करके मूल मन्त्र का जप करते हुए पकायें।।४६८-४७०।।

श्रुवेणाऽऽज्येन संस्विन्ने दद्यात्तत्राभिधारणम्।

[चरोरवतारणम्]

मूल मन्त्रेण तत् पात्रं कवचेनावतारयेत्।।४७१।।
अस्त्रजप्ते कुशास्तीर्णे मण्डपे विधिवद् गुरुः।

कवचेनेति। हुँ इत्यवतारयेदित्यर्थः।

जब वह चरु पक जाय, मूल मन्त्र का जप करते हुए उसमें स्रुवा से घी डालें। मण्डप में यथाविधि बिछाये गये कुशों पर उक्त चरुपात्र को कवच (हुं) का जप करते हुए उतार कर रख दें।।४७१।।

[चरुविभागः]

तं विभज्यैकभागन्तु देवतायै प्रकल्पयेत्।।४७२।।
अन्यदग्नौ प्रजुहुयादपरं बलिमुत्तमम्।
एकन्तु चरुकं प्रोक्तमारात्रिकविधावपि।।४७३।।

एवंक्रमेण चरोः पाकमभिधाय तस्य चतुर्धा विभजनमाह—**तमित्यादिना**। तं चरुं चतुर्धा विभज्य एकं देवतायै समर्प्य द्वितीयमग्नौ जुहुयात्, अपरेण बलिं दद्यात्, चरुमन्यमारात्रिकविधौ प्रयुञ्जीतेत्यर्थः।

उस चरु के चार भाग करें। इसमें से एक भाग देवता के लिये है। एक भाग हवन के लिये, एक भाग बलि के लिये तथा एक भाग आरती में प्रयोग के लिये है।।४७२-४७३।।

[आरात्रिकम्, तत्राष्टदलपद्मनिर्माणम्]

ततस्तु काञ्चने स्थाने रौप्ये वा कांस्यनिर्मिते।
वसुपत्रसमायुक्तं कुङ्कुमेन तु नीरजम्।।४७४।।

अथाऽऽरात्रिकविधिमाह—**ततस्त्वित्यादिना**। काञ्चनाद्यन्यतमनिर्मिते स्थाने आधारे कुङ्कुमेनाष्टदलं नीरजं पद्मं विदधीतेत्यर्थः।

सोने की, चाँदी की अथवा काँसे की बड़ी थाली में कुंकुम से अष्टदल कमल बनायें।।४७४।।

[तत्रौदनस्य नवभागकल्पनम्]

शुद्धौदनं परिष्कृत्य नवभागं प्रकल्पयेत्।
नवकोणकरूपञ्च चक्ररूपं विचिन्तयेत्।।४७५।।

ततः शुद्धौदनं नवभागं कुर्यात्। **नवेति**। अष्टौ दलानि कर्णिकाञ्चाऽऽदाय नवसंख्याकत्वं बोध्यम्।

आरती के लिये जो एक चौथाई चरु रखा गया है, उससे नौ गोले बनायें।।४७५।।

[अष्टदलेषु शुद्धौदनस्थापनम्]

शर्करायवगोधूमचणकैः परिमण्डितम्।
तण्डुलाज्यतिलैर्युक्तं वसुपत्रे विनिक्षिपेत्।।४७६।।

[नवमभागस्य कर्णिकायां स्थापनम्, नवमुद्राप्रदर्शनम्]

एकं मध्ये तु संस्थाप्य नव मुद्राः प्रदर्शयेत्।
स्थापयेत्तत्र मन्त्रज्ञो नव दीपान् घृतप्लुतान्।।४७७।

निरुक्ताष्टदले प्रागुक्तशुद्धौदनस्थापनमाह—**शर्करेति**। शर्करादिभिर्युक्तं तत् शुद्धौदनं वसुपत्रे निरुक्तपद्मस्य पत्राष्टके निवेशयेत्। **एकमिति**। भागमेकं मध्ये कर्णिकायां स्थापयेत्। प्रागुक्तशुद्धौदनस्य नवभागानामष्टौ भागानष्टसु दलेषु, अवशिष्टं नवमं भागं कर्णिकायां स्थापयेदित्यर्थः। नव मुद्रा इति प्रागुक्ताः सर्वाकर्षिण्यादिकाः।

तत्र दीपस्थापनमाह—**स्थापयेदित्यादिना**। नव दीपान् शुद्धौदनक्रमेणाष्टदलेषु कर्णिकायाञ्चेत्यर्थः।

इनमें से प्रत्येक गोले में जौ, गेहूँ, चना, चावल का आटा (चूर्ण), शक्कर, घी और तिल डाल कर उसे अच्छी तरह गूँथकर सुन्दर दिखाई देने वाले गोले बनायें। इन ९ गोलों में से ८ गोलों को थाली में कुंकुम से बनाये गये अष्ट कमलदलों पर तथा ९वें गोले को कमलदल के बीच में रखकर दबा दें। ऐसा करने से ये गोले थाली से चिपक जायेंगे। अब इसके बाद इनमें से प्रत्येक गोले पर घी से भरा हुआ एक-एक अर्थात् कुल मिलाकर ९ दीपक रखें। इन दीपों को प्रज्ज्वलित करके संक्षोभिणी आदि ९ मुद्रायें दिखायें।।४७६-४७७।।

[पद्मे पूजनम्]

पञ्चरत्नं प्रेतबीजं समुच्चार्य प्रपूजयेत्।
मूल मन्त्रेण सम्पूज्य पाणिभ्यां धारयेद् यथा।।४७८।।

अथ सदीपस्य पात्रस्य पूजनमाह—पञ्चरत्नमिति। आदौ पञ्चरत्नं ततो ह्साविति प्रेतबीजम्। पञ्चरत्नं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं ल्लूं इति बीजपञ्चकम्। बीजानामेतेषामादौ श्रीं ह्रीमिति बीजद्वयमन्ते च तद्विलोमेन ह्रीं श्रीमिति बीजद्वयं समष्ट्या नवाक्षरो रत्नेशीमन्त्रो भवति। अत्र पञ्चरत्नमित्युक्तावपि ज्ञानार्णवादौ रत्नेशीमन्त्रेण दीपपात्रार्चोपदेशदर्शनादत्रापि तदभिप्रायेणैव पञ्चरत्नमित्युक्तमिति प्रतिभाति। व्यक्तमाह तन्त्रसारधृतज्ञानार्णवे—

आरात्रिकमतः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्धये।
सौवर्णे राजते कांस्ये स्थानके परमेश्वरि।।
कुङ्कुमेन लिखेद् यन्त्रं नवकोणं मनोहरम्।
चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा तन्मध्ये मस्तके शिवे।।
दीपमेकं विनिक्षिप्य वसुकोणेऽष्टदीपकान्।
यवगोधूममुद्गादिरचितान् शर्करायुतान्।
चणकाहितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान्।।
अभिमन्त्र्य महेशानि रत्नेश्वर्यास्ततः परम्।।
श्रीबीजञ्च पराबीजं संलिख्य वरवर्णिनि।
गसौ च मपलाः पश्चादिन्द्रस्थाः क्रमतः प्रिये।
वामकर्णसमायुक्ता नादबिन्दुविभूषिताः।
बीजपञ्चकमेतत्तु पञ्चरत्नानि सुन्दरि।
पूर्वबीजविलोमेन रत्नेशीयं नवाक्षरी।। इति।

एवञ्चाऽऽदौ श्रीं ह्रीमिति श्रीपराबीजयोरन्ते च ह्रीं श्रीमिति विलोमेन पठितयोस्तयोर्निवेशेन श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं ल्लूं ह्रीं श्रीं इति नवाक्षरो रत्नेशीमन्त्रो भवति। **मूलमन्त्रेणेति**। पञ्चरत्नेन प्रेतबीजेन मूलेन चाभ्यर्च्येत्यर्थः। अत एव तन्त्रसारकारैरपि रत्नेशीमन्त्रमभिधाय इति मन्त्रेण मूलेन चार्भ्यर्च्येत्युक्तम्।

इसके बाद पञ्चरत्न मन्त्रों अर्थात् रत्नेशी मन्त्र, प्रेतबीज और मूल मन्त्र से इस दीपस्थाली का पूजन करें।

रत्नेशी मन्त्र—'ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं ल्लूं' ये पाँच बीज हैं। इनके आदि में 'श्रीं ह्रीं' और अन्त में विलोमक्रम से 'श्रीं ह्रीं' को योजना करने से नवाक्षरी रत्नेशी मन्त्र निष्पन्न होता है। यथा—श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं ल्लूं ह्रीं श्रीं। प्रेतबीज 'हसौः'। नवाक्षरी रत्नेशी मन्त्र के बाद प्रेतबीज (ह्सौः) और इसके बाद मूल मन्त्र की योजना करने से आरती दीपों का पूजन मन्त्र बनता है।

[दीपपात्रस्य भ्रामणम्]

मस्तकान्तं समानीय नवधा भ्रामयेद् बुधः।
मूल मन्त्रान्तमन्त्रेण ततो नीराजनं चरेत्।।४७९।।

मस्तकान्तमिति। स्पष्टम्। मूलमन्त्रान्तमन्त्रेण आदौ मूलमुच्चार्य वक्ष्यमाण-मन्त्रेणेत्यर्थः।

आरती दीपों की पूजा करने के बाद थाली को दोनों हाथों से उठाकर 'आरती मन्त्र' का जप करते हुए देवी के समक्ष पैर से मस्तक पर्यन्त ९ बार घुमायें।।४७९।।

[आरात्रिकमन्त्रः]

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके।
आरात्रिकमिमं देवि गृहाण मम सिद्धये।।४८०।।

मूल मन्त्र के बाद 'समस्तचकचक्रेशी .... सिद्धये' की योजना करने से आरती मन्त्र बनता है।।४८०।।

[मुद्रादर्शनम्]

यथोक्तस्थाने संस्थाप्य चक्रमुद्राञ्च दर्शयेत्।।४८१।।

चक्रमुद्रामिति। तदुक्तं तन्त्रसारे—

आरात्रिके महेशानि चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति।

आरती के थाल को यथास्थान रखकर चक्रमुद्रा दिखायें। चक्रमुद्रा का लक्षण आगे बताया गया है।।४८१।।

[चक्रमुद्रा]

दक्षिणेतरहस्तस्य वृद्धागर्भकनिष्ठिकाम्।
दक्षिणे योजयित्वा तु कनिष्ठागर्भके ततः।।४८२।।
वामे च दक्षिणाङ्गुष्ठं साधको विनियोजयेत्।
अन्योन्ययोगतश्चैव चक्रमुद्रा समीरिता।।४८३।।

चक्रमुद्रा—दाँयें हाथ की कनिष्ठा को बाँयें हाथ के अंगूठे से और बाँयें हाथ की कनिष्ठा को दाहिने हाथ के अंगूठे से दबायें। दोनों हाथों की शेष अंगुलियों को सीधा रखें। उन्हें परस्पर नहीं जोड़ें। यह चक्रमुद्रा है।।४८२-४८३।।

[नैवेद्यार्पणम्]

तत आरात्रिकं वीक्ष्य नैवेद्यानि प्रकल्पयेत्।।४८४।।

नैवेद्य-अर्पण—भगवती की आरती करने के पश्चात् नैवेद्य समर्पित करें।

[नैवेद्यपात्राणि]

तैजसेषु च पात्रेषु प्रस्तरे वा द्रुपत्रके।
यज्ञदारुमये वाऽपि नैवेद्यं कल्पयेद् बुधः।।४८५।।
सर्वालाभे तु माहेये स्वहस्तघटिते यदि।।४८६।।

तैजसेष्विति। माहेये मृत्पात्रे। त्रिपुरापूजायां प्रशस्तानि नैवेद्यपात्रान्तराण्याह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चदशपटले—

सौवर्णे राजते वाऽपि ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्यं त्रिपुराप्रियम्।। इति।

नैवेद्य-पात्र—सोना-चाँदी के बर्तन में, पत्थर के पात्र में, दोने में, यज्ञोपयोगी लकड़ी के पात्र में भगवती को नैवेद्य अर्पित करें। यदि इन पात्रों का अभाव हो तो अपने हाथ से बनाये गये मिट्टी के पात्र में नैवेद्य प्रस्तुत किया जाय।।४८५-४८६।।

[अर्घ्येतरपात्रीयतोयैर्नैवेद्योत्सर्गनिषेध:]

अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि।।४८७।।

जल—नैवेद्य-क्रम में भगवती केवल अर्घ्यपात्र का ही जल स्वीकार करती हैं। कितनी भी मिन्नत करने पर भी वे अन्य जल ग्रहण नहीं करती। अत: उन्हें नैवेद्य के साथ केवल अर्घ्योदक दिया जाय।।४८५-४८६।।

[नैवेद्यम्]

नैवेद्यं सघृतं शुभ्रं घृतव्यञ्जनसंयुतम्।
मत्स्यमांसं मुद्गसूपं मरीचादिसुसंस्कृतम्।।४८८।।
शर्करापूपभरितं मधुदुग्धगुडान्वितम्।
षड्रसेन समायुक्तं पायसं मधुसंयुतम्।।४८९।।
नानाविधानि द्रव्याणि फलानि विविधानि च।
मनःप्रियाणि द्रव्याणि कृत्वा साधकसत्तमः।।४९०।।

नैवेद्य-व्यञ्जन—शुद्ध घी से पकाये गये व्यञ्जन, मत्स्य-मांस, हींग, जीरा, अदरख आदि से बघारी गई मूँग की दाल का सूप, पूड़ी, मीठा मालपुआ, शहद, दूध, गुड़, पायस, षड्रसयुक्त अनेक प्रकार के चर्व्य, चोष्य, लेह्य व्यञ्जन तथा विविध प्रकार के फल नैवेद्य के रूप में देवी को समर्पित करें।।४८७-४९०।।

[तत्स्थापनार्हं मण्डलम्, तत्राऽऽधारशक्त्यर्चनञ्च]

दक्षिणे वा पुरोभागे वामे वा मण्डलं लिखेत्।
त्रिकोणवृत्तभूबिम्बमाधारशक्तिमर्चितम् ।।४९१।।

अत्र नैवेद्यस्थापनमाह—दक्षिण इति।

नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः।

इति गन्धर्वतन्त्रचतुर्दशपटलवचनेन देव्या दक्षिणे वामेऽग्रतो वा नैवेद्यस्थापनोपदेशात्। अत्र मण्डलनिर्माणमपि तत्र तत्रोक्तम्। एतेन नैवेद्यस्थापनस्थानमप्यर्थादायातम्। न च दक्षिणे वा पुरोभाग इत्यत्र कस्येति विशेषानतिदेशात् आत्मनो दक्षिणादिषु नैवेद्यस्थापन-मनेनोपदिष्टमिति वाच्यम्—

दीपं दक्षिणतो देव्याः पुरतो वा न वामतः।
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणम्।

इत्यनन्तरं नैवेद्यं दक्षिणे वामे इत्यादि प्रागुपदर्शितगन्धर्ववचनदर्शनात् देव्या एव दक्षिणादिषु नैवेद्यस्थापनं न त्वात्मन इति बोध्यम्। अत एव तन्त्रसारकारैरपि वाम-दक्षिणभागस्तु देवताया एव, न तु साधकस्य—

धूपदीपौ सुभोज्यञ्च देवताग्रे निवेदयेत्।

इति दर्शनादित्युक्तम्। तथा—

दद्यादयोग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम्।

इति गन्धर्ववचनदर्शनाद् द्रव्यप्राचुर्यादिवशात् स्थानाभावेन वामदक्षिणयोः स्थापयितुमयोग्यमेव नैवेद्यादिकं पुरतः स्थाप्यम्। स्थानसद्भावे तु वामदक्षिणयोरेवेत्युक्तं भवति। पक्वामान्नयोर्विशेषमाह तन्त्रसारे—

पक्वञ्च देवतावामे आमान्नञ्चैव दक्षिणे। इति।

पुरतः स्थापनन्तु नियमविरुद्धम्।

पुरतो नियमो नास्ति दीपनैवेद्ययोः क्वचित्।

इति तन्त्रसारधृतयामलवचनात्। यत्तु हरतत्त्वदीधितिकारैः—

दक्षिणे च सितावर्त्तिर्वामतो रक्तवर्त्तिकाम्।
पक्वापक्वविभागेन नैवेद्यस्यापि तत्स्थितिः।।

इति तन्त्रसारधृतयामलवचनेन पक्वान्नस्य दक्षिणत आमान्नस्य वामतश्च स्थापनं प्रतिपादितम्, तत् 'पक्वञ्च देवतावाम' इति पूर्वोपदर्शितवचनविरोधात् कुव्याख्यान-विजृम्भितम्। पक्वापक्वविभागेनेत्यत्र अपक्वञ्च पक्वञ्चेति द्वन्द्वेऽल्पस्वरत्वात् पक्वपदस्य पूर्वनिपातेन अपक्वस्य दक्षिणतः पक्वस्य वामतः स्थितिरित्यर्थे न विरोध इति सर्वं निर्विवादम्। एवञ्च—

दक्षिणन्तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत्।
अभोज्यं तत्र भवेदन्नं पानीयन्तु सुरोपमम्।।

इत्यपि न पक्वान्नविषयम्। दक्षिणन्तु परित्यज्येत्यनेन एकनैवेद्यस्थले दक्षिणत्यागपूर्वकं वामतः स्थापनं प्रतिषिध्यते, बहुनैवेद्यस्थले तु दक्षिणतः स्थानालाभे वामतः स्थापनेऽपि न दोषः। न तु दक्षिणन्तु परित्यज्येति वचनस्य पक्वान्नविषयत्वे किमपि मानमस्ति, तन्त्रसारकारैरपि नास्य वचनस्य पक्वान्नविषयत्वमुक्तम्। पुरश्चरणचन्द्रिकायां वचनमिदं साम्प्रदायिकत्वेन व्याख्यातम्।

नैवेद्य पात्र की स्थापना के लिये साधक देवी के आगे, दक्षिण या वामभाग में भूमि पर त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्रयुक्त मण्डल बनाये। इस मण्डल पर आधारशक्ति का पूजन करके तिपाई आदि आधार रखे आधार पर अग्नि-मण्डल का पूजन करे।।४९१।।

[नैवेद्यस्थापनं प्रोक्षणादि संस्कराश्च]

नैवेद्यं तत्र संस्थाप्य प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः।
कवचाख्येन संरक्ष्य वायुबीजेन शोधयेत्।।४९२।।
वह्निबीजेन संदह्य वारुणेनामृतं चरेत्।

नैवेद्यनिवेदनक्रममाह—**नैवेद्यमित्यादिना।** अस्त्रमन्त्रतः फडिति मन्त्रेण। **कवचाख्येन** हूं इति मन्त्रेण। वायुबीजेन यमित्यनेन। वह्निबीजेन रमित्यनेन। वारुणेन वमिति वरुणबीजेन।

इस आधार पर विविध प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त नैवेद्य पात्र रखें। अस्त्रमन्त्र (फट्) से नैवेद्य का प्रोक्षण करके कवच मन्त्र (हुम्) से संरक्षण, वायु-बीज (यं) से शोधन, अग्निबीज (रं) से दोषों का दहन तथा वरुणबीज (वं) से अमृतीकरण करें।।४९२।।

[नैवेद्यार्चना]

पुष्पं दत्त्वा तत्र मन्त्रं सप्तधा प्रजपेन्निजम्।।४९३।।

पुष्पं दत्त्वेति। पुष्पेण नैवेद्यमभ्यर्च्येत्यर्थः। मन्त्रं मूल मन्त्रम्। गन्धर्वतन्त्रे तु—

निराच्छादं समालोक्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
वायुबीजेन संशोध्य सन्दहेद् वह्निना तथा।।
वारुणेन स्वधावृत्त्या प्लावयेद्धेनुमुद्रया।
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य मूलेनैवाभिषिच्य तु।।
मूलदेव्याः स्वनामान्ते नैवेद्यमिति चोच्चरेत्।
गृहाण वह्निजायान्तो नैवेद्यमनुरीरितः।।

अन्नं चतुर्विधं देवि रसैः षड्भिः समन्वितम्।
मया निवेदितं भक्त्या तदिदं प्रतिगृह्यताम्।।
लेह्यचोष्यानुपानादिभक्ष्यभोज्यानि यानि च।
मयाहृतानि यत्नेन कृपया देवि भुज्यताम्।।

इत्येवं नैवेद्यप्रदानक्रम उक्तः।

पुष्प आदि से उसका पूजन करके साधक अपने मन्त्र का सात बार जप करके उसे अभिमन्त्रित करे।।४९३।।

बाँयें हाथ से ग्रासमुद्रा दिखाते हुए दाहिने हाथ में जलपात्र लेकर निम्नलिखित मन्त्र का जप करते हुए नैवेद्य समर्पण करें—

[निवेदनप्रकारः]

हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि।।४९४।।
सर्वोपकरणादीनि मूलान्तेन निवेदयेत्।

[नैवेद्यालाभे व्यवस्था]

अशक्तौ मनसा दद्यादेतत् कर्म न लोपयेत्।।४९५।।

मूल-मन्त्र—नैवेद्य आदि सभी उपचार-समर्पण मन्त्रों के आगे मूल मन्त्र की योजना अवश्यमेव करनी चाहिए। यदि देवी को समर्पित करने के लिये कोई भी नैवेद्य उपलब्ध न हो तो मन से नैवेद्य की कल्पना करके नैवेद्य-समर्पण किया जाय। तात्पर्य यह कि पूजा में नैवेद्य-समर्पण कर्म का लोप नहीं होना चाहिए।।४९४-४९५।।

[देव्यै चुल्लुकदानं मुद्राप्रदर्शोपदेशश्च]

चुल्लुकं मनसा दत्त्वा पञ्च मुद्राः प्रदर्शयेत्।।४९६।।

नैवेद्य-समर्पण के बाद भगवती को एक चुल्लू पानी मानसिक रूप से देकर प्राण आदि पाँच मुद्रायें दिखायें।।४९६।।

[प्राणादिपञ्चमुद्रामन्त्राः]

प्राणापानौ तथा व्यान उदानाख्यः समानकः।
चतुर्थ्यन्तोऽग्निजायान्तो मुद्रामन्त्रो ध्रुवादिकः।।४९७।।

[तत्र प्राणमुद्रा]

वृद्धानामाकनिष्ठाभिः प्राणमुद्रा समीरिता।

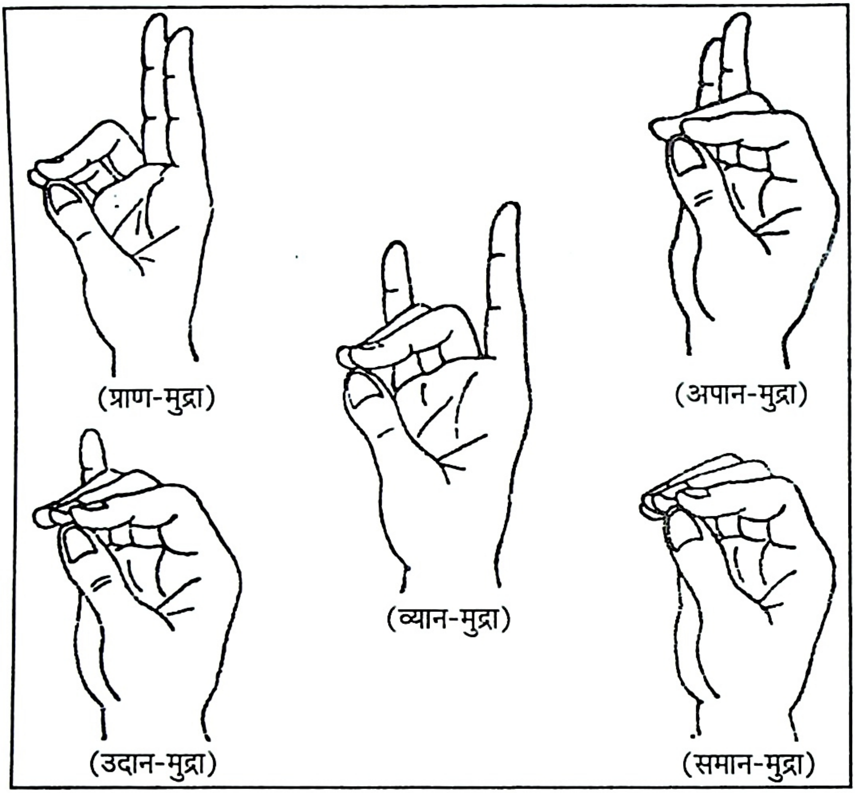
(प्राण-मुद्रा)
(अपान-मुद्रा)
(व्यान-मुद्रा)
(उदान-मुद्रा)
(समान-मुद्रा)

[अपानमुद्रा]

वृद्धामध्यातर्जनीभिरपानस्य प्रकीर्त्तिता।।४९८।।

[व्यानमुद्रा]

वृद्धानामामध्यमाभिर्व्यानमुद्रा समीरिता।

[उदानमुद्रा]

कनिष्ठावर्जं सर्वाभिरुदानस्य प्रकीर्त्तिता।।४९९।।

[समानमुद्रा]

समानमुद्रा सर्वाभिरङ्गुलीभिरुदीरिता।

[ग्रासमुद्रा]

वामहस्ते ग्रासमुद्रा विकचोत्पलसन्निभा।।५००।।

चुल्लुकमित्यादि स्पष्टम्। अत्र विशेषमाह गन्धर्वतन्त्रे पञ्चदशपटले—

जातीलवङ्गकक्कोलवासितं वर्धनीजलम्।
मुखवासकरं पुण्यं गृहीत्वाचम सुन्दरि।।

मूल मन्त्रेण देवेशि हुनेत् पञ्चाऽऽहुतीः क्रमात्।
प्राणापाणौ तथा व्यानमुदानञ्च समानकम्।।
एतत्स्वरूपं जानीयादाहुतीनाञ्च पञ्चकम्।
पञ्चाङ्गुलीभिरेव स्यात् क्रमात् पञ्चाऽऽहुतीः प्रिये।। इति।

ये पाँच मुद्रायें हैं—(१) प्राण, (२) अपान, (३) व्यान, (४) उदान और (५) समान। प्रणव (ॐ) के बाद प्राण आदि का चतुर्थ्यन्त नाम; यथा—'प्राणाय' और इसके बाद 'स्वाहा' की योजना करने से पञ्चप्राण मन्त्र बनते हैं। यथा—'ॐ प्राणाय स्वाहा।' मुद्राओं के लक्षण निम्नानुसार हैं—

(१) प्राण-मुद्रा — अंगुष्ठ, अनामा और कनिष्ठा को जोड़ने से प्राण-मुद्रा बनती है। मन्त्र—ॐ प्राणाय स्वाहा।

(२) अपान-मुद्रा— अंगूठा, मध्यमा और तर्जनी से अपान मुद्रा बनती है। मन्त्र—ॐ अपानाय स्वाहा।

(३) व्यान-मुद्रा — अंगूठा, मध्यमा और अनामा से व्यान मुद्रा बनती है। मन्त्र—ॐ व्यानाय स्वाहा।

(४) उदान-मुद्रा — कनिष्ठा को छोड़कर अन्य सभी अंगुलियों को जोड़ने से उदान मुद्रा बनती है। मन्त्र—ॐ उदानाय नमः।

(५) समान-मुद्रा— सभी अंगुलियों को जोड़ने से समान मुद्रा बनती है। मन्त्र—ॐ समानाय स्वाहा।

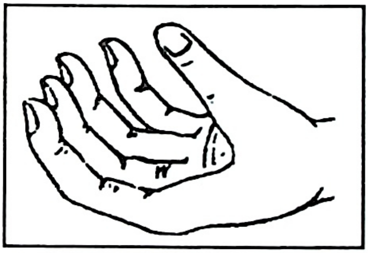

ग्रास-मुद्रा—बाँयें हाथ की अंगुलियों को अधखिले कमल की तरह करने पर 'ग्रास' मुद्रा बनती है।।४९७-५००।।

[पानीयदानम्]

सुवासितजलं दद्यात् स्वर्णरौप्यादिभाजते।

नैवेद्य-समर्पण करने के बाद सोने या चाँदी के पात्र में भगवती को पीने के लिये जल प्रदान करें।

[पुनर्गण्डूषदानं ताम्बूलदानञ्च]

पुनश्च चुल्लुकं दत्त्वा दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम्।।५०१।।

पुनश्चेति। अत्र गन्धर्वतन्त्रोक्तः प्रकारः—

पुनराचमनं दत्त्वा मुखवासं निवेदयेत्।
ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूरादिसुवासितम्।
संस्कृत्य विविधैर्द्रव्यैर्गन्धवद्भिर्निवेदयेत्।। इति।

आचमन के लिये एक चुल्लू पानी देने के बाद उन्हें ताम्बूल (पात्र) प्रदान करें।।५०१।।

विमर्श—जल देने का सामान्य-क्रम यह है—(१) मूल मन्त्र—एतत् पानीयं अमुक देवतायै समर्पयामि। (२) मूल मन्त्र—एतत् आचमनीयं अमुकदेवतायै समर्पयामि। (३) मूल मन्त्र—गण्डूषार्थं एतत् जलं अमुकदेवतायै समर्पयामि। (४) मूल मन्त्र—करोद्वर्तनाय एतत् चन्दनचर्चितजलं अमुकदेवतायै समर्पयामि। इस नैवेद्य कर्म में केवल सामान्य अर्घ्य का सुवासित शीतल जल ही दिया जाता है। किसी अन्य जल को देवी स्वीकार नहीं करतीं।

[ताम्बूलदाने मन्त्रः]

एलालवङ्गकर्पूरजातीफलसमन्वितम् ।
तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम् ।
संशोधितं सुगन्धञ्च ताम्बूलमनुसंददे।।५०२।।

यह ताम्बूल (पात्र) समर्पण का मन्त्र है। भाव यह है कि हे माते! नैवेद्य के उपरान्त मुख-शुद्धि के लिये मैं आपको इलायची, लौंग, कत्था, सुपारी से समन्वित तथा कपूर से सुवासित पान का बीड़ा समर्पित कर रहा हूँ। कृपया इसे स्वीकार करें।।५०२।।

विमर्श—'श्रीवनस्पतिदेवाय नमः' इस मन्त्र से सामान्य अर्घ्य के जल से प्रोक्षित ताम्बूलवीटिका (बीड़ा) बाँयें हाथ की तत्त्वमुद्रा से समर्पित की जाती है। भगवती त्रिपुरा को पान अत्यन्त प्रिय हैं, इसीलिये उन्हें 'ताम्बूलपूरितानना' कहा जाता है। ताम्बूल-दान के बिना गृहस्थ साधक की पूजा अधूरी रहती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जो एक तत्त्वान्वेषी समर्थ समालोचक होने के साथ ही बहुश्रुत तन्त्रविद् भी थे, उन्होंने अपने सांस्कृतिक उपन्यास 'चारु चन्द्रलेख' (अध्याय-२१) में ताम्बूल-दान की पारमार्थिक व्याख्या करते हुए लिखा है—

ताम्बूल-महिमा—'यह है जो ताम्बूल है, वह शिव और शक्ति का युक्त प्रत्यक्ष विग्रह है।' इसका त्रिकोणाकार इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्ति-समन्वित त्रिकोण का प्रतिमान है। पान के पत्ते में जो त्रिकोण दिखाई देता है, वह मानसिक जगत् का एक छोटा-सा प्रतिमान है। यह उस शक्ति का प्रतीक है, जिसने स्थूल जगत् में नारी कलेवर धारण किया। और जो यह पूगीफल है, जो नीचे से दीर्घ और ऊपर सूक्ष्म होता है, वह शिवतत्त्व है। जब क्रिया और इच्छा दोनों ज्ञान की ओर बढ़ने

लगती हैं तो नर-नारी के पिण्ड में—इस स्थूल काया में चिन्मय शिवतत्त्व की ज्योति जगती है। शिव और शक्ति की इसी लीला को शक्तिसाधक अधोमुख और ऊर्ध्वमुख त्रिकोण में अंकित श्रीचक्र कहते हैं। ...... यह ताम्बूल ही गृहस्थ का श्रीचक्र है। इसमें शिवशक्ति का लीला-विलास ही नहीं; उनका तेज भी विन्यस्त है। खदिरराग (कत्था) शक्ति का तेज है, सुधाचूर्ण (चूना) शिवतत्त्व का तेज है। अतः ताम्बूलवीटक गृहस्थ को भगवान् की आदि सिसृक्षा और समस्त जगत् व्यापी तेजोयोग का स्मरण तो दिलाता ही है, संसार में रहते हुए संसारचक्र से मुक्त होने के उपाय का भी स्मरण दिलाता है। इसीलिये शास्त्रकार इसे गृहस्थ के लिये परम मंगलमय मानते हैं। गृहस्थी की कोई पूजा इसके बिना सफल नहीं मानी जाती।'

[माल्यादिदानम्]

माल्यं जलञ्च विमलं शीतलञ्च सुवासितम्।
व्यजनं तालवृन्तञ्च स्वर्णदण्डञ्च चामरम्।
दर्पणञ्च ततो दद्यात् पुरतश्चन्द्रवानिशं(?)।।५०३।।

[नृत्यगीतादि]

नृत्यं गीतं शीतलञ्च कुर्याद् विभवपूर्वकम्।।५०४।।

[पुष्पाञ्जलिदानं तर्पणञ्च]

सुप्रसन्नां ततो ध्यात्वा सर्वाभरणसंयुताम्।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा तर्पयेत् परदेवताम्।।५०५।।

ताम्बूल के बाद भगवती को पुष्प-माला, शीतल सुवासित जल, ताड़ के पत्तों से बना पंखा, स्वर्णदण्ड, चामर तथा चन्द्रमा के समान स्वच्छ धवल दर्पण समर्पित करें। यथावैभव, यथासामर्थ्य नृत्य-गीत प्रस्तुत करके उन्हें प्रसन्न करें और यह मानकर कि इस पूजोपचार से भगवती संतुष्ट और प्रसन्न हो गई हैं, उन्हें तीन पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान करें।।५०३-५०५।।

[सपर्यात्रैविध्यम्]

सपर्या त्रिविधा प्रोक्ता पराख्या अपराभिधा।
परापरेति विख्याता ज्ञातव्या साधकोत्तमैः।।५०६।।

[परादीनां लक्षणम्]

परा तु बिन्दुपूजा स्यादपरा बाह्यतः क्रमात्।
परापरा व्यापिका च ज्ञातव्या गुरुवक्त्रतः।।५०७।।

अत्र पूजायास्त्रैविध्यं परादीनां लक्षणञ्चोक्तं सपर्येत्यादिना श्लोकद्वयेन। तत्रापि गुरुमुखादेव ज्ञातव्यमित्युक्तम् इति नात्र परादीनां व्याख्यानमावश्यकम् । तन्त्रसारे तु पूजायाः पञ्चविधत्वमुक्तम्; गौतमीये—

पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदाञ् शृणुष्व मे।
अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च।
इज्या पञ्चप्रकाराऽर्चा क्रमेण कथयामि ते।।
तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम्।
उपलेपननिर्माल्यदूरीकरणमेव च।।
उपादानं नामगन्धपुष्पादिचयनं तथा।
योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मत्वेनैव भावना।।
स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थसन्धानपूर्वको जपः।
सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च हरेः संकीर्तनं तथा।।
तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायः परिकीर्त्तितः।
इज्या नाम स्वदेवस्य पूजनन्तु यथार्थतः।।
इति पञ्चप्रकाराऽर्चा कथिता तव सुव्रत।
सार्ष्टिसामीप्यसालोक्यसायुज्यसारूप्यदा क्रमात् ।। इति।

सपर्या अर्थात् पूजा के तीन भेद हैं—(१) परा, (२) अपरा और (३) परापरा। बिन्दु पूजा परा पूजा है, बाह्य-पूजन अपरा पूजा है तथा परापरा पूजा देवता को सर्वव्यापक मानकर की जाने वाली व्यापक पूजा है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया और रहस्य गुरुमुख से जानना चाहिए।।५०६-५०७।

विमर्श—पूजा के विभिन्न प्रकार—तन्त्रग्रन्थों में 'पूजा' को बहुविध परिभाषित करते हुए उसके भेद-विभेद किये गये हैं। एक तन्त्र ग्रन्थ में पूजा को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'चञ्चल अवस्था में भी प्रमादरहित तन्मयता का नाम पूजा है।' चञ्चलता से यहाँ तात्पर्य सक्रियता और सजगता है। इस तन्मयता तक पहुँचने के तीन सोपान हैं—अपरा पूजा, परापरा पूजा और परा पूजा। इस ग्रन्थ के अनुसार गन्ध-पुष्प आदि बाह्य उपचारों से की जाने वाली पूजा अपरा पूजा है। मनो-अध्यात्म दृष्टि से यह प्रारम्भिक कोटि की पूजा है; क्योंकि इस पूजा में साधक के हृदय में द्वैतभावना की प्रबलता होती है और अद्वैतभाव बहुत क्षीण रहता है, जैसाकि आचार्य भास्कर राय ने भी लिखा है—

'अद्वैतमान सामान्याभावे तु अपरा'

बाह्य उपचारों से प्रतिदिन देवता का अर्चन करते-करते द्वैत भावना क्षीण होने लगती है और साधक दूसरी कोटि की पूजा में पहुँच जाता है, जिसे 'परापरा पूजा' कहते हैं। इस मध्यम सोपान में साधक क्षीयमाण द्वैत भावना को पूर्णरूपेण विलोपित करने का प्रयास करता है और उसके फलस्वरूप उसे यह महसूस होने लगता है कि समस्त बाह्य जगत् आभ्यन्तर चिन्मय में विलीन होता जा रहा है—

'बाह्यान्तरे धाम्न्यद्वये चिल्लयभावनामयी परापरात्मकता'।

साधक को बाह्य-पूजन के बजाय देवता के अंतरंग अर्चन में अधिक आनन्द आने लगता है, अन्तर्याग में तन्मयता बढ़ती जाती है।

'परापूजा' की अवस्था में द्वैत की अनुभूति शेष नहीं रह जाती। जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ बाह्य जगत् में अथवा अन्तः जगत् में सर्वत्र इन्द्रियों के व्यापार में चैतन्य ही अभिव्यक्त होता है—

यत्र यत्र मनो याति, बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यजते प्रभोः।।

इस अवस्था में जीव अपने परिच्छिन्न स्वरूप से ऊपर उठकर स्वयं अपरिच्छिन्न शिव-स्वरूप हो जाता है।

'तन्त्रसार' में यथा उद्धृत 'गौतमीयतन्त्र' के अनुसार पूजा के पाँच भेद हैं—(१) अभिगमन, (२) उपादान, (३) योग, (४) स्वाध्याय और (५) इज्या। देवता के पूजास्थान का मार्जन और निर्माल्य आदि को हटाना 'अभिगमन' है। पूजा के लिये पुष्प-गन्ध-नैवेद्य आदि उपचार जुटाना 'उपादान' है। मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए जप करना, स्तोत्र-कवच आदि का पाठ करना 'स्वाध्याय' है। देवता को अपनी आत्मा से सर्वथा अभिन्न मानना 'योग' है। देवता की यथार्थ पूजा करना 'इज्या' है।

आचार्य राघव भट्ट ने (शारदातिलक ८/१०९ की व्याख्या) पूजा के उत्तम-मध्यम और अधम भेद बनाकर कहा है कि अधिकारी और निमित्तभेद से उसके सैकड़ों भेद हो जाते हैं।

[पुनः प्राणायामः कामकलास्मरणञ्च]

प्राणायामं पुनः कृत्वा स्मरेत् कामकलां बुधः।
मुखं बिन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम्।।५०८।।
तदधः सपरार्धन्तु चिन्तयेत्तदधो मुखम्।
मुखबिन्दुर्भवेत् सूर्यो दहनेन्दू स्तनावुभौ।।५०९।।
योनिर्हार्दकला ज्ञेया मुखबिन्दोः समुत्थिता।
नासाद्यङ्गस्तनद्वन्द्वाद् बाहुयोनेः पदद्वयम्।।५१०।।

कामकला का ध्यान—विचक्षण साधक पुनः प्राणायाम करके भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के 'कामकला' क्रम का चिन्तन करते हुए ध्यान करे। बिन्दु और विसर्ग, प्रकाश और विमर्श अर्थात् शिव और शक्ति के सम्मिलन से निर्मित त्रिकोण के तीनों बिन्दुओं और मध्यवर्ती महाबिन्दु के मिलने से 'कामकला' के विग्रह का

आविर्भाव होता है। हार्ध कला-सहित कामकला त्रिबिन्दुमयी है। मिश्र बिन्दु कामकला का मुख तथा श्वेत एवं रक्त बिन्दु दोनों स्तन हैं। हार्धकला योनि है। ध्यान के समय साधक यह भावना करे कि सूर्य (मिश्र बिन्दु) कामकला का मुख तथा अग्नि (रक्त) तथा सोम (श्वेत) बिन्दु उसके दो स्तन हैं। हार्थ कला योनिरूपा है। मुख बिन्दु से नासिका आदि अंगों का, दोनों स्तनों से दोनों बाहुओं का तथा योनि से दोनों पैरों का आविर्भाव हुआ है।।५०८-५१०।।

[आत्मनः कामकलाभेदचिन्ता]

एवं कामकलारूपमात्मानं चिन्तयेत् सदा।।५११।।
मेढ्रस्थाने शिखाकारमाधारे कनकप्रभम्।
नाभिस्थं सूर्यविम्बाभं तरुणादित्यवर्चसम्।।५१२।।
हृदि वह्निशिखाकारं तदूर्ध्वे भास्करद्युतिम्।
कण्ठे दीपशिखाकारं घण्टावैदूर्यसन्निभम्।।५१३।।
लम्बिके चन्द्रविम्बाभं भ्रूमध्ये रत्नवद्रुचिः।
नवमे विश्वतेजश्च चिन्तयेदेषु साधकः।।५१४।।

लम्बिके इति। लम्बिके तालूर्ध्वसूक्ष्मजिह्वायामित्यर्थः। नवमे नवमचक्रे सहस्रारे इत्यर्थः। नवचक्रविवेकस्तु सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदि द्रष्टव्यः।

कामकला का इस प्रकार ध्यान करके साधक स्वयं को कामकलारूप समझे। एतदर्थ वह यह महसूस करे कि नवचक्रमय श्रीयन्त्र के समानुरूप उसके नवचक्रमय शरीर में सर्वत्र कामकला की दीप्ति है। मेढ्र, नाभि, हृदय, कुक्षि, कण्ठ, घण्टिका, लम्बिका, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्र उसके शरीर के नौ चक्र हैं। मेढ्र क्षेत्रवर्ती मूलाधार में वह कामकला की ज्योति का सोने की-सी कान्ति वाली दीप-शिखा के समान, नाभिक्षेत्र में उदयकालीन सूर्यबिम्ब के समान जिससे प्रकाश की लाल किरणें फूट रही हैं, हृदय क्षेत्र में अग्नि के समान जिसकी लपटें ऊपर की ओर लपलपा रही हैं, हृदय के ऊपर कुक्षि क्षेत्र में सूर्य की चमक के समान, कण्ठ में दीप-शिखा के समान निश्चल एवं स्थिर, कण्ठघण्टिका में वैदूर्य के समान, लम्बिका में चन्द्रबिम्ब के समान, भ्रूमध्य में रत्न-ज्योति के सदृश तथा ब्रह्मरन्ध्र में विश्वतेज (सूर्य) के समान ध्यान करे।।५११-५१४।।

[श्रीगुरुपादुकाध्यानम्]

ततः पद्मे सहस्रारे ध्यायेच्छ्रीगुरुपादुकाम्।

[सैव कुलकुण्डलिनीशक्तिः]

मूलकन्दे तु सा शक्तिर्भुजगाकाररूपिणी।

[प्राणस्य स्वरूपम्]

तद्भ्रमावर्त्तवातोऽयं प्राण इत्युच्यते बुधैः।।५१५।।

[शक्तेश्चेष्टाविशेषः]

झिञ्जीवाव्यक्तमधुरा स्फुरन्ती शतशोऽपि वा।
गच्छन्ती ब्रह्ममार्गेण प्रविशन्ती स्वकेतने।।५१६।।

मूलकन्दे इति मूलाधारे इत्यर्थः। मूलाधारस्थकुलकुण्डलिनीशक्तेर्भ्रमावर्तवातः प्राण इत्याख्यायते।

इसके बाद देवी त्रिपुरा का साधक अपने सहस्रार पद्म में गुरुपादुका का ध्यान करे और यह महसूस करे कि वह जिस कामकला की दीप्ति से ओत-प्रोत है, वही कामकला शक्ति भुजगाकाररूपिणी होकर सभी प्राणियों के मूलाधार चक्र में कुल-कुण्डलिनी के रूप में स्थित है। यह कुण्डलिनी शक्ति झींगुर के समान आवाज करती हुई सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र और फिर ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार-पर्यन्त आती-जाती रहती है। उसके इस सतत संचरण से भँवर के समान उत्पन्न वायु को विद्वानों ने 'प्राण' कहा है।।५१५-५१६।।

[तत्र मनोलयनम्]

यातायातक्रमेणापि तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।

[मन्त्रशिखोत्पत्तिः]

तेन मन्त्रशिखा जाता सर्वसिद्धिप्रदीपिका।।५१७।।

तत्र मनसो मेलनं कुर्यात्, तत एव मन्त्रशिखा उत्पद्यते। एवञ्च एवंरूपेण प्राणे मनोलयनं विना मन्त्रशिखानुत्पादः, तदनुत्पादे च न मन्त्रसिद्धिः स्यादिति फलितोऽर्थः।

जब विचक्षण साधक इस प्राणवायु में मन को विलीन कर देता है अर्थात् जब साधक का मन कुण्डलिनी के साथ मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र और ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक निर्बाध रूप से संचरण करने लगता है, उसके अन्तःचक्षु के सामने मन्त्र-शिखा भास्वती हो जाती है। मन्त्र के सभी वर्ण (अक्षर) अपनी सम्पूर्ण दिव्यता के साथ उसके अन्तःचक्षु के सामने प्रकाशित हो जाते हैं। यह मन्त्र-शिखा ही साधक को सिद्धियाँ प्रदान करती है।।५१७।।

[शिखाहीनमन्त्रस्य निष्फलत्वम्]

तमःपूर्णगृहे यद्वद् यत्किञ्चिन्न हि भासते।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिध्यन्ति कदाचन।।५१८।।

[शिखाया गुप्तत्वम्]

शिखोपदेशः सर्वत्र विद्वद्भिः परिगोपितः।।५१९।।

[तद्वैपरीत्ये सिद्ध्यभावः]

विनाऽनेन न सिद्धिः स्यादर्घ्यकोटिशतैरपि।

[स्वापकाले मन्त्रजपस्याऽऽनर्थक्यम्]

स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः।।५२०।।

जिस तरह अन्धेरे कमरे में रखी हुई कोई चीज दिखाई नहीं देती और वहाँ रखी कोई चीज ढूँढ़ने पर भी हाथ नहीं आती, उसी तरह जब तक मन्त्रशिखा के दर्शन नहीं होते, तब तक मन्त्र में निहित शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति नहीं होती। मन्त्र-शिखा और मन्त्र-शिखा के रहस्य को विद्वानों ने सदैव गुप्त रखा है। इस अत्यन्त गुप्त रहस्य को जाने बिना न तो सिद्धि मिलती है और न मुक्तिलाभ होता है।।५१८-५२०।।

इसीलिये कहा गया है—मन्त्र का सतत् जप करते रहो, क्योंकि सतत् जप से ही सिद्धि मिलती है—'जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धि जपात् सिद्धिः न संशयः'। मन्त्र का सतत जप करते रहने से मन धीरे-धीरे प्राण में विलीन होने लगता है। फिर प्राणों का मन्त्र में विलय होता है और अन्ततः प्राण, मन और मन्त्र मिलकर एकरूप एकाकार हो जाते हैं।

विमर्श—सूत्ररूप में निष्कर्ष यह कि प्राणों में मन को विलीन कर देने पर ही मन्त्र-साधना में सिद्धियाँ मिलती हैं।

[स्वापस्य जागरस्य च लक्षणम्]

स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः।

[मन्त्रविशेषे स्वापजागरयोर्विशेषः]

आग्नेयस्य मनोः सौम्य मन्त्रस्यैतद्विपर्ययः।।५२१।।

[प्रबोधकालः]

प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोरपि।

[शिवशक्तिसङ्गमकालः]

प्राणापानसमायोगाच्छिवशक्त्योस्तु सङ्गमः।
प्रबोधकालो विज्ञेयः स्वापकालस्ततोऽथवा।।५२२।।

स्वापकाल इति। यदा वामनासिकया श्वासो वहति तदा स्वापकालः, यदा तु दक्षिणनासापुटेन श्वासश्चलति तदा जागरकालः, इति सर्वसाधारणमन्त्रजपे। एवञ्च जपारम्भकाले दक्षिणनासापुटेन वायोर्वहनमावश्यकम्, अन्यथा जपस्य निष्फलत्वमिति। आग्नेयमन्त्रस्य तु वामनासापुटेन यदा श्वासो वहति तदैव जपारम्भ इति

विपर्ययपदेनोपदिशति ग्रन्थकारः। एवञ्च उभयोराग्नेयमन्त्रेतरदेवताकमन्त्रयोर्वामनासावहो दक्षिणनासावहश्च श्वासो यथाक्रमं जागरणकाल इत्याशयः।

'स्वाप' अर्थात् निद्रा। जब मन्त्रों की निद्रा अवस्था हो, उस समय मन्त्र का जप करना अनर्थकारी है। यह निद्रा अवस्था क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए स्वरविज्ञान के शास्त्रों में कहा गया है कि जब बाँयें नथुने से स्वर अर्थात् श्वास चल रहा हो, उस समय स्वप्नकाल और जब दाहिने नथुने से स्वर (श्वास) चल रहा हो, उस समय जागरण काल होता है। मन्त्रों के भी दो भेद हैं—आग्नेय और सौम्य। स्वापकाल में सौम्य मन्त्र और जागरण काल में आग्नेय मन्त्र का जप करना चाहिए। जिस समय प्राण तथा अपान का समायोग होता है, उसे शिव और शक्ति का संयोग-काल माना जाता है। शिव और शक्ति का वह संयोग-काल ही वास्तविक प्रबोध-काल है। इसके अतिरिक्त अन्य समय को स्वापकाल ही समझना चाहिए।।५२०-५२२।।

विमर्श—उपर्युक्त निरूपण का निष्कर्ष यह है कि मन्त्र-साधक के लिये मन्त्र की आग्नेय और / या सौम्य प्रकृति का ज्ञान होने के साथ ही स्वर-विज्ञान का ज्ञान तथा स्वर-परिवर्तन / स्वरसंचालन का अभ्यास होना चाहिए। साथ ही उसे यह अभ्यास भी होना चाहिए कि जैसे ही वह यथावांछित स्वर में मन्त्र-जप प्रारम्भ करे, उसके मन का प्राणों में विलय हो जाय।

[त्रिपुरागायत्रीप्रशंसायां हरिहरसंवादः]

अथ वक्ष्याम्यहं गुह्यं संवादं हरिहरात्मकम्।
देवदारुवने पूर्वं ब्राह्मणानतिदुर्धियः।।५२३।।
विलोक्य भगवान् विष्णुः शिवं गत्वाऽभ्यभाषत।
देवदेव जगन्नाथ महादेव जगत्पते।।५२४।।
इमे दुर्मतयः सर्वे वेदाचारबहिष्कृताः।
स्वच्छन्दचरिताः सर्वे देवदारुवने द्विजाः।।५२५।।
अन्यस्त्रीमैथुनासक्ताः सुरापानपरायणाः।
आत्मज्ञानविहीनानां योगाभ्यासावहेलिनाम्।।५२६।।
कथमेषां भवेन्मुक्तिस्तदुपायं वद प्रभो।
कथं वा ब्रह्मविद्यायां दीक्षायामधिकारिता।।५२७।।

त्रिपुरा गायत्री की प्रशंसा—अब मैं भगवान् विष्णु और भगवान् शंकर के उस संवाद का निरूपण कर रहा हूँ, जो सर्वथा गुप्त रखने के योग्य है। बहुत प्राचीन काल की बात है। उस समय देवदारु वन में दुष्ट बुद्धि वाले आचारहीन ब्राह्मण रहते थे। उनके भ्रष्टाचरण को देखकर भगवान् विष्णु बहुत दुःखी हुए। उन्होंने भगवान् शंकर के पास जाकर पूछा—हे जगन्नाथ! हे महादेव! देवदारु वन में निवास

करने वाले ये सभी ब्राह्मण वैदिक आचार-विचार से सर्वथा हीन और भ्रष्टाचरण हैं। नीति-अनीति का विचार नहीं करके मनमानी आचरण करते हैं। ये लोग रोज शराब पीते हैं। दूसरों की स्त्रियों से मैथुन करते हैं। मोक्षप्राप्ति के लिये योगाभ्यास न करके उसकी अवहेलना करते हैं। इन पाप-परायण ब्राह्मणों की मुक्ति किस तरह होगी? क्या इनके कल्याण का कोई उपाय है? ब्रह्म-विद्या की साधना के लिये इन्हें किस तरह पुन: दीक्षा पाने का अधिकार मिलेगा?॥५२३-५२७॥

इत्युक्त्वैवाभवत्तूष्णीं ततो निखिलवेदिना।
तस्मै उक्ता ब्रह्मभूता गायत्री त्रिपुरामयी।।५२८।।
यया विज्ञातया चैव दीक्षितो ब्राह्मणो भवेत्।
अपि कृत्वा कदाचारान् पतितो वेदवर्जित:।
नारी शूद्रोऽथवा व्रात्यो ज्ञात्वैव ब्राह्मणो भवेत्।।५२९।।

इतना पूछकर भगवान् विष्णु चुप हो गये। तब सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थों (तत्त्वों) को जानने वाले भगवान् शंकर ने कहा—साक्षात् ब्रह्म से उद्भूता 'त्रिपुरा-गायत्री' स्वयं ही ब्रह्मरूपा हैं। इसका ज्ञान हो जाने पर अदीक्षित ब्राह्मण को भी दीक्षा प्राप्त हो जाती है। निन्दित एवं कुत्सित आचरण और कर्मों के फलस्वरूप पतित एवं वेदवर्जित ब्राह्मण ही नहीं; अपितु नारी, शूद्र और व्रात्य भी ब्राह्मण के समान हो जाते हैं॥५२८-५२९॥

[गायत्रीकथनम्]

अथ वक्ष्यामि तां विद्यां गायत्रीं त्रिपुरातनीम्।।५३०।।
देवीप्रणवमुद्धृत्य ततस्त्रिपुरसुन्दरी।
ङेऽन्ताऽथ विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि योजयेत्।
तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयादेषा जप्या जपादित:।।५३१।।

[गायत्रीजपानन्तरमन्यजपस्याधिकारिता]

अष्टाविंशतिसंख्याभिर्जप्तॄणामधिकारिता ।
ब्रह्मविद्यां जपेत् पश्चात् सर्वेषामेव निश्चितम्।।५३२।।

अथ वक्ष्यामीति। त्रिपुरासुन्दरीगायत्रीकथनम्, सा च गायत्री 'ह्रीं त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे, कामेश्वर्यै धीमहि, तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' इति।

अब मैं त्रिपुरामयी त्रिपुरा गायत्री बता रहा हूँ। देवी प्रणव (ह्रीं) के बाद चतुर्थ्यन्त त्रिपुरसुन्दरी (त्रिपुरसुन्दर्यै) के बाद 'विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' की योजना करने से 'त्रिपुरागायत्री' का मन्त्रस्वरूप प्रकट होता है॥५३०-५३२॥

[त्रिपुरागायत्रीजपफलानि]

जप्त्वैनामगमन्मुक्तिं देवदारुवने द्विजा:।
जीवन्मुक्तो जामदग्न्य: शिष्यो मे घोरपातकै:।।५३३।।
विमुक्तो मातृपुत्रेभ्यो मीननाथस्तथा पर:।
जैगीषव्यश्च चन्द्रश्च वासवश्च विमोचित:।।५३४।।
गुरुदाराकर्षणाद्यैस्तथाऽगस्त्यो विमोचित:।
अभक्ष्यं भक्षयित्वा तु वातापिञ्च महासुरम्।।५३५।।
चाण्डालीगमनाच्चैव वशिष्ठोऽपि विमोचित:।
दत्तात्रेय: सुरापानाज्ज्वलन: सर्वभक्षणात्।।५३६।।
कुलोड्डीशाभिधे तन्त्रे शम्भुनेति प्रकीर्त्तितम्।।५३७।।

जप का फल—इस त्रिपुरा गायत्री का जप करके देवदारु वन के वे पापिष्ठ और अचारहीन ब्राह्मण आवागमन के चक्र से मुक्त हो गये। मातृवध के पाप से जगदग्निपुत्र पशुराम को इसी मन्त्र के जप से मुक्ति मिली। मीननाथ, जैगीषव्य और चन्द्रमा इसी मन्त्र के प्रभाव से शुद्ध और पवित्र हुए। गुरु-पत्नीगमन के पाप से देवराज इन्द्र इसी मन्त्र के जप से मुक्त हुए। नर-भक्षण के समान राक्षस-भक्षण भी जघन्य पाप है। महर्षि अगस्त्य ने वातापि नामक आततायी राक्षस का भक्षण कर लिया था। वे इस अभक्ष्य-भक्षण के पाप से इसी मन्त्र के प्रभाव से मुक्त हुए। हीनवर्णा चाण्डाली के साथ सम्भोग करने के पाप से वशिष्ठ को इसी मन्त्र का जप करने से मुक्ति मिली। सुरापान के पाप से दत्तात्रेय को मुक्ति मिली तो सभी भक्ष्य-अभक्ष्य का भक्षण करने के पाप से अग्नि को इसी मन्त्र से मुक्ति मिलती है। 'कुलोड्डीश' नामक तन्त्र-ग्रन्थ में स्वयं भगवान् शिव ने यह सब कहा है।।५३३-५३७।।

[गायत्रीजपस्य नियम:]

अथ प्रजप्या गायत्री ध्यायञ् श्रीत्रिपुरेश्वरीम्।
विलम्बं त्वरितं त्यक्त्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधी:।।५३८।।
अष्टोत्तरसहस्रं वा गजान्तकशतञ्च वा।
त्रिंशन्न्यूनं नैव जपेन्नित्यं जप इति स्मृत:।।५३९।।
मन्त्रनिर्णयतन्त्रस्य मतमेतदुदीरितम्।

गजान्तकशतमिति अष्टोत्तरशतमित्यर्थ:। विशेषमाह गन्धर्वतन्त्रे सप्तदशपटले—

उत्तमो दशसाहस्र: सहस्रो मध्यम: स्मृत:।
अधमन्तु विजानीयादष्टोत्तरशतं शिवे।।
इतो न्यूनं महेशानि न शस्तं जपकर्मणि।
यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नत:।।

असंख्यातञ्च यज्जप्तं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्।
गृह्णन्ति राक्षसा येन गणयेत् सर्वथा बुधः।।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा।
अप्रावृतकरो वाऽपि शिरसा प्रावृतोऽपि वा।।
चिन्तान्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो वाऽपि त्वरान्वितः।
निर्बोधः प्रीतिचित्तो न न रुग्णो न क्षुधाऽन्वितः।।
तथा चान्यमना भूत्वा प्रलपन्न जपेन्मनुम्।
अनासीनः शयानो वा गच्छन् भुञ्जान एव च।। इति।

जप के नियम—हृदय में भगवती त्रिपुरेश्वरी का ध्यान करते हुए त्रिपुरा गायत्री का जप करना चाहिए। मन्त्रोच्चारण की गति न तो धीमी हो और न बहुत ही तीव्र हो। मध्यम गति से एकाग्रचित्त से मन्त्र का जप करें। मन्त्र की जपसंख्या एक हजार आठ या एक सौ आठ है। किसी भी स्थिति में यह संख्या ३० से कम नहीं होनी चाहिए। इससे कम जप करने का कोई फल नहीं होता। 'मन्त्र-निर्णय-तन्त्र' का यही अभिमत है।।५३८-५३९।।

विमर्श—मन्त्र-जप के सन्दर्भ में गन्धर्वतन्त्र (पटल १८, श्लोकसंख्या ४४ से ५०) में कहा गया है कि मन्त्रजप की उत्तम संख्या दस हजार, मध्यम संख्या एक हजार और अधम संख्या एक सौ आठ है। इससे कम संख्या में जप करना प्रशस्त नहीं है। जो जप किया जाय, उसकी संख्या की गणना की जाय। गणना न करने पर उसका फल राक्षस चुरा लेते हैं। न तो केवल एक वस्त्र धारण करके जप किया जाय और न बहुत से कपड़े पहन कर जप किया जाय। जप के समय न तो हाथ को खुला रखा जाय और न ही सिर को ढँककर जप किया जाय। इसका अर्थ यह है कि माला और हाथ को गोमुखी में रखकर जप करें। इसी तरह जप करते समय (स्तोत्र आदि का पाठ करते समय भी) सिर पर टोपी या पगड़ी नहीं पहिनें। जब हृदय में किसी प्रकार का दुःख हो, चिन्ता हो, क्रोध हो अथवा किसी प्रकार का उद्वेग हो, उस समय जप नहीं करें। बिना खाये खाली पेट अथवा खाना खाते हुए, लेटे-लेटे, चलते-फिरते, बातचीत करते हुए मन्त्र का जप नहीं करें। तात्पर्य यह कि मन्त्रजप के समय खाना-पीना, चलना-फिरना, लेट जाना, खड़े हो जाना और बात करना मना है। कुछ ग्रन्थों में सिले हुए कपड़े पहिन कर जप करना भी निषिद्ध कहा गया है। ग्रहणकालीन पुरश्चरण में समुद्रगामिनी नदी में नाभिपर्यन्त गहरे जल में खड़े होकर जप करना प्रशस्त है।

[निगदादिना जपस्तेषां लक्षणानि च]

निगदेनोपांशुना वा मानसेनापि वा जपेत्।।५४०।।

जिह्वाधरोष्ठचलनं निगदः परिकीर्त्तितः।
रसनामात्रचलनमुपांशु परिकीर्त्तितम्।।५४१।।
मनसा मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसः स्मृतः।

निगदेनेत्यादि। विषयमिममधिकृत्य स्फुटमुक्तं गन्धर्वतन्त्रे सप्तदशपटले—

निगदेनोपांशुना वा मानसेनाथवा प्रिये।
जपारम्भं सुधीः कुर्याद् देवताभावतत्परः।।
निःशङ्कः परमेशानि स्पष्टवाचा निगद्यते।
अव्यक्तः प्रस्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्त्तितः।।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम्।
उच्चरेदनु संस्मृत्य स उक्तो मानसो जपः।।
सौषुम्णाध्वन्युच्चरितं ध्वनिमात्रं विभावयेत्।
मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि च विभावयन्।।
तामेव परमे व्योम्नि परमामृतबृंहितः।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना।।
मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः।
न द्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकपङ्क्तिवत्।।
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने।
उपांशूच्चारणेनैव तुल्यं भवति शैलजे।।
उपांशु लक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे।
मानसोच्चारणात्तुल्यमेकेन वरवर्णिनि।।
विशेषात् त्रिपुरातन्त्रे प्रशस्तो मानसो जपः।
मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा जपेन्मनुम्।।
उभयं निष्फलं तस्य भिन्नभाण्डोदकं यथा।

जप की तीन विधियाँ हैं—(१) निगद, (२) उपांशु और (३) मानस। जब मन्त्र-जप करते समय जीभ चलती रहे और ओंठ हिलते रहें, वह निगद जप है। (२) जीभ तो चले लेकिन ओंठ बन्द रहें, वह उपांशु जप है। (३) न तो ओंठ हिलें और न ही जीभ चले; लेकिन मन्त्रवर्णों का मन ही मन चिन्तन होता रहे, वह मानस जप है।।५४०-५४१।।

[जपानामधममध्यमोत्तमत्वनिरूपणम्]

निगदे लक्षजप्तः स्यादुपांशु स्मरणोपमः।।५४२।।
उपांशुर्वा लक्षजपः सदृशो मानसैककः।
अधमो मध्यमः प्रोक्त उत्तमो मन्त्रविन्नरैः।।५४३।।

मन्त्रवेत्ताओं का कथन है कि इनमें निगद जप अधम है। उपांशु मध्यम है और मानस जप सर्वश्रेष्ठ है। निगद विधि से मन्त्र का एक लाख जप उपांशु विधि से मन्त्र के एक बार जप के समतुल्य है और एक लाख उपांशु जप एक मानस जप के बराबर है॥५४२-५४३॥

विमर्श—मन्त्रजपफल का यह फार्मूला मन्त्र-पुरश्चरण के लिये विहित संख्या पर लागू नहीं होता।

[जपकाले अतिह्रस्वातिदीर्घोच्चारणयोर्निषेधः]

अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घस्तपःक्षयः।

मन्त्रजप करते समय ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के उच्चारण का ध्यान रखा जाय। ह्रस्व स्वरों को इतना छोटा न किया जाय कि सस्वर वर्ण स्वरहीन हो जाय। ह्रस्व के अतिह्रस्व होने से व्याधियाँ होती हैं और इसी तरह दीर्घ स्वर को अतिदीर्घ करने से तप अर्थात् साधना का फल नहीं मिलता।

[जपरीतिः]

अक्षराक्षरसञ्चारं जपेन्मौक्तिकहारवत्॥५४४॥

जप में मन्त्र के वर्णोच्चारण में हार में पिरोये गये मोतियों के समान परस्पर सम्बद्धता होनी चाहिए॥५४४॥

[दशाविशेषे स्तवजपयोर्निष्फलता]

मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा च मनुं जपेत्।
उभयं निष्फलं तस्य भिन्नभाण्डोदकं यथा॥५४५॥

मन्त्र वैखरी वाणी का विषय नहीं है। अतः मन्त्र का जप जोर-जोर से नहीं करना चाहिये। जोर-जोर से बोलते हुए मन्त्रजप करना और स्तव-स्त्रोत आदि का मन ही मन पाठ करना बेकार है। इससे कोई लाभ नहीं मिलता॥५४५॥

[जपे अङ्गुलिनियमः]

अनामाया द्वयं पर्व परिवर्त्तेन वै क्रमात्।
मध्यमायास्त्रयं पर्व तर्जनीमूलपर्वणि।
नित्यजापे समाख्याता न काम्ये करमालिका॥५४६॥

अनामाया इति। करजपे नियममाह गन्धर्वतन्त्रे सप्तदशपटले—

मालाभावे ततः स्वासु अङ्गुलीषु जपेद् बुधः।
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन॥
आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षिण्येन वै क्रमात्।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेन्नवसु पर्वसु॥
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् तन्त्रवान् नरः।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम्॥

अनामामध्यपर्वन्तु मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत्।
मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन्ननामामूलपर्वतः।।
अङ्गुलीपर्वभिर्मन्त्रं जपन् रेखां न संस्पृशेत्।
अङ्गुलीर्नापयुञ्जीत किञ्चिदाकुञ्चिते तले।
अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेण स्रवते जपः।। इति।

मालया जपे विशेषमाह तत्रैव—

यथा सिद्धिस्तथा माला मालाऽङ्गं जपकर्मणि।
मालया जपतो नित्यं सिद्धिरेव न संशयः।।
आशु सिद्धिकरी माला वर्णमयी समीरिता।
अनुलोमविलोमार्णैर्मातृकायाः सबिन्दुकैः।।
सुमेरुकैः सदा कार्या माला सर्वसमृद्धिदा।
अष्टाधिकेऽष्टवर्गैस्तु पुनरेव समापयेत्।।
वर्णेनान्तरितं मन्त्रं कृत्वा जप्येत साधकः।
स्फाटिकादिभिरप्यत्र माला जपसमृद्धिदा।।
निधाय पुरतो मालां सव्यहस्तगताञ्च वा।
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः।।
इष्ट-मन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम्।
ऐँ मां माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।
चन्द्र-चन्दन-कस्तूरी-रोचनागुरु-कुङ्कुमैः ।
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षपाणिना।।
बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम्।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन तु।।
यथा हस्तान्न च्यवते जपतः स्रक् तथाचरेत्।
हस्तच्युतायां विघ्नः स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत्।।
यत्नात् संगोपयेदेनां भ्रामयेन्न विधूनयेत्।
गुरुं प्रकाशयेन्नैव यन्त्रं मन्त्रं कदाचन।।
अक्षमालाञ्च मुद्राञ्च गुरवेऽपि न दर्शयेत्।
भूत-राक्षस-वेतालाः सिद्ध-गन्धर्व-चारणाः।।
हरन्ति प्रकटं यस्मात् तस्माद् गुप्तं जपेद् सदा।
मालां स्वहृदयासन्नां दक्षिणस्य करस्य च।।
मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वा तु तर्जनीम्।
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युतया नम्रभागतः।।

स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम्।
प्रत्येकं बीजमादाय कुर्याद् वामेन न स्पृशेत्।।

प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं न चालयेत्।
तर्जन्या न स्पृशेन्मालां मुक्तितो गणनाक्रमः।।

अङ्गुष्ठपर्वमध्यस्थां परिवर्तं समाचरेत्।
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं भवति निष्फलम्।।

अङ्गुष्ठं मोक्षदं देवि तर्जनी शत्रुनाशिनी।
मध्यमा धनसिद्धौ स्याच्छान्तिकर्मण्यनामिका।।

कनिष्ठाकर्षणे ज्ञेया जपकर्मणि सिद्धिदा।
मालाबीजन्तु जप्तव्यं स्पृशेन्न हि परस्परम्।।

पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजन्तु संस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठेन भवेत्तस्य निष्फलस्तस्य तज्जपः।।

किटि शब्दान्विता माला छिन्ना भिन्नाऽपि वा भवेत्।
वामोरौ दक्षपादञ्च विन्यस्य परमेश्वरि।।

बद्धवीरासनो मन्त्री दिशश्चानवलोकयन्।
गुरु-दैवत-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।। इति।

करमाला—इस श्लोक में अंगुलिपर्वों से मन्त्रजप की गणना करने की विधि बताई गई है। अनामा के मध्य-पर्व से जप प्रारम्भ किया जाता है। इसके बाद कनिष्ठा के तीन पर्व, अनामा का शीर्ष पर्व, मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनी का मूल पर्व—इन दस पर्वों से शक्ति-मन्त्र का जप किया जाता है, जैसा कि प्रस्तुत चित्र में दर्शाया गया है। इसे शक्तिकरमाला कहते हैं। पुरुषदेवताओं के मन्त्र की करमाला भिन्न होती है। उसमें मध्यमा के दो पर्वों (८ और ९) को छोड़कर उनके स्थान पर तर्जनी के ऊपर वाले दो पर्वों को ग्रहण किया जाता है। यह कर-माला दैनन्दिनी जप के लिये प्रशस्त है। काम्य अनुष्ठान में इस करमाला से जप नहीं किया जाता।।५४६।।

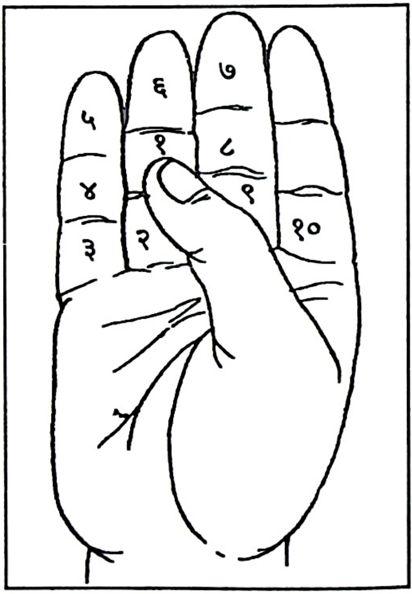

[जपे अङ्गुलिवियोगनिषेध:]

अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत किञ्चित् सङ्कोचयेत् तलम्।
अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेषु स्रवते जप:।।५४७।।

अंगुलिपर्वों से मन्त्रजप की गणना करने के लिये अंगुलियों को कुछ मोड़ लिया जाता है तथा उन्हें इस तरह सटाकर रखा जाता है कि अंगुलियों के बीच में कोई छेद (दरार) न बन पाय, अन्यथा उस दरार (रिक्त स्थान) से मन्त्रजप का रिसाव हो जाता है।।५४७।।

[अङ्गुल्यग्रे जपस्य निष्फलत्वम्]

अङ्गुल्यग्रे च यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्।।५४८।।

जप करते समय अंगूठे को न तो पर्वों की सन्धि-रेखाओं पर रखें और न अंगुलि के शीर्ष भाग पर रखें। अंगूठे को पर्व के मध्य पर ही रखें। पर्व-सन्धियों पर अंगूठा रखकर जो जप किया जाता है, वह निष्फल हो जाता है। तर्जनी के दो पर्व शक्तिकरमाला के सुमेरु हैं; अत: जप करते समय इन दो पर्वों पर अंगूठा रखकर मेरु का उल्लेख नहीं किया जाय।।५४८।।

विमर्श—'आगमरहस्य' में कहा गया है कि करमाला से मन्त्र जप किये जाने के पूर्व 'करमाला' का शोधन कर लिया जाय। 'करमाला-शोधन' का मन्त्र है—'काली काम: कृपा कुन्ती करमाले हर वनम्' अर्थात् 'क्रीं क्लीं ॠं क्रीं करमाले फट्-स्वाहा'।

इस एकादशाक्षरी मन्त्र को अभीष्ट कर-माला में तीन बार जप लेने से माला का शोधन (शुद्धि) हो जाता है। जप करते समय हाथ को किसी वस्त्र से आच्छादित कर लिया जाता है। गणना करने के लिये बाँयाँ हाथ भी वस्त्र से ढँका हुआ दाँयें हाथ के नीचे हृदय के समीप ही रहना चाहिये। जब दाँयें हाथ से दस बार मन्त्रजप हो जाय, बाँयें हाथ के अंगूठे के अग्रभाग को अनामा के मध्य पर्व से उठाकर अनामा के मूल पर्व पर रखें। इस प्रकार १०×१०=१०० बार जप की गणना की जाती है। अन्त में आठ बार की जप-गणना अनामा के मूल पर्व से प्रारम्भ की जाती है और तर्जनी के मूल पर्व को भी छोड़ दिया जाता है।

जप के लिये रुद्राक्ष-स्फटिक या रक्तचन्दन आदि द्रव्यों से निर्मित वही मणिमाला ग्राह्य और प्रशस्त है, जिसका यथाविधान संस्कार किया गया है। जिस माला का संस्कार नहीं किया गया है, उससे जप करने से प्रत्यवाय होता है। यथाविधि संस्कृत माला का जप के पूर्व और जप के बाद पूजन किया जाता है। जप के पूर्व मालापूजन का मन्त्र है—

ॐ। माले माले महामाले, सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

जप के अन्त में—

ॐ।। त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा सुखदायिनी।
शुभं कुरुष्व मे भद्रे, यशोवीर्यञ्च देहि मे।।

जप की यह माला इतनी गोपनीय होती है कि गुरुदेव को भी नहीं दिखाई जाती। अत: इसकी शुद्धता और पवित्रता की रक्षा आवश्यक है। माला को मध्यमा अंगुली के बीच वाले पर्व पर रखकर जप किया जाता है। अंगूठे से माला के मनके सरकाये जाते हैं। तर्जनी का माला से स्पर्श नहीं होने दिया जाता।

अक्षमाला—इन दोनों मालाओं से कई गुना श्रेष्ठ 'अक्षमाला' है। वर्णमाला के 'अकार' से 'क्षकार'-पर्यन्त ५१ वर्णों से निर्मित इस माला का सुमेरु 'ळ'कार है। इस माला से जप करने के पूर्व यह भावना की जाती है कि 'अ'कारादि 'क्ष'-कारान्त सभी ५१ वर्ण सुषुम्णा नाड़ी में माला के समान गुँथे हुए हैं। 'अ'कार इस माला का प्रथम और 'ळ'कार अन्तिम मनका है। 'क्ष'कार सुमेरु है। इसका वर्ण विद्रुम के समान लाल है। वर्णरूपी एक-एक मनके के साथ मूल-मन्त्र की योजना करके जप करें। यथा—'अं' मूल मन्त्र, 'आं' मूल मन्त्र। इसी तरह सभी वर्णों के साथ मूल मन्त्र की योजना करके 'ळं'-पर्यन्त जप करें। 'क्ष'कार मेरु है। इसके साथ मन्त्र की योजना नहीं करें, केवल उसे ('क्ष'काराय नम:) प्रणाम करें। तत्पश्चात् 'मूल-मन्त्र' के बाद 'ळं' आदि एक-एक वर्ण की विलोमक्रम से योजना करते हुए 'आं-अं' तक जप करें। यथा—ळं + मूल मन्त्र। 'हं' + मूल मन्त्र -------- आं + मूल मन्त्र। 'अं' मूल मन्त्र। इस तरह मन्त्र का एक सौ जप कर लेने के बाद 'अ' कारादि आठ वर्गों के प्रथम-प्रथम अक्षर के साथ मन्त्र का आठ बार जप करने से मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप हो जाता है। अन्तर्याग में इसी अक्षमाला से मन्त्रजप किया जाता है। ज्ञानार्णवतन्त्र में भगवान् शिव (ईश्वर) ने कहा है कि वे इसी माला से त्रिपुरा-मन्त्र का जप करते हैं। इस मन्त्र से जप करने के लिये बहुत अभ्यास करना पड़ता है।

[जपारम्भे विसर्गे च प्राणायाम:]

प्राणायामं समाचर्य जपं कृत्वा समाहित:।
पुन: प्राणान् समायस्य जपञ्चैव समर्पयेत्।।५४९।।

साधक को संयतचित्त होकर जप करने से पूर्व तथा जप समाप्त हो जाने पर यथाविधि प्राणायाम करना चाहिये। जप की समाप्ति पर जप-संख्या का उल्लेख करते हुए जप का तेजोफल देवता को समर्पित करना चाहिए।।५४९।।

विमर्श—समर्पण के समय मन्त्र की जप-संख्या का उल्लेख अजपा जप समर्पण की परिपाटी में है। अजपा जप-समर्पण में प्रत्येक चक्र में स्थित देवता को जप-समर्पण करते समय जप-संख्या का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। यथा—'मूलाधारचक्रस्थाय गणपतये षट्शतसंख्यकजपं निवेदयामि नमः।'

[जपसमर्पणम्]

अर्घ्यस्य जलपुष्पाभ्यां देव्या दक्षिणहस्ततः।।५५०।।

अर्घ्यस्येति। अत्र विशेषो गन्धर्वतन्त्रे सप्तदशपटले—

यथाविधि जपं कृत्वा मन्त्रेणार्घ्योदकेन च।
जपं तञ्च महादेव्या वामहस्ते समर्पयेत्।।
तेजोरूपं जपफलं शिवया स्वीकृतं स्मरेत्।
श्रीबीजेनैव पाणिभ्यामवतारार्णशीर्षतः।
सारस्वतेन बीजेन हस्ताभ्यां स्थापयेत् ततः।।
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरियं प्रिये।
एवं यः कुरुते मालां जाप्यञ्च साधकः प्रिये।
स प्राप्नोतीप्सितं देवि हीनस्याऽऽयुर्विपर्ययः।।
निःसेतुञ्च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति मन्त्रिणाम्।।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु सर्वे वर्णा द्विजातयः।
पार्श्वयोः सेतुमादध्याज्जपकर्मणि साधकः।।
अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः।
वेदत्रयात् समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा।।
जपादौ जपकर्मान्ते प्रणवं सेतुरूपकम्।
नियोजयेन्महेशानि सर्वकार्यार्थसिद्धये।। इति।

अपने दाहिने हाथ मे अर्घ्य का जल तथा पुष्प लेकर जप का तेजोफल निम्न मन्त्र पढ़ते हुए देवी के बाँयें हाथ में समर्पित करें।।५५०।।

[समर्पणमन्त्रः]

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि।।५५१।।

गो-योनिमुद्रा—जप और पूजा-समर्पण दाहिने हाथ की गो-योनिमुद्रा से करना चाहिए।।५५१।। (देखें—चित्र)

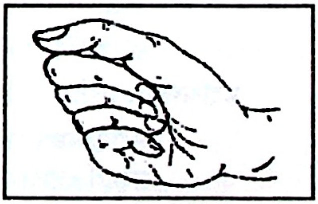

[देव्यै रुधिरदानम्]

गृहीत्वा शोणितं पात्रं स्वकीयहृदयोद्भवम्।
तोयसैन्धवसंयुक्तं शर्करामधुसंयुतम्।।५५२।।
अभ्युक्ष्य रुधिरं दद्याद् वाग्भवेन तु साधकः।
यथाशक्ति नरो दद्यान्नाभेरूर्ध्वमधो न च।।५५३।।

रुधिरदान—इसके बाद साधक अपने हृदय आदि के समीप से निकाले गये रक्त को किसी पात्र में लेकर उसमें थोड़ा-सा पानी, सेंधा नमक, शक्कर और मधु (शहद) डाले। वाग्भव बीज (ऐं) का जप करते हुए सामान्य अर्घ्य के जल से छींटे मारकर उसका अभ्युक्षण करे। फिर यह रक्त देवी को समर्पित करे। इसके लिये नाभि के ऊपरी भाग से ही रक्त निकाला जाता है। नाभि के नीचे के भाग से निकाला गया रक्त ग्राह्य नहीं है।।५५२-५५३।।

विमर्श—यद्यपि देवी को अपने रक्त से अभ्युक्षित बलि प्रदान करने का उल्लेख श्रीदुर्गासप्तशती (१३/१२) में भी मिलता है; मगर यह एक ऐसा विधान है जिसका अधिकांश तन्त्रग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता। सामान्य साधक वर्ग में इसका प्रचलन भी नहीं है।

[स्तवपाठानन्तरं प्रदक्षिणस्य कर्त्तव्यता]

स्तुत्वा प्रदक्षिणं कार्यं त्रि-सप्त-नवधापि वा।

[अष्टाङ्गप्रणामस्य कर्तव्यता]

अष्टाङ्गं प्रणमेन्मन्त्री भक्तिभावेन साधकः।।५५४।।

स्तवपाठानन्तरं प्रदक्षिणमाह—**स्तुत्वेत्यादिना**। अत्रोक्तं गन्धर्वतन्त्रे पञ्चदशपटले—

स्तुवन्नानाविधैः स्तोत्रैर्भक्तिभावसमन्वितः।
प्रणमेत् परमेशानि विधिना साधकोत्तमः।।

स्तवे विशेषमाह तत्रैव—

यत् स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्क्रिया।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमः स्मृतः।।
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा तान्त्रिकैः क्रियते नतिः।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद्वाचनिकः सदा।।
परेषां गद्यपद्याभ्यां नमस्कारो यदा भवेत्।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु सर्वतः।। इति।

प्रदक्षिणप्रमाणञ्चोक्तं तत्रैव—

प्रदक्षिणप्रमाणञ्च कुर्याद्धर्मार्थसाधनम्।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः।।

दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा वर्त्तुलाकृतिसाधकः।।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः।
अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम्।।
स सर्वकाममासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात्।।

सप्तधा प्रणामलक्षणमुक्तं तत्रैव—

त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्रं प्रदक्षिणम्।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रञ्च सप्तधा नतिलक्षणम्।।
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा दिशं तस्याश्च शाम्भवीम्।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत्।।
त्रिकोणाख्यो नमस्कारस्त्रिपुराप्रीतिदायकः।
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा वायव्याः शाम्भवीं तथा।।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाऽग्नौ प्रविश्य च।
अग्नितो राक्षसीं गत्वा कौबेरीञ्च ततो विशेत्।।
आग्नेयीञ्च ततो गत्वा नमस्कारः प्रकीर्तितः।
षट्कोणाख्यो नमस्कारो दुर्गायाः प्रीतिदायकः।।
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा तस्माद्व्यावृत्य दक्षिणम्।
गत्वा योऽसौ नमस्कारः सोऽर्धचन्द्रो मम प्रियः।।
नमस्कारेषु जानीयादासां प्राकृतमद्रिजे।
त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद् गत्वा नमस्कृतः।।
निपत्य दण्डवद् भूमौ दण्ड इत्युच्यते बुधैः।
तथैव दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन च।।
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च।
चक्षुषा चाथ कर्णाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रेण चैव हि।
तदष्टाङ्गमिति प्रोक्तं यद् भूमिं स्पृशते क्रमात्।।
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्या नमस्कृतेः।
स उग्र इति विज्ञेयो विष्णोस्तुष्टिप्रदायकः।।

इसके बाद साधक भगवती का स्तवन करके तीन, सात या नौ बार प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा के बाद पूर्ण भक्तिभाव से देवी को साष्टांग प्रणाम करे।।५५४।।

[अष्टाङ्गप्रणामलक्षणम्]

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।५५५।।

भूमि पर दण्डवत् लेटकर दोनों पैर, दोनों हाथ, दोनों घुटनों, छाती और शिर (मस्तक) से भूमि का स्पर्श करते हुए मन और वाणी-सहित जो प्रणाम किया जाता है, उसे अष्टांग प्रणाम कहते हैं॥५५५॥

[प्रकारान्तरेणाष्टाङ्गप्रणाम:]

साष्टांगो दण्डवद्भूमौ निपत्य हृदयेन तु।
चिबुकेन मुखेनाथ नासया मस्तकेन च।
कर्णाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रेण भूमिस्पर्शनमेव वा।।५५६।।

दण्ड के समान भूमि पर अधोमुख लेटकर हृदय-चिबुक, मुख, नासिका, मस्तक, दोनों कान और ब्रह्मरन्ध्र से भूमि का स्पर्श करते हुए जो प्रणाम किया जाता है, उसे भी (अन्य प्रकार का) अष्टांग प्रणाम कहते हैं॥५५६॥

[पुनर्दण्डवत् प्रणाम:]

कृताऽञ्जलिपुटो भूत्वा भूमिष्ठः प्रणमेत्ततः।
प्रत्येकं प्रणमेन्मन्त्री दण्डवत् प्रणिपातयेत्।।५५७।।

पहिले हाथ जोड़कर भूमि पर खड़े होकर देवता को सिर झुकाकर प्रणाम करने के बाद साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए॥५५७॥

[देवाग्रे भ्रमणनिषेध:]

देवञ्च मध्यगं कृत्वा योऽग्रे च भ्रमणञ्चरेत्।
नमस्कारो वृथा तस्य अपराधो भवेदथ।।५५८।।

देवता को मध्य में करके देवता के आगे-पीछे जो टहलता हुआ घूमता है, उस व्यक्ति का देवता को प्रणाम करना व्यर्थ है। देवता के आगे मँडराना देवता के प्रति अपराध है॥५५८॥

[अकृताञ्जले: प्रणामनिषेध:]

अकृताञ्जिलना यस्तु नमस्कारं करोति वै।
महान्धकारे नरके पच्यते नात्र संशयः।।५५९।।

हाथ को जोड़े बिना जो नमस्कार किया जाता है, वह नमस्कार व्यर्थ है। जो देवता को हाथ जोड़े बिना नमस्कार करता है, वह नरक में जाता है॥५५९॥

[प्रणामे मूर्ध्ना भूमिस्पर्शस्य कर्त्तव्यता]

पात्रान्तरे च प्रणमेन्मूर्ध्ना न च क्षितिं स्पृशेत्।
शपन्ति देवतास्तस्य विकलं तत् प्रकीर्त्तिनम्।।५६०।।

पात्रान्तरे इति। कुड्यस्तम्भादावित्यर्थः।

देवता के श्रीचरणों को छोड़कर अन्य पात्रों; जैसे कुण्ड या दीवार आदि के सामने प्रणाम करता है अथवा देवता को प्रणाम करते समय मस्तक से भूमि का

स्पर्श नहीं करता, उसका प्रणाम करना व्यर्थ है, विफल है। देवता उसे शाप देते हैं।।५६०।।

[दण्डवत्प्रणामफलम्]

प्रणामे देवतायास्तु यावन्तो रेणवस्तनौ।
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते।।५६१।।

प्रणामे इति। देवतायाः प्रणामे यावत्यो धूलिकणाः शरीरलग्ना भवन्ति तत्संख्याकसहस्रवर्षाणि ब्रह्मलोकावाप्तिः फलमिति। गन्धर्वतन्त्रे नमस्कारप्रशंसा—

देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः।।
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महोदयम्।
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते।।
नत्वा विजयते लोकान् नत्वा धर्मः प्रवर्त्तते।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः।।
चतुर्वर्गं लभेद् भक्तो नचिरादेव साधकः।
नमस्कारो महायज्ञः प्रीतिदः सर्वतः सदा।।
नमस्कुरु महादेवीं प्रदक्षिणञ्च भक्तितः।
कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः।।
नमस्कारश्च विज्ञेय उत्तमाधममध्यमः।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति सर्वतः।।
नमस्कारेषु सर्वेषु कायिकः प्रथमः स्मृतः।
जानुभ्यामवनीं गत्वा संस्पृश्य शिरसा क्षितिम्।।
क्रियते यो नमस्कारः स एव कायिकः स्मृतः।
जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा शिरसा स्पृश्य मेदिनीम्।।
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकस्तु सः।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे नमस्कारः प्रदीयते।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते।। इति।

भूमि पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करने से भूमि के जितने कण प्रणामकर्ता के शरीर से चिपक जाते हैं, वह उतने हजार वर्षों तक ब्रह्मलोक में रहता है।।५६१।।

प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य महेश्वरीम्।।५६२।।

[पुनर्दर्पणादिदानम्]

दर्पणं चामरं छत्रं भूयो गन्धाद्यमर्पणम्।

[पुनर्मुद्राप्रदर्शनम्]

भूयोऽपि मुद्रानवकं महादेव्यै प्रदर्शयेत्।।५६३।।

भूयोऽपीति। मुद्रानवकं सर्वसंक्षोभण्यादिमुद्रानवकमित्यर्थः।

प्रदक्षिणा और नमस्कार से भगवती को संतुष्ट करके विचक्षण साधक उन्हें दर्पण-चामर-छत्र आदि राजोपकरण एवं गन्ध आदि प्रदान करके फिर से संक्षोभणी आदि नौ मुद्रायें दिखाये।।५६२-५६३।।

[नित्यहोमः]

नित्यहोमं ततः कुर्यात्त्रिपुराप्रीतिकारकम्।

तत्पश्चात् देवी त्रिपुरसुन्दरी को प्रीतिकर नित्य होम करे।।५६२-५६३।।

[स्थण्डिलप्रमाणम्]

स्वदक्षिणे हस्तमात्रप्रमाणं स्थण्डिलं लिखेत्।।५६४।।

[मण्डलकरणम्]

त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं विलिखेत्तत्र मण्डलम्।

[मण्डलषट्कोणे षडङ्गपूजा मध्ये देवीपूजा च]

षट्कोणे च षडङ्गानि मध्ये देवीं प्रपूजयेत्।।५६५।।

नित्यहोममित्यादिना नित्यहोममाह। तत्र स्थण्डिले मण्डलमाह—**त्रिकोणमिति।** तत्र होमप्रयोगस्यानुल्लेखात् संक्षेपहोमप्रयोग उच्यते निरुक्तस्थण्डिले वीक्षणादिभिः संस्कृते; तथाच—

वीक्षणं मूल मन्त्रेण शरेण ताडनं मतम्।
तेनैव प्रोक्षणं प्रोक्तं वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम्।।
प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखाः समालिखेत्।।

ततो मूलमुच्चार्य कुण्डाय नमः इति सम्पूज्य प्रागग्रेषु मुकुन्देशपुरन्दरान् उदगग्रेषु च ब्रह्मवैवस्वतेन्दून् षट्तारीः प्रयुज्य पूजयेत् यथा ऐँ ह्रीँ श्रीँ ऐँ क्लीँ सौः मुकुन्दाय नमः इत्यादि। ततः कुण्डमध्ये स्थण्डिले वा हूँगर्भं षट्कोणवृत्तत्रिकोणं तद्बहिरष्टदलपद्मं तद्बहिश्चतुरस्रं चतुर्द्वारसमेतं लिखित्वा तदुपरि बालाबीजेन (ऐँ क्लीँ सौः) पुष्पाञ्जलीन् दद्यात्। ततः प्रणवेन सर्वाणि होमद्रव्याण्यभ्युक्ष्य वह्नेर्यागपीठमर्चयेत्। यथा—कर्णिकोपरि आधारशक्त्यादीन् सम्पूज्य अग्न्यादिकोणचतुष्केषु ॐ धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय, पूर्वादिदिक्षु अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय, मध्ये अनन्ताय, पद्माय, अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडश—कलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, ततः केशरेषु पूर्वादितो मध्ये च पीतायै, श्वेतायै, अरुणायै, कृष्णायै, धूम्रायै, तीव्रायै, स्फुलिङ्गिन्यै, रुचिरायै, ज्वालिन्यै रं वह्न्यासनाय। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततः कामेश्वरं कामेश्वरीं च पूजयेत्।

अग्न्याहरणमाह गौतमीये—

पाषाणभवमग्निञ्च यदि वाऽरणिसम्भवत्।
श्रोत्रियाणां गेहजञ्च वनस्थं वाऽथवा हरेत्।।
निरग्निब्राह्मणाल्लब्धो ह्यर्धलाभकरो भवेत्।
क्षत्रबन्धोश्चतुर्थांशं फलं दद्याद्धुताशनः।।
वैश्याच्छूद्राच्च विफलं जायते होमकर्म तत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वह्निमुक्तं समाहरेत्।।

तन्त्रान्तरे—

द्विजातिभवनाद् वाऽपि वह्निमानीय साधकः।
वौषडन्तेन मूलेन मन्त्रितं तद् विलोकयेत्।।
अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम्।
हुं फडन्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत्।।

ततः ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः, चतुर्दिक्षु ॐ वामायै, ज्येष्ठायै, रौद्र्यै, अम्बिकायै, मूलमुच्चार्यामुकदेवताकुण्डाय नम इति कुण्डं सम्पूज्य यथोक्तं वह्निमानीय वीक्षणादिभिः संस्कृत्य रमिति तस्माद् वह्निमुद्धृत्य मूलमुच्चार्य हुँ फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा इत्यनेन क्रव्यादांशं परित्यज्य फट् इति वह्निमन्त्रेण संरक्ष्य हुं इत्यवगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य बाहुभ्यां समुद्धृत्य कुण्डोपरि त्रिः परिभ्राम्य जानुस्पृष्टमहीतलः शिवबीजबुद्ध्या आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं निक्षिपेत् । ततो ह्रीं वह्निमूर्त्तये नमः इत्यभ्यर्च्य रं वह्निचैतन्याय नम इति चैतन्यं संयोज्य ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहा इति ज्वालयेत्।

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्।।

इत्युपतिष्ठेत् । ततोऽग्ने त्वममुकदेवतानामाऽसीति नाम कृत्वा ॐ वैश्वानर जातवेद लोहिताक्ष इहाऽऽवह सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। इत्यनेनार्घ्यादिभिः सम्पूज्य ॐ अग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, इत्यादि अग्निषडङ्गेभ्यो नमः, ॐ अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नमः, ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नमः, तद्बहिः पद्माद्यष्टनिधिभ्यः, तद्बाह्ये इन्द्रादिलोकपालेभ्यः, तद्बाह्ये वज्राद्यस्त्रेभ्यः। ततः प्रादेशमात्रं कुशपत्रद्वयं घृतमध्ये निक्षिप्य सव्यासव्यमध्यभागेषु इडां पिङ्गलां सुषुम्णां ध्यात्वा होमं कुर्यात्। स्रुवेण दक्षिणभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्वाहेति अग्नेर्दक्षिण-नेत्रे, तथा वामभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ सोमाय स्वाहेति वामनेत्रे, मध्यभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्नेर्ललाटनेत्रे जुहुयात्। पुनर्दक्षिणतः ॐ नमः इति घृतं गृहीत्वा ॐ अग्नये

स्विष्टकृते स्वाहेत्यग्निमुखे जुहुयात्। तत ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहेति महाव्याहृतिहोमः, ॐ वैश्वानर जातवेद इहाऽऽवह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेत्यनेन त्रिवारं जुहुयात्। ततो मूलस्य पीठदेवतां मूलदेवताञ्चाग्नौ सम्पूज्य तन्मुखे मूल मन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं जुहुयात्। वह्निदेवतयोरात्मना सहैक्यं विभाव्य मूल मन्त्रेणैकादशाऽऽहुतीर्जुहुयात्। ततो मूलदेवस्याङ्गदेवताभ्यः स्वाहा, आवरणदेवताभ्यः स्वाहेति, शक्तश्चेत् प्रत्येकमेकैकाहुतिं जुहुयात्। ततः संकल्पं विधाय स्वकल्पोक्तद्रव्येण होमं कुर्यात्। ततो मूल मन्त्रेण पूर्णाहुतिं दत्वा संहारमुद्रया स्वेष्टदेवतां हृदये समानीय क्षमस्वेति विसर्जयेदिति संक्षेपहोमविधिः।

गन्धर्वतन्त्रे एकत्रिंशपटले च—

किंशुकैर्हवनं देव्याः कुसुम्भकुसुमैरपि।
नागकेशरपुष्पैर्वा मधूकै रक्तपद्मकैः।।
करवीरैर्जवापुष्पैर्मधुरत्रयमिश्रितैः ।
सर्वसिद्धिप्रदं कुण्डं चतुरस्रं वरानने।।
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा होमयेत् संस्कृतेऽनले।
अथवा परमेशानि स्थण्डिलं रचयेद् बुधः।।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यान्न काम्यं स्थण्डिले चरेत्।
हस्तमात्रं चतुरस्रं गोमयेनोपलेपितम्।।
अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं तथा।
तत्रापि लेखनं कृत्वा तत्र होमः फलप्रदः।।
यवानां तण्डुलैरेवमङ्गुलञ्चाष्टभिर्भवेत्।
अदीर्घयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ।।
एतत्प्रमाणहस्तैस्तु कुण्डादिकं समाचरेत्।
त्रिपुराप्रीतिदो होमः कुण्डे त्रिकोणसंज्ञके।।
पश्चिमात् पूर्वाग्रास्तिस्रो रेखाः प्रादेशप्रमाणाः।
विलिख्य च मुकुन्देन्दुपुरन्दरस्वरूपकाः।।
दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै विलिख्य तदनन्तरम्।
रेखाः स्युश्च वैवस्वतब्रह्मानन्तस्वरूपकाः।।
त्रिकोणं मध्यतो देवि कृत्वा बाह्ये ततः परम्।
षट्कोणं विधिना चैव कारयेदतिसुन्दरम्।।
अष्टपत्रञ्च तद्बाह्ये वृत्तेन कर्णिका शुभा।

चतुरस्रं चतुर्द्वारि मण्डलं विरचय्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य स्रुवादिकमासादयेत्। स्रुव–आज्य–दधि–दूर्वा–समिध–आज्यस्थाली–प्रणेता–प्रोक्षणी चैव वामतः। एवं

परिकल्प्याम्भसा प्रोक्षणीमापूर्य वारत्रयमुत्पूय तानि प्रोक्ष्याभिमुखानि कृत्वा बालयाऽभिमन्त्र्य, तथैव दूर्वाभिर्मूलादग्रं पुनरग्रान्मूलं त्रिः परिमृज्य दूर्वाभिः पूर्वाग्रमुत्तराग्रञ्च विस्तरेत्। मूलविद्यां समुच्चरन् 'स्थण्डिलाय नमः' इति सम्पूज्य त्रिकोणमध्ये कामेश्वरीकामेश्वरौ यष्ट्वा तयोर्मिथुनीभावं ध्यात्वा तावभ्यर्च्य तस्या गर्भे वैश्वानरजातवेद इहाऽऽवह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेति मूलोद्गतं संविदग्निं ललाटनेत्रद्वारा निर्गतं वाय्वग्नियुक्तं पातयेत्। 'ॐ उत्तिष्ठ पुरुष हरिपिङ्गल लोहिताक्ष सर्वकर्माणि देहि मे दापय स्वाहे'ति वह्निमुत्थाप्य 'ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वं ज्ञापय स्वाहे'ति कामेश्वरीगर्भे घृतं ध्यात्वा मूलमुच्चरन् वौषडिति वह्निं विलोक्य अस्त्रेण संरक्ष्य ज्वलदग्निमादाय स्थण्डिलं दक्षिणावर्त्तेन त्रिः परिभ्राम्य ज्वलदिन्धनमेकं हुं फडित्यनेन क्रव्यादाग्निं नैर्ॠत्यां त्यजेत्। जानुभ्यामवनीं स्पृष्ट्वा वह्निं मध्ये संस्थाप्य 'क्लीं महात्रिपुरसुन्दरीवह्निमूर्त्तये नमः' इति देवीं सम्पूज्य नाभिमण्डलाद् वहन्नासापुटेन तदग्निना बाह्याग्निमेकीकृत्य यजेत्। 'मूलमुच्चार्य ऐँ क्लीं सौः आं सोऽहं वह्निचैतन्याय नमः' इति कामेश्वरीगर्भे वह्निं सञ्चिन्त्य तद्देहे षडङ्गानि 'ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रेभ्यो वौषट् , ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट्' इति यष्ट्वा तप्तजाम्बूनदप्रभं शक्तिस्वस्तिकधरं वरदाभयशोभितकरपङ्कजं दिव्यालङ्कारभूषितविग्रहम् अम्भोजसंस्थं शुक्लाम्बधरं त्रिनयनं बद्धमौलिं ध्यात्वा चक्रे सप्तजिह्वाश्च पूजयेत्—ईशाने यूं लोहिताम्, पूर्वे रूं रक्ताम्, आग्नेये लूं नीलाम्, नैर्ॠते वूँ कृष्णाम्, पश्चिमे शूँ शुभ्राम्, दक्षे कां करालीम् उत्तरे बहुरूपाम् इति। ततः 'कामेशीगर्भोद्भववह्नेः सर्वभावेभ्यो नमः' इति मन्त्रेण अमुकाग्नेरमुककर्म कल्पयामीति वह्नेर्गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म-नामकरणान्नप्राशन-चूडोपनयन-गोदान-विवाहकर्म निर्वर्त्त्य परिषिच्य, परिस्तीर्य, परिधाय, पुनर्ध्यात्वा अग्निमन्त्रेणाग्निं त्रिकोणे पूजयित्वा सप्तजिह्वासु सप्ताहुतिं हुत्वा 'वैश्वानर' 'उत्तिष्ठ' 'चित्पिङ्गल' इति मन्त्रत्रयेणाऽऽहुतित्रयं विधाय षडङ्गानि षट्कोणेषु अष्टदलेषु—अग्नये, जातवेदसे, सप्तजिह्वाय, हव्यवाहनाय, अस्रोदराय, वैश्वानराय, कौमारतेजसे, देवमुखाय नम इति लोकपालांशभूगृहे पूजयेत् । वह्नेर्दक्षिणतो ब्रह्माणमाराध्य आज्यस्थालीं पुरतो निधाय बहुरूपायां जिह्वायां श्रीचक्रराजं तदन्तःस्थां चित्कलाम् अशेषरश्मिमण्डितामालोक्य यष्ट्वा नित्यं हुत्वा कुण्डं मण्डपधूपैरापूर्य दीपैरुज्ज्वाल्य समिधं हुत्वा जुहुयादिष्टमेव च। वलीन् प्रदाय ॐ भूरग्नये च, पृथिव्यै च, महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च दिव्ये च महते च स्वाहा। ॐ स्वरादित्याय दिवे च महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च महते च स्वाहा। इति चतुर्भिर्मन्त्रैर्महाव्याहृतिहोमं कृत्वा ब्रह्मार्पणमतः परम्। समिधं हुत्वा देवीमभ्यर्च्य विसृजेदिति।

काम्यहोमे विशेषमाह तत्रैव—

नित्यहोमो मया प्रोक्तः काम्यहोममतः शृणु।
मल्लिका-मालती-जातिकुसुमैर्मधुमिश्रितैः।।
घृतपूर्णैः कुलैर्वाऽपि वागीशत्वं प्रजायते।
जवापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः।।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम्।।
कमलैर्वरुणैर्होमः सम्यक्सम्पत्तिदायकः।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं नीलैर्दुष्टान् वशं नयेत्।
श्वेतोत्पलैः श्रियं राज्यं लभते हवनात् प्रिये।।
कह्लारहवनैर्लक्ष्मीं सर्वसौभाग्यमेव च।
बन्धूककुसुमैर्होमैः सर्वसत्त्वान् वशं नयेत्।।
क्षीरं दधि मधु त्वाज्यं पृथग् हुत्वा वरानने।
आयुर्बलमथाऽऽरोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम्।।
रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः।
मधुरत्रययोगेन गुरुणोक्तविधानतः।।
परराष्ट्रं वशं नीत्वा कामभोगी भवेन्नरः।
द्राक्षाभिर्लक्षहोमेन नारिकेलफलैस्तथा।
राजानो वशमायान्ति समृद्धिरतुला तथा।।
जम्बूफलैः स्त्रियः सर्वा वश्या भवन्ति निश्चितम्।
श्रीफलैरतुलां लक्ष्मीं पत्रैश्चापि तथा भवेत्।।
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसैर्वशगा नृपाः।
तिलाज्यहोमतो देवि सर्वकार्याणि साधयेत्।।
घृतपायसहोमेन सिताज्यमधुना सह।
त्रैलोक्यं वशमायाति धनधान्यमवाप्नुयात्।।
सोपस्कारैश्च वटकैरुपसर्गान् विनाशयेत्।
कर्पूरस्य च होमेन वाग् वश्या जायते नृणाम्।।
कुङ्कुमैर्होमतो देवि सर्वदुःखान् विनाशयेत्।।
कस्तूरीहोमतो देवा वशगा नात्र संशयः।
चन्दनागुरुहोमेन सर्वांल्लोकान् वशं नयेत्।।

हवनद्रव्याणां प्रमाणञ्चोक्तं तत्रैव—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धये।
पुष्पं समग्रं जुहुयाच्छतसंख्यास्तिलास्तथा।।

लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं कर्षप्रमाणकम्।।
चुल्लुकार्धं मधु क्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत्।
समग्रैश्च सखण्डैश्च फलानाञ्च यथेच्छया।।
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि।
नारिकेलस्य खण्डस्तु स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम्।।
पर्वस्थाने चेक्षुदण्डं मनःसन्तोषकारकम्।
द्राक्षाफलं समग्रं स्यात् गुञ्जमानं ततो भवेत्।।
कर्पूरकौषिकादीनां मनःसन्तोषकारकम्।।
एतदाहुतिमानञ्च कथितं सर्वसिद्धिकृत्।
किंशुकैः पापसङ्घातनाशकैरथवा प्रिये।
नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैः संगृहीतैर्वरानने।।
यथाशक्त्या तु मिलितैर्होमं कुर्याद् विचक्षणः।
सर्वविघ्नसमूहं तन्नाशयेन्नात्र संशयः।। इति।

नित्य होम करने के लिये वह अपने दाहिने ओर एक हाथ लम्बी-चौड़ी तथा चार अंगुल ऊँची वेदी बनाये। उस वेदी पर त्रिकोण और षट्कोण बनाये। षट्कोण के ६ कोणों में हृदय आदि षडङ्गों की तथा मध्य में देवी की पूजा करे।।५६४-५६५।।

[क्रव्यादांशत्यागो वह्निस्थापनञ्च]

क्रव्यादांशं परित्यज्य वह्निं तत्र नियोजयेत्।

[वह्निदेवतयोरैक्यं विभाव्य इष्टपूजा]

वह्निदैवतयोरैक्यं ध्यात्वेष्टं तत्र पूजयेत्।।५६६।।

अग्नि से क्रव्यादांश का परित्याग करके कुण्ड (स्थण्डिल) में अग्नि को स्थापित करें। अग्नि में भगवती का आवाहन करके अग्नि और देवता को एक मानते हुए अग्नि में देवता का पूजन करें।।५६६।।

विमर्श—अग्नि के दो रूप हैं—हव्यवाह और कव्यवाह। हव्यवाह अग्नि का वह रूपभेद है, जो देवताओं को दी गई आहुति और हवि उन तक पहुँचाता है। जो अग्नि श्मशान आदि में मुर्दों तथा कच्चे मांस को जलाती है, वह कव्यवाह है। हवन के लिये अग्नि का यह रूपभेद ग्राह्य नहीं है। अत: स्थण्डिल (या कुण्ड में) में अग्नि स्थापित किये जाने के पूर्व अग्नि में से कुछ अंगार उठाकर उसे क्रव्याद समझते हुए नैर्ऋत्य की ओर फेंक दिया जाता है। मन्त्र है—हुं फट् क्रव्यादिभ्यः।' यह क्रव्यांश का परित्या है।

[घृतशोधनम्]

घृतं स्थाल्यां विनिक्षिप्य मूल मन्त्रेण शोधयेत्।

[देव्या व्याहृतिहोम:]

देव्या व्याहृतिहोमञ्च कृत्वा साधकसत्तम:।

[जपदशांशहोम:]

स्वाहान्तमूल मन्त्रेण दशांशं होममाचरेत्।।५६७।।

इसके बाद किसी कटोरेनुमा गहरे पात्र में घी लेकर मूल मन्त्र से उसका शोधन करें। व्याहृतियों से आहुतियाँ देने के बाद स्वाहान्त मूल मन्त्र से जप का दशांश हवन करें। स्वाहान्त मूल मन्त्र का अर्थ है—मूल मन्त्र के आगे स्वाहा। यथा—'ऐं क्लीं सौ: स्वाहा'।।५६७।।

[प्राणाहुत्यादिदानम्]

प्राणाहुतिस्तु मूलेन षडङ्गेन षडाहुती:।।५६८।।

[आवरणदेवताहोम:]

तत आवृतिदेवार्थमेकैकामाहुतिं हुनेत्।

[मूलेन षडाहुतिहोम:]

पुनर्मूलेन मन्त्रेण षडाहुतिं समाचरेत्।।५६९।।

[आहुतित्रयम्]

प्रणवञ्चाग्नये स्वाहा त्रिधाहुतिमनेन तु।

[देव्या विसर्जनम्]

विसर्जयेत्ततो देवीं नित्यहोम इति स्मृत:।।५७०।।

तत्पश्चात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा' आदि मन्त्रों से पञ्च प्राणाहुति देकर षडङ्ग मन्त्रों से षडाहुति दें। आवरण देवताओं को उनके नाम-मन्त्रों से एक-एक आहुति देकर मूल मन्त्र से फिर से ६ आहुति दें।

'ॐ अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ देकर अग्नि से देवी का विसर्जन करके अग्नि का भी विसर्जन करें। यह नित्य होमपद्धति है।।५६८-५७०।।

विमर्श—चूँकि अष्टम प्रकाश में होम-विधि का विस्तार से निरूपण किया जा चुका है, अत: यहाँ उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

[होमदशांशेन तर्पणम्]

ततो होमदशांशेन तर्पयेज्जातिभेदत:।

[दुग्धेन तर्पणोपदेश: मद्येन तर्पणनिषेधश्च]

दुग्धेन तर्पणं कुर्यान्न तु मद्येन तर्पयेत्।।५७१।।

ततो होमेति। जातिभेदत इति। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रा: स्वस्वजात्युक्तद्रव्यैर्होमसंख्यादशमांशसंख्याकैस्तर्पयेदित्यर्थ:। तत्रापि ब्राह्मणो दुग्धेन तर्पणं कुर्यात् न तु मद्येन तर्पयेदिति पुन: पुनर्निषेधति निषेधदार्ढ्यार्थम्।

इसके बाद ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य एवं शूद्र जाति के साधक अपनी-अपनी जाति के लिये यथा-निर्धारित द्रव्य से तर्पण करें। तर्पण की संख्या हवन (आहुति) की संख्या की दशांश होती है। भगवती का तर्पण दूध से किया जाय, मद्य से तर्पण नहीं करें।।५७१।।

[मद्यस्य त्रैविध्यम्]

तर्पणं बहुधा विन्द्यान्मधुपिष्टगुडोद्भवम्।।५७२।।

तर्पणं बहुधेति। अत्र लक्षणया तर्पणशब्दस्य मद्यार्थकत्वं गृहीत्वा तस्य बहुविधत्वं दर्शयति—**मधुपिष्टगुडोद्भवमिति।** सुरायास्त्रैविध्यमुक्तं मनुसंहितायामेकादशाध्याये—

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।। इति।

तर्पण द्रव्य के तीन प्रकार हैं—मधु (शहद), चावल की पिष्टि तथा गुड़ से बनी मदिरा।।५७२।।

[ब्राह्मणादीनां तर्पणद्रव्याणि]

गोक्षीरं ब्राह्मणो दद्याद् गव्यं मद्यञ्च बाहुजः।
वैश्यस्तु माक्षिकं दद्याच्छूद्रः पुष्परसादिकम्।।५७३।।

ब्राह्मण गाय के दूध से, क्षत्रिय घी और गुड़ की बनी मदिरा से, वैश्य शहद और शूद्र फूलों के रस (से बनी मदिरा) से तर्पण करे।।५७३।।

[देव्यै मद्यदाननिषेधः]

न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कदाचन।

[ब्राह्मणस्य वामाचारिणोऽपि मद्यदाननिषेधः]

वामकामो ब्राह्मणोऽपि मद्यं मांसं न भक्षयेत्।।५७४।।

न दद्यादिति। वचनमिदमुक्तं श्रीक्रमे। अत्र संवादिप्रमाणमुक्तं मेरुतन्त्रे प्रथमपटले—

वाममार्गेण तच्चाऽऽद्यवर्णं हित्वा प्रशस्यते।
ब्राह्मणस्तु सुरां पीत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्।
वाममार्गी ब्राह्मणोऽपि मद्यं मासं न भक्षयेत्।। इति।

रुद्रयामले च—

वेदत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रदारनिषेवणात् ।
तत्क्षणाज्जायते विप्रश्चाण्डालदपि गर्हितः।। इति।

कालीकुलामृते चतुर्थपटले च—

ब्राह्मणस्तु सुरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते।
ब्राह्मणः पशुराख्यातः पाशवं कल्पमाचरेत्।।

कालीकुलार्णवे च—

सुरा वै मलमन्त्रानां पुरीषं मलमुच्यते।
तस्मात् ब्राह्मणराजन्यां वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।।
सुरादर्शनमात्रेण कुर्यात् सूर्यावलोकनम्।
तत्सम्याघ्राणमात्रेण प्राणायामत्रयञ्चरेत्।। इति।

कुब्जिकातन्त्रे च—

भुक्त्या मत्स्यञ्च मांसञ्च स्पृष्टा हेतुश्च भैरवि।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति।। इति।

वाराहीतन्त्रे नवमपटलेऽपि—

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मैथुनं परमेश्वरि।
मानुषेण बलिं पञ्च ब्राह्मणो न स्मरेत् क्वचित्।। इत्यादि।

ब्राह्मण महादेवी को कदापि मद्य समर्पित न करे। वामाचारी होने पर भी ब्राह्मण मद्य-मांस का भक्षण नहीं करे।।५७४।।

[मद्येऽनुकल्पः]

यत्रैव विहितं मद्यं तत्र तत्र द्विजोत्तमः।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे सृजेन्मधु।।५७५।।

[बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रमतेन निरुक्ततर्पणप्रकारः]

एवमेव प्रकारेण तर्पयेत्त्रिपुरेश्वरीम्।
बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रस्य मतमेतदुदीरितम्।
सत्यत्रेताद्वापरेषु क्रमेण परिकीर्त्तितः।।५७६।।

यत्रैवेति। मद्ये अनुकल्पविधायकं वचनं कुलचूडामणौ—

यत्राऽऽसवमवश्यन्तु ब्राह्मणस्तु विशेषतः।
गुडार्द्रकं तदा दद्यात् ताम्रे वा विसृजेन्मधु।। इति।

पूजा-पद्धति में जहाँ-जहाँ मद्यदान का प्रावधान है, ब्राह्मण साधक मद्य के स्थान पर काँसे के पात्र में नारियल का पानी अथवा ताँबे के पात्र में शहद अर्पित करे। 'बृहत् श्रीक्रमतन्त्र' में सतयुग, द्वापर और त्रेता में त्रिपुरा के तर्पण के लिये यही क्रम बताया गया है।।५७५-५७६।।

[ज्ञानार्णवमतोल्लेखः]

ज्ञानार्णवमतेनापि वर्णानुक्रमभेदतः।
कथ्यन्ते द्रव्यभेदास्तु सविकल्पस्य मन्त्रिणः।।५७७।।
क्षीराज्यमधुमैरेयद्रव्यभेदा भवन्ति हि।।५७८।।

वर्णानुक्रमभेदत इति। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रभेदेनेत्यर्थः। **कथ्यन्ते इति।** तथा च सविकल्पानां ब्राह्मणादिसाधकानां यथासंख्यं दुग्ध–घृत–मधु–मैरेयैस्तर्पणं भवतीति भावः। मैरेयलक्षणे शब्दकल्पद्रुमधृतं माधवाचार्योक्तं प्रमाणम्—

सीधुरिंक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत्।
मैरेयं धातकीपुष्पं गुडधानाम्लसंहितम्।। इति।

ज्ञानार्णव तन्त्र में वर्ण-भेद से सविकल्प साधक के लिये अलग-अलग तर्पण द्रव्य बताये गये हैं। तदनुसार ब्राह्मण गाय के दूध से, क्षत्रिय घी से, वैश्य शहद से और गुड़ मैरेय (आसव) से तर्पण करें।।५७७-५७८।।

विमर्श—प्रस्तुत ग्रन्थ के निबन्धनकार श्रीपूर्णानन्द परमहंस ने सपर्या-क्रम में भगवती को कुण्डगोलोद्भव द्रव्य और स्वयम्भू कुसुम समर्पण (श्लोक ४४०), अमृत (मद्य) से तर्पण (श्लोक ४६७) 'मत्स्य-मांसयुक्त नैवेद्य अर्पण (श्लोक ४४८) तथा स्वगात रुधिरदान की विधि (श्लोक संख्या ५५२-५५३) बताने के बाद 'बृहत् श्रीक्रमतन्त्र' और 'ज्ञानार्णवतन्त्र' का उपर्युक्त अभिमत प्रस्तुत करके अपनी उदार दृष्टि एवं सदाशयता का परिचय दिया है। 'श्रीक्रमतन्त्र' के अनुसार भगवती के तर्पण के लिये मद्य का उपयोग नहीं किया जाय तथा ब्राह्मण साधक गाय के दूध से तर्पण करें। ज्ञानार्णव ने पृथक्-पृथक् वर्णों के साधकों के लिये पृथक्-पृथक् तर्पण द्रव्य बताये हैं। ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार श्री भुवनचन्द्र सांख्यतीर्थ ने मेरुतन्त्र, रुद्रयामल, कालीकुलार्णव, कुब्जिका तन्त्र, वाराहीतन्त्र तथा कुलचूड़ामणितन्त्र से प्रचुर उद्धरण प्रस्तुत करके 'श्रीक्रम' के उपर्युक्त अभिमत का समर्थन किया है; लेकिन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत सपर्या-क्रम से स्पष्ट है कि 'श्रीक्रम' आदि ग्रन्थों का उपर्युक्त अभिमत वीराचारी अर्चन-पद्धति में सर्वतोभावेन स्वीकार्य और सर्वमान्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो तत्रभवान् पूर्णानन्द परमहंस ने भगवती को मत्स्य-मांसयुक्त नैवेद्य, स्वगात रुधिरदान, कुण्डगोलोद्भव द्रव्य-समर्पण का विधान नहीं बताया होता। यह अत्यन्त गम्भीर विषय है, जिसकी विस्तृत पर्यालोचना आवश्यक है।

[आत्मनः कामकलारूपचिन्तनम्]

कामी कामकलारूपमात्मानं चिन्तयेत्ततः।
पूर्वोक्तेनैव विधिना चिन्तयेत् सुन्दरीं पराम्।।५७९।।

कामीति। आत्मानं कामकलारूपं चिन्तयेदित्यर्थः। कामकलायाः स्वरूपमुक्तं गन्धर्वतन्त्रे त्रिंशपटले—

तत्त्रैविध्यं शृणु प्राज्ञे सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
स्थूलं समं तथा नाम सूक्ष्मं मन्त्रतनूं तथा।।
नभोबिन्दुमुखी सा च चन्द्र-सूर्य-तमःप्रभा।
स्वमेरु-हार्दकलया शोभमाना मही यदा।।
पातालतलविन्यस्ता त्रिलोकीयं कलात्मिका।
ललितायास्त्रिभिर्बीजैः प्रकाशार्थो य ईर्यते।।
तेषां विमर्श ईकारो बिन्दुना यत् त्रिधागतम्।
तत् तुरीयस्वरूपार्णबिन्दुत्रयवदीरितम्।।
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मध्यताञ्च गते रवौ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्दकला भवेत्।।
तदात्मकस्तु देव्यास्ते साधकस्य च तद् भवेत्।
तदुद्भवं शृणु प्राज्ञे महोदयकरं परम्।।
ऊर्ध्वबिन्द्वात्मकं वक्त्रमधो बिन्दुद्वयात्मकम्।
कुचद्वयन्तु तच्छेषैः शेषाङ्गाणि विभावयेत्।।
इति ते गदिता कामकलाया बाह्यभावना।
तामेव त्वां पुनर्वक्ष्ये भावनामान्तरात्मिकाम्।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्फुरद्विद्युल्लताकृतिम्।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवि तद्विद्यास्वररूपिणीम्।।
षट्चक्रभेदिनीं देवीं बिन्दुत्रयात्मिकां पराम्।
ताञ्च हार्दकलारूपां चिन्तयेत् पद्ममध्यगाम्।।
एवं कामकलारूपा जागर्ति सचराचरे।
सा च त्रयीमयी प्रोक्ता नास्ति किञ्चित् तया विना।।
साम्ना मुखं समाख्यातमृग्यजुर्भ्यां स्तनद्वयम्।
अथर्वणा समाख्याता हार्दरूपा परा कला।।
तुरीयं परमेशानि साक्षाद् ब्रह्मैव केवलम्।
एतत् कामकलाध्यानं गुह्याद् गुह्यतमं परम्।। इति।

यथाविहित द्रव्य से तर्पण करने के बाद कामी अर्थात् कामकला का साधक (मतान्तर से काम्य-कर्म का साधक) कामकलारूपा परादेवी महात्रिपुरसुन्दरी के रूप में अपना ध्यान करे। ध्यान की विधि और रूप का निरूपण इससे पूर्व (श्लोक संख्या ५११-५१४ में) बताया जा चुका है।।५७९।।

सृष्टिचक्रे यजेत् पूर्वां मलयां दक्षिणां स्थितौ।
पश्चिमां प्रलये चक्रे ग्रन्थिस्थानेषु चोत्तराम्।।५८०।।
तासां मन्त्रं प्रवक्ष्यामि ज्ञानार्णवानुसारतः।

चतुराम्नायविद्यामाह—**सृष्टिचक्रे इत्यादि**।

कामकला का ध्यान करने के बाद श्रीयन्त्र के सृष्टिचक्र पर पूर्वाम्नाय, स्थितिचक्र पर दक्षिणाम्नाय, संहारचक्र में पश्चिम आम्नाय तथा तीनों प्रकार के चक्रों की ग्रन्थियों में उत्तराम्नाय का पूजन करे। इन चारो आम्नायों की नायिकाओं के मन्त्र ज्ञानार्णवतन्त्र के अनुसार बताये जा रहे हैं।।५८०।।

विमर्श—आम्नाय-पूजन का क्रम इसी प्रकाश में इससे पूर्व बताया जा चुका है। (द्रष्टव्य—श्लोकसंख्या ३१९ से ३२४)। गुरु-पंक्तिपूजन के बाद और पञ्चपञ्चिकापूजन के पूर्व वहाँ बताये गये आम्नाय-पूजन और यहाँ बताये जा रहे आम्नाय पूजन में अन्तर यह है कि वहाँ (श्लोकसंख्या ३१९ आदि में) आम्नायदेवताओं के न तो नाम बताये गये हैं और न उनके मन्त्र। यहाँ आम्नाय नायिकाओं के मन्त्र ज्ञानार्णव तन्त्र के अनुसार बताये गये हैं। एक अन्तर और है—वहाँ 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र' में अधः आम्नाय-पूजन का निर्देश दिया गया है (श्लोक संख्या ३२३); जबकि यहाँ अधः आम्नाय का उल्लेख नहीं है।

शिवचन्द्राग्निदीर्घाक्षिबिन्दुनादकलात्मकम् ।।५८१।।
चन्द्रेशवह्निवामाक्षिनादबिन्दुकलान्वितम् ।
शक्ति कलाढ्यमन्ते च तुर्यबीजमुदीरितम्।।५८२।।
श्रीबीजं कुरु तार्त्तीयं विद्या वेदाक्षरी भवेत्।
एषा पूर्वाम्नायविद्या रुद्रशक्तिरियं भवेत्।।५८३।।

तत्र पूर्वाम्नायविद्यामन्त्रोद्धारमाह—**शिवेति**। शिवो हकारः, चन्द्रः सकारः, अग्नी रेफः, दीर्घाक्षिरीकारः, तथाच प्रथमाक्षरः हसरीं, एवं मन्त्रोद्धारेण द्वितीयः सहरीं, तृतीयः श्रीं, कलाढ्यं शक्तिबीजमिति चतुर्थः कलह्रीम् इति चतुरक्षरी पूर्वाम्नाय–रुद्रशक्तिः। व्यक्तमाह ज्ञानार्णवे दशमपटले—

चतुराम्नायविद्याभिर्मान्यं सिंहासनं प्रिये।
हस्रीमात्मकमुच्चार्य सह्रीमात्मकमद्रिजे।।
शक्तिः कलाभ्यामन्ते च तुर्यं बीजमुदाहृतम्।
श्रीबीजं कुरु तार्तीयं विद्या वेदाक्षरी भवेत्।।
उन्मनी नाम विद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा।।
पूर्वाम्नाये महाविद्या........................। इति।

पूर्वाम्नाय विद्या—शिव (ह), चन्द्र (स), अग्नि (र) जो दीर्घाक्षि (ई) तथा बिन्दु-नाद से युक्त हो। इन वर्णों की योजना से प्रथम कूट निष्पन्न हुआ—'हसरीं'। चन्द्र (स), ईश (ह), वह्नि (र), वामाक्षि (ई) जो बिन्दु-नाद से युक्त है! इस तरह दूसरा कूट निष्पन्न हुआ—'सहरीं'। इसका तीसरा कूट है—'श्रीं'। 'कलाढ्य' अर्थात् 'कल'-सहित शक्तिबीज 'ह्रीं' अर्थात् 'कलह्रीं' चौथा कूट है। इस तरह चार कूटों वाली यह पूर्वाम्नाय विद्या रुद्रशक्ति है।।५८१-५८३।।

मन्त्र-स्वरूप—हसरीं सहरीं श्रीं कलह्रीं।

विमर्श—ज्ञानार्णव में इसका नाम 'उन्मनी' बताया गया है। ज्ञानार्णव में बताया गया (पटलसंख्या ९ का ६०वाँ) श्लोक (चतुराम्नाय आदि) ग्रन्थ की संस्कृत टीका में उद्धृत है। इसका पूजन सृष्टिचक्र अर्थात् चतुरस्र, षोडशार और अष्टार में करें।

वाक्क्लिन्ने कामबीजञ्च मदद्रवे कुले हसौः।
वर्णिता रुद्रवर्णेयं दक्षिणाम्नायदेवता।।५८४।।
अवधूतेश्वरीनाम्नीं ज्ञात्वा तां साधकोऽर्चयेत्।

वाक्क्लिन्ने इति। तथाच 'ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसौ:' इति एकादशाक्षरी दक्षिणाम्नाय विद्या। एनाम् अवधूतेश्वरीं साधकः पूजयेत्। ज्ञानार्णवे मन्त्रोद्धारस्तु—

—दक्षिणाम्नाय उच्यते।
वाग्भवं बीजमुच्चार्य क्लिन्ने कामस्य बीजकम्।
मदद्रवे कुले हस्रौ विद्येयं भोगिनी प्रिये।
दक्षिणाम्नायविद्येयम्—इति।

अवधूतेश्वरी विद्या—देवी अवधूतेश्वरी दक्षिण आम्नाय की देवता हैं। इनका पूजन स्थितिचक्र अर्थात् चतुर्दशार, बहिर्दशार तथा अन्तर्दशार में किया जाता है।

मन्त्रोद्धार—वाक् (ऐं) के बाद 'क्लिन्ने'। तत्पश्चात् कामबीज 'क्लीं' और 'मदद्रवे कुले हसौ:' की योजना करने से दक्षिण आम्नाय की देवता का एकादशाक्षरी मन्त्र निष्पन्न होता है।

मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसौ:।

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र (नवम पटल, श्लोकसंख्या ६१) में दक्षिण आम्नाय की नायिका का नाम 'भोगिनी' बताया गया है, जैसा कि संस्कृत टीका में यथा उद्धृत ज्ञानार्णवतन्त्र के उक्त श्लोक से स्पष्ट है।

वाग्भवञ्च महामायां श्रीबीजं हसखफ्रेमिति।।५८५।।
रुद्रेश्वरेण संभिद्य बिन्दुनादाङ्कितं हसौः।
पञ्चप्रणवमुद्दिष्टं सर्वपक्षेषु दुर्लभम्।।५८६।।

एतत्संपुटितां विद्यां द्वात्रिंशार्णां लिखेद् बुधः।
नमो भगवति प्रान्ते चतुर्थं प्रणवं लिखेत्।।५८७।।
ईश्वराख्यं क्रमेणैव कुब्जिके च पदन्तथा।
ऐमात्मकं परां विद्यां श्रीमात्मकमतः परम्।।५८८।।
अघोरे चैव घोरे अघोरमुखि च संलिखेत्।
क्लिं क्लिं किलियुगं विच्चे कुब्जिका शाम्भवी परा।।५८९।।
पश्चिमाम्नायदेवेशी भोगमोक्षप्रदायिनी।

वाग्भवमित्यादि। तथाच ऐँ, ह्रीँ, श्रीँ, हसखफ्रेँ, हसरौँ, इति एते पञ्च प्रणवाः। एतत्संपुटितां द्वात्रिंशद्वर्णां विद्यां लिखेत्। सा च—नमो भगवति हसखफ्रेँ हौँ कुब्जिके ऐँ ह्रीँ श्रीँ अघोरे घोरे अघोरमुखि क्लिं क्लिं किलि-किलि विच्चे। इति द्वात्रिंशदक्षरी ऋक्। इयं भोगमोक्षप्रदायिनी पश्चिमाम्नायदेवीति विशदोऽर्थः। अत्र यद्यपि ग्रन्थकारेण ज्ञानार्णवमतमुल्लिख्य मन्त्रविन्यासः कृतः, तथाऽपि मुद्रितज्ञानार्णवे मन्त्रोऽयमंशतो भिन्न इति ग्रन्थपाठः प्रदर्श्यते—

—पश्चिमाम्नाय उच्यते।
वाग्भवञ्च परा श्रीँ च हसखफ्रेमिति प्रिये।
हस्रौ मन्तास्ततो देवि पञ्चैते प्रणवाः स्मृताः।।
भगवत्यम्ब आलिख्य पृथक् पदमथेश्वरि।
चतुर्थं प्रणवञ्चैव खसहफ्रेमिति प्रिये।।
कुब्जिके चैव हस्रां च हस्रीं हस्रौँ ततः परम्।
अघोरे चैव घोरे च त्वघोरमुखि चाऽऽलिखेत्।।
हस्रां हस्रीं किणिद्वन्द्वं विच्चे द्वात्रिंशदक्षरी।।
कुब्जिकेयं महाविद्या पश्चिमाम्नायदेवता।। इति।

कुब्जिका विद्या—वाग्भव (ऐं), महामाया (ह्रीं), श्रीबीज (श्रीं), हस्ख्फ्रें (स्वरूप) रुद्रेश्वर तथा नाद-बिन्दु से विभूषित—'हस्रौः'। इस तरह 'ऐं ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रें हस्रौः' ये पाँच प्रणव हैं। इन पाँच प्रणवों से अनुलोम-विलोमक्रम से सम्पुटित ३२ अक्षरों वाली विद्या लिखने से कुब्जिका का स्पष्ट मन्त्र प्राप्त होता है। यह ३२ अक्षरों वाली विद्या है—ऐं नमो भगवति हस्ख्फ्रें कुब्जिके ऐं ह्रीं श्रीं अघोरे घोरे अघोरमुखि क्लिं क्लिं किलि किलि विच्चे।

इस ३२ अक्षरों वाली विद्या को उपर्युक्त पाँच प्रणवों से अनुलोम-विलोमक्रम से सम्पुटित करने से कुब्जिका विद्या का स्पष्ट मन्त्ररूप प्राप्त होगा—ऐं ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रें हस्रौः ऐं नमो भगवति हस्ख्फ्रें कुब्जिके ऐं ह्रीं श्रीं अघोरे घोरे अघोरमुखि क्लिं क्लिं किलि किलि विच्चे हस्रौः हस्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं।

भोग-मोक्ष प्रदान करने वाली भगवती कुब्जिका पश्चिम आम्नाय की नायिका हैं। इनका पूजन संहारचक्र (अष्टार, त्रिकोण और बिन्दुचक्र) में करें।।५८५-५८९।।

विमर्श—यद्यपि उक्त मन्त्र को ज्ञानार्णवानुसारत: कहा गया है, मगर उक्त मन्त्र ज्ञानार्णव में बताये गये मन्त्र से बहुत भिन्न है। ज्ञानार्णवतन्त्र में बताया गया मन्त्रोद्धार संस्कृत टीका में उद्धृत है। इसके अनुसार मन्त्रस्वरूप है—ऐं ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रौं: हस्रौ: भगवति अम्बे हस्ख्फ्रौं: कुब्जिके हस्रां हस्रीं हस्रौ: अघोरे घोरे अघोरमुखि हस्रां हस्रीं हस्रौ: किणि किणि विच्चे हस्रौ: हस्ख्फ्रौं: श्रीं ह्रीं ऐं।

खफ्रेमात्मकमुच्चार्य महाचण्डपदं लिखेत्।।५९०।।
योगेश्वरीपदं पश्चाद् विद्यैषा कालिका मता।
उत्तराम्नायविद्येयं नवार्णा परमेश्वरी।।५९१।।

खफ्रेमिति। तथा च 'खफ्रें महाचण्डयोगेश्वरी' इति नवाक्षरी कालिकानाम्नी उत्तराम्नायविद्या भवति। मन्त्रस्यास्योद्धारो ज्ञानार्णवतन्त्रे—

खफ्रेमात्मकमुच्चार्य महाचण्डपदं लिखेत्।
योगेश्वरीपदं पश्चाद् विद्येयं कालिका प्रिये।।
उत्तराम्नायविद्येयं नाम्ना कालीति विश्रुता।
एताभि: परमेशानि पूज्यं सिंहासनं सदा।। इति।

कालिका-विद्या—भगवती कालिका उत्तर आम्नाय की नायिका हैं। इनका पूजन भगवती त्रिपुरा के पूजन-यन्त्र के तीनों चक्रों की ग्रन्थियों में होता है। इनका नवाक्षरी मन्त्र है—'ख्फ्रें महाचण्ड योगेश्वरि।'

विमर्श—ज्ञानार्णव (१६/८०) के अनुसार उत्तर-आम्नाय का पूजन नौ चक्रों में करना चाहिए—'नवचक्रेषु देवेशि! कौबेराम्नायमर्चयेत्।'

[ग्रहादीनां पूजा]

नवग्रहांश्च मेषादीन्नक्षत्राणि समर्चयेत्।
योगांश्च करणान्येव तिथिमासानृतूनपि।।५९२।।

सूर्यादि नवग्रहों, मेषादि राशियों, नक्षत्रों, योगों, करणों, तिथियों, महीनों और ऋतुओं की भी पूजा करें।।५९२।।

[कलादीनां डाकिन्यादीनां च पूजा]

कलाकाष्ठानि पक्षांश्च डाकिनीं याकिनीं तथा।
लाकिनीं काकिनीञ्चैव साकिनीं ह्वाकिनीमपि।।५९३।।

कला, काष्ठा आदि समयमानों, पक्षों (शुक्ल एवं कृष्णपक्ष) एवं डाकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी तथा हाकिनी आदि योगिनियों की पूजा करें।।५९३।।

[पूजास्थानं फलञ्च]

श्रीचक्रमध्ये संपूज्य साधकः शिवतां व्रजेत्।

[अङ्गबलिदानम्]

अथवाऽङ्गबलिं दद्यादधुना साधकोत्तमः।।५९४।।

उपर्युक्त ग्रहों तथा डाकिनी आदि का श्रीचक्र के मध्य में पूजन करें। तत्पश्चात् साधक अंगबलि दे।।५९४।।

[बलिदानमन्त्रः]

स्वाहान्तेनाऽऽत्मतत्त्वाद्यैर्मूलबीजपुरःसरैः ।

[प्रसादस्वीकरणम्]

तस्याः प्रसादं स्वीकृत्य चुल्लुकार्घ्योदकेन च।।५९५।।

[आत्मसमर्पणम्]

आत्मार्पणं ततः कुर्यात् पूर्वोक्तं मन्त्रमुच्चरन्।

[ईदृशी पूजा पुरश्चरणेऽपि]

पुरश्चरणकालेऽपि सपर्यैषा प्रकीर्त्तिता।।५९६।।

मूल मन्त्र के बीजों के साथ आत्मतत्त्वादि के चतुर्थ्यन्त रूप के बाद 'स्वाहा' की योजना करने से बलिदान मन्त्र बनते हैं। यह मानकर कि भगवती प्रसन्न मुद्रा में बैठी हैं, चुल्लू में अर्घ्य का जल लेकर उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए आत्मसमर्पण करें। पुरश्चरणकाल में भी इसी प्रकार से देवी की सपर्या करनी चाहिए।।५९५-५९६।।

[पराङ्मुखार्घ्यदानम्]

मूल मन्त्रं समुच्चार्य त्रिपुरासुन्दरीति च।
पराङ्मुखार्घ्यस्वाहेति पराङ्मुखार्घ्य ईरितः।।५९७।।

पूजन-क्रम पूर्ण हो जाने पर विसर्जन के पूर्व देवता के चरणों में जो अर्घ्य दिया जाता है, उसे पराङ्मुख अर्घ्य कहते हैं। मूल मन्त्र के बाद 'त्रिपुरसुन्दरी पराङ्मुखार्घ्य स्वाहा' की योजना करने से इसका मन्त्र निष्पन्न होता है।।५९७।।

[देव्यङ्गे सर्वदेवताविलयनम्]

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः शरीरे सर्वदेवताः।
विलीनाः सन्तु मूलेन देव्यङ्गे विहिताः स्मरेत्।।५९८।।

चक्रपूजा के समय देवता के शरीर से रश्मि के रूप में बाहर आकर जिन देवताओं ने पूजा ग्रहण की, पूजा के अवसान पर वे देवता पुनः मूल देवता के शरीर में यथावत् विलीन हो जायँ, यह भावना करनी पड़ती है। मूल मन्त्र के आगे

'श्रीमत् त्रिपुरसुन्दर्याः शरीरे सर्वदेवताः विलीनाः सन्तु' की योजना करने से लयांग मन्त्र निष्पन्न होता है।।५९८।।

[आत्मनः पुनः कामकलारूपचिन्तनम्]

पुनः कामकलारूपमात्मानं परिचिन्तयेत्।

रश्मिदेवताओं को देवी के शरीर में विलीन करने के बाद कामकला के रूप में अपना ध्यान करें।

[विसर्जनम्]

ध्यात्वा चक्रेण सहितां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।।५९९।।
खेचर्या शक्तिचक्रन्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत्।

इसके बाद चक्र (श्रीयन्त्र) सहित त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करके खेचरी मुद्रा दिखायें और 'क्षमस्व' कहकर विसर्जन करें।।५९९।।

[देव्यङ्गे षडङ्गन्यासः]

देवीमूर्त्तौ षडङ्गानि न्यस्य मूलं समुच्चरन्।

[यन्त्रस्थपुष्पाघ्राणम्]

यन्त्रस्थं पुष्पमाघ्राय बद्ध्वा संहारमुद्रिकाम्।।६००।।

देवी की कल्पित मूर्ति में षडङ्ग मन्त्रों से षडङ्ग-न्यास करके संहारमुद्रा से यन्त्र पर चढ़ा हुआ एक फूल मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उठायें। उस फूल को सूँघते हुए यह भावना करें कि श्वासमार्ग से देवी फूल से उठकर मेरे शरीर में प्रविष्ट हो रही हैं। यह भावना करते हुए यह विसर्जनमन्त्र पढ़ें।।६००।।

[विसर्जनमन्त्रः]

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि।
यत्र ब्रह्मादयो देवा लभेयुः परमं पदम्।।६०१।।

यह विसर्जनमन्त्र है। इस मन्त्र से देवी को पूजनयन्त्र से विसर्जित करें।।६०१।।

[विसर्जनानन्तरकृत्योपदेशः]

विसृज्यानेन तां देवीं ततः पूरकवायुना।
ध्यायेत्तु मन्त्रेणानेन देवीं संस्थापयेद् हृदि।।६०२।।

देवी को यन्त्र से विसर्जित करके पूरक वायु के द्वारा हृदय में लाकर स्थापित करके उनका पूर्ववत् ध्यान करें।।६०२।।

(ध्यान करके मानसोपचारों से अर्चन करें)।

[शेषिकासुन्दरीपूजनमन्त्रः]

लेह्यचोष्यान्नपानादि ताम्बूलमनुलेपनम्।
निर्माल्यभोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया।।६०३।।
अनेन मनुना मन्त्री शेषिकां सुन्दरीं यजेत्।

भगवती का विसर्जन करने के बाद साधक नैवेद्य का कुछ अंश तथा भगवती को समर्पित थोड़ा-सा जल लेकर शेषिका सुन्दरी को समर्पित करे। श्लोक संख्या ६०३ 'लेह्य चोष्य ------- शिवाज्ञया' शेषिका सुन्दरी को नैवेद्यांश-समर्पण करने का मन्त्र है।।६०३।।

[कामकलाध्यानम्]

ततः कामकलां ध्यायेद्दुर्वारामिन्दुमालिनीम्।
सेन्दुखण्डाञ्च साकारां निराकारेऽथ मेलयेत्।।६०४।।

ततः अर्थात् इसके बाद वह अर्धचन्द्रशेखरा इन्दुमालिनी देवी कामकला का साकार ध्यान करके उनकी साकार मूर्ति को भावना द्वारा निराकार मूर्ति में विलीन कर दे।।६०४।।

[प्राणायामः षडङ्गन्यासश्च]

प्राणायामं विधायाथ षडङ्गानि न्यसेद् बुधः।

प्राणायाम करके वह षडङ्ग न्यास करे।

[श्रीपादुकापूजा]

तनुत्रयं समुच्चार्य ततः श्रीपादुकां यजेत्।।६०५।।

तनुत्रयमिति। मूलबीजत्रयमित्यर्थः। शिष्टं सुगमम्।

मूल मन्त्र के तीनों कूटों का उच्चारण करके श्रीपादुका की पूजा करे।।६०५।।

[मानसकर्मयोगः]

अथवा मानसे कर्मयोगे तु परमव्ययम्।
मूलोद्गतं शक्तिचक्रं पुनर्मूलं नयेत् क्रमात्।।६०६।।
मूलं चाऽऽत्मनि चिद्रूपे यज्जुष्टं तत् तदेव हि।
अस्मिन्नेवाव्यये तत्त्वे विलीनं तद् विचिन्तयेत्।।६०७।।
प्रवाहं नाशयेत् संविदग्नौ संभेदकर्मणि।
इदन्तालक्षणं द्रव्यं जुहुयादबहिर्मुखः।।६०८।।
पुष्पादिकं ततो घ्रात्वा ह्यन्तर्देशे विनिक्षिपेत्।
कथितः कर्मयोगोऽयं येन तन्निष्ठता भवेत्।।६०९।।

अथवेति। मानसे कर्मयोगे इति ज्ञानयोगे इति भावः। तत्र परममव्ययतत्त्वं मूलाधारे शक्तिचक्रं विचिन्त्य तत् तत्त्वं चिद्रूपे आत्मनि ब्रह्मरन्ध्रस्थितसहस्रदलकमले मेलयित्वा शक्तिचक्रेण मिलितं तन्मूलाधारं समानयेत्। पुनः शक्तिचक्रमिलित-मात्मचक्रम् अस्मिन्नेवाव्यये तत्त्वे विलीनं विभावयेत्। अस्मिन् मेलनकर्मणि जाते ज्ञानाग्नौ बाह्यवस्तुप्रवाहं भस्मीकुर्यात्, एवञ्च अन्तर्मुखो घटादिबाह्यवस्तूनि तत्र नाशयेत्। तथाच ज्ञानमयं नित्यं वस्तु एव प्रकाशितं भवेदात्मनीति संक्षेपः। अनेन कर्मयोगाभ्यासेन आत्मनिष्ठता भवेदिति भावः।

अथवा विचक्षण साधक बाह्य पूजा न करके अथवा बाह्य पूजन के साथ ही मानस कर्मयोग कर सकता है। इस ध्यानयोग में साधक मूलाधारचक्र में परं अव्यय तत्त्वरूप में शक्तितत्त्व का ध्यान करे। तत्पश्चात् वह मूलाधारस्थ शक्तितत्त्व को मूलाधार चक्र से उठाकर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार में लाये और उसे ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चिद्रूप आत्मा (परमात्मा) में विलीन कर दे। तत्पश्चात् शक्तितत्त्वयुक्त उस आत्मा को मूलाधार में लाये। फिर शक्तिचक्र-सम्मिलित उस आत्मचक्र को इसी अव्ययतत्त्व में विलीन करने की भावना करे। इस मेलन-कर्म से उत्पन्न ज्ञान—अग्नि में सभी भेदात्मक कर्म-व्यवहार के प्रवाह तथा इदन्ता लक्षण वाले सभी बाह्य वस्तुओं के वृत्तिप्रवाह को भस्मसात् कर दे। इस प्रकार अन्तर्मुख हुआ साधक चित्त में उठने वाले घट-पटसम्बन्धी सभी वृत्तियों और विचारों का विनाश करके उसे अर्थात् चित्त को सर्वथा शून्य कर दे। देवी को समर्पित किये जाने योग्य पुष्पादि द्रव्यों को सूँघकर उन्हें अपने अन्तर्देश में स्थित उस अव्ययतत्त्व को अर्पित करने की भावना करे। इस ज्ञानयोग के निरन्तर अभ्यास से साधक को आत्म-निष्ठता की स्थिति प्राप्त होती है॥६०६-६०९॥

[कर्मयोगाभ्यासे सिद्धिः]

एतदभ्यासतश्चैव सिद्धो भवति योगिराट्॥६१०॥

इस मानस कर्मयोग का निरन्तर अभ्यास करने से साधक सिद्ध होकर योगिराज बन जाता है॥६१०॥

विमर्श—पद्धतिग्रन्थों में कहा गया है कि पूजा समाप्त हो जाने के बाद एक ताम्रपात्र में लाल चन्दन, अक्षत और लाल फूल और जल लेकर उसे मस्तक तक उठाकर 'ॐ ह्रां ह्रीं हंसः सूर्य एष ते अर्घ्यः स्वाहा' से सूर्य को अर्घ्य देकर प्रार्थना करें—

ॐ॥ यज्ञश्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु, भास्करस्य प्रसादतः॥

इसे छिद्रावधारण कहते हैं। इसके बाद यन्त्र पर से एक फूल उठाकर 'ॐ क्लीं नमः' का उच्चारण करते हुए उसे सूँघें। फिर यन्त्र पर लगे गन्ध से अपने माथे पर तिलक लगायें। मन्त्र है—

ॐ।। यं यं स्पृशामि पादेन, यं यं पश्यामि चक्षुषा।
स एव दासतां यातु, यदि शक्रो क्षमो भवेत्।।'

पूजा से बचा हुआ थोड़ा-सा गन्ध लेकर उसमें अर्घ्य-जल मिलाकर मूल मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित करे। उस द्रव्य का साधक अपने सिर पर प्रोक्षण करें।

[निर्माल्यादीनां धारणाद्युपदेश:]

निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गमनुलेपनम्।
नैवेद्यं चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने।।६११।।

निर्माल्यधारणादिकमुपदिशति—निर्माल्यमिति। व्यक्तमुक्तं शिवार्चनचन्द्रिका-धृतमालिनीतन्त्रे—

अर्घ्यतोयेन देवेशि गन्धं पूजावशेषितम्।
आलोड्य किञ्चिन्मूलेन मन्त्रेण त्वष्टकं शिवे।।
प्रोक्षयेत् तेन तोयेन स्वात्मानं मूल मन्त्रतः।
निर्माल्यं मस्तके धार्यं मूल मन्त्रेण मन्त्रिणा।।
प्राश्य पादोदकं देवि नैवेद्यं विभजेत् प्रिये।
तद्भक्तेभ्यः स्वयं भुक्त्वा तन्मयो विहरेत् सुखम्।। इति।

तत्रपि विशेषः पिच्छिलातन्त्रे एकादशपटले—

जवापुष्पं महेशानि दद्यान्न धारयेत् क्वचित्। इति।

निर्माल्य को सिर पर रखकर बचे हुए गन्ध-चन्दन आदि को अपने विभिन्न अंगों में लगाये। प्रसादरूप नैवेद्य को स्वयं खाये और देवीभक्त अन्य साधकों को प्रदान करे।।६११।।

विमर्श—पिच्छिला तन्त्र में कहा गया है कि भगवती के भक्त और साधक कभी भी जवा-पुष्प को धारण नहीं करें।

[गुरुप्रणाम:]

ततश्च गुरवे दद्यान्नमस्कारत्रयं सुधीः।।६१२।।

देवता की पूजा समाप्त करके देवीभक्त साधक अपने गुरुदेव को तीन बार प्रणाम करे।।६१२।।

[शङ्खजलप्रशंसा]

देवार्चनावशिष्टं यत् सलिलं शङ्खमध्यगम्।
अङ्गे लग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति।।६१३।।

देवता के अर्चन के बाद शंख में जो जल शेष रह गया है, उसे अपने शरीर में लगाने से मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे जघन्य पाप से भी मुक्त हो जाता है।।६१३।।

अन्त में श्रीयन्त्र को अच्छी तरह धोयें और उस जल को निम्न मन्त्र पढ़ते हुए ग्रहण कर लें—

[श्रीचक्रपादोदकप्रशंसा]

गङ्गापुष्करनर्मदासु यमुनागोदावरीगोमती-
गङ्गाद्वारगयाप्रयागबदरीवाराणसीसिन्धुषु ।
रेवाशोणसरस्वतीप्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम्।।६१४।।

इस ब्रह्माण्ड में गंगा-नर्मदा-यमुना-गोदावरी-गोमती-रेवा-सोन-सरस्वती और सिन्धु आदि जितनी भी पवित्र नदियाँ हैं, उनमें स्नान करने से तथा पुष्कर-हरिद्वार-गया-प्रयाग-वाराणसी-जैसे तीर्थों की यात्रा करने से जो पुण्य मिलता है, उससे हजारों-करोड़ों गुना अधिक पुण्य श्रीचक्र के पादोदक का पान करने से मिलता है।।६१४।।

[भङ्ग्या स्वोक्तौ प्रामाण्योपन्यास:]

नानातन्त्रमतं ज्ञात्वा श्रीगुरोर्मतमेव च।
पूर्णानन्देन कृतिना सपर्यैषा प्रकीर्त्तिता।।६१५।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ
सपर्याविवरणं नामाष्टादश: प्रकाश:।।१८।।

अनेक प्रकार के तन्त्रग्रन्थों को पढ़कर तथा अपने गुरुदेव का मत जानकर ग्रन्थकर्ता श्री पूर्णानन्द द्वारा यह पूजा-विधान कहा गया है।।६१५।।

श्रीपूर्णानन्द परमहंस-विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के सपर्या-विवरण नामक अठारहवें प्रकाश का 'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१८।।

◆

एकोनविंशः प्रकाशः

[त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्राणि]

त्रिपुरार्णवोक्तं त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्

अथ स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि त्रिपुरार्णव ईरितम्।

अर्चन के बाद देवता की स्तुति की जाती है। अत: पिछले अध्याय में भगवती त्रिपुरा का अर्चन-विधान प्रस्तुत करने के बाद इस प्रकाश में त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त सुन्दरीस्तोत्र, भगवान् शंकराचार्य-कृत त्रिपुरास्तोत्र और त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त कवच प्रस्तुत किये गये हैं। इस क्रम में यह प्रथम स्तोत्र है।

किं किं द्वन्द्वं दनुजदलिनि क्षीयते न श्रुतायां
का का सिद्धिः कुलकमलिनि प्राप्यते नार्चितायाम्।
का का कीर्त्तिः सुरवरनुते व्याप्यते न स्तुतायां
कं कं भोगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम्।।१।।

किं किमिति। पद्यमिदं तन्त्रसारोक्तकिङ्किणीस्तोत्रस्य प्रथमश्लोकमनुवदति पाठभेदेन।

हे माते दनुजदलिनि! आपके पावन चरित का श्रवण करने के हमारे जीवन के कौन-कौन से द्वन्द्व क्षीण नहीं हो जाते अर्थात् सभी द्वन्द्वों से आपके भक्तों को छुटकारा मिल जाता है। आपकी पूजा करने से हे कुलकमलिनि, कौन-सी सिद्धि नहीं मिलती अर्थात् सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आपकी स्तुति करने से मनुष्य की सभी यशोकामनायें पूरी हो जाती हैं। हे माँ त्रिपुरे! जो भी व्यक्ति पूर्ण मनोयोग से आपका आलम्बन, आपका आश्रय, आपका सहारा पकड़ लेता है अर्थात् आप पर पूर्णत: निर्भर हो जाता है, आप उसे संसार के सारे सुखभोग लुटा देती हैं। उसे संसार के सारे सुखभोग स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं।।१।।

विमर्श—'द्वन्द्व' का कोषगत अर्थ है—जोड़ा—परस्पर विरोधी गुण-धर्म वाले पदार्थों या स्थितियों का जोड़ा, जो एक-दूसरे के बाद क्रम-क्रम से आते-जाते रहते हैं। यथार्थ यह है कि व्यष्टि और समष्टि जीवन द्वन्द्व पर आधारित है। 'एक सद् रूप ब्रह्म' के द्विधा होते ही जन्म-मृत्यु, जय-पराजय, सुख-दु:ख, लाभ-हानि आदि का जो द्वन्द्व-प्रवाह प्रारम्भ हुआ, उसी में डूबता और उतरता हुआ व्यष्टि और समष्टि जीवन प्रवहमान है। इस द्वन्द्वप्रवाह से छुटकारा पाने से समत्वरूप योग और योग से मुक्ति मिलती है, जैसा कि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रता:।। (८/२८)
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।। (५/३)
द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदु:खसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तद्।। (१५/५)

दनुजों का दलन करने वाली भगवती त्रिपुरा अपने भक्तों को भवसागर के द्वन्द्वों से उभारकर उन्हें मुक्ति प्रदान करती हैं। मोक्ष प्रदान करने के पूर्व उन्हें सर्वविध संतोष प्रदान करने के लिये सभी प्रकार के सांसारिक सुख, भोग, ऐश्वर्य, यश-कीर्ति, कलत्र-सन्तति एवं अणिमा आदि अतिमानवीय सिद्धियाँ भी प्रदान करती हैं और इस तरह उनकी यह महिमा चरितार्थ हो जाती है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्ष: यत्रास्ति मोक्ष: न च तत्र भोग:।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

तात्पर्य यह कि यदि भोग और मोक्ष दोनों ही एक साथ पाना है तो अनन्य चित्त से भगवती त्रिपुरा का शरण ग्रहण करके यथाविधि उनकी साधना और उपासना करो।

कुलकमलिनि—जीव, प्रकृति, दिक्, काल, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—ये ९ कुल हैं। इन ९ कुलों से युक्त कमलिनि अर्थात् त्रिपुरा।

सुरवरनुता—ब्रह्म-इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं से वन्दिता।

सकुसं सकु(?)सं रम्भ स्वारिता मोक्षविभ्रमे।
चिच्चन्द्रमण्डलान्त:स्थे नमस्ते हरवल्लभे।।२।।

हे शिवप्रिये! चित् चन्द्र-मण्डल में रहने वाली देवि! आपका भक्त हर्ष और अमर्ष किसी भी भाव से आपको एक बार भी पुकारता है तो उसके भाव पर विचार किये बिना, अपनी भक्तवत्सलतावश उसे मोक्ष तक प्रदान कर देती हो।।२।।

जगदुद्धारणोद्योगयोगभोगवियोगिनि ।
स्थितिभावस्थिते देवि नम: स्थाणुप्रियेऽम्बिके।।३।।

संसार की सृष्टिप्रक्रिया के समारम्भ के लिये 'शिव-संयोग'रूप भोग का परित्याग करके संसार में स्वयं ही स्थितस्वरूपा होकर रहने वाली जगन्मातृरूपा तथा स्थाणु नाम वाले शिव की प्रिया, हे देवि! आपको शत-शत प्रणाम है।।३।।

भावाभावपृथग्भावानुभावे वेदकर्मणि।
चैतन्यपञ्चके देवि नमस्तुभ्यं हराङ्गने।।४।।

हे देवि! आप भावस्वरूपा भी हो, अभावस्वरूपा भी हो, तथापि आपका वास्तविक स्वरूप इन दोनों से सर्वथा भिन्न भी है। वेदविहित कर्मों के अनुष्ठान से ही आपके वास्तविक स्वरूप की प्रतीति होती है। जीवों के समस्त शोक-मोह का

हरण करने वाले हर (शिव) की अंगना (पत्नी) तथा चैतन्यपञ्चक में निवास करने वाली देवि! आपको नमस्कार है॥४॥

चैतन्यपञ्चक—अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश का एक पञ्चक है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वक्, जिह्वा, चक्षु, घ्राण) का दूसरा कोश पञ्चक है। पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ) का तीसरा पञ्चक है। पाँच प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) का चौथा पञ्चक है एवं शरीर के घटक पाँच महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, सलिल और पृथ्वी) का पाँचवाँ पञ्चक है। इन कोशपञ्चकों में व्याप्त होकर भगवती त्रिपुरा इन्हें चैतन्यता प्रदान करती हैं।

सृष्टिस्थित्युपसंहारप्रत्यूर्जितपदद्वये।
चिद्विश्रान्तिमहासत्तामात्रे मातर्नमोऽस्तु ते॥५॥

इस संसार के सृष्टि-स्थिति तथा संहाररूप सभी कार्य आपके चरण-कमलों के प्रताप से स्वयं ही सम्भव और सम्पन्न होते हैं। एतदर्थ आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। एकमेव-अद्वितीय-सन्मात्र-विशुद्ध-ज्ञानरूप ब्रह्म में कल्पित स्फुरणात्मक विक्षोभ के कारण ही जगत् की सृष्टि आदि क्रियायें होती हैं। जगत् के उपसंहार एवं विक्षोभ के विलीन हो जाने पर ज्ञान की विश्रान्ति अवस्था में कूटस्थ, अचल परम सत्ता (ब्रह्म) के रूप में केवल आपकी एकमात्र सत्ता रहती है। ऐसी एकमात्र सत्ता स्वरूप वाली माते, आपको नमस्कार है॥५॥

वह्न्यर्कशीतकिरणब्रह्मचक्रान्तरोदिते।
चतु:पीठेश्वरि शिवे नमस्ते त्रिपुरेश्वरि॥६॥

श्रीचक्र के सर्वान्त:स्थ अग्नि-सूर्य और सोमात्मक त्रिकोण के मध्य में बिन्दु रूप से स्थित एवं चारो पीठों की स्वामिनी, हे त्रिपुरेश्वरि, हे शिवे! आपको प्रणाम है॥६॥

विमर्श—कामरूप, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा उड्डीयान—ये चार शक्तिपीठ हैं।

चराचरमिदं विश्वं प्रकाशयसि तेजसा।
मातृकारूपमास्थाय तस्यै मातर्नमोऽस्तु ते॥७॥

मातृका (शब्दब्रह्म) रूप में स्वयं को अभिव्यक्त कर अपनी सृजनात्मक शक्ति (सामर्थ्य) से जो इस चराचर जगत् को प्रकाशित करती है, विश्वमातृकास्वरूपा उस त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम है॥७॥

विमर्श—विस्फोटवादियों के अनुसार नित्य-अव्यक्त-स्फोटात्मक शब्द (शब्दब्रह्म) से ही विश्वरूप अर्थ की उत्पत्ति होती है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मातृका रूप स्फोटात्मक शब्दरूप ही है।

स्मृता भवभयं हंसि पूजिताऽसि शुभङ्करि(री)।
स्तुता त्वं वाञ्छितं वस्तु ददासि करुणावरे।।८।।

स्मृतेति। पद्यमिदमुपलभ्यते किङ्किणीस्तोत्रेऽपि।

हे करुणामयी माँ! जो भक्तजन आपका स्मरण करते हैं, आप उनके सभी सांसारिक भयों-सहित जन्म-मरणरूप महाभय का भी विनाश कर देती हैं। भक्तों के द्वारा पूजिता होने पर आप उनका सर्वविध कल्याण करती हैं। जो भक्तजन नित्यप्रति आपकी स्तुति करते हुए आपकी महिमा का गान करते हैं, आप उनकी मनचाही मुरादें पूरी करती हैं।।८।।

भक्तस्य नित्यपूजायां रतस्य मम साम्प्रतम्।
वाग्भवादिमहासिद्धिं देहि त्रिपुरसुन्दरि।।९।।

हे देवि त्रिपुरसुन्दरि! मैं नित्यप्रति आपकी ही भक्ति करता हूँ। हे माँ! आप अपने इस नित्य भक्त पर कृपा करके उसे वाक्सिद्धि आदि महासिद्धियाँ प्रदान कीजिये।।९।।

परमानन्दसन्दोहप्रमोदभरनिर्भरे।
दुःखत्रयपरिम्लानवदनं पाहि मां शिवे।।१०।।

हे माँ! आप परमानन्दमयी हैं। आनन्द के अतिरेक से आपका मुखमण्डल हमेशा दमकता रहता है। ऐसी दीप्तानना देवी का भक्त होने के बावजूद त्रिविध तापों से मेरा मुख परिम्लान है, निस्तेज है। हे माते! इन त्रिविध तापों से मेरी रक्षा करें। मुझ पर आनन्दवर्षा करें, ताकि मेरा निस्तेज मुख भी प्रमुदित हो जाय।।१०।।

शब्दब्रह्ममयि यच्च देवि त्रिपुरसुन्दरि।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण मदनुग्रहात्।।११।।

हे शब्दब्रह्ममयि देवि! मैंने यथासामर्थ्य आपकी जो पूजा की है, जो मन्त्र-जप किया है, स्तुतिपाठ किया है, मुझ पर कृपा करते हुए उसे आप स्वीकार करें, माँ।।११।।

अज्ञानादल्पबुद्धित्वादालस्यात् दुष्टभावतः।
ममापराधं कार्पण्यं क्षमस्व परदेवते।।१२।।

परदेवतास्वरूपिणि! हे देवि! मेरे अज्ञान, मेरी अल्पबुद्धिता, आलस्य या प्रमाद आदि के कारण अथवा अशुद्ध मानसिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप आपके पूजन-अर्चन में जो कमी, जो त्रुटि रह गई हो, हे माँ! उसे क्षमा करें।।१२।।

अज्ञानामसमर्थानामस्वस्थाननिवासिनाम्।
अशुद्धं बलमस्माकं शिशूनां हरवल्लभे।।१३।।

कृपामयि कृपां भद्रे सकृन्मयि निवेशय।
तावदहं कृतार्थोऽस्मि न ते किञ्चन हीयते।।१४।।

हे शिवप्रिये! हम अज्ञानी हैं, आपकी सम्यक् रूप से उपासना और अर्चना करने में असमर्थ हैं, अस्वस्थ देश (संसार) में हम भटक रहे हैं, मन-बुद्धि और चित्त ही नहीं, शरीर से भी हम अशुद्ध हैं, फिर भी हम आपके बच्चे हैं। इसीलिये हे माँ, एक बार कम से कम हमारे हृदय-पटल पर प्रकट होकर हमें दर्शन देकर कृतार्थ कीजिए।।१३-१४।।

यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
तत् सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै रमे शिवे।।१५।।

अपने भक्तों के हृदय में रमण करने वाली हे शिवप्रिये! मैंने जाग्रत्-स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में जो कुछ भी किया है, उन सभी कृत्यों को अपनी पूजा के रूप में स्वीकार करके मेरा कल्याण करो।।१५।।

द्रव्यहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत्।
तत् सर्वं कृपया देवि क्षमस्व परदेवते।।१६।।

अपनी अज्ञता तथा साधनहीनता के कारण मैंने आपकी जो कुछ भी द्रव्यरहित, क्रियारहित और विधिविहीन पूजा की है, हे माँ! मेरा मन रखने के लिये आप उसे स्वीकार करें।।१६।।

यन्मयोक्तं महाज्ञानं तन्महत् स्वल्पमेव वा।
तावत् सर्वं जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः।।१७।।

जगत् का पालन-पोषण करने वाली माँ! अपनी अल्पज्ञता के बावजूद मैंने आपका जो स्तवन किया है, साधनहीनता के बावजूद आपका जो अर्चन किया है, उन सबको हे मातारानी! इस दीन की भाव-पुष्पाञ्जलि के साथ ग्रहण करने की कृपा करो।।१७।।

●

शङ्कराचार्योक्तं स्तोत्रम्

इमं स्तवं प्रवक्ष्यामि शङ्कराचार्यभाषितम्।

शङ्कराचार्यकृत स्तोत्र—श्री त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त स्तव के बाद भगवान् शंकराचार्य-कृत 'श्रीक्रमस्तव' उद्धृत किया गया है। इस स्तव में श्रीचक्र का वर्णन प्रारम्भ करके पूजाक्रम के अनुसार सभी आवरणदेवताओं के नामोल्लेखपूर्वक उनकी वन्दना की गई है।

रत्नामृताम्बुनिधिमध्यलसत्प्रवाल-
द्वीपस्फुरत्परमनन्दनकाननान्तः ।
श्रीवृक्षमूलतलपश्चिमवक्त्ररत्न-
गेहान्तराद्भुतमहामणिपीठिकायाम् ।।१।।

मणिपूर द्वीप—अमृतवत् अमूल्य रत्न-भण्डारों से परिपूर्ण सागर में प्रवाल-द्वीप है। इस द्वीप की भूमि मूँगे के समान लाल है। इस द्वीप में परम आनन्ददायक नन्दन-कानन है, जिसमें बिल्ववृक्ष की घनेरी छाया में पश्चिमाभिमुख भवन है। इस भव्य भवन में मणियों से विरचित पीठिका है।।१।।

बिन्दुत्रिकोणबहिरष्टककोणबाह्या-
द्दिक्कोणदिक्परचतुर्दशकोणयुक्तम् ।
वृत्ताष्टषोडशदलानतवृत्तलोक-
भूपूश्चतुर्मुखमहं प्रणमामि चक्रम्।।२।।

चक्र-वर्णन—उपर्युक्त मणिखचित पीठिका पर बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर और बाह्यक्रम से दो दश कोण, एवं चतुर्दश कोणों से युक्त वृत्त, फिर वृत्त के बाहर अष्टदल कमल एवं षोडश दल कमलों को घेरकर बनाये गये चतुर्द्वार-युक्त तीन भूपुरों वाला विशाल श्रीचक्र बना हुआ है। मैं इस चक्र को सादर प्रणाम करता हूँ।।२।।

पाशाङ्कुशामृतकपालसुशूलहस्तं
हस्त्याननं विविधभूषणनीलदेहम्।
नित्योत्सवं सकलविघ्नविनाशहेतुं
श्रीमद्गणेश्वरमहं प्रणमामि नित्यम्।।३।।

गणपति-वन्दना—श्रीचक्र का नमन करने के बाद मैं समस्त विघ्नों के विनाश तथा नित्यप्रति उत्सव एवं आनन्द-प्राप्ति के लिये नीली देहकान्ति वाले हस्तिमुख भगवान् गणपति को प्रणाम करता हूँ, जिनके चारो हाथ पाश, अंकुश, अमृतकपाल (पात्र) तथा त्रिशूल से शोभित हो रहे हैं।।३।।

पीयूषभाण्डमसिदण्डकपालखण्ड-
चण्डातिचण्डभुजदण्डमतिप्रचण्डम् ।
श्रीकुण्डलद्वयविमण्डितगण्डमीडे
नीलं वटुं वटुकनाथमहीन्द्रहारम्।।४।।

वटुक-वन्दना—अब मैं प्रणाम करता हूँ श्यामल नीली देहकान्ति वाले वीर ब्रह्मचारी वटुकनाथ को, जिनके गले में सर्पों की माला है तथा चण्ड (सूर्य) से भी प्रचण्ड (प्रखर) जिनकी भुजायें अमृत-कलश, तलवार, दण्ड तथा नृकपाल से

शोभित हैं। जिनके गण्डस्थल रत्नखचित स्वर्ण कर्ण-कुण्डलों की आभा से दमक रहे हैं।।४।।

चञ्चत्कपालसुकृपाणसशूलदण्ड-
मुद्यद्डमड्डमरुमण्डितपाणिदण्डम् ।
नीलाञ्जनप्रचयपुञ्जमिव प्रसन्नं
श्रीक्षेत्रपालकममुं शरणं श्रयामि।।५।।

क्षेत्रपाल-वन्दना—गणेश और बटुकनाथ को प्रणाम करने के बाद मैं क्षेत्रपाल जी का शरण-ग्रहण करता हूँ, जिनकी सशक्त मांसल भुजायें सुन्दर कपाल, कृपाण, त्रिशूल दण्ड तथा डमड्-डमड्-डमड् की ध्वनि करने वाले डमरू से शोभित हैं। देह की कान्ति सघन-कज्जल राशि के समान है तथा जो प्रसन्नमुख हैं।।५।।

चक्रातिचक्रपरिदारितदैत्यचक्र-
चक्राक्षिकम्बुपरिचुम्बिकरां कुमारीम्।
दुर्गां निसर्गमुनिवन्दितदुर्गदुर्ग-
सिंहासनोपरिगतां सततं श्रयामि।।६।।

दुर्गा-स्तवन—दैत्यों की विशाल सेना के चक्रों को देखते ही देखते विनाश कर देने वाली शंखधारिणी, सिंहवाहिनी, सतर्क चञ्चलनयना कुमारी दुर्गा के शरण ग्रहण करता हूँ, जिनके पवित्र दुर्गा-नाम का मुनिजन अहर्निश जप करते हैं।।६।। (शंख=हाथीदन्त का बना हुआ एक आभूषण, जो हाथों में पहना जाता है।)

पद्मद्वयाभयवरोद्यतपाणिपद्मां
पद्मासनेन समलङ्कृतपादपद्माम्।
पद्मां सुपद्मवदनां खलु पद्मनाभ-
हृत्पद्ममध्यवसतिं सततं प्रपद्ये।।७।।

विष्णुप्रिया-वन्दना—पद्मनाभ (विष्णु) के हृदय-पद्म में निवास करने वाली कमलवदना, कमलधारिणी, कमलासना भगवती कमला की चरणवन्दना करता हूँ, जो अपने भक्तों को समस्त भीतियों से अभय एवं मनचाहा वरदान देने को सदैव उद्यत रहती हैं।।७।।

उद्यत्सुधानिधिसहस्रमरीचिगौरीं
वागीश्वरीं सकलवाङ्मयसागराणाम्।
कण्ठे सदा लुठतु मे स्फटिकाक्षमाला
श्रीर्ज्ञानपुस्तकवराभयशस्तहस्ता ।।८।।

वागीश्वरी-स्तवन—उदीयमान चन्द्रमा की श्वेत-धवल किरणों के समान गौर वर्णा तथा समान वर्णा स्फटिक मालाधारिणी भगवती वागीश्वरी सदैव मेरे कण्ठ में वास करें, जो समस्त वाङ्मयरूपी ऐश्वर्य की स्वामिनी हैं तथा जिनके चारो हाथ ज्ञान, पुस्तक, वर तथा अभय मुद्राओं से शोभित हैं॥८॥

बन्धूकपुष्पवपुषं मदघूर्णमानं
पुष्पेषुचापकुसुमेषुकरं वराक्ष्या।
यद्वन्धनात् कनककान्तिसमानकान्त्या
स्वालिङ्गितं रतिपतिं सततं स्मरामि।।९।।

कामदेव-वन्दना—जिनके शरीर का वर्ण बन्धूक (दुपहरिया) के पुष्प के समान लाल है, मदपान के कारण जिनके नेत्र चञ्चल हैं, जिनके हाथों में पुष्प-निर्मित धनुष और बाण हैं और जिनकी सुन्दर प्रेम दृष्टि से बँधकर उनकी प्रिया उन्हें अपने आलिंगन में लपेटे हुए है, मैं उन रतिपति कामदेव का स्मरण करता हूँ॥९॥

प्रीत्यावशं भुवि वसन्तमहं भवन्तं
नृत्यन्तमद्भुतमहोत्सवदं वसन्तम्।
वन्दे सुनन्दनवने शरदिन्दुकान्तं
सन्तानसन्ततिलतासु विकाशयन्तम्।।१०।।

वसन्त-वन्दना—भगवती श्रीदेवी के प्रीति-वशीभूत होकर 'नन्दनवन' की धरा पर विराजित होकर सौन्दर्य-विस्ताररूप अपने अद्भुत नृत्य के द्वारा चतुर्दिक् आनन्द प्रदान करने वाले वसन्तदेवता की मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी आभा शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान धवल और प्रीतिकर है और जो विभिन्न प्रकार की लताओं में नव-पल्लवों के रूप में उनकी वंश-परम्परा को विकसित करने में दक्ष हैं॥१०॥

भक्त्याश्रिताभयवरोद्यतपाणिपद्मौ
देवौ समानरचितासनसन्निविष्टौ।
द्वारे पुरे परमदैवतदेवतायाः
श्रीशङ्खपद्म च निधी(?) निदधामि मूर्ध्नि।।११।।

द्वारदेवता-वन्दना—ब्रह्मा आदि परम देवताओं की भी परदेवता भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के कारण उनके नगरद्वार पर द्वार-देवताओं के समान आसन पर सन्निविष्ट श्री शंखनिधि और श्री पद्मनिधि को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जिनके दोनों हाथ अभय और वर प्रदान करने की मुद्रा में उठे हुए हैं॥११॥

चिन्तामणिप्रणयदक्षिणपाण्यभीति-
दानोल्लसत्कमलकोमलवामपाणीः ।
रक्तद्युतीः शशिधराः प्रकटाणिमाद्या-
स्त्रैलोक्यमोहनगताः परिपूजयामि।।१२।।

अणिमा आदि सिद्धिदेवियाँ—त्रैलोक्यमोहन चक्र में स्थित प्रकट-योगिनियों के पूजन-क्रम में मैं सर्वप्रथम भूपुर की प्रथम रेखा पर विराजिता अणिमा आदि सिद्धि-देवियों का पूजन (नमन) करता हूँ, जिनकी देह-कान्ति तथा वस्त्र एवं आभूषण आदि सब कुछ (भगवती ललिता के समरूप) लाल वर्ण का है। देवी ललिता के भक्तों के प्रेमवश ये सिद्धि-देवियाँ उन्हें चिन्तामणिरूप वर और अभय प्रदान करने के लिये कमल के समान कोमल अपने दाहिने हाथ में वर तथा बाँयें हाथ में अभय मुद्रा धारण की हुई हैं।।१२।।

रक्तोत्पलामृतकपालधराः कराभ्यां
वंशीतमालदलकोमलनीलदेहाः ।
ब्राह्म्यादिका रुधिरभूषणरक्तवस्त्रा
मातर्द्वितीयचतुरस्त्रगता भजामि।।१३।।

ब्राह्मी आदि मातृकायें—भूपुर की द्वितीय रेखा पर आठों दिशाओं में प्रतिष्ठिता ब्राह्मी आदि माताओं की मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी देहकान्ति बाँस और तमालपत्र के समान श्यामल है तथा वस्त्र एवं आभूषण लाल रंग के हैं। इनके दाहिने हाथ में लाल रंग का लीलाकमल है और बाँयें हाथ में अमृतपूर्ण कपाल है।।१३।।

पाशाङ्कुशाङ्कितयथायथबद्धबद्ध-
मुद्राविमुद्रितकरां तरुणारुणाभाम्।
श्रीमत्तृतीयचतुरस्त्रगसर्वपूर्व-
संक्षोभपूर्वदलदैवतमर्चयामि ।।१४।।

मुद्रा-देवियाँ—भूपुर की तृतीय रेखा पर विराजिता संक्षोभिणी आदि मुद्रा-देवियों का अर्चन करता हूँ, जिनका वर्ण तरुण अरुण के समान अरुणाभ है। वे सब चतुर्भुजा हैं। दो रूपों में पाश और अंकुश तथा शेष दो हाथों में यथानाम संक्षोभणी आदि मुद्रा है।।१४।।

शोणाः सपाशसृणिपाणियुगाभिरामाः
कामाद्यकर्षणमुखाः सुभगाश्च नित्याः।
गुप्ताः कलानिधिकलाः खलु सर्ववाञ्छा-
सम्पूर्णषोडशदले परिपूजयामि।।१५।।

कामाकर्षिणी आदि कलायें—श्रीचक्र के षोडशदल कमलरूप सर्वाशा-परिपूरक चक्र में विराजिता षोडश कलारूपा रक्तवर्णा कामाकर्षिणी आदि गुप्त-योगिनियों की पूजा करता हूँ, जो अत्यन्त सौन्दर्य शालिनी हैं तथा जिनके हाथ पाश और अंकुश से शोभित हैं॥१५॥

श्रीदेव्यचिन्त्यमहिमा अभिदीप्यमाना
रक्ताः सुगुप्ततरनामधरा दयार्द्राः।
शक्तीरनङ्गकुसुमादिकयाष्ट सर्व-
संक्षोभकेऽष्टकदले परिपूजयामि॥१६॥

अनंगकुसुमा आदि देवियाँ—अष्टदल वाले सर्वसंक्षोभण चक्र में विराजित अनंग-कुसुमा आदि नामों वाले गुप्ततर योगिनियों की अर्चना करता हूँ, जो अपने सौन्दर्य और आभा से चारो ओर दिव्य प्रकाश का प्रसार कर रही हैं। इनकी देह-कान्ति, वस्त्र तथा आभूषण लाल रंग के हैं और इनकी महिमा भी भगवती श्रीदेवी की महिमा के समान अचिन्तनीय है॥१६॥

शोणाः सबाणधनुषः खलु सर्वपूर्व-
संक्षोभणादिकचतुर्दशदेवतास्ताः ।
सत्सम्प्रदायविधिना परिपूजयामि
सौभाग्यदायकचतुर्दशकोणचक्रे ॥१७॥

सर्वसंक्षोभिणी आदि शक्तियाँ—चौदह कोण वाले सर्वसौभाग्यदायक चक्र में प्रतिष्ठिता सर्वसंक्षोभिणी आदि शक्तियों की मैं पूजा करता हूँ, जिनकी देहकान्ति तथा वस्त्र एवं आभूषण आदि लाल वर्ण के हैं तथा जिनके दोनों हाथों में धनुष और बाण हैं॥१७॥

शुभ्रा वराभयकराः खलु सर्वपूर्व-
सिद्धिप्रदा दशदिशोद्भुतशक्तिशक्तीः।
सर्वार्थसाधकबहिर्दशकोणचक्रे
सम्पूजयामि कुलकौलिकयोगिनीस्ताः॥१८॥

सर्वसिद्धिप्रदादि शक्तियाँ—सर्वार्थ-साधक नामक बहिर्दशार चक्र में प्रतिष्ठिता सर्वसिद्धिप्रदा आदि 'कुलकौलिक' योगिनियों का अर्चन करता हूँ। शुभ्र वस्त्र और आभरण वाली इन शुभ्रवर्णा योगिनियों की अद्भुत शक्तियों का विस्तार दसो दिशाओं में हो रहा है। इनके दाहिने और बाँयें हाथ में क्रमशः वर और अभय मुद्रा है॥१८॥

कर्पूरपूररुचिराङ्गधराक्षमालाः
श्रीतत्त्वपूजकभृतोऽतिनिगर्भदेवी ।

सर्वार्थरक्षणकरे दशकोणचक्रे
सर्वज्ञिका प्रमथिका दश पूजयामि।।१९।।

सर्वज्ञा आदि शक्तियाँ—श्रीयन्त्र के सर्वरक्षाकर-नामक अन्तर्दशार चक्र में मैं कपूर के समान श्वेत वर्ण वाली सर्वज्ञा आदि निगर्भयोगिनियों का पूजन करता हूँ, जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के भक्तों का नित्य भरण-पोषण करती हैं॥१९॥

चापेषुपुस्तकलसत्स्फटिकाक्षमालां
बालप्रवालरुचिरां वशिनीप्रधानाम्।
सर्वादिरोगहरचक्रवरे त्रिकोणे
वाग्देवताष्टकमहं सरहस्यमीडे।।२०।।

वशिनी आदि वाग्देवता—सर्वरोगहर-नामक अष्टकोणात्मक चक्र में 'रहस्य योगिनी'-संज्ञक वशिनी आदि अष्ट वाग्देवताओं का पूजन करता हूँ। इन वाग्देवताओं की देहकान्ति प्रवाल-किसलय के समान सुन्दर रक्तवर्ण की है। धनुष, बाण, पुस्तक तथा अक्षमाला से इनके चारो हाथ सुशोभित हैं॥२०॥

रक्ता वराभयकराः शिरसा दधानाः
पाशाङ्कुशेषुधनुरायुधभूषणानि ।
श्रीमत्त्रिकोणबहिरात्मकदेवतास्ता
रक्षन्तु सन्ततमनन्तगुणाश्चतस्रः।।२१।।

आयुध-देवता—भगवती के मूल-त्रिकोण के बहिर्भाग में उनके आभूषण-स्वरूप आयुधों अर्थात् पाश-अंकुश-धनुष तथा बाण की पूजा करता हूँ। अनन्त गुणों से सम्पन्न ये चारो आयुधदेवता सदैव मेरी रक्षा करें॥२१॥

श्रीमत्त्रिकोणबहिरात्मकदेवतास्ता
देवीः षडङ्गयुवतीः परिपूजयामि।
कुन्देन्दुकज्जलकडारपिशङ्गहव्य-
वाहश्रियोऽभयवरोद्यतपाणिपद्माः ।।२२।।

षडङ्ग-युवती—सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त श्रीशक्तित्रिकोण के बाहर चारो ओर स्थिता देवतास्वरूपा उन षडङ्ग देवियों (हृदयदेवी, शिर:देवी, शिखादेवी, कवचदेवी, नेत्र-देवी और अस्त्रदेवी) का मैं अर्चन करता हूँ, जिनकी देहकान्ति क्रमशः कुन्द, चन्द्रमा, काजल, भूरी, पीली तथा अग्नि के समान है। सदैव युवा रहने वाली इन देवियों के हाथ में वर तथा अभय मुद्रा है॥२२॥

श्रीमत्त्रिकोणपरमाद्भुतसर्वपूर्व-
सिद्धिप्रदेति परमामृतहव्यदेव्यः।

कामेश्वरी मम ददातु समस्तकामान्
वज्रेश्वरी भगवती भगमालिनी च।।२३।।

कामेश्वरी आदि त्रिशक्तियाँ—परम अद्भुत एवं सिद्धिप्रद चक्रसंज्ञक श्रीशक्तित्रिकोण में प्रतिष्ठिता एवं परमामृतरूप हव्य ग्रहण करने वाली परापर रहस्य योगिनी-संज्ञक श्री कामेश्वरी, श्री भगमालिनी तथा श्री वज्रेश्वरी मेरी वांछित कामनाओं को पूरा करें।।२३।।

श्रीमत्त्रिकोणपुरविस्फुरितां त्रिनेत्रां
बालातपारुणतनुं तरुणेन्दुमौलिम्।
पीयूषभाजनधराङ्कुशपाशहस्तां
कामेश्वरीं भगवतीं परिपूजयामि।।२४।।

कामेश्वरी-वन्दना—श्रीशक्तित्रिकोण के अग्रकोण में प्रतिष्ठिता विस्फुरित त्रिनयना भगवती कामेश्वरी की विधिवत् पूजा करता हूँ। भगवती की देह-कान्ति नवोदित सूर्य के समान अरुणाभ है तथा उनके माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित है। इनके चारो हाथों में अमृतपात्र, वरमुद्रा, पाश और अंकुश शोभित हैं।।२४।।

पाशाङ्कुशामृतकपालकमातुलुङ्ग-
चापेषुसङ्गतकरामरुणां त्रिनेत्राम्।
श्रीमत्त्रिकोणपरदैवतदक्षिणस्थां
वज्रेश्वरीं भगवतीं परिपूजयामि।।२५।।

वज्रेश्वरी-वन्दना—श्रीशक्तित्रिकोण में परदेवता भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दक्षिण कोण में विराजिता अरुणवर्णा त्रिनेत्रा भगवती वज्रेश्वरी की पूजा करता हूँ, जिनकी छः भुजायें क्रमशः पाश-अंकुश, अमृतकपाल, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), धनुष और बाण से शोभित हैं।।२५।।

चन्द्राननां त्रिनयनां तरुणेन्दुमस्तां
पाशाङ्कुशाक्षगुणपुस्तकशस्तहस्ताम् ।
श्रीमत्त्रिकोणपरदैवतवामभागे
शुभ्रां भजे भगवतीं भगमालिनीञ्च।।२६।।

भगमालिनी-नमन—श्रीशक्तित्रिकोण में परदेवता भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के वामभाग में विराजिता शुभ्रवर्णा, त्रिनयना, चन्द्रमुखी देवी भगमालिनी की वन्दना करता हूँ, जिनके चारो हाथ क्रमशः पाश, अंकुश, अक्षगुण और पुस्तक से शोभित हैं।।२६।।

चक्रातिगुह्यपरमाद्भुतसर्वपूर्वा-
नन्दात्मकेऽतिपरमे नवमेषु पूर्वे।
भक्त्या परापरतरातिरहस्यदेवीं
सेवे परापरमयीं परमेश्वरीं ताम्।।२७।।

परदेवता-सेवा—श्रीयन्त्र के अत्यन्त गुह्य एवं परम अद्भुत सर्वानन्दमय नामक नवम चक्र में परापरतरातिरहस्ययोगिनी-संज्ञक परापरमयी परमेश्वरी (भगवती महात्रिपुरसुन्दरी) की भली-भाँति यथाविधि सेवा करता हूँ।।२७।।

भगवती के रूप का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है।

प्रत्यग्रजाग्रदरुणाम्बुजवक्त्रबिम्ब-
चुम्बालिकालकुटिलालकपल्लवां ताम्।
आनन्दसान्द्रकरुणामयसुप्रसन्ना(न्न-)
लीलानि(ति)लोलनलिनोत्पललोचनालिम्।।२८।।

मुख-शोभा—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का मुखमण्डल नवविकसित रक्तकमल के समान अरुणाभ और प्रफुल्लित है, जिससे उनके हृदय की प्रसन्नता एवं दयार्द्रता समवेत रूप से झलक रही हैं। वे प्रदीर्घ नयना हैं। नेत्रों का वर्ण श्याम है। उनकी चितवन ऐसी है, जैसे जल की लोल-तरंगों में दो नील-कमलिनियाँ डोल रही हैं। भौंरों के समान काली तथा सर्प की तरह कुटिल (वंकिम) अलकें मुख पर लटकती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों उनके कपोलों का चुम्बन ले रही हैं।।२८।।

सिन्दूरसुन्दरशरीरविराजमान-
राजीवदाडिमजवानवबन्धुजीवाम् ।
श्रीमन्महामुकुटकोटिमहार्घ्यरत्न-
सब्रह्मचारिपरमामृतचन्द्ररेखाम् ।।२९।।

श्रीदेवी का शरीर सिन्दूरवर्णी, मुख रक्तकमलवत्, दन्तपंक्तियाँ अनार के दानों की तरह, अधर और ओष्ठ जवाकुसुम एवं बन्धुजीवी पुष्पों के समान अरुण एवं सुकोमल हैं। कोटि-कोटि बहुमूल्य रत्नों से खचित तथा स्वर्ण-निर्मित महामुकुट उनके भाल-प्रदेश पर शोभित है। परमामृत से परिपूर्ण बालचन्द्र की कलगी उसकी शोभा को कई गुना बढ़ा रही है।।२९।।

सुभ्रूतया विजितरूपपिनाकपाणे-
र्बाणासनर्द्धिविनिवेशितबाणलीलाम् ।
तद्विश्वकर्मपरिसूत्रितनासिकाग्रां
पद्मासनां त्रिनयनां तरुणेन्दुमस्ताम्।।३०।।

भौंह और नासिका—श्रीदेवी की भौंहों की वक्रता के आगे भगवान् शिव के पिनाक-चाप की प्रत्यञ्चा (बाणासन) का घुमाव भी हेय है। इनके नासाग्र की सुडौलता विश्वकर्मा के रचना-कौशल की पराकाष्ठा है। कमल के आसन पर विराजिता भगवती श्रीदेवी त्रिनयना और अर्धचन्द्रधारिणी हैं।।३०।।

ईषद्विकाशितमनोहरहासदन्त-
वासःश्रिया जितनवोदितचन्द्ररेखाम्।
सौन्दर्यदैवतमहामृगनाभिचित्र-
पत्रांशुमिन्दुकमनीयललाटपट्टाम् ।।३१।।

स्मित रेखा—सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति भगवती ललिता के अधरों की स्मित रेखा नवोदित चन्द्ररेखा से भी अधिक मनोहर और चित्ताकर्षक है। चन्द्रमा से भी अधिक धवल भाल पर कस्तूरी से बना हुआ तिलक है।।३१।।

लावण्यभाण्डशुभगण्डयुगाभिरामा-
नौपम्यकान्तिचिकुराभिविराजमानाम्।
श्रीकुण्डलद्वयविमण्डितगण्डशोभा-
पाण्डित्यखण्डितसुधानिधिमण्डलाभाम्।।३२।।

गण्डस्थल—श्रीदेवी के दोनों कपोल सौन्दर्य-लावण्य के भण्डार हैं, जिन पर अलकें झूल रही हैं। कानों में रत्नखचित कुण्डल है, जिनके हिलने से उनका कपोल-मण्डल चन्द्रमण्डल के समान दमक-दमक उठता है।।३२।।

कर्पूरपूरपरिपूरितचारुनाग-
वल्लीरसार्द्रखपुराढ्यनिभाधरौष्ठीम् ।
ग्रैवेयचुम्बितमणिद्युतिदीप्यमान-
सच्छायया द्विगुणशोभितकम्बुकण्ठीम्।।३३।।

अधर और कण्ठ—एला, लवंग, खदिर, सुधाचूर्ण तथा पूगीफल से निर्मित तथा कर्पूर-सुवासित ताम्बूलवीटिका के रस से रञ्जित होकर भगवती श्रीदेवी के रक्तिम होठों की लालिमा और भी बढ़ गई है। गले में रत्नजटित ग्रैवेय है, जिनमें जड़ी हुई मणियों की चमक से इनकी शंख के समान घुमावदार गरदन की सुषुमा दीप्तमती है।।३३।।

लाक्षारसस्नपितबालमृणालनाल-
लीलालयामलरसाञ्चितबाहुवल्लीम् ।
रक्तोत्पलोज्ज्वलदलामलकोमलाभि-
र्बालप्रवाललिताङ्गुलिपाणिलीलाम्।।३४।।

बाहुबल्ली और करतल—लाल रंग के लीलाकमल से शोभित भगवती श्रीदेवी की बाहु-लतायें और करतल लाक्षारस से सिक्त कमलनाल के समान लाल तथा मसृण हैं। इनके हाथों की अंगुलियाँ रक्तकमल की पंखुड़ियों के समान कोमल तथा नये किसलय की तरह कमनीय हैं।।३४।।

तद्विश्वकर्मपरियत्नविनिर्मितश्री-
रत्नाङ्गुरीयकनखद्युतिदीप्यमानाम् ।
केनापि कारणवशेन गृहीतबद्ध-
पाशाङ्कुशेषुधनुरायुधभूषणानाम्(णां ताम्)।।३५।।

अंगुलियाँ—श्रीदेवी की अंगुलियाँ देव-शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बहुत सावधानी से बनाई गई रत्नखचित अंगूठियों से सुशोभित हैं और इनमें जटित रत्नों की ज्योति से उनके नख दमक रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व को अभिभूत करके अपने वश में कर लेने के लिये इनका अलौकिक दिव्य सौन्दर्य ही पर्याप्त है, फिर भला न जाने किन कारणों से उन्होंने पाश-अंकुश-धनुष और बाणरूपी आयुध-आभूषणों को धारण कर रखा है।।३२।।

विमर्श—'कम्' को 'ब्रह्म' तथा 'केन' को 'कम्' का तृतीयान्त रूप माना जाय तो तृतीय चरण (केनापि कारणेन) से यह अर्थ भी निकल सकता है कि श्रीदेवी ने अपनी ब्रह्मशक्तिरूपता को अभिव्यक्त करने के लिये इन पाश आदि आयुधों को धारण कर रखा है।

त्रैलोक्यदुर्लभमहामणिनायकश्री-
संसक्तमौक्तिकफलोज्ज्वलहारलक्ष्मीम्।
लावण्यवारिपरिपूर्णसुवर्णकुम्भ-
शोभाभिभाविकुचमण्डलपूर्णकुम्भाम्।।३६।।

स्तन-मण्डल—भगवती श्रीदेवी का स्तन-मण्डल सौन्दर्यसलिल से भरे हुए स्वर्णकलशों के समान है, जिस पर तीनों लोकों के दुर्लभ मणियों में से चुनी हुई महामणियों और मुक्ताओं का हार झूल रहा है।।३६।।

लोकत्रयेऽप्यतिसुदुर्लभसाम्यसौम्य-
शोभाविभाकरबलित्रयशोभिमध्याम्।
लावण्यनाभिगहनाभिगृहप्रविष्ट-
श्रीमन्महाद्युतिमयीं नवलोमराजीम्।।३७।।

त्रिवली एवं रोमावली—भगवती श्रीदेवी की देहयष्टि के मध्य नाभि-प्रदेश में चन्द्र-वलय के समान जो त्रिवली है, वह संसार में अनुपमेय है। निखिल ब्रह्माण्ड

में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिससे इस त्रिवली की शोभा की उपमा दी जा सके। नाभि गहरी है, जिसमें नवाङ्कुर की भाँति रोमावली है।।३७।।

चञ्चन्मरीचिनिचयाञ्चितकाञ्चनाञ्चत्-
काञ्चीविकाशिरुचिरक्तविचित्रवस्त्राम्।
श्रीकामकाननसमुद्भवरामरम्भा-
स्तम्भाभिभाविसुकुमारतरोरुयुग्माम्।।३८।।

काञ्ची और जघन-मण्डल—उनके कटि-प्रदेश में रत्नजटित स्वर्णमेखला है। उस मेखला में सोने की छोटी-छोटी घण्टियाँ हैं, जिनमें चमकीले रत्न पिरोये गये हैं। जब ये घण्टियाँ लहराती हैं, उनकी कौंध से भगवती के लाल रेशमी वस्त्र चमक उठते हैं। उनकी जंघायें भगवती लक्ष्मी के प्रमोदवन के कदली-स्तम्भों की तरह पुष्ट और सुचिक्कण हैं।।३८।।

वृत्तानुपूर्वविधिदुर्घटसन्निवेश-
जङ्घायुगाभिरमणां मणिगूढगुल्फाम्।
वाचस्पतेरपि वचोरचनाभिशोभि-
सौन्दर्यगोचरमनोहरपादपद्माम् ।।३९।।

गुल्फ एवं चरण—उनके जंघाओं की यथाक्रम सुघड़ गोलाई और संरचना ब्रह्माजी के लिये भी असम्भव-सी है। उनके गुल्फयुग्म इतने मांसल हैं कि उनकी पृथुलता के कारण गुल्फमणि (घुटने की कटोरी) दिखाई नहीं देती। उनके नयनाभिराम चरणकमलों के नित्य दर्शन के फल-स्वरूप बृहस्पति की वाणी भी तदनुसार शब्द-सौष्ठवसम्पन्न और चित्ताभिराम है।।३९।।

श्रीब्रह्मविष्णुशिवमौलिलसद्विमान(ा-)
मालोक्यमानकरुणारुणपादपद्माम् ।
श्रीसाधकाय करुणामयसुप्रसन्न-
दृष्टातिदिष्टवरदानमधःप्रसन्नाम् ।।४०।।

कृपा-दृष्टि—मान अर्थात् अहंकार से सर्वथा रहित ब्रह्मा-विष्णु और महेश को अपने चरण-कमलों पर नमन-मुद्रा में अवनत देखकर भगवती श्रीदेवी का चित्त प्रेम और करुणा से विह्वल हो जाता है। उनकी करुणामयी अधोदृष्टि से ही उनके अर्चकों को मनचाहे वरदान मिल जाते हैं।।४०।।

त्रैलोक्यमोहनमयीं परमेश्वरीं तां
त्रैलोक्यकारणमयीं परमेश्वरीं ताम्।

त्रैलोक्यविस्मयमयीं परमेश्वरीं तां
चक्रेश्वरीं शुभकरीं परिपूजयामि।।४१।।

भगवती श्रीदेवी ने अपनी माया और सौन्दर्य से तीनों लोकों को मोहित कर रखा है। पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग—इन तीनों लोकों को उन्होंने ही उत्पन्न किया है। उनकी अकल्पनीय महिमा और सौन्दर्य पर तीनों लोक चकित हैं। चतुःसृष्टिमय चक्र का प्रवर्तन इन्हीं से हुआ है और वे ही इस चक्र की अधिशासिका हैं। समस्त प्राणिलोक का हित करने वाली भगवती श्रीविद्या परमेश्वरी की मैं पूजा करता हूँ।।४१।।

देवी श्रीविद्या के सौन्दर्य और रूप का सांगोपांग नमनयुक्त निरूपण करने के पश्चात् अगले श्लोकों में पूजन-विधानक्रम के अनुसार श्रीयन्त्र के प्रत्येक चक्र की अधीश्वरी और इन चक्रों में प्रतिष्ठित देवताओं की वन्दना की गई है।

त्रैलोक्यमोहनमुखाब्जकचक्रमेतत्
स्थानेऽणिमादिप्रकटादिकसिद्धिदेवीम्।
श्रीमद्गुरुक्रमसमस्तसमन्त्रमुद्राः
पुष्पैः प्रपूज्य परमेश्वरि तेऽर्चयामि।।४२।।

त्रैलोक्यमोहन चक्र—सर्वप्रथम मैं त्रैलोक्य मोहन चक्र (भूपुर) में अणिमा आदि प्रकट-सिद्धि आदि देवियों तथा यथाक्रम सभी गुरु-मण्डलों का उनके मन्त्रों और मुद्राओं से यथाविधि गन्ध-पुष्पादि से पूजन करने के बाद हे देवी माँ, मैं आपकी अर्चना करता हूँ।।४२।।

पद्मादिभूतमणिपञ्चदशीर्न याव-
न्नित्या तिथिक्रममयीं खलु केऽपि धन्याः।
कामेश्वरीप्रभृतिपञ्चदशादिनित्या-
मन्त्रैः परं परमयीं परिपूजयामि।।४३।।

तिथि-नित्यायें—शुक्ल और कृष्णपक्ष की मणिभूता यदि प्रतिपदा आदि पन्द्रह तिथियाँ नहीं होती तो हे माँ, यथाकाल आपकी पूजा करके हम किस प्रकार धन्य हो पाते? इसलिये हे माते! मैं प्रतिदिन कामेश्वरी आदि तिथि नित्याओं का उनके मन्त्रों से पूजन करता हूँ।।४३।।

त्वं गीयसे प्रथमतस्त्रिपुरेति मातः
पश्चाद्द्वितीय नवमत्रिपुरेश्वरीति।
तार्त्तीयके त्रिपुरसुन्दरिकेति तुर्ये
मातः परा त्रिपुरवासिनिका त्वमेव।।४४।।

हे माते! श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में से प्रत्येक चक्र में अलग-अलग नामों से आप ही प्रतिष्ठिता और सुपूजिता हैं। त्रैलोक्यमोहन नामक प्रथम चक्र में आपका ही नाम त्रिपुरा है। नौ चक्रों में से द्वितीय चक्र में त्रिपुरेश्वरी और तृतीय चक्र में त्रिपुरसुन्दरी तथा चतुर्थ चक्र में त्रिपुरवासिनी के नाम से आप ही प्रतिष्ठिता हैं॥४४॥

त्वं पञ्चमे भगवती त्रिपुरा पराश्रीः
षष्ठे परा त्रिपुरमालिनिका त्वमेव।
त्वं सप्तमे भगवती त्रिपुरादिसिद्धा
त्वञ्चाष्टमे भगवती त्रिपुरात्मकेति।।४५।।

पञ्चम चक्र में त्रिपुराश्री, षष्ठ चक्र में त्रिपुरमालिनी, सप्तम चक्र में त्रिपुरासिद्धा तथा अष्टम चक्र में त्रिपुरात्मिका (त्रिपुराम्बिका) के नाम से आप ही सुपूजिता हैं॥४५॥

पूर्णे परापरमये परमेऽतिगुह्ये
श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरिका त्वमेव।
श्रीमन्महात्मकमहाद्भुतचक्रराजे
त्वं गीयसे सुकृतिभिः खलु कैश्च देवी।।४६।।

सर्वान्तःस्थ परम गोपनीय एवं रहस्यमय, भेदात्मक दृष्टि से पर एवं अपररूप तथा अभेदात्मक दृष्टि से पूर्ण ब्रह्मस्वरूप और मूलाङ्कों की पूर्णता के सूचक नवम चक्र में आप स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी के रूप में विराजिता हैं। समस्त दैवत चक्रों में चक्रराज के विरुद से सम्मानित इस श्रीयन्त्र में निवास करने वाली (अथवा श्रीयन्त्र-विग्रह-रूपिणी) हे देवि! आपकी ऐश्वर्यपूर्ण महिमा का गान तथा आपके पवित्र एवं दिव्य उपर्युक्त नामों का उच्चारण करते हुए श्रीयन्त्र में आपकी पूजा करने का सौभाग्य पुण्यशील जनों को ही मिलता है॥४६॥

आदौ दशाष्ट दश षोडश चाष्ट चासि
पश्चाच्चतुर्दश दशासि ततो दशाष्टौ।
पश्चाच्चतुष्टयमसि त्रितयञ्च षट्कं
सप्तोत्तरा शतमयी त्वमसि त्वमेका।।४७।।

हे माते त्रिपुरे! श्रीयन्त्र के प्रथम भूपुररूप चक्र की प्रथम रेखा पर अणिमा आदि दस सिद्धियों के रूप में, द्वितीय रेखा पर ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं के रूप में तथा तृतीय रेखा पर संक्षोभिणी आदि दस मुद्रादेवियों के रूप में आप ही प्रतिष्ठिता और सुपूजिता हैं। श्रीयन्त्र के षोडश दलात्मक द्वितीय चक्र में कामाकर्षिणी आदि १६ देवियों के रूप में, अष्टदलात्मक तृतीय चक्र में अनंग-कुसुम

आदि ८ देवियों के रूप में, चौदह कोणों वाले चतुर्थ चतुर्दशार चक्र में सर्व-संक्षोभिणी आदि चौदह देवियों के रूप में आप ही प्रतिष्ठिता और सुपूजिता हैं। दस कोणों वाले पञ्चम बहिर्दशार चक्र में सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस कुलयोगिनियों के रूप में, दस कोण वाले षष्ठ अन्तर्दशार चक्र में सर्वज्ञा आदि दस निगर्भा देवियों के रूप में तथा आठ कोण वाले सप्तम चक्र अष्टार में वशिनी आदि वाग्देवताओं के रूप में आप ही विराजिता तथा अर्चिता हैं। मूलत्रिकोण के बाहर अष्टार चक्र में पाश-अंकुश आदि चार आयुधदेवताओं तथा हृदय आदि षडङ्ग देवियों के रूप में आप ही स्थिता हैं। मूलत्रिकोण के तीनों कोणों में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भगमालिनी के नाम से आप ही पूजा ग्रहण करती हैं। हे माते! श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में उपर्युक्त १०७ नाम-रूपों से प्रतिष्ठिता और पूजिता होने पर भी आपका वास्तविक रूप एकात्मक है॥४७॥

कामेश्वरीति भगमालिनिकेति नित्य-
क्लिन्नेति तैरुपरताऽपि हिरण्डकेति।
त्वं वह्निवासनिरतेति महादिभूत-
विद्येश्वरीति च तथा शिवदूतिकेति॥४८॥
मातः परा त्वरितिका कुलसुन्दरीति
नित्यातिनित्यपरनीलपताकिनीति ।
त्वं सर्वलोकविजयाखिल मालिकेति
ज्वालामयीति निगदन्ति विचित्रकेति॥४९॥

हे माते! मूलत्रिकोण की तीन रेखाओं पर पाँच-पाँच के यथाक्रम से कामेश्वरी आदि तिथिनित्याओं के रूप में आप ही विराजिता हैं। हे जगजननि! तुम ही तिथि-नित्यारूपा कामेश्वरी हो, भगमालिनी हो, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा (हिरण्डा), वह्नि-वासिनी, महाविद्येश्वरी (वज्रेश्वरी), शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्यनित्या तथा नीलपताकिनी हो। हे देवि! सर्वलोकविजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी तथा विचित्रा भी तुम ही हो॥४८-४९॥

मातस्तवाक्षरमनक्षररूपिकायं
संसाध्य शुद्धमतयो गणयन्ति नैव।
श्रीब्रह्मविष्णुशिवतार्क्ष्यरवीन्द्रचन्द्र-
यक्षेन्द्रदर्पकगणेश्वरवह्निमुख्यान् ॥५०॥

हे माते! आपका मन्त्र-रूप वर्णात्मक प्रतीत होता हुआ भी वर्णातीत है। आपके इस वर्णातीत रूप का सम्यक् रूप से ध्यान कर पाना सर्वसत्त्वमय

सर्वथा शुद्धचित्त वाले ऋषियों के लिये ही सम्भव है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, तार्क्ष्य (गरुड़), सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, यक्षेन्द्र (कुबेर), दर्पक (कामदेव), ईश्वर तथा अग्नि की गणना ऐसे ही शुद्ध चित्त वाले ऋषियों में की जाती है, जिन्होंने आपके मन्त्र-स्वरूप का दर्शन किया है।।५०।।

सम्पूज्य केऽपि सकलैर्वरणोपचारै-
ग्रन्थिं विभिद्य परमेष्ठिनमुद्वहन्तीम्।
मारात्मिकां मदनधामनि दीपरूपां
जिह्वाग्रतः सुकृतिनः परिपालयन्ति।।५१।।

सभी उपचारों से श्रीचक्र का समग्र आवरण अर्चन करने के उपरान्त कामकला-रूपा कुलकुण्डलिनी को अपनी जिह्वा के अग्रभाग में प्रदीपकलिकाकार जीवात्मा को लेकर मूलाधार चक्र से षट्चक्रों तथा तीन ग्रन्थियों का भेदन करते हुए मदनधामरूप सहस्रार में लाकर उन्हें परम-शिव-संयोग का परम-रस-पान कराने की गुरु-उपदिष्ट विधि का परिपालन कोई-कोई बिरले ही पुण्यात्मा कर पाते हैं।।५१।।

आधारवारिरुहमध्यलसत्त्रिकोण-
वामाशिखाग्रजपरां परमाङ्कुराभाम्।
ज्ञानक्रियेष्टमयि शक्तिविनाशनाश-
श्रीब्रह्मविष्णुगुणशक्तिवरा त्वमेका।।५२।।

हे माते! तुम एक ही हो; मगर प्रलयावस्था के अवसान काल में ब्रह्माण्ड की सृष्टि के लिये तुमने स्वयं को त्रय-समुच्चय के रूप में प्रकट किया। व्यष्टि और समष्टि सृष्टि के मूलाधार चक्रमध्य में स्थित त्रैपुर त्रिकोण की वाम रेखा, शिखर रेखा और दक्षिण रेखा पर परम-अंकुर के रूप में इच्छा-ज्ञान एवं क्रिया तथा वामा-ज्येष्ठा एवं रौद्री आदि शक्तियाँ, सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण आदि तीन गुण, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप जो देवता प्रतिष्ठत हैं, वे सब तुम्हारे ही रूप हैं। इन सबके रूप में तुम ही अभिव्यक्त हो।।५२।।

सृष्टिस्थितिप्रलयकारणकर्त्तृभूतं
वेदान्तवेद्यमजमव्ययमप्रमेयम् ।
अन्योन्यभेदकलहाकुलमानसास्ते
जानन्ति किं जडधियस्तव रूपमम्ब।।५३।।

हे माते! तुम ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और प्रलय की कारणभूता शक्ति हो। हे देवि! आपका वास्तविक स्वरूप सर्वथा अविनाशी (अपरिणामी!) तथा अप्रमेय अर्थात् समस्त प्रमाणों से रहित, अविज्ञेय एवं प्रमाणशून्य है; क्योंकि आप स्वयं

प्रमारूपा हैं। जिस प्रमा की उपस्थिति से ही प्रमाण एवं प्रमेय की सिद्धि होती है, उस प्रमा को भला किस प्रमाण से सिद्ध किया जा सकता है। आपके इस अपरिणामी एवं अप्रमेय तथा 'एकमेव द्वितीयो नास्ति' रूप की किञ्चित् प्रतीति वेदान्तग्रन्थों के अध्ययनजन्य ज्ञान तथा एकनिष्ठ भक्ति से ही सम्भव है। हे माते! जो बुद्धिहीन अज्ञानी मनुष्य भेदात्मक ज्ञान से विकल और विमूढ़चित्त हैं, वे भला आपके अभेदात्मक एवं अद्वितीय रूप को किस तरह जान और समझ सकते हैं॥५३॥

स्तोत्रं त्वमेव परमेश्वरि गीयसे चेत्
स्तोता त्वमेव परमेश्वरि गीयसे चेत्।
स्तुत्यं त्वमेव परमेश्वरि गीयते चेत्
किं स्तूयसे खलु तदा परमेश्वरि त्वम्।।५४।।

सामान्य नियम यह है कि स्तुति, स्तोता और स्तुत्य में अन्तर होता है। पूजा, पूज्य और पुजापा की तरह ये तीनों सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न ही रहते हैं; मगर हे परमेश्वरि! आपके स्तवन पर यह सामान्य नियम लागू नहीं होता। आप ही स्तोत्र हैं, आप ही स्तोता (स्तुतिकर्ता) हैं और आप ही स्तुत्य है। कारण यह कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आपके अतिरिक्त और कोई सत्ता ही नहीं है॥५४॥

यः कालकल्पतरुमेतदनन्यबुद्धिः
श्रीमत्क्रमस्तव नृपं पठतीह नित्यम्।
मुक्तिः करे वसति सिद्धिभिरष्टभिर्वा
किं तस्य मातरणिमादिभिरल्पिकाभिः।।५५।।

यः कालेति। स्तवस्यास्य क्रमस्तव इति नामोक्तं स्तवकारेण, तत्र च श्रीचक्रवर्णनमारभ्य पूजाक्रमेण सर्वासामावरणदेवतानामुल्लेखो वर्णनञ्चात्रेति कारणं सम्भाव्यते, अत एव भङ्ग्या तमेवार्थमुल्लिखति त्वां पूजयेदित्यादिना ग्रन्थकारः।

हे माते! आपका जो भी भक्त कालकल्पतरुरूप इस 'श्रीक्रमस्तवराज' का अनन्य बुद्धि से नित्यप्रति पाठ करता है, उसके लिये तो मुक्ति हाथ में रखे फल के समान सुलभ रहती है। मुक्ति-सिद्ध ऐसे साधकों के लिये अणिमा आदि क्षुद्र सिद्धियाँ किसी काम की नहीं होतीं॥५५॥

विमर्श—इस स्तव के प्रणेता स्वयं भगवान् शंकराचार्य ने इस स्तव का नाम 'श्रीक्रमस्तवराज' रखा है, जिसमें श्रीचक्र-वर्णन से प्रारम्भ कर श्रीदेवी की सुषुमा

का नमनयुक्त निरूपण-सहित सभी आवरणदेवताओं का नामोल्लेख एवं वर्णन किया गया है।

त्वां पूजयेत् क्रमकुलां सकलार्थसिद्धि-
स्तोत्रं पठिष्यति जनस्त्वयि जातभक्तिः।
तस्मान्मयाऽपि तव भक्तिरसेन देवि
भक्तार्थसिद्धिकररत्नमिदं व्यधायि।।५६।।

हे माते! इस श्रीयन्त्र के नौ चक्रों में कुलयोगिनियों के रूप में आपका नित्य वास है। अत: जो भी व्यक्ति प्रतिदिन श्रीचक्र में आपका यथाविधि अर्चन करता है, उसकी समस्त कामनायें पूरी होती हैं। जो व्यक्ति आपके स्तोत्रों का पाठ करता है, उसके हृदय में आपकी नैसर्गिकी भक्ति उत्पन्न हो जाती है। हे माते! आपके भक्ति-सागर में डूबकर मैंने जो यह स्तव कहा है, उसके पाठ से आपके भक्तों की कामनायें पूरी हों, यह वरदान दीजिये।।५६।।

●

त्रिपुरार्णवोक्तं त्रिपुरसुन्दरीकवचम्

अथ वक्ष्यामि कवचं त्रिपुरार्णवलक्षितम्।
समस्तापद्विमुक्त्यर्थं समस्तसम्पदाप्तये।।१।।

त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त श्रीत्रिपुरसुन्दरी-कवच—त्रिपुरार्णव-तन्त्रोक्त त्रिपुरास्तव तथा भगवान् शंकराचार्य-कृत 'श्रीक्रमस्तवराज' के बाद अब त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त महात्रिपुरसुन्दरी-कवच बताया जा रहा है। त्रिपुरार्णवतन्त्र में भगवान् शिव ने कहा है कि आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तापों से मुक्ति तथा सभी प्रकार की सुख-सम्पदा पाने के लिये श्रीविद्या के साधकों को नित्यप्रति इस कवच का कम-से-कम एक बार पाठ करना चाहिए।।१।।

भूतप्रेतपिशाचादिपीडाशान्त्यै सुखाप्तये।
समस्तरोगनाशाय समरे विजयाय च।।२।।
चौरसिंहद्वीपिगजगरलादभयानके ।
अरण्ये शैलगहने मार्गे दुर्भिक्षके तथा।।३।।

इस कवच का पाठ करने से भूत-प्रेत और पिशाच आदि दुष्ट योनियों के प्रकोप से होने वाली पीड़ा शान्त होकर सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है; रोगों का शमन होता है; युद्ध और विवाद में विजय मिलती है; सिंह, हाथी तथा विषधरों से भरे जंगलों में, पहाड़ों में, ठगों और बटमारों से भरे मार्ग में इस कवच-पाठ के प्रभाव से मनुष्य की सर्वविध रक्षा होती है। दुर्भिक्ष के सभय अनाज की सम्यक् प्राप्ति न होने पर भी प्राणसंकट नहीं होता।।२-३।।

सलिलाग्निमरुत्पीडा ऋक्षौ(?) पीडादिसङ्कटे।
प्रजप्य नित्यकवचं सकृत् सर्वं त्यजत्यसौ।।४।।
सुखी जीवति निर्द्वन्द्वो नि:सपत्नो जितेन्द्रियः।
शृणु तत् कवचं देवि वक्ष्ये भवभवान्तकम्।।५।।
येनाहमपि युद्धेषु देवासुरजयी तथा।

इन्द्रियों को वश में करके नित्यप्रति इस कवच का पाठ करने वाला साधक जल-प्लावन, अग्निकाण्ड तथा तूफान आदि प्राकृतिक संकटों से बचा रहता है, सभी प्रकार के दु:खों से निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक जीता है। उसके कोई शत्रु नहीं होते। हे देवि! मैं तुम्हें भगवती त्रिपुरसुन्दरी का वही कवच सुना रहा हूँ, जिसके पाठ से सभी प्रकार के सांसारिक कष्टों से मुक्ति मिलती है और जिस कवच के प्रभाव से मैंने स्वयं अनेक युद्धों में देवताओं और राक्षसों को पराजित किया है॥४-५॥

इस पूर्व-पीठिका के बाद मूल-कवच प्रारम्भ होता है—

सर्वत: सर्वदात्मानं ललिता पातु सर्वदा।।६।।
कामेशी पुरतः पातु भगमाला तदन्तरम्।
दिशं पातु तथा दक्षं पार्श्वं पातु स सर्वदा।।७।।
नित्यक्लिन्ना चोत्तरतो दिशं पातु सदा मम।
अथैव पश्चिमे भागे रक्षेत् सा वह्निवासिनी।।८।।

भगवती ललिता सर्वदा सब ओर से मेरी रक्षा करें। कामेशी सदैव सामने की ओर तथा भगमालिनी दक्षिण दिशा में दाहिने भाग की, नित्यक्लिन्ना उत्तर दिशा में बाँयें भाग की एवं वह्निवासिनी पश्चिम दिशा में रक्षा करें॥६-८॥

महाचक्रेश्वरी रक्षेदनन्तं विदिशं सदा।
वामपार्श्वं सदा पायादुड्डी मे त्वरिता ततः।।९।।
पालयन्तु दिशश्चान्या रक्षेन्मां कुलसुन्दरी।
नित्या मामूर्ध्वतः पातु माधवः पातु सर्वदा।।१०।।
नीला नीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम्।
करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला।।११।।

देवी महाचक्रेश्वरी मेरे पीछे पश्चिम और नैर्ऋत्य के मध्य में तथा देवी त्वरिता ईशान और उत्तर के मध्य में मेरे सम्मुख वामपार्श्व में मेरी रक्षा करें। भगवती कुलसुन्दरी अन्य दिशाओं में, नित्या-नित्या ऊपर की ओर तथा माधव सदा-सर्वदा मेरी रक्षा करें। नीलवर्णा देवी नीलपताका और विजया चारो ओर से मेरी रक्षा करें। देवी सर्वमङ्गला सब प्रकार से मेरा कल्याण करें॥९-११॥

देहे पातु मनःप्राणान् ज्वालामालिनिविग्रहा।
विचित्रा सर्वतो रक्षेत् षोडशी पातु सुन्दरी।।१२।।
अपारभवसंसारसिन्धुनिस्तारहेतवे ।
चत्वारो गुरवः पान्तु ममानिष्टविनाशकाः।।१३।।

देवी ज्वालामालिनी मेरे देह की, मेरे मन और प्राणों की रक्षा करें। देवी विचित्रा चारो ओर से मेरी रक्षा करें। भगवती षोडशी सुन्दरी इस भवसागर से मेरा उद्धार करें। श्रीचक्र के गुरुमण्डल में पूजित चारो गुरु साधनामार्ग में आने वाले अनिष्टों का शमन करें॥१२-१३॥

विहितार्थप्रदायिन्यश्चिन्त्यमानमहौजसः ।
विघ्नं मम परिघ्नन्तु प्रसिद्धाः सिद्धयो दश।।१४।।
वृन्दारकशिरोवृन्दवन्द्यमानपदाम्बुजा ।
अष्टौ वाग्देवता भव्यमूर्त्तयः पालयन्तु माम्।।१५।।

जीवन-यापन तथा साधना के लिये यथा आवश्यक साधन-सामग्री प्रदान करने वाली महान् तेजस्विनी अणिमा आदि दसों सिद्धियाँ जीवन और साधना के सभी विघ्नों का नाश करें। भूपुर की द्वितीय रेखा पर प्रतिष्ठिता अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक विग्रह वाली ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकायें, जिनके चरणों की देवता भी वन्दना करते हैं, मेरी रक्षा करें॥१४-१५॥

विशेष—उपर्युक्त पन्द्रहवें श्लोक में 'अष्टौ वाग्देवता' से अभिप्राय ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं से है; क्योंकि 'रहस्ययोगिनी'-संज्ञक वशिनी आदि अष्ट-वाग्देवताओं का नामोल्लेखपूर्वक स्तवन आगे २६वें और २७वें श्लोकों में किया गया है। आवरण अर्चनक्रम में भी भूपुर की प्रथम रेखा पर अणिमा आदि सिद्धियों के बाद ब्राह्मी आदि मातृकाओं का क्रम प्राप्त होता है।

सर्वविघ्नविनाशिन्यो नित्यानित्यकलामयाः।
कामाकर्षणकारिण्यो विघ्नं विघ्नन्तु षोडश।।१६।।
सर्वाशापूरके चक्रे त्रिपुरेशीसमन्विता।
वसन्त्यो गुप्तयोगिन्यो मम कुर्वन्तु मङ्गलम्।।१७।।

सर्वाशापरिपूरक चक्र में चक्रनायिका त्रिपुरेश्वरी के साथ प्रतिष्ठिता तथा सभी विघ्नों का नाश करने वाली कामाकर्षिणी आदि षोडश कलारूपा गुप्त-योगिनियाँ सदैव मेरा कल्याण करें॥१६-१७॥

जगत्स्तम्भनकारिण्यो जगद्वन्द्यपदाम्बुजाः।
साधयन्तु महाभीष्टं मनोज्ञमिष्टदेवताः।।१८।।

युक्तात्रिपुरसुन्दर्या: सर्वक्षोभकरे स्थिता:।
चक्रे गुप्ततरा: पान्तु योगिन्यो मां महौजस:।।१९।।

सर्वसंक्षोभण चक्र में चक्र-नायिका त्रिपुरसुन्दरी के साथ सम्पूजिता 'गुप्ततर-योगिनी'-संज्ञक अनंगकुसुमा आदि वे देवियाँ मेरे समस्त अभीष्ट को पूरा करें, जो अपने महान् तेज से समस्त जगत् का स्तम्भन करने वाली और समस्त जगत् के लिये पूज्य हैं।।१८-१९।।

दूर्वावतरदुर्मोहतिमिरार्कमरीचय: ।
मां महाशक्तियोगिन्य: पालयन्तु चतुर्दश।।२०।।
सर्वसौभाग्यदे चक्रे त्रिपुरावासिनीयुता।
सत्सम्प्रदाययोगिन्यो वर्धयन्तु मम श्रियम्।।२१।।

भूमि पर चारो ओर फैली हुई दूर्वा (दूब) के समान समस्त चित्त में व्याप्त मोहान्धकार को नाश करने में सूर्य की किरणों के समान प्रखर एवं महाशक्ति-सम्पन्ना 'सर्वविद्रावणी' आदि वे चतुर्दश योगिनियाँ मेरे सौभाग्य-श्री की निरन्तर अभिवृद्धि करते हुए मेरा पालन करें जो सर्वसौभाग्यदायक चक्र में चक्रेश्वरी त्रिपुरवासिनी के साथ सत्सम्प्रदाय योगिनी के नाम से प्रतिष्ठिता और सम्पूजिता हैं।।२०-२१।।

सर्वसिद्धिप्रदायिन्यो वन्दिता दश देवता:।
मदिरानन्दितमुखा: सर्वार्थान् साधयन्तु ता:।।२२।।
त्रिपुराश्रीयुता देव्य: कुलकौलकुलोद्भवा:।
सर्वार्थसाधके चक्रे स्थिता एता: पुनन्तु माम्।।२३।।

चक्रेश्वरी त्रिपुराश्री के साथ सर्वार्थ-साधक चक्र में सम्पूजिता और प्रतिष्ठिता एवं मदिरापान से मन में उत्पन्न उल्लास के कारण प्रसन्नमुखी सर्वसिद्धिप्रदा आदि 'कुलयोगिनी'-संज्ञक सर्वसिद्धिदात्री देवियाँ मेरी कामनाओं को पूर्ण करती हुई मेरे अन्त:करण को पवित्र करें।।२२-२३।।

सर्वज्ञानेन सम्पन्ना: सर्वनिर्वाणहेतव:।
रक्षन्तु मां महादेव्यो दशरेखोपकारिका:।।२४।।
युक्तास्त्रिपुरमालिन्य: सर्वरक्षाकरे स्थिता:।
चक्रे निगर्भयोगिन्य: कुर्वन्तु मम मङ्गलम्।।२५।।

सर्वरक्षाकर-नामक अन्तर्दशार चक्र में चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी के साथ 'निगर्भा योगिनी' के रूप में सम्पूजिता और विराजिता 'सर्वज्ञा' आदि वे महादेवियाँ सब प्रकार से मेरा मंगल तथा पालन करें, जो सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की भण्डार तथा विश्व को मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।।२४-२५।।

अधिकानल्पसङ्कल्पाः कल्पनाकामबन्धकाः।
अष्टौ वाग्देवताः सन्तु सदा सकरुणा मयि।।२६।।
त्रिपुरासिद्धिसंयुक्ताः सर्वरोगहरे स्थिताः।
चक्रे रहस्ययोगिन्यो रोगानपनयन्तु मे।।२७।।

सर्वरोगहर चक्र में चक्रेश्वरी त्रिपुरासिद्धा के साथ रहस्ययोगिनी के रूप में प्रतिष्ठिता और सम्पूजिता वशिनी आदि वे अष्ट वाग्देवता सदैव मुझपर अपनी कृपा-दृष्टि बनाये रखें तथा मेरे शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विनाश करें, जो साधकों की सभी छोटी-बड़ी कामनाओं को पूरा करने के लिये कृत-संकल्प और करुणा-मयी हैं॥३६-२७॥

महोजम्भे महास्तम्भे महामोहे महारणे।
हेतवोऽस्मत्प्रिये सन्तु चतस्रो मन्त्रदेवताः।।२८।।

श्री कामेश्वर और कामेश्वरी के महाजृम्भनकारक बाण-आयुधरूप, महामोहन-कारक धनुषायुधरूप, महारणकारक (महावश्यकर) पाशायुधरूप तथा महास्तम्भन-कारक अंकुशायुधरूप चारो देवता सदैव हमारा हित-सम्पादन करें॥२८॥

चक्राग्रे दक्षवामे च षट्कोणे विहितास्पदाः।
तिस्रो रक्षन्तु मे एताः कामेश्वर्यादिदेवताः।।२९।।
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे त्रिपुराम्बासमन्विताः।
योगिन्योऽतिरहस्या मे वितन्वन्तु समीहितम्।।३०।।

सर्वसिद्धिप्रद त्रिकोण चक्र के अग्रकोण, वामकोण तथा दक्षिण कोण में सम्पूजिता कामेश्वरी आदि देवियाँ तथा त्रिकोणचक्र के चतुर्दिक् यथाक्रम प्रतिष्ठिता हृदय आदि षडङ्ग देवियाँ सदैव मेरी रक्षा करें। इस चक्र में चक्रेश्वरी त्रिपुराम्बा के साथ प्रतिष्ठिता ये अतिरहस्ययोगिनियाँ मेरी अभिलषित सुख-सम्पदाओं का विस्तार करती रहें॥२९-३०॥

एतासामपि सर्वासामीश्वरीमिष्टदेवताम्।
दुर्लभामपि देवानां बालात्रिपुरसुन्दरीम्।।३१।।
यदादिञ्च यदन्तञ्च यन्मध्यञ्च न जानते।
ब्रह्मादयोऽपि पान्तु श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी।।३२।।

श्रीयन्त्र के उपर्युक्त चक्रों में प्रतिष्ठिता एवं सम्पूजिता योगिनियों की अधीश्वरी तथा देवताओं के लिये भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, ऐसी बाला त्रिपुरसुन्दरी की मैं वन्दना करता हूँ; जिनके आदि, मध्य और अन्त का ज्ञान ब्रह्मा आदि देवताओं को भी नहीं है, ऐसी महिमाशालिनी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सर्वदा मेरी रक्षा करें॥३१-३२॥

सर्वानन्दमये चक्रे बैन्दवे विहितानया।
परापररहस्याः स्युर्योगिन्यः सन्तु सम्मुदे।।३३।।

सर्वानन्दमय-संज्ञक बिन्दुचक्र में प्रतिष्ठिता तथा सम्पूजिता परापररहस्य-योगिनी मेरे लिये आनन्दवर्धक हों।।३३।।

समयार्चनविद्देवि विद्वेषणपरायणः।
दक्षे दक्षिणभागस्थो मां पातु वटुकेश्वरः।।३४।।

समयाचार-विधि से अर्चन में श्रीचक्रराज के दक्षिण भाग में प्रतिष्ठित तथा सम्पूजित विद्वेषण-परायण बटुक भगवान् मेरी रक्षा करें।।३४।।

महाविघ्नविनाशिन्यो वामभागे कृतास्पदाः।
जगत्त्रितयवासिन्यो योगिन्यः सन्तु सम्मुदे।।३५।।

तीनों लोकों में निवास करने वाली तथा महान् से महान् विघ्नों का नाश करने वाली योगिनियाँ, जो श्रीचक्र के वामभाग में स्थित हैं, मुझे आनन्द प्रदान करें।।३५।।

प्रत्यूहव्यूहविध्वंसकारणं करुणामयः।
मम प्रीत्यर्थतो हन्तु क्षेत्रपालः पुरःस्थितः।।३६।।

श्रीचक्र के पूर्व भाग में प्रतिष्ठित करुणामय क्षेत्रपाल मेरे हित-सम्पादन के लिये विघ्नों के ढेर का नाश करने की कृपा करें।।३६।।

अपस्मारादिदुर्द्धर्षसंहारैकपदक्रमः।
पृष्ठस्थाने स्थितो देवो मां पातु च गणेश्वरः।।३७।।

अपस्मार आदि दुर्धर्ष महारोगों को एक ही पाद-प्रहार से ध्वस्त कर देने वाले भगवान् गणेश, जो चक्र के पृष्ठ (पश्चिम) में प्रतिष्ठित हैं, सदा मेरी रक्षा करें।।३७।।

विमर्श—अपस्मार (मिरगी, मूर्च्छा) का अर्थ है—स्मृति-भ्रंश। अपने शुद्ध-बुद्ध आत्म-स्वरूप को भूलकर स्वयं को देह समझने का अज्ञान आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे दुर्धर्ष अपस्मार रोग है। भगवान् नटराज की मूर्ति में अधोमुख लेटा हुआ आत्म-स्वरूप विस्मृत पुरुष का नाम इसीलिये अपस्मार है।

फलश्रुति

यश्चेदं पठति स्तोत्रं कदाचन शृणोति च।
अचिरादेव नश्यन्ति तस्य सर्वेऽप्युपद्रवाः।।३८।।

इस कवच का पाठ करने से रोगों से मुक्ति तथा बन्धन से छुटकारा मिलता है तथा शीघ्र ही सारे संकट और उपद्रव शान्त हो जाते हैं।।३८।।

तन्मुखं कवितारूपं तद्गृहं कमलालयम्।
स देशः सत्त्वशुद्धः स्याद् यत्रायं पठ्यते स्तवः।।३९।।

रोगार्त्तो मुच्यते रोगैर्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
विघ्नवान् मुच्यते विघ्नैः पठन् स्तोत्रादिकं नरः।।४०।।

इस कवच का पाठ करने वाले व्यक्ति के मुख से अनायास कविता निकलने लगती है और उसका घर लक्ष्मी का आवास बन जाता है। रोगी को रोगों से तथा बन्धन में पड़े व्यक्ति को कारागार से मुक्ति मिल जाती है। विघ्न समाप्त हो जाते हैं।।३९-४०।।

ध्येयैषा त्रिपुरा रक्षा पठनीया प्रयत्नतः।
अनया कमलासिद्धिरनया पापनाशनम्।।४१।।
त्रिपुरार्णवतन्त्रस्य समाप्तं कवचं शुभम्।
अथान्यत् कवचं वक्ष्ये षोडशीनां सुखावहम्।।४२।।

भगवती त्रिपुरा का ध्यान करके पूरे मनोयोग से इस कवच का पाठ करना चाहिए। इसके पाठ से कमला-सिद्धि (धनप्राप्ति) होती है तथा पापों का नाश होता है। त्रिपुरार्णवतन्त्र में बताया गया कवच पूर्ण हुआ। अब षोडशी कवच बता रहा हूँ, जो अत्यन्त सुखप्रद है।।४१-४२।।

षोडशी-कवच पूर्वपीठिका

देव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश लोकानुग्रहकारक।
त्वत्प्रसादान्महादेव श्रुता मन्त्रास्त्वनेकशः।।१।।
साधनं त्रिविधं देव कीलकोद्धारणन्तथा।
शापादिदूषणोद्धारः श्रुतस्त्वत्तो मया प्रभो।।२।।
राजराजेश्वरीदेव्याः कवचं सूचितं मयि।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व मयि प्रभो।।३।।

श्रीदेवी ने कहा—हे देवदेवेश्वर! आप लोकों पर दया करने वाले हैं। आपकी कृपा से मैंने अनेक प्रकार के मन्त्र सुने। अब मैं आपसे राजराजेश्वरी देवी का कवच सुनना चाहती हूँ। हे दयानिधि! मुझे वह कवच सुनाइये।।१-३।।

ईश्वर उवाच—

लक्षवारसहस्राणि वारितासि पुनः पुनः।
स्त्रीस्वभावात् पुनर्देवि पृच्छसि त्वं मयि प्रिये।।४।।

अत्यन्तगुह्यं कवचं सर्वकामफलप्रदम्।
प्रीतये देवदेवेशि कथयामि शृणुष्व तत्।।५।।

श्री ईश्वर ने कहा—हे प्रिये! लाखों बार मना किये जाने के बावजूद अपने स्त्री-स्वभाव के कारण तुम इस कवच के बारे में पूछती हो। श्रीराजराजेश्वरी देवी का यह कवच सभी कामनाओं को पूरा करने वाला होने के कारण लोकोपयोगी होने के बावजूद सर्वथा गोपनीय और अप्रकाशनीय है। फिर भी तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हारे अनुरोध की रक्षा के लिये मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ। सावधान और दत्तचित्त होकर इस दिव्य कवच को सुनिये।।४-५।।

अस्य श्रीराजराजेश्वरीमहात्रिपुरसुन्दरीषोडशीविद्याकवचस्य महादेव ऋषिः प्रस्तारपङ्क्तिच्छन्दो राजराजेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता सर्वार्थसाधने विनियोगः।

विनियोग—इस षोडशी कवच के ऋषि महादेव, छन्द प्रस्तार पंक्ति, देवता-श्री राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी हैं तथा इसके पाठ का विनियोग सर्वार्थ-साधन के लिये किया जाता है।

ऋष्यादि न्यास—श्री महादेवऋषये नमः—शिरसि। प्रस्तारपंक्तिछन्दसे नमः—पृष्ठे। राजराजेश्वरीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः—हृदि। सर्वार्थसाधने विनियोगाय नमः—सर्वांगे।

[कवच का मूल पाठ]

ॐ पूर्वे मां भैरवी पातु बाला मां पातु दक्षिणे।
मालिनी पश्चिमे पातु वशिनी तूत्तरेऽवतु।।६।।

पूर्व दिशा में भैरवी, दक्षिण में बाला त्रिपुरसुन्दरी, पश्चिम में (भग) मालिनी तथा उत्तर दिशा में देवी वशिनी सदा मेरी रक्षा करें।।६।।

ऊर्ध्वं पातु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
अधस्तात् पातु देवेशी पातालतलवासिनी।।७।।
आधारे वाग्भवः पातु कामराजस्तथा हृदि।
डामरः पातु मां नित्यं मस्तके सर्वकामदः।।८।।
ब्रह्मरन्ध्रे सर्वगात्रे छिद्रस्थानेषु सर्वदा।
महाविद्या भगवती पातु मां परमेश्वरी।।९।।

मेरे ऊर्ध्व और अधोभाग की क्रमशः महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी और देवेशी पातालवासिनी रक्षा करें। मेरे आधार (चरण-भाग) की वाग्भवबीज (ऐं), हृदय की कामराजबीज (क्लीं) तथा सभी कामनाओं को पूरा करने वाले डामर देवता (सौः)

मस्तक की रक्षा करें। ब्रह्मरन्ध्र में, सम्पूर्ण शरीर में जहाँ-जहाँ छिद्रस्थान हैं, वहाँ-वहाँ (स्थित होकर) भगवती परमेश्वरी महाविद्या रक्षा करें।।७-९।।

ऐं क्लीं ललाटे मां पायाद् ह्लीं हंसः पातु नेत्रयोः।
नासायां कर्णयोश्चैव श्रीं ह्लीं ह्लीं चिबुके तथा।।१०।।
हसौ पातु गले हृदये स्त्रीं च नाभिदेशके।
कलह्लीं क्रीं श्रीं गुह्यदेशे पातु हूँ ह्लीँ च पादयोः।।११।।

'ऐं क्लीं' (मन्त्रवर्ण देवता) ललाट में (स्थित होकर), 'ह्लीं हंसः' दोनों नेत्रों में, 'श्रीं ह्लीं ह्लीं' (मन्त्र वर्ण देवता) नथुनों में, दोनों कानों में तथा चिबुक (में स्थित होकर) मेरी रक्षा करें।।१०।।

'हसौः' (मन्त्रवर्ण देवता) गले में, 'स्त्रीं' हृदय में, 'कलह्लीं' नाभि में, 'श्रीं श्रीं' गुह्य देश में तथा 'हूं ह्लीं' दोनों पैरों में (स्थित होकर) मेरी रक्षा करें।।११।।

स्त्रीं मां सर्वतः पातु सक्लीँ पातु च सन्धिषु।
जले स्थले तथाकाशे दिक्षु राजगृहे तथा।।१२।।
हुं क्षें मां त्वरिता पातु सह्लीं सक्लीं मनोभवा।
हंसः पायान्महादेवी परं निष्कलदेवता।।१३।।
विजया मङ्गला दूती कल्याणी भगमालिनी।
ज्वाला च मालिनी नित्या सर्वदा मां सदाऽवतु।।१४।।

मन्त्रवर्ण देवता 'स्त्रीं' मेरे चारो ओर तथा 'सक्लीं' शरीर के सभी जोड़ों में स्थित होकर मेरी रक्षा करें। मन्त्र वर्ण देवता 'हुं क्षें' जल में, देवी त्वरिता स्थल में, मन्त्रवर्ण देवता 'सहीं सक्लीं' आकाश में, देवी मनोभवा दिशाओं में, 'हंस'-रूपिणी परं निष्कल देवता राजगृह में मेरी भली-भाँति रक्षा करें। सर्वसौभाग्यदायिनी देवी विजया, सर्वमङ्गला, (शिव) दूती, कल्याणी, भगमालिनी, ज्वालामालिनी तथा नित्या आदि तिथिनित्यायें सदा-सर्वदा मेरी रक्षा करें।।१२-१४।।

फलश्रुति

इत्येवं कवचं देवि देवानामपि दुर्लभम्।
तव प्रीत्या मयाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः।।१५।।

हे देवि! इस कवच की प्राप्ति (अर्थात् ज्ञान) देवताओं के लिये भी सुलभ नहीं है। तुम्हारे प्रेम से विवश होकर मैंने तुम्हें इस कवच का ज्ञान कराया। इसे हर प्रकार से गुप्त और गोपनीय रखना चाहिए। किसी अनधिकारी व्यक्ति को इस कवच का उपदेश नहीं देना चाहिए।।१५।।

इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भोगमोक्षफलप्रदम्।।१६।।

दुःस्वप्ननाशनं पुंसां नरनारीवशङ्करम्।
आकर्षणकरं देवि स्तम्भमोहकरं शिवे।।१७।।

हे प्रिये! यह परम रहस्यमय कवच अति गोपनीय वस्तुओं से भी अधिक गोपनीय है। यह कवच मनुष्यों को सौभाग्य, कीर्ति, आयु तथा भोग के साथ ही मोक्ष प्रदान करने वाला तथा दुःस्वप्नों (मानसिक भय एवं चिन्ताओं) का नाश करने वाला, स्त्री-पुरुष सभी का वशीकरण करने वाला, सभी प्राणियों का आकर्षण, मोहन तथा स्तम्भन करने वाला है॥१६-१७॥

इदं कवचमज्ञात्वा राजराजेश्वरीं शिवाम्।
योऽर्चयेद् योगिनीवृन्दैः स भक्ष्यो नात्र संशयः।।१८।।
न तस्य मन्त्रसिद्धिः स्यात् कदाचिदपि शङ्करि।
इह लोके च दारिद्र्यं रोगशोकभयानि च।।१९।।
परत्र नरकं गत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात्।
तस्मादेतत् सदाऽभ्यस्येदधिकारी भवेत्ततः।।२०।।

इस कवच को विना जाने अर्थात् इसका पाठ किये विना जो व्यक्ति शिवारूपिणी श्रीराजराजेश्वरी का अर्चन करता है, सभी योगिनियाँ उसका विनाश कर देती हैं। इस कवच का पाठ किये विना मन्त्र-सिद्धि नहीं होती। कवचहीन मनुष्य जीवन भर दरिद्रता, रोग, शोक तथा तरह-तरह के कष्ट भोगता है और मरने के बाद नरक जाता है। नरक-यन्त्रणा भोगने के बाद उसे पशुयोनि मिलती है। अतः मनुष्यों को इसका नित्यप्रति पाठ करना चाहिए। इसका पाठ करने से मनुष्य को राजराजेश्वरी की साधना करने का अधिकार प्राप्त होता है॥१८-२०॥

मद्वक्त्रनिर्गतमिदं कवचं सुपुण्यं
पूजाविधौ च पुरतो यदि वा पठेच्च।
सौभाग्यभोगललितानि शुभानि भुक्त्वा
देव्याः पदं भजति तत् पुनरन्तकाले।।२१।।

कुलार्णवतन्त्रस्य समाप्तं कवचं परम्।

मेरे मुख से निःसृत इस पुण्यप्रद कवच का जो व्यक्ति देवी-पूजन के समय नित्यप्रति उसका पाठ करता है, वह इस जन्म में यथावांछित सुख-सौभाग्य भोगकर मरणोपरान्त देवी के परमपद को प्राप्त कर उस लोक के ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

कुलार्णव-तन्त्र में बताया गया कवच समाप्त हुआ।

विमर्श—'कुलार्णवतन्त्र' में इस कवच का उल्लेख नहीं है। इस 'कवच' का उपदेश 'कुलानन्द-संहिता' नामक तन्त्र-ग्रन्थ में दिया गया है। 'कुलार्णव-तन्त्रस्य' लिखना लिपिकार का प्रमाद है।

●

त्रिपुरसुन्दरीशतनामस्तोत्रम्

समासेन प्रवक्ष्यामि देव्या नाम शताष्टकम्।
तद् गुह्यं परमं जाप्यं महाद्भुतविनाशनम्।।१।।

त्रिपुरार्णवतन्त्रोक्त श्रीत्रिपुरसुन्दरी कवच—भगवती त्रिपुरसुन्दरी के उन एक सौ आठ अत्यन्त गोपनीय नामों का प्रकाशन कर रहा हूँ, जिनका नित्यप्रति जप करने से बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का आश्चर्यजनक रूप से विनाश हो जाता है।।१।।

मूल-पाठ

श्री(ः) चेतना महामाया महागौरी महेश्वरी।
महाबुद्धिर्महाचण्डी महाकाली महाकला।।२।।
महाक्षुधा महामुद्रा महानिद्रा महोदया।
महालक्ष्मीर्महाभोगा महामोहा महोदया।।३।।
महाजया महातुष्टिर्महालज्जा महाधृतिः।
महाघोरा महादंष्ट्रा महाकान्तिर्महास्मृतिः।।४।।
महाजपा महामेधा महाबोधा महातपा।
महास्वधा महास्वाहा महाबाधा महासुरा।।५।।
महाबन्धनसंहन्त्री महाभयविनाशिनी।
महानेत्रा महावक्त्रा महाजिह्वा महाभुजा।।६।।
महामहीरुहा पूर्णा महाच्छाया महानघा।
महाशक्तिर्महाश्वासा महापर्वतनन्दिनी।।७।।
महाब्रह्ममयी माता महासारा महावरा।
महासुरघ्नी महती पार्वती चर्चिका शिवा।।८।।
महाक्षान्तिर्महाभ्रान्तिर्महामाता महीयसी।
महाकुला महालोला महामाया महाफला।।९।।
महानीला महाशीला महाशुभ्रा महाकला।
महाचित्रा महासेतुर्महाहेतुर्यशस्विनी।।१०।।
महाविद्या महासाध्या महासत्या महागतिः।
महासुरी महादुर्गा महादुःस्वप्ननाशिनी।।११।।
महामोक्षप्रदा मोक्षा महादक्षा महीयसी।
महाभद्रा महावाणी महारोगविनाशिनी।।१२।।
महादारुर्महाकारा महामारी महेश्वरी।
महाक्षेमङ्करी क्षेमा महैश्वर्यप्रदायिनी।।१३।।

महाविषघ्नी विषदा महादुर्गविनाशिनी।
महादुर्गा महातारा महाकैलासवासिनी।।१४।।
महासुभद्रा सुभगा महार्घ्या च महासती।
महाप्रत्यङ्गिरा नित्या महाप्रलयकारिणी।।१५।।
महाशक्तिर्महामुक्तिर्महामङ्गलदायिका ।

फलश्रुति

इदं यः कीर्त्तयेद् भक्त्या विषमस्थो भवेद् यदि।।१६।।
लौहपञ्जरमध्यस्थस्तस्य नश्यति बन्धनम्।
राजानो दासतां यान्ति भवेत् सर्वजनप्रियः।।१७।।
उत्तमां भूतिमाप्नोति तस्य नश्यन्त्युपद्रवाः।
संग्रामे विजयेच्छत्रून् गरुडः पन्नगानिव।।१८।।
न विषं क्रमते तस्य न मृत्युः पावके जले।
नाकाले मरणं तस्य कदाचिदपि सम्भवेत्।।१९।।
यद् यत् कामयते कामी तत्तदाप्नोति नान्यथा।
बहुना च किमुक्तेन सर्वेषां मूर्ध्नि वर्त्तते।।२०।।
रुद्रयामलतन्त्रोक्तं शतं नाम समीरितम्।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणावूनविंशतितम: प्रकाश:।।१९।।

फलश्रुति—इस अष्टोत्तर शतनामस्तोत्र का पाठ करने से निगडबन्धन-सहित भयानक से भयानक विपत्ति से मुक्ति मिलती है। राजा तथा राज्याधिकारियों से मैत्री होती है। सभी सांसारिक सुख एवं ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। उपद्रव शान्त हो जाते हैं। शत्रुओं से विजय-श्री मिलती है। अकालमृत्यु का भय नहीं होता। विष से, जल में डूबने या आग में जलकर मरने का भय नहीं होता। जिस वस्तु की इच्छा की जाती है, वह स्वत: प्राप्त हो जाती है। रुद्रयामल तन्त्र में वर्णित 'शतनाम स्तोत्र' पूर्ण हुआ।।

'भावना-भाष्य–प्रयोग-क्रम'

इन दिव्य नामों से भगवती के स्तवन की प्रयोग-विधि नीचे लिखी जा रही है। इन मन्त्रों के आगे 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:' की योजना करके इन दिव्य नामों से भगवती का पूजन-तर्पण तथा 'नम:' के स्थान पर 'स्वाहा' की योजना करके इन नाम-मन्त्रों से हवन भी किया जा सकता है। यथा—

(१) 'ऐं ह्रीं श्रीं श्रियै नम:'—से प्रणामयुक्त स्तवन।

(२) 'ऐं ह्रीं श्रीं श्रियै नम:। श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:' से पूजन-तर्पण।

(३) 'ऐं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा'—से हवन।

प्रयोग के समय इन नाम-मन्त्रों के आगे 'ऐं ह्रीं श्रीं' की योजना कर लें।

ऐं ह्रीं श्रीं—

(१) श्रियै नमः।
(२) चेतनायै नमः।
(३) महामायायै नमः।
(४) महागौर्यै नमः।
(५) महेश्वर्यै नमः।
(६) महाबुद्ध्यै नमः।
(७) महाचण्ड्यै नमः।
(८) महाकाल्यै नमः।
(९) महाकलायै नमः।
(१०) महाक्षुधायै नमः।
(११) महामुद्रायै नमः।
(१२) महानिद्रायै नमः।
(१३) महोदयायै नमः।
(१४) महालक्ष्म्यै नमः।
(१५) महाभोगायै नमः।
(१६) महामोहायै नमः।
(१७) महोदरायै नमः।
(१८) महाजयायै नमः।
(१९) महातुष्ट्यै नमः।
(२०) महालज्जायै नमः।
(२१) महाधृत्यै नमः।
(२२) महाघोरायै नमः।
(२३) महादंष्ट्रायै नमः।
(२४) महाकान्त्यै नमः।
(२५) महास्मृत्यै नमः।
(२६) महापद्मायै नमः।
(२७) महामेधायै नमः।
(२८) महाबोधायै नमः।
(२९) महातपायै नमः।
(३०) महास्वधायै नमः।
(३१) महास्वाहायै नमः।
(३२) महाबाधायै नमः।
(३३) महासुरायै नमः।
(३४) महाबन्धनसंहर्त्र्यै नमः।
(३५) महाभयविनाशिन्यै नमः।
(३६) महानेत्रायै नमः।
(३७) महावक्त्रायै नमः।
(३८) महाजिह्वायै नमः।
(३९) महाभुजायै नमः।
(४०) महामहीरुहायै नमः।
(४१) पूर्णायै नमः।
(४२) महाच्छायायै नमः।
(४३) महानघायै नमः।
(४४) महाशक्त्यै नमः।
(४५) महाश्वासायै नमः।
(४६) महापर्वतनन्दिन्यै नमः।
(४७) महाब्रह्ममय्यै नमः।
(४८) मात्रे नमः।
(४९) महासारायै नमः।
(५०) महावरायै नमः।
(५१) महासुरघ्न्यै नमः।
(५२) महत्यै नमः।
(५३) पार्वत्यै नमः।
(५४) चर्चिकायै नमः।

(५५) शिवायै नमः।
(५६) महाक्षान्त्यै नमः।
(५७) महाभ्रान्त्यै नमः।
(५८) महामात्रे नमः।
(५९) महीयस्यै नमः।
(६०) महाकुलायै नमः।
(६१) महालोलायै नमः।
(६२) महामायायै नमः।
(६३) महाफलायै नमः।
(६४) महानीलायै नमः।
(६५) महाशीलायै नमः।
(६६) महाशुभ्रायै नमः।
(६७) महाकलायै नमः।
(६८) महाचित्रायै नमः।
(६९) महासेतवे नमः।
(७०) महाहेतवे नमः।
(७१) महायशस्विन्यै नमः।
(७२) महाविद्यायै नमः।
(७३) महासाध्यायै नमः।
(७४) महासत्यायै नमः।
(७५) महागत्यै नमः।
(७६) महासुर्यै नमः।
(७७) महादुर्गायै नमः।
(७८) महादुःखनाशिन्यै नमः।
(७९) महामोक्षप्रदायै नमः।
(८०) महामोक्षायै नमः।
(८१) महादक्षायै नमः।
(८२) महीयस्यै नमः।
(८३) महाभद्रायै नमः।
(८४) महावाण्यै नमः।
(८५) महारोगविनाशन्यै नमः।
(८६) महादारवे नमः।
(८७) महाकारायै नमः।
(८८) महाभार्यै नमः।
(८९) महेश्वर्यै नमः।
(९०) महाक्षेमंकर्य्यै नमः।
(९१) महाक्षेमायै नमः।
(९२) महेश्वर्यप्रदायिन्यै नमः।
(९३) महाविषघ्न्यै नमः।
(९४) महाविषदायै नमः।
(९५) महादुर्गविनाशन्यै नमः।
(९६) महादुर्गायै नमः।
(९७) महातारायै नमः।
(९८) महाकैलासवासिन्यै नमः।
(९९) महासुभद्रायै नमः।
(१००) महासुभगायै नमः।
(१०१) महाध्र्यायै नमः।
(१०२) महासत्यै नमः।
(१०३) महाप्रत्यंगिरायै नमः।
(१०४) महानित्यायै नमः।
(१०५) महाप्रलयकारिण्यै नमः।
(१०६) महाशक्त्यै नमः।
(१०७) महामुक्त्यै नमः।
(१०८) महामंगलदायिकायै नमः।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के उन्नीसवें अध्याय का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।१९।।

●

विंशतितमः प्रकाशः

[मन्त्राणां पुरश्चरणकथनम्]

अथ वक्ष्यामि मन्त्राणां पुरश्चरणमुत्तमम्।।१।।

[पुरश्चरणं विना मन्त्रसिद्ध्यभावः]

विना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि।
तत् पुरश्चरणं नाम मन्त्रसिद्ध्यर्थमात्मनः।।२।।
जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।।३।।

[आदौ पुरश्चरणस्य कर्त्तव्यता]

तस्मादादौ पुरश्चर्या कर्त्तव्या साधकोत्तमैः।
येनानुष्ठितमात्रेण वशमायान्ति देवताः।।४।।

अथेति। पुरश्चरणलक्षणमुक्तं हंसमाहेश्वरतन्त्रे—

जपहोमौ तर्पणञ्च सेको ब्राह्मणभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।।

रामार्च्चनचन्द्रिकायामपि—

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसन्नेन यथाविधि।
पञ्चाङ्गोपासने सिद्धिः पुरश्चैतद् विधीयते। इति।

जीवहीन इति। पद्यमिदं गन्धर्वतन्त्रे सप्तविंशपटलेऽपि, तत्र च 'देही'ति पाठ उपलभ्यते, स च देहार्थक एवेति पुरश्चरणबोधिनी।

रुद्रयामले च—

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः।
ततः पुरस्क्रियां कुर्यान्मन्त्रवित् सिद्धिकाङ्क्षया।।
किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः।
रहस्यानाञ्च मन्त्राणां यदि न स्यात् पुरस्क्रिया।।
पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं जीवमुच्यते।। इति।

मन्त्रों का पुरश्चरण—गुरुदेव से दीक्षा लेने के बाद शिष्य साधक को मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहिए; क्योंकि जिस तरह जीव के विना शरीर कोई कार्य करने

में सक्षम नहीं होता, उसी तरह पुरश्चरण के विना मन्त्र से किसी फल या विधि की प्राप्ति नहीं होती। अतः अब मैं पुरश्चरण की विधि का निरूपण कर रहा हूँ; क्योंकि पुरश्चरणरूप अनुष्ठान से ही देवता वश में आते हैं।।१-४।।

विमर्श—'पुरश्चरण' का अर्थ है—मन्त्र की पूर्व-सेवा। जब तक दीक्षा के बाद मन्त्र की यथाविहित 'पूर्व-सेवा' नहीं होगी, उससे वांछित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिये सभी तन्त्रग्रन्थों में मन्त्रपुरश्चरण की अनिवार्यता रेखांकित की गई है। 'रुद्रयामल' में कहा गया है कि जब तक मन्त्र का पुरश्चरण नहीं किया जाता, तब तक मन्त्रन्यास, जप, हवन और तर्पण का कोई फल नहीं मिल सकता। रामार्चनचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि यथाविहित संख्या में जप, होम, तर्पण, अभिषेक (मार्जन) तथा ब्राह्मणभोजन से मन्त्र के पुरश्चरण का क्रम पूरा होता है।

[पुरश्चरणेतिकर्त्तव्यता]

अथ पूर्वमुपोष्याथ कृतनित्यक्रियः शुचिः।
द्विजदेवगुरून् भक्त्या सम्पूज्य मन्त्रविद्वरः।।५।।
गणेशं साधकांश्चैव पितॄंश्चैव प्रपूजयेत्।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानाञ्च तथैव च।।६।।
गुरोराज्ञां समादाय शुद्धान्तःकरणो बुधः।
यत्नात् पुरस्क्रियां कुर्याद् गुरुं वा कारयेद् बुधः।
गुरोरभावे विप्रोऽन्यः सर्वप्राणिहिते रतः।।७।।

मन्त्र-दीक्षाप्राप्त साधक गुरुदेव से आज्ञा लेकर पुरश्चरण करने का निश्चय करे। शुद्धि के लिये उपवास करके वह गुरुदेव, गणेश, ब्राह्मणों, पितरों, देवताओं, मन्त्रों और विद्याओं का यथाविधि भक्तिपूर्वक अर्चन करे। तत्पश्चात् मन्त्र का पुरश्चरण करे। यदि वह स्वयं असमर्थ है तो गुरुदेव से अथवा उनके अभाव में सर्वहितकारी किसी ब्राह्मण से पुरश्चरण कराये।।५-७।।

[पुरश्चरणस्थानानि]

पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहा पर्वतमस्तकम्।
तीर्थप्रदेशः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम्।।८।।
उद्यानानि विचित्राणि विल्वमूलं तटं गिरेः।
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं सुरालयम्।।९।।
अश्वत्थामलकीमूलं गोशालं जलमध्यतः।
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्।
एषामन्यतमं स्थानमाश्रित्य जपमाचरेत्।।१०।।

पुण्यक्षेत्रमित्यादि। योगिनीहृदयेऽपि अयमेव पाठः। 'एषामन्यतम'मित्यादि पद्यार्द्धन्तु 'साधने तु प्रशस्तानि स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम्' इत्येवमुपलभ्यते तत्र। स्थाननिर्णयश्च प्रपञ्चसारसंग्रहे—

समुद्रतीरेऽप्यथवाऽद्रिशृङ्गे समुद्रगाणां सरिताञ्च पाटे।
जपेद् विविक्ते निजवर्यगेहे विष्णोर्गृहे वा पुरुषो मनस्वी।।

शिवगीतायामपि—

विल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्त्रान् विविधान् जपेत्।
एकेन दिवसेनैव तत् पुरश्चरणं भवेत्।।
यस्तु विल्वमये नित्यं कुटीं कृत्वा जपेन्नरः।
सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति जपमात्रेण केवलम्।। इत्यादि।

गङ्गामधिकृत्य कुलोड्डीशे—

न वेदी नासनञ्चात्र न पूजा न विधिस्तथा।
उक्तसंख्यं जपं कृत्वा होमाद्यन्तु समाचरेत्।। इति।

वायवीयसंहितायाञ्च—

सूर्यस्याग्रे गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च।
विप्राणाञ्च गवाञ्चैव सन्निधौ शस्यते जपः।। इति।

निबन्धे षोडशपटले—

वीराणान्तु महानद्यास्तीरं देवालयस्तथा।
एकलिङ्गं श्मशानन्तु शून्यागारं चतुष्पथम्।।

पुरश्चरणयोग्य स्थान—समस्त पुण्यक्षेत्र, नदी और समुद्र का तट, तीर्थस्थान, नदियों का संगम, पवित्र वन, उद्यान, तुलसीवन, गोशाला, पीपल, आँवला या बिल्ववृक्ष का मूल, वृषरहित शिव-मन्दिर, अन्य देवताओं के मन्दिर, पर्वत की कन्दरा तथा अपना घर पुरश्चरण के लिये प्रशस्त है। इनमें से किसी स्थान का चयन करके पुरश्चरण करना चाहिए।।८-१०।।

विमर्श—वीर पुरश्चरण के लिये श्मशान, एकलिंग मन्दिर, महानदियों का तट, चौराहा तथा शून्यागार (उजड़ा हुआ पुराना घर) अधिक प्रशस्त है।

[पुरश्चरणे भोजननियमाः]

भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा।
पयो वा मूलमेवात्र यदा यत्रोपलभ्यते।।११।।

भोजन-नियम—पुरश्चरण काल में भूना हुआ अनाज, हविष्यान्न, जौ, गाय का दूध तथा उस क्षेत्र में उपलब्ध कन्द-मूल-फल ग्राह्य हैं।।११।।

[पुरश्चरणे वर्ज्याणि]

विवर्जयेन्मधु क्षारं लवणं तैलमेव च।
ताम्बूलं कांस्यपात्रञ्च दिवाभोजनमेव च।।१२।।

वर्जनीय—मधु (शहद), तेल, नमक, तांबूल, कांस्य-पात्र तथा दिन में भोजन पुरश्चरण काल में वर्जित हैं।।१२।।

[मन्त्रजपानन्तरकर्त्तव्यानि]

मन्त्रं जप्त्वाऽन्नपानीयैः स्नानाचमनभोजनम्।
कुर्याद् यथोक्तविधिना त्रिसन्ध्यं देवतार्च्चनम्।।१३।।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत्।।१४।।

पुरश्चरणकाल में स्नान के बाद मन्त्रजप, जप के बाद यथाविहित भोजन प्रशस्त है। तात्पर्य यह कि मन्त्रजप के पूर्व भोजन निषेध है। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायं-सन्ध्या तथा देवता का अर्चन अनिवार्य है। यदि तीनों काल में सन्ध्या करना सम्भव नहीं हो तो कम-से-कम एक बार तो अवश्यमेव सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। सन्ध्या किये विना मन्त्रजप करने से कोई फायदा नहीं होता।

विमर्श—सन्ध्या दो प्रकार की है—वैदिक तथा तान्त्रिक। इनमें से वैदिक सन्ध्या करने का अधिकार उपनयन-संस्कारसम्पन्न द्विजातियों को है। इनसे भिन्न अन्य व्यक्ति वैदिक सन्ध्या नहीं करें। ऐसे द्विजेतर व्यक्तियों के लिये केवल तान्त्रिक सन्ध्या प्रशस्त है। उपनयन-संस्कारसम्पन्न द्विज साधकों के लिये दोनों सन्ध्यायें तथा ब्रह्म-गायत्री तथा इष्ट-देवता की गायत्री का जप अनिवार्य है।

[गुरुवन्दनम्]

एकग्रामे स्थितो नित्यं गत्वा वन्देत वै गुरुम्।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मादादौ तमर्चयेत्।।१५।।

गुरुदेव साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। अतः यदि गुरुदेव का निवास उसी गाँव में है तो सर्वप्रथम उनका दर्शन और पूजन अनिवार्य कर्तव्य है।।१५।।

[नित्यनैमित्तिकादिकर्त्तव्यता]

नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात् संसर्गं साधुभिः सह।
स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा।।१६।।

[स्नान-तर्पणोपदेशः]

शक्तौ त्रिसवनस्नानमन्यथा द्विः सकृच्च वा।
अस्नातस्य फलं नास्ति न चातर्पयतः पितॄन्।।१७।।

पुरश्चरणकाल में प्रतिदिन पञ्चगव्य से अथवा केवल आँवले से दिन में तीन, दो या एक बार स्नान करना तथा पितरों का तर्पण अनिवार्य है। स्नान और पितृ-तर्पण

के विना मन्त्रजप का फल नहीं मिलता। पुरश्चरणकाल में नित्यकर्म का लोप नहीं करना चाहिए।।१६-१७।।

[त्याज्यानि]

स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ।
असत्यभाषणञ्चैव कौटिल्यं दूरतस्त्यजेत्।।१८।।
वर्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम्।
अभ्यङ्गं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च।।१९।।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत्।
अस्नानञ्च द्विजान् शूद्रान् स्त्रियो नैव स्पृशेत्तदा।।२०।।
त्यजेदुष्णोदके स्नानमनिवेदितभोजनम्।
प्राणिहिंसां न कुर्वीत पुरश्चरणकृन्नरः।।२१।।

त्याज्य विषय—स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक व्यक्तियों से सम्पर्क और संगति का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। झूठ बोलना, कुटिल व्यवहार, उच्छिष्ट भोजन, गीत-नृत्य, नाटक, नौटंकी, अभ्यंग, तेल-मर्दन, पुष्प-धारण, मैथुन एवं तत्सम्बन्धी वार्ता एवं चिन्तन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। स्त्रियों का स्पर्श भी वर्जित है। प्रतिदिन स्नान अनिवार्य है, मगर अत्यन्त गर्म पानी से स्नान वर्जित है। अनिवेदित भोजन अर्थात् वह भोजन जो इष्टदेवता को निवेदित नहीं किया गया हो, ग्रहण नहीं करना चाहिये। सर्वोपरि बात यह है कि किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये।।१८-२१।।

[अन्यतो वस्तुग्रहणविवेक:]

विहाय वह्निं नहि वस्तु किञ्चिद्
ग्राह्यं परेभ्यः सति सम्भवे च।
असम्भवे तीर्थबहिर्विशुद्धात्
पर्वातिरिक्ते प्रतिगृह्य जप्यात्।।२२।।

पुरश्चरणकाल में किसी भी अन्य व्यक्ति से अग्नि के अतिरिक्त कोई भी वस्तु माँगना अथवा किसी के द्वारा निवेदित किसी वस्तु को ग्रहण करना निषिद्ध है। यदि लेनी ही पड़े तो पुरश्चरणस्थल के बाहर पर्व के अतिरिक्त सामान्य दिन में ग्रहण किया जा सकता है।।२२।।

[दशाविशेषे जपनिषेध:]

ऊष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशोऽप्यनावृतः।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रसर्पन्न जपेत् क्वचित्।।२३।।

अनावृतकरो भूत्वा शिरसा प्रावृतोऽथवा।
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो भ्रान्तस्त्वरान्वितः।।२४।।
मुक्तकच्छः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा।
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरालये।।२५।।

रथ्यायामिति। निन्दितस्थानमुक्तं निबन्धे षोडशपटलेऽपि—

राजानः सचिवा यत्र पुरुषाः प्रभवो जनाः।
चरन्ति येन मार्गेण न वसेत् तत्र साधकः।। इति।

पगड़ी, टोपी और कुर्ता-कमीज पहिन कर अथवा नग्न होकर जप नहीं करें। इसी तरह बालों को खोलकर अथवा सिर को ढँककर जप करना मना है। जप के समय न तो हाथ खुले रहने चाहिये और न ही अशुद्ध होने चाहिए। मुक्तकच्छ अर्थात् विना लंगोट पहिने जप करना मना है। इसी तरह चलते, घूमते-टहलते, लेटे-लेटे तथा चलती गाड़ी में बैठकर जप नहीं करना चाहिए। जब मन में उद्विग्नता हो, हृदय परेशान हो, चिन्तामग्न हो, क्रुद्ध हो, अन्यमनस्क हो, मन में जप करने के लिये उत्साह एवं चाव न हो, मन्त्र का जप नहीं करें। शुद्ध-स्वच्छ, पवित्र, निरापद स्थान में यथाविहित आसन पर वैठकर प्रमुदित मन से जप किया जाय। जप के समय मण्डप या कक्ष में अन्धेरा न हो; अपितु पर्याप्त प्रकाश होना चाहिए।।२३-२५।।

[जपे विशेषोपदेशः]

शनैः शनैः परिस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम्।
न न्यूनं नातिरिक्तञ्च जपं कुर्याद्दिने दिने।।२६।।

मन्त्र का जप न तो धीमी गति से किया जाय और न तीव्र गति से किया जाय। एक-एक वर्ण का सम्यक् रूप से उच्चारण करते हुए मध्यम गति से इस तरह जप किया जाय कि कोई अक्षर छूटने न पाये। ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद रखा जाय। अक्षरों का उच्चारण भ्रष्ट होने पर जप का फल तो नहीं मिलता, प्रत्यवाय अवश्य होता है। इसी तरह पुरश्चरण-काल में जप की संख्या प्रतिदिन एक बराबर रखी जाय। इसमें कमी या वृद्धि नहीं की जाय।।२६।।

[जपे दिनलङ्घननिषेधः]

नैरन्तर्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यक्तिलङ्घयेत्।
दिवसातिक्रमात्तेषां सिद्धिहानिः प्रजायते।।२७।।

जप में निरन्तरता होनी चाहिए। नागा नहीं होना चाहिए। इसी तरह निश्चित समय पर ही जप करना चाहिए। किसी दिन सुबह, किसी दिन दोपहर अथवा रात में जप नहीं करें। जप में दिनों का व्यतिक्रम (अर्थात् नागा), जप-समय में बदलाव, तथा जपसंख्या में कमी-वृद्धि से सिद्धिहानि होती है।।२७।।

[जपे कालकथनम्]

अनन्यमानसः प्रायो जपेन्मध्यन्दिनावधि।

प्रशस्त-समय—मन्त्रजप के लिये प्रात:काल से दोपहर तक का समय प्रशस्त है।

[जपे वस्त्रनियमः]

नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा।।२८।।

जप में वस्त्रधारण—न तो केवल एक वस्त्र धारण करके जप किया जाय और न बहुत से कपड़े पहिनकर जप किया जाय। लंगोट, धोती और उत्तरीय-मात्र इतने वस्त्र प्रशस्त हैं।।२८।।

विमर्श—समय का यह बन्धन दक्षिणाचारी साधकों के लिये है। वीराचारी साधना केवल रात्रि में प्रशस्त है। जहाँ तक वस्त्रों का सम्बन्ध है, कतिपय ग्रन्थों में सिले हुए वस्त्रों का भी निषेध है।

[जपतो जपत्यागकारणानि]

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत्।।२९।।

जप के समय पतितों और अन्त्यजों को देखना, उनसे बात करना, अधोवायु का निस्सारण तथा जम्हाई लेना निषिद्ध है।।२९।।

[पुनर्जपे कर्त्तव्यानि शौचादीनि]

उत्थायाचम्य तत्प्राप्तौ प्राणायामं षडङ्गकम्।

[एवं कृत्वा प्रात्यहिकजपकरणम्]

कृत्वा सम्यग् जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम्।।३०।।

यदि जप करते समय कोई पतित या अन्त्यज दिख जाय, जम्हाई आदि आ जाय तो जप छोड़कर आसन से उठकर, हाथ-पैर धोकर, फिर से प्राणायाम और षडङ्ग न्यास करके अथवा भगवान् सूर्य का सम्यक् रूप से दर्शन करके शेष जप को पूरा करना चाहिए।।३०।।

[पुरश्चरणे शय्यानियमः]

शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा।
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत्।।३१।।

पुरश्चरण-काल में साधक को प्रतिदिन कुश की शय्या पर अकेला सोना चाहिए। शैया को और शैया बिछाने के स्थान को प्रतिदिन धोना तथा साफ करना चाहिए।।३१।।

[देवीपूजाधारकथनम्]

लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं पुस्तकस्थां तथैव च।
स्थण्डिलस्थां महामायां पादुकाप्रतिमासु च।।३२।।

चित्रिते त्रिदिनेनाथ जलस्थां वाऽपि पूजयेत्।

पुरश्चरण काल में इष्टदेवता का पूजन अनिवार्य है। यदि पूजन यन्त्र न हो तो शिवलिंग में, शालिग्राम में, प्रतिमा में, पुस्तक में, चित्र में, स्थण्डिल में अथवा जल में देवी की पूजा की जाय॥३२॥

[खड्गादीनां विशेषः]

पञ्चाशदङ्गुलं खड्गं त्रिशिखञ्च त्रिशूलकम्।।३३।।
शिलायां पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे।
देवीं सम्पूजयेन्नित्यं भक्तिप्रभासमन्वितः।।३४।।

पर्वत की चोटी या पर्वत की कन्दरा का आश्रय लेकर पुरश्चरण किया जा रहा है तो पचास अंगुल के खड्ग में, तीन शिखा वाले त्रिशूल में देवी की पूजा भक्तिभाव से की जाय॥३३-३४॥

[देशविशेषे देवीपूजाफलम्]

वाराणस्यां कृता पूजा सम्पूर्णफलदायिनी।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ।।३५।।
ततोऽपि द्विगुणा पूजा द्वारवत्यां विशेषतः।
सर्वक्षेत्रेषु पीठेषु पूजा द्वारवतीसमा।।३६।।
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा।
आर्यावर्त्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्त्ते तथैव च।।३७।।
विन्ध्ये च फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोयानदीजले।।३८।।

वाराणसी में पूजा का सम्पूर्ण फल मिलता है। पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) में उससे चारगुना, द्वारवती (द्वारिका) में तथा अन्य क्षेत्रों तथा पीठों में दोगुना, विन्ध्य क्षेत्र में सौगुना, गंगा क्षेत्र में, आर्यावर्त, मध्य देश तथा ब्रह्मावर्त में, प्रयाग में, पुष्कर में, विन्ध्य क्षेत्र के बराबर तथा करतोया नदी के जल में उससे भी अधिक चारगुना फल मिलता है॥३५-३८॥

तस्माच्चतुर्गुणा प्रोक्ता नन्दिकेश्वरसन्निधौ।
ततः सिद्धेश्वरीयोनौ तस्माद् द्विगुणसिद्धिदा।।३९।।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदकुण्डके।
तत्समा कामरूपेण सर्वत्रैव जले स्थले।।४०।।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा।
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये।।४१।।

देवीक्षेत्रं क़ामरूपं विद्यते न हि तत्समम्।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे।।४२।।
ततः शतगुणं प्रोक्तं नीलकूटस्य मण्डलम्।
ततोऽपि द्विगुणं प्रोक्तं हैरके शिवलिङ्गके।।४३।।
ततः शतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डले।
कामाख्यायां महामाया-पूजां यः कृतवान् सकृत्।।४४।।
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम्।
न तस्य सदृशोऽप्यस्ति कृति तस्य न विद्यते।
वामकेश्वरतन्त्रेषु प्रभुणोक्तमिदं मतम्।।४५।।

उससे चारगुना अधिक नन्दिकेश्वर क्षेत्र में, उससे दोगुना सिद्धीश्वरी योनि क्षेत्र में तथा उससे चारगुना अधिक फल लौहित्यनद (ब्रह्मपुत्र) क्षेत्र में मिलता है। कामरूप क्षेत्र में जल या स्थल में सर्वत्र इतना ही पूजाफल मिलता है। जिस तरह सभी देवताओं में विष्णु और लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं, उसी तरह देवीपूजा के लिये कामरूप सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं। अन्य देशों में तो कुछ विरले स्थानों में ही देवी का तेजोरूप प्रतिष्ठित है; लेकिन कामरूप में तो घर-घर में वे विद्यमान हैं। इसीलिये नीलकूट मण्डल को अन्य स्थानों से सौगुना प्रशस्त माना गया है। हैरक शिवलिंग क्षेत्र नीलकूट से दोगुना तथा कामाख्या योनिमण्डल उससे भी सौगुना श्रेष्ठ पूजास्थान है। जिसने एक बार भी कामाख्या धाम में महामाया की पूजा कर ली, समझो उसने सब कुछ पा लिया। ऐसे साधक शिवरूप हो जाते हैं और उनके सदृश और कोई अन्य नहीं होता। वामकेश्वर तन्त्र में स्वयं भगवान् शिव ने ऐसा कहा है।।३९-४५।।

[पुरश्चरणविधिः]

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विधानमत्र यद्भवेत्।

यह प्रतिज्ञावाक्य है। पुरश्चरण-सम्बन्धी सामान्य निर्देशों का उल्लेख करने के बाद अब पुरश्चरण-विधि का निरूपण किया जा रहा है। सर्वप्रथम भूमि-संस्कार, कीलरोपण और कूर्मचक्र-विधान बताने के बाद आसन और मालासंस्कार बताया गया है।

[भूमिसंस्कारे कीलकस्थापनम्]

अष्टौ च कीलकान् कुर्यादभीष्टसहितान् पुनः।।४६।।
मूलमन्त्रास्त्रमन्त्रेण प्रत्येकं शतमष्ट च।
अभिमन्त्र्य अष्टदिक्षु भूमौ तान् विलिखेत् सुधीः।।४७।।

अष्टौ च कीलकानिति। कीलकारोपणमुक्तं पुरश्चरणबोधिनीधृतनिवन्धे—

क्षीरिवृक्षोद्भवान् कीलानस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान्।
निखनेद् दशदिग्भागे तेष्वस्त्रञ्च प्रपूजयेत्।।
क्षेत्रे च कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते।।

कीलकारोपणे निषिद्धस्थानमुक्तं कालीकुलामृते षष्ठपटले—

महातीर्थे शून्यगेहे देवतायतनेऽपि वा।
न कीलकान् खनेत् तत्र जपमात्रेण सिद्ध्यति।। इति।

विशेषस्तु निबन्धे—

सुदर्शनास्त्रं संजप्य चाष्टोत्तरशतं ततः।
वेदिकादशदिग्भागे तान् कीलान् निखनेत् क्रमात्।।
ॐ ये चात्र विघ्नकर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरिक्षगाः।
विघ्नभूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु।।
ममैतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः।
अपसर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तु मे।।
अनेन निखनेत् कीलांस्तेषु लोकेश्वरान् यजेत्। इति।

पुरश्चरण के लिये भूमि का चयन करने के उपरान्त वहाँ आठों दिशाओं और विदिशाओं में क्षीरिवृक्ष से बनी हुई आठ कीलें भूमि में गाड़ें। भूमि में गाड़ने के पूर्व इनमें से प्रत्येक कील को मूलमन्त्र और अस्त्र मन्त्र का १०८ बार जप करके अभिमन्त्रित करना चाहिये।।४६-४७।।

[कीलेषु दिक्पतिपूजनम्]

तेषु कीलेषु पूर्वादिक्रमतो दिक्पतीनपि।
अष्टौ सम्पूज्य गन्धाद्यैः कदलीमोदकादिभिः।।४८।।

इन कीलों पर पूर्वादि क्रम से इन्द्र आदि दिक्पालों की गन्ध-पुष्प-कदली तथा मोदक से यथाविधि पूजन करके बलि प्रदान करें।।४८।।

[दिक्पतिभ्यो बलिदानं वास्तुदेवतापूजनञ्च]

बलिं तेभ्योऽथवा दत्त्वा पूजयेद् वास्तुदेवताम्।
क्षेत्रे च कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते।।४९।।

अथवा वास्तुदेवता की यथाविधि पूजा करें। दिक्पालों और वास्तु देवता की पूजा करने से पुरश्चरण क्षेत्र में विघ्नों का प्रवेश नहीं होता।।४९।।

[क्षेत्रपालादीनां पूजा]

क्षेत्रपालं गणेशञ्च वटुकं योगिनीं तथा।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैस्ततः क्षेत्रं समाश्रयेत्।।५०।।

दिक्पालों का पूजन करने के बाद वहाँ क्षेत्रपाल, गणेश, बटुक और योगिनियों की विधिवत् पूजा करने के बाद क्षेत्र का आश्रय लेना चाहिए।।५०।।

विमर्श—प्रयाग आदि महातीर्थ में, शून्य गृह में, देवालय में कील गाड़ने की आवश्यकता नहीं होती।

[कूर्मचक्रलिखनम्]

क्षेत्रमध्यं समाश्रित्य कूर्मचक्रं लिखेत् सुधीः।
दीपस्थां गुटिकां कुर्यात् सितपत्रनिवारिणीम्।।५१।।

क्षेत्रमध्यमिति। कूर्मचक्रप्रमाणमुक्तं पुरश्चरणबोधिनीधृतनिबन्धे—

यत्र ग्रामे जपेन्मन्त्री तत्र कूर्मं विचिन्तयेत्।
दीपस्थानं समासाद्य कृतं कर्म फलप्रदम्।।

दीपस्थानं यथा गौतमीये—

दीपस्थानं द्विधा प्रोक्तं मुखं पृष्ठञ्च मन्त्रिणः।
दीपस्थाने भवेत् सिद्धिर्नान्यथा कोटिजापनैः।।

निबन्धे—

चतुरस्त्रं भुवं भित्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत्।

कूर्मचक्रनिषेधस्थानमुक्तं गौतमीये—

पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे।
यदि कुर्यात् पुरश्चर्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत्।।

वैशम्पायनसंहितायाम्—

पुण्यक्षेत्रं गृही तीर्थं देवतायतनं शुभम्।
विल्वमूलं समुद्रश्च वनमुद्यानमेव च।।
एषु स्थानेषु विप्रेन्द्र कूर्ममुद्रां न चिन्तयेत्।। इति।

कूर्मचक्रं यथा—

पूर्वकोष्ठानि विलिखेत् सप्तवर्गाननुक्रमात्।
लक्ष्मीशे मध्यकोष्ठे स्वरान् युग्मक्रमांल्लिखेत्।
दिक्षु पूर्वादितो यत्र ग्रामाद्यक्षरसंस्थितिः।।
मुखं तत् तस्य जानीयाद्धस्तावुभयतः स्थितौ।
कोष्ठे कुक्षी उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम्।
क्रमेणानेन विभजेन्मध्यस्थमपि भागतः।।
मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः।
उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात्।।

पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः।
कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदायकम्।।

पिङ्गलायाम्—

कूर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याद् जपयज्ञकम्।
तस्य यज्ञफलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते।।

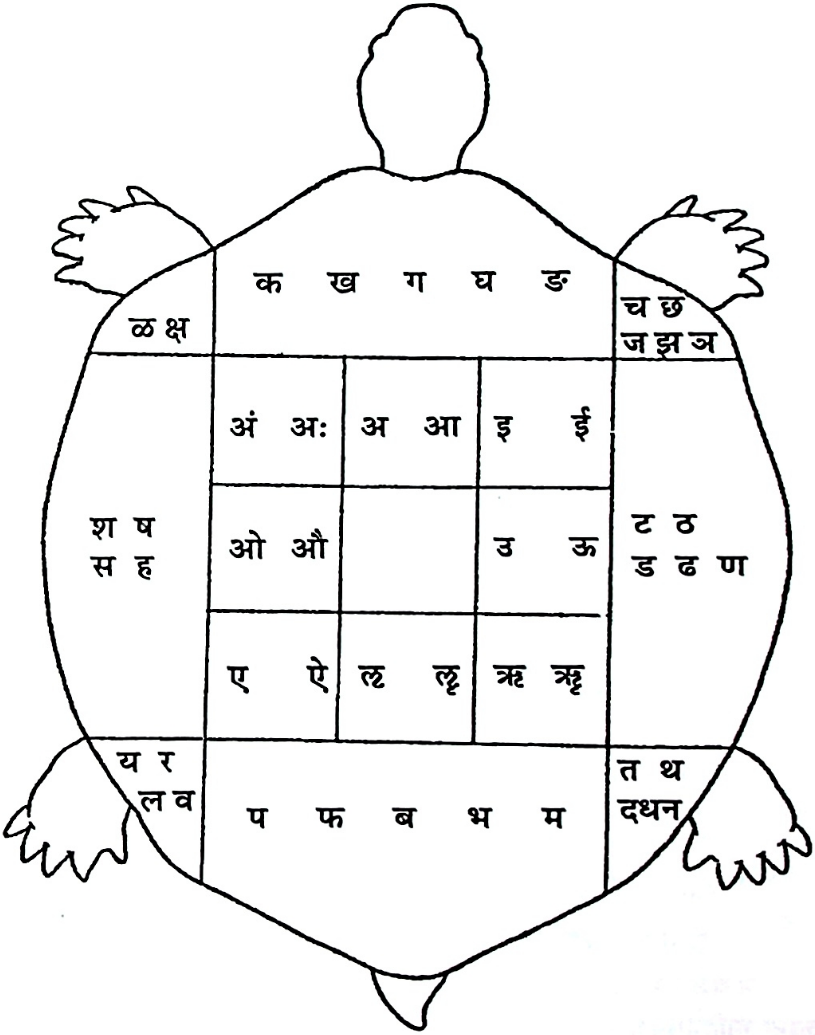
क ख ग घ ङ
ळ क्ष
च छ ज झ ञ
अं अः
अ आ
इ ई
श ष स ह
ओ औ
उ ऊ
ट ठ ड ढ ण
ए ऐ
ऌ ॡ
ऋ ॠ
य र ल व
प फ ब भ म
त थ द ध न

यद्यपि ग्रन्थकृता पूर्णानन्देन तृतीयप्रकाशे कूर्मचक्रमभिभिहितम्, तथाप्यत्र प्रकारविशेषो वर्तते। तन्त्रसारे पुरश्चरणबोधिन्यां चेति टिप्पण्यां पुनरुल्लिख्यते।

क्षेत्र ग्रहण करने के बाद वहाँ विधिवत् कूर्मचक्र बनाकर दीपस्थान में दीपक रखें॥५१॥

विमर्श—पर्वत पर, नदी या सागरतट या वन में कूर्मचक्र नहीं बनायें।

[एवं पूर्वदिने भूमेः संस्कारः]

इति भूमेस्तु संस्कारं कुर्यात् पूर्वदिने सुधीः।

इस प्रकार पहिले दिन भूमि का संस्कार करना चाहिये।

[आरम्भदिने प्रातःकृत्यादि]

अथ प्रातः समुत्थाय कृतनित्यक्रियः शुचिः।।५२।।
रजोभिर्धूपदीपाद्यैः कल्पयेन्मण्डलोज्ज्वलम्।
कृत्वा कल्पोक्तविधिना पूजयेत् परमेश्वरीम्।।५३।।

दूसरे दिन प्रातःकाल में नित्य-क्रिया के पश्चात् कल्प में बताये गये अनुसार मण्डल बनाकर धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि से परमेश्वरी का पूजन करें॥५२-५३॥

[जपे उपवेशनादिप्रकारः]

पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी
शुद्धेन्द्रियस्तर्जनिवर्जिताभिः ।
अक्षस्रजात्माङ्गुलिभिर्यजेत्तां
नातिद्रुतं नातिविलम्बितञ्च।।५४।।

शुद्ध-इन्द्रिय साधक पद्मासन से बैठकर किसी से बातचीत न करते हुए न बहुत तीव्र और न ही विलम्बित गति से मन्त्र का जप करे। मन्त्रजप करते समय तर्जनी अंगुलि का माला से स्पर्श नहीं होना चाहिए॥५४॥

[प्रतिदिनजपसंख्या]

यावत्संख्यं जपेदह्नि पूर्वस्यां तावदेव तु।
दिनान्तरेऽपि प्रजपेदन्यथा सिद्धिरोधकृत्।।५५।।

पुरश्चरण के पहिले दिन दोपहर तक जितना जप हुआ है, उतना ही जप अन्य दिनों में किया जाय। जपसंख्या में कमी-वृद्धि से सिद्धि की हानि होती है॥५५॥

[शिवप्रतिमादिसन्निधौ जपोपदेशः]

शिवस्य सन्निधाने वा सूर्याग्न्योश्च गुरोरपि।
दीपस्य ज्वलितस्यापि जपकर्म समारभेत्।।५६।।

मन्त्रजप भगवान् शिव, सूर्य, अग्नि, गुरु अथवा प्रदीप्त दीपक के सन्निधान में करना चाहिये॥५६॥

[प्रातरारभ्य मध्याह्नपर्यन्तं जपः कर्त्तव्यः]

प्रातरारभ्य मन्त्रज्ञो जपेन्मध्यन्दिनावधि।

जप के लिये सूर्योदय से मध्याह्न काल तक का समय प्रशस्त होता है।

[जपे आसननिर्णयः]

अथासनं प्रवक्ष्यामि येन सिद्धिर्भवेत् किल।।५७।।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः श्रीकामो व्याघ्रचर्मणि।
ऊर्णासने दुःखहानिः कम्बले सर्वसिद्धयः।।५८।।

अथासनमित्यादि। आसने विशेष उक्तः पुरश्चरणबोधिन्यां हंसमाहेश्वरे—

कम्बलं कोमलं कौशं दारवं कर्मसाधनम्।
एतेषामासनं ग्राह्यं चर्मासनं सुरेश्वरि।।
लोम्नि चैव यदासीनस्तदा सर्वं विनश्यति।
लोमस्पर्शनमात्रेण सिद्धिहानिः प्रजायते।।

तथाच निर्लोमचर्मासनं कार्यमित्यर्थः।

काम्यार्थं कम्बलञ्चैव श्रेष्ठञ्च रक्तकम्वलम्।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षं श्रीव्याघ्रचर्मणि।
कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा।।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने।
वंशासने दरिद्रः स्यात् पाषाणे व्याधिपीडनम्।।
तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः।
जपध्यानतपोहानिं वस्त्रासनं करोति हि।।

तत्र वस्त्रासनं केवलमेव निषिद्धं, 'वस्त्रासनं रोगहरमि'त्यादिना विशिष्टस्य फलजनकत्वाभिधानात्, 'चेलाजिनकुशोत्तरमि'ति भगवद्वचनाच्च। अत्र सर्वाधः कुशासनं तदुपरि चर्म, तदुपरि वस्त्रम्—

ततस्तु साधको नित्यं सर्वाधः कौशमासनम्।
अजिनं स्थापयंस्तत्र कुर्याद् वस्त्रावृतं द्वयम्।।

इति रत्नगर्भधृततन्त्रार्णवात्। एवं दारुजासनं केवलमेव निषिद्धम्, कुशादिसमभिव्याहारेण तु विहितम्, 'दारवं कर्मसाधन'मित्येकवाक्यत्वादिति बोध्यम्। अथवा काष्ठासननिषेध आम्रादिकाष्ठविषयः, विधिस्तु गाम्भार्यादिपरः। ताराभक्तिसुधार्णवे च—

तृणपल्लवकाष्ठानि पाषाणं मृन्मयं तथा।
वंशासनञ्च वस्त्रञ्च केवलं क्षितिमासनम्।।
एवमष्टविधं देवि चासनं परिवर्जयेत्।। इति।

ब्रह्मयामलवचनमपि तत्परं व्याख्येयम्। गौतमीयेऽपि—

तथा मृद्वासने मन्त्री पटाजिनकुशोत्तरे। इति।

योगिनीहृदये—

नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही।
विशेद् यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च भिक्षुकः।।

त्रिपुरामहार्णवे—

'न भूमौ व्यजने पत्रे', न वसेदित्यादिः।

कौलिकानामासनविशेषस्तु ताराभक्तिसुधार्णवधृतमत्स्यसूक्ते—

मृदु कम्बलमासीनोऽप्यन्येषु कोमलेषु वा।
विष्टरे वा सुखासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।। इति।

अब विभिन्न प्रकार के आसनों का फल बता रहे हैं। कुशासन पर बैठकर जप करने से ज्ञान-सिद्धि, व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठकर जप करने से श्री-प्राप्ति, ऊन के आसन से दुःखों की हानि और कम्बल के आसन से सर्वसिद्धि होती है।।५७-५८।।

श्वेतं वा रक्तवसनं स्वासनाय प्रकल्पयेत्।

लाल और श्वेत दोनों ही रंग के कम्बल आसन के लिये ग्राह्य होते हैं।

[यतिब्रह्मचारिणोर्विशेषः]

विशेद् यतिर्ब्रह्मचारी कृष्णसाराजिने सदा।।५९।।

यति (संन्यासी) तथा ब्रह्मचारी को काले मृग के चर्मासन पर बैठकर साधना करनी चाहिए।।५९।।

[आसनपरिमाणम्]

एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम्।
स्वस्तिके वाथ पद्मे वा विशेत्तत्र निराकुलम्।।६०।।

जप का आसन एक या दो हाथ लम्बा-चौड़ा तथा चार अंगुल तक ऊँचा होना चाहिए। इस आसन पर स्वस्तिकासन या पद्मासन से बैठकर जप करना चाहिए।।६०।।

[भूम्याद्यासनानां फलवैशिष्ट्यम्]

भूमौ भूपभयं कुलक्षयकरं वंशासने रोगदम्
काष्ठञ्चैव तथासनं प्रकुरुते शैलं महादुःखदम्।
पत्रं दुःखकरं जलं भयकरं तन्तुश्च विद्वेषणम्
मेषं क्रै(त्रै)भृमिकमासनादि सकलं मोक्षादिसिद्धिप्रदम्।।६१।।

नंगी जमीन पर बैठकर जप करने से राजभय तथा कुलक्षय होता है। बाँस और लकड़ी के आसनों का भी ऐसा ही फल होता है। पत्थर के आसन से महादुःख, पत्तों के आसन से जलभय तथा तांत के आसन से विद्वेषण होता है। भेंड़ के चर्म का आसन सिद्धि और मुक्तिप्रद होता है॥६१॥

[अभिचारादिकर्मस्वासनविशेषः]

अभिचारे कृष्णरक्तं वश्यादिसर्वकर्मणि।
शान्तिके धवलः प्रोक्तः सर्वार्थश्चित्रकम्बले।।६२।।

अभिचार (मारण-उच्चाटन-विद्वेषण) कर्मों के लिये काले रंग का तथा वशीकरण आदि (मोहन, आकर्षण, वशीकरण) के लिये लाल रंग का कम्बलासन प्रशस्त है। मिले-जुले चितकबरे रंग का कम्वलासन सभी कार्यों के लिये प्रशस्त है॥६२॥

विमर्श—विविध प्रकार के आसनों तथा उन पर बैठकर साधना करने के शुभ और अशुभ फलों का निरूपण ग्रन्थ की संस्कृत टीका में किया गया है, जो सर्वथा वोधगम्य है। आसन के बाद अब मालाओं का निरूपण किया जा रहा है—

[मालानिरूपणम्]

अथ मालाविधानञ्च प्रवक्ष्यामि समासतः।
अकारादिक्षकारान्ता वर्णमाला प्रकीर्तिता।।६३।।

अक्षमाला—अब मैं संक्षेप में माला-विधान बता रहा हूँ। 'अ'कार से 'क्ष'कार-पर्यन्त अक्षरों की माला को 'वर्णमाला' कहते हैं। 'अ'कार इस माला का प्रथम मनका और 'क्ष'कार इसका सुमेरु कहा गया है॥६३॥

[सबिन्दुवर्णोच्चारणानन्तरं मन्त्रजपनिरूपणम्]

सबिन्दुवर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत् सुधीः।

[मालामेरुनिरूपणम्]

अनुलोमविलोमेन क्षकारो मेरुरुच्यते।।६४।।

बिन्दुयुक्त एक-एक वर्ण की यथाक्रम मन्त्र के साथ अनुलोम और विलोम क्रम से योजना करके मन्त्र का जप करना चाहिए॥६४॥

[मालाविशेष-फल-निरूपणम्]

अथ मुक्ताफलमयी चतुर्वर्गप्रदायिनी।
वाक्सिद्धिश्च तथा माला स्फाटिकेन चरेत् किल।।६५।।
रक्ताऽक्षमालिका मोक्षे भवेत् सर्वसमृद्धिदा।
प्रबालमाला वश्ये तु सर्वकामार्थसिद्धिदा।
पुत्रजीवकमाला तु लक्ष्मी-विद्याप्रदायिनी।।६६।।

क्रमाख्या मालया लक्ष्मीर्जायते सुमहीयसी।
रक्तचन्दनमाला तु वश्या सौभाग्यदा भवेत्।।६७।।
सौवर्णरौप्यघटिता माला कामान् प्रयच्छति।
निर्मिता शङ्खमणिभिः कुरुते कीर्त्तिमव्ययाम्।
सर्वैरेभिर्विरचिता माला स्यान्मुक्तये नृणाम्।।६८।।

मोतियों की माला से चतुर्वर्ग की सिद्धि होती है। स्फटिक की माला से वाक्-सिद्धि, रक्ताक्षमाला से मोक्ष एवं समृद्धि, प्रवालमाला से वशीकरण, पुत्रजीवा की माला से सभी कामनाओं की सिद्धि, कमलगट्टे की माला लक्ष्मी-प्रदायिनी, रक्तचन्दन की माला से वशीकरण और सौभाग्यप्राप्ति तथा स्वर्ण और रजत् माला से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। शंख की माला से यश और ऐश्वर्य मिलता है। इन सभी मणियों की माला का प्रयोग मोक्ष-लाभ के लिये किया जा सकता है।।६५-६८।।

[मालायां संख्यानिरूपणम्]

पञ्चविंशतिभिर्बीजैर्माला मोक्षं प्रकल्पयेत् ।
सप्तविंशतिभिः पुष्टौ त्रिंशद्भिर्मोक्षकर्मणि।।६९।।
त्रिंशद्भिः पञ्चपूर्वाभिरभिचारे च कर्मणि।
पञ्चाशद्भिश्च या माला सर्वकर्मणि सा शुभा।।७०।।
चतुराद्या भवेत् सा तु सर्वकर्मफलप्रदा।
अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिः स्यादपवर्गदा।।७१।।

त्रिंशद्भिरिति। अभिचारकर्मणि पञ्चत्रिंशद्भिर्जपः कार्यः चतुःपञ्चाशत्संख्याका माला सर्वकर्मफलप्रदा भवतीत्यर्थः।

मोक्ष-लाभ के लिये पच्चीस अथवा तीस मनकों की, पुष्टिकार्य के लिये सत्ताईस मनकों की, अभिचार कर्म के लिये पैंतीस (३५) मनकों की माला प्रशस्त है। पचास और चौवन मनकों की माला सर्वसिद्धिदायिनी होती है एक सौ आठ मनकों की माला अपवर्ग-दायिनी कही गई है।।६९-७१।।

[काश्यां सिद्धिदोषकथनम्]

काश्यामेव महादोषा न तु सिध्यन्ति साधकाः।

[सूत्रवर्णकथनम्]

शुक्लं रक्तं तथा कृष्णं शान्तिवश्याभिचारके।।७२।।

[सूत्र-सम्पातनम्]

सूत्रं सम्पातयेद् विद्वान् पट्टसूत्रमथापि वा।

[सूत्र-तन्तु-विशेषेण मालाविशेषग्रन्थनम्]

कार्पासैर्वैष्णवी माला पद्मसूत्रैरथापि वा।।७३।।
ऊर्णाभिर्वा फलैर्वापि शैवी माला प्रकीर्त्तिता।

इससे अधिक मनकों की माला से साधकों को सिद्धि नहीं मिलती। शान्ति-कर्म के लिये माला सफेद रंग के धागे में, वशीकरण आदि के लिये लाल रंग के धागे में और अभिचार कर्म के लिये माला काले रंग के धागे में गूँथी जाय। वैष्णवी माला कपास के धागे में अथवा पद्मसूत्र में तथा शैवी ऊनी सूत में पिरोई जाय।।७२-७३।।

[कल्पोक्तसंख्यया जपकथनम्]

गृहीत्वा संस्कृतां मालां चन्दनेन प्रपूजिताम्।।७४।।
समाश्रित्य जपेद् विद्वान् कल्पमानेन साधकः।

धूप-चन्दन आदि से अर्चिता तथा यथाविधि संस्कार की गई माला से विद्वान् साधक अपने कल्प में बतायी गई संख्या के अनुसार मन्त्र का जप करे। तात्पर्य यह कि जिस मन्त्र के पुरश्चरण के लिये जितने हजार या जितने लाख जप का विधान बताया गया है, उतना जप करे।।७४।।

[होमसंख्यानियमः]

सम्पूर्णेन प्रजप्त्वा वै जपसंख्यादशांशतः।।७५।।
यद्वा जपचतुर्थांशं स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरन्।
यथोक्तकुण्डे जुहुयाद् यथाविधि विधानतः।।७६।।

[अत्र प्रकारान्तरम्]

अथवा पूजयेज्जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः।

सम्पूर्णेनेति। तथाच तत्तत्कल्पोक्तपूर्णसंख्यावधिकमन्त्रजपानन्तरं तद्दशांशं तच्चतुर्थांशं वा स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य पूर्वपटलोक्तलक्षणकुण्डे जुहुयात्।

शाक्तानन्दतरङ्गिण्याञ्च—

स्वकल्पोक्तक्रमेणैव जपं कृत्वा वरानने।
होमयेत् तद्दशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम्।।

इत्याद्युक्तम्। निबन्धे अष्टादशपटले च—

जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत् तद्दशांशतः।
तर्पणञ्चाभिषेकञ्च तत्तद्दशांशतः प्रिये।
प्रत्यहं भोजयेद् विप्रान् न्यूनाधिकप्रशान्तये।।
अथवा सर्वसम्पूर्त्तौ होमादिकमथाचरेत्।।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

अथवा लक्षसंख्यायाः सम्पूर्त्तौ होममाचरेत्।
किंवा यस्य जपो यावांस्तत्पूर्त्तौ होममाचरेत्।। इति।

जप का क्रम पूर्ण हो जाने के बाद सुसंस्कृत कुण्ड में विधि-विधान के साथ स्वाहान्त मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए जप-संख्या का दशांश अथवा चतुर्थांश हवन करें।।७५-७६।।

स्वाहान्त मूलमन्त्र का अर्थ है—मूल मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' की योजना करें।

[तर्पणकथनम्]

ततो होमदशांशेन जले सम्पूज्य देवताम्।।७७।।
सायुधपरिवारान्तां देवीं सलिलमध्यगाम्।
तर्पयामीति मन्त्रेण तर्पयेद्देवतामुखे।।७८।।

हवन का क्रम पूर्ण हो जाने पर आयुधों तथा परिवारदेवताओं-सहित इष्ट-देवता का जल में यथाविधि पूजन करके 'तर्पयामि नमः' इस मन्त्र से देवता के मुख में हवन का दशांश तर्पण करें।।७७-७८।।

तर्पणमन्त्र—मूल मन्त्र + अमुकदेवतां तर्पयामि नमः।

[तर्पणे वस्तुनियमः]

तर्पयेत् कुसुमैः सर्वैः सर्वापत्परिशान्तये।
घृतैः पूर्णायुषः सिद्ध्यै क्षौद्रैः सौभाग्यसिद्धये।।७९।।
दुग्धैरारोग्यसंसिद्ध्यै त्रिभिरैश्वर्यसिद्धये।
नारिकेलोदकैः प्रीत्यै हिमतोयैर्नृपाप्तये।
सर्वार्थसिद्धये तोयैरभिषिञ्चेज्जगन्मयीम्।।८०।।

आपदाओं की शान्ति के लिये फूलों से (फूलयुक्त जल से), पूर्ण आयु के लिये घी से, सौभाग्यसिद्धि के लिये शहद से, प्रीति के लिये नारियल पानी से, राज्यकृपा पाने के लिये बर्फ के पानी से एवं सर्वार्थसिद्धि-हेतु शुद्ध जल से तर्पण करें।।७९-८०।।

[अभिषेकनिरूपणम्]

तर्पणस्य दशांशेन नमोऽन्ते मूलमुच्चरन्।
अभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया।।८१।।

तर्पण का क्रम पूर्ण हो जाने पर नमो अन्त मूल मन्त्र से अपने सिर पर कुम्भ-मुद्रा से तर्पण का दशांश अभिषेक करें।।८१।।

[ब्राह्मणभोजननिरूपणम्]

मार्जनस्य दशांशेन कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।।८२।।

मार्जन (अभिषेक) का दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये।।८२।।

[प्रकारान्तरेणाङ्गनिरूपणम्]

अथवाऽन्यप्रकारेण मन्त्रजापी सुखं व्रजेत्।
पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च जपाङ्गेयं पुरस्क्रिया।।८३।।

इसका दूसरा विकल्प यह है कि मन्त्र-जापक प्रतिदिन प्रातः-मध्याह्न और सन्ध्या—इन तीनों कालों में देवता का यथाविधि पूजन, मन्त्रजप, तर्पण, होम और ब्राह्मण-भोजन कराये। इस प्रकार वह पुरश्चरण के पाँचों अंगों का नित्यप्रति सम्पादन करे।।८३।।

[होमाद्यशक्तौ तत्तत्संख्याद्विगुणादिजपः]

यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणं जपम्।
कुर्वीत त्रिचतुःपञ्चसंख्यया जातिभेदतः।।८४।।

यद्यदङ्गमिति। तथा च ब्राह्मणो होमाशक्तौ होमसंख्याद्विगुणं जपं कुर्यात्, क्षत्रियस्तु त्रिगुणं, वैश्यश्चतुर्गुणं, शूद्रः पञ्चगुणमिति।

जप-होम आदि पुरश्चरण के पाँच अंग हैं। यदि कोई मन्त्रसाधक असमर्थतावश पुरश्चरण के इन पाँचों में से किसी अंग का सम्पादन करने में सक्षम नहीं है तो वह जाति-भेद के अनुसार उस अंग की संख्या से दुगुना, तिगुना, चारगुना अथवा पाँचगुना जप करे। तात्पर्य यह कि ब्राह्मण दोगुना, क्षत्रिय तीनगुना, वैश्य चारगुना और शूद्र पाँचगुना जप करे।।८४।।

[मन्त्रदुष्टत्वकथनम्]

एकमङ्गं विहीयेत मन्त्रो दुष्टत्वमाप्नुयात्।।८५।।

यदि किसी भी एक अंग का सम्पादन नहीं किया जाय तो वह मन्त्र साधक के साथ दुष्टवत् व्यवहार करता है।।८५।।

[उत्तमभोजनदाने सर्वस्य सफलता]

अन्नैश्च विविधैश्चैव पदार्थैः षड्रसान्वितैः।
सुभोजितेषु सर्वेषु सर्वं हि सफलं भवेत्।।८६।।

विविध प्रकार के अन्न तथा षट्रस भोजन कराने से पुरश्चरण के किसी अंग में यदि कोई न्यूनता रह गई है तो वह पूरी हो जाती है। इससे निष्कर्ष यहं निकलता है मन्त्र-साधक ब्राह्मणों के सन्तोष से मन्त्र भी सन्तुष्ट हो जाता है।।८६।।

[गुरवे दक्षिणादानम्]

गुरवे दक्षिणां दद्याद् यथाविभवपूर्वकम्।।८७।।

पुरश्चरण के पाँचों अंग पूर्ण हो जाने पर मन्त्र-साधक यथाशक्ति दक्षिणा देकर गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त करे।।८७।।

[ज्ञाति-द्विजपूजा]

ज्ञातीन् द्विजान् परं भक्त्या पूजयेन्मधुमांसकैः।
एवं कृते पुरश्चर्या साधयेदिष्टदेवताम्।।८८।।

यथाविहित संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराने के साथ ही वह अन्य ब्राह्मणों को पूजन-सहित भोजन कराये। अपनी बिरादरी के लोगों को भी मधुर एवं मांसयुक्त भोजन कराकर सन्तुष्ट करे। तात्पर्य यह कि वह किसी को भी असन्तुष्ट नहीं रखे। इस प्रकार पुरश्चरण करके इष्टदेवता की अनुकम्पा प्राप्त करनी चाहिये।।८८।।

[कृतसङ्कल्पस्य पुरश्चरणस्यात्याज्यता]

पुरश्चरणकाले तु यदि स्यान्मृतसूतकम्।
तथाऽपि कृतसङ्कल्पो व्रतं नैव परित्यजेत्।।८९।।

पुरश्चरण प्रारम्भ हो जाने पर यदि परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु के कारण मृत्यु-सूतक हो जाय, तो भी पुरश्चरणकर्ता व्रत का त्याग नहीं करे अर्थात् पुरश्चरण-कार्य जारी रखे।।८९।।

[अकृतसङ्कल्पिन: कृत्यम्]

यदाप्यकृतसङ्कल्पी नित्यनैमित्तिके स्थितः।
स्नात्वा नित्यन्तु निर्वर्त्त्यमानस्य(?) क्रिययातु वै।।९०।।
बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत्।

पुरश्चरण-काल से भिन्न अन्य सामान्य दिनों में जनन या मरण की स्थिति में मन्त्र के नित्य-नैमित्तिक साधक को स्नान के बाद बहिरंग पूजन के क्रम से केवल ध्यानयोग से (अर्थात् मानस) पूजन करना चाहिए।।९०।।

[मानसजपे दोषाभाव:]

न दोषो मानसे जप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।।९१।।

मानस-पूजन और मानसिक जप में कोई दोष या प्रत्यवाय नहीं हैं।।९१।।

[जपस्य श्रेष्ठत्वम्]

जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठः सर्वयज्ञफलं लभेत्।
सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञः प्रशस्यते।।९२।।

मन्त्र का नित्यप्रति यथानियम जप करने वाला द्विज ही श्रेष्ठ द्विज है। ऐसे ही श्रेष्ठ द्विज को सभी यज्ञों का फल मिलता है। इसीलिये सभी यज्ञों में 'जपयज्ञ' को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा है॥९२॥

[पुरश्चरणान्मन्त्रासिद्धौ उपायान्तरकथनम्]

एवमनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सन्तु शङ्करभाषिताः॥९३॥

इस प्रकार पुरश्चरण का अनुष्ठान करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो उसे सिद्ध करने के लिये भगवान् शिव द्वारा बताये गये अन्य प्रयोग करने चाहिये। इन कार्यों से मन्त्र अवश्यमेव सिद्ध होता है॥९३॥

[द्रावणादीनामुद्देशः]

द्रावणं रोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे।
दहनान्तं पुनः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम्॥९४॥

सात उपाय—भगवान् शिव द्वारा बताये गये ये सात उपाय हैं—(१) द्रावण, (२) रोधन, (३) वशीकरण, (४) पीड़न, (५) पोषण, (६) शोषण और (७) दहन। इन सात उपायों से मन्त्र अवश्यमेव सिद्ध हो जाता है॥९४॥

[द्रावणकथनम्]

द्रावणं वारुणे बीजे ग्रथिते क्रमयोगतः।
तन्मन्त्रयन्त्रमालिख्य सिह्लकर्पूरकुङ्कुमैः॥९५॥
उशीरचन्दनाभ्यान्तु मन्त्रं संलिखितं लिखेत्।
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं भवेत्॥९६॥
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् द्रावितः सिद्धिदो भवेत्।

द्रावणमिति। वारुणं बीजम् 'वं' इति। सिह्लः, यावनः, 'तुरुष्कः पिण्डकः सिह्लो यावन' इत्यमरः। लोहवान् इति ख्यातः।

द्रावण—मन्त्र के अक्षरों को यथाक्रम वरुणबीज (वं) से ग्रथित करके लोहबान, कपूर, कुंकुम, उशीर, चन्दन से लिखकर उसे दूध-घी-शहद और पानी में डालकर रख दें। फिर उसकी पूजा, जप और हवन करें। इससे द्रवित होकर मन्त्र सिद्धिप्रद हो जाता है॥९५-९६॥

[रोधनकथनम्]

द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद्रोधनं तस्य कारयेत्॥९७॥
सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत्।

सारस्वतेनेति। ऐँ इति बीजं मन्त्रस्यादावन्ते च संयोज्य जपेदित्यर्थः।

रोधन—यदि द्रावण क्रिया से मन्त्र सिद्ध नहीं होते तो रोधन क्रिया करें। सारस्वतबीज 'ऐं' से सम्पुटित करके मन्त्र का जप करना रोधन क्रिया है॥९७॥

[वश्यकथनम्]

एवं रुद्धो भवेत् सिद्धो नो चेत्तद्वश्यमाचरेत्॥९८॥
अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रामदसिह्लकम्।
एतैः स्वमन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने।
धार्यं कण्ठे भवेत् सिद्धो न चेत्तत् पीडनं चरेत्॥९९॥

वशीकरण—यदि रोधन उपाय से भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो 'वशीकरण' करें अर्थात् आलता, लाल चन्दन, कूट, हलदी, धतूरे के बीज (मद) तथा मैनसिल के द्रव से मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर उसे कण्ठ में धारण करें। यदि वशीकरण से मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो पीडन का प्रयोग करें॥९८-९९॥

[पीडनकथनम्]

अधरोत्तरयोगेण पदानि परिजप्य च।
ध्यायेत् स्वदेवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम्॥१००॥
विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वा क्रमतः सुधीः।
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने॥१०१॥

पीडन—अधरोत्तर योग से अर्थात् मन्त्र के साथ 'एं ऐं' की योजना करके उसका जप करें तथा अधरोत्तररूपिणी (अर्थात् वाग्बीजरूपिणी) देवता का पूजन करें। तत्पश्चात् आक के रस से मन्त्र को उसी क्रम से भोजपत्र पर लिखें और प्रतिदिन उसी मन्त्र से हवन करें। यह पीडन प्रयोग है। यदि इस उपाय से भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो पोषण-प्रयोग करें॥१००-१०१॥

[पोषणकथनम्]

पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत्।
बालायास्त्रितयं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत्॥१०२॥
गोक्षीरमधुनाऽऽलिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत्॥१०३॥

पोषण—मन्त्र के आदि और अन्त में बाला के तीन बीज (ऐं क्लीं सौः) की योजना करके जपना तथा गाय के दूध तथा शहद से लिखकर हाथ में धारण करना पोषण प्रयोग है॥१०२-१०३॥

[शोषणकथनम्]

पोषितोऽयं भवेत् सिद्धो न चेत् कुर्वीत शोषणम्।
विद्याञ्च वायुबीजेन मन्त्री कुर्याद् विदर्भताम्॥१०४॥

एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वरभस्मना।

शोषण—यदि पोषण प्रयोग से भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो शोषण प्रयोग करें। मन्त्र को वायुबीज (यं) से विदर्भित करके यज्ञ की भस्म से भोजपत्र पर लिखकर उसे गले में धारण करना शोषण प्रयोग है॥१०४॥

[दहनकथनम्]

शोषितोऽपि न सिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः॥१०५॥
आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम्।
आद्यन्तमध्य ऊर्ध्वन्तु योजयेद्दाहकर्मणि॥१०६॥
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत्।
कण्ठदेशे ततो मन्त्रः सिद्धः स्याच्छङ्करोदितः॥१०७॥

दहन—मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को अग्निबीज (रं) से चारो ओर (अर्थात् आगे-पीछे, ऊपर-नीचे) से घेरते हुए पूरे मन्त्र को पलाश-वीज के तेल से भोजपत्र पर लिखें तथा उसे कण्ठ में धारण करें। यह दहन प्रयोग है। इस प्रयोग से मन्त्र को सिद्ध होना ही पड़ता है॥१०५-१०७॥

विमर्श—(१) मन्त्र-सिद्धि के ये सात उपाय गौतमीयतन्त्र में बताये गये हैं। तन्त्रसार में यथा उद्धृत 'गौतमीयतन्त्र' में कहा गया है कि तीन बार पुरश्चरण करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो ये उपाय एक के बाद एक क्रम से किये जायँ। तात्पर्य यह कि यदि एक बार पुरश्चरण करने पर मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो दुबारा और फिर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो तिबारा पुरश्चरण किया जाय। तीन पुरश्चरणों के बाद भी मन्त्र सिद्ध नहीं होने पर ही ये प्रयोग किये जायँ; न कि प्रथम पुरश्चरण के विफल होने पर।

(२) गौतमीयतन्त्र में इनमें से प्रथम प्रयोग का नाम द्रावण नहीं; अपितु भ्रामण बताया गया है। भ्रामण प्रयोग की क्रिया भी भिन्न है। तदनुसार मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को वायुबीज (यं) से ग्रथित करके मैनसिल आदि द्रव्यों से लिखें। शेष यथावत्।

(३) वशीकरण प्रयोग (श्लोक संख्या ९९) में पाठभेद—'हरिद्रामदसिह्लकम्' के स्थान पर 'हरिद्रा मादनं शिलाः'।

(४) श्लोकसंख्या १०१ में 'लिखित्वा क्रमशः सुधी' के स्थान पर 'लिखित्वाक्रम्य चांघ्रिणा'। श्रीतत्त्वचिन्तामणि की अन्य पाण्डुलिपियों में भी यही पाठ है। 'विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चांघ्रिणा' पाठ स्वीकार करने पर अर्थ होगा—

मन्त्र को आक के रस से लिखकर तथा उसे जाँघ के नीचे दबाकर प्रतिदिन होम करें। प्रयोग के नाम (पीडन) की दृष्टि से यह पाठ सटीक प्रतीत होता है।

(५) श्लोकसंख्या १०४ की प्रथम पंक्ति—'विद्याञ्च वायुबीजेन .... विदर्भताम्' का पाठान्तर है—'द्वाभ्यां तु वायुबीजेन मन्त्रं कुर्याद् विदर्भितम्'। तदनुसार अर्थ होगा—मन्त्र को दो-दो वायुबीज (यं) से विदर्भित करके।

(६) वहीं भगवान् शिव ने कहा है कि उपर्युक्त सात उपायों में से एक उपाय करने के बाद यह देखा जाय कि मन्त्र सिद्ध हुआ है या नहीं। यदि मन्त्र सिद्ध हो गया है तो प्रयोग-क्रम को बन्द करके अगला प्रयोग (उपाय) नहीं किया जाय। इसी सन्दर्भ में वहाँ मन्त्र-सिद्धि के लक्षणों का निरूपण भी किया गया है। यथा—

मन्त्रसिद्धि के लक्षण—विना किसी क्लेश के अनायास ही मनोरथों का सिद्ध होना 'मन्त्रसिद्धि' का प्रधान लक्षण है। साधक जब जिस बात की इच्छा करे, वह उसी समय पूरी हो जाय, तो समझें कि मन्त्र-सिद्धि मिल गई है। धन-ऐश्वर्य-यश-लोककीर्ति-सर्वजनप्रियता-राजप्रियता-पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति-नीरोगता और दीर्घ जीवन मन्त्र-सिद्धि के प्रारम्भिक लक्षण हैं। इसी क्रम से लौकिक एवं लोकोत्तर सिद्धियाँ मिलती जाती हैं और अंततः प्रकृत मन्त्र-सिद्धिप्राप्त साधक शिवतुल्य बन जाता है।

[पुरश्चरणानन्तरं गुरुपूजा मन्त्रादीनां गोपनञ्च]

पुरश्चर्यां विधायैवं गुरुं सम्पूजयेत् सुधीः।
गुरुं सम्पूजयेद्धीमान् मन्त्रं यत्नेन गोपयेत्।
अक्षमालाञ्च मुद्राञ्च गुरोरपि न दर्शयेत्।।१०८।।

इस प्रकार पुरश्चरण करने के बाद मन्त्रसिद्ध बुद्धिमान् साधक अपने गुरुदेव की यथाविधि यथाशक्ति पूजा करे। वह अपने मन्त्र की गोपनीयता की रक्षा करे। अपनी माला और मुद्रा गुरुदेव को भी नहीं दिखाये। गुरुदेव को भी अपनी जप-माला दिखाने से सिद्धि की हानि होती है।।१०८।।

[मन्त्रदेवतागुरुषु भक्तिः कर्तव्या]

मन्त्रे तु देवतायान्तु तथा मन्त्रविदे गुरौ।
त्रिषु भक्तिः सदा कार्या सा हि प्रथमसाधना।।१०९।।

मन्त्र, देवता और गुरु के प्रति समान रूप से भक्ति रखना ही प्रथम साधना है।

[मन्त्रदेवतयोरैक्यम्]

मन्त्रो हि देवता ज्ञेया देवता मन्त्ररूपिणी।
द्वयोर्भेदो न कर्त्तव्यो यदीच्छेत् परमं पदम्।।११०।।

मन्त्र ही देवता है और देवता ही मन्त्र है। इन दोनों में हमेशा अभेद बुद्धि रखनी चाहिए। यह अभेदबुद्धि रखने से ही परमपद की प्राप्ति होती है॥११०॥

[मन्त्रसिद्धौ सर्वसिद्धिः]

सम्यक् सिद्ध्यैकमन्त्रस्य नासिद्धमिह भूतले।।१११।।

यदि एक भी मन्त्र सम्यक् रूप से सिद्ध हो पाया तो उससे बढ़कर संसार में और कोई सिद्धि नहीं है॥१११॥

[एकद्व्यादिलक्षसंख्याभेदेन फलभेदः]

अथ लक्षप्रभेदेन जपमाहात्म्यमुच्यते।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्री महापापैः प्रमुच्यते।।११२।।
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि।
महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः।।११३।।
ततो लक्षत्रयं जप्त्वा मन्त्रयन्त्रकलेवरः।
महापातककोटीस्तु नाशयेन्नात्र संशयः।।११४।।

अब लक्षप्रभेद उत्तरोत्तर क्रम से मन्त्र-जप का फल बताया जा रहा है। मन्त्र का प्रथम एक लाख जप पूरा होने पर साधक इस जन्म के महापापों से छूट जाता है। दो लाख जप हो जाने पर सात जन्मों के मुख्य-मुख्य महापातक कट जाते हैं। तीन लाख जप हो जाने पर साधक स्वयं मन्त्र-स्वरूप हो जाता है और उसके करोड़ों-करोड़ पाप समाप्त हो जाते हैं॥११२-११४॥

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्री महावागीश्वरो भवेत्।
कुबेर इव रत्नाढ्यः पञ्चलक्षजपान्नरः।।११५।।
षल्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत्।
सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत्।।११६।।
अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेद् ध्रुवम्।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायकः साधको भवेत्।
वशगास्तस्य राजानो योषितश्च विशेषतः।।११७।।

चार लाख जप हो जाने पर महावागीश्वर, पाँच लाख जप हो जाने पर कुबेर के समान रत्नाढ्य, छः लाख जप हो जाने पर साधक विद्याधर, सात लाख जप हो जाने पर खेचरी-मेलक, आठ लाख जप हो जाने पर साधक देवपूज्य हो जाता है। सभी राजे-महाराजे; विशेषकर स्त्रियाँ उस अष्टसिद्धि-प्राप्त साधक के वशवर्ती हो जाते हैं॥११५-११७॥

नवलक्षप्रमाणेन जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम्।
रुद्रमूर्त्तिः स्वयं कर्त्ता हर्त्ता साक्षान्न संशयः।।११८।।

भगवती त्रिपुरा के ९ लाख मन्त्रों का जप करके साधक स्वयं ही संसार का कर्ता-धर्ता शिवस्वरूप हो जाता है।।११८।।

विमर्श––जपफल का निरूपण करने के बाद अब अगले ८ श्लोकों में जप-सम्पादन के रहस्य का निरूपण किया जायगा।

[नवलक्षजपे स्थानभेदः]

मेढ्रस्थाने शिखाकारमाधारे कनकप्रभम्।
नाभिस्थं सूर्यविम्बाभं हृदि ज्योतिःशिखामयम्।।११९।।
तदूर्ध्वे भास्करमयं कण्ठे दीपशिखामयम्।
लम्बिके चन्द्रविम्बाभं भ्रूमध्ये रत्नवद्रुचिः।।१२०।।
नवमे विश्वतेजश्च नवलक्षाणि यानि च।
एभिः स्थानस्थितो योगी नवलक्षं समभ्यसेत्।।१२१।।

मेढ्रस्थाने इत्यादि। नवचक्रविवेकानुसारेणोक्तमिदं, तदूर्ध्वे आज्ञाचक्रे, लम्बिके तालुचक्रे इत्यर्थः। नवचक्रविवेकस्तु सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदि—'अथ हैनं देवा ऊचुर्नवचक्रविवेकमनुब्रूहीति। तथेति स होवाच—आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिरावृत्ति भगमण्डलाकारं तत्र मूलकं देवशक्तिः, पावकाकारं ध्यायेत्, तत्रैव कामरूपपीठं सर्वकामफलप्रदं भवति। इत्याधारचक्रम्। द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलं, तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रबालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत्, तत्रैवोड्यानपीठं जगदाकर्षणसिद्धिदं भवति। तृतीयं नाभिचक्रं पञ्चावर्तं सर्पकुटिलाकारं तन्मध्ये कुण्डलिनीं बालार्ककोटिप्रभां तनुमध्यां ध्यायेत्। सामर्थ्यशक्तितः सर्वसिद्धिप्रदा भवति। मणिपूरकचक्रं हृदयचक्रमष्टदलमधोमुखम्, तन्मध्ये ज्योतिर्मयलिङ्गाकारं ध्यायेत्। सैव हंसकला सर्वप्रिया सर्वलोकवश्यकरी भवति। कण्ठचक्रं चतुरङ्गुलम्, तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी, दक्षिणे पिङ्गला सूर्यनाडी, तन्मध्ये सुषुम्णां श्वेतवर्णां ध्यायेत्, य एवं वेदानाहतसिद्धिदो भवति। तालुचक्रं तत्रामृतधाराप्रवाहः, घण्टकालिदिमूलचक्ररन्ध्रे राजदण्डावलम्बिनी विवरं दशमद्वारं तत्र शून्यं ध्यायेत्, चित्तलयो भवति। सप्तमं भ्रू-चक्रमङ्गुष्ठमात्रं, तत्र ज्ञाननेत्रं दीपशिखाकारं ध्यायेत्, तदेव पालकदं वाक्सिद्धिदं भवति। आज्ञाचक्रमष्टमं ब्रह्मरन्ध्रनिर्वाणचक्रं तत्र सूचिकागृहेतरं धूम्रशिखाकारं ध्यायेत् । तत्र जालन्धरपीठं मोक्षप्रदं भवति।

परं ब्रह्मचक्रं नवममाकाशचक्रं, तत्र षोडशदलपद्ममूर्ध्वमुखं तन्मध्यकर्णिकां त्रिकूटाकारां तन्मध्ये ऊर्ध्वशक्तिकां पश्यन् ध्यायेत्, तत्रैव पूर्णगिरिपीठे सर्वेच्छासिद्धिसाधनं भवति।' इति। यद्यप्यत्र पूर्णानन्दमततः क्वचित् किञ्चित् वैषम्यं दृश्यते तथापि मूलमेकमेवेति काममुपन्यस्तम्।

इन तीन श्लोकों में शरीरस्थ उन नौ चक्र का उल्लेख किया गया है, जिन पर मन को स्थिर करके मन्त्र-जप करने से उपर्युक्त फल प्राप्त होते हैं। ये नौ चक्र हैं—(१) त्रिकोणाकार मूलाधार, (२) स्वर्णकान्ति वाला स्वाधिष्ठान, (३) सूर्य-विम्बवत् नाभिस्थान, (४) हृदयचक्र, (५) हृदय के ऊपर सूर्य के समान देदीप्यमान चक्र, (५) दीपशिखामय कण्ठचक्र, (६) चन्द्रविम्ब के समान लम्बिका, (७) रत्न-किरण के समान भास्वर भ्रूमध्य और (८) आज्ञाचक्र और (९) षोडश दल कमल वाला आकाश चक्र। सिद्धिकामी साधकों को इन नौ चक्र में कुल-कुण्डलिनी का वक्ष्यमाण रूप से ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करना चाहिए॥११९-१२१॥

विमर्श—इन नौ चक्रों का उल्लेख एतत् पूर्व अठारहवें प्रकाश (श्लोक-संख्या ५११-५१४) में भी किया गया है; मगर दोनों ही स्थानों में इनका निरूपण यथेष्ट स्पष्ट नहीं है। गन्धर्वतन्त्र (पटलसंख्या २९, श्लोक संख्या १३ से १५) में नवचक्र का निरूपण करते हुए कहा गया है—

नव स्थानानि कथ्यन्ते शृणु सावहिते प्रिये।
ज्योतिरूपं तदाधारे मेढ्रस्थाने शिखाप्रभम्॥१२॥
नाभिस्थं सूर्यबिम्बाभं तरुणादित्यवर्च्चसम्।
हृदि ज्योतिःशिखाकारं कण्ठे दीपशिखामयम्॥१३॥
भ्रूमध्ये रत्नसंकाशं तदूर्ध्वे भास्करप्रभम्।
लम्बिके चन्द्रबिम्बाभं ततो वैदूर्यसन्निभम्॥१४॥
नवमे विश्वतेजा हि घण्टावैदूर्यसन्निभः।
लिङ्गरूपी ह्यहं देवि! नवलिङ्गानि यानि च॥१५॥

इसके अनुसार शरीर में इन नौ चक्रों की स्थिति इस प्रकार है—(१) आधार में, (२) लिंगमूल में, (३) नाभि में, (४) हृदय में, (५) कण्ठ में, (६) भ्रूमध्य में, (७) तदूर्ध्व-सीमान्त में, (८) लम्बिका और (९) ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) में। गन्धर्वतन्त्र में इन नौ चक्रों के वर्णों का भी निरूपण किया गया है।

इन नौ चक्रों का उपदेश सर्वप्रथम भगवान् आदि नारायण ने 'सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्' (तृतीय खण्ड) में देवताओं को दिया था। उपनिषद् का उक्त अंश ग्रन्थ की संस्कृत टीका में (अथ हैनं देवा ऊचुः .... काममुपन्यस्तम्) अविकल रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

देवताओं ने भगवान् आदि-नारायण के अनुरोध किया—'हे भगवन्! हमें नवचक्रविवेक के विषय में उपदेश दीजिये। इस पर भगवान् आदि नारायण ने कहा—

मूलाधार में ब्रह्मचक्र है। इस चक्र में तीन आवृत्तियों वाला योनि-मण्डल है। इस योनिमण्डल में देवी कुण्डलिनी सोई हुई नागिन के समान स्थित हैं। तप्त अग्नि के समान उनका उस समय तक ध्यान करना चाहिए, जब तक वे जागृत न हो जायँ। यहीं भगवती त्रिपुरा का कामरूप पीठ है, जिसका ध्यान करने से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं।

अर्थात् दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है। छ: दल वाले इस चक्र के मध्य में प्रवाल के समान लाल रंग का पश्चिमाभिमुख लिंग का ध्यान करना चाहिए। यहीं उड्डीयान पीठ है। यहाँ ध्यान करने से जगत् का आकर्षण होता है।

तीसरा नाभिचक्र है, जो सर्प के समान कुटिल आकार का तथा पाँच घेरों से आवृत है। कोटि-कोटि बालसूर्यों के समान तेजस्विनी और सूक्ष्म आकार वाली देवी कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। देवी कुण्डलिनी जाग्रत होकर जब समर्थवती होती हैं, साधक को सभी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं।

मणिपूरक हृदय चक्र है। इस चक्र में अधोमुख आठ कमलदल हैं। इस चक्र में ज्योतिर्मय लिंग का ध्यान करना चाहिए, जो 'हंसकला' के नाम से विख्यात है। इस चक्र में ध्यान करने से लोकप्रियता में वृद्धि होती है।

कण्ठक्षेत्र में जो चक्र है, वह चार अंगुल का है। इसके बाँयीं ओर इडा (चन्द्रनाड़ी), दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी तथा मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करना चाहिए। जो इस चक्र को जानता है, उसे अनाहत चक्र से सिद्धि प्राप्त होती है।

कण्ठचिह्न से दाँतों की जड़ तक जो चक्र के आकार का 'रंध्र' है, उसमें तालु-चक्र है। इस तालुचक्र में दस दल हैं। इस चक्र में ध्यान करने से चित्तलय होता है।

सातवाँ चक्र भ्रू-चक्र है, जो केवल अंगुष्ठ के बराबर है। इस चक्र में दीप-शिखा के आकार के ज्ञान-नेत्र का ध्यान करना चाहिए। इससे वाक्सिद्धि मिलती है।

आठवाँ चक्र आज्ञाचक्र है। इसे ब्रह्मरन्ध्र अथवा निर्वाण-चक्र भी कहते हैं। यह सुई की नोंक के बराबर है। यहाँ धूम्रशिखा के आकार का ध्यान करना चाहिये। मोक्षदायक जालन्धर पीठ यहीं स्थित है।

नवम आकाश चक्र है। ऊर्ध्वमुख षोडश दल वाले इस चक्र को ब्रह्मचक्र भी कहते हैं। षोडश दल कमल की मध्यवर्ती कर्णिका त्रिकूटाकार है। उसके मध्य में ऊर्ध्व शक्ति को देखते हुए ध्यान करना चाहिए। यहीं पूर्णगिरि पीठ है। इसकी साधना करने से सभी मनोकामनायें पूरी होती हैं।

यद्यपि सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् तथा परमहंस पूर्णानन्द के अभिमतों एवं नव-चक्र-निरूपण में अन्तर है, तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिये 'उपनिषद्' के सम्बन्धित भाग को अविकल रूप से प्रस्तुत किया गया।

[नवचक्रभेदेन नवलक्षजपे सिद्धिः]

नवस्थानस्थितं लक्षं नवलक्षं तदुच्यते।
नव स्थानानि मन्त्रेण क्रमात् सम्भिद्य कुण्डलीम्।।१२२।।
विसर्गस्थामृतं पीत्वा पुनराधारमाविशेत्।
स्थानात् स्थानगतं मन्त्रं स्मरेदेवं क्रमेण तु।
मन्दभाग्योऽपि नियतं सिध्यते नात्र संशयः।।१२३।।

उपर्युक्त नौ स्थानों में स्थित होकर एक-एक लक्ष को समष्टि रूप से नव लक्ष कहा गया है। इष्ट मन्त्र से उपर्युक्त चक्रों का भेदन करते हुए देवी कुण्डलिनी को मूलाधार चक्र से सहस्रार में लाकर और उन्हें अमृतपान कराकर पुनः उसी मार्ग से लाकर मूलाधार में स्थापित कर देना चाहिए। इस क्रम से स्थान-स्थान अर्थात् प्रत्येक चक्र पर मन को स्थिर करके मन्त्र का जप करने से मन्द भाग्य वाला पुरुष भी मन्त्र सिद्ध कर लेता है॥१२३॥

[प्रकारान्तरेण जपसिद्धिः]

अथवाधारपद्मे तु लिङ्गं वा पश्चिमामुखम्।
ज्योतीरूपाञ्च योगिन्यं स्वयम्भूवाचकं परम्।।१२४।।
हृदि त्रिकोणमध्ये वा बाणलिङ्गं तथाकृतिम्।
मूर्ध्नि त्रिकोणमध्ये तु उत्तरं पश्चिमामुखम्।।१२५।।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं यत्र कुत्र समाहितः।
ततो भगवती विद्या त्रैलोक्यवशकारिणी।।१२६।।

इन तीन श्लोकों में उपर्युक्त नौ लाख जप की वैकल्पिक विधि बताई गई है। मूलाधार में त्रिपुराख्य त्रिकोण के मध्य में स्थित ज्योतिरूप स्वयम्भू लिङ्ग को अपने साढ़े तीन वलयों से लपेट कर विराजिता देवी कुण्डलिनी पर पूरे मनोयोग से ध्यान केन्द्रित करके भगवती त्रिपुरा के मन्त्र का तीन लाख जप करें। मूलाधार चक्र में जप का क्रम पूर्ण हो जाने पर हृदय-त्रिकोण के मध्य में बाणलिंग पर देवी कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए मन्त्र का तीन लाख जप करें। यह क्रम पूर्ण हो जाने पर मूर्धा-त्रिकोण में पश्चिममुखी 'इतर' लिंग पर देवी कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए शेष तीन लाख जप करें। इस तरह नौ लाख मन्त्रजप का क्रम पूर्ण हो जाने पर साधक को त्रैलोक्यवशकारिणी देवी त्रिपुरा की पूर्ण कृपा प्राप्त हो जाती है॥१२४-१२६॥

विमर्श—उपर्युक्त तीनों श्लोक 'गन्धर्वतन्त्र' (पटल २९) से उद्धृत हैं। यहाँ उद्धृत इन श्लोकों में मूल ग्रन्थ से अधोलिखित पाठान्तर है—

श्लोक १२४—'ज्योतीरूपाञ्च—ज्योतिरूपञ्च। 'योगिन्यं' के स्थान पर 'योनिस्थ' होना चाहिये। यहाँ 'योगिन्यं' से कोई अर्थ नहीं निकलता।

श्लोकसंख्या १२५—'तथाकृतिम्'—'च तेजसि'। द्वितीय पंक्ति में 'उत्तरं' के स्थान पर 'इतरं'। यहाँ 'उत्तरं' से कोई अर्थ नहीं निकलता।

[मालासंस्कारकथनम्]

अथ वक्ष्यामि मालायाः संस्कारं सर्वसिद्धिदम्।।१२७।।

अब मैं समस्त सिद्धियों को देने वाली माला का संस्कार करने की विधि बता रहा हूँ।।१२७।।

[अप्रतिष्ठितमालया मन्त्रजपनिन्दा]

अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः।
सर्वं तन्निष्फलं विद्यात् क्रुद्धा भवति चण्डिका।।१२८।।

अप्रतिष्ठित अर्थात् असंस्कृत माला से मन्त्रजप करने से देवी चण्डिका क्रुद्ध हो जाती है तथा मन्त्रजप का कोई फल नहीं मिलता।।१२८।।

[मालासूत्रनिर्माणम्]

कान्तया रचिता सा तु द्रुतं सिद्धिकरी स्मृता।
ऊद्ध्र्वन्तु त्रिवृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम्।।१२९।।
पुण्यस्त्रीरचितं सूत्रं कार्पासं पट्टमेव वा।
मूलास्त्रञ्च पठन् सूत्रं बीजं प्रक्षालयेत्ततः।।१३०।।

अपनी पत्नि अथवा शुद्ध आचरण वाली महिला के द्वारा काते गये कपास के सूत या पट्टसूत्र (तांत) में पिरोई गई माला सिद्धिदात्री होती है। यह सूत इकहरा नहीं होना चाहिये; अपितु उसे तीन गुना करके फिर से तीनगुना करके उसमें मूल मन्त्र और अस्त्रमन्त्र का जप करते हुए एक-एक मनका पिरोया जाय।।१२९-१३०।।

[मालायां ग्रन्थिकरणम्]

एकैकमालामादाय ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत्।
ग्रन्थिहीनं न कर्त्तव्यं स्पृष्टास्पृष्टे न दुष्यति।।१३१।।
शैवे च वैष्णवे सौरे गाणेशे श्रीकरेऽपि च।
बीजकल्पात् पुनः कुर्यात्तत्र नास्ति विचारणा।।१३२।।

धागे में एक-एक मनके को पिरोकर ब्रह्मगाँठ लगानी चाहिये। गाँठ के अभाव में मनकों के आपस में रगड़ होने से दोष होता है। शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, श्रीकर आदि किसी भी देवता के मन्त्रजप के लिये बनाई गई माला में गाँठ होनी चाहिये। इसमें सोच-विचार करने की कोई बात नहीं है।।१३१-१३२।।

[ग्रन्थिहीने दोषाभावो देवीविशेषे]

या देव्यो ग्रन्थिहीनाः स्युर्लिख्यते तदशेषतः।।१३३।।

कालिकात्वरितायाश्च शक्राद्याः षट्कभेदतः।
तेनाचरणवासिन्यो वाराह्याश्च प्रपूजयेत्।।१३४।।

कालिका, त्वरिता, इन्द्राणी, तोडला, वनवासिनी, वाराही आदि देवियों की मालाओं में ग्रन्थि न होने पर दोष नहीं होता।।१३३-१३४।।

[मालाशोधने क्रियाविशेषः]

अनुलोमविलोमाभ्यां मातृकाऽन्तरितं न्यसेत्।
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां शिवमन्त्रेण मन्त्रिताम्।।१३५।।

माला के एक-एक मनके को मातृका से अन्तरित करके अर्थात् प्रत्येक मनके पर मातृकाओं का न्यास करके शिवमन्त्र से अभिमन्त्रित माला को पञ्चगव्य में डाल दे।।१३५।।

[मालायां गन्धादिदानम्]

सद्योजातेन गन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत्।
धूपयेत्तामघोरेण लेपयेत् पुरुषेण तु।।१३६।।
मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकन्तु शतं शतम्।
मेरुञ्च पञ्चमेनैव मन्त्रेणानेन मन्त्रयेत्।।१३७।।

सद्योजात मन्त्र से माला को पञ्चगव्य से प्रक्षालित करें। वामदेवमन्त्र से माला में चन्दन-अगरु और कपूर आदि का लेपन कर उसे सुगन्धित करें। अघोरमन्त्र से उसे धूपित करें। 'तत्पुरुष' मन्त्र से माला को चन्दन-चर्चित करें और पञ्चम (ईशान) मन्त्र से माला के प्रत्येक मनके को सौ-सौ बार अभिमन्त्रित करें। इसी तरह माला के सुमेरू को भी ईशानमन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करें।।१३६-१३७।।

माला-संस्कार विधान—पीपल के नये कोमल ९ पत्तों को इस तरह गोलाकार रखें कि वह कमल के समान दिखाई दें। मातृकाओं और मूल मन्त्र का उच्चारण करके माला को पद्माकार अश्वत्थपत्रों पर रख दें। फिर निम्नलिखित 'सद्योजात' मन्त्र से पञ्चगव्य से माला का प्रक्षालन करें—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे भवेऽनादिभवे भवोद्भवाय वै नमः।।१३८।।(१)

पञ्चगव्य से माला को अच्छी तरह प्रक्षालित कर लेने के बाद 'वामदेव' मन्त्र से माला पर चन्दन-अगर-कपूर का लेप करें—

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः
कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलाय नमो
बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमः
(ॐ नमो) (मनो)न्मथनाय नमः।।१३९।।(२)

माला पर चन्दन-कपूर आदि का लेपन करने के बाद निम्नलिखित अघोरमन्त्र से उसे धूपित करें—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।१४०।।(३)

अघोरमन्त्र से माला को धूपित करने के बाद निम्नलिखित 'तत्पुरुष' मन्त्र से माला पर फिर से चन्दन लगायें—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।१४१।।(४)

तदनन्तर माला के प्रत्येक बीज (मनके) और सुमेरु पर 'ईशान' मन्त्र का सौ-सौ बार जप करें—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां
(ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा)
शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।।१४२।।(५)

शिवमन्त्रों से माला-संस्कार की उपर्युक्त विधि 'मुण्डमालातन्त्र' में बताई गई है।

[शक्तिविषये मन्त्राभावमतनिरासः]

इति पञ्चऋचा शुद्धिर्न शक्तिविषये तथा।
तत्र समीहितं मुण्डमालायां संस्मृता यतः।।१४३।।

मुण्डमालातन्त्र में उपर्युक्त पाँच वैदिक मन्त्रों से माला-संस्कार का विधान तो बताया गया है; मगर माला-संस्कार के लिये शक्तिमन्त्र नहीं बताये गये हैं।।१४३।।

[मालास्थापनम्]

ततः सञ्जपितां मालां स्थापयेद्धेमपात्रके।
पद्माकारेऽश्वत्थपत्रनवके स्थापयेच्च वा।।१४४।।
पञ्चामृतेन सुस्नाप्य शीतलेन जलेन च।
महाप्रेतासनं बीजं न्यसेत्तत्र च साधकः।।१४५।।

ईशान मन्त्र से अभिमन्त्रित माला को पञ्चामृत तथा शुद्ध शीतल जल से स्नान कराकर सोने के पात्र अथवा पद्माकार अश्वत्थपत्रों पर रखकर प्रेतबीज (ह्सौः) से न्यस्त करें।।१४४-१४५।।

तत्र देवीं सुपूज्यैव परिवारगणैः सह।
विधिवदग्निमारोप्य घृतेन शक्तितो हुनेत्।।१४६।।
होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गुरुर्मालां समाचरेत्।।१४७।।

शिष्यहस्ते ततः सोऽपि प्रजप्याष्टोत्तरं शतम्।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् यथाविभवपूर्वकम्।।१४८।।

अब माला में देवता का आवाहन तथा प्राणप्रतिष्ठा करके यथावैभव उनकी सपरिवार पूजा करें। विधिवत् अग्नि स्थापित करके यथाविधि (अष्टोत्तरशत) होम करें (तथा हुतशेष को माला पर डाल दें।) यदि होम करने में असमर्थ हों तो दुगुना जप करें। जप करने के बाद गुरुदेव वह माला शिष्य के हाथों में दे दें। गुरुदेव से माला ग्रहण करने के बाद शिष्य स्वयं भी उस माला पर मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करे। तत्पश्चात् गुरुदेव को यथाशक्ति दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे।।१४६-१४८।।

[मालाया: स्वयं संस्कारकाल:]

गुरोरभावे मालायाः संस्कारं स्वयमाचरेत्।

यदि गुरुदेव न हों तो बुद्धिमान् शिष्य को स्वयं ही उपर्युक्त विधान से माला का संस्कार करना चाहिए।

[प्रत्यहं पूजान्ते मालाजप:]

अभ्युक्ष्यादौ जपेन्मालां पूजान्तेऽपि तथैव च।।१४९।।

प्रतिदिन जप के पूर्व और जप के बाद सामान्य अर्घ्य के जल से माला का अभ्युक्षण करके उसकी वन्दना की जानी चाहिए।।१४९।।

विमर्श—श्रीविद्यार्णव (१६वाँ श्वास) में माला-संस्कार की उपर्युक्त विधि का निरूपण करने के बाद यह प्रतिपादित किया गया है कि सद्योजात आदि मन्त्रों से माला-संस्कार की उक्त विधि केवल 'रुद्राक्ष-माला' के लिये है। 'कालोत्तरतन्त्र' में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

रुद्राक्षाणामयं प्रोक्तः संस्कारः श्रुतिचोदितः।
इतरेषु तु तन्त्रोक्तः कर्त्तव्यो गुरुसाधकैः।।

कालोत्तरतन्त्र से उक्त प्रमाण देने के बाद रुद्राक्षभिन्न अन्य मणियों से निर्मित मालाओं के संस्कार के लिये 'योगिनीतन्त्र' तथा 'भैरवतन्त्र' में बताये गये विधानों का निरूपण किया गया है। यथा—

माला-संस्कार विधान—यथाविधि गूँथी गई माला को स्वर्ण आदि के किसी पात्र पर रखकर उस पर गणेश, सूर्य, विष्णु तथा दुर्गा का पृथक्-पृथक् आह्वान करके यथाविधान पूजन करें। तत्पश्चात् उस माला को 'ह्रौं' इस मन्त्र का जप करते हुए पञ्चगव्य में डाल दें। कुछ क्षणों के बाद उसे पञ्चगव्य से निकालकर पञ्चामृत में डाल दें। तत्पश्चात् उसे पञ्चामृत से निकालकर शुद्ध शीतल जल से धोयें। चन्दन-अगरु आदि सुगन्धित द्रव्यों का उस पर लेप करें। इस माला पर 'ह्रौं'

इस मन्त्र का १०८ बार जप करें। तत्पश्चात् उस पर इष्टदेवता के साथ नवग्रहों तथा दिक्पालों का पूजन करें। विधिवत् अग्नि में अपने इष्टमन्त्र से तिल और घृत से हवन करें। हुतशेष घृत माला पर डालें। इस प्रकार माला का संस्कार करके गुरुदेव और ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करें।

[मालापूजायां मन्त्रविशेषः]

वाग्भवं भुवनेशानी अक्षमालाञ्च ङेयुताम्।
हृन्मन्त्रञ्च समुच्चार्य पूजयेत् साधकोत्तमः।।१५०।।

वाग्भवमित्यादि। एतेन 'ऐँ ह्रीँ अक्षमालायै नमः' इति मन्त्रो भवति।

प्रतिदिन जप करने के पूर्व 'ऐं ह्रीं अक्षमालायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करें॥१५०॥

[मालाप्रार्थनामन्त्रः]

ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।१५१।।

यह माला-प्रार्थना मन्त्र है। माला की पूजा करने के बाद उक्त मन्त्र से माला को प्रणाम करें॥१५१॥

[मालाऽभिमन्त्रणम्]

अभिमन्त्र्य ततो मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
मायां सिद्धेश्वरीं ङेऽन्तां हृदयान्तो मनुः स्मृतः।।१५२।।
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो ग्रहणे च जपान्तिके।
हृत्प्रदेशे समानीय न तु वामेन संस्पृशेत्।।१५३।।

अभिमन्त्र्येति। एतेन 'ह्रीँ सिद्धेश्वर्यै नमः' इति मन्त्रः सिध्यति।

प्रार्थना करने के बाद 'ह्रीं सिद्धेश्वर्यै नमः'—इस मन्त्र से माला को अभिमन्त्रित करके दाहिने हाथ में ग्रहण करें। बाँयें हाथ से माला का स्पर्श करना वर्जित है। जप के समय माला को हृदय के समीप रखें॥१५२-१५३॥

[मालाजपे अङ्गुलिनियमः]

मध्यमाया मध्यभागे स्थापयित्वा समाहितः।
तर्ज्जन्या न स्पृशेन्मालामङ्गुष्ठाग्रेण चालयेत्।।१५४।।
प्रत्येकं बीजमादाय मेरुञ्चापि न लङ्घयेत्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु जपेदुत्तमकर्मणि।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन विद्वेषोच्चाटने जपः।।१५५।।

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन जपेन्मारणकर्मणि।

मध्यमा अंगुलि के मध्यम-पर्व पर माला को रखकर अंगूठे के अग्रभाग से उसके प्रत्येक मनके को सरकायें। तर्जनी अंगुली से माला का स्पर्श न होने दें। सुमेरु पर न तो मन्त्र-जप करें और न सुमेरु का उल्लंघन करें। जब एक माला जप हो जाय तो दूसरी बार जप करने के लिये माला को घुमा दें। शान्ति-पुष्टि आदि शुभ-कर्म में अंगूठे और अनामिका अंगुली से जप करें। विद्वेषण और उच्चाटन में तर्जनी तथा अंगूठे से और मारण कर्म में कनिष्ठा तथा अँगूठे से जप करें। षट्कर्म में माला-जप का यह विधान है॥१५४-१५५॥

[जपान्ते मालास्थापनम्]

जपान्ते मस्तके मालां क्षिप्त्वाऽनेन समर्च्चयेत्॥१५६॥

जप पूर्ण हो जाने पर माला को सिर पर रखकर इस मन्त्र से प्रार्थना करें—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदाशु सदा मम।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यञ्च सर्वदा॥१५७॥

[मालायाः संगोपनम्]

जपान्तकाले तां मालां गोपयेत् प्रयतः सुधीः।
जपकालेऽपि गोप्तव्या जपमाला सुशोभना॥१५८॥

त्वं माले इति। अयं मन्त्रस्तु तन्त्रान्तरे—

त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥ इति।

जप करते समय और जप के बाद भी अपनी माला को छिपाकर गुप्त ही रखना चाहिये। जप-माला पर किसी अन्य व्यक्ति की दृष्टि नहीं पड़नी चाहिये॥१५७-१५८॥

[संख्यां विना जपनिषेधः]

गणनाविधिमुल्लङ्घ्य यो जपेत्तज्जपं पुनः।
गृह्णन्ति राक्षसास्तेन गणयेत् सर्वथा बुधः.॥१५९॥

गणनेति। गणनस्यावश्यकत्वमुक्तम्। प्रमाणमिदं तन्त्रसारेऽपि। अन्यच्च तन्त्रसारधृतविश्वसारे—

जपसंख्या तु कर्तव्या नासंख्यातं जपेत् सुधीः।
असंख्याकारकस्यास्य सर्वं भवति निष्फलम्॥

तन्त्रे—

हृदये हस्तमारोप्य तिर्यक् कृत्वा कराङ्गुलीः।
आच्छाद्य वाससा हस्तौ दक्षिणेन सदा जपेत्॥

जपसंख्याधारणे निषिद्धानिषिद्धान्याह—

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः।
न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्यास्तु कारयेत्।।
लाक्षाकुशीदसिन्दूरं गोमयञ्च करीषकम्।
विलोड्य गुलिकां कृत्वा जपसंख्यास्तु कारयेत्।। इति।

जो भी जप किया जाय, उसका ठीक से हिसाब रखा जाय। यदि मन्त्रजप की गणना नही की जाती तो राक्षस उसे चुरा लेते हैं।।१५९।।

[मालायाः पुनः सूत्रग्रन्थनकालः]

जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेत्।

जब माला का सूत पुराना पड़कर कमजोर हो जाय, माला को नये सूत में गूँथकर उस पर मन्त्र का सौ बार जप करें।

[मालायाः करभ्रंशादिदोषे कर्त्तव्योपदेशः]

कराद् भ्रष्टे शब्दकृते जपेदष्टोत्तरं शतम्।।१६०।।
निषिद्धस्पर्शने तद्वज्जपेत् प्रक्षाल्य मन्त्रवित्।।१६१।।

यदि जप करते समय माला हाथ से छूटकर गिर जाय या माला के मनके आपस में टकराकर शब्द करने लगें तो प्रायश्चित्तस्वरूप अष्टोत्तरशत जप करें। अपवित्र अवस्था में अथवा अपवित्र हाथ से माला का स्पर्श हो जाने पर माला को अच्छी तरह धोकर अष्टोत्तरशत जप करें।।१६०-१६१।।

[प्रकारान्तरेण मन्त्रसिद्धिकथनम्]

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धिकरं परम् ।
मन्त्रसाधनयोरैक्यं दुर्लभं भुवि मानवैः।।१६२।।
उक्तं सङ्कर्षणे तन्त्रे शिवेनाखिलवेदिना।
आनन्दाख्ये पञ्चरात्रे शुक्राय कवये पुरा।।१६३।।

मन्त्र-सिद्धि का एक अन्य उपाय बता रहा हूँ। यह उपाय सर्वज्ञाता भगवान् शिव ने संकर्षणतन्त्र में प्राचीन काल में कवि शुक्राचार्य को बताया था।।१६२-१६३।।

[शिष्यमन्त्रयोरैक्यकथनम्]

संस्कृतं पूजितं मन्त्रं दत्त्वा शिष्याय देशिकः।
कुर्यादथ तयोरैक्यं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना।।१६४।।

तन्त्रवित् गुरुदेव अपने शिष्य को विधिवत् संस्कार-सम्पन्न मन्त्र प्रदान करके इन दोनों का शास्त्रोक्ति विधि से एकीकरण करें।।१६४।।

[तत्र नियमविशेषः]

मन्त्रं विदर्भितं कृत्वा नामवर्णैर्यथाक्रमम्।
आद्यन्ते सकलं नाम ततः प्रणवमालिखेत्।।१६५।।
स्वराः पात्रेषु संलेख्या ध्यायेत्तानमृतात्मकान्।
भूर्ज्जे रोचनगन्धाद्यैः पद्ममध्ये सुशोभने।।१६६।।
मृदा पवित्रयावेष्ट्य तत् पुनः सिक्थकेन तु।
निःक्षिपेन्मधुरे तत्तु मृन्मये लघुभाजने।।१६७।।

भोजपत्र पर रोचना और गन्ध आदि से षोडशदल कमल बनायें। इस कमल के मध्य में शिष्य का नाम, इसके नीचे शिष्य के नाम के अक्षरों से विदर्भित मन्त्र तथा इसके नीचे पुनः शिष्य का पूरा नाम तथा अन्त में प्रणव (ॐ) लिखें। कमल के पत्रों पर स्वरवर्णों को लिखकर अमृतरूप में उनका ध्यान करें। इस भोजपत्र को गोल लपेट कर उस पर शुद्ध और पवित्र मिट्टी तथा मिट्टी पर मोम लपेट दें। उस गोले को शहद से भरे हुए मिट्टी के किसी छोटे बर्तन में डाल दें॥१६५-१६७॥

क्षीरपूर्णे नवे कुम्भे तत् क्षिपेल्लघुभाजनम्।
धारयेद्देशिकः कुम्भमग्निकुण्डसमीपतः।
मन्त्रसाधकयोरैक्यसिद्ध्यर्थं जुहुयात्ततः।।१६८।।
मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः सहस्रं शतमेव वा।
कुम्भे सम्पातयेन्मन्त्री मधुराणां त्रयं शुभम्।।१६९।।
निधाय निःक्षिपेत् कुम्भं शनैस्तं महदम्भसि।
मन्त्रसाधकयोरैक्यं भवेदेवंक्रमेण तु।।१७०।।

मिट्टी के इस छोटे बर्तन को दूध भरे हुए मिट्टी के नये तथा बड़े कुम्भ में डाल दें। इस कुम्भ को हवन-कुण्ड के समीप रखकर मन्त्र और साधक की ऐक्य-सिद्धि के लिये मूल मन्त्र से अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तर सहस्र हवन करें। हुतशेष घी को कुम्भ में सम्पादित करें। जब हवन हो जाय, उस कुम्भ में त्रिमधुर डालकर उसे गहरे पानी में छोड़ दें। इस तरह मन्त्र और साधक का एकीकरण हो जाता है॥१६८-१७०॥

[देशिकस्यैतज्ज्ञानाभावे निन्दा]

एतद् यो न विजानाति नासौ देशिक उच्यते।।१७१।।

जो इस प्रयोग को नहीं जानता, वह देशिक कहे जाने का अधिकारी नहीं होता॥१७१॥

[यत्र कुत्र रहस्यं न वक्तव्यम्]

रहस्यं कथितञ्चैव न वदेद् यस्य कस्यचित्।
उत्तमाय स्वशिष्याय प्रियपुत्राय वा वदेत्।।१७२।।

यह रहस्यपूर्ण प्रयोग सभी लोगों को नहीं; अपितु अपने प्रिय पुत्र और उत्तम शिष्य को ही बताना चाहिए।।१७२।।

[त्रिमधुरसंज्ञा]

पयो मधु घृतञ्चैव समं त्रिमधुरं स्मृतम्।।१७३।।

समान मात्रा में दूध, शहद और घी मिलाने से त्रिमधुर वनता है।।१७३।।

[रहस्यपुरश्चरणादिकं श्यामारहस्यतो ज्ञातव्यम्]

रहस्यादि पुरश्चर्या दूतीयागादिकाः क्रियाः।
श्यामारहस्ये विज्ञेयाः संज्ञायां साधकोत्तमैः।।१७४।।

रहस्यादीति। श्यामारहस्ये पञ्चमपरिच्छेदे रहस्यपुरश्चरणं ज्ञातव्यम्। दूतीयाग-विधिश्च श्यामरहस्ये श्रीक्रमे—

यामामात्रगते रात्रौ कुलगेहगतः पुमान्।
ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धिभिः।।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गो रक्तमाल्यानुलेपितः।
रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारुणगृहे स्थितः।
रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः।।
पञ्चीकरणसंकेतैः पूजयेत् कुलनायिकाम्।।

कुलनायिकालक्षणमुक्तं तत्रैव—

नटी कापालिनी वेश्या पुक्कसी नापिताङ्गना।
रजकी रञ्जकी चैव सैरिन्ध्री च सुभाषिणी।।
खटिका घटिका चैव तथा गोपालकन्यका।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः।।
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्ज्जिताः।
सङ्गोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः।।

एवं यथोदितां प्रसूनतूलिकोपरि संस्थाप्य पूजामारभेत्। तदुक्तं तत्रैव—

अद्वैताचारसम्पन्नां घृणालज्जाविवर्जिताम्।
सदनुष्ठाननिरतां सात्त्विकीं भक्तिसंयुताम्।।

देवताभावसंयुक्तां गुरुभक्तां दृढव्रताम्।
ईर्ष्यालस्येन रहितां सदयां भक्तवत्सलाम्।।
चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरुणादिगुणान्विताम् ।
रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम्।।
सदा परिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम्।
अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम्।।
विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम्।
सुगन्धिकुसुमाबद्धां सर्वाभरणभूषिताम्।।
सुधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मणि योजयेत्।
एवम्भूतां यजेत् ताञ्च प्रसूनतूलिकोपरि।।

इत्यादि। नवमपरिच्छेदे श्यामरहस्ये विशेषेणोल्लिखितो वर्तते इति तत्रैवानुसन्धेयः। विस्तरभयान्न साकल्येन लिखितमिति।

रहस्यपुरश्चरण तथा दूतीयाग आदि क्रियाओं का विधान 'श्यामारहस्य' नामक ग्रन्थ में बताया गया है। बुद्धिमान् साधक इन विधानों को उक्त ग्रन्थ में पढ़ सकते हैं।।१७४।।

[बलिदानकथनम्]

अथातो बलिदानन्तु वक्ष्यामि श्रीप्रियङ्करम्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पद्मे युग्मं पठेत्ततः।।१७५।।
महापद्मे पदं ब्रूयात् पद्मावति पदं ततः।
वह्निजायावधिः पश्चाद् बलिं दद्याच्चतुष्पथे।।१७६।।

बलिदानमन्त्रस्तु—'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति स्वाहा' इति। अनेन चतुष्पथे बलिं दद्यात्।

अध्याय के अन्त में दो बलिदान-मन्त्र बताये गये हैं। वीराचारी साधक को इनमें से किसी मन्त्र से चौराहे पर बलि देवी चाहिए। इनमें प्रथम मन्त्र है—ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति स्वाहा।

प्रणवं भुवनेशानीमेकजटे पदं ततः।
महायक्ष्माधिपं ब्रूयात्तारयपदं समुच्चरेत्।।१७७।।
ममोपनीतकं ब्रूयाद् बलिं गृह्ण द्विधा पदम्।
गृह्णापय युगं मम सर्वशान्तिं कुरुद्वयम्।।१७८।।
परविद्यां द्विधाकृत्य त्रुटद्वन्द्वञ्च छिन्धियुक्।
मायाबीजं ततो हुञ्च बलिं दद्यान्महानिशि।।१७९।।

बलिमन्त्रद्वयं प्रोक्तं वीराणां सिद्धिकाम्यया।।१८०।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ विंशतितम: प्रकाश:।।२०।।

प्रणवमित्यादि। द्वितीयमन्त्रस्तु 'ॐ ह्रीँ एकजटे महायक्ष्माधिपं तारय, ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण, गृह्णापय गृह्णापय, मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु, परविद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट, छिन्धि छिन्धि ह्रीँ हुँ।' इति। वीराचारिणां सिद्ध्यर्थं बलिमन्त्रद्वयमत्र कथितमिति।

दूसरा बलिमन्त्र है—ॐ ह्रीं एकजटे महायक्ष्माधिपं तारय, ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि ह्रीं हुम्।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के बीसवें प्रकाश
का 'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।२०।।

एकविंशतितमः प्रकाशः

[ब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तकथनम्]

ब्रह्महत्यादिदोषाणां प्रायश्चित्तं वदाम्यथ।।१।।

पिछले अध्यायों (प्रकाशों) में भगवती श्री विद्या का सपर्या-क्रम, अष्टोत्तरशत-नाम आदि स्तोत्र तथा मन्त्र-पुरश्चरण की विधि का निरूपण करने के बाद अब विभिन्न प्रकार के पापों के शमन के लिये विविध प्रकार के पुष्पों आदि से श्रीविद्या के अर्चन का विधान बताया जा रहा है। उपर्युक्त श्लोक इन प्रायश्चित्त-विधानों के निरूपण का प्रतिज्ञावाक्य है।।१।।

[तत्र क्रमः]

रक्तपुष्पैर्यजेच्चक्रं समस्तरश्मिसंयुतम्।
कुलाचारक्रमेणैव कर्पूरक्षोदमण्डितम्।।२।।
मासत्रयेण नियतं महापातककोटयः।
जन्मान्तरकृताः सर्वे क्षणान्नाशं प्रयान्ति च।
लक्ष्मीस्तस्य गृहे वश्या सुस्थिरा सर्वकामदा।।३।।

कपूर के चूर्ण से मण्डित श्रीचक्र का समस्त रश्मियों और नित्या-मण्डल-सहित कुलाचार-क्रम से रक्त पुष्पों से तीन माह तक यथाविधि पूजन करने से जन्म-जन्मान्तर के करोड़ों पाप कट जाते हैं तथा साधक के घर में सभी इच्छाओं को पूरा करने वाली लक्ष्मी का वास हो जाता है।।२-३।।

विमर्श—(१) कुलाचार-क्रम से भगवती की पूजा रात के दूसरे और तीसरे प्रहर में 'म'कारपञ्चक द्रव्यों से कुल-क्रम में दीक्षित साधकों द्वारा की जाती है। भगवती का यह राजसी अर्चन समय-साध्य और द्रव्य-साध्य है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इस अध्याय में अर्चन का जो फल बताया गया है, वह पुरश्चरण-सिद्ध साधकों के लिये है; क्योंकि पुरश्चरण के बाद ही मन्त्र फलदायी होता है और साधना फलवती होती है।

(२) उपर्युक्त श्लोक 'ज्ञानार्णव' तन्त्र के सप्तदश पटल के श्लोकसंख्या ९९-१०१ के पाठान्तरित रूप हैं। 'ज्ञानार्णव' में 'रक्तपुष्पैः' के स्थान पर 'रक्तपद्मैः' और 'मासत्रयेण' के स्थान पर 'मासमात्रेण' पाठ है।

[जवापुष्पेण पूजाप्रशंसा]

जवापुष्पैश्च मन्त्रज्ञः पूर्ववत् पूजयेच्छिवाम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि पूर्वजन्मकृतान्यपि।
नाशयेन्नात्र सन्देहो धनवान् जायते नरः।।४।।

जवापुष्प—उपर्युक्त क्रम से (तीन माह तक) जवा-पुष्पों से शिवा (भगवती महात्रिपुरसुन्दरी) का पूजन करने से पूर्व जन्म में किये गये ब्रह्महत्या आदि पापों का क्षणमात्र में नाश हो जाता है तथा साधक धनवान हो जाता है।।४।।

[सुगन्धिकुसुमैः पूजाफलम्]

शिवां सम्पूजयेन्नित्यं सुगन्धिकुसुमैरपि।
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात् पापहा भवेत्।।५।।

जो व्यक्ति (तीन माह तक) सुगन्धित कुसुमों से शिवा की पूजा करता है, वह चाहे कितना भी पापात्मा हो, शीघ्र ही पापों से मुक्त हो जाता है।।५।।

[शम्यादिभिः पूजाफलम्]

शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथ साधकः।
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मनि यत् कृतम्।।६।।

शमी-दूर्वा—शमी, दूर्वाङ्कुर और पीपल के पल्लवों से एक माह तक (कुलाचारक्रम से) पूजन करने से सात जन्मों के कलुष समाप्त हो जाते हैं।।६।।

[केतकीपत्रैः पूजाफलम्]

केतकीतरुणैः पत्रैः पूर्ववत् पूजयेद् यदि।
उपपातकसङ्घांश्च नाशयेन्नात्र संशयः।
सौभाग्यमतुलं तस्य जायते परमाद्भुतम्।।७।।

केतकी—केतकी के ताजा पत्रों से पूर्ववत् अर्थात् कुलाचारक्रम से पूजन करने से उपपातकों का नाश हो जाता है तथा अतुल्य सौभाग्य की प्राप्ति होती है।।७।।

[शतपत्रैः पूजाफलम्]

पूजनाच्छतपत्रैश्च सर्वपापं विनाशयेत्।

शतपत्र (कमल) से पूजन करने से सभी पापों का नाश होता है।

[श्वेतपद्मैः पूजाफलम्]

पूर्वजन्मकृतं पापं श्वेतपद्मैः प्रपूजनात्।।८।।
कुलाचारक्रमेणैव भवेत् सौभाग्यवल्लभः।
विंशजन्मकृतं पापं श्वेतपद्मैः प्रपूजयेत्।
मासमात्रेण सकुलं मोक्षस्तस्य करे स्थितः।।९।।

श्वेत-कमल—कुलाचारक्रम से श्वेत पद्मों से भगवती का अर्चन करने से पूर्वजन्मकृत पाप कट जाते हैं और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। श्वेत पद्मों से की गई पूजा के पुण्य-प्रभाव से एक माह में ही पिछले बीस जन्मों के पाप कट जाते हैं और मुक्ति हाथ में रखी वस्तु की तरह सुलभ हो जाती है॥८-९॥

[बन्धूककुसुमैः पूजाफलम्]

बन्धूककुसुमैः शुद्धैः सर्ववत् पूजयेद् यदि।
त्रैलोक्यं वशगं तस्य सर्वपापं हरेद् ध्रुवम्।।१०।।

बन्धूक—यदि बन्धूक (दुपहरिया) के शुद्ध पुष्पों से अर्चन किया जाय तो पापों का क्षरण तथा तीनों लोकों का वशीकरण होता है॥१०॥

[बिल्वपत्रैः पद्मैश्च पूजाफलम्]

बिल्वपत्रैश्च जलजैः सहैव परिपूजनात्।
समृद्धिमान् भवेत्तद्वत् सर्वपापहरः स्वयम्।।११।।

बिल्वपत्र—बेलपत्र और कमलों से पूजन करने से समृद्धि मिलती है और पापों का नाश होता है॥११॥

[मल्लिकादिपुष्पैः पूजाफलम्]

मल्लिकामालतीजातीकुन्दैश्च शतपत्रकैः।
श्वेतोत्पलैश्च संशुद्धैः पूजयेन्मासमात्रकम्।।१२।।
विंशजन्मकृतं पापं चम्पकैः पूजनादपि।
कुलाचारक्रमेणैव पातकं शतजन्मजम्।।१३।।

मल्लिका-मालती—मल्लिका, मालती, जाती (चमेली), कुन्द, शतपत्र और श्वेत उत्पलपुष्पों से एक माह तक अर्चन करने से बीस जन्मों के तथा चम्पक-पुष्पों से कुलाचार-क्रम से अर्चन करने पर पिछले सौ जन्मों के पापों का नाश हो जाता है॥१२-१३॥

ब्रह्महत्यादिजनितं नाशयेन्नात्र संशयः।
मुक्तिस्तस्य करे नूनं वाचा जीवसमो भुवि।।१४।।

चम्पक-पुष्पों से पूजन करने पर ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश हो जाता है, मुक्ति निश्चित हो जाती है और साधक की वाणी बृहस्पति की वाणी के समान गुरु-गम्भीर, ज्ञानमयी तथा त्रिकालसत्य होती है॥१४॥

[अगस्त्यादिपुष्पः पूजनफलम्]

अगस्त्यबाणाबन्धूकजवारक्तोत्पलैरपि ।
पातकं नाशयेत्तद्वत् साक्षात् कामसमो भवेत्।।१५।।

अगस्त्येति। अगस्त्यं वकपुष्पं, बाणा नीलझिण्टी, 'नीला झिण्टी द्वयोर्बाणा दासी चार्तगलश्च सा'। इत्यमरः। बन्धूकः बन्धुजीवकः, ('दुपहरिया' इति ख्यातः) 'बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः।

अगस्त्य आदि—अगस्त्य, बाण, बन्धूक, जवा और लाल उत्पल के फूलों से पूजन करने पर साधक पापमुक्त होकर कामदेव के समान सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यशाली हो जाता है॥१५॥

[चम्पकादिपुष्पैः पूजनफलम्]

चम्पकैः पाटलैश्चैव वकुलैर्नागकेशरैः।
कह्लारैः सिन्धुवारैश्च पूजयेद् यदि साधकः।
सौभाग्यमतुलं तस्य मासमात्रेण वै भवेत्।।१६।।

पाटलं पाटलायाः पुष्पम् ('गोलाबा'ख्यं पुष्पमिति केचित्)।

चम्पक, पाटल (गुलाब), बकुल, नागकेशर, कल्हार तथा सिन्धुवार के फूलों से प्रतिदिन यथाविधि भगवती का पूजन करने से साधक को मासमात्र में अतुल सौभाग्य मिलता है॥१६॥

रक्त कमल, श्वेत कमल, चम्पक, बकुल, मालती आदि प्राकृतिक पुष्पों तथा बिल्वपत्रों से भगवती त्रिपुरा की पूजा का फल निरूपित करने के बाद अब २१ श्लोकों में हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों से बने पुष्पों से पूजन का फल बताया जा रहा है। रत्नपुष्पों से पूजन के सम्बन्ध में 'ज्ञानार्णव-तन्त्र' का अठारहवाँ (१८) पटल विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

[रत्नपूजाविधानकथनम्]

रत्नपूजाविधानन्तु कथयामि विशेषतः।।१७।।
पुष्पाणि रचयेन्मन्त्री माणिक्यघटितानि च।
तैस्तु पूजा प्रकर्त्तव्या चक्रराजस्य पूर्ववत्।
नानापुष्पैः सुगन्धैश्च कर्पूरक्षोदचर्चितैः।।१८।।
एकविंशतिरात्रेण विंशतिर्धरणीभुजाम्।
दासभूता भवत्येव महारोगांश्च नाशयेत्।।१९।।
सूर्यवत् कान्तिमान् मन्त्री जायते नात्र संशयः।।२०।।

अब मैं रत्नपूजा विधान का विशेष रूप से निरूपण कर रहा हूँ। इस विधान के अन्तर्गत माणिक्य आदि रत्नपुष्पों से भगवती त्रिपुरा की पूजा की जानी चाहिए। विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों, चन्दन और कर्पूरचूर्ण के साथ इन मणिपुष्पों से २१ (इक्कीस) रातों तक कुलाचार-विधि से भगवती का अर्चन करने से असाध्य रोगों का शमन होता है तथा बीस राजे साधक के वशवर्ती हो जाते हैं। वह साधक सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है॥१७-२०॥

मुक्तारत्नैरङ्कितानि स्वर्णपुष्पाणि यानि च।
तैस्तु पूजा प्रकर्तव्या नानारत्नैस्तु पूर्ववत्।।२१।।
एकविंशतिरात्रेण राजपत्न्यो वशानुगाः।
कलाकान्तियुतो मन्त्री जायते शुभगः क्षितौ।।२२।।

मुक्ता (मोती) जड़ित स्वर्णपुष्पों से २१ रातों तक पूजा करने से राजपत्नियाँ साधक के वश में आ जाती हैं। वह साधक पृथ्वी पर कला-कान्तियुक्त हो जाता है।।२१-२२।।

[प्रबालपुष्पैः स्वर्णपुष्पैश्च पूजाफलम्]

प्रबालरचितैः स्वर्णैः पुष्पैश्च बहुभिर्यजेत्।
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः सप्ताहं कुलवर्त्मना।।२३।।
क्रूरास्तस्य वशाः सर्वे वैरिवर्गान् विनाशयेत्।

कुलाचार-क्रम से पूजा करते हुए प्रवाल (मूँगा) जड़े हुए स्वर्णपुष्प समर्पित करने से एक सप्ताह में सभी क्रूर और दुष्ट प्राणी साधक के वशवर्ती हो जाते हैं और उसके शत्रुओं का नाश हो जाता है।।२३।।

[मरकतपुष्पैः पूजाफलम्]

तथा मरकतक्षिप्तैर्वैरी मित्रं ध्रुवं भवेत्।।२४।।

मरकत (पन्ना) घटित स्वर्णपुष्पों से पूजा करने से समस्त शत्रु साधक के मित्र वन जाते हैं और साधक अजातशत्रु हो जाता है।।२४।।

[पद्मरागपुष्पैः पूजाफलम्]

पद्मरागमहारत्ननिर्मितैः स्वर्णसंयुतैः।
कुसुमैः पूजयेच्चक्रं त्रिसप्ताहं क्रमेण तु।
सुरास्तस्य वशाः सर्वे बृहस्पतिसमो भवेत्।।२५।।

२१ (इक्कीस) रात्रियों तक पुष्पराग (पुखराज)-खचित स्वर्णपुष्पों से पूजा करने के साधक देवगुरु बृहस्पति के समान विद्वान् हो जाता है और सभी देवता उसके वशवर्ती हो जाते हैं।।२५।।

[हीरकयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्]

सुवर्णरचितैः पुष्पैर्वज्रकेतकवासितैः।
एकविंशतिरात्रेण मोहयेज्जगतीमिमाम्।।२६।।
देवा दैत्या वशास्तस्य जायन्ते नात्र संशयः।।२७।।

इसी तरह २१ रात्रियों तक हीराजटित स्वर्णनिर्मित केयूर (बाजूबन्द) समर्पित करने से सभी देवता और दैत्य साधक के वशवर्ती हो जाते हैं (आज्ञाकारी हो जाते हैं) और सारा संसार उस पर मोहित हो जाता है।।२६-२७।।

[नीलकान्तमणियुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्]

इन्द्रनीलमयैः स्वर्णपुष्पैश्चक्रं प्रपूजयेत्।
एकविंशतिरात्रैश्च तथा नीलैश्च नीरजैः।
वैरिणो नाशमायान्ति शेषा वश्या भवन्ति च।।२८।।

इन्द्रनील (नीलम)-खचित स्वर्णपुष्पों और नीलकमलों से २१ रातों तक पूजा करने से साधक के कट्टर शत्रुओं का नाश हो जाता है और शेष सामान्य शत्रु उसके वश में आ जाते हैं॥२८॥

[गोमेदयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्]

गोमेदघटितैः स्वर्णपुष्पैः कुन्दैश्च किंशुकैः।
सप्ताहाद् वैरिणो वश्या घातस्तेषु प्रजायते।
त्रिसप्ताहान्महापापसञ्चयं नाशयेद् ध्रुवम्।।२९।।

गोमेद-जड़ित स्वर्णपुष्पों और कुन्द एवं किंशुक (पलाश) फूलों से सात दिनों तक पूजन करने से सभी शत्रु वशवर्ती हो जाते हैं। तीन सप्ताहों तक अर्चन करने से महापापों का नाश हो जाता है॥२९॥

[नूतनस्वर्णरत्नमयपुष्पैः पूजाफलम्]

स्वर्णरत्नमयैः पुष्पैर्नवैश्चापि प्रपूजयेत्।
तदाऽश्वमेधदशकं फलं भवति निश्चितम्।।३०।।
क्रव्यादजीवा वश्या हि भवन्त्येव न संशयः।

स्वर्ण-रत्नमय नवरत्नपुष्पों से भगवती का अर्चन करने से दस अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। साथ ही क्रव्याद अर्थात् कच्चा मांस खाने वाले अत्यन्त क्रूर और हिंसक जीव भी वश में हो जाते हैं॥३०॥

[वैदूर्ययुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्]

वैदूर्यघटितैः स्वर्णपुष्पैश्चम्पकजातिभिः।
चक्रराजं समभ्यर्च्य त्रैलोक्यं स्तम्भयेत् क्षणात्।।३१।।
एकविंशतिभिर्वारैर्महापापहरो भवेत्।।३२।।

वैदूर्य-खचित स्वर्णपुष्प तथा चम्पक एवं जाती (चमेली) पुष्पों से श्रीचक्र का २१ दिनों तक पूजन करने से बड़े-से-बड़े पाप कट जाते हैं और तीनों लोकों का स्तम्भन हो जाता है॥३१-३२॥

[नानारत्नयुक्तस्वर्णपुष्पैः पूजाफलम्]

नानारत्नमयैः स्वर्णपुष्पैर्यदि शिवां यजेत्।
तदा देवाश्च मुनयः पन्नगा राक्षसादयः।।३३।।

सर्वे वश्या भवन्त्येव त्रिसप्ताहान्न संशयः।
जन्मकोटिभवं पापं साधकस्य विनाशयेत्।।३४।।

विभिन्न प्रकार के रत्नों से युक्त स्वर्णपुष्पों से शिवा (त्रिपुरा) की पूजा करने से देवता, राक्षस, सर्प और ऋषि-मुनि तीन सप्ताह में ही वशवर्ती हो जाते हैं तथा साधक के कोटि-कोटि जन्मों के पापों का भी संहार हो जाता है॥३३-३४॥

[स्वल्पस्वर्णरत्नादियुक्तपुष्पैः पूजाफलम्]

स्वर्णरत्नादिपूर्णत्वं यदि न स्यात्तथा पुनः।
तैरेव पुष्पैः पूजा हि कर्त्तव्या साधकोत्तमैः।।३५।।
अलङ्कारस्वरूपेण पूजयेच्चक्रनायिकाम्।
केवलं यैस्तु पुष्पैस्तु त्रैलोक्यं स्तम्भयेत् खलु।।३६।।
मासमात्रेण पापानि सप्तजन्मभवानि च।
नाशयेन्मोहयेत् सर्वं समुद्रवलयां धराम्।।३७।।

स्वर्ण-रत्न-पुष्प आदि की पूर्णसंख्या उपलब्ध नहीं हो अर्थात् यथेष्ट संख्या में ये पुष्प उपलब्ध नहीं हों तो जितने पुष्प उपलब्ध हों, उतने ही पुष्पों से भगवती का अर्चन किया जाय। केवल अलंकारस्वरूप पुष्पों से भगवती का अर्चन किया जाय तो एक माह में ही सात जन्मों के पाप कट जाते हैं तथा साधक तीनों लोकों को मोह लेता है॥३५-३७॥

[पर्युषितादिपुष्पैः पूजननिषेधः]

पुष्पैः पर्युषितैश्चैव नार्च्चयेत् स्वर्णजैरपि।
निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुच्छिष्टैरपि नार्च्चयेत्।।३८।।

बासी फूलों से, उच्छिष्ट फूलों से तथा निर्माल्यभूत फूलों से, भले ही वे स्वर्ण से बने हों, भगवती का अर्चन नहीं करना चाहिए॥३८॥

[अपामार्गादिदलैः पूजनफलम्]

अपामार्गदलैर्भृङ्गैर्विल्वैर्मरकतैरपि ।
पत्रैरेभिः प्रयत्नेन पूजयेत् परमेश्वरीम्।।३९।।

अपामार्ग के दलों से, भृङ्गराज तथा बिल्वपत्रों एवं मरकतों से भगवती का प्रयासपूर्वक पूजन किया जाय। ये उन्हें बहुत प्रिय हैं॥३९॥

[शाक्तपुष्पकथनम्]

अम्भोजोत्पलबन्धुजीवविजयापुन्नागनागान्यथो
जातीकुन्दकुरण्टचम्पकजवायूथीरमापाटलैः ।
विल्वाशोकहयारिकुब्जमदनैर्मन्दारदूर्वाङ्कुरै-
र्द्रोणागस्त्यपराजितानि कुसुमान्युक्तानि शाक्तान्यलम्।।४०।।

अम्भोजोत्पलेति। विजया शेफालिकाः, पुन्नागं केशरपुष्पम्, नागं नागकेशर-पुष्पम्, कुरण्टं रक्तझिण्टीपुष्पम्, हयारि करवीरपुष्पम्, कुब्जम् अपामार्गफलम्, मदनं वकुलपुष्पम्, ('मयना' इति ख्यातं वा)। मन्दारम् अर्कपुष्पम्, ('आकन्द' इति ख्यातम्)।

शाक्त पुष्प—अम्भोज, उत्पल, बन्धुजीव, विजया, पुन्नाग, नागकेशर, जाती, कुरण्ट, चम्पक, जवा, यूथी, रमा, पाटल, विल्व, अशोक, हयारि, मदन, मन्दार, दूर्वाङ्कुर, द्रोण, अगस्त्य, अपराजिता—इन पुष्पों को शाक्त पुष्प कहा जाता है अर्थात् ये पुष्प देवियों को बहुत प्रिय हैं॥४०॥

[मल्लिकातगरादिभिः पूजा कर्त्तव्या]

सर्वकालोद्भवैः पुष्पैर्मल्लिकातगरादिभिः।
सितरक्तैः प्रयत्नेन पूजयेत् परमेश्वरीम्।।४१।।

सभी ऋतुओं में होने वाले पुष्पों, मल्लिका, तगर, लाल कमल आदि से परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिए॥४१॥

[कलिकाभिः पूजानिषेधः]

कलिकाभिस्तथा नेष्टं विना चम्पकपङ्कजैः।

चम्पक तथा कमल को छोड़कर अन्य पुष्पों की कलियों से देवी का पूजन करना मना है।

[जलजचम्पकयोः पर्युषितदोषाभावः]

न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजे चम्पकेऽपि च।।४२।।

कमल और चम्पक—इन दो फूलों को दूसरे दिन भी बासी नहीं माना जाता॥४२॥

[यन्त्रपुष्पकथनम्]

यत्रापराजितापुष्पं पुष्पं जवाख्यमुत्तमम्।
करवीरे शुक्लरक्ते द्रोणपुष्पञ्च एव हि।।४३।।
एषु देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे तां प्रपूजयेत्।
अतः प्रयत्नतो मन्त्री पुष्पैरेभिः समर्चयेत्।।४४।।

योगिनीतन्त्रे त्रिपुराप्रकरणे।

योगिनीतन्त्र में त्रिपुराप्रकरण में कहा गया है कि अपराजिता, जवा, करवीर तथा द्रोणपुष्प में देवी का नित्य वास हैं। पूजन-यन्त्र के अभाव में इन पुष्प-यन्त्रों पर देवी की पूजा की जा सकती है। अतः मन्त्रसाधक को इन पुष्पों से देवी की नित्यपूजा करनी चाहिए॥४३-४४॥

[पुष्पविशेषे केचन विधिनिषेधाः]

शेफालिकान्तु कह्लारं शरत्कालं विना त्यजेत्।।४५।।
वकुलस्य त्वशोकस्य अर्जुनस्य महेश्वरि।
पूजयेद् वृन्तवर्जेन सवृन्तेन विवर्जयेत्।।४६।।
विष्णुक्रान्ता जवा नागकेशरं नागवल्लभम्।
बन्धूकञ्चैव कह्लारं सवृन्तेन समर्च्चयेत्।।४७।।

विधि-निषेध—केवल शरद् ऋतु में शेफालिका तथा कल्हार से देवी की पूजा प्रशस्त है। बकुल, अशोक तथा अर्जुन के वृन्तहीन (जिसमें डंठल न लगा हो) पुष्पों से पूजा की जाय। डंठल वाले इन पुष्पों से पूजन का निषेध है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), जवा, नागकेशर, नागवल्लभ, बन्धूक और कल्हार—ये ऐसे पुष्प हैं, जो वृन्तसहित ही देवी पर चढ़ाये जाते हैं।।४५-४७।।

न स्पृशेद् वृन्तवर्जञ्च भूमिष्ठञ्च न संस्पृशेत्।
शेफालि-वकुलञ्चैव भूगतेन समाचरेत्।।४८।।
पुष्पञ्चाक्षतसंयुक्तं तथा रक्तविलेपितम्।
सर्वान्ते सुन्दरीं न्यस्य रक्तपुष्पं तथा न्यसेत्।।४९।।

उपर्युक्त पुष्प यदि स्वयं ही टूटकर गिर गये हों अथवा उनका डंठल टूट गया हो तो वे पूजा के लिये ग्राह्य नहीं हैं। शेफाली और वकुल यदि स्वयं ही टूट गये हों तो भी ग्राह्य हैं। पूजा के अन्त में रक्त चन्दन लगा हुआ एक लाल-पुष्प अक्षत-सहित देवी को समर्पित किया जाना चाहिए।।४८-४९।।

[विल्वपत्रस्य प्राशस्त्यम्]

पत्रेषु विल्वपत्राणि दत्त्वा देव्यै प्रयत्नतः।
विल्वपत्रैर्विना पूजा शाक्ते शैवे न दृश्यते।।५०।।

पत्रों में बेल-पत्र देवी को सर्वाधिक प्रिय है। विल्वपत्र के बिना शैवों और शाक्तों की पूजा अधूरी रहती है। अतः भगवती की पूजा के लिये प्रयास करके बिल्व-पत्र प्राप्त किये जाने चाहिए।।५०।।

[अङ्गरङ्गेषु सिन्दूरस्य प्रशस्तता]

अङ्गरङ्गेषु सिन्दूरं देव्याः प्रीतिकरं परम्।
अतः प्रयत्नतो मन्त्री सिन्दूरं विनिवेदयेत्।

अंगरंगों में देवी को सिन्दूर सर्वाधिक प्रिय है। अतः देवी को सिन्दूर अवश्यमेव दिया जाना चाहिए।

[मुखवासेषु ताम्बूलस्य प्रशस्तता]

मुखवासेषु ताम्बूलं देव्यानन्दकरं परम्।।५१।।

एवमेव विधानेन पूजयेद् यदि पार्वतीम्।
अभीष्टं सप्तरात्रेण लभते नात्र संशयः।।५२।।

भगवती ललिता को नैवेद्य के उपरान्त ताम्बूल अत्यन्त प्रिय है। अतः इन्हें प्रिय ताम्बूल अवश्यमेव दिया जाना चाहिए। इस विधान से पार्वती (भगवती त्रिपुरा) की पूजा करने से सात रात्रियों में ही सब कुछ पाया जा सकता है॥५२॥

[वारविशेषे पुष्पविशेषप्राशस्त्यम्]

रविवारेऽरुणाम्भोजैः कुमुदैः सोमवासरे।
भौमे रक्तोत्पलैः सौम्यवारे तगरसम्भवैः।।५३।।

गुरुवारे च कह्लारैः शुक्रवारे सिताम्बुजैः।
उत्पलैः शनिवारे च पूजयेदब्दमादरात्।।५४।।

रविवार को अरुण अम्भोज से, सोमवार को कुमुद से, मंगलवार को रक्तोत्पल से, बुधवार को तगर से, गुरुवार को कल्हार से, शुक्रवार को श्वेत कमल से और शनिवार को उत्पल (नीलकमल) से वर्ष भर देवी की पूजा की जानी चाहिए॥५३-५४॥

[वारविशेषे निवेदनीयद्रव्याणि]

निवेदयेत् क्रमात्तेषु रविवारादिसप्तसु।
पायसं दुग्धकदलीनवनीतं सिताघृतम्।।५५।।

निवेदयेदिति। सिता शर्करा।

इसी तरह रविवार आदि वारों में क्रम से पायस, दूध, कदली, नवनीत, सिता (मिश्री) और घृत प्रदान किया जाना विशेष रूप से विहित है॥५५॥

[वर्षमात्रदेवीपूजनफलम्]

एकमब्दं समाराध्य देवीं गन्धादिभिः क्रमात्।
ग्रहपीडां विजित्याशु सुखानि च समश्नुते।।५६।।

प्रतिदिन बेलपत्र, सिन्दूर, ताम्बूल एवं रविवार आदि दिनों में उपर्युक्त क्रम से यथाप्रशस्त पुष्प और नैवेद्यसहित पूरे वर्ष भर देवी की पूजा करने से समस्त ग्रहपीड़ाओं से मुक्ति मिलती है॥५६॥

[पर्वताग्रे देवीपूजनफलम्]

पर्वताग्रे यजेद्देवीं पलाशकुसुमैर्निशि।
सिद्धद्रव्यैश्च सप्ताहात् खेचरीमेलनं भवेत्।।५७।।

पर्वत की चोटी पर पलाशकुसुमों और सिद्ध द्रव्यों से एक सप्ताह तक पूजन करने से खेचरी-मेलन होता है॥५७॥

[अरण्यादिषु पूजाफलम्]

अरण्ये वटमूले वा कुञ्जे वा धरणीभृताम्।
कदम्बजातिपुष्पाभ्यां सिद्धद्रव्यैः शिवां यजेत्।
मासेन सिद्धडाकिन्यः प्रत्यक्षा वाञ्छितप्रदाः।।५८।।

जंगल में, वटवृक्ष के मूल में अथवा राजोद्यान के कुञ्ज में कदम्ब-जाती के पुष्पों तथा सिद्ध द्रव्यों से एक माह तक देवी शिवा की पूजा करने से सिद्ध डाकिनियाँ प्रकट होकर मनोवांछित वरदान देती हैं।।५८।।

[समुद्रतीरे पूजाफलम्]

केतकीकुसुमैः सिद्धाश्चेटका वारिधेस्तटे।
आज्ञामभीष्टां वनितां काममायां महाद्भुताम्।
वसूनि मालां भूषाञ्च दद्युरस्येच्छया भृशम्।।५९।।

समुद्र के तट पर केतकी के फूलों से देवी का अर्चन करने पर सिद्धगण आशीर्वाद देते हैं। चेटक-गण मनोवांछित स्त्रियाँ तथा वसुगण साधक की इच्छानुसार माला और आभूषण प्रदान करते हैं।।५९।।

[अक्षद्रुमपीठोपरि देवीपूजाफलम्]

पीठमक्षद्रुमैः कृत्वा तत्र देवीं यजेन्निशि।
शाल्मलीकुसुमैः सिद्धद्रव्यैर्मासन्तु निर्भयः।।६०।।

[श्मशाने पूजनफलम्]

पितृभूमौ साधकेन्द्रः सिध्यन्त्यस्य पिशाचिकाः।

पीठमक्षेति। अक्षद्रुमैः विभीतकवृक्षैः।

श्मशान में अक्ष-द्रुम की पीठ पर रात्रि के समय शाल्मली-पुष्पों (सेमल के फूलों) और सिद्ध द्रव्यों से एक मास तक पूजन करने पर पिशाचिनियाँ सिद्ध होती हैं।।६०।।

[वेतालसिद्ध्युपायः]

निर्जने विपिने रात्रौ मासमात्रन्तु निर्भयः।।६१।।
यजेद्देवीं चक्रगतां सिद्धद्रव्यसमन्विताम्।
मालतीजातिपुन्नागकेतकीमधुभिः क्रमात्।।६२।।
तेन सिध्यन्ति वेतालानथ वै स्वेच्छया चरेत्।

वेताल-सिद्धि—निर्जन वन में रात के समय निर्भय होकर मालती, जाती, पुन्नाग, केतकीपुष्पों और शहद के साथ सिद्ध द्रव्यों से एक माह तक देवी का सपरिवार पूजन करने से वेताल सिद्ध होता है। वेताल सिद्ध हो जाने पर साधक इच्छा अनुसार संसार में संचार कर सकता है।।६१-६२।।

[मध्यरात्रे स्थानविशेषे देवीपूजाफलम्]

श्मशाने चण्डिकागेहे निर्जने विपिनेऽथवा।।६३।।
मध्यरात्रे यजेद्देवीं कृष्णवस्त्रादिभूषितः।
कृष्णचक्रेऽतिकृष्णां तामभिवाद्य प्रपूजयेत्।।६४।।
साध्ययोनिं तदग्रे तु बलिं छिन्दन्निवेदयेत्।
सिद्धद्रव्यसमोपेतं मासात्तद्भावलोचनात्।।६५।।
जायन्ते भीषणाः कृष्णास्ताभ्यः साध्यं निवेदयेत्।
विश्वसंहारसन्तुष्टां पुनरेत्य निजेच्छया।।६६।।

श्मशान में, चण्डिकामन्दिर में अथवा सुनसान जंगल में काले वस्त्र पहिन कर रात्रि के समय कृष्ण-वर्ण के चक्र में अतिकृष्ण वर्ण की देवी का ध्यान करके सिद्ध-द्रव्यों से पूजन करने तथा सिद्धत्रिकोण बनाकर उस पर पशु का बलिदान करने से एक माह में उनके नेत्रों से भीषण कृष्णायें (कृत्यायें) प्रकट होती हैं। विश्व का संहार करने से सन्तुष्ट होने वाली इन कृत्याओं से प्रार्थना करके साधक अपने भीषण से भीषण शत्रुओं का विनाश करा सकता है। अपना कार्य करके ये कृत्यायें वापिस साधक के पास लौट आती हैं।।६३-६६।।

[तिरोधानसिद्ध्युपायः]

देव्याः ललाटनेत्रे स्युः प्रार्थनेन तिरोहिता।।६७।।

देवी के तृतीय ललाट-नेत्र का ध्यान करके प्रार्थना करने पर ये कृत्यायें उसमें विलीन हो जाती हैं।।६७।।

[मायासिद्ध्युपायः]

रक्तभूषाम्बरानीपमालाभूषितविग्रहः ।
उद्याने निर्जने देवीं चक्रे सञ्चिन्त्य पूजयेत्।।६८।।
कह्लारचम्पकाशोकपाटलाशतपत्रकैः ।
सिद्धद्रव्यसमोपेतैर्मायाः सिध्यन्ति मासतः।।६९।।

माया-सिद्धि—रक्त वस्त्र, रक्त आभूषण तथा लाल पुष्पों की माला धारण करके एक मास-पर्यन्त सिद्ध-द्रव्यों तथा कल्हार, चम्पक, अशोक, पाटल एवं शतपत्र-पुष्पों से निर्जन उद्यान में श्रीचक्र बनाकर उसमें देवी का पूजन करने से माया-सिद्धि मिलती है। माया-सिद्धि अर्थात् इन्द्रजालसिद्धि से साधक सारे संसार को चमत्कृत कर सकता है। सिद्ध द्रव्य अर्थात् मकारपंचक द्रव्य।।६८-६९।।

[कामरूपसिद्ध्युपायः]

मासं प्रसादलाभेन कामरूपो भवेन्नरः।
याभिर्विश्वं ययौ विश्वचारी विश्वविनोदवान्।।७०।।

उपर्युक्त द्रव्यों आदि से यथाविधि देवी त्रिपुरा की एक माह तक साधना करके साधक उनकी कृपा से कामरूप-सिद्धि प्राप्त कर सकता है। ये सिद्धियाँ प्राप्त करके साधक यथारूप धारण करके सम्पूर्ण संसार में विचरण कर सकता है॥७०॥

[त्रिकालज्ञत्वसिद्ध्युपायः]

षडाधारारमध्ये तु चक्रं सञ्चिन्त्य पूजयेत्।
चन्द्रचन्दनकस्तूरीमृगनाभिमदोद्भवैः ।
त्रिकालज्ञो भवेद्देवीं तेषु सम्यग् विचिन्तयेत्।।७१।।

षडाधारेति। चन्द्रः कर्पूरः।

त्रिकालज्ञता-सिद्धि—मूलाधार में देवी का ध्यान करते हुए एक माह तक भीमसेनी कपूर की पीठ पर चक्र स्थापित करके कपूर, चन्दन, कस्तूरी से भगवती का सपरिवार पूजन करने से साधक को त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त होता है॥७१॥

[पूगोद्याने देवीपूजाफलम्]

पूगोद्याने यजेद्देवीं सिद्धद्रव्यैर्दिवानिशम्।
निवसंस्तत्र तत्पुष्पैर्जायते मन्मथोपमः।।७२।।

पूगोद्यान अर्थात् सुपारी के वृक्षों के वन (उद्यान) में वास करते हुए प्रतिदिन दिन और रात दोनों समयों में सुपारी के फूलों से पूजन करने से साधक कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है॥७२॥

[पूर्णासु कन्यकायां देवीपूजाफलम्]

पूर्णासु नियतं देवीं कन्यकायां समर्च्चयेत्।
कृत्याः परेरिता मन्त्रा विमुखास्तान् ग्रसन्ति वै।।७३।।

पूर्णा तिथियों (पञ्चमी-दशमी और पूर्णिमा) को किसी सुपात्र कन्या में भगवती का आह्वान करके उनका पूजन करके साधक अपने शत्रुओं द्वारा भेजी गई कृत्याओं को वापिस भेज सकता है॥७३॥

[मदनारोपणकथनम्]

मदनारोपणं वक्ष्ये साधकानां हिताय च।
संवत्सरकृता पूजा येनैव पूर्णता भवेत्।।७४।।

मदनारोपण—अब मैं मदनारोपण (दमनक-पूजा) की विधि का निरूपण कर रहा हूँ। इस पूजा को करने से ही साधक द्वारा पूरे वर्ष भर की गई पूजा पूर्ण होती है॥७४॥

शिवस्य मदनः पूर्वं तपोभङ्गनिबन्धनात्।
भस्माभवत्तदा पत्नी रतिः प्रीतिश्च दुःखिता।।७५।।

तन्नेत्रवारिसम्भूता मदनस्य तदा भवेत्।
तत् सौरभञ्च सौभाग्यं महदासीत्तदद्भुतम्।।७६।।

भगवान् शिव की समाधि को भंग करने के उपक्रम में जब कामदेव भगवान् शिव की क्रोधाग्नि में जलकर राख हो गया, तब उसकी दोनों पत्नियाँ रति और प्रीति अत्यन्त दु:खी हो गईं और रोने लगीं। उनके रोने से मदन (द्रोणलता) की उत्पत्ति हुई। इस लता से चित्त को प्रसन्न कर देने वाली महक चारो दिशाओं में फैल गई।।७४-७६।।

तेन सन्तुष्टहृदयाद् वरो दत्तः शिवेन तु।
रत्यै प्रीत्यै च तस्मात्तु मदनः प्रकृतीकृतः।।७७।।
मदनञ्चैव यो मन्त्री वर्षमध्ये प्रपूजयेत्।
तस्य सांवत्सरी पूजा मदनाय भविष्यति।।७८।।
इति तस्यै वरो दत्तः शङ्करेण महात्मना।

इस लता की सुगन्धि इतनी आह्लादकारिणी थी कि उससे भगवान् शिव का चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने रति और प्रीति को वरदान दिया। उस वरदान के प्रभाव से कामदेव पुन: प्रकट हो गये। भगवान् शिव ने उन्हें वरदान दिया कि जो मन्त्र-साधक वर्ष में एक बार दमनक की पूजा नहीं करेगा, उसके द्वारा साल भर तक की गई इष्टपूजा पर मदन का अधिकार हो जायगा।।७७-७८।।

विमर्श—उपर्युक्त दोनों श्लोक ज्ञानार्णवतन्त्र (२६वाँ पटल) से उद्धृत हैं; मगर पाठभेद है। श्लोकसंख्या ७७—प्रकृतीकृत:—प्रकटीकृत:। इसी तरह श्लोक संख्या ७८ में 'वर्षमध्ये' और 'प्रपूजयेत्' के मध्य में 'न' शब्द नहीं है। इस 'न' के नहीं होने से इस श्लोक का वह अर्थ नहीं निकलता, जो अर्थ इससे निकलना चाहिए।

[मदनपूजनस्य कर्तव्यत्वम्]

तस्मान्मदनपूजा च कर्त्तव्या साधकोत्तमैः।।७९।।

भगवान् शंकर द्वारा उस (मदन को) इस प्रकार का वरदान दिये जाने के कारण सभी साधकों द्वारा उसकी पूजा की जानी चाहिए।।७९।।

समूलमदनं वापि गुच्छैर्वापि प्रपूजयेत्।
मदनं नवधा कुर्यात् पूजयेत्तदनन्तरम्।।८०।।
आनन्देश्वरबीजेन नवधा बिन्दुना सह।
नानाप्रकारसम्भिन्नं मदनं पूजयेत् क्रमात्।।८१।।

आनन्देश्वरेति। आनन्दभैरवमन्त्रस्तु—'हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्' इति प्राणतोषणी।

पूजन करने के लिये दमनक को जड़सहित उखाड़कर नौ भागों में विभक्त करें अथवा उसके ९ गुच्छे बनायें। (इन नौ भागों को पृथक्-पृथक् पात्रों में स्थापित करें।) दमनक के इन नौ भागों का आनन्देश्वर मन्त्र से यथाक्रम पूजन करें॥८०-८१॥

विमर्श—पाठशोधन—'नानाप्रकारसम्भिन्नं' के स्थान पर ज्ञानार्णव में—'नवप्रकारभिन्नाङ्गम्'।

अघोराख्येण मन्त्रेण अभिषिञ्चेत्तमेव हि।

अघोराख्येण 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य' इत्यादिना।

इसके बाद अघोरमन्त्र से उन ९ भागों का अभिसिंचन करें। यह मन्त्र निम्नानुसार है—

माया स्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः।।८२।।
घोरघोरतरेभ्यस्तु तवरूपपदं लिखेत्।
चटद्वयं तदन्तेऽपि प्रकटद्वितयं पुनः।।८३।।
कहयुग्मं वशयुग्मं बन्ध बन्ध पदं ततः।
घातय द्वितयं वर्म फडन्तो घोरको मनुः।।८४।।

मायेत्यादि। मन्त्रोद्धारस्तु—ह्रीँ स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतरेभ्यः तव रूपं चट चट प्रकट प्रकट कह कह वश वश बन्ध बन्ध घातय घातय हुँ फट्। इति।

यह अघोरमन्त्र है—'माया (ह्रीं) स्फुर-स्फुर प्रस्फुर-प्रस्फुर घोरघोरतरेभ्य: तव रूपं चट चट प्रकट प्रकट, कहकर 'वश-वश बन्ध बन्ध घातय घातय वर्म (हुं) फट्'।

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर त्रिशूलमुद्रा दिखायें—

शिवचन्द्रौ मादनान्तं पान्तं वह्निसमन्वितम्।
शक्तिभिन्नं बिन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवं त्विदम्।।८५।।
शिवशक्ती कामशक्रौ वह्निवामाक्षिमण्डितम्।
बिन्दुनादकलाक्रान्तं कामराजमिदं महत्।।८६।।
सदाशिवस्य बीजन्तु दक्षिणा त्वतिभैरवी।
अनेन शरमन्त्रेण रक्षणं कवचेन तु।।८७।।
बद्ध्वा त्रिशूलमुद्रान्तु भ्रामयेन्मदनोपरि।।८८।।

शिवचन्द्रावित्यादि। शिवो हकारः, चन्द्रः सकारः, मादनान्त–'ख', पान्तं फकारः, वह्नीरकारः, शक्तिरेकारः, तेन 'ह स ख फ्रैं' इति मन्त्रो भवति।

शिवशक्ती इत्यादि। शिवो हकारः, शक्तिरेकारः, कामः ककारः, शक्रो लकारः, वह्नीरकारः, वामाक्षिरीकारः, तेन 'ह ए क ल रीं' इति मन्त्रो भवति।

वाग्भव-कूटम्	कामराज-कूटम्	शक्तिकूटम्
ह स ख फ्रैँ	ह ए क ल रीँ	हौँ क्रीँ ह स रैँ फ ट् हूँ

सदाशिवस्येति। सदाशिवस्य बीजं 'हौँ', दक्षिणाया बीजं 'क्रीँ'; भैरवीबीजं 'हसरैं', शरमण्डः 'फट्', कवचः 'हूँ', तेन 'हौँ क्रीँ हसरैँ फट् हूँ' इति मन्त्रोद्धारो भवति।

मन्त्रोद्धार—शिव (ह), चन्द्र (स), मादनान्त (ख), पान्त (फ), वह्नि (र), शक्ति (ए) तथा बिन्दु-नाद। स्वरूप—हसखफ्रें।

शिव (ह), शक्ति (ए), काम (क), शक्र (ल), वह्नि (र), वामाक्षि (इ) बिन्दु-नाद। स्वरूप—हएकलरीं।

सदाशिव बीज—ह्रौं। दक्षिणाबीज—क्रीं। भैरवी—हसरैं। शर—फट्। कवच (हूं) स्वरूप—ह्रौं क्रीं हसरैं फट् हुम्।

मन्त्रस्वरूप—'हसखफ्रें हसकलरीं हौं क्रीं हसरैं फटु हुम्'।

अंगुष्ठेन कनिष्ठान्तु बद्ध्वा शिष्टाङ्गुलित्रयम्।
प्रसारयेत् त्रिशूलस्य मुद्रेयं परिकीर्त्तिता।।८९।।

बद्ध्वेति। अङ्गुष्ठेन कनिष्ठां बद्ध्वा तर्जनीं मध्यमामनामाञ्च प्रसारयेदिति त्रिशूलमुद्रायाः प्रकारः।

त्रिशूल-मुद्रा—अंगूठे से कनिष्ठा को दबाकर शेष तीन अंगुलियों को सीधी करके फैलाने से त्रिशूल मुद्रा बनती है।।८९।।

[मदनरोपणकालः क्रमस्तत्र मदनाधिवासश्च]

चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनारोपणं भवेत्।
उद्धरेदस्त्रमन्त्रेण हृदयेन विलोपयेत्।।९०।।
श्रीखण्डघनमूलाद्यैरधिवासञ्च कारयेत्।
नित्यपूजां विधायैव निशि संस्थाप्य विद्यया।।९१।।
प्रथमे दिवसे कुर्यादधिवासनमुत्तमम्।
सद्योऽधिवासनं वापि वर्षपूजार्थसिद्धये।।९२।।

यह मदनपूजा चैत्र मास की चतुर्दशी तिथि को की जाती है। एतदर्थ अस्त्र मन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उसे जड़समेत उखाड़ना चाहिए। तत्पश्चात् उस पर चन्दन-कपूर आदि का लेप 'नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए लगाना चाहिए। नित्यपूजा के बाद रात्रि के समय अधिवास देना चाहिए। पूजा के एक दिन पूर्व अर्थात् त्रयोदशी की रात को अधिवास देना उत्तम पक्ष है। विकल्पतः दूसरे दिन चतुर्दशी को भी सद्यः अधिवास दिया जा सकता है॥९०-९२॥

[मदनपूजाप्रकरणम्]

प्रातःकाले चतुर्द्दश्यां नित्यपूजां समाप्य च।
नवकोणं विधायाथ सिन्दूरेण महाप्रभम्॥९३॥
कलसाननुसंस्थाप्य हेमरत्नादिपूरितान्।
एकं वा सकलं रम्यं स्थापयेद्देशिकोत्तमः॥९४॥
दक्षिणे मण्डलं कुर्यादङ्कुराद्यैर्विचित्रितम्।
अशोकतरुमालिख्य त्रिकोणं मण्डलं लिखेत्॥९५॥

प्रातःकाले इति। सिन्दूरेण नवकोणं मण्डलं विधायेत्यर्थः।

चतुर्दशी की सुबह नित्य की सन्ध्या-पूजा करने के वाद भूमि पर सिन्दूर से नयनाभिराम नव कोण बनायें। इन नौ कोणों पर स्वर्ण और रत्न डालकर नौ स्वर्ण-कलश स्थापित करें। यदि नौ कलश उपलब्ध नहीं हों तो मध्य में एक ही कलश स्थापित करें। इसके दक्षिण में कुंकुम आदि से त्रिकोण मण्डल और अशोक वृक्ष बनायें॥९३-९५॥

[कामस्य ध्यानम्]

तन्मध्ये पूजयेत् कामं तरुणञ्चारुणप्रभम्।
रक्तपुष्पं रक्तवस्त्रं वामदक्षिणयोः क्रमात्॥९६॥
रतिप्रीतिविशोभाढ्यं पञ्चबाणधनुर्धरम्।
वसन्तसहितं कामं पूजयेत् सिद्धिहेतवे॥९७॥

इस त्रिकोण मण्डल में अरुण वर्ण वाले तथा पूर्ण युवा कामदेव की पूजा करें। कामदेव के वस्त्र और आभूषण लाल रंग के हैं। उनके बाँयें रति और दाहिने प्रीति खड़ी है। कामदेव के हाथ में धनुष और पाँच पुष्पबाण हैं। वर्ष भर की गई पूजा की सिद्धि के लिये वसन्त के साथ कामदेव की पूजा करनी चाहिए॥९६-९७॥

[काममन्त्रः]

वाग्भवं भुवनेशानीं श्रियं कामात्मकं तथा।
कामाय नम आलिख्य विद्येयन्तु नवाक्षरी॥९८॥

वाग्भवमित्यादि। मन्त्रोद्धारस्तु—ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ कामाय नमः, इति।

वाग्भव (ऐं), भुवनेशानी (ह्रीं), श्री (श्रीं), काम (क्लीं) के बाद 'कामाय नमः'—यह कामदेव का नवाक्षरी पूजन मन्त्र है॥९८॥

मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कामाय नमः।

[रतिमन्त्रः]

कामबीजत्रयञ्चोक्त्वा कामयात्मैकमुच्चरेत्।
रत्यै नमश्चाष्टवर्णा रतिविद्या प्रकीर्त्तिता॥९९॥

कामबीजेति। कामबीजत्रयमुक्त्वा पुनः काममुच्चरेदिति। तेन 'क्लीँ क्लीँ क्लीँ क्लीँ रत्यै नमः' इत्यष्टाक्षरमन्त्रो भवति।

तीन बार कामबीज (क्लीं क्लीं क्लीं) के बाद पुनः काम (क्लीं) का उच्चारण करके 'रत्यै नमः' की योजना करने से काम-पत्नी देवी रति का पूजन-मन्त्र निष्पन्न होता है—'क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं रत्यै नमः'।

[प्रीतिमन्त्रः]

प्रीतिं वदेद्रतिस्थाने प्रीतिमन्त्रोऽष्टवर्णकः॥१००॥

रतिस्थाने प्रीतिं वदेदिति। तेन क्लीँ क्लीँ क्लीँ क्लीँ प्रीत्यै नमः इति प्रीति-मन्त्रः।

'रति' के स्थान पर 'प्रीति' की योजना करने से प्रीति का पूजन मन्त्र बनता है—'क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं प्रीत्यै नमः'।

विमर्श—'ज्ञानार्णव' (२६/११) में मन्त्रोद्धार है—'कामबीजत्रयं चोक्त्वा रत्यात्मकमुच्चरेत्'। इस तरह तीन कामबीजों के बीज 'रत्यात्मकम्' अर्थात् 'रति' के नाम का प्रथम-अक्षर 'रं' की योजना करने से रूप प्राप्त होता है—'क्लीं क्लीं क्लीं रं' और पूरा मन्त्र-रूप प्राप्त है—'क्लीं क्लीं क्लीं रं रत्यै नमः।'

मन्त्रमहोदधि (३३वें तरंग) में रति का पञ्चाक्षरी मन्त्र बताया गया है—'ह्रीं रत्यै नमः'। वहीं दमन-पूजन का विस्तृत विधान निरूपित किया गया है।

[रतिप्रीत्योर्ध्यानम्]

गौरश्यामे रतिप्रीती क्रमेण मणिभूषणे।
पद्मताम्बलहस्ते च रक्तवर्णविभूषिते॥१०१॥
विद्याभरणभूते च पुष्पदामविराजिते।
वामदक्षिणयोर्ध्यानं कामदेवस्य कीर्त्तितम्॥१०२॥

इनमें से रति का वर्ण गोरा तथा प्रीति का वर्ण साँवला है। दोनों ही देवियों के हाथों में पद्म और ताम्बूल हैं तथा वे रत्न-आभूषणों से विभूषिता हैं। दोनों कामदेव के क्रमशः वाम और दक्षिण में विराजिता हैं॥१०१-१०२॥

[पश्चाद् वसन्तपूजनम्]

वसन्तं पूजयेत् पश्चात् कदम्बवनमध्यगम्।
सौवर्णं वामहस्ते च सुधापूर्णघटान्वितम्।।१०३।।
दक्षहस्ते च दधतं नानापुष्पसमुच्चयम्।
साङ्गं कामं प्रपूज्याय धूपदीपादि दर्शयेत्।।१०४।।

कामदेव और उनकी दोनों पत्नियों का पूजन करने के बाद कदम्बवन में निवास करने वाले वसन्त का पूजन करें। वसन्त का वर्ण सुनहरा है। उसके बाँयें हाथ में सुधापूर्ण घट और दाहिने हाथ में पुष्पगुच्छ है। वसन्त का इस प्रकार ध्यान करके गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारों से उनका पूजन करना चाहिए।।१०३-१०४।।

[मदनपूजानन्तरं देवीपूजा ततः कुमारीपूजा च]

मदने पूजितः कामः सर्वकार्यार्थसाधकः।
तञ्च सम्यक् प्रपूज्याथ महात्रिपुरसुन्दरीम्।।१०५।।
यजेत्तत्कालसम्भूतैः कसुमैश्चन्द्रचन्दनैः।
सौगन्धिकैः सकाश्मीरैर्नानाफलरसैरपि।।१०६।।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा कुमारीं पूजयेत्ततः।

इस प्रकार द्रोणलता में सर्व-कार्यसाधक कामदेव का पूजन करके यथा-काल उपलब्ध पुष्पों तथा कपूर, चन्दन, केसर, कस्तूरी आदि से भगवती त्रिपुरसुन्दरी का पूजन एवं अष्टोत्तरशत मन्त्रजप करके कुमारी-पूजन करना चाहिए।।१०५-१०६।।

[सुवासिनीपूजा योनिपूजा च]

सुवासिनीञ्च सम्पूज्य योनिमण्डलमर्च्चयेत्।।१०७।।

सुवासिनीमिति। पतिपत्नीमित्यर्थः। योनिपूजाप्रकारश्च प्राणतोषण्यादौ सप्तम-काण्डे चतुर्थपरिच्छेदे द्रष्टव्यः।

कुमारी-पूजन के बाद सुवासिनी-पूजन करके योनि-मण्डल का अर्चन करना चाहिए।।१०७।।

विमर्श—यद्यपि कुलाचार-क्रम से साधना के अन्तर्गत योनि-मण्डल पूजन का विधान निरुत्तर आदि कतिपय ग्रन्थों में बताया गया है; मगर प्रस्तुत प्रसंग में योनि-मण्डल का अर्चन प्रसंगहीन होने के कारण लिपिकारों का प्रमाद प्रतीत होता है। यहाँ 'योनि-मण्डल का अर्चन' नहीं; अपितु योगिनीगण का अर्चन होना चाहिए; जैसा कि ज्ञानार्णवतन्त्र (२६/२८) में कहा गया है—

सुवासिनीश्च सम्पूज्य योगिनीगणमर्चयेत्।

[महादेवीपूजा पूर्णहोमः गुरुदक्षिणादानञ्च]

पूजयित्वा महादेवीं पूर्णाहुतिं समाचरेत्।
ब्राह्मणानपि सम्पूज्य प्रदद्याद् गुरुदक्षिणाम्।।१०८।।

महादेवी की पूजा तथा दमन-पूजा का अंगभूत हवन करने के बाद ब्राह्मणों और गुरुदेव का अर्चन करें।।१०८।।

[मदनारोपणफलम्]

अनेन विधिना मन्त्री मदनारोपणं यजेत्।
तस्य सांवत्सरी पूजा सफला नान्यथा भवेत्।।१०९।।

इस प्रकार मदन-पूजन करने पर ही सांवत्सरी पूजा का फल मिलता है, अन्यथा साल भर तक की गई पूजा व्यर्थ हो जाती है।।१०९।।

[वैशाखपूर्णिमायां विशेषपूजा]

वैशाखे मासि पूर्णायां स्वर्णपुष्पैर्यजेत् पराम्।
अथवा चन्द्रकस्तूरीचन्दनैः शिशिरोदकैः।।११०।।

वैशाख-पूर्णिमा को स्वर्णपुष्पों अथवा कपूर, कस्तूरी, चन्दन और शिशिरोदक (बर्फ के पानी) से भगवती का अर्चन करें।।११०।।

[ज्येष्ठपूर्णिमायां विशेषपूजा]

ज्येष्ठे मासि च पूर्णायां कदलीपनसाम्रजैः।
फलैः प्रपूजयेद्देवीं पूर्ववत् सर्वसिद्धये।।१११।।

सर्वसिद्धियों की प्राप्ति के लिये ज्येष्ठपूर्णिमा को भगवती त्रिपुरा की पूजा कदली (केला), पनस (कटहल) और आम्र (आम) फलों से करनी चाहिए।।१११।।

पवित्रारोपण विधान—मदन-पूजन के समान पवित्रारोपण भी एक अनिवार्य सांवत्सरी कृत्य है। मदनपूजन चैत्र मास में तो पवित्रारोपण आषाढ़पूर्णिमा को किया जाता है। पवित्रारोपण के लिये सूर्य की मिथुन-संक्रान्ति से तुला-संक्रान्ति तक का समय सामान्य रूप से प्रशस्त है।

[पवित्रारोपणकथनम्]

पवित्रारोपणं वक्ष्ये साधकानां हिताय च।।११२।।

साधकों के हित के लिये पवित्रारोपण विधान का निरूपण कर रहा हूँ।।११२।।

[पवित्रपूजायाः कर्तव्यता]

वर्षमात्रकृता पूजा सफला भवति ध्रुवम्।
तस्मात् पवित्रपूजा हि कर्त्तव्या सिद्धिहेतवे।।११३।।

सांवत्सरी पूजा का सम्पूर्ण फल पाने के लिये पवित्रा-पूजा प्रत्येक साधक को करनी चाहिए॥११३॥

[पवित्रारोपणकालः]

आरभ्य मिथुनार्केण तुलासंक्रमणान्तरम्।
अतिरम्यां महापूजां पवित्राणां विशेषतः॥११४॥
पक्षद्वयोः प्रपूज्या स्याच्चतुर्थ्यामष्टमीदिने।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां पवित्रारोपणञ्चरेत्॥११५॥

सूर्य की मिथुनसंक्रान्ति से प्रारम्भ कर तुला संक्रान्ति की अवधि में किसी भी महीने के दोनों पक्षों की चतुर्थी-अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशी तिथियों पर पवित्रा-पूजा की जाय॥११४-११५॥

[आषाढपौर्णमास्यां विशेषः]

आषाढे पौर्णमास्यां वा पवित्रैः पूजयेच्छिवाम्।
सौवर्णरौप्यताम्रैर्वा सूत्रैः पट्टसमुद्भवैः॥११६॥

अथवा आषाढ़पूर्णिमा को स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा पट्टसूत्रों से बनी पवित्रा से भगवती की पूजा की जाय॥११६॥

[नवतन्तुनिर्माणम्]

यज्ञसूत्रसमुद्भूतैः पद्मनालसमुद्भवैः।
त्रसरीसूत्रसम्भूतैः काषायसूत्रसम्भवैः॥११७॥
दर्भमुञ्जशणोद्भूतैर्नवधा गुणितैः शुभैः।
कुर्यात् पवित्रशक्तीनां सर्वासां षोडशाङ्गुलैः॥११८॥
नवाङ्गुलैर्वा तत्संख्या शरग्रन्थिसमन्वितम्।
होमे त्वेकशरग्रन्थिं कृत्वा तैरर्च्चितः क्रमात्॥११९॥

स्वर्ण आदि धातुओं के तारों से बनी पवित्रा उपलब्ध न हो तो यज्ञसूत्र (कपास के सूत), कमलनाल, त्रसरी (टसर), कुश और मूंज के सूत्र से पवित्रा बनाई जाय। पवित्रों की लम्वाई १६ अंगुल अथवा ९ अंगुल रखी जाय और उसमें उतनी ही गाँठ लगाई जाय। प्रत्येक पवित्रा नौ (९) तन्तुओं (सूतों) की होनी चाहिए॥११७-११९॥

[नवतन्तुषु देवपूजा]

प्रालेयचन्द्रमा वह्निब्रह्मनागो गुहो हरिः।
मदाक्ष-सर्वदेवांश्च नवतन्तुषु पूजयेत्॥१२०॥

प्रालेयेति। एतान् प्रालेय-चन्द्रमा-वह्नि-ब्रह्म-नाग-गुह-हरि-मदाक्ष-सर्वदेवान् नवतन्तुषु नवान् पूजयेदित्यर्थः।

नौ तन्तुओं से निर्मित पवित्र में प्रत्येक तन्तु पर क्रम से (१) प्रालेय, (२) चन्द्रमा, (३) वह्नि, (४) ब्रह्मा, (५) नाग, (६) गुह, (७) हरि, (८) मदाक्ष और (९) सर्वदेवताओं का पूजन करना चाहिये॥१२०॥

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र (२५वें पटल) में तन्तुओं पर पूज्य देवताओं के नाम में कुछ अन्तर है। तदनुसार प्रथम तन्तु पर 'प्रणव' का और आठवें तन्तु पर साम्ब का पूजन किया जाना चाहिए।

शिरोमन्त्रेणाभिमन्त्र्य हृन्मन्त्रेण शुभैर्जलैः।
प्रक्षाल्याभ्युक्षणं कुर्याच्छिवमन्त्रेण देशिकः।।१२१।।
अवरुध्य च नेत्रेण ग्रथितं कवचेन तु।
रोचनाकुङ्कुमाभ्याञ्च रक्तचन्दनचन्दनैः।।१२२।।
कस्तूरीघुसृणाद्यैश्च कर्पूरैर्विमलैरपि।
गैरिकाद्यैर्विचित्रञ्च कारयेत् सुमनोहरम्।।१२३।।
मूलमन्त्रेण चाभ्युक्ष्य स्थापयेद्दशकोणके।

शिरोमन्त्रेणेत्यादि। शिरोमन्त्रेण 'स्वाहा' इत्यनेनाभिमन्त्र्य 'नमः' इति हृन्मन्त्रेण शुभैर्जलैः प्रक्षाल्य 'हौँ' इति शिवमन्त्रेणाभ्युक्षणं कुर्यात्। वौषट् इति नेत्रमन्त्रेण अवरुध्य 'हुँ' इति कवचमन्त्रेण संग्रथ्य गोरोचना-कुङ्कुमादिभिर्विचित्रं कारयेत्। घुसृणं कुङ्कुमम्। 'कुङ्कुमं पीतकावेरं घुसृणं कुसुमात्मकम्' इति हारावली।

शिरोमन्त्र (स्वाहा) से अभिमन्त्रित करके हृदयमन्त्र (नमः) से उन्हें शुद्ध जल से धोयें, शिव-मन्त्र (ह्रौं) से अभ्युक्षण करें, नेत्रमन्त्र (वौषट्) से अवरुद्ध करके कवच-मन्त्र (हुम्) से उन्हें ग्रथित करें। गोरोचन, कुंकुम, लाल चन्दन, चन्दन, कस्तूरी, कपूर और गेरु आदि से रंग कर उन्हें सुन्दर बनायें। मूल-मन्त्र से उन पर जल छिड़क कर उन्हें दश कोणों में स्थापित कर दें॥१२१-१२३॥

[पवित्रवृन्दस्थापनम्]

पवित्रवृन्दसकलं षडङ्गेन प्रपूजितम्।।१२४।।

षडंग मन्त्रों से उन सभी पवित्रों का पूजन करें। यह कार्य पूजा के एक दिन पहिले कर लेना चाहिए। घट की स्थापना भी एक दिन पूर्व करनी चाहिए॥१२४॥

[पूर्वदिने घटस्थापनम्]

कृत्वा तु पूर्वदिवसे घटस्थापनमेव च।

[पवित्रे सूत्रसंख्या]

अष्टोत्तरशतैः सूत्रैर्मन्त्रेण परिकल्पितम्।।१२५।।

[संख्यातारतम्येनोत्तममध्यमाधमत्वकथनम्]

उत्तमं तद् विजानीयात्तदर्द्धं मध्यमं भवेत्।
तस्याप्यर्द्धं कनिष्ठं स्यात्त्रिविधं कथितं क्रमात्।।१२६।।

एक सौ आठ सूत्रों से बनाया गया पवित्र 'उत्तम', इससे आधे अर्थात् ५४ सूत्रों से बनाया गया पवित्र 'मध्यम' और इससे भी आधे अर्थात् २७ सूत्रों से वनाया गया पवित्र 'कनिष्ठ' होता है॥१२५-१२६॥

पवित्रमूलशक्तीनां षण्णवत्यङ्गुलैर्युतम्।
शरग्रन्थ्यादिकं कृत्वा त्रितयन्तु समर्पयेत्।।१२७।।

मूल शक्तियों को ९६ अंगुल का पवित्र तिहरा करके एवं ग्रन्थियुक्त करके समर्पित करना चाहिए॥१२७॥

[अधिवासे पूजादि]

अधिवासनवेलायां यवान् विस्तीर्य साधकः।
देवीकुम्भं प्रतिष्ठाप्य पूर्णं चामीकरादिभिः।।१२८।।
देवीमावाह्य तत्कुम्भे मूलमन्त्रेण पूजयेत्।
चन्दनैः कुमुदाद्यैश्च पुष्पैः फलयुतैरपि।
एला कक्कोलजातीभिरुपेतैः पूजयेच्छिवाम्।।१२९।।

अधिवास के समय साधक यथाविधि यव (जौ) बिखेरकर स्वर्ण आदि से निर्मित कलश स्थापित करे। इस कलश में देवी का आह्वान करके मूल मन्त्र से चन्दन, कुमुद, जाती आदि पुष्पों तथा फलों से उनका पूजन करे॥१२८-१२९॥

[पवित्रार्पणम्]

ततः क्रमं समभ्यर्च्य पवित्रार्पणमाचरेत्।
श्रीविद्यया पवित्राणि गुरोर्नाम्ना समर्पयेत्।।१३०।।
गुरुभ्यस्त्रिविधेभ्यश्च तिथिनित्यागणेषु च।
पवित्रारोपणं कुर्यान्नवचक्रेश्वरीमपि।।१३१।।
रश्मिवृन्दासु सर्वासु प्रत्येकं तारपूर्वकम्।
ततश्च कुरुकुलायै पवित्रञ्च समर्पयेत्।।१३२।।

गुरुभ्य इति। त्रिविधेभ्यः, परम-परापर-परमेष्ठिभेदात् त्रिविधत्वम्।

भगवती का पूजन करने के बाद क्रमपूर्वक आवरण-देवताओं का पूजन करें। तत्पश्चात् श्रीविद्या से भगवती को पवित्र अर्पित करें। फिर नामोल्लेखपूर्वक गुरुत्रय,

तिथिनित्याओं, नौ चक्रेश्वरियों और अन्य परिवारदेवताओं में से प्रत्येक देवता को प्रणवसहित उनके नाम-मन्त्रों से और उसके बाद कुरुकुल्ला देवी को पवित्र चढ़ायें॥१३०-१३२॥

[गुरोः सन्तोषोत्पादः]

यथाविभवरूपेण गुरुं सन्तोषयेद् बुधः।
स्वर्णालङ्कारवस्त्रैश्च नानारत्नसमुच्चयैः।।१३३।।
तत्प्रसादं पवित्रञ्च धारयेत् साधकोत्तमः।
तदङ्गहोमं निर्वर्त्त्य पवित्रेण समर्पयेत्।।१३४।।

बुद्धिमान् साधक अपनी हैसियत के अनुसार गुरुदेव को स्वर्ण, अलंकार, वस्त्र तथा रत्न आदि की दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। उनके समर्पित पवित्र को उनके प्रसादस्वरूप स्वयं धारण करे। पवित्र-पूजन के अंगभूत हवन के बाद पवित्रों की पुनः पूजा करे॥१३३-१३४॥

[कुमार्यादीनां पूजनम्]

कुमारीपूजनं कार्यं ततः सुवासिनीगणम्।
योगिन्यो योगिनश्चैव ब्राह्मणा विविधा गणाः।
पूज्या हि साधकेन्द्रेण यदीच्छेद्धितमात्मनः।।१३५।।

तत्पश्चात कुमारी एवं सुवासिनी-पूजन, योगियों, योगिनियों और ब्राह्मणों का पूजन-अभिनन्दन करे॥१३५॥

विशेष—आषाढ़ पूर्णिमा को पवित्र-पूजन के बाद शेष महीनों की पूर्णिमा तिथियों पर भगवती की पूजा का क्रम अगले श्लोकों में बताया गया है।

[श्रावणपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

श्रावणे मासि पूर्णायां सर्वापत्परिशान्तये।
सिन्दूरकुङ्कुमाद्यैश्च चन्दनैर्विविधैः फलैः।
उत्पलैः कुमुदैरेव पूजयेत् परमेश्वरीम्।।१३६।।

श्रावण-पूर्णिमा—सभी आपदाओं की शान्ति के लिये श्रावण-पूर्णिमा को सिन्दूर, कुंकुम, चन्दन, उत्पल, कुमुद और विभिन्न प्रकार के फलों से परमेश्वरी का अर्चन किया जाय॥१३६॥

[भाद्रपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

अथ भाद्रपदे मासि पूर्णायां केतकोद्भवैः।
प्रसूनैरर्च्चयेद्देवीं नानाविभवविस्तरैः।।१३७।।

भाद्र-पूर्णमा—भाद्रपद मास की पूर्णिमा को केतकी के पुष्पों से यथावैभव राजसी विस्तार से भगवती का अर्चन करें॥१३७॥

[आश्विनपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

आश्वयुज्यां विशेषेण दर्शान्तं प्रतिपत्तिथिम्।
आरभ्य पूजयेद्देवीं पौर्णमास्यन्तमेव च॥१३८॥
जवापराजिताद्रोणैः करवीरैः सुपङ्कजैः।
सौगन्धिकैश्च कह्लारैर्वस्त्रभूषणदर्पणैः॥१३९॥
व्यजनैः शुद्धसिन्दूरैश्चामरैश्चन्दनादिभिः।
नानाविधफलैर्द्रव्यैर्नानारसरसायनैः ॥१४०॥
पूजयित्वा जपेद् विद्यां हुनेत् प्रतिदिनं शतम्।
सहस्रं वापि जुहुयात्त्रिपुराप्रीतिहेतवे॥१४१॥
तेन विद्या भवेत् सिद्धा नृपतिं कुरुतेऽर्च्चनात्।
सप्तम्यामथवाष्टम्यां नवम्यां वा प्रपूज्य च।
अवश्यमेव जानीयाल्लङ्घने तद्विपर्ययः॥१४२॥

आश्विनपूर्णिमा—आश्विन अर्थात् क्वार के महीने में दर्श अमावस्या के बाद प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ करके पूर्णिमा-पर्यन्त पूरे पन्द्रह दिनों तक भगवती त्रिपुरा के प्रीति-सम्पादन के लिये प्रतिदिन जवा, अपराजिता, द्रोण (दमन), करवीर, कमल, कल्हार आदि पुष्पों; चन्दन आदि सुगन्धद्रव्यों; विभिन्न प्रकार के व्यञ्जनों, फलों, रस-रसायनों, सिन्दूर, छत्र, चामर, व्यजन आदि राजसी उपकरणों से पूजा करके मन्त्र-जपपूर्वक एक सौ अथवा एक हजार आहुतियों से हवन करें। इससे भगवती प्रसन्न होकर वरदान देती हैं। यदि पूरे पन्द्रह दिनों तक इतने विस्तार से पूजन-हवन कर पाना सम्भव नहीं हो तो सप्तमी, अष्टमी और नवमी को यथावैभव अर्चन अवश्य किया जाय॥१३८-१४२॥

[कार्तिकपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

कार्तिके मासि पूर्णायां कुङ्कुमादिभिरर्च्चयेत्।
रात्रौ दीपान् निवेद्याथ होमं कुर्याद् घृतेन च॥१४३॥
देव्यग्रे स्थापयेद्दीपान् विद्यया षोडश क्रमात्।
शक्तीनामेकमेकन्तु स्थापयेत्तत्तदग्रतः॥१४४॥
अथवा भाजने मध्ये एकं तदभितो नव।
कृत्वा निवेदयेन्मूलविद्यया सप्रसूनकम्॥१४५॥

कार्तिक-पूर्णिमा—कार्तिक मास की पूर्णिमा को कुंकुम आदि से देवी की अर्चना करके रात्रि में दीपदान एवं घृत से हवन करे। मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए देवी के आगे १६ दीपक स्थापित करें। शक्तियों के नाम का एक-एक दीपक निकाल कर उनके सामने रखें। दूसरा विकल्प यह है कि स्वर्ण आदि की थाली पर मध्य में एक तथा उसके चारो ओर ९ (नौ) दीपक रखकर प्रशस्त फूलों के साथ मूल मन्त्र से देवी त्रिपुरा को समर्पित करें॥१४३-१४५॥

[मार्गशीर्षपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

वृश्चिके मासि पूर्णायां नारिकेलाम्बु चन्द्रयुक्।
निवेद्याभ्यर्च्चयेन्मासं पिष्टपूपैर्यथाविधि॥१४६॥

मार्गशीर्ष-पूर्णिमा—वृश्चिक संक्रान्ति अर्थात् मार्गशीर्ष-पूर्णिमा को कर्पूर-सुवासित नारियल-जल, पिष्ट और धूप (पुआ) आदि निवेदित करके यथाविधि पूजन करें॥१४६॥

[पौषपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

पौषे मासि च पूर्णायां शर्कराभिर्गुडेन वा।
पूजयेद् भूमिसंसिद्ध्यै गव्यं दुग्धं निवेदयेत्॥१४७॥

पूस-पूर्णिमा—पूष पूर्णिमा (धनु-संक्रान्ति) को शक्कर और गुड़ का भोग लगाकर भगवती का पूजन करें तथा भूमि-प्राप्ति के लिये उन्हें गाय का दूध निवेदित करें॥१४७॥

[माघपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

माघे मासि च पूर्णायां तिलैः शुक्लैस्तथेतरैः।
पूजयेद् गन्धनैवेद्यैः सितपुष्पादिभिः सह॥१४८॥

माघी पूर्णिमा—माघ मास की पूर्णिमा को सफेद और काली तिल, श्वेत पुष्प तथा श्वेत चन्दन आदि द्रव्यों से भगवती त्रिपुरा का अर्चन करें॥१४८॥

[फाल्गुनपूर्णिमायां कर्तव्यम्]

फाल्गुने मासि पूर्णायां चम्पकैः स्वर्णराजतैः।
चूतसौगन्धिकुसुमैः पूजयेदीप्सिताप्तये॥१४९॥

फाल्गुनी पूर्णिमा—फाल्गुन मास में अभीष्ट-प्राप्ति के लिये स्वर्ण और रजत पुष्पों, चम्पा तथा आम्रपुष्पों से भगवती का अर्चन करें॥१४९॥

[चैत्रादिपूर्णिमासु कर्तव्योपदेशः]

विषुवायनदर्शेषु युगादिषु समर्च्चनम्।
कुर्याद् वैशेषिकं तेषु आगमोक्तेषु तेष्वपि॥१५०॥

विषुवायनेति। महाविषुवपूर्णिमायां, जलविषुवपूर्णिमायां, उत्तरायणपूर्णिमायां, दक्षिणायनपूर्णिमायां युगाद्या-मन्वन्तरादिषु, दर्शेषु अमावस्यासु चेति सर्वास्वेव विशेषपूजा कर्त्तव्या इति बहुवचनेन सूचितम्।

महाविषुव पूर्णिमा, जलविषुव पूर्णिमा, उत्तरायण पूर्णिमा, दक्षिणायन पूर्णिमा, युगादि तिथियाँ, मन्वन्तर तिथियाँ, दर्श अमावस्या आदि देवी की पूजा के विशेष पर्व हैं। इन पर्व-तिथियों पर भगवती की यथाविधान पूजा की जानी चाहिए॥१५०॥

[द्वादशमासीयकृत्यानामवश्यकर्तव्यता]

इति द्वादशमासीयकृत्यं कुर्यात् प्रयत्नतः।
वर्षे वर्षे च मन्त्रज्ञो ह्यन्यथा पापभाग् भवेत्।
योगिनीनां भवेद् भक्ष्यः क्रुद्धा श्रीत्रिपुरा भवेत्।।१५१।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणावेकविंशतितमः प्रकाशः॥२१॥

वर्ष के बारह महीनों में से प्रत्येक माह में वक्ष्यमाण विधि से प्रति वर्ष भगवती की निरन्तर पूजा की जाय। पूजा में व्यवधान या व्यतिक्रम होने से योगिनियाँ क्रुद्ध होकर साधक का विनाश कर देती हैं और भगवती त्रिपुरा भी रुष्ट हो जाती हैं॥१५१॥

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के इक्कीसवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।२१।।

●

द्वाविंशतितमः प्रकाशः

कुलाचारी साधना में दूतीयाग का अतिशय महत्त्व है। पञ्चाङ्ग पुरश्चरण-सम्पन्न तथा ज्ञानलब्ध साधक ही दूतीयाग के अधिकारी होते हैं। दूतीयाग के दो भेद या प्रकार हैं। प्रथम है—क्रियादूती और दूसरा है—ज्ञानदूती याग। बहिर्याग की तरह क्रियादूती याग क्रियाप्रधान तथा अन्तरंग याग की तरह ज्ञानदूती याग चिन्तन-प्रधान है। प्रस्तुत अध्याय में ज्ञानदूती याग का निरूपण किया गया है। क्रियादूती याग की विधि ज्ञानार्णवतन्त्र के बाइसवें पटल तथा श्रीविद्यार्णव के १८वें श्वास में द्रष्टव्य है।

[ज्ञानदूतीकथनम्]

ज्ञानदूतीमथो वक्ष्ये यथा ब्रह्म सनातनम्।
प्रकाशाख्ये यागगेहे प्रविशेद् वरमन्दिरे।।१।।

अब मैं ज्ञानदूती याग का निरूपण कर रहा हूँ। इस यजनविधि से प्रकाश- नामक याग-मन्दिर में साधना करके साधक ब्रह्म-सनातन को प्राप्त कर लेता है।

विमर्श—ज्ञानार्णव (२३/१) में 'प्रकाशाख्य' के स्थान पर 'प्रणवाख्य' पाठ है। तदनुसार अर्थ होगा—'प्रणव' नामक यागमन्दिर में।

इच्छाज्ञानक्रियादूतीरचिते स्वभगान्विते।
अनया परया दूत्या तत्र ज्ञानमये शिवे।।२।।
पर्यङ्के पुरुषार्थैश्च वेदैश्च परिमण्डिते।
आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मपरिभूषिते ।।३।।

इस याग-मन्दिर में इच्छा-ज्ञान और क्रिया-नामक दूतियों द्वारा रचित त्रिकोण में ज्ञानमय शिवरूप पर्यंक (पलंग) है। यह पलंग धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय से परिमण्डित तथा आत्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा और ज्ञानात्मा से विभूषित है।।२-३।।

तत्पदार्थः पदार्थस्त्वं तत्त्वं पदसमुच्चयः।
पदार्थत्रयमेतत्तु ज्ञानाद् ब्रह्मप्रकाशकम्।।४।।
एतत्सूत्रमयैः पट्टैर्गुम्फिते सुमनोहरे।
प्रपूजयेत् परां तत्र भवेद् भूतिश्चतुर्विधा।।५।।

वेद का महावाक्य है—'तत् त्वम् असि'। इन तीनों पदों से ब्रह्मज्ञान का प्रकाश होता है। इस पलंग पर चतुर्विधा होकर भगवती परा विराजिता हैं। इस पलंग पर उनकी पूजा की जानी चाहिए।।४-५।।

विमर्श—ज्ञानार्णवतन्त्र में इस बात को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

तत्पदार्थस्त्वम्पदार्थोऽसिपदार्थञ्च सुन्दरि।
पदार्थत्रयमेतत्तु ज्ञानसूत्रप्रकाशकम्।।४।।
एतत्सूत्रमयैः पट्टैः गुम्फितेऽम्बरमण्डिते।
सुमनोवाससुभगे परां तत्र प्रपूजयेत्।।५।।

तदनुसार इसका अर्थ होगा—'तत् त्वम् असि'—यह वेदवाक्य है। इस वेदवाक्य में जो ये तीन पद हैं, वे ज्ञानसूत्र के प्रकाशक हैं। यह पलंग 'तत् त्वम् असि' के ज्ञान रूप सूत्रों से बीना गया है। इस सुवासित यागमन्दिर के इस पलंग पर ब्रह्मज्ञान की प्रकाशिका भगवती परा प्रतिष्ठिता हैं।

चतुर्विधा—भगवती परा के चार भेद या चार रूप हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि उस पलंग पर इच्छा-ज्ञान और क्रियारूपी दूतियों के द्वारा निर्मित त्रिकोण (योनि) में शान्ता और अम्बिका की सामरस्यरूपा भगवती 'परा' अपने चार रूपभेदों (वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा) के साथ प्रतिष्ठिता हैं।

'श्रीचक्र' संकेत के निरूपण में पिछले ······· प्रकाश में यह बताया जा चुका है कि श्रीयन्त्र का त्रिकोण चक्र शान्ता और अम्बिका की सामरस्यभूता बिन्दुरूपा त्रैलोक्यप्रसविनी महाशक्ति का बहिर्मुखी विलास है। अम्बिका से वामा ज्येष्ठा और रौद्री तथा शान्ता के अवच्छेद से इच्छा-ज्ञान और क्रिया का आविर्भाव होता है। वामा शक्ति से सामरस्य करके इच्छाशक्ति पश्यन्ति वाक्रूप हो जाती हैं। ज्येष्ठा और ज्ञाना से मध्यमा वाक् और रौद्री एवं क्रिया के सामरस्य से वैखरी भाव का प्रादुर्भाव होता है। पश्यन्ती वाक् इस त्रिकोण की वामरेखा, वैखरी दक्षिण रेखा तथा मध्यमा वाक् सरल अग्र रेखा है। इस तरह इच्छा-ज्ञाना तथा क्रिया के साथ पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी का रूपान्तरण सम्बन्ध स्पष्ट है।

हस्तिनी शङ्खिनी चान्या चित्रिणी पद्मिनी तथा।
सर्वाभरणसम्पन्नाः सुन्दर्यश्चारुलोचनाः।।६।।

जिस तरह वाक् के चार रूपभेद हैं, उसी तरह दूतियों (नायिकाओं) की चार जातियाँ काम और काव्यशास्त्र में बताई गई हैं। दूतियों के चार भेद हैं—(१) हस्तिनी, (२) शंखिनी, (३) चित्रिणी और (४) पद्मिनी। ये चारो जाति की दूतियाँ या नायिकायें अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी एवं सभी अलंकारों से विभूषिता हैं।।६।।

वैखरी हस्तिनी ज्ञेया स्थूलावस्था परा कला।
ययेदं धार्यते सर्वं ब्रह्माण्डपरिमण्डलम्।।७।।
वर्गाष्टकेन नियतं सूते दिग्गजसञ्चयम्।
तेनैव करिणी प्रोक्ता मध्यमा शङ्खिनी भवेत्।।८।।

वैखरी अकारादिक्षकारपर्यन्तवर्णमाला, विद्येति श्रीधर:।

वाणी का स्थूलतम रूप है—वैखरी वाणी। अपनी स्थूलता के कारण वैखरी वाणी हस्तिनी नायिका के समरूप है। वाणी का यह स्थूलतम रूप जिन वर्णों के संयोजन से प्रकट होता है, वे सभी वर्ण 'अ'कार आदि आठ वर्गों में वर्गीकृत हैं। वैखरी वाणी ने इन आठ वर्गों से आठ दिग्गजों को जन्म दिया, जिन्होंने आठों दिशाओं में स्थित होकर ब्रह्माण्ड के भार को उठा रखा है। इन दिशाओं को जन्म देने के कारण उसे 'करिणी' अर्थात् 'हस्तिनी' कहना सर्वथा उचित है।।७-८।।

शङ्खिनी च महाशुद्धा सर्वपापविवर्जिता।
सर्वदेवप्रिया सा हि कान्तिसौरभ्यशोभिता।।९।।
तथा वनस्पतिगता मध्यमाशुशुभग्रहा।

'मध्यमा-शंखिनी भवेत्'—अर्थात् मध्यमा वाक् शंखिनी जाति की दूती अथवा नायिका है। शंखिनी-रूपिणी मध्यमा-वाक् अपनी शुद्धता, पवित्रता, निष्कलंकता एवं सर्वपापरहिता होने के कारण देवताओं को अत्यन्त प्रिय है। यह मध्यमा वाक् वनस्पतिगता है अर्थात् इसका निवास वनस्पति जगत् में है।।९।।

चित्रिणी वल्लरी देवी सर्वशक्तिस्वरूपिणी।।९।।
शिवशक्तिमयी देवी पाति चैव जगत्त्रयम्।
तेषु सर्वेषु पश्यन्ती जीवेषु परमाश्रया।।१०।।

सर्वशक्ति-स्वरूपिणी 'पश्यन्ती वाक्' जो सभी जीवों को आश्रय प्रदान करती है और जो तीनों लोकों का पालन करती है, वह चित्रिणी नायिका है। यह चित्रिणी नायिका वल्लरी (लता)-स्वरूपा और शिवशक्तिमयी है।।९-१०।।

विमर्श—ये श्लोक भी ज्ञानार्णवतन्त्र (पटलसंख्या २३) के हैं। ज्ञानार्णव में पाठ है—

चित्रिणी वल्लरी देवी महादोषविनाशिनी।।१०।।
यस्या: फलं वरारोहे शिवशक्तिमयं सदा।
शिवशक्तिमयं देवि प्राणिमात्रं जगत्त्रयम्।।११।।
तेषु सर्वेषु पश्यन्ती जीवेषु परमाश्रया।

महादोषविनाशिनी चित्रिणी दूती वल्लरी (लता) स्वरूपा है, जिसका फल शिव-शक्तिमय है। तीनों लोकों का प्राणि जगत् भी शिव-शक्तिमय है। पश्यन्ती वाक्

तीनों लोकों के सम्पूर्ण प्राणिजगत् को आश्रय प्रदान करती हुई सभी प्राणियों में निवास करती है। अतः गुणसाम्य के कारण पश्यन्ती वाक् चित्रिणी दूती है।

एवं ब्रह्मणि संलीना पराराध्या परेश्वरी।
तां दूतीं तत्र सम्पूज्य शमादिकुसुमैः शुचिः।।११।।
तदङ्गेषु कलाः पूज्याः क्रमेण साधकोत्तमैः।
यथा शान्तिकला बोधकला व्याप्तिकला परा।।१२।।

परम आराध्या परावाक् सदैव (पर) ब्रह्म में ही लीन रहती है। इस चतुर्थी दूती का वहीं पर अर्थात् तत्त्वज्ञानमय पलंग पर शम आदि कुसुमों से भली-भाँति पूजा करके उसके अंगों में ज्ञानात्मा की शान्तिकला, बोधकला, व्याप्तिकला तथा पराकला का (न्यासपूर्वक) अर्चन किया जाय॥११-१२॥

ज्ञानात्मनः कला ज्ञेया चतुर्थी स्यात्ततः परम्।
पद्मिनी चापरा ज्ञेया हंस(ः?) स्वच्छविकाशिता।।१३।।
हंसः ? द्वन्द्वेन पद्मं हि घल्का ? सङ्कोचमेव तु।
विकाशं मात्रि ? सौभाग्यं तथा वर्णविलासतः।।१४।।
परा प्रकाशमायाति पद्मिनी तु मता भवेत्।
तस्य देहे साधकेन्द्रैः कलाः पूज्यास्तु षोडश।।१५।।
चित्कला सकला शान्तिकला कालाकला परा।
आज्ञावास्तु कला ज्ञेया संलीना परवस्तुनि।।१६।।
भूयः शान्तिकलाद्यास्तु ज्ञानात्मनः प्रकाशिताः।
विरागता मोक्षकला परमात्मकला तथा।।१७।।
विद्याकलाचतस्रस्तु विज्ञेयाश्चान्तरात्मनि।
विद्यासन्तोषता तृप्तिः परं ब्रह्मप्रकाशिकाः।।१८।।
परमात्मकला ज्ञेया संलीना परवस्तुनि।
एतास्तु षोडश कलाः श्रीविद्यान्तेषु संस्थिताः।।१९।।

उपर्युक्त आठ श्लोक (श्लोकसंख्या १२ से १९ तक) मूलतः श्रीज्ञानार्णवतन्त्र (पटलसंख्या-२३) से उद्धृत हैं; मगर यहाँ इनके पाठक्रम में बहुत अन्तर है। पाठ-क्रम की इस अस्तता-व्यस्तता के कारण इनसे अर्थ का सम्यक् अनुसन्धान करके विषय को स्पष्ट कर पाना द्राविड़ी प्राणायाम है। अतः इन श्लोकों का ज्ञानार्णवतन्त्रोक्त मूल पाठक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है—

तदङ्गेषु कलाः पूज्याः क्रमेण सुरवन्दिते॥१३॥
पद्मिनी तु परा ज्ञेया हंसस्वच्छविकासिनी।
हंसोदयेन पद्मं हि त्यक्त्वा सङ्कोचमद्रिजे॥१४॥

विकासयति सौभाग्यं तथा वर्णविलासत:।
परा प्रकाशमायाति पद्मिनीत्वमतो भवेत्।।१५।।
तस्या: देहे वरारोहे कला: पूज्यास्तु षोडश।
चित्कला, सत्कला, ज्ञानकला, संवित् कला तथा।।१६।।
आत्मनस्तु कला ज्ञेयाश्चतस्र: परमेश्वरि।
विरागता मोक्षकला परमाणुकला तथा।।१७।।
विद्याकला चतुष्कं तु विज्ञेयं चान्तरात्मनि।
विद्या संतोषता तृप्ति: परब्रह्मप्रकाशता।।१८।।
परमात्मकला ज्ञेया: संलीना परवस्तुनि।
लुप्ति: शान्तिकला बोधकला व्याप्तिकला परा।।१९।।
ज्ञानात्मन: कला: ज्ञेयाश्चतस्र: परमेश्वरि।
कला: षोडश देवेशि! श्रीविद्यास्तेषु संस्थिता:।।२०।।

परावाणी पद्मिनी दूती (नायिका) है। जिस तरह रात के समय कमलिनी पंखुड़ियों को संकुचित करके आत्मरूप का गोपन कर लेती है और प्रात:काल सूर्योदय होने पर संकोच का त्याग करके विकसित हो जाती है, उसी तरह यह परावाणी प्रलयकालरूपी रजनी में अपने आत्मस्वरूप को छिपाकर ब्रह्म में लीन रहती है और सृष्टि के उदयकाल में शिवप्रकाश का सामरस्य प्राप्त करके विश्व के रूप में विकसित हो जाती है। प्रकाशप्रियता के इस गुण-साम्य के कारण परा वाणी का पद्मिनीत्व स्पष्ट है।

परा वाक् की (कल्पित) देह में षोडश कलाओं का न्यासपूर्वक अर्पण करना चाहिए। जैसा कि बताया जा चुका है, आत्मा के चार रूपभेद हैं। यथा—(१) आत्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा और (४) ज्ञानात्मा। इनमें से प्रत्येक की चार-चार कलायें हैं। इस तरह कलाओं की संख्या १६ है और ये १६ कलायें श्रीविद्या के वर्णों में स्थित हैं। अत: श्रीविद्यारूपिणी परा की (कल्पित) देह में इन कलाओं का विन्यास करने से उनका पूजन हो जाता है। इन कलाओं के नाम इस प्रकार हैं।

आत्मा की चार कलायें हैं—(१) चित्कला, (२) सत्कला, (३) ज्ञानकला और (४) संवित्कला।

अन्तरात्मा की चार कलायें हैं—(१) विरागता कला, (२) मोक्षकला, (३) परमाणु कला और (४) विद्याकला।

परमात्मा की कलायें हैं—(१) विद्याकला, (२) संतोषकला, (३) तृप्तिकला और (४) परब्रह्मप्रकाश कला।

ज्ञानात्मा की कलायें हैं—(१) परब्रह्मरूपी परवस्तु में लुप्तिकला, (२) शान्तिकला, (३) बोधकला और (४) व्याप्तिकला।

षोडशान्ता ब्रह्मरूपा कला षोडशरूपिणी।
आत्मयोगस्वरूपेण त्रैलोक्यं रचयत्यसौ।।२०।।

षोडश अक्षरों वाली षोडशरूपिणी ये कलायें ब्रह्मरूपा हैं। यही षोडशी कला आत्मयोगस्वरूप से तीनों लोकों की रचना करती है॥२०॥

विमर्श—(१) इस श्लोक में 'षोडशान्ता' से कोई अर्थ नहीं निकलता। ज्ञानार्णव में 'षोडशान्ता' के स्थान पर 'षोडशार्णा' (१६ अक्षरों वाली) पाठ है—जो सर्वथा सार्थक है।

(२) 'आत्मयोगस्वरूपेण'—ज्ञानार्णव में 'आत्मा जाग्रत् स्वरूपेण'।

अन्तरात्मा सत्त्वरूपो रजोरूपश्च विश्रुतः।
अतएव सत्त्वरूपो रजोरूपः परः शिवः।।२१।।

अन्तरात्मा सत्त्वरूप और रजोरूप का मिश्रित रूप वाला है अर्थात् अन्तरात्मा में सत्त्व और रज दोनों गुण मिले हुए हैं। परमात्मा परशिव है, जिसमें सत् और रज—दोनों गुण मिश्रित हैं। ज्ञानात्मा तुरीयावस्था से युक्त है अर्थात् ज्ञानात्मा गुणातीत है॥२१॥

विमर्श—उपर्युक्त श्लोकों में पाठ-भ्रान्ति है। (१) ज्ञानार्णव में आत्मा को जाग्रत स्वरूप वाला बताया गया है—'आत्मा जाग्रत् स्वरूपेण' ------- (२०वाँ श्लोक)। जाग्रत् अवस्था सत्त्वगुणप्रधाना है—'जाग्रत् सत्त्वगुणा ज्ञेया (ज्ञानार्णवतन्त्र, प्रथम पटल, श्लोक १९) तथा—'जाग्रत् सत्त्वगुणा प्रोक्ता' (ज्ञानार्णव १३/१४)।

(२) आत्मा के द्वितीय रूप-भेद—'अन्तरात्मा' को २१वें श्लोक की प्रथम पंक्ति में सतोगुण और रजोगुण का मिश्रित रूप वाला कहा गया है। अत: आत्मा के तृतीय रूपभेद 'परमात्मा' को भी पुन: 'सत्त्वरूपो रजोरूप:' कहना तर्कसङ्गत और तर्कसम्मत नहीं प्रतीत होता। इसे 'रजोरूप: तमोरूप:' कहा और माना जाना चाहिए, जैसा कि ज्ञानार्णव (२३/२२) में कहा गया है।

परमात्म(।) विधिर्ज्ञेयो ज्ञानात्मा तूर्यसाधकः।
एताः कलाश्च नियतं परदेहे प्रकाशयेत्।।२२।।

इन १६ कलाओं को भगवती परा की कल्पित देह में प्रकाशित करें अर्थात् न्यासपूर्वक अर्चन करें॥२२॥

तत्पदार्थन्तु जानीहि मुखमस्या न संशयः।
ततः पदपदार्थाभ्यां कुचयुग्मक्रमेण तु।।२३।।

नादो मूलं हि योगस्य शास्त्रस्येति विनिर्णयः।
नादस्तु सर्वभूतानां भवेद् योनिर्न संशयः।।२४।।

वेद के महावाक्य 'तत् त्वम् असि' का प्रथम पद इसका (श्रीविद्यारूपिणी परा वाणी का) मुख है। शेष दो पद इसके दोनों स्तन हैं। नाद ही योग (शिव-शक्ति-संयोग) का मूल है और नाद ही सभी भूतों की योनि है अर्थात् सभी भूतों की उत्पत्ति नाद से हुई है॥२३-२४॥

विमर्श—श्लोक २३ की द्वितीय पंक्ति—'ततः पदपदार्थाभ्याम्' का ज्ञानार्णव (२३/२४) में पाठ है—'त्वं पदार्थोऽसि वाक्यार्थ।'

(२) श्लोकसंख्या २४ का पाठ है—

भोगस्तु परमेशानि नादो ब्रह्ममयी भवेत्।
नादोदितं वरारोहे विश्वं योनिः न संशयः॥

ब्रह्ममय नाद उसका भोग है। नाद से विश्व की उत्पत्ति होती है।

शक्तिं सम्पूजयेत्तत्र त्रिकोणे भगमालिकाम्।
सर्वानन्दमये मध्ये सुन्दरीं पूजयेत् पराम्।।२५।।

इस त्रिकोण में देवी भगमालिका की पूजा करके सर्वानन्दमय चक्र में देवी परा सुन्दरी की पूजा करें॥२५॥

स्वात्मलिङ्गे ततो मन्त्री शिवञ्च परिपूजयेत्।
तारञ्च भुवनेशानीं महात्रिपुरसुन्दरीम्।।२६।।
नमः शिवाय विद्येयं दशार्णा परिकीर्त्तिता।
परस्परस्वभावेन ब्रह्मानन्दरसो भवेत्।।२७।।

देवी परा-सुन्दरी की पूजा करने के बाद दिव्य साधक अपने आत्मलिंग पर दशाक्षरी मन्त्र से शिव की पूजा करे।

दशाक्षरी मन्त्र—तार (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं), महात्रिपुरसुन्दरी (मूल मन्त्र के तीन कूट) के बाद शिव का पंचाक्षरी मन्त्र—'नमः शिवाय'। मन्त्रस्वरूप निष्पन्न हुआ—ॐ ह्रीं ऐं क्लीं सौः नमः शिवाय।

इस मन्त्र से आत्मलिंग पर शिव की पूजा करके आत्मलिंगरूपी शिव और परासुन्दरी रूपिणी दूती का सामरस्य करायें। उनके दिव्य सामरस्य से ब्रह्मानन्द रस स्रवित होता है॥२६-२७॥

विमर्श—उपर्युक्त दोनों श्लोक ज्ञानार्णव तन्त्र के तेईसवें पटल—'ज्ञानदूती याग विधान' में नहीं हैं। २६वाँ श्लोक 'ज्ञानार्णव' तन्त्र के बाईसवें पटल (कर्मदूती यागविधान) का ६०वाँ श्लोक है।

तं रसं मनसा मन्त्रा वहन्नासागतं स्मरेत्।
अर्घ्यामृतेन संयोज्य ततः श्रीचक्रमर्च्चयेत्।।२८।।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं प्रोक्तं परमदुर्लभम्।

शिव और शक्ति (आत्मलिंग और परासुन्दरी) के इस दिव्य एवं पारमार्थिक सामरस्य से उद्भूत ब्रह्मानन्दरस को मन के द्वारा वहन्नासापुट में आया हुआ समझें। फिर उस रस को अर्घ्य में डालकर उससे श्रीचक्र का अर्चन करें। देवी के पूजन के लिये यह परम दुर्लभ दिव्य कुण्डगोलोद्भव द्रव्य है॥२८॥

वहन्नासापुट अर्थात् जिस नथुने से साँस चल रही है।

विमर्श—पाठान्तर—वहन्नासापुटं—वहन्नाड्यागतं।

ब्रह्मानन्दमये ज्ञाने पापपुण्यविवर्जिते।।२९।।
न ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तु न क्षत्रः क्षत्रियस्तथा।
वैश्योऽपि न च वैश्यः स्यान्न शूद्रः शूद्र एव च।।३०।।
चाण्डालो नैव चाण्डालः पुक्कसो नैव पुक्कसः।
सर्वं समं विजानीयात् परमार्थविनिश्चयात्।।३१।।

पाप और पुण्य से परे इस ब्रह्मानन्दज्ञान को पीकर साधक वर्ण और आश्रम के स्तरों से ऊपर उठ जाता है। इस ब्रह्मानन्दरस का पान करके न तो ब्राह्मण ब्राह्मण रहता है, न क्षत्रिय क्षत्रिय रहता है, न वैश्य वैश्य रहता है और न शूद्र शूद्र रहता है। न चाण्डाल चाण्डाल रहता है और न पुक्कस पुक्कस रह जाता है। परमार्थ तत्त्व का विनिश्चय हो जाने पर आत्मतत्त्व में प्रतिष्ठित ऐसा साधक वर्ग, धर्म और सामाजिक वर्ण-व्यवस्था से ऊपर उठकर सभी व्यक्तियों को समदृष्टि से देखने लगता है॥२९-३१॥

आकाशात् पतितं तोयं बिन्दुमार्गेण गच्छति।
ग्राममध्ये स्थितं तोयं विष्ठामूत्रादिपूरितम्।।३२।।
मृगगोऽश्वादिमार्जारखरादिरुधिरान्वितम् ।
समस्तमपि गङ्गायां प्रयाति मिलितं यथा।।३३।।
गङ्गामृतं भवेत् सर्वं कालुष्य नैव तिष्ठति।

जब आकाश से पानी बरसता है, तब वह सर्वथा शुद्ध और पवित्र रहता है। बाद में वही पानी ढाल वाली जमीन पर बहता हुआ गाँव के बीच में पहुँचता है और गाँव की सारी गन्दगी उसमें मिल जाती है। मल-मूत्र और जानवरों की·हड्डी और खून मिल जाने से वह सर्वत्र अपवित्र, गन्दा और कलुषित हो जाता है। फिर जब वही पानी बहता-बहता गंगा में मिल जाता है, तो उसकी सारी अपवित्रता और कलुषता समाप्त हो जाती है तथा वह अपावन जल से पावन गंगाजल बन जाता है॥३२-३३॥

पाठशोधन—बिन्दुमार्गेण—निम्नमार्गेण।

यथा संविन्मये ज्ञाने समता सर्वजन्तुषु।।३४।।
सर्वद्रव्येषु नियतं समता नात्र संशयः।
यथा सूर्यप्रकाशोऽयं सत्त्वेनैव प्रवर्त्तते।।३५।।
ततः स्वस्यापि चान्त्यस्य तमः संहरति क्षणात्।
शोषय(न्) दुग्धमूत्रादिचन्दनं नैव कर्दमम्।।३६।।

जिस तरह सूर्य का प्रकाश अच्छे और बुरे स्थान का भेद न करते हुए सभी स्थानों में व्याप्त अंधेरे को समाप्त कर देता है और उसकी गर्मी दूध और मूत्र तथा चन्दन एवं कीचड़ में कोई भेद न करते हुए उन सबको समान रूप से सुखा देती है, उसी तरह संविद्-ज्ञानसम्पन्न आत्मनिष्ठ साधक पवित्रता एवं अपवित्रता, स्पृश्यता एवं अस्पृश्यता, अपने और पराये तथा ऊँच एवं नीच आदि समस्त द्वन्द्वों से मुक्त होकर सभी प्राणियों को समदृष्टि से देखने तथा उन सबके साथ समान व्यवहार करने लगता है॥३४-३६॥

पाठशोधन—(१) सत्त्वेनैन—समाने त्वैन। (२) ततः स्वस्यापि चान्त्यस्य—उत्तमस्यापि चान्यस्य। (३) नैव—चैव।

अत एव विचारज्ञो मन्त्री सर्वमयो भवेत्।
सिद्धिस्तदैव विज्ञेया श्रीगुरोः कृपया परा।।३७।।

और इस तरह विचारवान एवं आत्मनिष्ठ साधक सभी प्रापञ्चिक (दुनियावी) द्वन्द्वों से मुक्त होकर सर्वमय हो जाता है। ऐसे ही साधक को गुरुदेव की परम-कृपा से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं॥३७॥

ज्ञानदूती यजन-विधान तथा उसकी फल-श्रुति का निरूपण करने के बाद अब भगवती त्रिपुरा के त्रिकूटात्मक मन्त्र के एक-एक कूट की पृथक्-पृथक् साधना की विधि बताई जा रही है—

[अद्भुतत्रिकूटसाधनप्रकारकथनम्]

तथाद्भुतं प्रवक्ष्यामि त्रिकूटस्यापि साधनम्।

प्रतिज्ञा-वाक्य—अब मैं भगवती त्रिपुरा के त्रिकूटात्मक मन्त्र के एक-एक कूट की साधना का विधान बता रहा हूँ। इस क्रम में सर्वप्रथम वाग्भवबीज की साधना का विधान बताया जा रहा है।

शुक्लाम्बरधरो धीरो गन्धकस्तूरीमण्डितः।।३८।।
मुक्ताफलस्फुरद्भूषाभूषितः शुक्लमाल्यधृक्।
धवलागारमध्ये तु ब्रह्मचर्यव्रतो नरः।।३९।।

पूजयेच्छुभ्रकुसुमैर्नैवेद्यञ्च समुज्ज्वलम्।
पायसं घृतसम्पूर्णं तथाऽमृतफलौदनम्।।४०।।
दुग्धं मोदकसंयुक्तं नानापूपान्नपूरितम्।
नैवेद्यं दर्शयेद्देव्यै वागीश्वर्यै सुसाधकः।।४१।।

वाग्भव बीज की साधना में पूजा के सभी उपचार, साधक की वेश-भूषा तथा आसन आदि सभी श्वेत वर्ण के होने चाहिए। पूजा-मन्दिर की दीवारें भी श्वेत वर्ण की ही प्रशस्त हैं।

वाग्बीज का साधक श्वेत-शुभ्र वस्त्र पहिने, श्वेत कपूर का लेप लगाये, माथे पर श्वेत चन्दन का तिलक, गले में मोतियों तथा श्वेत पुष्प के हार धारण कर भगवती के श्वेत-मन्दिर में साधना करे। साधना-काल में ब्रह्मचर्य व्रत का निष्ठापूर्वक पालन करे। भगवती वागीश्वरी को श्वेत वर्ण के सुगन्धित पुष्प समर्पित करे। पायस (खीर), ओदन (भात), घी के बने लड्डू, मीठे फल निवेदित करे।।३८-४१।।

[तत्र वाग्भवकूटसाधनम्]

मनःसङ्कल्पशुभ्रैर्वा साधयेद् वाग्भवाक्षरम्।
वाग्भवाख्यां जपेद् विद्यां वागीशीं संस्मरेद् बुधः।।४२।।

'वाग्भवाख्या'मिति ऐँ इति बीजमित्यर्थः।

बुद्धिमान् साधक भगवती वागीशी का ध्यान करके उन्हें मन से भी शुद्ध श्वेत पूजोपचार समर्पित करके वाग्भव बीज (ऐं) की साधना करे।।४२।।

[वागीशीध्यानम्]

कर्पूरधवलां शुभ्रां शुभ्राभरणभूषिताम्।
मुक्ताफलामलमणिजपमालालसत्कराम् ।।४३।।
पुस्तकं वरदानञ्च दधतीमभयप्रदाम्।
कुचभारभराक्रान्तां दीपाभां तन्तुरूपिणीम्।।४४।।

वागीश्वरी ध्यान—भगवती वागीश्वरी की देह-कान्ति कपूर की तरह शुभ्र एवं धवल है। वे श्वेत वस्त्रों और श्वेत विभूषणों से विभूषिता हैं। वे चतुर्भुजा हैं तथा उनके हाथों में शुभ्र मोतियों की जपमाला तथा पुस्तक एवं वर तथा अभय मुद्रायें हैं। स्तन-भार के कारण वे सामने की ओर कुछ झुकी हुई हैं।।४३-४४।।

[देव्या विशेषचिन्ता]

गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु।
विसर्गस्थामृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं ध्रुवम्।।४५।।
पीत्वा कुलामृतञ्चैव पुनरेव विशेत् कुलम्।
पुनरेव कुलं गच्छेद् द्वादशान्ते निवेशयेत्।।४६।।

सहस्रारे महापद्मे वाग्भवं पूर्णचन्द्रकम्।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा सप्तषष्ठाक्षधारया।।४७।।
लम्बिकां ब्रह्ममार्गेण तालुमूले प्रवेशयेत्।
जिह्वामापूर्य मन्त्रज्ञो मातृकावर्णरूपिणीम्।।४८।।
वहिर्गताञ्च वाग्रूपा(ं) जिह्वाग्रेऽमृतरूपिणीम्।
आ मूलाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं तस्माज्जिह्वाप्रदेशकम्।।४९।।
वाग्भवां बीजरूपान्तां दीपाकारां विचिन्तयेत्।
हस्तयोः पादयोर्मन्त्री तथा नाडीत्रयेषु च।।५०।।
आधारात्तु समुत्थाप्य वाग्भवं द्वादशे नयेत्।
द्वादशाधारमानीय तद्ग्रन्थिं परिभेदयेत्।।५१।।
तस्माज्जिह्वाग्रमानीय दीपाभां परिभावयेत्।

इन श्लोकों में देवी कुलकुण्डलिनी का वाग्देवी के रूप में ध्यान करने तथा उन्हें अमृतपान कराने का निर्देश दिया गया है; मगर इसकी क्रमविधि पूर्णतः स्पष्ट नहीं है।

कमलनाल के रेशे के समान सूक्ष्म तथा दीपशिखा के समान आभा वाली देवी कुलकुण्डलिनी का वाग्देवी के रूप में ध्यान करते हुए यह भावना करे कि अमृतपान के लिये लोलुपायमाना मातृका वर्णरूपिणी कुलकुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र और लिंगत्रय का भेदन करती हुई जिह्वाग्र तक आ गई है। जिह्वाग्र में देवी कुलकुण्डलिनी की भावना करते हुए जिह्वा को उलटकर तालुमूल के गह्वर में प्रविष्ट कराकर उन्हें चन्द्रमण्डल से टपकते हुए दुग्धवत् धवल और मधुर अमृत का पान करायें। जब वे परितृप्त हो जायँ, उन्हें सुषुम्णा मार्ग से लेकर कुलक्षेत्र में विश्रान्ति दें। इसी विधि से उन्हें कई बार अमृतपान करायें तथा यह भावना करें कि इस अमृत की धारा तीनों नाड़ियों, दोनों हाथ-पैरों सहित सम्पूर्ण शरीर में बह रही है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त परिव्याप्त दीपाकार वाग्भव बीज का ध्यान करते हुए उसे मूलाधार से उठाकर द्वादशान्त तक लायें एवं ग्रन्थि का भेद करके उसे जिह्वाग्र में स्थापित कर दें।।४५-५१।।

विमर्श—'ब्रह्मग्रन्थि'—कुलपथ की तीन ग्रन्थियों में यह प्रथम ग्रन्थि है, जो मूलाधार में स्थित है।

'सप्तषष्ठाक्षधारया'—यह सर्वथा अस्पष्ट एवं अज्ञात है।

'तालुमूल'—नव चक्रों के क्रम में यह सातवाँ चक्र है, जो आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित है। यहाँ गह्वर है। योगीगण खेचरी मुद्रा से जिह्वा को इसी चक्र में प्रविष्ट कराकर अमृतपान करते हैं।

'क्षीरधारोपमम्'—तान्त्रिक मान्यताओं के अनुसार सहस्रार से टपकने वाले अमृत द्रव का रंग लाल माना गया है; मगर वाग्भव के प्रसंग में इसे दूध के समान श्वेत वर्ण कहा गया है।

[अस्य लक्षवारजपफलम्]

लक्षमेकमिदं जप्त्वा सर्वपापहरः स्वयम्।।५२।।
वाक्पतिर्जायते सद्यो मूकोऽपि सुकविर्भवेत्।
वादे सदसि सद्वाक्यस्तम्भकः प्रतिवादिनः।।५३।।
सत्पण्डितघटाटोपजेता प्रतिहतप्रभः।
सत्तर्कप्रतिवाक्यार्थसर्वालङ्कारशास्त्रवित् ।।५४।।
पदगुम्फैर्महावाक्यकर्त्ता मन्त्री प्रजायते।
अव्याहतमतिः शास्त्रे विज्ञेयो वाक्पतिर्भवेत्।।५५।।

इन श्लोकों में वाग्भव बीज की साधना का फल बताया गया है। इस बीज (ऐं) का एक लाख जप करने से साधक के सारे पाप कट जाते हैं। वह वाक्पति (बृहस्पति) बन जाता है। इस बीज की साधना करने से गूँगे मनुष्य की वाणी भी फूट जाती है और वह प्रशंसित कवि बन जाता है। वाद-विवाद में उसके प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों की वाणी स्तम्भित हो जाती है और वे उसके अकाट्य तर्कों का उत्तर नहीं दे पाते। शास्त्रों का मर्म समझने में उसकी बुद्धि अप्रतिहत होती है। उसकी भाषा सर्वथा व्याकरणसम्मत एवं अलंकृता होती है॥५२-५५॥

[बालकजिह्वायां मन्त्रलेखनम्]

बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे लिखेत्।
मधुना श्वेतदूर्वाभिः किं वा स्वर्णशलाकया।।५६।।
अमृतं वाग्भवं कूटं वागीशत्वप्रदायकम्।
स एव पण्डितः श्रीमान् स चामूर्खो भवेत् किल।।५७।।

बालक का जन्म हो जाने पर तीन दिनों के भीतर शहद और श्वेत दूर्वा अथवा सोने की सलाई से उसकी जीभ पर वाग्भव बीज (ऐं) लिखने से वह बालक बड़ा होने पर अत्यन्त विद्वान् पण्डित होता है॥५६-५७॥

[बालकस्य मूर्ध्नि जपफलम्]

एतत् वाग्भवकूटन्तु बालकस्यापि मूर्द्धनि।
हस्तं दत्त्वा यदि जपेच्छतमष्टोत्तरं बुधः।।५८।।
सोऽपि श्लोकान् सर्वथैव करोति वाक्पतिर्यथा।
एतत्तु कथितं सारं वाग्भवस्यापि साधनम्।।५९।।

यदि सामान्य बालक के सिर पर हाथ रखकर वाग्भव बीज का १०८ बार जप किया जाय तो उस सामान्य बालक के मुँह से विमल काव्यधारा फूट पड़ती है। वाग्भव बीज की साधना का यह सर्वोच्च फल है।।५८-५९।।

विमर्श—इस सन्दर्भ में लघ्वाचार्य की कथा प्रसिद्ध है। उन्होंने राजा के कहने पर आठ साल के निरक्षर बालक के सिर पर हाथ रखकर इस बीज का अष्टोत्तर जप किया और इसके प्रभाव से उस बालक ने तत्काल ही ३३ छन्दों की स्तुति राजदरबार को सुना दी। यह स्तुति आज भी 'लघुस्तव' के नाम से समादृत है।

[चुलुकपानं तस्य फलञ्च]

अथो देवीं सचक्रान्तचुलुके सलिले स्मरन्।
मातृकासहितां विद्यां त्रिरावृत्त्याऽमृतात्मिकाम्।।६०।।
नाडीं सरस्वतीं जिह्वां दीपाकारां स्मरन् पिबेत्।
अब्दाच्चतुर्विधं तस्य पाण्डित्यं भुवि जायते।।६१।।

चुल्लू में पानी ले लें। मातृकाओं सहित विद्या (ऐं) का तीन बार जप करके उसे अभिमन्त्रित करें। दीपाकारा देवी सरस्वती का ध्यान करते हुए उसे पी जायँ। चार वर्षों में ही वह महापण्डित बन जाता है।।६०-६१।।

[प्रातःकाले पानफलम्]

एवं नित्यमुषःकाले यः कुर्याच्छुद्धमानसः।
स योगी सत्यविज्ञानी स कविर्भवति ध्रुवम्।।६२।।

जो व्यक्ति प्रतिदिन उषाकाल में शुद्ध हृदय से इस विद्या का जप करता है, वह निश्चित रूप से सत्य-विज्ञानी और सुकवि बन जाता है।।६२।।

[कामकूटसाधनप्रकारः]

अथ वक्ष्यामि सौभाग्यं कामकूटस्य साधनम्।
रक्तालङ्कारसुभगो रक्तमाल्यानुलेपनाम्।।६३।।
रक्तवस्त्रान्वितां सम्यङ्मध्यकामकलात्मना।
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुसुमादिभिरर्चयेत्।।६४।।

कामबीज-साधना—वाग्भव बीज के बाद अब कामबीज की साधना का विधान बता रहा हूँ। साधक लाल वस्त्र, लाल रंग के आभूषण तथा लाल पुष्पों की माला धारण कर एवं लाल-चन्दन का तिलक लगाकर लाल रंग के पुष्पों से भगवती का अर्चन करके कामबीज की साधना करे।।६३-६४।।

[कामकलाचिन्ता]

ततः कामकलारूपां मदनाङ्कुरमध्यमे।
उद्यदादित्यसङ्काशां स्फुरद्दीपशिखाप्रभाम्।।६५।।

गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण ब्रह्मरन्ध्रान्तमेव च।
पतद्भिरिन्दुधाराभीरक्तलाक्षारसोपमाम् ।।६६।।
बन्धूककुसुमाकारां कान्तिभूषणभूषिताम्।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषुवराभयलसत्कराम् ।।६७।।
कामराजस्वरूपान्तु बालार्ककिरणारुणाम्।
चिन्तयेत् कुलपीठेषु संक्षोभो जायते क्षणात्।।६८।।
कामकला(ं) हृदो मध्ये बन्धूकसदृशप्रभाम्।
चित्ताकर्षणकारी च नारीणाञ्च विशेषतः।।६९।।
मूर्ध्नि भागे कामकला वर्षन्ती रक्तधारया।
धारणात् सम्प्रयोगेण करोति वशगं जगत्।।७०।।

ध्यान—कामबीज का साधक सद्यः उदित सूर्य के समान अरुण वर्णा तथा प्रदीप्त दीप्त-शिखा की आभा वाली सर्वाभरणभूषिता कामकलारूपा देवी कुल-कुण्डलिनी का मदनाङ्कुर के मध्य में अर्थात् कामबीज 'क्लीं' के मध्य में ध्यान करे। चतुर्भुजा देवी कुण्डलिनी के चारो हाथ गन्ने के धनुष एवं पुष्पों के बाण तथा वर एवं अभय मुद्रा से लक्षित हैं। वे ब्रह्ममार्ग से ब्रह्मरन्ध्र की ओर संचरणशीला हैं। लाख-रस के समान लाल रंग के अमृत की वर्षा से बन्धूकपुष्प के समान उनकी रक्तिम देह-कान्ति और भी प्रगाढ़ रक्तिम होकर बाल-अरुण की किरणों की तरह झिलमिला रही है।

कामकला के रूप में देवी का इस प्रकार ध्यान करते हुए कामबीज की साधना करके साधक प्रयोग करे। यदि साधक यथा-विधान कामबीज का जप करते हुए यह ध्यान करे कि साध्य व्यक्ति विशेषकर साध्या नारी के सिर पर देवी कामकला रक्त वर्ण के रस की वर्षा कर रही हैं, तो वह इस विधि से समस्त संसार को अपने वश में कर सकता है।।६५-७०।।

[कामकूटप्रयोगकथनम्]

तोषयन्ती जगत् सर्वं प्रयोगं कथयाम्यथ।
विदर्भ्याद्येन कामेन मन्मथान्तकृतं कुरु।।७१।।
कन्दर्पसम्पुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः।
मकरध्वजसंज्ञन्तु कारयेत् साधकोत्तमः।।७२।।
मीनकेतुगतं कृत्वा भूर्जपत्रे सुशोभने।
रोचनागुरुकस्तूरीकर्पूरकुङ्कुमादिभिः ।।७३।।
साध्यं प्रतिष्ठितं प्राणं कारयेद्धेममध्यगम्।
जपेत् पञ्चसहस्रं वा कामबीजन्तु साधकः।।७४।।

इन श्लोकों में एक अन्य प्रयोग बताया गया है। श्रीज्ञानार्णव तन्त्र (१३/२८) में इस प्रयोग का नाम 'त्रैलोक्यमोहन प्रयोग' बताया गया है। इस प्रयोग का उल्लेख 'नित्याषोडशिकार्णव' में भी है।

प्रयोग-विधि—सुन्दर-सुचिक्कण भोजपत्र पर सोने की सलाई और रोचना, अगरु, कस्तूरी, कपूर और कुंकुम के द्रव से त्रैलोक्यमोहन यन्त्र बनायें। यथा—साध्य व्यक्ति के नाम को प्रथम काम के बीज 'ह्रीं' से विदर्भित करके उसे द्वितीय काम 'मन्मथ' के बीज 'क्लीं' के अन्तर्गत कर दें। तदनन्तर इसे अर्थात् 'ह्रीं' को षट्कोणता-आपन्न तृतीय काम 'कन्दर्प' के बीज 'ऐं' के गर्भ में सम्पुटित करें। षट्कोणरूपप्राप्त कन्दर्पबीज के प्रत्येक कोण में चतुर्थ काम—मकरध्वज का बीज 'ब्लूं' लिखें। फिर इसे पाँचवें काम—भीमकेतु के बीज 'स्त्रीं' से वेष्टित करें। इस यन्त्र में साध्य व्यक्ति की प्राणप्रतिष्ठा करके कामबीज (क्लीं) का पाँच हजार जप करें। इससे साध्य व्यक्ति का वशीकरण होगा।।७१-७४।।

विमर्श—'त्रैलोक्यमोहन' नामक इस प्रयोग को करने वाले साधक को यह ज्ञात होना चाहिए कि (१) काम, (२) मन्मथ, (३) कन्दर्प, (४) मकरध्वज और (५) मीनकेतु—ये पाँच प्रकार के काम हैं और क्रमश: (१) ह्रीं, (२) क्लीं, (३) ऐं, (४) ब्लूं और (५) स्त्रीं इनके बीजाक्षर हैं।

मूलं भानुसहस्रन्तु यत्नेन साधयेदपि।
अथवा नाभिमध्ये तु हृदये मुखमण्डले।।७५।।
पद्मरागप्रतीकाशं कामराजं मनोहरम्।
मनसा चिन्तयेद् यस्तु तस्यैश्वर्यं भवेत् किल।।७६।।

बुद्धिमान् साधक अपने नाभि मण्डल में, हृदय में और मुख-मण्डल में पद्मराग मणि के समान काम बीज (क्लीं) का ध्यान करते हुए मूल मन्त्र का बारह (१२) हजार जप करे। ऐसा करने से उसे मनोवांछित ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है।।७५-७६।।

आधारान्नाभिपर्यन्तं प्रदीपस्य शिखां स्मरेत्।
तस्मादुदरपर्यन्तं पद्मरागसमप्रभम्।।७७।।
एतेषु वाग्भवं बीजं हृदये कामराजकम्।
तस्यैव कर्णिकामध्ये सूर्याभां चिन्तयेदथ।।७८।।
तस्माद् भ्रूमण्डलं यावत् पद्मरागसमप्रभम्।
रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारसगृहे स्थित:।।७९।।
रक्तासनोपविष्टस्तु रक्तमाल्यैर्विभूषित:।
परमानन्दहृदयस्त्रिपुरीकृतविग्रहः ।
एवम्भूतवपुः कान्तं कामराजं विचिन्तयेत्।।८०।।

लाल रंग के वस्त्र और माला आदि धारण करके बुद्धिमान् साधक भगवती त्रिपुरा का रूप बनकर लाल रंग की दीवारों वाले मन्दिर में लाल रंग के ही आसन पर बैठकर मूलाधार से नाभि-पर्यन्त और नाभि से उदर पर्यन्त दीपशिखा के समान वाग्भव बीज का ध्यान करके हृदय में तथा हृदयकमल की कर्णिका में सूर्य के समान देदीप्यमान तथा हृदय से भ्रूमध्य-पर्यन्त पद्मराग मणि की तरह अरुणाभ कामबीज (स्त्रीं) का ध्यान करे॥७७-८०॥

[शक्तिकूटसाधनम्]

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्तिकूटस्य साधनम्।।८१।।
सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरं चिन्तयेत् पराम्।
स्रवत्पीयूषधाराभिर्बलन्तीं विषहारिणीम्।।८२।।
हेमप्रभाभासमानां विद्युन्निकरसुप्रभाम्।
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकमलां वरदाभयौ।।८३।।
ज्ञानमुद्राञ्च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम्।
ध्यात्वा विषं हरेन्मन्त्री नानाकारव्यवस्थितम्।।८४।।

शक्तिकूट—अब मैं तृतीय शक्तिकूट की साधना का विधान बता रहा हूँ। तृतीय कूट (सौः) की साधना करने वाले साधक को तपाये हुए सोने के वर्ण वाली और विद्युत्-समूह के समान चमकीली एवं चारो हाथों में चन्द्रकला के समान देदीप्यमान कलश, वर, अभय एवं ज्ञानमुद्रा धारण करने वाली साक्षात् अमृतस्वरूपा भगवती का ध्यान करते हुए यह भावना करनी चाहिए कि वे (भगवती) उसके अर्थात् साधक के सिर से पैर तक अमृत की वर्षा कर रही हैं। उनका इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक समस्त विषों के प्रभाव को समाप्त कर सकता है॥८१-८४॥

हृदि शान्तादिनान्नन्तं(?) जगदाह्लादनं परम्।
पुरः कण्ठादिताल्वन्तं शक्तिकूटं विचिन्तयेत्।।८५।।

इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट नहीं है। द्वितीय पंक्ति का अर्थ है—कण्ठ से तालु-पर्यन्त स्थान में शक्तिकूट का ध्यान करें॥८५॥

आधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं तस्मादाधारकावधि।
अथ मध्याच्छक्तिकूटं विद्युदग्निसमप्रभम्।।८६।।

मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र के अन्त तक तथा वहाँ से मूलाधार चक्र-पर्यन्त अर्थात् सभी चक्रों में विद्युत् और अग्नि के रूप में शक्तिकूट (सौः) का ध्यान करें॥८६॥

केवलं पद्मरागन्तु भ्रुवोर्मध्ये विचिन्तयेत्।
तस्मादाब्रह्मरन्ध्रान्तं तुरीयं पद्मरागधृक्।।८७।।
सहस्रारात्तु मूलान्तं पद्मरागसमप्रभम्।

[कुलशक्तिचिन्ता]

तस्मादाब्रह्मरन्ध्रान्तं कुलशक्तिं विचिन्तयेत्।।८८।।

दोनों भौंहों के मध्य में अर्थात् आज्ञाचक्र में, आज्ञाचक्र से ब्रह्मरन्ध्र के अन्त तक तथा सहस्रार से मूलाधार एवं मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त अर्थात् सभी चक्रों सहित पूरे शरीर में यथाक्रम शक्तिकूट का पद्मराग मणि के समान ध्यान करें॥८७-८८॥

वैनतेयसमो मन्त्री विषभारसहस्रनुत्।
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेन्नात्र संशयः॥८९॥
चातुर्थकज्वरान् सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत्॥९०॥

शक्तिकूट का इस प्रकार से ध्यान करने वाला साधक वैनतेय अर्थात् गरुड़ के समान सहस्र भार विषों के घातक प्रभाव को समाप्त कर सकता है। भूत-प्रेत-पिशाच तथा विभिन्न प्रकार के रोगों का नाश करने में सक्षम शक्तिकूट का साधक तिजारी और चौथिया आदि ज्वरों तथा अपस्मार (हिस्टीरिया) जैसे महारोगों का भी नाश कर देता है॥८९-९०॥

[त्रिकूटसम्पन्न-महात्रिपुरसुन्दरीचिन्ताफलम्]

अथ त्रिकूटसम्पन्ना महात्रिपुरसुन्दरी।
चिन्तिता साधकस्याशु त्रैलोक्यवशकारिणी॥९१॥
क्रमेण नाभिहृद्वक्त्रमण्डलस्थाऽरुणप्रभा।
पद्मरागमणिस्वच्छचिन्तनात् साधकस्य च॥९२॥
अणिमादिगुणैश्वर्यं सौभाग्यञ्च प्रजायते।
तन्नाम संस्मरन्मन्त्री योगिनीनां भवेत् प्रियः॥९३॥

त्रैलोक्य-वशकारिणी त्रिकूटा भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नाभि, हृदय और मुख-मण्डल में क्रमशः अरुण वर्ण, पद्मराग मणि तथा स्फटिक के समान ध्यान करने से साधक को अणिमा आदि सिद्धियाँ, समस्त ऐश्वर्य एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है तथा ऐसा साधक योगिनियों का प्रिय होता है॥९१-९३॥

मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्द्धं सुखी भवेत्।
पुत्रवान् धनवान्मन्त्री मन्त्रध्यानान्न संशयः॥९४॥

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ द्वाविंशतितमः प्रकाशः॥२२॥

इस प्रकार की त्रिकूट-साधना से उसके शरीर में मातृचक्र जागृत होकर स्थित हो जाता है तथा इसके प्रभाव से उसे सभी सुखों की प्राप्ति होती है। भगवती का ध्यान करने-मात्र से साधक को सम्पत्ति तथा सन्तानसुख मिलता है॥९४॥

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के बाईसवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ॥२२॥

त्रयोविंशतितमः प्रकाशः

[त्रिपुरसुन्दरीविद्याया जीवनप्राप्त्युपायकथनम्]

महात्रिपुरसुन्दर्या यथा स्याज्जीवनान्विता।
भुवि विद्या तथेदानीं वक्ष्यामि च सुदुर्लभाम्।।१।।

महेति। महात्रिपुरसुन्दर्या विद्या यथा भुवि जीवनान्विता (दीप्तिमती) स्यात्, तथा इदानीं वां सुदुर्लभां विद्यां वक्ष्यामीत्यन्वयः।

अब मैं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का वह दुर्लभ मन्त्र बता रहा हूँ, जिस मन्त्र से त्रिपुरा विद्या इस संसार में 'जीवानान्विता' अर्थात् दीप्तमती एवं चैतन्य होती है॥१॥

इस विद्या के ध्यान-स्वरूप का निरूपण अगले श्लोकों में किया गया है।

[विद्यायाः स्वरूपविशेषकथनम्]

विद्युदा?क्षीं परां नित्यां कालिकां कालभाषिणीम्।
खड्गमुण्डविकटास्यां व्याघ्रचर्मविभूषिताम्।।२।।
रक्तमाल्याम्बरधरां घोररूपां चतुर्भुजाम्।
खड्गशूलकपालञ्च वरदां तीक्ष्णनासिकाम्।।३।।
सिद्ध्यर्थं जीवयेद्देवीं सर्वविद्यासुजीविना।।४।।

स्वरूपविशेष-कथन—शाश्वती पराशक्तिरूपिणी कालिका नाम वाली इस विद्या की मुखाकृति अत्यन्त भयंकर है (घोररूपा)। उनकी आँखें बिजली के समान चमकीली और चकाचौंध उत्पन्न करने वाली हैं। नासिका तीक्ष्ण और नुकीली है। सिर पर खड्ग के आकार का अर्धचन्द्र है। वे चतुर्भुजा हैं। उनके चारो हाथों में क्रमशः खड्ग, त्रिशूल, नरकपाल और वरमुद्रा है। वे व्याघ्रचर्म का वस्त्र तथा लाल रंग की माला धारण की हुई हैं। काल का भी भक्षण करने वाली वे भगवती कालिका सभी विद्याओं की सिद्धि के लिये उन्हें चैतन्यता प्रदान करें॥२-४॥

[विद्यायाः स्वरूपान्तरम्]

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवकमठमथाप्यङ्कुशं पञ्च बाणान्।
विभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनविलसत्पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु शुभकरी प्राणशक्तिः परा नः।।५।।

दूसरा ध्यान रूप—चार चरणों वाले इस श्लोक में श्रीविद्या का प्राणशक्ति के रूप में निरूपण किया गया है।

रक्त के सागर में पोत पर अरुण सरोज पर विराजिता लाल सूर्य के समान अरुण वर्ण वाली वे देवी प्राणशक्ति हमारा कल्याण करें, जो त्रिनयना हैं और जिनके छः हाथों में पाश, इक्षु (गन्ने) का धनुष, कमठ (जल का घड़ा), अंकुश, पाँच बाण नरकपाल शोभित हैं।।५।।

[दीपनीविद्याकथनम्]

श्रीङ्कारं प्रथमञ्चैव द्रींक्लींकारं ततः परम्।
हैं हैं कलह्रीं सौः कलह्रीं ततः पठेत्।।६।।
क्लीं क्लीं तदधो बीजं द्रींकारं श्रीं ततः परम्।
सर्वेषां दीपनीविद्या सर्वचक्रेषु योजिता।।७।।

श्रीङ्कारमिति। सर्वचक्रसाधारणीं दीपनीमाह—श्रीङ्कारमित्यादिना। तथा च 'श्रीँ ह्रीँ क्लीँ हैँ हैँ कलह्रीँ सौः कलह्रीं क्लीं क्लीं ह्सौः ह्रीँ श्रीँ' इति मन्त्रो भवति।

दीपनी विद्या—श्रीङ्कार (श्रीं), फिर 'ह्रीं'कार 'क्लीं'कार, तत्पश्चात् 'हैं-हैं कलह्रीं सौः' के बाद 'क्लौं क्लौं' के बाद 'ह्रीं-श्रीं' की योजना करने से दीपनी मन्त्र निष्पन्न होता है। यथा—श्रीं ह्रीं क्लीं हैं हैं कलह्रीं सौः क्लीं क्लीं द्रीं श्रीं; मगर यह मन्त्र अशुद्ध है। शुद्ध मन्त्र है—श्रीं ह्रीं क्लीं हैं है कलह्रीं सौः कलह्रीं क्लीं क्लीं हसौः ह्रीं श्रीं।

[प्रतिमायां पूजाविशेषकथनम्]

प्रतिमायां तथा कार्या बलिं दद्यात् समाहितः।
अनङ्गकुसुमादिञ्च चक्रमध्ये प्रपूजयेत्।।८।।
स्वयम्भुकुसुमं दत्त्वा कुण्डगोलोद्भवं तथा।
पूजयेच्चक्रमध्ये तु वाद्यैर्नानाविधै रसैः।।९।।

श्रीयन्त्र की तरह भगवती श्रीविद्या की उनकी अनंगकुसुमा आदि आवरण-देवताओं के साथ प्रतिमा में पूजा की जाय। स्वयम्भूकुसुम अथवा कुण्डगोलोद्भव पुष्प-सहित विविध प्रकार के रस एवं नैवेद्य निवेदित किये जायँ।।८-९।।

हुङ्कारशब्दैः कर्पूरैर्गीतैश्च चन्दनारुणैः।
नरादिबलिदानैश्च महिषैर्मेषछागलैः।।१०।।
गृहीत्वा शोणितं पात्रे स्वकीयहृदयोद्भवम्।
पूजयेत्त्रिपुरां देवीं जुहुयादग्निसम्मुखे।।११।।

[देव्या दक्षिणपार्श्वे जीवनीजपप्रकारः]

देव्या दक्षिणपार्श्वे तु जीवनीजपमाचरेत्।
बलीनां शोणितं दत्त्वा कालिकां पूजयेत्ततः।।१२।।

लाल चन्दन का लेप चढ़ाकर 'हुं'कार का उद्घोष करते हुए विभिन्न प्रकार के वाद्यों के साथ कपूर से उनकी आरती उतारी जाय। महिष, छाग, मेष तथा नर-बलि दी जाय। अपने हृदयप्रदेश का रक्त स्वर्ण आदि के पात्र में लेकर भगवती को समर्पित करें। इष्ट-मन्त्र से अग्नि में हवन करें। बलि-पशु का रक्त समर्पित करके जीवनी मन्त्र का जप करें॥१०-१२॥

क्रोधीशोत्तरसंयुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्।
क्रोधानन्तस्ततः पश्चात् संयुक्तेन पठेत् सुधीः।।१३।।
पिनाकी च सुसूक्षा च क्रोध्यानन्तस्ततः पठेत्।
अनिलो भौतिकश्चैव तदधः प्रणवं लिखेत्।।१४।।

इन दो श्लोकों में बताया गया मन्त्रोद्धार अधूरा और अस्पष्ट है, जिससे मन्त्र-स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

विमर्श—पद्धतिग्रन्थों में बताया गया सञ्जीवनी मन्त्र है—श्रीं क्लीं क्लीं हैं कलह्लीं सौः लसकह्लीं क्लीं क्लीं ह्लीं श्रीं (७ बार जप करें)।

एषा ज्ञेया महाविद्या महाचक्रसमन्विता।
महामेधाप्रदा विद्या महाघोरविनाशिनी।।१५।।
महाविद्या महाकामा महाप्रेतासनस्थिता।
श्वेतरूपा च चन्द्रस्था बाला च भगमालिनी।।१६।।
अनन्तरूपमाख्याता सा च त्रिपुरसुन्दरी।
परमेयं परा शक्तिः प्रथमं पार्श्वसंस्थिता।।१७।।
द्वितीया क्षितिविख्याता तत्परा पश्चिमोत्तरा।
सा च देवी महादेवी महाकालिकसुन्दरी।।१८।।
यस्या मेरोर्जगद् व्याप्तं सुरासुरनरादिकम्।
महापद्मासना देवी महाजीवनकारिणी।।१९।।

पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड के प्रतिरूप बैन्दव चक्र में प्रतिष्ठिता यह महाविद्या घोर से घोर आपत्तियों और संकटों से अपने भक्तों की रक्षा करती है और उन्हें उत्कृष्ट बुद्धि तथा सभी प्रकार के सुख प्रदान करती है। शिवरूप महाप्रेत पर समासीना महात्रिपुरसुन्दरी के अनन्तानन्त रूपभेद हैं। यही कामेश्वरी है, बाला है, वज्रेश्वरी और महामालिनी है। यही परमा पराशक्ति है। महाचक्र के दक्षिण कोण में

कामेश्वरी, पश्चिम कोण में वज्रेश्वरी तथा उत्तर कोण में भगमालिनी के रूप में पूजिता है। यही महाकालिका सुन्दरी है, जो ब्रह्माण्ड में दिग्दिगन्त में व्याप्त है। देवता, मनुष्य और असुर—सब इसी में स्थित हैं। यही सबकी आधारभूता है॥१५-१९॥

प्रतिमां जीवितां कृत्वा अनया शोणितं क्षिपेत्।
सर्वदुष्टनिवाराञ्च ध्यायेद्देवीं सुलोचनाम्।।२०।।

जीवनी मन्त्र के जप से प्रतिमा को चैतन्य करके उस पर रक्त से प्रोक्षण करें। सुन्दर नेत्रों वाली इस देवी का ध्यान सभी दोषों (बाधाओं और कष्टों) का निवारण करने वाला है॥२०॥

[प्रेतासने जपफलम्]

प्रेतासने जपेद् यस्तु सर्वकामफलं लभेत्।
क्षितौ च ख्यातिविख्यातोऽसाध्यं साधयेत् पराम्।।२१।।

प्रेतासन अर्थात् शव पर बैठकर जो साधक मन्त्र का जप करता है, उसकी सभी कामनायें पूरी होती हैं। वह पूरे संसार में विख्यात हो जाता है तथा वह असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है॥२१॥

[महाध्यानकथनम्]

महाध्यानं प्रवक्ष्यामि परां शक्तिस्वरूपिणीम्।
नीलपद्मासनां देवीं नीलपद्मसमप्रभाम्।।२२।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां रक्तमाल्यविभूषिताम्।
वामे खड्गञ्च शूलञ्च वज्रमङ्कुशदक्षिणे।।२३।।
चन्द्रमण्डलमूर्द्धानं सूर्यमण्डलसंस्थिताम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां रक्तगन्धानुलेपनाम्।।२४।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां शिरसा पादसेविताम्।
उन्मत्तयौवनोपेतां प्रेतस्थां लिङ्गपीडिताम्।।२५।।
एवंरूपां महादेवीं चिन्तयेत् साधकोत्तमः।।२६।।

अब मैं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के कलिकास्वरूप का विशेष ध्यान बता रहा हूँ। परा-शक्तिस्वरूपिणी भगवती महाकालिका की देहकान्ति नीलकमल के समान नीलाभ है। वे नील-कमल के आसन पर समासीना हैं। वे त्रिनयना और चतुर्भुजा हैं। उनके वस्त्र-आभूषण तथा माला आदि का रंग लाल है। उनके दोनों बाँयें हाथों में खड्ग तथा शूल एवं दाँयें हाथों में वज्र और अंकुश हैं। मस्तक पर अर्धचन्द्र है। यौवन से मदमाती भगवती कालिका सुन्दरी के चरणकमल ब्रह्मा-विष्णु और शिव के द्वारा सेवित हैं। वे सूर्यमण्डल में संस्थिता हैं॥२२-२६॥

[परमेश्वरीपूजानन्तरं चक्रे पूजनम्]

अनया विद्यया मन्त्री सम्पूज्य परमेश्वरीम्।
तदा चक्रे पदं कृत्वा प्रतिमां चण्डिकां यजेत्।।२७।।
संहारमुद्रया देवीं साधकः स्थिरमानसः।

इस विद्या से प्रतिमा में भगवती कालिकारूपिणी परमेश्वरी का पूजन करने के बाद श्रीचक्र में भी संहार-क्रम से उनका पूजन पूर्ण मनोयोग से करना चाहिए।।२७।।

[ततो बलिदानम्]

बलिदानं ततः कुर्याद् यथाशक्त्या विधानतः।
आनन्दरूपवान् भूत्वा सुन्दरीपुत्रवत् क्षितौ।।२८।।

पूजा करने के बाद यथाविधान यथाशक्ति बलिदान करना चाहिए। पूजा और बलिदान से सन्तुष्ट देवी साधक का पालन करती हैं और वह उनके पुत्र के समान ऐश्वर्य एवं रूपसम्पन्न होकर संसार का सुख भोगता है।।२८।।

कालीं कामातुरां भीमां प्रचण्डगणवेष्टिताम्।
कालखड्गधरां देवीं रुधिरौघञ्च भक्षिताम्।।२९।।
दुर्लभां परमां देवीं महात्रिपुरसुन्दरीम्।

काजल के समान वर्ण वाली, कामेश्वर शिव के साथ समागम के लिये सदैव आतुर, विशाल शरीर वाली, कालरूप खड्ग धारण करने वाली, अत्यन्त प्रचण्ड गणों से घिरी रहने वाली तथा रुधिरपान करने वाली कालिका के रूप में देवी महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान अत्यन्त दुर्लभ है।।२९।।

[आकर्षणबीजकथनम्]

कथयामि परं बीजमाकर्षणकरं परम्।।३०।।
विष्णोः पदं वह्निबीजं चतुर्थस्वरभूषितम्।
नादबिन्दुकलातीतं शक्तिं विसर्गसंयुताम्।।३१।।
अमुकी(ं?) जीवमाकर्ष द्विठान्तं साधकः पठेत्।

आकर्षक बीज—विष्णुपद (क्लीं) के बाद चतुर्थ स्वरभूषित वह्निवीज (रीं) और विसर्गयुक्त शक्ति अर्थात् 'सः' के बाद 'अमुकीं जीवं आकर्षय आकर्षय स्वाहा' की योजना करने से आकर्षण मन्त्र बनता है।

मन्त्र-स्वरूप—क्लीं रीं अमुकीं जीवं आकर्षय आकर्षय स्वाहा। प्रयोग-काल में 'अमुकीं' के स्थान पर साध्य के षष्ठ्यन्त नाम का उपयोग किया जाता है। जैसे—'देवदत्तस्य' या 'रमायाः' आदि।।३०-३१।।

[त्रिकोणचक्रमध्ये देवकन्यादिलिखनम्]

शिवरेफकयोर्मध्ये त्रिकोणचक्रमध्यगे।।३२।।

शिशुरूपाकर्षकरीं देवकन्यां सुराङ्गनाम्।
नागगन्धर्वकन्याञ्च ऋषिकन्याञ्च खेचरीम्।।३३।।
विलिख्य साधकः श्रीमानरुणा(ं) चिन्तयेत् सतीम्।
हृदि मौलौ वराङ्गे च जवां दत्त्वा च कन्यकाम्।।३४।।
रक्तपुष्पं समादाय कुङ्कुमं गन्धवासितम्।
चक्रमध्ये शतं दत्त्वा कन्यानाम प्रपूजयेत्।
समागच्छति सा नारी मारबाणेन पीडिता।।३५।।

आकर्षण-प्रयोग—अधोमुख त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में 'ह्रीं' लिखें। 'ह'कार और 'र'कार के मध्य में मनो अभीष्ट कन्या का छोटा-सा चित्र बनायें और यह ध्यान करें कि वह कन्या अरुण वर्ण की है। तत्पश्चात् चित्र पर उस कन्या के हृदय, सिर एवं योनि-मण्डल का कुंकुम से सुवासित लाल रंग के एक सौ पुष्पों से पूजन करें। इस प्रयोग के फलस्वरूप वह अभिलषित कन्या, चाहे वह देवकन्या हो, नागकन्या हो, गन्धर्वकन्या हो, ऋषिकन्या हो, सुरांगना अथवा आकाशचारिणी कन्या हो, कामबाण से पीड़ित होकर साधक के पास दौड़ी-दौड़ी चली आती है।।३२-३५।।

[चामुण्डाध्यानकथनम्]

महात्रिपुरसुन्दर्या मूलविद्या यथोदिता।
चामुण्डा भेदितानाम्नी ध्यानं वक्ष्यामि दुर्लभम्।।३६।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही मूल विद्या हैं। इनके ही अनेकानेक रूप और भेद हैं। इनके चामुण्डा रूप का ध्यान बता रहा हूँ, जो अत्यन्त दुर्लभ है।।३६।।

सूर्यकोटिनिभां बालां त्रिनेत्रामरुणाम्बराम्।
धनुःपुस्तकबाणाख्यधरां बन्धूकसन्निभाम्।।३७।।
चक्रलिङ्गे समाविष्टां काञ्चीयुक्तनितम्बिनीम्।
स्तनभारोन्नताकारां सिन्दूरपूरिताननाम्।।३८।।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।
मुक्ताहारसमायुक्तां त्रिबलीमध्यभूषिताम्।।३९।।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां कामावेशनकारिणीम्।
नित्यानन्दादिभिर्देवीं पूजयेत् साधकोत्तमः।।४०।।

चामुण्डा का ध्यान—देवी चामुण्डा बालास्वरूपा हैं। उनका मुखमण्डल सिन्दूरी है। उनकी देहकान्ति बन्धूक के पुष्प के समान अरुण तथा कोटि-कोटि सूर्यों की तरह दीप्तिमयी है। स्तनमण्डल पुष्ट और समुन्नत हैं। कमर में करधनी है, जो नितम्बप्रदेश तक लटकी हुई है। सिर पर अनेक मणियों से खचित स्वर्णमुकुट हैं, जिसमें छोटे-छोटे घुँघरू लगे हैं। गले में मोतियों की माला है तथा उदर प्रदेश

त्रिवलीयुक्त है। इनके सभी अंग-प्रत्यंग समुचित अलंकारों से अलंकृत हैं। वे श्रीचक्र के मध्य बिन्दु पर प्रतिष्ठिता हैं। ये ही देवी मनुष्य के हृदय को कामनाओं से आवेशित करती हैं। इनकी प्रतिदिन पूजा की जानी चाहिए॥३७-४०॥

[वक्तव्य-परमदुर्लभविद्या-प्रशंसा]

एषा च विद्या कथिता कथयामि सुदुर्लभाम्।
या देवी जगति ख्याता महापर्वतवासिनी।
परमानन्दहृदयः साधयेन्मोहनात्मिकाम्।।४१।।
यस्यानन्दाज्जगद् व्याप्तं या देवी परमा कला।
महामोहनदात्री च देवासुरनरादिषु।।४२।।
रज्यते सकलं नित्यं तदा देव्या चराचरम्।
दुष्टवैरी भवेद्दास ईशः सर्वजनस्य च।।४३।।

अब मैं जिस विद्या का निरूपण कर रहा हूँ, वह विद्या भी अत्यन्त दुर्लभ विद्या है। जो देवी जगत् में महापर्वतवासिनी के रूप में विख्यात हैं, जिनका हृदय परमानन्द से सराबोर है तथा जिनका ही आनन्द सारे संसार में व्याप्त है, जो देवी आद्या शक्ति की परमा कला हैं और जिन्होंने देवता, मनुष्य और असुर अर्थात् समस्त प्राणिजगत् को मोहित कर रखा है तथा जो स्वयं निष्कल होते हुए भी संसार को अपनी कलाओं से अनुरञ्जित करती हैं, ऐसी महिमाशालिनी तथा मोहनात्मिका देवी की साधना-उपासना करके मनुष्य सभी मनुष्यों का प्रिय स्वामी बन जाता है। इसके उपासक के शत्रु भी दासों के समान उसकी सेवा करने लगते हैं॥४१-४३॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विद्यां परमदुर्लभाम्।
शिवशक्तिसमायुक्तां तुरीयस्वरभूषिताम्।।४४।।
नादबिन्दुसमायुक्तां सर्वलोकमनोहरीम्।
रेफहकारयोर्मध्ये त्रिकोणे चक्रमध्यगे।।४५।।
सम्बोधनपदञ्चैव साध्यं कर्मपदान्वितम्।
पाशाङ्कुशपुटा शक्तिर्नादबिन्दुविभूषिता।।४६।।

शिव (ह) और वह्नि (र) का संयोग करके उन्हें नाद-बिन्दुयुक्त तुरीय स्वर (ईं) से विभूषित करने से रूप बनता है—ह्रीं। यह बीजाक्षर सभी लोकों को मोहित करने वाला है। इस बीजाक्षर को श्रीचक्र के त्रिकोण में लिखें। रेफ और हकार के मध्य में साध्य का नाम और कर्म लिखकर उन्हें पाश (आं) और अंकुश (क्रों) से सम्पुटित कर दें॥४४-४६॥

[प्राणमन्त्रकथनम्]

याद्याः सप्त सकारान्ता व्योमसर्गेन्दुसंयुता।
तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात्ततो'ऽमुष्य'पदं वदेत्।।४७।।

'प्राणा' इति वदेत् पश्चा'दिह प्राणाः' पदं ततः।
'अमुष्य जीव इह'तः 'स्थितोऽमुष्य'पदं वदेत्।।४८।।
'सर्वेन्द्रियाण्यमुष्या'न्ते 'वाङ्मनश्चक्षु'रन्ततः।
'श्रोत्रघ्राण'पदात् 'प्राणा इहागत्य सुखं चिरम्।
तिष्ठन्तु' वह्निजायान्तः घ्राणमन्त्रोऽयमीरितः।।४९।।

याद्या सप्तेति। तथाच—'यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ सः, अमुष्य प्राणा इह प्राणाः, अमुष्य जीव इह स्थितः, अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि, अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इति प्राणमन्त्रो भवति।

प्राण-मन्त्र—'य'कार से 'स'कार-पर्यन्त बिन्दुयुक्त सात वर्ण अर्थात् 'यं- रं-लं-वं-शं-षं-सं'। इन सात वर्णों के बाद व्योम—'हं' के बाद सः। इसके बाद हंसमन्त्र (सोऽहम्) के बाद यथाक्रम 'अमुष्य', 'प्राणाः', 'इह प्राणाः' अमुष्य जीवः इह स्थितः' की योजना करें। इन वर्णों की योजना से रूप प्राप्त हुआ—'यं रं लं वं शं षं सं हं सोऽहम् अमुष्य प्राणाः इह प्राणाः'। इसके आगे 'अमुष्य जीवः इह स्थितः।' इसके आगे—'अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि' तथा इसके आगे 'अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा' की योजना करें। यह प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र है।।४७-४९।।

प्रत्यमुष्यपदस्यादौ पाशादीनि प्रयोजयेत्।
अमुष्येतिपदस्थाने साध्यनाम समुच्चरेत्।।५०।।
प्रयोगेषु समाख्यातः प्राणमन्त्रो मनीषिभिः।
साध्यं प्रतिष्ठितप्राणमाकर्षणादि योजयेत्।।५१।।

प्रयोग करते समय उक्त मन्त्र के आदि में पाशादि अर्थात् 'आं ह्रीं क्रों' की योजना करनी चाहिए तथा अमुष्य के स्थान पर साध्य के षष्ठ्यन्त नाम का उच्चारण करना चाहिए। प्रायोगिक यन्त्रों में इस प्रकार से साध्य के प्राणों की प्रतिष्ठा करके आकर्षण आदि प्रयोग किये जायँ।

प्रयोग-मन्त्र—'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहम् देवदत्तस्य प्राणाः इह प्राणाः। आं ह्रीं क्रों यं रं .... हंसः सोऽहम् देवदत्तस्य जीवः इह स्थितः। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं .... हंसः सोऽहम् देवदत्तस्य सर्वेन्द्रियाणि। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं .... हंसः सोऽहम् देवदत्तस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राण प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'।

प्राण-प्रतिष्ठा के लिये इस मन्त्र की तीन बार आवृत्ति की जाती है। प्राण-प्रतिष्ठा-विधान का सांगोपांग निरूपण (विनियोग, न्यास, ध्यान, आवरणपूजन तथा पुरश्चरण) शारदातिलक (३३वें पटल) में द्रष्टव्य है।

एता विद्यागणाः सर्वाः पूजयेत् साधकोत्तमः।
बृहच्छ्रीक्रमतन्त्रस्य मतमेतदुदीरितम्।।५२।।

बुद्धिमान् साधक को इन सब विद्याओं की पूजा करनी चाहिए। यह विधान 'बृहत्-श्रीक्रम तन्त्र' के अनुसार है।।५२।।

[महायन्त्रधारणकथनम्]

अथोच्यते महायन्त्रविशेषधारणं परम्।
शुभेऽह्नि स्नानमाचर्य शुभे लग्ने शुभे क्षणे।।५३।।
सिद्धियोगे महापर्वे पूजां कृत्वा लिखेदिदम्।

धारण-यन्त्र—प्राण-प्रतिष्ठा-विधान के संक्षिप्त निरूपण के बाद अब 'श्रीविद्या-धारण' यन्त्र का विधान बताया जा रहा है। यह 'धारण-यन्त्र' किसी महापर्व पर सिद्ध योग में, शुभ दिन में, शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त में भगवती का यथाविधान अर्चन करने के बाद बनाया जाय।।५३।।

[मन्त्रलिखनद्रव्योद्देशः]

कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयम्भूकुसुमं तथा।।५४।।
रोचना कुङ्कुमं क्षौद्रं कर्पूरं चन्दनं मदम्।
एतद्द्रव्येण विलिखेच्चक्रराजं मनोहरम्।।५५।।

लेखन-द्रव्य—यह यन्त्र कुण्डगोलोद्भव द्रव्य, स्वयम्भू पुष्प, रोचना, कुंकुम, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, कपूर तथा मद को मिलाकर बनाये गये द्रव्य से लिखा जाता है। कलम सोने की होती है। मतवाले हाथी के गण्डस्थल से टपकने वाले द्रव को मद कहते हैं।।५४-५५।।

[लिखनप्रकारः]

त्रिकोणान्तर्गतां मायां विलिखेत् साधकोत्तमः।
रेफहकारयोर्मध्ये देवानामाभिमुख्यदम्।।५६।।
साध्यनाम द्वितीयान्तं तस्योद्ध्र्वे विलिखेन्मनुम्।
तत्रैव मातृकां सर्वां विलिखेत् क्रमवाह्यतः।।५७।।

लेखन-विधि—उपर्युक्त द्रव से भोजपत्र पर सोने की कलम से त्रिकोण बनायें। त्रिकोण के मध्य में 'ह्रीं' लिखें। रेफ और 'ह'कार के मध्य में देवी का नाम लिखकर उसके सम्मुख साध्य व्यक्ति का द्वितीयान्त नाम (यथा—देवदत्तम्) लिखें। उसके ऊपर मन्त्र लिखकर चक्र को मातृकावर्णावली से वेष्टित कर दें।।५६-५७।।

[यन्त्रशोधनप्रकारः]

पञ्चगव्यामृतेनैव मूलेन परिषेचयेत्।
ततः प्रतिष्ठितप्राणां विद्यामष्टोत्तरं शतम्।।५८।।

तत् स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मन्त्री देवीध्यानपरायणः।

तत्पश्चात् इस यन्त्र पर पञ्चामृत का सिंचन करें। प्राण-प्रतिष्ठा करके देवी का ध्यान करें। तत्पश्चात् देवी का पूजन करके यन्त्र का स्पर्श करते हुए मन्त्र (इष्ट मन्त्र) का अष्टोत्तर शत जप करें॥५८॥

[धारणप्रकार:]

हेम्नो मध्यगतं कृत्वा रजतस्यापि वा पुनः।।५९।।
करे कृत्वा लभेद्वश्यं हृदये स्त्री सुवल्लभे।
कण्ठे धनं लभेद् भाले स्तम्भनं जृम्भणं भवेत्।।६०।।
शिखायां मोक्षमाप्नोति तस्माद् यत्नेन धारयेत्।
धारणीयं प्रयत्नेन गोपनीयं पुनः पुनः।।६१।।

इस यन्त्र को सोने या चाँदी की ताबीज में भरकर धारण करें। अलग-अलग अंगों में धारण करने का अलग-अलग फल है। भुजा में धारण करने से सारा संसार वशीभूत होता है। हृदय पर धारण करने से स्त्रियों का प्रिय हो जाता है। कण्ठ (गले) में धारण करने से धन-लाभ, कपाल (भाल) पर धारण करने से स्तम्भन और जृम्भण होता है। शिखा में धारण करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है। अत: इस मन्त्र को सावधानीपूर्वक सोच-समझकर धारण करना चाहिए॥६०-६१॥

[मन्त्रदाने पात्रापात्रोल्लेख:]

असत्याय न दातव्यं पुत्रशिष्याय चैव हि।
भक्तियुक्ताय शिष्याय सुपुत्राय प्रकाशयेत्।।६२।।
पशुभ्यो बान्धवेभ्योऽपि न कदाचित् प्रकाशयेत्।

इस यन्त्र का ज्ञान भक्तियुक्त एवं सत्पात्र शिष्य और पुत्र को ही दिया जाना चाहिए। असत्यवादी एवं विश्वासरहित पुत्र एवं शिष्य तथा पशुभाव वाले बान्धवों को यह यन्त्र नहीं बताया जाय॥६२॥

[अपात्रे मन्त्रदानफलम्]

कृते तु अशुभं तस्य मन्त्रा यान्ति पराङ्मुखाः।।६३।।
दुःखञ्च वर्द्धते नित्यं तस्माद् यत्नेन वर्जयेत्।

अपात्र व्यक्ति को इस यन्त्र का ज्ञान देने से अशुभ होता है। मन्त्र विपरीत फल देने लगता है तथा दिन-प्रतिदिन दु:ख बढ़ता जाता है। अत: बहुत सोच-समझकर ही उसका प्रकाशन करना चाहिये॥६३॥

[गोरोचनादिना चक्रलिखनफलम्]

गोरोचनादिभिर्मन्त्री चक्रराजं समालिखेत्।।६४।।
अतीव सुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां वराम्।
ज्वलन्तीं सामसहितां कामस्त्रजविदर्भिताम्।।६५।।

श्रीविद्या धारण-यन्त्र के निर्माण की विधि और प्रयोग बताने के बाद गोरोचन आदि द्रव्यों से श्रीयन्त्र बनाकर वशीकरण एवं आकर्षण आदि प्रयोग बताये जा रहे हैं।

मन्त्रसिद्ध साधक गोरोचन आदि आकर्षणकर द्रव्यों से श्रीचक्र बनाकर उसके मध्य में गोरोचन आदि द्रव्यों से ही अभीष्ट सुन्दरी का चित्र बनाकर उसका नाम लिखे। उसके नाम को कामराज कूट (क्लीं) से विदर्भित करे॥६४-६५॥

[चिन्ताविशेषे फलविशेषः]

चिन्तयेत् साधकेन्द्रोऽपि जनानाञ्च सहस्रशः।
अदृष्टपूर्वा युवती श्रुतमाशु सुदुर्लभा।।६६।।
राजकन्याऽथ चार्वङ्गी भयलज्जाविवर्जिता।
आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती ध्रुवम्।।६७।।

इस चित्र में अभीप्सित सुन्दरी का ध्यान करते हुए साधक मन्त्र-जप करे। इस प्रयोग के फलस्वरूप वह अभीप्सित सुन्दरी, जिसके सौन्दर्य के बारे में साधक ने केवल सुना है; लेकिन न तो उसे देखा है और न जिससे पूर्व-परिचय है, भय और लज्जा का त्याग कर साधक की सेवा में आ जाती है॥६६-६७॥

विमर्श—यह प्रयोग ज्ञानार्णवतन्त्र (सत्रहवें पटल) में बताया गया है। ये श्लोक ज्ञानार्णवतन्त्र से अधोलिखित पाठभेद के साथ उद्धृत किये गये हैं—

सामसहितां—नामसहितां। कामराजविदर्भिताम्—महाबीजविदर्भिताम्। जनानाञ्च सहस्रशः—योजनानां सहस्रतः। श्रुतमाशु—श्रुतमात्राऽपि दुर्लभा।

चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेदथ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणन्तथा ।।६८।।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् साधकोत्तमः।
अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान्।।६९।।

यह दूसरा प्रयोग है। गोरोचन आदि द्रव्यों से श्रीचक्र की रचना करके यथाविधि मन्त्रसिद्ध साधक यन्त्र के मध्य में बैठ जाय और यह भावना करे कि वह उदीयमान सूर्य के समान अरुण वर्ण का हो गया है तथा अभीप्सित नारी भी उसके वर्ण से अरुणवर्णा हो गई है। यह भावना करते हुए मन्त्रजप करने से मन्त्रसिद्ध साधक स्वयं भी कामदेव के समान सुन्दर तथा सबका प्रियपात्र हो जाता है एवं सारा संसार भी उसके वश में आ जाता है॥६८-६९॥

[चक्रे नामलिखने फलविशेषः]

सर्वसौन्दर्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः।
सर्वैः पूजोपहारैस्तु मुद्रासहितविग्रहः।।७०।।
चक्रं सम्पूजयेद् यस्तु यस्य नाम विदर्भितम्।
स भवेद्दासवदाशु धनाढ्यो वाऽपि भूपतिः।।७१।।

गोरोचन आदि द्रव्यों से अंकित श्रीयन्त्र पर इन्हीं द्रव्यों से साध्य व्यक्ति का नाम मन्त्र से विदर्भित करके लिखने तथा यथाविहित मुद्रायें दिखाकर उस पर सभी रक्त उपचारों से भगवती का अर्चन करने से वह साध्य व्यक्ति, चाहे वह राजा हो अथवा अमीर, मन्त्रसिद्ध साधक का वशवर्ती हो जाता है।।७०-७१।।

चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यान्तु योजयेत्।
अदृष्टामपि मन्त्रज्ञो योनिमुद्रासमन्वितः।।७२।।

हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम्।
नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम्।।७३।।

विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यां रिपुस्त्रियम्।
मदनोद्भवसन्तापस्फुरज्जघनमण्डलाम् ।।७४।।

कामबाणप्रभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम्।

योनिमुद्रा धारण करके गोरोचन और द्रव्यों से श्रीयन्त्र पर जिस किसी भी अनदेखी स्त्री का नाम लिखकर उसका चिन्तन करते हुए मन्त्रजप करने से वह अदृष्ट स्त्री चाहे वह यक्षिणी हो, नागकन्या हो, राजकन्या हो, अप्सरा हो, विद्याधरी हो, सुरांगना हो, ऋषिकन्या हो, अथवा शत्रुपक्ष की गर्वीली महिला हो, जघन-मण्डल को सहलाती और आँखें मटकाती हुई मन्त्रसिद्ध साधक की सेवा में उपस्थित हो जाती है।।७२-७४।।

[चक्रे महाकलाध्यानफलम्]

महाकामकलाध्यानयोगादेव न संशयः।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः।।७५।।

गोरोचन आदि द्रव्यों से निर्मित श्रीयन्त्र पर महाकामकला का ध्यान करने से स्वर्ग, पृथ्वी और पाताललोक की सभी स्त्रियों के हृदय को क्षुब्ध और कामपीड़ित किया जा सकता है।।७५।।

[वशीकारितिलककथनम्]

रोचनाभागमेकन्तु भागमेकन्तु कुङ्कुमम्।
अथ भागद्वयं मन्त्री चन्दनं मर्दयेत् समम्।।७६।।

एकत्र तिलकं कुर्यात्त्रैलोक्यवशकारणम्।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत्।।७७।।

राजानं नगरं ग्रामं येन यद् यत् प्रदृश्यते।
मन्त्रिणा साधकेन्द्रेण तत् सर्वं तस्य वश्यगम्।।७८।।

वशीकरण तिलक—रोचना एक भाग, कुंकुम एक भाग तथा चन्दन दो भाग लेकर मन्त्रसिद्ध साधक तिलकद्रव्य तैयार करे। तीनों लोकों को वश में करने वाला यह अद्भुत तिलक है। इस तिलकद्रव्य को अपने सिद्ध मन्त्र का अष्टोत्तर शत (१०८) जप करके अभिमन्त्रित करके ललाट पर लगाने से सारे संसार को वश में किया जा सकता है। इस तिलक को देखने-मात्र से नगर और ग्राम के सभी नागरिक तथा राजा आदि साधक के वश में आ जाते हैं॥७६-७८॥

[वशीकरणार्थं ताम्बूलाद्यभिमन्त्रणम्]

ताम्बूलं धूपमुदकं पलं पुष्पं फलं दधि।
दुग्धं घृतं दन्तपत्रं वस्त्रं कर्पूरमेव च॥७९॥
कस्तूरीं घुसृणञ्चैलां लवङ्गं जातिपत्रकम्।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्मै कस्मै प्रयच्छति॥८०॥
स वश्यो जायते नूनं नात्र कार्या विचारणा।
स्त्रियश्च सकला वश्या दासीभूता भवन्ति हि॥८१॥
हठाकर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत्।

मन्त्रसिद्ध साधक पुरश्चरण से सिद्ध मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पान, धूप, पानी, पात्र, पुष्प, दूध, दही, घी, वस्त्र, कपूर, कस्तूरी, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, इलायची, लौंग, जायफल आदि कोई भी वस्तु जिस किसी को देगा, वह व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, साधक का वशवर्ती हो जायगा। मन्त्र का १०८ बार जप करके देय वस्तु को फूँकने से वह वस्तु अभिमन्त्रित हो जाती है। इस अभिमन्त्रित वस्तु का सेवन करने से हठीली, गर्विणी, रूपसी का मान भंग हो जाता है और वह मन्त्रसिद्ध साधक की दासी बन जाती है॥७९-८१॥

[योषिदाकर्षणप्रकारः]

रहस्यस्थानके मन्त्री लिखेद्रोचनया भुवि॥८२॥
चारुशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्।
प्रतिमां सुन्दरीं प्रीतां विलिख्य सुमनोहराम्॥८३॥
तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम्।
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तविदर्भिताम्॥८४॥
सर्वसन्धिषु देहस्य मदनाक्षरमालिखेत्।
स्फुरद्दाडिमपुष्पाभं चिन्तयेद्देहसन्धिषु॥८५॥

स्त्री-वशीकरण—किसी मनोरम और एकान्त स्थान में मन्त्रसिद्ध साधक सुन्दर, सपाट और स्वच्छ-पवित्र भूमि पर रोचना से सर्वशृङ्गारमयी एवं सर्वाभरण-

भूषिता स्त्री का आकर्षक और नयनाभिराम चित्र बनाये। उस चित्र के भाल (ललाट), गला, हृदय, नाभि तथा जन्म-मण्डल पर महाविद्या (सिद्ध मन्त्र) के एक-एक अक्षर तथा अंकुश-बीज (क्रों) से विदर्भित करके उसका जन्मनाम लिखें। उसके शरीर की सभी सन्धियों में मदनाक्षर अर्थात् 'क्लीं' लिखे और यह भावना करे कि अनार के फूल के समान अरुण वर्ण का कामबीज उसके शरीर की सन्धियों में लीन होकर उसके समस्त शरीर में व्याप्त हो गया है॥८२-८५॥

तदाशाभिमुखो भूत्वा स्वयं देवीस्वरूपधृक्।
मुद्रान्तु क्षोभणीं बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत्॥८६॥
नियोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यकलात्मके।
ततो विकलचार्वङ्गीं मारबाणप्रपीडिताम्॥८७॥
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतादपि॥८८॥

इसके बाद देवी का रूप धारण करके अर्थात् स्वयं में देवी-स्वरूप की भावना करके मन्त्रसिद्ध साधक क्षोभिणी मुद्रा बाँधकर उस चित्र की ओर मुँह करके अपने सिद्ध मन्त्र का १०८ बार जप करे। मन्त्र-जप करते हुए यह भावना करे कि इस प्रयोग के फलस्वरूप साध्य स्त्री कामपीड़ित और विह्वल हो गई है। उसे इस तरह विकल समझते हुए उसके चन्द्र-सूर्यकलात्मक 'मदनागार' से स्वयं की योजित करने की भावना करे। इस प्रयोग से मन्त्र-सिद्ध साधक सैकड़ों योजन दूर रहने वाली रमणी को भी आकृष्ट कर सकता है॥८६-८८॥

[अवध्यत्वोपायकथनम्]

मातृकां विलिखेच्चक्रे बाह्यतः सकलां बुधः।
भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽपि ताम्रजे।
सोऽवध्यः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः॥८९॥

रक्षाकर प्रयोग—भोजपत्र पर अथवा सोने, चाँदी या ताँबे के पत्र पर श्रीयन्त्र बनाकर उसे चारो ओर से मातृकाओं से वेष्टित करके धारण करे। इस यन्त्र को धारण करने से मन्त्रसिद्ध साधक सभी जन्तुओं के लिये; विशेषकर व्याघ्र आदि के लिये अवध्य हो जाता है अर्थात् ये जानवर उस पर हमला नहीं करते॥८९॥

[राजवल्लभतोपाय:]

तथैव मारसंयुक्तां ससंज्ञां चक्रमण्डिताम्।
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैश्च राजवल्लभतां व्रजेत्॥९०॥

इसी प्रकार भोजपत्र पर कपूर और कुंकुम से श्रीयन्त्र बनाकर उसको कामबीज (क्लीं) से वेष्टित करने से मन्त्रसिद्ध साधक को राजवल्लभता की प्राप्ति होती है॥९०॥

विमर्श—राजवल्लभतां—अजरामरतां।

[वशीकरणप्रकारः]

अनेन विधिना शुद्धो रोचनागुरुकुङ्कुमैः।
विलिखेच्चक्रराजेन साध्यनाम च मन्त्रवित्।।९१।।
विदर्भितं स्वनाम्ना तु यस्मिन् कस्मिन्नुपस्थितम्।
स्थावरं जङ्गमं वापि सकलं जनमण्डलम्।।९२।।
वशीकुर्यात् साधकेन्द्रो नूनमेव न संशयः।

सर्वजन-वशीकरण—इसी प्रकार रोचना, अगरु और कुंकुम से अपने नाम से साध्य नाम को विदर्भित करके चक्रयोग से लिखकर जिस-किसी भी स्थान में स्थापित कर देने से उस स्थान के सभी निवासी—यहाँ तक कि स्थावर-जंगम भी साधक के वशवर्ती हो जाते हैं और साधक सर्वजनप्रिय हो जाता है॥९१-९२॥

[त्रैलोक्यवशीकरणोपायः]

महात्रिपुरसुन्दर्याः कामकोटिकला स्मृताः।।९३।।
एवमेवमवष्टभ्य साध्यनामाक्षराणि तु।
धनमप्यर्थने बाणैर्मातृकायाः प्रवेष्टये।।९४।।
हेममध्यगतं कुर्याच्छिखायां वामके भुजे।
धारयेद् यत्र कुत्रापि त्रैलोक्यवशकारणम्।
राजेन्द्रवृन्दसकलं दासभूतं करोति च।।९५।।
राजानो वाजिनः सर्पा महादुष्टा महोत्कटाः।
व्याघ्राः केशरिणो मत्ता वश्यास्तस्य भवन्ति हि।।९६।।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के (पञ्चदशाक्षरी) मन्त्र के कामकूट (यथा—हसकहलह्रीं) के एक-एक अक्षर से साध्यनाम के प्रत्येक अक्षर को घेरकर चक्रक्रम अर्थात् गोलाकार लिखें। फिर इसे सम्पूर्ण मातृकामाला से वेष्टित कर दें। भोजपत्र पर लिखे इस यन्त्र की यथाविधि प्राण-प्रतिष्ठा तथा पूजा करके उसे सोने की ताबीज में भरकर 'यत्र कुत्रापि' अर्थात् शरीर के किसी भी अंग अर्थात् भुजा, हृदय, शिखा आदि में धारण करें। इस प्रयोग से साध्य राज्य या क्षेत्र के सभी प्राणी अर्थात् राजा-रानी, राज्यकर्मचारी, सामान्य प्रजाजन ही नहीं; अपितु अड़ियल घोड़े, मदमस्त हाथी, सिंह, बाघ और सर्प आदि भी मन्त्र-सिद्ध साधक के वश में आ जाते हैं॥९३-९६॥

[महाक्षोभकरणम्]

पूर्वक्रमेण नगरनामसौन्दर्यमन्त्रवित्।
मध्ये चतुष्पथे वापि चतुर्दिक्षु निधापयेत्।।९७।।

महाक्षोभो योषिताञ्च जनानां महतामपि।
तथैव सर्वजन्तूनां पुरस्थानञ्च जायते।।९८।।

इसी तरह किसी नगर के नाम को कामराज कूट के प्रत्येक वर्ण के साथ सम्पुटित करके भोजपत्र या हेमपत्र पर लिखें तथा यथाविधि उसकी पूजा आदि करके नगर के मुख्य चौराहे पर अथवा चारो दिशाओं में जमीन में दबा दें तो उस नगर में रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े साधु और दुष्ट जन मन्त्र-सिद्ध साधक के आकर्षण से विक्षुब्ध हो जाते हैं।।९७-९८।।

[कामतुल्यत्वप्राप्त्युपायः]

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्।
ज्वलन्तीं सर्वराजेन्द्रमण्डितां सागराम्बराम्।।९९।।
मासमेकं चिन्तयेयुः साक्षात्कामसमो भवेत्।
दृष्ट्याऽऽकर्षयते मन्त्री त्रैलोक्यं सचराचरम्।।१००।।

जो मन्त्र-सिद्ध साधक सभी पर्वतों, वनों, गह्वरों सहित सागराम्बरा तथा राजेन्द्रमण्डिता पृथ्वी का चक्र-मध्य में निरन्तर एक महीने तक (ज्ञानार्णव के अनुसार छः महीने तक) ध्यान करता है, वह कामदेव के समान कमनीय एवं सुन्दर हो जाता है। उसके दृष्टि-निक्षेपमात्र से सारा चराचर जगत् उसके प्रति आकर्षित हो जाता है।।९९-१००।।

[दृष्टिमात्रेण विषादिनाशक्षमताप्राप्तिः]

दृष्ट्या विषं नाशयते तत्क्षणान्नात्र संशयः।
भूतप्रेतपिशाचांश्च ज्वरांश्चातुर्थिकादिकान्।।१०१।।
शूलगुल्माक्षिरोगांश्च दृष्ट्या नाशयते क्षणात्।

दृष्टि का प्रभाव—ऐसे मन्त्र-सिद्ध साधक की दृष्टि (नजर) अमृतमयी हो जाती है। उसकी दृष्टि पड़ते ही विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। भूत-प्रेत-पिशाच भाग जाते हैं। अँतरी, तिजारी और चौथिया आदि ज्वर समाप्त हो जाते हैं। शूल, गुल्म तथा आँखों के रोग समाप्त हो जाते हैं।।१०१।।

विमर्श—अँतरी, तिजारी और चौथिया आदि ज्वर के भेद हैं। एक दिन के अन्तर से आने वाले बुखार को अँतरी, दो दिन के बाद तीसरे दिन आने वाले ज्वर के तिजारी और हर चौथे दिन आने वाले को चौथिया (चतुरह्निक) ज्वर कहते हैं। आयुर्वेद और तन्त्र-ग्रन्थों में इनका निरूपण है तथा इन्हें अत्यन्त कष्टसाध्य रोग समझा जाता था।

[श्रीसमाकर्षणसामर्थ्यप्राप्तिः]

एतत् सिन्दूरसुभगं रात्रौ सम्पूजयेद् यदि।।१०२।।
योजनानां शतादेव सम्यगाकर्षयेच्छ्रियम्।

रात के समय सिन्दूर से श्रीचक्र का अर्चन करने से सैकड़ों योजन दूर रहने वाली स्त्री का भी आकर्षण किया जा सकता है॥१०२॥

इस प्रयोग के अन्तर्गत रात्रि के समय श्रीयन्त्र का यथावैभव अर्चन करके साध्य स्त्री और उसके निवास नगर / ग्राम का उल्लेख करते हुए विनियोगपूर्वक अष्टोत्तर शतनाम से भगवती का सिन्दूर से एक मण्डल-पर्यन्त अर्चन किया जाता है।

[दिग्विदिक्स्थजनवशीकारः]

यदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं सम्यग् देवीं प्रपूजयेत्।।१०३।।
तत्र दिक्षु स्थितान् लोकान् विदिक्षुस्थान् जनानपि।
वशमानयते शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवान्।।१०४।।

इसी प्रकार एक मण्डल-पर्यन्त (मण्डल अर्थात् ४९ दिन) चारो दिशाओं और विदिशाओं में श्रीचक्र पर देवी का सम्यक् रूप से पूजन करने से आस-पास के क्षेत्र में चारो दिशाओं तथा विदिशाओं में रहने वाले व्यक्ति अपने परिवारसहित मन्त्र-सिद्ध साधक के वश में आ जाते हैं॥१०३-१०४॥

[त्रैलोक्यवशीकरणम्]

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनाऽगुरुकुङ्कुमैः।
तन्मध्ये नगरं देशं मण्डलं खण्डमेव वा।।१०५।।
नाम्ना विदर्भितं सम्यक् पूजयित्वा यथाविधि।
भूमिमध्यगतं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्।।१०६।।

भोजपत्र पर रोचना, अगरु, कुंकुम से श्रीयन्त्र बनायें। उसके मध्य में नगर, देश अथवा मण्डल के नाम को अपने नाम से विदर्भित करके लिखें। यथाविधि पूजन करके उक्त यन्त्र को जमीन खोदकर उसमें दबा दें। इससे तीनों लोक वश में हो जाते हैं। यहाँ तीनों लोक से तात्पर्य उस नगर या देश से है॥१०५-१०६॥

[कण्ठादौ धारणे फलविशेषः]

अथवा धारयेत् कण्ठे शिखायां बाहुमूलके।
यत्र कुत्र स्थितो मन्त्री क्षोभयेन्नगरं महत्।।१०७।।

अथवा उस सुपूजित यन्त्र को जमीन में गाड़ने के बजाय सोने आदि की ताबीज में भरकर गले में, शिखा में अथवा भुजा में धारण करने से मन्त्रसिद्ध साधक चाहे जहाँ रहे, उस नगर या क्षेत्र में क्षोभ उत्पन्न कर सकता है॥१०७॥

विमर्श—यद्यपि इन प्रयोगों की अवधि का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, मगर सामान्य नियम यह है कि ये प्रयोग एक मण्डल (४९ दिन) तक किये जायँ।

[अर्कक्षीरादिभिश्चक्रलिखनफलम्]

अर्कक्षीरेण संयुक्तं धुस्तूरकरसं तथा।
रोचना कुङ्कुमञ्चैव लाक्षाकस्तूरीरक्तकम्।।१०८।।

एभिर्लिखेच्चक्रमेतद् यस्य नाम्ना च साधकः।
तस्य व्याघ्रभयव्याधिरिपुसर्गगजादिकम्।।१०९।।

चौरग्रहजनाविष्टडाकिनीशाकिनीभवम् ।
भयं न विद्यते नूनं परमन्त्राभिचारकम्।।११०।।

सर्वरक्षाकर प्रयोग—मदार और धतूरे का रस, रोचना, अगरु, कुंकुम, लाक्षारस, अलक्तक (महावर), कस्तूरी तथा कपूर (चन्द्र) को समरस करके स्याही बनायें। इस द्रव्य से जिस व्यक्ति के नाम से श्रीयन्त्र बनाकर उसे धारण कराया जायगा, उस व्यक्ति को बाघ, हाथी, सर्प आदि हिंसक प्राणियों से, डाकिनी आदि दुष्ट योनियों से, चोर, जल एवं अन्य अरिष्टों से तथा शत्रु के द्वारा कराये गये मारण आदि अभिचारों से कोई भय नहीं होगा॥१०८-११०॥

[नित्यं चक्रधारणफलम्]

नित्यं सन्धारयेन्मन्त्री कालमृत्युं विनाशयेत्।

अपने लिये इसी प्रकार का यन्त्र बनाकर नित्य धारण करने से मन्त्र-सिद्ध साधक अकालमृत्यु को जीत लेता है।

त्रिकोणमध्यगां देवी त्रिकोणोभयमध्यगाम्।।१११।।

अधस्तान्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमान्विताम्।
निधापयेत् सप्तमाहे दासवत् किङ्करो भवेत्।।११२।।

दो त्रिकोणों के मध्यवर्ती त्रिकोण में इष्ट देवी का नाम लिखें। उसके नीचे अपने नाम-सहित साध्य व्यक्ति का नाम अगरु और कुंकुम से लिखकर एक सप्ताह तक विधिवत् पूजा करें। बाद में इसे भूमि में गाड़ दें। साध्य व्यक्ति शीघ्र ही दासवत् हो जायगा॥१११-११२॥

[सर्ववादिस्तम्भनम्]

पीतद्रव्यैः समालिख्य पीतद्रव्यैः समर्चयेत्।
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः।।११३।।

सहस्रवदनोऽप्येव मूको भवति तत्क्षणात्।
नाम्ना यस्य स वाग्मी तु पाषाण इव जायते।।११४।।

स्तम्भन-प्रयोग—पूर्वाभिमुख होकर पीत द्रव्यों से श्रीचक्र बनाकर पीत द्रव्यों से ही उसका पूजन करने से सभी प्रतिवादी (विरोधी) स्तम्भित हो जाते हैं। उनके विरोध का प्रतिरोध हो जाता है। वे न कुछ सोच पाते हैं और न कुछ बोल पाते हैं। सहस्र वदन शेषनाग के समान वक्ता की वाणी स्तम्भित हो जाती है। अच्छे से अच्छे वाचालों की बोलती बन्द हो जाती है।।११३-११४।।

[शत्रुमारणप्रकारः]

चक्रं विलिख्य मन्त्रज्ञो महानीररसेन तु।
नाम संयोज्य विधिवत् दक्षिणाभिमुखो बुधः।।११५।।
वह्नौ दग्ध्वा तु तच्चक्रं मारयेद् वैरिसङ्कुलम्।

मारण-प्रयोग—दक्षिणाभिमुख होकर महानीली के रस से श्रीचक्र अंकित करें। इस पर यथाविधि शत्रु का नाम संयोजित करें अर्थात् शत्रु का नाम लिखें। उसके बाद उस चक्र को आग में जला दें। इस प्रयोग से मन्त्र-सिद्ध साधक अपने शत्रुओं का संहार करे।।११५।।

[विद्वेषणकरणम्]

महिषाश्वपुरीषाभ्यां रसमाकृष्य मन्त्रवित्।।११६।।
गोमूत्रेण च संलिख्य नाम सन्दर्भ्य पूर्ववत्।
क्षिप्त्वा पलाशमध्यस्थं विद्वेषणकरं भवेत्।।११७।।

विद्वेषण-प्रयोग—भैंसा और घोड़े का पुरीष (मल) मिलाकर उन्हें निचोड़कर रस निकालें। फिर उसमें गोमूत्र डालकर स्याही बनायें। पूर्ववत् साध्य (शत्रु) का नाम विदर्भित करके लिखें और चक्र को आरनाल (कांजी) में डाल दें। यह विद्वेषणकर प्रयोग है।।११६-११७।।

[उच्चाटनकरणम्]

कृत्वा रोचनया द्रोणकाकपक्षस्य मध्यगम्।
लम्बमानं तथाकाशे शत्रूच्चाटनकारकम्।।११८।।

उच्चाटन-प्रयोग—कौवे के पंख पर साध्य के नामसहित श्रीचक्र लिखकर लटका देने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। यह श्रीचक्र रोचना से लिखा जाय।।११८।।

[सर्ववशीकरणम्]

महानीलीरोचनाभ्यां दुग्धक्षाररसादिभिः।
विलिख्य धारयेन्मन्त्री सर्ववर्णान् वशं नयेत्।।११९।।

सर्ववशीकरण—महानीली, रोचना, दूध और लाक्षारस से श्रीचक्र लिखकर धारण करने से सभी वर्णों के मनुष्यों का वशीकरण होता है॥११९॥

[प्रकारान्तरेण सर्ववशीकरणम्]

अनेनैव विधानेन स्थापयेद् वारिमध्यगम्।
तेनोदकेन सुस्नातः पीतं तत् सर्ववश्यकृत्।
सौभाग्यं जायते तेन पानीयेन न संशयः॥१२०॥

इसी विधि से श्रीचक्र अंकित करके उसे जल में डाल दें। उस जल को पीने और उसी से स्नान करने से सभी लोगों का वशीकरण होता है और सौभाग्य की प्राप्ति होती है॥१२०॥

[क्षोभणप्रकारः]

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नगरं वापि साधकः।
सप्ताहात् क्षोभयेत् सर्वं ज्वालामालां विचिन्तयेत्॥१२१॥

नगर-क्षोभण—किसी नगर अथवा क्षेत्र-विशेष का श्रीचक्र के मध्य में सात दिनों तक प्रज्ज्वलित रूप में ध्यान करने से वह नगर का क्षेत्र विक्षुब्ध हो उठता है॥१२१॥

[स्त्रीवशीकरणप्रकारः]

दशदण्डगते रात्रौ सरावे दाहवर्जिते।
सिन्दूरकुङ्कुमाभ्याञ्च चक्रराजं समालिखेत्॥१२२॥
साध्यप्रतिकृतिं कन्यां तन्मध्ये विलिखेद् बुधः।
तदूर्ध्वे मूलमन्त्रञ्च तद्बाह्ये मातृकां लिखेत्॥१२३॥
सावरणां स्वेष्टदेवीं तत्रैव परिपूजयेत्।

स्त्रीवशीकरण—यह अद्भुत प्रयोग रात के दस दण्ड अर्थात् चार घण्टे बीत जाने पर किया जाता है। दाहवर्जित सराव लें। दाहवर्जित सराव का अर्थ है—ऐसे सराव, जो आग में डालकर नहीं पकाये गये हों; अपितु जिन्हें धूप में सुखाकर बनाया गया हो। इस सराव में सिन्दूर और कुंकुम से श्रीचक्र बनाकर उसके मध्य में अभीप्सित कन्या का चित्र बनायें। उसके ऊपर मूल मन्त्र लिखकर उसे बाहर की ओर से मातृकाओं से वेष्टित कर दें। तत्पश्चात् उस यन्त्र पर अपनी इष्ट देवी का आवरणशक्तियों सहित यथाविधि अर्चन करें॥१२२-१२३॥

अष्टोत्तरशतं कुन्दं मूलं साध्यसमन्वितम्॥१२४॥
प्रत्येकक्षेपणाच्चैव हठात् कुण्डमिदं महत्।
चलज्जलेन्दुसदृशीं त्रिकोणामरुणारुणाम्॥१२५॥

प्रलयानलसङ्काशां साध्याया योनिमध्यतः।
ध्यायन् सहस्रं जप्त्वैव तामानयति निश्चितम्।।१२६।।

पूजा करने के बाद साध्य कन्या के नाम-सहित मूल मन्त्र का जप करके चक्र के अरुण वर्ण त्रिकोण में कुन्दपुष्प फेंकें। प्रत्येक बार कुन्दपुष्प फेंकने के बाद यह ध्यान करें कि ऐसा करने से साध्य कन्या की योनि जल में चन्द्रमा की तरह झिलमिला उठी है। इस तरह मूल मन्त्रजप की अष्टोत्तर शत आवृत्ति करें। इसके बाद यह ध्यान करते हुए कि साध्य कन्या की योनि से प्रलयकाल की अग्नि के समान लपटें उठ रही हैं, मूल मन्त्र का अष्टोत्तर सहस्र (१००८) जप करें। इस प्रयोग से साध्य कन्या बरबस खिंची चली आती है॥१२४-१२६॥

[स्त्रीवशीकरणे प्रकारान्तरम्]

उपविश्य च शय्यायां निर्ज्जने शून्यवेश्मनि।
यस्य नाम्ना स्वयं भुङ्क्ते ताम्बूलं निशि वा दिवा।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सायात्येव तदन्तिकम्।।१२७।।

किसी निर्जन स्थान में सूने घर में शय्या पर बैठ कर मूल मन्त्र का अष्टोत्तरशत (१०८) जप करके जिस स्त्री का नाम लेकर दिन या रात के समय ताम्बूल खाया जाता है, वह अवश्यमेव आती है॥१२७॥

[प्रकारान्तरेण स्त्रीवशीकरणम्]

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पानीयं प्राशयेदथ।
यस्याः प्राणैः कल्पयित्वा सायाति मदविह्वला।।१२८।।

जिस स्त्री का ध्यान करके मूल मन्त्र का १०८ बार जप करके पानी पिया जाता है, मद से विह्वल होकर वह स्त्री अवश्य आती है॥१२८॥

[दासीकरणप्रकारः]

चन्द्रचन्दनकस्तूरीरक्तसिन्दूरमिश्रितम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तिलकं कारयेद् यदि।
यं यं पश्यति तच्छीघ्रं स स दासो भवेद् ध्रुवम्।।१२९।।

कपूर, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, कस्तूरी और सिन्दूर को मिलाकर तिलक द्रव्य बनायें। मूल मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करके उस द्रव्य से तिलक लगायें। इस तिलक को लगाकर मन्त्र-सिद्ध साधक जिस-जिस व्यक्ति को देखेगा, वह व्यक्ति दास के समान उसका वशवर्ती हो जायगा॥१२९॥

[स्त्रीवशीकारे कल्पान्तरम्]

मधुसर्पिः समुन्मिश्र्य सिताकल्पितपुत्तलीम्।
साध्यप्राणैः कृतप्राणां जप्त्वा अष्टोत्तरं शतम्।।१३०।।

भानुवारं समासाद्य यः खादेत् सप्तरात्रकम्।
सा च याति विह्वलाङ्गी साधकस्यान्तिकं ध्रुवम्।।१३१।।

शहद, घी और शक्कर मिलाकर एक पुतली बनायें। उस पुतली में साध्य स्त्री की प्राणप्रतिष्ठा करें। मन्त्र का अष्टोत्तरशत (१०८) बार जप करें। रविवार से प्रारम्भ करके यह प्रयोग सात दिन तक करें और पुतली को बाद में स्वयं खा जायँ। इस प्रयोग के प्रभाव से साध्य स्त्री मदविह्वला होकर अवश्य आती है।।१३०-१३१।।

[सर्ववादिस्तम्भनम्]

पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पीतद्रव्यैः समर्चयेत्।
पीठस्थाने समालिख्य स्तम्भयेत् सर्ववादिनः।।१३२।।

स्तम्भन—पूर्वाभिमुख होकर पीले रंग के पीठ पर श्रीचक्र में भगवती का पीले द्रव्यों से अर्चन करने से प्रतिवादियों का स्तम्भन होता है।।१३२।।

[प्रकारान्तरेण सर्वलोकवशीकरणम्]

उत्तराभिमुखो भूत्वा सिन्दूररजसा लिखेत्।
सम्पूज्य विधिवद् विद्वान् सर्वलोकं वशं नयेत्।।१३३।।

लोकवशीकरण—उत्तराभिमुख होकर सिन्दूररज से श्रीचक्र बनाकर विधिवत् अर्चन करने से सभी लोगों का वशीकरण होता है।।१३३।।

[सर्वयोषिन्मनोहरणम्]

पश्चिमाभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत्।
सम्पूज्य विधिवद् विद्यां सर्वयोषिन्मनो हरेत्।।१३४।।
वल्लभो जायते मन्त्री दासीमिव वशं नयेत्।

स्त्री-आकर्षण—पश्चिमाभिमुख होकर चन्दन से श्रीचक्र अंकित करके विधिवत् पूजन करने से स्त्रियों का वशीकरण होता है।।१३४।।

[महाहानिकरणम्]

यमाशाभिमुखो भूत्वा चक्रं कृष्णं समर्च्चयेत्।।१३५।।
यस्य नाम्नान्वितं तत्र महाहानिः प्रजायते।

हानिकर प्रयोग—दक्षिण की ओर मुख करके श्रीचक्र पर श्रीकृष्ण की पूजा करने से उस व्यक्ति की महाहानि होती है, जिसका नाम उक्त यन्त्र पर लिखा गया है।।१३५।।

'ज्ञानार्णवतन्त्र' और 'नित्याषोडशिकार्णव' में उक्त श्लोक में महाहानि के स्थान पर 'मन्त्रहानि' पद है। इस स्थिति में इसका अर्थ होगा—'उस व्यक्ति के मन्त्र की हानि' होगी अर्थात् उसकी मन्त्रसाधना सफल नहीं होगी। 'कृष्ण' का दूसरा अर्थ—'काले रंग का चक्र' भी हो सकता है।

[स्तम्भविद्वेषणादिप्रकारः]

अग्नि-राक्षस-वायव्य-शम्भु-कोणेषु योजितम्।।१३६।।
पूर्ववत् साधकश्रेष्ठः क्रमेणैव नियोजितम्।
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकं भवेत्।।१३७।।

अग्निकोण, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोण की ओर मुख करके पूर्वोक्त विधि से श्रीचक्र का अर्चन करने से क्रमशः शत्रुओं का स्तम्भन, विद्वेषण, व्याधि और उच्चाटन होता है॥१३६-१३७॥

[सर्ववशीकरणम्]

रोचनाभिर्लिखेच्चक्रं क्षीरमध्ये क्षिपेद् बुधः।
सर्ववश्यकरञ्चैव भवत्येव न संशयः।।१३८।।

गोरोचन से श्रीयन्त्र लिखकर पूजोपरान्त उसे दूध में डालकर रख देने से सभी लोगों का वशीकरण होता है॥१३८॥

[शत्रोरुच्चाटनकरणम्]

गोमूत्रमध्यगं सम्यक् शत्रोरुच्चाटनं भवेत्।

श्रीयन्त्र को गोमूत्र में स्थापित किये ज़ाने से शत्रुओं का उच्चाटन होता है।

[विद्वेषणकरणम्]

तैलस्थं चक्रराजन्तु विद्वेषणकरं भवेत्।।१३९।।

तेल में श्रीचक्र को स्थापित करने से शत्रुओं में विद्वेषण होता है॥१३९॥

[शत्रुनाशकरणम्]

ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं शत्रुनाशकरं भवेत्।

यदि इसे जलती आग में डाल दिया जाय तो शत्रुओं का नाश हो जाता है।

[खेचरत्वसिद्धिः]

यदैकान्ते चतुर्मार्गे सिन्दूररजसा लिखेत्।।१४०।।
सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यञ्च साधकः।
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र संलिखेत्।।१४१।।
पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु।
साधकः खेचरश्चैव जायते नात्र संशयः।।१४२।।

खेचरत्व-सिद्धि—पक्षियों की तरह आकाश में उड़ने की सिद्धि को खेचरत्व सिद्धि कहते हैं।

किसी निर्जन क्षेत्र में चतुष्पथ के समीप स्वच्छ-समतल पवित्र भूमि पर सिन्दूर के चूर्ण से श्रीयन्त्र बनायें। उस यन्त्र पर बाहर से प्रारम्भ करके चक्र के मध्य तक

'अ'कारादि 'क्ष'कारान्त वर्णों को लिखें। रात्रि के समय पंच मकार द्रव्यों से कुलाचार-विधि से अर्चन करने से मन्त्रसिद्ध साधक को 'खेचरत्व-सिद्धि' प्राप्त होती है।।१४०-१४२।।

विमर्श—इस यन्त्र पर बाहर से प्रारम्भ कर मध्य तक अक्षरों को लिखने का क्रम इस प्रकार है—श्रीचक्र के मध्य बिन्दु को आधार मानकर उत्तर-दक्षिण तक तिर्यक् रेखा खीचें। भूपुर की प्रथम रेखा पर अणिमा-सिद्धि के पूजनस्थान पर एक बिन्दु बनायें। इस बिन्दु से ईशान और आग्नेय कोणों की ओर ऊर्ध्वगामिनी रेखायें खींचकर उन्हें उपर्युक्त तिर्यक् रेखा के दोनों सिरों को जोड़ दें। इस प्रकार जो त्रिकोण बनेगा, उसकी प्रत्येक रेखा पर 'अ क थ' त्रिकोण की तरह १६-१६ वर्ण लिखें। इस त्रिकोण के तीनों कोणों में 'ह ळ क्ष' ये तीन वर्ण लिखें।

[अजरामरत्वप्राप्तिः]

गिरावेकतरौ तद्वदर्च्चयेत् कुलमार्गतः।
अजरामरतां लब्ध्वा सुखी भवति मान्त्रिकः।।१४३।।

पर्वत की चोटी पर जो अकेला एकमात्र वृक्ष हो, उसके नीचे उपर्युक्त कुलाचार-क्रम से जो साधक श्रीयन्त्र का अर्चन करता है, उसे अमरता प्राप्त होती है। वह अजर-अमर हो जाता है।।१४३।।

[खड्गादि सर्वसिद्धिलाभः]

श्मशाने पूजयेच्चक्रं महाभूतदिने बुधः।
यथाविधिविधानेन साधकः स्थिरमानसः।।१४४।।
खड्गसिद्धिञ्च वेतालसिद्धिञ्च गुटिकाञ्जनम्।
पादुकाञ्जनसिद्धिञ्च मनःसिद्धिञ्च धातुजम्।।१४५।।
महावीरणसिद्धिञ्च यक्षिणीं चटकोद्भवाम्।
सर्वं तल्लभते मन्त्री नात्र कार्य्या विचारणा।।१४६।।

महाभूत दिन अर्थात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को बुद्धिमान साधक श्मशान में स्थिरचित्त होकर अर्थात् भय एवं आशंका से मुक्त होकर कुलाचार के क्रम से श्रीचक्र का अर्चन करे तो निस्सन्देह उसे खड्गसिद्धि, वेतालसिद्धि, गुटिकासिद्धि, अञ्जनसिद्धि, पादुकासिद्धि, मनःसिद्धि, महाविवरसिद्धि, यक्षिणी और चेटकसिद्धि प्राप्त होती है।।१४४-१४६।।

विमर्श—इस पूजन के लिये भौमवारयुक्त कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि सर्वाधिक प्रशस्त है। पादुकासिद्धि अर्थात् जल पर चलने की क्षमता। खड्गसिद्धि अर्थात् स्वयं को खण्ड-खण्ड काटकर पुनः यथावत् शरीर की प्राप्ति। गुटका-

सिद्धि—अदृश्य हो जाना। अंजनसिद्धि अर्थात् अबाधित रूप से सब-कुछ देखने की शक्ति। मन:सिद्धि अर्थात् मन का निग्रह। महाविवरसिद्धि अर्थात् पातालगमन की सिद्धि। धातुसिद्धि अर्थात् मनचाही बहुमूल्य धातुओं का निर्माण।

[सर्वपापनाशप्रकारः]

शिवां सम्पूजयेद्देवीं सुगन्धिकुसुमैः सुधीः।
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात् पापहा भवेत्।।१४७।।

सुगन्धित पुष्पों से भगवती शिवा की भक्तिपूर्वक पूजा करने से पापी से पापी व्यक्ति भी तत्क्षण ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१४७।।

शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथवाऽम्बुजैः ।
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः।।१४८।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ त्रयोविंशतितमः प्रकाशः।।२३।।

शमी, दूर्वाङ्कुर, पीपल, पलाश अथवा मदार की समिधा से नित्यप्रति हवन करने से मासमात्र में ही बड़ा से बड़ा पिछले सात जन्मों में किया गया पाप भी कट जाता है।।१४८।।

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के तेइसवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।२३।।

●

चतुर्विंशतितमः प्रकाशः

[देवतास्तवपाठनिर्णयः]

अथोच्यते देवतायाः स्तवपाठविनिर्णयः।

अब मैं देवता के स्तव आदि के पाठ की विधि का निरूपण कर रहा हूँ।

[पाठस्यावश्यकता]

न मानसं भवेत् स्तोत्रं वाचिकन्तु प्रशस्यते।।१।।

देवता के स्तव, स्तुति, शतनाम, सहस्रनाम आदि का मानस पाठ नहीं करना चाहिये। स्तुति और स्तव आदि का वाचिक पाठ ही प्रशस्त है॥१॥

[पाठनियमः]

अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूर्वकम्।
सर्वत्र पाठे विज्ञेयमन्यथा विफलं भवेत्।
शुद्धेनानन्यचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः।।२।।

देवता के स्तव आदि का पाठ शुद्ध चित्त और अनन्य भाव से ही किया जाय। पाठ के अन्त में 'ॐ इति' का उच्चारण अवश्य किया जाय, अन्यथा स्तव आदि के पाठ का फल नहीं मिलता॥२॥

[पुस्तकस्याधारस्थापननियमः]

आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत् सुधीः।

स्तव और स्तुति आदि की पुस्तक को किसी आधार पर रखकर ही स्तव आदि का पाठ करना चाहिये।

[हस्ते पुस्तकस्थापने दोषः]

हस्तसंस्थापनादेव यस्मादल्पफलं भवेत्।।३।।

पुस्तक को हाथ में रखकर पाठ करने से बहुत ही कम फल की प्राप्ति होती है॥३॥

[पुस्तकलेखकनिर्णयः]

न स्वयं लिखितं तच्च कृतिना लिखितं पठेत्।
अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत्।।४।।

अपने हाथ से लिखी पुस्तक का नहीं; अपितु किसी अन्य विद्वान् के द्वारा लिखी गई पुस्तक का पाठ करना चाहिए। यदि वह पुस्तक ब्राह्मणभिन्न किसी अन्य

के द्वारा लिखी गई है तो वह पाठ के लिये ग्राह्य नहीं है। तात्पर्य यह कि सदाचार-सम्पन्न विद्वान् ब्राह्मण के द्वारा लिखी गई पुस्तक का ही पाठ किया जाय॥४॥

[कलौ साधारणमनुष्यादिकृतस्तवपाठनिषेधः]

न च स्वयंकृतं स्तोत्रमन्येनापि कृतं न च।
यस्मात् कलौ न प्रशस्तमृषिभिर्भाषितं पठेत्॥५॥

बुद्धिमान् साधक को न तो स्वयं का लिखा हुआ और न ही किसी अन्य मनुष्य द्वारा रचित स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। कलियुग में केवल ऋषियों के द्वारा रचित स्तवों और स्तुतियों का पाठ ही प्रशस्त है॥५॥

[ऋषिच्छन्दआदीनां पाठः कर्त्तव्यः]

ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः॥६॥

विचक्षण साधक यथाविधान ऋषि और छन्द आदि का न्यास करके ही स्तुति-स्तव आदि का पाठ करे। तात्पर्य यह कि स्तव आदि के पाठ में ऋषि-न्यास अनिवार्य है॥६॥

[प्रथमं सहस्रनामपाठः]

यस्य यस्य च देवस्य तस्य तस्य सहस्रकम्।
पठित्वा प्रथमं मन्त्री तस्य स्तोत्रं ततः पठेत्॥७॥
संहिताजपने स्तोत्रं शुभं प्राप्य समापयेत्।

इस सम्बन्ध में विशेष बात यह कि यदि इष्टदेवता का सहस्रनाम उपलब्ध है तो पहिले उसका पाठ करके उसके स्तोत्र का पाठ किया जाय। यह व्यवस्था संहिताक्रम से पाठ के लिये है॥७॥

[अध्यायमध्ये पाठविरामो च कर्त्तव्यः]

अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन।
कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादिं पुनर्जपेत्॥८॥

उत्तम पक्ष तो यह है कि स्तव आदि का पाठ बीच में रुके बिना समग्र रूप से पूरा किया जाय। फिर भी यदि बीच में विराम लेने की विवशता आ जाय तो अध्याय के बीच में विराम नहीं लिया जाय। तात्पर्य यह कि अध्याय पूरा हो जाने पर विराम लें। फिर भी यदि अध्याय के बीच में ही विराम लेने की विवशता हो तो विराम के पश्चात् उस अध्याय के प्रारम्भ से ही दुबारा पाठ शुद्ध किया जाय॥८॥

विमर्श—सामान्य नियम यह है कि पाठ के मध्य में देवता से अनुमति लेकर विराम किया जाय। विराम के बाद पुनः अनुमति लेकर एवं अंगन्यास, करन्यास आदि करके पुनः पाठ प्रारम्भ करें।

[बलिदानविधिकथनम्]

अथातो बलिदानस्य विधानमत्र वक्ष्यते।
चमरः कृष्णसारश्च मत्स्यो मेषश्च शूकरः।।९।।
महिषो वानरः खड्गो बलिर्मेषादितो भवेत्।
कृष्णच्छागद्वयं दद्यात् पश्चाद्द्यान्महाबलिम्।।१०।।

बलिदान-विधि—चमर, काला मृग, मत्स्य, मेष (भेंड़ा), शूकर, महिष, वानर और गेंडा बलि के लिये प्रशस्त पशु हैं। काले रंग के दो बकरों की बलि देने के बाद महाबलि दी जानी चाहिए॥९-१०॥

[छागलस्य षड्विधत्वकथनम्]

श्वेतः कृष्णो लोहितश्च कपिलश्चित्रपाण्डरौ।
षड्विधश्छागलः प्रोक्तो गृहस्थानां परो बलिः।।११।।

सामान्य गृहस्थ द्वारा श्वेत, कृष्ण, लोहित, कपिल (भूरा), चित्र (चितकबरा) और पाण्डर (श्वेत धवल) रंग के छः प्रकार के छाग बलि के लिये प्रशस्त हैं॥११॥

[बलीनामुत्तममध्यमाधमत्वकथनम्]

उत्तमौ श्वेतकृष्णौ च मध्यमौ चित्रपाण्डरौ।
लोहितः कपिलश्चैव कनिष्ठः परिकीर्तितः।।१२।।

इनमें से सफेद और काले रंग के बकरों की बलि उत्तम, चितकबरे और पाण्डर वर्ण के बकरों की बलि मध्यम तथा लाल और भूरे रंग के बकरों की बलि अधम कोटि की होती है॥१२॥

त्रिमासात् परतश्चैव यावदेकन्तु वत्सरम्।
कृष्णो वा श्वेततरुणः प्रशस्तो बलरुच्यते।।१३।।
षण्मासात् परतश्चैव यावद् वर्षद्वयं भवेत्।
उत्तमोऽसौ बलिः प्रोक्तस्तस्माद्धीनोऽधमः स्मृतः।।१४।।

तीन माह से एक वर्ष तक की आयु के सफेद और काले रंग के बकरे बलि के लिये प्रशस्त हैं। छः मास से अधिक तथा दो वर्ष तक की आयु के बकरों की बलि उत्तम है। इससे कम या अधिक आयु के बकरों की बलि अधम मानी जाती है॥१३-१४॥

[त्याज्यबलिः]

कृष्णवर्णो बलिर्यस्तु श्वेतपुच्छो यदा भवेत्।
छागलं तादृशं विद्वान् दूरतः परिवर्जयेत्।।१५।।
एवं सिते कृष्णपुच्छे वर्जयेन्मतिमान् नरः।।१६।।
आकृष्णवर्णो यश्छागः पृष्ठवंशे सितो यदि।
प्रशस्तं तं विजानीयाद् विपरीतन्तु वर्जयेत्।।१७।।

बकरे का रंग काला और पूँछ सफेद हो तो वह बलि के लिये सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार काले रंग की पूँछ वाले सफेद बकरा भी त्याज्य है। बकरे के सामने का वर्ण काला और पीछे (पीठ) का रंग सफेद हो तो वह ग्राह्य है; लेकिन यदि मुँह की ओर सफेद और पीठ का रंग काला हो तो वह ग्राह्य नहीं है॥१५-१७॥

[खञ्जादीनां बलौ त्याज्यता]

खञ्जं काणं तथा कुब्जं सच्छिद्रं व्याधिसंयुतम्।
विषाणदन्तरहितं वर्जयेत्तु विचक्षणः।।१८।।

बलि के लिये लंगड़ा, काना, कुबड़ा, रोगग्रस्त, घाव वाला तथा ऐसा पशु, जिसके दाँत और सींग टूट गये हों, प्रशस्त नहीं है॥१८॥

[महिषबलिः]

पञ्चाब्दं माहिषं श्वेतं प्रशस्तं परकीर्त्तितम्।
स एव महिषः कृष्णः पाण्डरश्चाधमो बलिः।।१९।।

महिष-बलि—पाँच साल का सफेद रंग का महिष बलि के लिये प्रशस्त है। काले अथवा पाण्डर वर्ण का भैंसा अधम है॥१९॥

[बलिषु पक्षिणां प्रशस्तता]

पक्षिणस्तु प्रशस्ताः स्युः सर्वे वर्णाः सुशोभनाः।
त्रिपक्षात् परतश्चैव हीने चापि विवर्जयेत्।।२०।।

सभी रंग के सुन्दर बक्षी बलि के लिये प्रशस्त है॥२०॥

[बलिविशेषेण देवतातृप्तिकालकथनम्]

मनुष्यैः कोटिवर्षाणि तृप्तिं गच्छन्ति देवताः।
गण्डैर्वर्षसहस्राणि महिषैः शरदां शतम्।।२१।।
छगलैर्वत्सरादूर्द्ध्वं द्वादशाब्दं दशाब्दकम्।
पूर्णसांवत्सरैरेव त्रिवर्षं कच्छपेन तु।।२२।।
वराहेण तु पञ्चाशत्तदर्द्धं चामरेण तु।
अब्दैकं गोधिकाभिश्च षण्मासं गात्रशोणितम्।।२३।।
पायसेनापि षण्मासं तृप्तिं गच्छन्ति देवताः।।२४।।

इन श्लोकों में बताया गया है कि किस पशु की बलि से देवता को कितनी अवधि के लिये तृप्ति मिलती है। मनुष्य की बलि पाकर देवता एक करोड़ वर्षों तक तृप्त रहते हैं। गैंड़े की बलि से एक हजार वर्ष तक, भैंसे की बलि से सौ वर्षों तक, बकरे की बलि से बारह वर्षों तक, कछुवे की बलि से तीन वर्षों तक, वराह की बलि से पचास वर्षों तक, चमर की बलि से पच्चीस (२५) वर्षों तक, गोह की बलि से

एक वर्ष तक तथा गात्र-शोणित से छः माह तक देवता तृप्त रहते हैं। पायस (खीर) की बलि से देवता को छः माह तक तृप्ति रहती है॥२१-२४॥

[स्त्रीपशुबलिदाननिषेध:]

न दद्यात् स्त्रीपशोर्मांसं हव्यकव्ये विशेषतः।

कभी भी किसी भी देवता को किसी भी प्रकार की स्त्रीपशु (यथा—बकरी, मुर्गी आदि) की बलि नहीं दी जानी चाहिए। स्त्रीपशु की बलि सर्वथा निषिद्ध है।

[होमे मांसनिरूपणम्]

होमे बुक्काग्रजं मांसं सरोमञ्चार्द्धरात्रके।।२५।।
सिंहविल्वाकृतिञ्चैव वस्तु च पूगमेव च।
बुक्काग्रमांससमानं स्याल्लुलापस्य नरस्य च।।२६।।
तथा प्रमाणमात्रं स्यादजस्य वदनस्य च।
धातकीफलमानन्तु गोधिकाया इतीरितम्।।२७।।
एतदाममयस्यैव भर्जिते मानवर्जितम्।
हीनेन्द्रियपशोर्मांसं दूरतः परिवर्जयेत्।।२८।।

इन श्लोकों में होमकार्य के लिये ग्राह्य मांस और उनके प्रमाण (मात्रा) का निरूपण किया गया है। होम के लिये पुरुष के हृदय-क्षेत्र का मांस, बकरे और लुलाव (जंगली भैंसा) के मुख का मांस ग्राह्य है। हवन किया जाने वाला मांस बिल्वफल के समान गोल तथा वजन में सुपारी के समतुल्य होना चाहिये। गोधिका के मांस का प्रमाण आँवले के बराबर है। यह मान कच्चे मांस के लिये है। भूने हुए या पकाये हुए मांस के लिये कोई मान नहीं है। हीनेन्द्रिय अर्थात् जिसकी कोई ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय कट गई हो, उसका मांस होम के लिये सर्वथा त्याज्य है॥२५-२८॥

[मांसहोमे कालनियम:]

दिवा न जुहुयान्मांसं सन्ध्यायां सावसानके।
ब्राह्मये मुहूर्त्ते जुहुयादथवा सन्धिपर्वसु।।२९।।
एकेन च सहस्रं स्याद् द्विगुणं चार्द्धरात्रके।
ब्राह्मये मुहूर्त्ते द्विगुणं सन्ध्यायाञ्च चतुर्गुणम्।
पर्वसन्धौ शतगुणं तिथिसन्धौ शतोत्तरम्।।३०।।
काम्ये च जुहुयान्मांसं पुरश्चरणशेषकैः।
योन्यावटे शतगुणं स्थण्डिलेऽपि न चाचरेत्।।३१।।

हवन का समय—दिन के समय मांस से हवन करना सर्वथा वर्जित है। सन्ध्या के समय, ब्राह्ममुहूर्त में, सन्धिपर्व में तथा अर्धरात्रि में मांस से हवन करना

प्रशस्त है। अर्धरात्रि तथा ब्राह्म मुहूर्त में मांस-होम का दुगुना, सन्ध्याकाल में चार गुना, पर्वसन्धि में सौ गुना तथा तिथि-सन्धि में सौ गुना से भी अधिक फल होता है। काम्य कर्म तथा पुरश्चरण के अंगभूत हवन में मांस की आहुति योनिकुण्ड में डाली जाय। स्थण्डिल (वेदी) पर मांस से हवन करना प्रशस्त नहीं है॥२९-३१॥

[बल्युत्सर्गप्रकारः]

अथ सम्प्रोक्षणं कृत्वा बलिं समुत्सृजेद् बुधः।
स्वयं पूर्वमुखो भूत्वा बलिं कुर्यादुदङ्मुखम्।।३२।।
अथवैतद्व्यत्ययः स्यात् सिन्दूराद्यैरलङ्कृतम्।
अर्घ्यपात्रोदकैः शुद्धैर्मूलेन प्रोक्षयेत्त्रिशः।।३३।।

बलि उत्सर्ग-प्रकार—बुद्धिमान साधक सिन्दूर आदि से अलंकृत बलि (बकरे) के सिर पर अर्घ्यजल से तीन बार प्रोक्षण करे। इस समय साधक का मुँह पूर्व की ओर तथा पशु का मुँह उत्तर की ओर होना चाहिये। विकल्पतः बलि-पशु का मुँह पूर्व और साधक उत्तराभिमुख हो सकता है॥३२-३३॥

[पशुस्नापनमन्त्रः]

ॐ वाराही यमुना गङ्गा करतोया सरस्वती।
कावेरी चन्द्रभागा च सिन्धुभैरवसागराः।
अजस्नाने महेशानि सान्निध्यमिह कल्पय।।३४।।

बलिपशु का स्नान—बलिपशु के सिर का प्रोक्षण करने के बाद उसको स्नान करायें और यह भावना करें कि बलिपशु के स्नान के लिये यमुना, गंगा, करतोया, सरस्वती, चन्द्रभागा आदि पुण्यसलिला नदियाँ और समुद्र यहाँ आ गये हैं॥३४॥

ॐ पशुपाशविनाशाय हेमकूटस्थिताय च।
परापराय परमेष्ठिने हूंकाराय च मूर्त्तये।।३५।।
ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठददशाङ्गुलम्।।३६।।

यह पशु को स्नान कराने का मन्त्र है। इस मन्त्र से उसे स्नान कराना चाहिये॥३५-३६॥

बिल्वपत्रोदकैरेभिः प्रोक्षणं कारयेदपि।
त्रिशः सम्पूजयेत्तञ्च तत्रेष्टं गन्धचन्दनैः।।३७।।
ततो निरीक्ष्य तं मन्त्री पठेत् करपुटः स्वयम्।।३८।।

स्नान कराने के बाद उसके सिर पर बिल्वपत्र से अर्घ्यपात्र का जल छिड़कें। इसके बाद गन्ध-पुष्प-चन्दन आदि से उसके सिर पर पूजन करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रणाम-मन्त्र से उसे प्रणाम करें॥३७-३८॥

[बलिप्रणाममन्त्रः]

छाग त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम्।।३९।।
चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम्।
चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते।।४०।।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः।।४१।।

बलि-पशु को स्नान कराने के बाद ये उसे प्रणाम करने का मन्त्र है।।३९-४१।।

[बलिमूर्ध्नि मन्त्रजपः]

वाङ्मायाकमलाबीजैस्तन्मूर्ध्नि त्रिर्मनून् जपेत्।।४२।।
ततो बलिं समुत्सृज्य काम्यं कृत्वा विशालधीः।
आनीय खड्गं पुरतो गन्धादिभिः समर्च्चयेत्।।४३।।

काम्य कर्म से निवृत्त साधक बलि-पशु के सिर पर 'ऐं ह्रीं श्रीं' इस मन्त्र का तीन बार जप करके बलि-छेदन के लिये खड्ग को निकालकर गन्ध-पुष्प आदि से उसका पूजन करें।।४२-४३।।

[खड्गध्यानम्]

कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपिणम्।
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तगन्धानुलेपनम्।।४४।।
रक्ताम्बरधरञ्चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम्।
पिबमानञ्च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम्।।४५।।

खड्ग-ध्यान—यह खड्ग का ध्यान-मन्त्र है। ध्यान करने के बाद खड्ग की निम्न मन्त्रों से पूजा करें।।४४-४५।।

[खड्गपूजामन्त्रः]

इति ध्यात्वा यजेत् तञ्च मन्त्रेणानेन याजकः।
रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसादक।।४६।।
मायाद्वयं खड्गपदं कालि कालि पदन्ततः।
वज्रेश्वरी ततो लौहदण्डायै ङेऽन्तां नमःपदम्।।४७।।
कूर्च्चबीजं लिखेत् खड्गे सिन्दूरचन्दनादिना।
देव्या बीजं लिखेत्तत्र पूजयित्वा नमश्चरेत्।।४८।।
इति ध्यात्वा साधकस्तु नमस्कारं समाचरेत्।।४९।।

हे खड्ग! तुम चण्डिका के रसनास्वरूप और सुरलोक का प्रसाद देने वाले हो।

'मायाद्वन्द्वं (ह्रीं ह्रीं) खड्ग कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः' इस मन्त्र से खड्ग की पूजा करके उस पर सिन्दूर चन्दन आदि से कूर्चवीज लिखें। तत्पश्चात् उस पर देवी का बीजवर्ण लिखकर पूजा करके नमस्कार करें।।४६-४९।।

[खड्गनमस्कारमन्त्रः]

असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते।।५०।।

पूजा के बाद यह खड्ग को प्रणाम करने का मन्त्र है। इस मन्त्र से खड्ग को नमस्कार करें।।५०।।

ततः खड्गं गृहीत्वा तु देवतारसनाधिया।
अभिमन्त्र्य च मूलेन वक्ष्यमाणेन च स्वयम्।।५१।।

खड्ग को देवता की जीभ मानते हुए उसे स्वयं ही अपने मूल मन्त्र से विधिवत् अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र का जप करके खड्ग को बलि पशु की गर्दन पर रखें।।५१।।

[बलिस्कन्धे खड्गनियोजनमन्त्रः]

विषं मायाद्वयं कालियुगं विकटरूपतः।
दंष्ट्रे स्फें स्फें ततो ब्रूयात् फेत्कारिणीति खादय।।५२।।
द्वितयं छेदययुगं सर्वान् दुष्टांस्ततः परम्।
मारयद्वितयं पश्चादजं खड्गेन छिन्धियुक्।।५३।।
कालि कालि किचिद्वन्द्वं पिबयुग्रुधिरं पदम्।
स्फ्रौँ स्फ्रौँ किलियुगं कालियुग्ममित्यभिमन्त्रणे।
हूँ हूँ फडिति मन्त्रेण स्कन्धे खड्गं नियोजयेत्।।५४।।

खड्गनियोजन मन्त्र—विषं (ॐ), मायाद्वन्द्वं (ह्रीं ह्रीं) कालि कालि विकटरूपदंष्ट्रे स्फ्रें स्फ्रें फेत्कारिणि खादय खादय छेदय छेदय सर्वदुष्टान् मारय मारय अजं खड्गेन छिन्धि छिन्धि कालि कालि किचि किचि पिब पिब रुधिरं स्फ्रौं स्फ्रौं किलि किलि कालि कालि हूं हूं फट्'—इस मन्त्र का जप करके बलि-पशु के स्कन्ध (गले) पर खड्ग नियोजित करें (गले पर खड्ग से प्रहार करें)।।५२-५४।।

[खड्गलक्षणकथनम्]

अथ वक्ष्यामि खड्गानां लक्षणं तन्त्रवर्त्मना।
येन सञ्छेदनेनापि साधकः सिद्धिमालभेत्।।५५।।

[चन्द्रहासलक्षणकथनम्]

सर्वेषामुत्तमः खड्गश्चन्द्रहासः सुखावहः।
पञ्चाशदङ्गुलैः कार्यः किंवा तालत्रयेण तु।।५६।।

[खड्गम् करवीरफलाकारादिकथनम्]

करवीरफलाकारः किंवा पद्मदलाकृतिः।
अथवा कुब्जखड्गेन भेदयेत् खलु साधकः।।५७।।

[बलिच्छेदने दात्रादीनां विधिः]

महाबलीनां सर्वेषां दात्रमत्र प्रकीर्तितम्।

खड्ग-लक्षण—बलि देने के लिये पचास अंगुल की चन्द्रहास तलवार सर्वोत्तम है। करवीर (लाल कनेर) अथवा कमल के आकार की अथवा कुब्जाकार तलवार प्रशस्त है। तेज धार वाली ऐसी तलवारों से बलि दिये जाने से साधक को बलि प्रदान करने का सम्यक् फल मिलता है॥५५-५७॥

[छुरिकादिना छेदननिषेधः]

कर्त्तृकया क्षुरेणापि छिन्द्याच्छुरिकया न च।।५८।।
कुठारपरशुभ्यां वा भेदयेन्न कदाचन।

कैंची, खंजर, छूरी, कुल्हाड़ी या फरसे से छेदकर या गला रेतकर पशु की बलि नहीं दी जाय। तात्पर्य यह कि पशुबलि के लिये कैंची. खंजर, छुरी, कुल्हाड़ी तथा फरसे का प्रयोग मना है॥५८॥

[तीक्ष्णखड्गेन छेदनकथनम्]

छेदयेत्तीक्ष्णखड्गेन अच्छिद्रेण मुखेन च।।५९।।
नाकाशे च्छेदयेत्तन्तु समे देशे शुचौ तथा।
छेदयेदनिशं शस्तं बलिं पूर्वमुखं शुभम्।
उदङ्मुखः स्वयं नेत्रबीजेनैव तु साधकः।।६०।।

[छागादिपशूनां पूर्वाभिमुखेन च्छेदनम्]

छागलादिपशूनाञ्च विपरीतमुखेन तु।

आकाशे इति। शून्यस्थाने बलिं न च्छेदयेत्। नेत्रबीजेन 'वौषट्' इतिमन्त्रेण।

पशु की बलि बिना छेद वाली धारदार तलवार से ही दी जाय। बलि का स्थान सुन्दर और पवित्र होना चाहिए। सुनसान स्थान में बलि देना मना है। बलि के समय साधक का मुँह उत्तर की ओर तथा पशु का मुख पूर्व की ओर होना चाहिए। दक्षिण-मुख होकर पश्चिममुख पशु की बलि प्रशस्त नहीं है॥५९-६०॥

[बलिच्छेदककथनम्]

प्रहाराणाञ्चाधिकारी तेषामेवं विधीयते।।६१।।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रो वा भ्राता वा सुहृदेव वा।
सपिण्डश्छेदयेद् वापि शुद्धान्तःकरणो यदि।।६२।।

उत्तम पक्ष तो यह है कि स्वयं साधक ही पशु की गर्दन पर प्रहार करके बलि दे। यदि किन्हीं कारणों से यह सम्भव नहीं हो तो साधक की ओर से उसका भाई

या भतीजा अथवा मित्र अथवा शुद्ध अन्तःकरण वाला साधक का सपिण्ड सम्बन्धी (रिश्तेदार) पशु की गर्दन पर प्रहार करे॥६१-६२॥

[रिपुप्रभृत्यनुपयुक्तानां कथनम्]

न रिपुं नाङ्गहीनं वा न काणं नापि कुब्जकम्।
न योजयेच्छत्रुपक्षं बलिच्छेदनकर्मणि॥६३॥

किसी अनजान अपरिचित व्यक्ति अथवा शत्रु-पक्ष से सम्बन्धित व्यक्ति को बलि-पशु के गर्दन पर प्रहार नहीं करने दें। इसी तरह कोई काना, कुबड़ा अथवा विकलांग व्यक्ति बलिकर्म के लिये प्रशस्त नहीं है॥६३॥

[दिग्विशेषे बलेर्मस्तकपतने फलविशेषः]

यदि वायव्यदिग्भागे नैर्ऋते दक्षिणेऽपि वा।
मस्तकं पतते चैव हानिमत्र विनिर्दिशेत्॥६४॥

खड्ग के प्रहार से कटकर यदि बलि-पशु का मस्तक वायव्य, नैर्ऋत्य अथवा दक्षिण दिशा में गिरता है तो इससे हानि समझनी चाहिए॥६४॥

शेषेषु दिक्षु सर्वासु विदिक्षु च फलं शृणु।
पूर्वोत्तरविदिग्भागे पतते यदि मस्तकम्।
सर्वसम्पत्करं विद्याद् राज्ञां राज्यं विनिर्दिशेत्॥६५॥

अन्य दिशाओं और विदिशाओं में मस्तक-पतन का फल इस प्रकार है। यदि पशु का मस्तक पूर्वोत्तर (ईशान) दिशा में गिरता है तो वह शुभ है। उस बलि से राजा को राज्य तथा अन्य व्यक्तियों को धन-सम्पत्ति मिलती है॥६५॥

भ्रमित्वा दक्षिणेनापि यदा पतति वै शिरः।
तदा सिद्धिश्च मासान्ते वामकर्णे विपद् भवेत्॥६६॥
राज्ञामग्नौ तथा हानिर्गृहस्थानां शुभं भवेत्॥६७॥

राज्ञामिति। अग्नौ पूर्वदक्षिणकोणे।

यदि पशु का मस्तक घूमकर दाहिने कान के बल गिरता है तो वह शुभ है और यदि बाँयें कान के बल गिरता है तो अशुभ समझना चाहिए। अग्निकोण में मस्तक गिरने से बलिदान देने वाले राजा तथा / अथवा सामान्य गृहस्थों को हानि ही होती है॥६६-६७॥

ऐशान्यमध्ययोश्चैव पतते यदि मस्तकम्।
तदा स्वल्पेन कालेन सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवा॥६८॥

यदि पशु का मस्तक ईशान और पूर्व के मध्य में गिरता है तो यह थोड़े ही समय में सर्व अभीष्टों की प्राप्ति का संकेत है॥६८॥

छिन्नं शिरो निपतितं सहास्यं यदि दृश्यते।
विभूतिं तस्य जानीयाद्राज्ञां राज्यं विनिर्दिशेत्।।६९।।
एकवारे भवेत् सिद्धिर्द्विवारे हानिरुच्यते।
गृहस्थानां विजानीयाद्राज्ञान्तु विपरीतकम्।।७०।।

यदि यह प्रतीत हो कि कटकर गिरा हुआ सिर मुस्कुरा रहा है अर्थात् उसमें हँसने या मुस्कुराने के लक्षण दिखाई दें तो यह राजा को राज्य और विभूति-प्राप्ति का संकेत है।

यदि एक ही प्रहार से सिर कट गया हो तो सिद्धि और यदि सिर को काटने के लिये दूसरी बार भी प्रहार करना पड़ा हो तो इसे गृहस्थों के लिये अशुभ समझना चाहिए।।६९-७०।।

[बलिचक्षुषि अश्रुदर्शनफलम्]

यदाश्रु दृश्यते नेत्रे तदा हानिं विनिर्दिशेत्।

यदि कटे हुए सिर की आँख में आँसू दिखाई दें तो यह अशुभ तथा हानि होने का संकेत है।

[दन्तानां कटकटाशब्दश्रवणफलम्]

यदा कटकटाशब्दो दन्तानां श्रूयते क्वचित्।
तदा तु मरणं विद्याद्धानिं वा तत्र निर्दिशेत्।।७१।।

यदि सिर कटते समय पशु ने अपने दाँत कटकटाये हों तो यह महा विपत्ति या बलिदान करने वाले की मृत्यु का संकेत है।।७१।।

[बलिशिरःख्यापनम्]

दद्याद्राक्षसदिग्भागे मन्त्री बलिशिरः स्वयम्।

इसके बाद मन्त्र-साधक स्वयं ही बलि का कटा हुआ सिर नैर्ऋत्य कोण में स्थापित करें।

[रक्तपात्रस्थापनम्]

तद्दक्षिणे रक्तपात्रं विपरीतं न संददेत्।।७२।।
महाबलीनां वायव्ये प्रदद्यात् साधकोत्तमः।
बलीनामरिसंज्ञानां शिरांसि पुरतो ददेत्।।७३।।
देवस्य सम्मुखं कृत्वा च्छिन्नभागान् प्रकल्पयेत्।
तदेव शस्तं जानीयान्मध्यमं विपरीतकम्।।७४।।
कीलकान्ते न्यसेच्छीर्षं यथा कम्पो न जायते।

उसके दाहिनी ओर रक्त से भरा कटोरा रखे। इसमें विपर्यय नहीं करे। यदि किसी बड़े पशु की बलि दी गई हो तो उसका शिर वायव्य कोण में स्थापित करे।

बड़े पशु का सिर देवता के सम्मुख भी स्थापित किया जा सकता है। सिर को इस तरह स्थापित किया जाय कि वह हिले-डुले नहीं। इसके बाद बलि के सिर पर जलती हुई बत्ती रखी जाती है। यथा—

[बलिमस्तकोपरि दीपदानम्]

शीर्षोपरि ज्वलद्दीपं प्रदद्याच्चन्दनोक्षितम्।।७५।।
घृतेन सार्वभौमः स्यात्तैले सिद्धिञ्च विन्दति।
सूत्रवर्त्तीन् प्रदद्याद् वा वस्त्रवर्त्त्या प्रदृश्यते।।७६।।

बलि-पशु के कटे हुए सिर पर चन्दन लगाकर उस पर घी या तेल से भीगी हुई बत्ती जलाकर रख दें। यह बत्ती सूत या वस्त्र को बाँटकर बनाई जाय।।७५-७६।।

[वर्तिकाप्रमाणम्]

अंगुष्ठस्य प्रमाणन्तु दीर्घे चैत्र षडङ्गुलम्।
कार्पाससूत्रैर्वा दद्यादेकविंशतिसूत्रकैः।।७७।।
सुगन्धगर्भैस्तत् कुर्यात् कर्पूरागुरुचन्दनैः।।७८।।

इक्कीस सूतों को बाँटकर बनाई गई यह बत्ती छः (६) अंगुल लम्बी तथा अंगूठे के बराबर मोटी तथा कपूर-चन्दन आदि सुगन्धित द्रवों एवं तेल / घृत से तर होनी चाहिए।।७७-७८।।

विमर्श—(१) जब बलि-पशु का सिर कट जाय तो उसके कबन्ध से निकलते हुए रक्त को ताँबे के कटोरे में भरकर और उसमें कुछ कच्चा मांस डालकर देवता को निवेदित किया जाता है।

(२) महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है कि यदि एक ही प्रहार से पशु का सिर न कटा हो तो उसका रक्त / मांस देवता को समर्पित नहीं करें। दूसरा पशु लाकर सावधानीपूर्वक बलि दी जाय।

रुधिरं तत्तु पार्वत्यै न तु देयं कदाचन।
बलिमन्यं समादाय भगवत्यै निवेदयेत्।।

चूँकि एक ही प्रहार से शिरच्छेदन न होने पर प्रत्यवाय होता है, अतः आपदाओं की शान्ति के लिये तारा के मन्त्र का एक हजार जप करें और उसी मन्त्र से एक हजार बार मांस का हवन करें। यदि यह न कर सकें तो एक माशा सोने का दान करें।

(३) उपर्युक्त श्लोकसंख्या ७३ में 'बलीनामरिसंज्ञानाम्' पाठ अर्थहीन है। इसे 'बलीयामतिसंज्ञानाम्' होना चाहिए।

[ग्राहादीनां शिरसि दीपदाननिषेधः]

ग्राहाणां कच्छपानाञ्च गोधायाश्च विशेषतः।
मत्स्यानामपि पक्षिणां न दीपं दापयेच्छिरे।।७९।।

कछुवा, ग्राह, मछली, पक्षी और विशेषकर गोधा के सिर पर बत्ती रखकर नहीं जलाई जाय। ग्राह से तात्पर्य जल-जन्तुओं से है॥७९॥

[दीपस्य दीर्घकालज्वलनफलम्]

शीर्षोपरि ज्वलद्दीपो यावत्कालं प्रवर्त्तते।
तावत्कालं वसेत् स्वर्गे तस्मात् यत्नेन दापयेत्॥८०॥
लोमदाहोद्भवं गन्धं ध्यात्वा देवी प्रसीदति।
तस्मिन् संवर्द्धयेद्देवीं तस्मात् पात्रं विवर्जयेत्॥८१॥
निर्वाणे मृत्युमाप्नोति नीयमाने प्रदीपके।

कपूर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त तथा घी से तरबतर बत्ती के साथ बलि-पशु के सिर के बालों के जलने से उठी महक देवी को अत्यन्त प्रिय है। जितने अधिक समय तक यह बत्ती जलती है, उतने ही अधिक समय तक मन्त्र-साधक स्वर्ग में रहता है। अतः देवता की प्रसन्नता के लिये इसे अधिक से अधिक समय तक जलाये रखना चाहिए। इस बत्ती को बुझाने से मृत्यु के समान विकट संकट उठाना पड़ता है॥८०-८१॥

न क्षीरशोणितं दद्यान्न चाज्यञ्च कदाचन॥८२॥
शर्कराक्षतदूर्वादि प्रदद्यात्त्रिर्महाशतम्।
सैन्धवं शृङ्गवेरञ्च कदल्याः फलमेव च॥८३॥
पातयेन्मधुराणाञ्च शृतमुद्दिश्य साधकः।
बलिः प्रदाने तूद्दिष्टो वाराहीसंहिताक्रमात्॥८४॥

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ चतुर्विंशतितमः प्रकाशः॥२४॥

इस कवोष्ण रुधिर के साथ देवी को दूध और घी कदापि अर्पित नहीं करें। कुछ समय के बाद देवी को शक्कर-अक्षत तथा दूर्वादल, सेंधा नमक, बेर और केले समर्पित करें। वाराही संहिता में पशुबलि का यह विधान बताया गया है॥८२-८४॥

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के चौबीसवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ॥२४॥

पञ्चविंशतितमः प्रकाशः

[श्रीमहात्रिपुरासुन्दरी-सहस्रनामस्तोत्रम्]

अथ श्रीमन्महादेव्याः सहस्रं नाम कथ्यते।

मन्त्र-पुरश्चरण, प्रयोग एवं बलि-विधान का निरूपण करने के बाद तत्रभवान् पूर्णानन्द परमहंस अब भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के सहस्रनाम स्तव को उद्धृत कर रहे हैं। मूलतः यह सहस्रनाम स्तोत्र वामकेश्वरतन्त्र के अन्तर्गत है। इस स्तोत्र का उपदेश भगवान् शिव ने अपने पुत्र और शिष्य स्वामी कार्त्तिकेय की तत्त्व-जिज्ञासा का समाधान करते हुए कैलासशिखर पर दिया है।

कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते।।१।।
कल्पपादपमध्यस्थे सिद्धगन्धर्वसेविते।
मणिमण्डपमध्यस्थे नानापुष्पोपशोभिते।।२।।

देवाधिदेव महादेव का दिव्यधाम कैलास नगाधिराज हिमालय का वह पावन और उत्तुङ्ग शिखर है, जहाँ से भारत की आध्यात्मिक ज्ञान की गंगा धराधाम पर अवतरित हुई है। इसी कैलासशिखर पर भगवान् शिव ने आगमशास्त्र का उपदेश दिया है। भगवान् शिव की सेवा के लिये तत्पर अनेकानेक सिद्धों और गन्धर्वों द्वारा सेवित इस कैलासशिखर पर कल्पवृक्षों के वन में विभिन्न प्रकार के पुष्पों से शोभित मणि-मण्डप है।।१-२।।

तं कदाचित् समासीनं भगवन्तं जगद्गुरुम्।
कपालखट्वाङ्गधरं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्।।३।।
त्रिशूलडमरुकरं महावृषभवाहनम्।
जटाजूटधरं देवं वासुकिकण्ठभूषणम्।।४।।
विभूतिभूषणं देवं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्।
द्वीपिचर्मपरीधानं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।।५।।
सहस्रादित्यसङ्काशं गिरिजार्द्धाङ्गभूषणम्।

इस मणि-मण्डप में भगवान् शिव सुखपूर्वक बैठे हैं। उनका आधा शरीर देवी गिरिजा से विभूषित है। शरीर की कान्ति शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र और धवल है। तीन नयन हैं। सिर पर जटाजूट है, उस पर अर्धचन्द्र का मुकुट है। गले में वासुकी नाग की माला है। हाथी के चर्म का परिधान है। वृषभ-वाहन भगवान् शिव

का तेज हजारों सूर्यों के समान है। नीलकण्ठ भगवान् शिव के चारो हाथ कपाल, खट्वांग, त्रिशूल और डमरू से शोभित हैं॥३-५॥

प्रणम्य शिरसा नाथं कारणं विश्वरूपिणम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्राह तं शिखिवाहनः।।६।।

भगवान् शिव विश्वरूप हैं, विश्व के कारण हैं। शिखिवाहन अर्थात् मयूरेश कार्त्तिकेय ने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करके पूछा॥६॥

कार्त्तिकेय उवाच—

देव देव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
त्वं गतिः सर्वदेवानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम्।।७।।
त्वं गतिः सर्वभूतानां दीनानाञ्च त्वमेव च।
त्वमेव जगदाधारस्त्वमेव विश्वकारकः।।८।।
त्वमेव पूज्यः सर्वेषां त्वदन्या नास्ति मे गतिः।
किं गुह्यं परमं लोके किमेकं सर्वसिद्धिदम्।।९।।

कार्त्तिकेय कहते हैं—हे देवदेव महादेव! आप ही संसार की सृष्टि और स्थिति तथा अन्त के कारक हैं। सभी मनुष्यों और देवताओं के आप ही एकमात्र और अन्तिम आश्रय हैं। आप ही जगत् के आधार और पूज्य हैं। आपके अतिरिक्त मेरी कोई अन्य गति (आश्रय) नहीं है। हे देव! इस ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक गुह्यतम ज्ञान क्या है, जिसे पाने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥७-९॥

किमेकं परमं श्रेष्ठं किं भोगं स्वर्गमोक्षदम्।
विना तीर्थेन तपसा विना वेदैर्विना मखैः।।१०।।
विना लयेन ध्यानेन केन सिद्धिमवाप्नुयात्।
कस्मादुत्पद्यते सृष्टिः कस्मिंश्च प्रलयो भवेत्।।११।।
कस्मादुत्तीर्यते देव संसारार्णवसङ्कटात्।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महेश्वर।।१२।।

वह कौन-सा ज्ञान है, जो तीर्थाटन, तपस्या, जप, तप, लय, ध्यान आदि किये बिना स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करता है। सभी सिद्धियाँ प्रदान करता है? हे महेश्वर! किस परम सत्ता से संसार की उत्पत्ति होती है और किसमें संसार का विलय हो जाता है? किस सत्ता का ज्ञान पाकर मनुष्य संकटों से भरे हुए इस भवसागर से पार लग सकता है? हे देव! मैं यह परम रहस्य जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ। मुझे ज्ञान प्रदान करने की कृपा करें॥१०-१२॥

श्रीमहादेव उवाच—

साधु साधु त्वया पृष्टं तत्त्वं पार्वतीनन्दन।
इति गुह्यतमं पुत्र कथयिष्याम्यसंशयः।।१३।।

महादेव कहते हैं—पार्वतीनन्दन! तुमने बहुत ही श्रेष्ठ तत्त्व को जानने की इच्छा प्रकट की है। तुमने बहुत ही श्रेष्ठ प्रश्न पूछा है। मैं निस्सन्देह तुम्हें यह सब कुछ बताऊँगा॥१३॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
ये चान्ये बहवो भूताः सर्वे प्रकृतिसम्भवाः।।१४।।

सत्त्व, रज एवं तम इत्यादि तीनों गुण; ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि त्रिमूर्ति तथा अन्य सबकी उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। 'प्रकृति' का अर्थ है—'प्रकृतेः यस्याः' जिससे इस संसार की उत्पत्ति हुई है और जो इस संसार की उत्पत्ति होने के पूर्व भी थी॥१४॥

सैव देवी परा शक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।
सैव प्रसूयते सर्वं सैव विश्वं प्रपाल्यते।।१५।।
सैव संहरते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
आधारः सर्वभूतानां सा वै रोगार्त्तिहारिणी।।१६।।

मूल-प्रकृतिरूपिणी वह परा शक्ति जो संसार को जन्म देती है, उसका पालन करती है और अन्त में इस समस्त चराचर जगत् को स्वयं में विलीन कर लेती है, जो सभी भूतों की आधार है, उसका नाम महात्रिपुरसुन्दरी है॥१५-१६॥

इच्छा क्रिया तथा ज्ञाना ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
त्रिधा शक्तिस्वरूपेण सृष्टिस्थितिविनाशिनी।।१७।।
सृज्यते ब्रह्मरूपेण विष्णुरूपेण पाल्यते।
संहरेद्रुद्ररूपेण जगतीं सचराचराम्।।१८।।
यस्या योनौ जगत् सर्वमद्यापि वर्त्ततेऽखिलम्।
यस्यां प्रलीयते चान्त्ये यस्याञ्च जायते पुनः।।१९।।
यां समाराध्य त्रैलोक्ये सम्प्राप्तं पदमुत्तमम्।
तस्या नामसहस्रं ते कथयामि शृणुष्व तत्।।२०।।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इत्यादि तीन-तीन रूप धारण करके वे ही महात्रिपुरसुन्दरी संसार की रचना (सृष्टि) करती हैं, पालन करती हैं और संहार करती हैं। वे ही ब्रह्मा के रूप में ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती हैं, विश्वम्भर विष्णु के रूप में उसका पालन करती हैं और रुद्र के रूप में उसका संहार करती हैं। उनकी ही योनि में अर्थात् उनकी ही सत्ता में संसार आज तक विद्यमान है तथा अन्त में उनकी ही सत्ता में विलीन हो जायगा। कालान्तर में उनकी ही योनि से पुनः उत्पन्न होगा। मैं उन्हीं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का सहस्रनाम स्तव बता रहा हूँ, जिसकी समाराधना करके सर्वोत्तम पद प्राप्त किया जा सकता है। इसे ध्यान देकर सुनो॥१७-२०॥

विनियोग

ॐ अस्या श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सहस्रनामस्तोत्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्भगवान् वामदेव ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः प्रकटगुह्यतरसम्प्रदायकुलकौलिकगर्भरहस्यातिरहस्यपरापररहस्याचिन्त्यप्रभाववती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता आकाशबीजं माया शक्तिः कामबीजं कीलकं बुद्धिशक्तिरुदानबीजं सुषुम्णा नाडी सरस्वतीशक्तिसिद्ध्यर्थकाममोक्षार्थे विनियोगः।।२१।।

मूल पाठ

ह्रीँ कल्याणी कमला काली कराली कामरूपिणी।
कामाख्या कामदा काम्या कमला[१] कामचारिणी।।२२।।
कालरात्रिर्महारात्रिः [२]कौलिनी कौल्यरूपि[३]णी।
कुमारी करुणा [४]कीर्त्तिः [५]कल्माषनाशिनीति च।।२३।।
कात्यायनी [६]कलाधारा कौमुदी कमलाप्रिया।
कीर्त्तिदा मुक्तिदा[७] मेधा नीतिज्ञा नीतिवत्सला।।२४।।
माहेश्वरी महामाया महातेजा महेश्वरी।
[८]महालोला [९]महाजिह्वा महादंष्ट्रा महाभुजा।।२५।।
महामोहान्धकारघ्नी महामोक्षप्रकाशिनी।
महादारिद्र्यशमनी महाशत्रुविनाशिनी।।२६।।
[१०]महाशक्तिर्महाशूरमहिषासुरमर्दिनी ।
महामाया महावीर्या महापातकनाशिनी।।२७।।
महा[११]कामा महा[१२]काल्या महा[१३]पातकहारिणी।
महा[१४]मन्त्रा मन्त्रमयी मणिपूरकवासिनी।।२८।।
मानसी मानदा मान्या मन[१५]श्चक्षुरगोचरा।
[१६]गणमाता च गायत्री गणगन्धर्वसेविता।।२९।।
गिरिजा गिरिशा साध्वी गिरिस्था गिरि[१७]सम्भवा।
चण्डेश्वरी चण्डरूपा प्रचण्डा चण्डमालिनी।।३०।।
चर्चिता[१८] चर्च्चितकला[१९] चण्डिका [२०]चण्डरूपिणी।
यज्ञेश्वरी यज्ञरूपा जपयज्ञपरायणा।।३१।।

---

(१) कामना, (२) कपाली, (३) कालरूपिणी, (४) मुक्तिः, (५) कलिकल्मषनाशिनी, (६) कराधारा, (७) बुद्धिदा, (८) महाजिह्वा, (९) महाघोरा, (१०) 'महाशक्ति --------- मर्दिनी'—यह पंक्ति नहीं है। (११) महामखा, (१२) मन्त्रमयी, (१३) मणिपूरकवासिनी, (१४) 'महामन्त्रा -------- मणिपूरकवासिनी'—यह पंक्ति नहीं है। (१५) मनश्चक्षु रणेचरा, (१६) गणमाता, (१७) गिरिवल्लभा, (१८) चर्विका, (१९) चर्विकाकारा, (२०) चक्ररूपिणी।

यज्ञमाता यज्ञभोक्त्री यज्ञेशी यज्ञसम्भवा।
[21]सिद्धा यज्ञप्रिया सिद्धिर्यज्ञाङ्गी यज्ञबन्धिका।।३२।।
[22]यज्ञप्रिया यज्ञरूपा याज्ञी यज्ञकृतालया।
जालन्धरा जगन्माता जातवेदा जगत्प्रिया।।३३।।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा जननी जन्मदायिनी।
गङ्गा गोदावरी [23]गौरी गोमती च शतद्रुका।।३४।।
घर्घरा वेदगर्भा च देविका[24]करसम्भवा।
सिन्धुर्मन्दाकिनी विप्रा[25] यमुना च सरस्वती।।३५।।
[26]चन्द्रभागा विपाशा च गण्डकी विन्ध्यवासिनी।
नर्मदा [27]कद्रुकावेरी वेत्रवती च कौषिकी।।३६।।
महेन्द्रतनया चैव अहल्या चम्पकावती।
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।।३७।।
[28]द्वारावती च शिखिनी महाकिल्विषनाशिनी।
पद्मिनी पद्म[29]हस्ता च पद्मकिञ्जल्कवासिनी।।३८।।
पद्मवक्त्रा च पद्माक्षी[30] पद्मस्था पद्मसम्भवा।
[31]ह्रीँकारी कुण्डली[32] रात्रिर्हृत्पद्मस्था सुलोचना।।३९।।
ऐँकारी[33] भूषणा लक्ष्मीः क्लीँकारी क्लेशनाशिनी।
[34]हरिप्रिया हरेर्माता हरिनेत्रकृताश्रया।।४०।।
हरिवक्त्रोद्भवा शान्ता हरेर्वक्षः[35]स्थलस्थिता।
वैष्णवी विष्णुरूपा च विष्णुमाया[36]स्वरूपिणी।।४१।।
विष्णुमाया विशालाक्षी विशालनयनोज्ज्वला।
विश्वेश्वरी च विश्वात्मा विश्वेशी विश्वरूपिणी।।४२।।
[37]विश्वात्मिका विश्वविद्या विश्वपाशविदारिणी।
विश्वासकारिणी विश्वा विधिशक्तिर्विचक्षणा।।४३।।

---

(२१) सिद्धयज्ञक्रियासिद्धि यज्ञाङ्गी यज्ञरक्षिका, (२२) यज्ञक्रिया यज्ञरूपा यज्ञाङ्गी यज्ञरक्षिका, (२३) चैव, (२४) रेचिका समवासिनी, (२५) क्षिप्रा, (२६) भद्राराग, (२७) सिन्धु, (२८) पुरी द्वारावती तीर्था, (२९) पद्ममध्यस्था, (३०) चकोराक्षी, (३१) ह्रींकारी, (३२) कुण्डलीधारी, (३३) श्रींकारी, (३४) 'हरिप्रिया ----- श्रया'—यह पंक्ति नहीं है। (३५) हरिवक्त्रा कृतालया, (३६) विष्णुमातृस्वरूपिणी, (३७) 'विश्वात्मिका --------- विचक्षणा' यह श्लोक नहीं है।

शिवेश्वरी[३८] शिवाराध्या शिवनाथा शिवप्रिया।
शिवमाता शिवाख्या च शिवदा शिवरूपिणी।।४४।।
भवेश्वरी भवाराध्या [३९]भवानी भवनायिका।
भवमाता भावगम्या भवकण्टकनाशिनी।।४५।।
भवप्रिया भवानन्दा भव[४०]कण्टकहारिणी।
[४१]गतिर्वरेण्या सावित्री ब्रह्माणी ब्रह्मरूपिणी।।४६।।
ब्रह्मेशी ब्रह्मदा ब्राह्मी ब्रह्मस्था ब्रह्मवादिनी।
दुर्गस्था दुर्गरूपा च दुर्गा दुर्गार्त्तिनाशिनी।।४७।।
सुगमा दुर्गमा [४२]दाता दया गौरी [४३]दुरापहा।
दुरितघ्नी दुरध्यक्षा दूर[४४]दुष्कृतनाशिनी।।४८।।
पञ्चम्या[४५] पञ्चमी पूर्णा पूर्णपीठनिवासिनी।
सत्त्वस्था सत्त्वरूपा च कल्पस्था कल्परूपिणी।।४९।।
(........(४६)........... सत्त्वदा सत्त्वसम्भवा।
रजस्था च रजोरूपा रजोगुणसमुद्भवा।।
तमस्था च तमोरूपा तामसी तामसप्रिया।
तमोगुणसमुद्भूता सात्त्विकी राजसी कला।।
काष्ठा मुहूर्ता निमिषा अनिमिषा ततः परम्।
अर्धमासा च मासा च संवत्सरस्वरूपिणी।
युगस्था युगरूपा च कल्पस्था कल्परूपिणी।।)
नानारत्नविचित्राङ्गी नानाभरणभूषिता।
विश्वा[४७]म्बिका विश्वमाता विश्वपाशवि[४८]दारिणी।।५०।।
विशाल[४९]कारिणी विश्वा विश्वशक्तिर्विलक्षणा।
जवाकुसुमसङ्काशा दाडिमीकुसुमारुणा।।५१।।
चतुरङ्गी चतुर्वाहा चतु[५०]र्द्वारव्यहासिनी।
सर्वेशी सर्वदा सर्वा सर्वज्ञा सर्वदायिनी।।५२।।

---

(३८) विश्वेश्वरी, (३९) भवेशी, (४०) भवानी भवमोहिनी, (४१) गायत्री चैव, (४२) दान्ता, (४३) दोग्ध्री, (४४) दुरा, (४५) पञ्चास्या, (४६) ये सात पंक्तियाँ ग्रन्थान्तरों से हैं। (४७) विश्वात्मिका, (४८) विश्वपाशविनाशिनी, (४९) विश्वासकारिणी, (५०) चतुरा चारुहासिनी।

विश्वेश्वरी[५१] च सर्वाद्या [५२]सर्वाणी सर्वमङ्गला।
नलिनी नन्दिनी नन्दा आनन्दानन्द[५३]वर्त्तिनी।।५३।।

व्यापिनी सर्वभूतेषु भवभार[५४]विनाशिनी।
[५५]कुलीना कुलमध्यस्था कुलधर्मोपदेशिनी।।५४।।

सर्वशृङ्गारवेशाढ्या पाशाङ्कुशकरोद्यता।
[५६]सूर्या सूर्यसहस्राभा चन्द्रकोटिनिभानना।।५५।।

गणेशकोटिलावण्या सिंह[५७]कोटिविमर्द्दिनी।
दावाग्निकोटि[५८]ज्वलिनी कद्रु[५९]कोटिस्वरूपिणी।।५६।।

समुद्रकोटिगम्भीरा वायुकोटिमहाबला।
आकाशकोटिविस्तारा यमकोटिभयङ्करा।।५७।।

मेरुकोटिसमुच्छ्राया [६०]गरुत्कोटिसमृद्धिदा।
निष्कलङ्का[६१] निराधारा निर्गुणा गुणवर्जिता।।५८।।

[६२](अशोका शोकरहिता तापत्रयविवर्जिता।)

विशिष्टा विश्वजननी विश्वाख्या विश्ववर्द्धिनी।
चित्रा विचित्रा चित्राङ्गी हेतुगर्भा रणेश्वरी[६३]।।५९।।

इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः शुचिस्मिता।
श्रुतिः[६४]श्रुतिमयी[६५] सत्या श्रुतिरूपा श्रुतिप्रिया।।६०।।

श्रुतिप्राज्ञा[६६] महातत्त्वा पञ्चतत्त्वोपरिस्थिता।
पार्वती हिमवत्पुत्री पारस्था पाररूपिणी।।६१।।

जयन्ती भद्रकाली च अहल्या कुलनायिका।
भूतधात्री च भूतेशी भूतस्था भूतभाविनी।।६२।।

महाकुलमयी[६७] शक्तिर्महाविभववर्द्धिनी।
हंसाख्या[६८] हंसरूपा च हंसस्था हंसरूपिणी।।६३।।

---

(५१) माहेश्वरी, (५२) शर्वाणी, (५३) आनन्दानन्दवर्धिनी, (५४) शवभार-विनाशिनी, (५५) 'कुलीना -------- कुलधर्मोपदेशिनी'—यह पंक्ति अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। (५६) सूर्यकोटिसहस्राभा, (५७) विष्णुकोट्यरिमर्दिनी, (५८) नलिनी, (५९) रुद्रकोटि उग्ररूपिणी, (६०) गणकोटि, (६१) निष्कस्तोका, (६२) अन्य ग्रन्थों में यह पंक्ति है। (६३) कुलेश्वरी, (६४) शुचि, (६५) स्मृतिमयी, (६६) महासत्त्वमयी सत्त्वा, (६७) महाकुण्डलिनी शक्ति, (६८) हंसाक्षी।

सोमसूर्याग्निमध्यस्था मूलाधार[६९]निवासिनी।
द्वादशारसरोजस्था सूर्यमण्डलवासिनी।।६४।।
([७०]अकलंका शशांकाभा षोडसारनिवासिनी।)
द्विपत्रदलमध्यस्था ललाटतलवासिनी।
डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा।।६५।।
शाकिनी हाकिनी चैव षट्[७१]चक्रविनिवासिनी।
सृष्टिस्थितिविनाशा[७२] च सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।।६६।।
श्रीकण्ठप्रिया श्रीकण्ठा नादाख्या[७३] बिन्दुमालिनी।
चतुःषष्टिकलाधारा देहदण्ड[७४]कलाश्रया।।६७।।
माया काली द्युतिर्मेधा स्वधा[७५] पुष्टिर्महाधृतिः।
हिङ्गुला मङ्गला सीता सुषुम्णामध्यगामिनी।।६८।।
परा घोरा करालाक्षी विजया जयशालिनी।
[७६]हृत्पद्मनिलया चैव भीमा भैरवनादिनी।।६९।।
([७७]अकाशलिंगसम्भूता भुवनोद्यानवासिनी।
महत् सूक्ष्मा च कंकाली भीमरूपा महाबला।।)
मेनकागर्भसम्भूता तप्तकाञ्चनसन्निभा।
अन्तकूट[७८]बीजस्था च त्रिकूट[७९]वनवासिनी।।७०।।
[८०]वर्णाक्षी वर्णरहिता पञ्चाशद्वर्णरूपिणी।
विद्याक्षरी लोकधात्री अमरा[८१] अप्सरःप्रिया।।७१।।
[८२]दाक्षा प्रजावती धन्या धनधान्यसमृद्धिदा।
ईशानी भुवनेशानी भुवना भुवनेश्वरी।।७२।।
अनन्ताऽनन्तमहिमा जगत्सारा जगद्भवा।
अचिन्त्यशक्तिचित्तात्मा चिन्ता चित्तस्वरूपिणी।।७३।।
ज्ञानगम्या ज्ञानमूर्त्तिर्ज्ञानिनी ज्ञानशालिनी।
असिता घोररूपा च सुधाधारा सुधावहा।।७४।।

---

(६९) मणिमण्डलवासिनी, (७०) ग्रन्थान्तर से उद्धृत, (७१) षट्चक्रेषु वासिनी, (७२) सृष्टिस्थितिविनाशाय, (७३) नन्दाख्या, (७४) समाश्रया, (७५) क्षुधा, (७६) पाठान्तरित पंक्ति है—'हृत्पद्मनिलया भीमा महाभैरवनादिनी'। (७७) ग्रन्थान्तरों से उद्धृत, (७८) अन्तरस्था कूटबीजा, (७९) त्रिकूटाचलवासिनी, (८०) वर्णाख्या, (८१) अप्सरा, (८२) 'दाक्षा -------- रौद्रार्त्तिनाशिनी'—ये १५ पंक्तियाँ अन्य ग्रन्थों में इस क्रम में यहाँ नहीं हैं।

भास्करा भास्वती [८३]भीतिर्भास्व’द्धृष्टानुसापिनी।
अनुद्यमा[८४] क्षमानन्दा दुर्लभा [८५]भवनात्मिका।।७५।।

विश्ववन्द्या [८६]विश्ववीरा विश्वघ्नी विश्वसंस्थिता।
शीलस्था शीलरूपा च शीला शीलप्रदायिनी।।७६।।

बोधिनी बोधकुशला बोधना बोधिनी सदा।
विद्योतिनी विचित्रात्मा विद्युत्पाटलसन्निभा।।७६।।

विश्वयोनिर्महायोनिः कर्मयोनिः प्रियंवदा।
रोहिणी रोगशमनी महारोगापहारिणी।।७७।।

वसुदा रुद्ररूपा च रौद्री रौद्रार्त्तिनाशिनी।
प्रजा[८७] दाक्षायणी दक्षा दक्षयज्ञविनाशिनी।।७८।।

यशस्विनी[८८] यशः[८९]पूर्णा यशोदागर्भसम्भवा।
देवकी देवमाता च राधिका कृष्णवल्लभा।।७९।।

अरुन्धती शचीन्द्राणी गान्धारी गन्धमालिनी।
ध्यानातीता ध्यानगम्या ध्यानाख्या ध्यानधारिणी।।८०।।

लम्बोदरी च लम्बोष्ठी जाम्बवत्या[९०] जलोदरी।
महोदरी मुक्तकेशी मुक्तिकामार्थसिद्धिदा।।८१।।

[९१]तपस्विनी रागहना गुह्यरत्ननिरञ्जना।
([९२]बाणचापधरा धीरा पाञ्चाली पञ्चमप्रिया।
गुह्याङ्गी च सुभीमा च गुह्यतत्त्वा निरञ्जना।।)
अशरीरा शरीरस्था संसारार्णवतारिणी।।८२।।

अमृता निष्कला भद्रा सकला कृष्णपिङ्गला।
चक्रेश्वरी चक्रहस्ता परचक्रविदारिणी।।८३।।

पद्मरागप्रतीकाशा निर्मलाकाशसन्निभा।
([९३]अधःस्था ऊर्ध्वरूपा च ऊर्ध्वपद्मनिवासिनी।
कार्यकारणकर्त्तृत्वे शश्वद् रूपेषु संस्थिता।।)

---

(८३) भाती, (८४) अनुसूया, (८५) भुवनात्मिका, (८६) विश्वबीजा, (८७) दीक्षा, (८८) यशःपूर्णा, (८९) यशोदा, (९०) जाम्बवती, (९१) पाठान्तरित पंक्ति है—‘तपस्विनी तपोनिष्ठा सुपर्णा धर्मवाशिनी’, (९२) ग्रन्थान्तरों से उद्धृत, (९३) ग्रन्थान्तरों से उद्धृत।

रसज्ञा रसमध्यस्था गन्धस्था गन्धरूपिणी।।८४।।

परंब्रह्मस्वरूपा च परंब्रह्म[९४]स्वरूपिणी।
शब्दब्रह्मस्वरूपा च शब्दाख्या[९५] शब्दवर्जिता।।८५।।

ऋद्धि[९६]वृद्धिः परा[९७]सिद्धिः [९८]सत्कीर्त्तिर्दीप्तिसंस्थिता।
[९९]आपूज्या शाम्भवी शक्तिः सुन्द[१००]राङ्गी तत्त्वरूपिणी।।८६।।

शाश्वती भूतमाता च महाभूताधिपप्रिया।
श्रुतिप्राज्ञा[१०१] धर्मसिद्धिर्दक्षकन्या[१०२]ऽपराजिता।।८७।।

कामसन्दीपनी कामा सदा कामकुतूहला।
([१०३]-------------[१०३]------------[१०३]----------)
भोगापचारकुशला अमरा कमलानना।।८८।।

भक्तानुकम्पिनी मैत्री शरणागतवत्सला।
क्षोभणी मोहनी चैव स्तम्भनी जृम्भिणी तथा।।८९।।

रथिनी ध्वजिनी सेना सर्वमन्त्रमयी त्रयी।
ज्ञानमुद्रा महामुद्रा जगन्मुद्रा महोत्सवा।।९०।।

सहस्रभुजा चिच्छक्तिः सहस्राक्षी सनातनी।
सिद्धलक्ष्मीर्महालक्ष्मी राजलक्ष्मीः सुलक्षणा।।९१।।

यज्ञसारा तपःसारा धर्मसारा जनेश्वरी।
विश्वोदरी विश्वपूज्या विश्वाख्या विश्वतोमुखी।।९२।।

विश्वास्या श्रवणा घ्राणा विश्वप्राणा पदात्मिका।
तरुणादित्यसङ्काशा किरणानेकसङ्कुला।।९३।।

---

(९४) परब्रह्मनिवासिनी, (९५) शब्दस्था, (९६) सिद्धिर्बुद्धि, (९७) पराबुद्धि, (९८) सन्दीप्तिः, मध्यसंस्थिता, (९९) स्वगुह्या, (१००) तत्त्वस्था, (१०१) शुचिप्रेता, (१०२) धर्मवृद्धिपराजिता, (१०३) 'भोगापचारकुशला'------ से लेकर 'किरणानेकसंकुला' तक ११ पंक्तियाँ अन्य ग्रन्थों में यथाक्रम नहीं हैं।

जटाजूटधरा [१०४]मुख्या शुष्कमांसा[१०५]तिभीषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना चीरवल्कलधारिणी।।९४।।
त्रिशूलडमरुकरा नरमालाविभूषणा।
अत्युग्ररूपिणी चोग्रा कल्पान्तदहनोपमा।।९५।।
त्रैलोक्य[१०६]धारिणी साध्या सिद्धिः साधकवत्सला।
सर्वविद्यामयी सारा वैरिवर्ग[१०७]विनाशिनी।।९६।।
(--------------------१०८--------------------)
सुभगा सुमुखी रम्या मुखरा सोमभूषणा।
शुद्धस्फटिकसङ्काशा महावृषभवाहिनी।।९७।।
महिषी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी।
(--------------------१०८--------------------)
दमिनी दामिनी दान्ता दया दोग्ध्री दुरापगा।।९८।।
अग्निजिह्वा[१०९] महाघोरा घोरघोरतरानना।
नारायणी नारसिंही नृसिंहहृदयस्थिता।।९९।।
योगेश्वरी योगरूपा योगमाता च योगिनी।
खेचरी भूचरी[११०] खेला निर्वाणपदसंश्रया।।१००।।
नागिनी नागकन्या च सुवना[१११] नागनायिका।
विषज्वालावती तीक्ष्णा[११२] फणाशत[११३]विभूषणा।।१०१।।
भीमवक्त्रा[११४] महावक्त्रा वक्त्राणां[११५] कोटिधारिणी।
महावक्त्रा[११६] च धर्माख्या धर्मादि[११७]सुखदायिनी।।१०२।।
कृष्णमूर्द्धा महामूर्द्धा घोरमूर्द्धा वरानना।
सर्वेन्द्रिया[११८] सर्वसंस्था सर्वेन्द्रियमनोमयी।।१०३।।
सर्वसंग्रामजयदा सर्वप्रहरणोद्यता।
सर्वपीडोपशमनी सर्वाभीष्ट[११९]प्रदायिनी।।१०४।।
सर्वैश्वर्य[१२०]समुत्पत्तिः सर्वग्रहविनाशिनी।
भीतिघ्नी[१२१] भक्तिगम्या च भक्तापमृत्युनाशिनी।।१०५।।

---

(१०४) मुक्ता, (१०५) सूक्ष्मा शक्तिविभूषणा, (१०६) त्रैलोक्यसाधिनी, (१०७) चासुराक्षां विनाशिनी, (१०८) 'सुभगा'--------महिषासुरमर्दिनी'—ये तीन पंक्तियाँ अन्य ग्रन्थों में नहीं हैं। (१०९) अग्निजिह्वोपमा, (११०) खचरी, (१११) सुवेशा, (११२) दीप्ता, (११३) कलाशतविभूषणा, (११४) तीव्रवक्त्रा, (११५) नागकोटित्वधारिणी, (११६) महासत्त्वा, (११७) धर्मातिसुखदायिनी, (११८) सर्वेन्द्रियमनोमत्ता, (११९) सर्वारिष्टनिवारिणी, (१२०) सर्वैश्वर्यसमुत्पन्ना, (१२१) यह पंक्ति अन्य ग्रन्थों में नहीं है।

मातङ्गी मत्तमातङ्गी मतङ्ग[१२२]कुलमण्डिता।
गण्डमण्डित[१२३]सङ्काशा गुञ्जाहारविभूषणा।।१०६।।

सङ्गीतरङ्गरचना वीणावाद्यकुतूहला।
अमृतोदधिमध्यस्था[१२४] प्रवालरसनोज्ज्वला।।१०७।।

मणिमण्डपमध्यस्था रत्नसिंहासनस्थिता।
परमानन्दमुदिता ईषत्प्रहसितानना।।१०८।।

कुमुदा ललिता लोला लाक्षाललितलोचना।
दिग्वस्त्रा[१२५] देवदूती च देवदेवाधिदेवता।।१०९।।

सिंहोपरिसमारूढा महाचल[१२६]निवासिनी।
अट्टट्टहासिनी घोरा घोर[१२७]दन्तविनाशिनी।।११०।।

अत्युग्रा रक्तवर्णा च नागकेयूरमण्डिता।
मुक्ताहारलतोपेततुङ्गपीनपयोधरा ।।१११।।

रक्तोत्पलदलाकारमदमूर्च्छित[१२८]लोचना ।
समस्तदेवतामूर्त्तिरसुरक्षयकारिणी ।।११२।।

खड्गिनी शूलहस्ता च चक्रिणी चाक्ष[१२९]मालिनी।
शङ्खिनी चापिनी [१३०]वाणी वज्रिणी रक्त[१३१]दन्तिका।।११३।।

आनन्दोदधिमध्यस्था कटिसूत्रैरलंकृता।
नानाभरणदीप्ताङ्गी नानामणिविभूषिता।।११४।।

---

(१२२) मातङ्गीप्रियमण्डला, (१२३) 'गण्डमण्डित.........वाद्यकुतूहला'—ये दो पंक्तियाँ अन्य ग्रन्थों में नहीं हैं। (१२४) 'अमृतोदधि..........प्रहसितानना' का पाठान्तर है—

अमृतोदधिमध्यस्था कटिसूत्रैरंलकृता।
अमृतोदधिमध्यस्था प्रवालवसनाम्बुजा।
परमानन्दमुदिता ईषत् प्रहसितानना।।

(१२५) दिग्वासा, (१२६) हिमाचलनिवासिनी, (१२७) घोरदैत्यविनाशिनी, (१२८) मदघूर्णितलोचना, (१२९) चक्रमालिनी, (१३०) बाणा, (१३१) वज्रदण्डिनी।

जगदानन्द[132]सम्भूतिचिन्तामणिगुणाकरा ।
त्रैलोक्यनमिता [133]पूज्या चिन्मयानन्दरूपिणी।।११५।।

त्रैलोक्य[134]वर्द्धिनी देवी दुःखदुःस्वप्ननाशिनी।
घोराग्निदाहशमनी बीजदैवादि[135]मालिनी।।११६।।

महापराधराशिघ्नी महाचौरभयापहा।
रागादिरोगरहिता जरामरणवर्जिता।।११७।।

चन्द्रमण्डलसङ्काशा पीयूषार्णवसम्भवा।
सर्वदेवैः स्तुता देवी सर्वसिद्धैर्नमस्कृता।।११८।।

अचिन्त्यशक्तिरूपा च मणिमन्त्रमहौषधी।
[136]स्वस्ति स्वस्तिमती बाला मलयाचलवासिनी।।११९।।

धात्री विधात्री [137]सम्भावा रतिज्ञा रतिदायिनी।
रुद्राणी रुद्ररूपा च रौद्री रौद्रार्त्तिनाशिनी।।१२०।।

सर्वज्ञा चैव धर्मज्ञा रसज्ञा दानवत्सला।
अनाहता त्रिनयना [138]निर्भवा निर्वृतिः परा।।१२१।।

परा घोरा करालाक्षी सुमतिः प्रिय[139]भाषिणी।
महाम्बिका[140] मन्त्रमस्या मन्त्रमाता सुपुत्रिणी।।१२२।।

शुद्धानन्दा[141] महाभद्रा [142]निर्गता निर्गुणात्मिका।
धरिणी धारिणी पृथ्वी धरा धात्री वसुन्धरा।।१२३।।

मेरुमन्दरमध्यस्था स्थिरा[143] शङ्करवल्लभा।
श्रीमती श्रीमतां[144] श्रेष्ठा श्रीकरी श्रीविभाविनी[145]।।१२४।।

श्रीदात्री श्रीविधात्री च श्रीमती श्रीमताङ्गतिः।
उमाशा शार्ङ्गिणी कृष्णा कुटिला कुटिलालका।।१२५।।

---

(१३२) जगदानन्दसम्भूता, (१३३) तुर्या, (१३४) त्रैलोक्यनमिता, (१३५) राज्यदेवार्थसाधिनी, (१३६) अस्ति स्वस्तिमयी बाला, (१३७) संहारी, (१३८) निर्भारा, (१३९) श्रेष्ठदायिनी, (१४०) 'मंत्रात्मिका मन्त्रगम्या मन्त्रमाता सुमन्त्रिणी', (१४१) श्रद्धानन्दा, (१४२) निर्द्वन्द्वा, (१४३) स्थिति, (१४४) श्रीमयी, (१४५) भावविभाविनी।

त्रिलोचना[१४६] त्रिलोकस्था पुण्यस्था पुण्यकीर्त्तिदा।
अमृता सत्यसङ्कल्पा प्रेत्या सा[१४७] प्रस्थितोदनी[१४८]।।१२६।।
परेशी परमाराधा[१४९] परा विद्या परापरा।
सुन्दराङ्गी सुवर्णाभा सुरासुरनमस्कृता।।१२७।।
(----------------------[१५०]----------------------)
[१५१]रुद्राणी पुष्टिदा देवी मानदा[१५२] मानसप्रिया।
कृष्णाङ्ग[१५३]वाहिनी चैव कृष्णा कृष्णसहोदरा।।१२८।।
शाम्भवी शम्भुरूपा च शम्भुस्था शम्भुसम्भवा।
बिम्बो[१५४](श्वो)दरी योगमुद्रा[१५५] योगरूपा च योगिनी।।१२९।।
योगमुद्रा[१५६] योगनिद्रा योगिनीकोटिसेविता।
कुटिला[१५७] नन्दि[१५८]कन्या च शृङ्गारपीठवासिनी।।१३०।।
क्षेमङ्करी सर्वरूपा दिव्यरूपा दिवीश्वरा[१५९]।
[१६०]धूम्रवक्त्रा धूम्रकेशी धूम्रवक्तावधूसरा।।१३१।।
पिनाकी रुद्रवेताली महावेतालरूपिणी।
[१६१]भगिनी भागिनी दक्षा विष्णुविद्या अनाश्रिता।।१३२।।
मन्थरा जठरा तीव्रा अग्निजिह्वा भयापहा।
पशुघ्नी पशुरूपा च पशुहा पशुवाहिनी।।१३३।।
[१६२]पिता सन्तोषिता धाता पशुपाशविनाशिनी।
चन्द्रप्रभा चन्द्ररेखा चन्द्रकान्तिविभूषणा।।१३४।।
कुङ्कुमाङ्कितसर्वाङ्गी सुधाबुद्बुदलोचना[१६३]।
निष्ठुरा[१६४] क्रूरहृदया अक्रूरामृतभाषिणी।।१३५।।
आकाशलिङ्गसम्भूता भुवनध्यानवाहिनी।
निरुपाक्षी सहस्राक्षी शताक्षी बहुलोचना।।१३६।।

---

(१४६) 'त्रिलोचना त्रिलोकात्मा पुण्यापुण्यप्रकीर्तिता', (१४७) सा सत्या, (१४८) ग्रन्थिभेदिनी, (१४९) परमा साध्या। (१५०) मन्त्रमहार्णव, शाक्तप्रमोद आदि ग्रन्थों में यहाँ पर वे १५ पंक्तियाँ हैं, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में श्लोकसंख्या ७२ आदि में समाहित हैं ('दाक्षा' से रौद्रार्तनाशिनी' तक)। (१५१) रसदा पुष्टिदा पुष्टिः, (१५२) मानदा, (१५३) कृष्णाङ्गवाहिनी कृष्णा कृष्णा कृष्णसहोदरी, (१५४) विश्वोदरी, (१५५) योगमाता, (१५६) वागीश्वरी, (१५७) कौलिका, (१५८) मन्दकन्या, (१५९) दिगम्बरी, (१६०) धूमवक्त्रा धूम्रनेत्री धूमकेशी च धूसरा, (१६१) 'तपिनी तापिनी दीक्षा विष्णुविद्यात्मनाश्रिता'। (१६२) पिता माता च

[१६५]दण्डावतारिणी तारा तरुणीताररूपिणी।
सुधाधारा च धर्मज्ञा धर्मशास्त्रोपदेशिनी।।१३७।।
भवेश्वरी[१६६] भवाराध्या[१६७] भगिनी भगनायिका।
भगविद्या[१६८] भगक्लिन्ना भगयोनिर्भगप्रदा।।१३८।।
भगेशी भगरूपा च भगगुह्या भगावहा।
भगोदरा भगानन्दा भगाद्या भगमालिनी।।१३९।।
[१६९](सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः सर्वविद्राविणी तथा।)
मालिनी माधवी साध्वी[१७०] मधुरूपा महोत्कटा।
[१७१]चन्द्रिका चन्द्रिमा ज्योत्स्ना विश्वचक्षुस्तमोऽपहा।।१४०।।
सुप्रसन्ना महादूती यमदूती भयङ्करी।
उन्मादिनी महारूपा दिव्यरूपा सुरार्च्चिता।।१४१।।
त्रैलोक्य[१७२]फलिनी नित्या नित्यानन्दमदोद्धता।
मदिरानन्दकैवल्या मदिराक्षी मदालसा।।१४२।।
सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धाद्या सिद्ध[१७३]वन्दिता।
[१७४]सिद्धार्च्चिता सिद्धमाता सिद्धिः सर्वार्थसिद्धिदा।।१४३।।
[१७५]मायामयी गुणातीता परं ज्योतिःस्वरूपिणी।
परेशी परगा पारा परा सिद्धिः परा गतिः।।१४४।।
विमला मोहिनी आद्या मधुपानपरायणा।
वेदवेदाङ्गजननी सर्वशास्त्रविशारदा।।१४५।।

धीरा च। (१६३) सुधा सद्गुरुलोचना, (१६४) अन्य ग्रन्थों में 'निष्ठुरा ····· वहुलोचना' तक की तीन पंक्तियाँ नहीं हैं। उनके स्थान पर निम्नलिखित तीन पंक्तियाँ हैं—

शुक्लाम्बरधरा देवी वीणापुस्तकधारिणी।
ऐरावतपद्मधरा देवी श्वेतपद्मासनस्थिता।
रक्ताम्बरधरा देवी रक्तपद्मविलोचना।

(१६५) दुस्तरा तारिणी, (१६६) भगेश्वरी, (१६७) भगाराध्या, (१६८) भगबिम्वा, (१६९) अन्य ग्रन्थों से उद्धृत, (१७०) माध्वी, (१७१) भरुण्डचन्द्रिका, (१७२) 'चैतन्यरूपिणी नित्या क्लिन्ना काममदोद्धता'। (१७३) सिद्धसम्भवा, (१७४) सिद्धार्द्धि, (१७५) मनोमयी।

सर्वदेवमयी नित्या सर्वशास्त्रमयी तथा।
सर्वयज्ञमयी[१७६] देवी सर्वधर्ममयीश्वरी।।१४६।।

सर्वयज्ञा[१७७] महायज्ञा सर्वमन्त्राधिकारिणी।
सर्वसम्पत्त्यधिष्ठात्री सर्वविद्यावती[१७८] तथा।।१४७।।

सर्वसंक्षोभणी देवी सर्वमङ्गलकारिणी।
त्रैलोक्याकर्षिणी देवी सर्वाह्लादनकारिणी।।१४८।।

सर्वसम्मोहिनी देवी सर्वस्तम्भनकारिणी।
त्रैलोक्यजृम्भिणी देवी तथा सर्ववशङ्करी।।१४९।।

त्रैलोक्यरञ्जिनी देवी सर्वोन्माद[१७९]स्वरूपिणी।
[१८०](सर्वमन्त्रमयी देवी, सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वाशापरिपूरिणी।
सर्वप्रियकरी देवी सर्वमङ्गलकारिणी।)
सर्वार्थ[१८१]साधनी देवी सर्वदुःखविमोचनी।।१५०।।

सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वदुःखविनाशिनी[१८२]।
सर्वाङ्गसुन्दरी माता सर्वसौभाग्यदायिनी।।१५१।।

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यफलप्रदा।
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी।।१५२।।

सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपाप[१८३]विनाशिनी।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षा[१८४]स्वरूपिणी।।१५३।।

सर्वलक्ष्मीमयी नित्या सर्वेप्सितफलप्रदा।
सर्वदुष्टप्रशमनी परमानन्ददायिनी।।१५४।।

---

(१७६) सर्वज्ञानमयी, (१७७) सर्वयज्ञमयी यज्ञा, (१७८) सर्वविद्राविणी परा, (१७९) सर्वसम्पत्तिदायिनी, (१८०) अन्य ग्रन्थों में ये तीन पंक्तियाँ हैं। (१८१) सर्वकामप्रदा देवी, (१८२) सर्वविघ्नविनाशिनी, (१८३) सर्वपापहरा तथा (१८४) सर्वेक्षाया: स्वरूपिणी।

त्रैलोक्यनिलया त्रिस्था त्रिमाता त्रितलस्थिता।
त्रिविधा च त्रयी माया त्रैलोक्या त्रिपुराक्षरा।।१५५।।
त्रियादवस्था त्रिविधा त्रिपुरा त्रिपुरास्थिता।
त्रिधाम्नी त्रिदशाध्यक्षा त्रिघ्नी त्रिपुरवासिनी।।१५६।।
त्रिवर्गा त्रिगुदी त्रिस्था त्रिमूर्त्तिस्त्रिपुरेश्वरी।
त्रिविधा त्रिदिवेशानी त्रिभिस्त्रिपुरसुन्दरी।।१५७।।
त्रिपुरा श्रीस्त्रिजननी त्रिभुक् त्रिपुरभैरवी। ॐ।।१५८।।

उपर्युक्त चार श्लोकों का पाठ सभी ग्रन्थों में इस प्रकार है—

त्रिकोणनिलया त्रिस्था त्रिमाया त्रितनुस्थिता।
त्रिवेणी त्रिपथा त्रिस्था त्रिमूर्ति: त्रिपुरेश्वरी॥
त्रिधाम्नी त्रिदशाध्यक्षा त्रिवित् त्रिपुरवासिनी।
त्रयी विद्या च त्रिशिरा, त्रैलोक्या च त्रिपुष्करा॥
त्रिकोटरस्था त्रिविधा त्रिपुरा त्रिपुरात्मिका।
त्रिपुराश्री त्रिजननी त्रिपुरा त्रिपुरसुन्दरी।

फलश्रुति

इति श्रीपुरसुन्दर्या मन्त्रं नामसहस्रकम्।
गुह्याद् गुह्यतरं पुत्र तव प्रीत्या प्रकीर्त्तितम्।।१५९।।
गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं प्रयत्नतः।
नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं जपः।।१६०।।
नातः परतरं पुण्यं नातः परतरा गतिः।
स्तोत्रं नामसहस्राख्यं मम वक्त्रविनिर्गतम्।।१६१।।
यः पठेत् परया भक्त्या शृणुयाद् वा समाहितः।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात्।।१६२।।

प्रिय पुत्र! तुम्हारे प्रीति-सम्पादन के लिये मैंने देवी महात्रिपुरसुन्दरी के सहस्र नामों का प्रकाशन किया। यह स्तोत्र अत्यन्त गुप्त है, अत: इसकी गोपनीयता की रक्षा के लिये भरसक प्रयास करना चाहिए। इससे श्रेष्ठ और कोई स्तोत्र या स्तव नहीं है। इससे श्रेष्ठ न तो कोई जप है और न किसी अन्य स्तोत्रपाठ का इससे अधिक फल है। मेरे मुख से निर्गत इस सहस्रनाम स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करने से अथवा इसका पाठ सुनने से मोक्ष चाहने वाले को मोक्ष और स्वर्गसुख चाहने वाले को स्वर्ग का सुख मिलता है॥१५९-१६२॥

कामानवाप्नुयात् कामी धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां यशोऽर्थी लभते यशः।।१६३।।

कन्यार्थी लभते कन्यां सुतार्थी लभते सुतम्।
गुर्विणी जनयेत् पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम्।।१६४।।

मूर्खोऽपि लभते शास्त्रं चौरोऽभिलभते गतिम्।।१६५।।

धन चाहने वाले को धन, विद्या चाहने वाले को विद्या, विवाह के लिये कन्या चाहने वाले को सुयोग्य कन्या, यश:कामी को यश एवं कीर्ति, पुत्र चाहने वाले को पुत्र, गर्भवती स्त्री को पुत्र तथा सौभाग्यकांक्षिणी कन्या को सुयोग्य वर की प्राप्ति होती है। मूर्ख और मन्दबुद्धि व्यक्ति को शास्त्रज्ञान एवं हीन से हीन व्यक्ति को भी सद्गति मिलती है। दूसरे शब्दों में इसका पाठ करने अथवा पाठ सुनने से सभी कामनायें पूरी होती हैं।।१६३-१६५।।

संक्रान्त्याञ्च चतुर्दश्यामष्टम्याञ्च विशेषतः।
पौर्णमास्याममावास्यां नवम्यां भौमभार्गवे।।१६६।।

पठेद् वा पाठयेद् वापि श‍ृणुयाद् वा समाहितः।
गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं प्रयत्नतः।।१६७।।

स मुक्तः सर्वपापेभ्यः कामेश्वरसमो भवेत्।

लक्ष्मीवान् पुत्रवान् श्रीमान् वल्लभः सर्वयोषिताम्।।१६८।।

तस्य वश्यं भवेदाशु त्रैलोक्यं सचराचरम्।

अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, मंगलवार और शुक्रवार तथा संक्रान्ति के दिन जो व्यक्ति इसका पाठ करता है अथवा पाठ कराकर सुनता है, वह सब पापों से मुक्त होकर लक्ष्मीवान, पुत्रवान एवं कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। सारा संसार उस पर मोहित हो जाता है। सव लोक उसके वश में हो जाते हैं।।१६६-१६८।।

रुद्रं दृष्ट्वा यथा देवा विष्णुं दृष्ट्वा यथामराः।।१६९।।

पन्नगा गरुडं दृष्ट्वा सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः।
मण्डूका भोगिनं दृष्ट्वा मार्ज्जारं मूषिका यथा।।१७०।।

शत्रुवस्तु पालयन्ते तस्य वक्त्रावलोकनात्।
अग्निचौरभयं तस्य दर्शनान्नैव सम्भवेत्।।१७१।।

जिस तरह भगवान् शिव के रुद्ररूप को देखकर देवता, विष्णु को देखकर असुर, गरुड़ को देखकर साँप, सिंह को देखकर हाथी, साँप को देखकर मेंढक और बिल्ली को देखकर चूहे भाग जाते हैं, उसी तरह इस स्तोत्र का पाठ करने वाले व्यक्ति को देखकर उसके शत्रु भाग खड़े होते हैं। उसके दर्शनमात्र से अग्निभय और चोरभय समाप्त हो जाता है॥१६९-१७१॥

पातका बहवः सन्ति मेरुमन्दरसन्निभाः।
भस्मसात् कुरुते शीघ्रं तृणं वह्निहुतं यथा।।१७२।।

एकधा पठनादेव सर्वपापक्षयो भवेत्।
नश्यन्ति बहवो रोगा दशधावर्त्तनेन च।।१७३।।

शतधावर्त्तनादेव वाचां सिद्धिमवाप्नुयात्।
सहस्रं पठते यस्तु खेचरो जायते नरः।।१७४।।

सहस्रदशकं यस्तु पठेद् वै भक्तिमान् नरः।
सा तस्य जगतां धात्री प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्।।१७५।।

लक्षवारन्तु सम्पूर्णं स्तोत्रराजं पठेत् सुधीः।
भवपाशाद् विनिर्मुक्तो मम तुल्यो न संशयः।।१७६।।

जिस तरह आग की चिनगारी भूसे के ढेर को जलाकर राख कर देती है, उसी तरह इस स्तव के पाठ का फल मेरु-पर्वत के समान पापराशि को जला डालता है। इसका एक बार पाठ करने से सभी पाप कट जाते हैं, दस बार पाठ करने से रोगों का नाश हो जाता है, सौ बार पाठ करने से वाचा-सिद्धि, हजार बार पाठ करने से खेचरी-सिद्धि और दस हजार बार पाठ करने से भगवती का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। एक लाख बार पाठ करने से मनुष्य सब पापों से सर्वथा मुक्त होकर निस्सन्देह मेरे समान हो जाता है॥१७२-१७६॥

सर्वतीर्थेषु यत् पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत् फलम्।
सर्ववेदेषु यद्धर्म्मः सर्वदानेषु यत् फलम्।।१७७।।

सर्वशास्त्रेषु प्रोक्तेषु यत् फलं परिकीर्त्तितम्।
तत् फलं कोटिगुणितं सकृत् पाठाल्लभेन्नरः।।१७८।।

शास्त्रों में सभी तीर्थों के दर्शन करने, सभी प्रकार के यज्ञ करने, सभी प्रकार के दान देने तथा वेदविहित धर्म का पालन करने का जो फल बताया गया है, उससे सौ गुना अधिक फल इसका पाठ करने से मिलता है॥१७७-१७८॥

श्रुत्वा महातिबलवान् पुत्रवान् धनसम्पदः।।१७९।।
देहान्ते परमं स्थानं यत् सुरैरपि दुर्लभम्।
स यास्यति न सन्देहः स्तवराजस्य कीर्त्तनात्।।१८०।।

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ पञ्चविंशतितमः प्रकाशः॥२५॥

केवल पाठ करने से ही नहीं; अपितु इस स्तोत्र का श्रवण करने से भी मनुष्य क़ो यथोक्त फल की प्राप्ति होती है। इस स्तवराज के कीर्तन से मनुष्य इस जन्म में धन-सम्पत्ति, घर-परिवार, पुत्र-सन्तान आदि का सुख भोगकर मरणोपरान्त उस लोक में जाता है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है॥१७९-१८०॥

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के पच्चीसवें प्रकाश का
'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।२५।।

●

सहस्रनाम अर्चन

विनियोग—ॐ अस्य श्री महात्रिपुरसुन्दरी सहस्रनामस्तोत्रस्य दक्षिणामूर्तिः भगवान् वामदेव ऋषीः। गायत्री छन्दः। प्रक़टगुह्यतरसम्प्रदायकुलकौलिक-रहस्यातिरहस्य-परापररहस्याचिन्त्यप्रभावती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता। आकाश बीजम्। माया शक्तिः। कामबीजं कीलकम्। समस्तधर्मार्थकाममोक्षार्थे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीत्यर्थे सहस्रनामजपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—भगवान् श्री दक्षिणामूर्ति वामदेव ऋषीभ्यां नमः—शिरसि। गायत्री छन्दसे नमः—मुखे। प्रकट गुह्यतर सम्प्रदाय कुलकौलिक रहस्यातिरहस्य परापररहस्याचिन्त्यप्रभावती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः—हृदये। आकाशबीजाय नमः—गुह्ये। मायाशक्तये नमः—पादयोः। कामबीजकीलकाय नमः—नाभौ। समस्तधर्मार्थकाममोक्षार्थे श्रीमहात्रिपुरी देवताप्रीत्यर्थे सहस्रनामजपे विनियोगाय नमः—अञ्जलौ।

ध्यान—

आधारे तरुणार्कबिम्बसदृशं हेमप्रभं वाग्भवम्।
बीजं मन्मथमिन्द्रगोपसदृशं हृत्पंकजे संस्थितम्।।
चक्रं भालमयं शशाङ्करुचिरं बीजं तु तार्तीयकम्।
ये ध्यायन्ति पदत्रयं तव शिवे! ते यान्ति सूक्ष्मां गतिम्।।

।। मानस-पूजन ।।

ॐ 'लं' पृथ्वीतत्त्वात्मकं गन्धं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ 'हं' आकाशतत्त्वात्मकं पुष्पं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ 'यं' वायुतत्त्वात्मकं धूपं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ 'रं' अग्नितत्त्वात्मकं दीपं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ 'वं' सुधातत्त्वात्मकं नैवेद्यं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ 'सं' सर्वतत्त्वात्मकं ताम्बूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीप्रीतये समर्पयामि नमः।

विमर्श—उपर्युक्त विनियोग 'नाममन्त्रों' से जप के लिये है। यदि इन नाममन्त्रों से पूजन करना हो तो 'नामजपे विनियोगः' के स्थान पर 'नामपूजने विनियोगः' कहना चाहिए। यदि 'पूजन' के साथ तर्पण भी करना हो तो 'नामपूजने तर्पणे च विनियोगः' और यदि हवन करना हो तो 'नामहोमे विनियोगः' कहना चाहिये। प्रत्येक नाम-मन्त्र के आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं' की योजना करें।

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी सहस्रनामावली

प्रत्येक नाम-मन्त्र के आदि में त्रितार (ऐं ह्रीं श्रीं) की योजना करके नाम-मन्त्रों का जप (पूजन / तर्पण / हवन) करें। यथा—ऐं ह्रीं श्रीं कल्याण्यै नमः—आदि।

कल्याण्यै नमः
कमलायै नमः
काल्यै नमः
कराल्यै नमः
कामरूपिण्यै नमः
कामाख्यायै नमः
कामदायै नमः
काम्यायै नमः
कामनायै नमः
कामचारिण्यै नमः
कालरात्र्यै नमः
महारात्र्यै नमः
कौलिन्यै नमः
कौल्यरूपिण्यै नमः
कौमार्यै नमः
करुणामूर्त्तये नमः
कलिकल्मषनाशिन्यै नमः
कात्यायन्यै नमः
कलाधारायै नमः
कौमुद्यै नमः
कमलप्रियायै नमः
कीर्त्तिदायै नमः
मुक्तिदायै नमः
मेधायै नमः
नीतिज्ञायै नमः
नीतिवत्सलायै नमः
माहेश्वर्यै नमः
महामायायै नमः
महातेजसे नमः
महेश्वर्यै नमः
महालोलायै नमः
महाजिह्वायै नमः
महादंष्ट्रायै नमः
महाभुजायै नमः
महामोहान्धकारशमन्यै नमः
महामोक्षप्रकाशिन्यै नमः
महादारिद्र्यशमन्यै नमः
महाशत्रुविनाशिन्यै नमः
महाशक्तये नमः
महाशूरायै नमः
महिषासुरमर्दिन्यै नमः
महामायायै नमः
महावीर्यायै नमः
महापातकनाशिन्यै नमः
महाकामायै नमः
महाकाल्यै नमः
महापातकहारिण्यै नमः
महामन्त्रायै नमः
मन्त्रमय्यै नमः
मणिपूरकवासिन्यै नमः
मानस्यै नमः
मानदायै नमः
मान्यायै नमः
मनश्चक्षुरगोचरायै नमः

गणमात्रे नमः
गायत्र्यै नमः
गणगन्धर्वसेवितायै नमः
गिरिजायै नमः
गिरिशायै नमः
साध्व्यै नमः
गिरिस्थायै नमः
गिरिसम्भवायै नमः
चण्डेश्वर्यै नमः
चण्डरूपायै नमः
प्रचण्डायै नमः
चण्डमालिन्यै नमः
चर्चितायै नमः
चर्चितकलायै नमः
चण्डिकायै नमः
चण्डरूपिण्यै नमः
यज्ञेश्वर्यै नमः
यज्ञरूपायै नमः
जपयज्ञपरायणायै नमः
यज्ञमात्रे नमः
यज्ञभोक्त्र्यै नमः
यज्ञेश्यै नमः
यज्ञसम्भवायै नमः
यज्ञसिद्ध्यै नमः
यज्ञक्रियासिद्ध्यै नमः
यज्ञांग्यै नमः
यज्ञरक्षिकायै नमः
यज्ञप्रियायै नमः
यज्ञरूपायै नमः
याज्ञ्यै नमः

यज्ञकृतालयायै नमः
जालन्धर्यै नमः
जगन्मात्रे नमः
जातवेदायै नमः
जगत्प्रियायै नमः
जितेन्द्रियायै नमः
जितक्रोधायै नमः
जनन्यै नमः
जन्मदायिन्यै नमः
गङ्गायै नमः
गोदावर्यै नमः
गौर्यै नमः
गोमत्यै नमः
शतद्रुकायै नमः
घर्घरायै नमः
वेदगर्भायै नमः
देविकायै नमः
करसम्भवायै नमः
सिन्धवे नमः
मन्दाकिन्यै नमः
क्षिप्रायै नमः
यमुनायै नमः
सरस्वत्यै नमः
चन्द्रभागायै नमः
विपाशायै नमः
गण्डक्यै नमः
विन्ध्यवासिन्यै नमः
नर्मदायै नमः
कद्रुकावेर्यै नमः
वेत्रवत्यै नमः

कौशिक्यै नमः
महेन्द्रतनयायै नमः
अहल्यायै नमः
चम्पकावत्यै नमः
अयोध्यायै नमः
मथुरायै नमः
मायायै नमः
काश्यै नमः
काञ्च्यै नमः
अवन्तिकायै नमः
पुर्यै नमः
द्वारावत्यै नमः
तीर्थायै नमः
महाकिल्विषनाशिन्यै नमः
पद्मिन्यै नमः
पद्महस्तायै नमः
पद्मकिञ्जल्कवासिन्यै नमः
पद्मवक्त्रायै नमः
पद्माक्ष्यै नमः
पद्मस्थायै नमः
पद्मसम्भवायै नमः
ह्रींकार्यै नमः
कुण्डल्यै नमः
रात्र्यै नमः
हृत्पद्मस्थायै नमः
सुलोचनायै नमः
श्रींकार्यै नमः
भूषणायै नमः
लक्ष्म्यै नमः
क्लींकार्यै नमः
क्लेशनाशिन्यै नमः
हरिप्रियायै नमः
हरेः मात्रे नमः
हरिनेत्रकृताश्रयायै नमः
हरिवक्त्रोद्भवायै नमः
शान्तायै नमः
हरेर्वक्षःस्थलस्थितायै नमः
वैष्णव्यै नमः
विष्णुरूपायै नमः
विष्णुमातास्वरूपिण्यै नमः
विष्णुमायायै नमः
विशालाक्ष्यै नमः
विशालनयनोज्ज्वलायै नमः
विश्वेश्वर्यै नमः
विश्वात्मने नमः
विश्वेश्यै नमः
विश्वरूपिण्यै नमः
विश्वात्मिकायै नमः
विश्वविद्यायै नमः
विश्वपाशविदारिण्यै नमः
विश्वासकारिण्यै नमः
विश्वायै नमः
विश्वशक्त्यै नमः
विचक्षणायै नमः
शिवेश्वर्यै नमः
शिवाराध्यायै नमः
शिवनाथायै नमः
शिवप्रियायै नमः
शिवमात्रे नमः
शिवाख्यायै नमः

शिवदायै नमः
शिवरूपिण्यै नमः
भवेश्वर्यै नमः
भवाराध्यायै नमः
भवान्यै नमः
भवनायिकायै नमः
भवमात्रे नमः
भावगम्यायै नमः
भवकण्टकनाशिन्यै नमः
भवप्रियायै नमः
भवानन्दायै नमः
भवकण्टकहारिण्यै नमः
गत्यै नमः
वरेण्यायै नमः
सावित्र्यै नमः
ब्रह्माण्यै नमः
ब्रह्मरूपिण्यै नमः
ब्रह्मेश्यै नमः
ब्रह्मदायै नमः
ब्राह्म्यै नमः
ब्रह्मस्थायै नमः
ब्रह्मवादिन्यै नमः
दुर्गस्थायै नमः
दुर्गरूपायै नमः
दुर्गायै नमः
दुर्गार्तिनाशिन्यै नमः
सुगमायै नमः
दुर्गमायै नमः
दान्तायै नमः
दयायै नमः

गौर्यै नमः
दुरापहायै नमः
दुरितघ्न्यै नमः
दूराध्यक्षायै नमः
दुरायै नमः
दुष्कृतनाशिन्यै नमः
पञ्चास्यायै नमः
पञ्चम्यै नमः
पूर्णायै नमः
पूर्णपीठनिवासिन्यै नमः
सत्त्वस्थायै नमः
सत्त्वरूपायै नमः
सत्त्वदायै नमः
सत्त्वसम्भवायै नमः
रजस्थायै नमः
रजोरूपायै नमः
रजोगुणसमुद्भवायै नमः
तमस्थायै नमः
तमोरूपायै नमः
तामस्यै नमः
तामसप्रियायै नमः
तमोगुणसमुद्भूतायै नमः
सात्त्विक्यै नमः
राजसीकलायै नमः
काष्ठायै नमः
मुहूर्तायै नमः
निमिषायै नमः
अनिमिषायै नमः
अर्धमासायै नमः
मासायै नमः

संवत्सरस्वरूपिण्यै नमः
युगस्थायै नमः
युगरूपायै नमः
कल्पस्थायै नमः
कल्परूपिण्यै नमः
नानारत्नविचित्राङ्गायै नमः
नानाभरणभूषितायै नमः
विश्वाम्बिकायै नमः
विश्वमात्रे नमः
विश्वपाशविदारिण्यै नमः
विशालकारिण्यै नमः
विश्वायै नमः
विश्वशक्त्यै नमः
विलक्षणायै नमः
जवाकुसुमसंकाशयै नमः
दाडिमकुसुमारुणायै नमः
चतुरंग्यै नमः
चतुर्बाहायै नमः
चतुरायै नमः
चारुहासिन्यै नमः
सर्वेश्यै नमः
सर्वदायै नमः
सर्वायै नमः
सर्वज्ञायै नमः
सर्वदायिन्यै नमः
विश्वेश्वर्यै नमः
सर्वाद्यायै नमः
शर्वाण्यै नमः
नलिन्यै नमः
नन्दिन्यै नमः
नन्दायै नमः
आनन्दायै नमः
आनन्दवर्त्तिन्यै नमः
सर्वभूतेषु व्यापिन्यै नमः
भवभारविनाशिन्यै नमः
कुलीनायै नमः
कुलमध्यस्थायै नमः
कुलधर्मोपदेशिन्यै नमः
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यायै नमः
पाशाङ्कुशकरोद्यतायै नमः
सूर्यकोटिसहस्राभायै नमः
चन्द्रकोटिनिभाननायै नमः
गणेशकोटिलावण्यायै नमः
विष्णुकोट्यरिमर्दिन्यै नमः
दावाग्निकोटिज्वलिन्यै नमः
रुद्रकोटिस्वरूपिण्यै नमः
समुद्रकोटिगम्भीरायै नमः
वायुकोटिमहाबलायै नमः
आकाशकोटिविस्तारायै नमः
यमकोटिभयङ्करायै नमः
मेरुकोटिसमुच्छ्रायायै नमः
गणकोटिसमृद्धिदायै नमः
निष्कलङ्कायै नमः
निराधारायै नमः
निर्गुणायै नमः
गुणवर्जितायै नमः
अशोकायै नमः
शोकवर्जितायै नमः
तापत्रयविवर्जितायै नमः
विशिष्टायै नमः

विश्वजनन्यै नमः
विश्वाख्यायै नमः
विश्वविवर्द्धिन्यै नमः
चित्रायै नमः
विचित्रायै नमः
चित्राङ्गायै नमः
हेतुगर्भायै नमः
रणेश्वर्यै नमः
इच्छाशक्त्यै नमः
ज्ञानशक्त्यै नमः
क्रियाशक्त्यै नमः
शुचिस्मितायै नमः
श्रुत्यै नमः
श्रुतिमय्यै नमः
सत्यायै नमः
श्रुतिरूपायै नमः
श्रुतिप्रियायै नमः
श्रुतिप्राज्ञायै नमः
महातत्त्वायै नमः
पञ्चतत्त्वोपरिस्थितायै नमः
पार्वत्यै नमः
हिमवत्पुत्र्यै नमः
पारस्थायै नमः
पाररूपिण्यै नमः
जयन्त्यै नमः
भद्रकाल्यै नमः
अहल्यायै नमः
कुलनायिकायै नमः
भूतधात्र्यै नमः
भूतेश्यै नमः
भूतस्थायै नमः
भूतभाविन्यै नमः
महाकुण्डलिनीशक्त्यै नमः
महाविभववर्द्धिन्यै नमः
हंसाख्यै नमः
हंसारूपायै नमः
हंसस्थायै नमः
हंसरूपिण्यै नमः
सोमाग्निमध्यस्थायै नमः
सूर्याग्निमध्यस्थायै नमः
मूलाधारनिवासिन्यै नमः
द्वादशारसरोजस्थायै नमः
सूर्यमण्डलवासिन्यै नमः
अकलंकायै नमः
शशांकाभायै नमः
षोडशारनिवासिन्यै नमः
द्विपत्रदलमध्यस्थायै नमः
ललाटतलवासिन्यै नमः
डाकिन्यै नमः
राकिण्यै नमः
लाकिन्यै नमः
काकिन्यै नमः
शाकिन्यै नमः
हाकिन्यै नमः
षट्चक्रनिवासिन्यै नमः
सृष्ट्यै नमः
स्थित्यै नमः
विनाशायै नमः
सृष्टि अन्तकारिण्यै नमः
स्थिति अन्तकारिण्यै नमः

अन्त्यान्तकारिण्यै नमः
श्रीकण्ठप्रियायै नमः
श्रीकण्ठायै नमः
नादाख्यायै नमः
बिन्दुमालिन्यै नमः
चतुष्षष्टिकलाधारायै नमः
देहदण्डकलाश्रयायै नमः
मायायै नमः
काल्यै नमः
द्युत्यै नमः
मेधायै नमः
स्वधायै नमः
पुष्ट्यै नमः
महाधृत्यै नमः
हिङ्गुलायै नमः
मङ्गलायै नमः
सीतायै नमः
सुषुम्णामध्यगामिन्यै नमः
परायै नमः
घोरायै नमः
करालाक्ष्यै नमः
विजयायै नमः
जयशालिन्यै नमः
हृत्पद्मनिलयायै नमः
भीमायै नमः
महाभैरवनादिन्यै नमः
आकाशलिंगसम्भूतायै नमः
भुवनोद्यानवासिन्यै नमः
महत्सूक्ष्मायै नमः
कङ्काल्यै नमः
भीमरूपायै नमः
महाबलायै नमः
मेनकागर्भसम्भूतायै नमः
तप्तकाञ्चनसन्निभायै नमः
अन्तरस्थायै नमः
कूटबीजस्थायै नमः
त्रिकूटाचलवासिन्यै नमः
वर्णाक्ष्यै नमः
वर्णरहितायै नमः
पञ्चाशद्वर्णरूपिण्यै नमः
विद्याक्षर्यै नमः
लोकधात्र्यै नमः
अप्सरसे नमः
अप्सराप्रियायै नमः
दाक्षायै नमः
प्रजावत्यै नमः
धन्यायै नमः
धनधान्यसमृद्धिदायै नमः
ईशान्यै नमः
भुवनेशान्यै नमः
भुवनायै नमः
भुवनेश्वर्यै नमः
अनन्तायै नमः
अनन्तमहिमायै नमः
जगत्सारायै नमः
जगद्भवायै नमः
अचिन्त्यशक्तिमहिमायै नमः
चिन्त्यशक्त्यै नमः
चिन्त्याचिन्त्यस्वरूपिण्यै नमः
ज्ञानगम्यायै नमः

ज्ञानमूर्त्तये नमः
ज्ञानिन्यै नमः
ज्ञानशालिन्यै नमः
असितायै नमः
घोररूपायै नमः
सुधाधारायै नमः
सुधावहायै नमः
भास्करायै नमः
भास्वत्यै नमः
भात्यै नमः
भास्वद् दृष्टानुसायिन्यै नमः
अनुसूयायै नमः
क्षमानन्दायै नमः
दुर्लभायै नमः
भुवनात्मिकायै नमः
विश्ववन्द्यायै नमः
विश्ववीरायै नमः
विश्वघ्न्यै नमः
विश्वसंस्थितायै नमः
शीलस्थायै नमः
शीलरूपायै नमः
शीलायै नमः
शीलप्रदायिन्यै नमः
बोधन्यै नमः
बोधकुशलायै नमः
बोधनायै नमः
बोधिन्यै नमः
विद्योतिन्यै नमः
विचित्रात्मने नमः
विद्युत्पाटलसन्निभायै नमः
विश्वयोन्यै नमः
महायोन्यै नमः
कर्मयोन्यै नमः
प्रियंवदायै नमः
रोहिण्यै नमः
रोगशमन्यै नमः
महारोगापहारिण्यै नमः
वसुदायै नमः
रुद्ररूपायै नमः
रौद्र्यै नमः
रौद्रार्तिनाशिन्यै नमः
दीक्षायै नमः
दाक्षायण्यै नमः
दक्षायै नमः
दक्षयज्ञविनाशिन्यै नमः
यशस्विन्यै नमः
यशोदायै नमः
यशोदागर्भसम्भवायै नमः
देवक्यै नमः
देवमात्रे नमः
राधिकायै नमः
कृष्णवल्लभायै नमः
अरुन्धत्यै नमः
शचीन्द्राण्यै नमः
गान्धार्यै नमः
गन्धमालिन्यै नमः
ध्यानातीतायै नमः
ध्यानगम्यायै नमः
ध्यानाख्यायै नमः
ध्यानधारिण्यै नमः

लम्बोदर्यै नमः
लम्बोष्ठ्यै नमः
जाम्बवत्यै नमः
जलोदर्यै नमः
महोदर्यै नमः
मुक्तकेश्यै नमः
मुक्तिकामार्थसिद्धिदायै नमः
तपस्विन्यै नमः
तपोनिष्ठायै नमः
सुपर्णायै नमः
धर्मवासिन्यै नमः
बाणचापधरायै नमः
धीरायै नमः
पाञ्चाल्यै नमः
पञ्चमप्रियायै नमः
गुह्यांग्यै नमः
सुभीमायै नमः
गुह्यतत्त्वानिरञ्जनायै नमः
अशरीरायै नमः
शरीरस्थांयै नमः
संसारार्णवतारिण्यै नमः
अमृतायै नमः
निष्कलायै नमः
भद्रायै नमः
सकलायै नमः
कृष्णपिंगलायै नमः
चक्रेश्वर्यै नमः
चक्रहस्तायै नमः
परचक्रविदारिण्यै नमः
पद्मरागप्रतीकाशायै नमः
निर्मलाकाशसन्निभायै नमः
अधःस्थायै नमः
ऊर्ध्वरूपायै नमः
ऊर्ध्वपद्मनिवासिन्यै नमः
कार्यकर्त्र्यै नमः
कारणकर्त्र्यै नमः
शश्वद्रूपेषु संस्थितायै नमः
रसज्ञायै नमः
रसमध्यस्थायै नमः
गन्धस्थायै नमः
गन्धरूपिण्यै नमः
परंब्रह्मस्वरूपायै नमः
परंब्रह्मनिवासिन्यै नमः
शब्दब्रह्मस्वरूपायै नमः
शब्दाख्यै नमः
शब्दवर्जितायै नमः
ऋद्ध्यै नमः
वृद्ध्यै नमः
परायै नमः
सिद्ध्यै नमः
सत्कीर्तिदीप्तसंस्थितायै नमः
आपूज्यायै नमः
शाम्भवीशक्त्यै नमः
सुन्दरांग्यै नमः
तत्त्वरूपिण्यै नमः
शाश्वत्यै नमः
भूतमात्रे नमः
महाभूताधिप्रियायै नमः
श्रुतिप्राज्ञायै नमः
धर्मसिद्ध्यै नमः

दक्षकन्यायै नम:
अपराजितायै नम:
कामसन्दीपन्यै नम:
कामायै नम:
सदाकामकुतूहलायै नम:
भोगापचारकुशलायै नम:
अमरायै नम:
कमलाननायै नम:
भक्तानुकम्पिन्यै नम:
मैत्र्यै नम:
शरणागतवत्सलायै नम:
क्षोभिण्यै नम:
मोहिन्यै नम:
स्तम्भिन्यै नम:
जृम्भिण्यै नम:
रथिन्यै नम:
ध्वजिन्यै नम:
सेनायै नम:
सर्वमन्त्रमय्यै नम:
त्रय्यै नम:
ज्ञानमुद्रायै नम:
महामुद्रायै नम:
जगन्मुद्रायै नम:
महोत्सवायै नम:
सहस्रभुजायै नम:
चिच्छक्त्यै नम:
सहस्राक्ष्यै नम:
सनातन्यै नम:
सिद्धलक्ष्म्यै नम:
महालक्ष्म्यै नम:
राज्यलक्ष्म्यै नम:
सुलक्षणायै नम:
यज्ञसारायै नम:
तप:सारायै नम:
धर्मसारायै नम:
जनेश्वर्यै नम:
विश्वोदर्यै नम:
विश्वपूज्यायै नम:
विश्वाख्यायै नम:
विश्वतोमुख्यै नम:
विश्वास्यायै नम:
विश्वश्रवणायै नम:
विश्वघ्राणायै नम:
विश्वप्राणायै नम:
विश्वपदात्मिकायै नम:
तरुणादित्यसंकाशायै नम:
किरणानेकसंकुलायै नम:
जटाजूटधरायै नम:
मुख्यायै नम:
शुष्कमांसायै नम:
अतिभीषणायै नम:
द्वीपिचर्मपरीधानायै नम:
चीरवल्कलधारिण्यै नम:
त्रिशूलकरायै नम:
डमरूकरायै नम:
नरमालाविभूषणायै नम:
अत्युग्ररूपिण्यै नम:
उग्रायै नम:
कल्पान्तदहनोपमायै नम:
त्रैलोक्यधारिण्यै नम:

साध्यायै नमः
सिद्ध्यै नमः
साधकवत्सलायै नमः
सर्वविद्यामय्यै नमः
सारायै नमः
वैरिवर्गविनाशिन्यै नमः
सुभगायै नमः
सुमुख्यै नमः
रम्यायै नमः
मुखरायै नमः
सोमभूषणायै नमः
शुद्धस्फटिकसङ्काशायै नमः
महावृषभवाहिन्यै नमः
महिष्यै नमः
महिषारूढायै नमः
महिषासुरमर्दिन्यै नमः
दमिन्यै नमः
दामिन्यै नमः
दान्तायै नमः
दयायै नमः
दोग्ध्र्यै नमः
दुरापगायै नमः
अग्निजिह्वायै नमः
महाघोरायै नमः
घोरघोरताननायै नमः
नारायण्यै नमः
नारसिंह्यै नमः
नृसिंहहृदये स्थितायै नमः
योगेश्वर्यै नमः
योगरूपायै नमः
योगमात्रे नमः
योगिन्यै नमः
खेचर्यै नमः
भूचर्यै नमः
खेलायै नमः
निर्वाणपदसंश्रयायै नमः
नागिन्यै नमः
नागकन्यायै नमः
सुवेनायै नमः
नागनायिकायै नमः
विषज्वालावत्यै नमः
विषतीक्ष्णायै नमः
फणशतभूषणायै नमः
भीमवक्त्रायै नमः
महावक्त्रायै नमः
कोटिवक्त्रधारिण्यै नमः
महासत्त्वायै नमः
धर्माख्यायै नमः
धर्मादिसुखदायिन्यै नमः
कृष्णमूर्द्धायै नमः
महामूर्द्धायै नमः
घोरमूर्द्धायै नमः
वराननायै नमः
सर्वेन्द्रियायै नमः
सर्वसंस्थायै नमः
सर्वेन्द्रियमनोमय्यै नमः
सर्वसंग्रामजयदायै नमः
सर्वप्रहणोद्यतायै नमः
सर्वपीडोपशमन्यै नमः
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यै नमः

सर्वैश्वर्यसमुत्पत्त्यै नमः
सर्वग्रहविनाशिन्यै नमः
भीतिघ्न्यै नमः
भक्तिगम्यायै नमः
भक्तापमृत्युनाशिन्यै नमः
मातङ्ग्यै नमः
मत्तमातंग्यै नमः
मत्तङ्गकुलमण्डितायै नमः
गण्डमण्डितसंकाशायै नमः
गुञ्जाहारविभूषणायै नमः
सङ्गीतरङ्गरचनायै नमः
वीणावाद्यकुतूहलायै नमः
अमृतोदधिमध्यस्थायै नमः
प्रवालरसनायै नमः
उज्ज्वलायै नमः
मणिमण्डपस्थायै नमः
रत्नसिंहासनस्थितायै नमः
परमानन्दमुदितायै नमः
ईषत्प्रहसिताननायै नमः
कुमुदायै नमः
ललितायै नमः
लोलायै नमः
लाक्षाललितलोचनायै नमः
दिग्वस्त्रायै नमः
देवदूत्यै नमः
देवदेवाधिदेवतायै नमः
सिंहोपरि समारूढायै नमः
महाचलनिवासिन्यै नमः
अट्टट्टहासिन्यै नमः
घोरायै नमः
घोरदैत्यविनाशिन्यै नमः
अत्युग्रायै नमः
रक्तवर्णायै नमः
नागकेयूरमण्डितायै नमः
मुक्ताहारलतोपेतायै नमः
तुङ्गपयोधरायै नमः
पीनपयोधरायै नमः
रक्तोत्पलदलाकारायै नमः
मदघूर्णितलोचनायै नमः
समस्तदेवतामूर्त्यै नमः
असुरक्षयकारिण्यै नमः
खड्‌गिन्यै नमः
शूलहस्तायै नमः
चक्रिण्यै नमः
अक्षमालिन्यै नमः
शंखिन्यै नमः
चापिन्यै नमः
वाण्यै नमः
वज्रिण्यै नमः
रक्तदन्तिकायै नमः
आनन्दोदधिमध्यस्थायै नमः
कटिसूत्रैरलंकृतायै नमः
नानाभरणदीप्ताङ्ग्यै नमः
नानामणिभूषितायै नमः
जगदानन्दसम्भूत्यै नमः
चिन्तामणिगुणाकरायै नमः
त्रैलोक्यनमितायै नमः
त्रैलोक्यपूज्यायै नमः
चिन्मयानन्दरूपिण्यै नमः
त्रैलोक्यवर्द्धिन्यै नमः

दुःखनाशिन्यै नमः
दुःस्वप्ननाशिन्यै नमः
घोराग्निदाहशमन्यै नमः
बीजदैवादिमालिन्यै नमः
महापराधराशिघ्न्यै नमः
महाचौरभयापहायै नमः
रागादिरोगरहितायै नमः
जरामरणवर्जितायै नमः
चन्द्रमण्डलसङ्काशायै नमः
पीयूषार्णवसम्भवायै नमः
सर्वदेवस्तुतादेव्यै नमः
सर्वसिद्ध्यै नमस्कृतायै नमः
अचिन्त्यशक्तिरूपायै नमः
मणिमन्त्रमहौषध्यै नमः
स्वस्त्यै नमः
स्वस्तिमत्यै नमः
बालायै नमः
मलयाचलवासिन्यै नमः
धात्र्यै नमः
विधात्र्यै नमः
सम्भावायै नमः
रतिज्ञायै नमः
रतिदायिन्यै नमः
रुद्राण्यै नमः
रुद्ररूपायै नमः
रौद्र्यै नमः
रौद्रार्त्तिनाशिन्यै नमः
सर्वज्ञायै नमः
धर्मज्ञायै नमः
रसज्ञायै नमः
दीनवत्सलायै नमः
अनाहतायै नमः
त्रिनयनायै नमः
निर्भवायै नमः
निर्वृतिःपरायै नमः
पराघोरायै नमः
करालाक्ष्यै नमः
सुमत्यै नमः
प्रियभाषिण्यै नमः
महाम्बिकायै नमः
मन्त्रमस्यायै नमः
मन्त्रमात्रे नमः
सुपुत्रिण्यै नमः
शुद्धानन्दायै नमः
महाभद्रायै नमः
निर्गतायै नमः
निर्गुणात्मिकायै नमः
धारिण्यै नमः
धारिण्यै नमः
पृथिव्यै नमः
धरायै नमः
धात्र्यै नमः
वसुन्धरायै नमः
मेरुमन्दरमध्यस्थायै नमः
स्थिरायै नमः
शङ्करवल्लभायै नमः
श्रीमत्यै नमः
श्रीमतां श्रेष्ठायै नमः
श्रीकर्यै नमः
श्रीविभाविन्यै नमः

श्रीदात्र्यै नमः
श्रीविधात्र्यै नमः
श्रीमत्यै नमः
श्रीमतां गत्यै नमः
उमायै नमः
शार्ङ्गिण्यै नमः
कृष्णायै नमः
कुटिलायै नमः
कुटिलालकायै नमः
त्रिलोचनायै नमः
त्रिलोकस्थायै नमः
पुण्यस्थायै नमः
पुण्यकीर्त्तिदायै नमः
अमृतायै नमः
सत्यसङ्कल्पायै नमः
सासत्यायै नमः
ग्रन्थिभेदिन्यै नमः
परेश्यै नमः
परमाराध्यायै नमः
पराविद्यायै नमः
परात्परायै नमः
सुन्दराङ्ग्यै नमः
सुवर्णाभायै नमः
सुरासुरनमस्कृतायै नमः
रसदायै नमः
पुष्टिदायै नमः
पुष्ट्यै नमः
मानदायै नमः
मानसप्रियायै नमः
कृष्णाङ्गवाहिन्यै नमः
कृष्णायै नमः
कृष्णसहोदर्यै नमः
शाम्भव्यै नमः
शम्भुरूपायै नमः
शुभस्थायै नमः
शम्भुसम्भवायै नमः
बिम्बोदर्यै नमः
योगमुद्रायै नमः
योगरूपायै नमः
योगिन्यै नमः
वागीश्वर्यै नमः
योगनिद्रायै नमः
योगिनीकोटिसेवितायै नमः
कौलिकायै नमः
नन्दिकन्यायै नमः
शृङ्गारपीठवासिन्यै नमः
क्षेमङ्कर्यै नमः
सर्वरूपायै नमः
दिव्यरूपायै नमः
दिवीश्वरायै नमः
धूम्रवक्त्रायै नमः
धूम्रनेत्रायै नमः
धूम्रकेश्यै नमः
धूसरायै नमः
पिनाक्यै नमः
रुद्रवेताल्यै नमः
महावेतालरूपिण्यै नमः
भगिन्यै नमः
भागिन्यै नमः
दक्षायै नमः

विष्णुविद्यायै नम:
अनाश्रितायै नम:
मन्थरायै नम:
जठरायै नम:
तीव्रायै नम:
अग्निजिह्वायै नम:
भयापहायै नम:
पशुघ्न्यै नम:
पशुरूपायै नम:
पशुहायै नम:
पशुवाहिन्यै नम:
पितासन्तोषितायै नम:
धातायै नम:
पशुपाशविनाशिन्यै नम:
चन्द्रप्रभायै नम:
चन्द्ररेखायै नम:
चन्द्रकान्तिविभूषणायै नम:
कुङ्कुमाङ्कितसर्वांग्यै नम:
सुधायै नम:
सद्गुरुलोचनायै नम:
शुक्लाम्बरधरायै नम:
वीणापुस्तकधारिण्यै नम:
ऐरावतपद्मधरायै नम:
श्वेतपद्मासनस्थायै नम:
रक्ताम्बरायै नम:
रक्ताङ्ग्यै नम:
रक्तपद्मविलोचनायै नम:
निष्ठुरायै नम:
क्रूरहृदयायै नम:
अक्रूरायै नम:
अमृतभाषिण्यै नम:
निरूपाक्ष्यै नम:
सहस्राक्ष्यै नम:
शताक्ष्यै नम:
वहुलोचनायै नम:
दुस्तरायै नम:
तारिण्यै नम:
तारायै नम:
तरुण्यै नम:
ताररूपिण्यै नम:
सुधाधारायै नम:
धर्मज्ञायै नम:
धर्मशास्त्रोपदेशिन्यै नम:
भवेश्वर्यै नम:
भवाराध्यायै नम:
भगिन्यै नम:
भगनायिकायै नम:
भगविद्यायै नम:
भगक्लिन्नायै नम:
भगयोन्यै नम:
भगप्रदायै नम:
भगेश्यै नम:
भगरूपायै नम:
भगगुह्यायै नम:
भगावहायै नम:
भगोदर्यै नम:
भगानन्दायै नम:
भगाद्यायै नम:
भगमालिन्यै नम:
मालिन्यै नम:

माधव्यै नमः
माध्व्यै नमः
मधुरूपायै नमः
महोत्कटायै नमः
चन्द्रिकायै नमः
चन्द्रिकायै नमः
ज्योत्स्नायै नमः
विश्वचक्षुस्तमोपहायै नमः
सुप्रसन्नायै नमः
महादूत्यै नमः
यमदूत्यै नमः
भयङ्कर्यै नमः
उन्मादिन्यै नमः
महारूपायै नमः
दिव्यरूपायै नमः
सुरार्च्चितायै नमः
त्रैलोक्यफलिन्यै नमः
नित्यायै नमः
नित्यानन्दमदोद्धतायै नमः
मदिरानन्दकैवल्यायै नमः
मदिराक्ष्यै नमः
मदालसायै नमः
सिद्धेश्वर्यै नमः
सिद्धविद्यायै नमः
सिद्धाद्यायै नमः
सिद्धवन्दितायै नमः
सिद्धार्च्चितायै नमः
सिद्धमात्रे नमः
सिद्ध्यै नमः
सर्वार्थसिद्धिदायै नमः
मायामय्यै नमः
गुणातीतायै नमः
परंज्योतिःस्वरूपिण्यै नमः
परेश्यै नमः
परगायै नमः
पारायै नमः
परासिद्ध्यै नमः
परागत्यै नमः
विमलायै नमः
मोहिन्यै नमः
आद्यायै नमः
मधुपानपरायणायै नमः
वेदवेदाङ्गजनन्यै नमः
सर्वशास्त्रविशारदायै नमः
सर्वदेवमयीनित्यायै नमः
सर्वशास्त्रमय्यै नमः
सर्वयज्ञमयी देव्यै नमः
सर्वधर्ममयीश्वर्यै नमः
सर्वयज्ञायै नमः
महायज्ञायै नमः
सर्वमन्त्राधिकारिण्यै नमः
सर्वसम्पत्त्यधिष्ठात्र्यै नमः
सर्वविद्यावत्त्यै नमः
सर्वसंक्षोभिणी देव्यै नमः
सर्वमङ्गलकारिण्यै नमः
त्रैलोक्याकर्षिणी देव्यै नमः
सर्वाह्लादनकारिण्यै नमः
सर्वसम्मोहिनी देव्यै नमः
सर्वस्तम्भनकारिण्यै नमः
त्रैलोक्यजृम्भिणी देव्यै नमः

सर्ववशङ्करी देव्यै नमः
त्रैलोक्यरञ्जिनी देव्यै नमः
सर्वोन्मादस्वरूपिणी देव्यै नमः
सर्वमन्त्रमयी देव्यै नमः
सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी देव्यै नमः
सर्वसिद्धिप्रदादेव्यै नमः
सर्वाशापरिपूरिणी देव्यै नमः
सर्वप्रियङ्करी देव्यै नमः
सर्वमङ्गलकारिणी देव्यै नमः
सर्वार्थसाधिनी देव्यै नमः
सर्वदु:खविमोचन्यै नमः
सर्वमृत्युप्रशमन्यै नमः
सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः
सर्वाङ्गसुन्दरी देव्यै नमः
सर्वसौभाग्यदायिन्यै नमः
सर्वज्ञायै नमः
सर्वशक्त्यै नमः
सर्वैश्वर्यफलप्रदायै नमः
सर्वज्ञानमयी देव्यै नमः
सर्वव्याधिविनाशिन्यै नमः
सर्वाधारस्वरूपायै नमः
सर्वपापविनाशिन्यै नमः
सर्वानन्दमयी देव्यै नमः
सर्वरक्षास्वरूपिण्यै नमः
सर्वलक्ष्मीमयी नित्यायै नमः
सर्वेप्सितफलप्रदायै नमः
सर्वदुष्टप्रशमिन्यै नमः
परमानन्ददायिन्यै नमः
त्रिकोणनिलयायै नमः
त्रिस्थायै नमः
त्रिमात्रायै नमः
त्रितनुस्थितायै नमः
त्रिवेण्यै नमः
त्रिपथायै नमः
त्रिस्थायै नमः
त्रिमूर्त्यै नमः
त्रिपुरेश्वर्यै नमः
त्रिधाम्न्यै नमः
त्रिदशाध्यक्षायै नमः
त्रिघ्न्यै नमः
त्रिपुरवासिन्यै नमः
त्रयीविद्यायै नमः
त्रिशिरायै नमः
त्रैलोक्यायै नमः
त्रिपुष्करायै नमः
त्रिकोटरस्थायै नमः
त्रिविधायै नमः
त्रिपुरायै नमः
त्रिपुरात्मिकायै नमः
त्रिपुराश्रियै नमः
त्रिजनन्यै नमः
त्रिपुरायै नमः
त्रिपुरसुन्दर्यै नमः

जप/पूजन के बाद पुनः न्यास, ध्यान और मानस पूजन करके जप/पूजन का फल 'गुह्याति ------ गोप्त्री०' मन्त्र से भगवती को समर्पित करें।

षड्विंशतितमः प्रकाशः

[महायन्त्रसंस्कारकथनम्]

अथोच्यते महायन्त्रसंस्कारः सर्वभूतिदः।।१।।

शुभेऽह्नि स्नानमाचर्य शुभे लग्ने शुभे क्षणे।
कृतनित्यक्रियो मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।।२।।

यन्त्र-संस्कार—अब मैं यन्त्र-संस्कार के कल्याणकारी विधान का निरूपण कर रहा हूँ। बुद्धिमान् मन्त्रवित् साधक किसी अच्छे शुभ दिन में, शुभ लग्न में जबकि तारा-नक्षत्रादि अनुकूल हों, पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर यन्त्र का संस्कार करें॥१-२॥

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा कल्पोक्तन्यासमाचरेत्।
ततः सङ्कल्प्य शुद्धात्मा शिवमन्त्रविशोधितम्।।३।।

पञ्चगव्यं समानीय तत्र यन्त्रं समाहितः।
सुवर्णादिमणौ क्लृप्तं क्षिपेत् प्रणवमुच्चरन्।।४।।

भूत-शुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका तथा अपने कल्प-विधान में बताये गये न्यासों का सम्यक् रूप से सम्पादन करके यन्त्र-संस्कार करने का संकल्प ले। स्वर्ण अथवा स्फटिक आदि से निर्मित यन्त्र को प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए शिव-मन्त्र से विशोधित पञ्चगव्य में डाल दे॥३-४॥

तदुद्धृत्य सुवर्णादौ पात्रं संस्थाप्य मन्त्रवित्।
पञ्चामृतेन तीर्थेन जलेन शीतलेन च।।५।।

सहस्रशीर्षमन्त्रेण मूलमन्त्रपुरःसरम्।
सुस्नाप्य च विशुद्धेन जलमुत्तोल्य तैजसे।।६।।

सिंहासनादावारोप्य कुङ्कुमाद्यैर्विलेपयेत्।
पीठपूजां ततः कुर्यात् स्वकल्पोक्तविधानतः।।७।।

कुशैः स्पृशन् मन्त्रराजं शतमष्टोत्तरं जपेत्।।८।।

पञ्चगव्य में स्नान कराने के बाद मन्त्रवित् साधक यन्त्र को पञ्चगव्य से निकालकर स्वर्ण आदि के पात्र में रखें। तत्पश्चात् पञ्चामृत से तथा शुद्ध

शीतल तीर्थजल से मूल मन्त्रसहित 'सहस्रशीर्षा०' आदि मन्त्रों से स्नान कराये। फिर उसे स्वच्छ-पवित्र वस्त्र से पोंछकर स्वर्ण आदि धातु से बने सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके उस पर कुंकुम आदि का लेप करें। तत्पश्चात् अपने कल्प के अनुसार पीठपूजा करके कुशों से यन्त्र का स्पर्श करते हुए यन्त्र-गायत्री का १०८ बार जप करे॥५-८॥

[यन्त्रगायत्री]

प्रणवं 'यन्त्रराजाय विद्महे' पदमुद्धरेत्।
'महायन्त्राय धी'रूपं लिखेत्ततो 'मही'ति च॥९॥
'तन्नो यन्त्रः प्रचो'रूपं 'दयादे'षा प्रकीर्त्तिता।
इमां यन्त्रस्य गायत्रीं जप्त्वा देवत्वमालभेत्॥१०॥

प्रणव (ॐ) के बाद यन्त्रराजाय विद्महे के बाद महायन्त्राय धीमही के बाद तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्—यह यन्त्र गायत्री है॥९-१०॥

[इष्टदेवतापूजनोपदेशः]

यथेष्टदेवतां ध्यात्वा मुद्रयावाहयेत् क्रमात्।
जीवन्यासं ततः कृत्वा पूजयेदिष्टदेवताम्॥११॥
उपचारैः षोडशभिर्नानाविभवविस्तरैः।
नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च पञ्चघोषपुरःसरम्॥१२॥

आवाहनी मुद्रा से यन्त्र में इष्टदेवता का आह्वान करके उसमें जीवन्यास करें। तत्पश्चात् यथावैभव षोडश उपचारों और पाँच वाद्यों से घोष करते हुए यन्त्र पर देवता का पूजन करें॥११-१२॥

ततो जपेदिष्टमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्।
ततः कल्पोक्तमासाद्य हविषा संस्कृतेऽनले॥१३॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा गुरुं विभवपूर्वकम्।
तोषयेत् स्वर्णरिखाद्यैः प्रदद्याद्दक्षिणामपि॥१४॥

पूजन के बाद भजन-कीर्तन एवं नृत्य-गीत आदि से इष्टदेवता को प्रसन्न करके इष्ट मन्त्र का अष्टोत्तर सहस्र (१००८) जप करें। यथाविधि अग्नि का संस्कार करके कल्प में बताई गई हवि से १०८ बार हवन करें। गुरुदेव को स्वर्ण-रत्न एवं अन्य द्रव्य दक्षिणा में प्रदान करके उन्हें प्रसन्न करें॥१३-१४॥

प्रयोग-विधि—यथाविधि नित्यक्रिया करने के बाद स्वस्तिवाचन-पूर्वक संकल्प लें—

'ॐ अद्य (देश-काल का उल्लेख करके) अमुकगोत्र: अमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया: प्रीत्यर्थं यन्त्रसंस्कारमहं करिष्ये।'

संकल्प करने के बाद ताम्र आदि के किसी बड़े पात्र में पञ्चगव्य लें। शिव-मन्त्र 'ह्रौं' का अष्टोत्तरशत (१०८) जप करके उसे अभिमन्त्रित करें। प्रणव (ॐ) का उच्चारण करते हुए यन्त्र को पञ्चगव्य में रख दें। कुछ क्षणों के बाद उसे पञ्चगव्य से निकाल लें। पञ्चामृत लेकर उसे भी पञ्चगव्य के समान शिव-मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। गाय का दूध, दही, घृत, शक्कर और कुशोदक को पञ्चामृत कहते हैं। इनमें से प्रत्येक द्रव्य को शिवमन्त्र (हौं) से यथाक्रम १०८-१०८ वार जप करके अभिमन्त्रित करें।

स्वर्ण आदि के किसी गहरे पात्र में यन्त्र को रखकर उसे पहिले शुद्ध शीतल जल से स्नान कराकर पञ्चामृत के द्रव्यों से स्नान करायें। इसका क्रम इस प्रकार है—पहिले दूध से स्नान कराकर, पुन: जल से स्नान करायें और धूप प्रदान करें। इसी प्रकार दही, घृत, मधु, शर्करा—इन सब द्रव्यों से स्नान करायें। इसे पञ्चामृत स्नान कहते हैं। फिर शीतल जल, सुगन्ध, चन्दन, कस्तूरी से स्नान करायें। सोने के आठ कलशों में कुंकुम, गोरोचन और चन्दनयुक्त जल लेकर उससे यन्त्र को स्नान करायें। स्नान मूल मन्त्र से करायें। स्नान-अभिषेक के बाद यन्त्र को स्वच्छ-चन्दन-चर्चित वस्त्र से पोंछकर किसी अन्य पात्र पर स्थापित करें।

कुश के अग्रभाग से यन्त्र का स्पर्श करते हुए उपर्युक्त यन्त्र-गायत्री का एक सौ आठ बार जप करके प्राण-प्रतिष्ठा करें—

विनियोग—ॐ अस्य प्राण-प्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषय:। ऋग्यजु:सामानि छन्दांसि, चैतन्यं देवता, प्राण-प्रतिष्ठायां विनियोग:।

मन्त्र—आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंस: अमुकदेवताया: प्राणा: इह प्राणा:। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंस: अमुकदेवताया: जीव इह स्थित:। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंस: अमुकदेवताया: सर्वेन्द्रियाणि। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंस: अमुकदेवताया: वाङ्मनश्चक्षु:श्रोत्रघ्राणप्राणा: इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'।

इस मन्त्र का तीन बार जप करके संस्कार-सिद्धि के लिये पन्द्रह बार प्रणव (ॐ) का जप करें। अमुक के स्थान पर देवता के नाम का उल्लेख करें। देवता का ध्यान करके यन्त्र में उसका आह्वान करें। तत्पश्चात् षडङ्गन्यास करके यथाशक्ति षोडशोपचार अर्चन करें। मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करके होम करें। हुतशेष घृत यन्त्र

को समर्पित करें। होम करने में असमर्थ हों तो दूना जप करें। अन्त में गुरुदेव को दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करें।

[उपचारमुद्रोपदेशः]

षोडशोपचारमुद्राया उच्यन्ते लक्षणान्यथ।
प्रसारयेदुभौ हस्तौ हृद्देशे विनियोजयेत्।।१५।।
अङ्गुल्यो विस्तृताः कार्या मध्येऽङ्गुष्ठौ तु विन्यसेत्।
देवतासनविन्यासपञ्चमुद्रां प्रदर्शयेत्।।१६।।

उपचारमुद्रायें—बीसवें प्रकाश में पूजा-विधान के प्रसंग में भगवती त्रिपुरा को प्रिय त्रिखण्डा आदि मुद्राओं का निरूपण किया गया था। अब उपचार में प्रयुक्त होने वाली सर्वदेवोपयोगी मुद्राओं के लक्षण बताये जा रहे हैं। दोनों हाथों को फैलाकर हृदय-प्रदेश के सामने लायें और अंगूठों को मध्यमा के मूल में संलग्न कर दें। देवता के आगमन पर उनको आसन आदि प्रदान करने के लिये यह मुद्रा दिखाई जाती है।।१५-१६।।

ईषन्नम्राङ्गुलिर्ज्ञेया संवृताङ्गुष्ठकन्दरम्।
नम्रे कनिष्ठतर्जन्यौ करयोरग्रसङ्गते।।१७।।

आसनमुद्रा—दोनों करतलों को ऊर्ध्वमुख करके अंगुलियों को मोड़ लें। अंगूठों को करतल की ओर झुका लें। मध्यमा और अनामा को परस्पर जोड़कर कनिष्ठा और तर्जनी को ढीली रखें। यह 'आसन' मुद्रा है।।१७।।

मध्यमानामिका कुर्यादियमासनमुद्रिका।
ईषन्नम्राङ्गुलिर्दक्षा संवेष्ट्याङ्गुष्ठकं परम्।।१८।।
स्वागते स्वस्तिका मुद्रा मध्यमूलगताङ्गुली।
उपचारे स्वागते तु प्रयोक्तव्या विपश्चिता।।१९।।

स्वागत मुद्रा—दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों को ढीली रखते हुए अंगूठे को मोड़कर मध्यमा के मूल पर्व पर स्थापित करना 'स्वागत' मुद्रा है। इसे 'स्वस्तिका' भी कहते हैं।।१८-१९।।

तौ च प्रसारितौ हस्तौ पाद्यमुद्रा प्रकीर्त्तिता।

पाद्य मुद्रा—दोनों हाथों को सम्मुख करके प्रसारित करना 'पाद्य' मुद्रा है।

संयुक्तानामिकाङ्गुष्ठौ तिस्रोऽन्याः सम्प्रसारिताः।।२०।।
मधुपर्कस्य सा मुद्रा गदिता तन्त्रवेदिभिः।

मधुपर्क—दाहिने हाथ की अनामिका को अंगूठे से मिलाकर शेष तीन अंगुलियों को फैला दें। यह 'मधुपर्क' मुद्रा है।।२०।।

मुष्टियुक्तं तथा नेत्रमङ्गुष्ठाग्रमधोमुखम्।।२१।।
मध्यमाङ्गुष्ठकौ लग्नौ तिस्रोऽन्याः सुप्रसारिताः।
वस्त्रमुद्रा समाख्याता वस्त्रमुद्राप्रवर्द्धिनी।।२२।।

वस्त्र-मुद्रा—मध्यमा और अंगूठे को परस्पर जोड़कर शेष तीनों अंगुलियों को फैलाने से 'वस्त्र' मुद्रा बनती है।।२१-२२।।

विमर्श—'२१वें श्लोक की पंक्ति—'मुष्टियुक्तं .... अधोमुखम्' से कोई अर्थ नहीं निकलता। 'वस्त्र' प्रदान करने से पूर्व देवता को स्नान कराया जाता है। 'तान्त्रिक नित्य पूजा पद्धति' के मुद्रा-प्रकरण में स्नानमुद्रा का स्वरूप बताया गया है—

कृत्वा मुष्टिं तथा स्नाने मध्यमाङ्गुष्ठकौ युतौ।

मध्यमा और अंगूठे को परस्पर संयुक्त करके शेष अंगुलियों से मुट्ठी बाँधने से 'स्नान' मुद्रा बनती है।

कनिष्ठाङ्गुलिकौ लग्नौ तिस्रो मध्याः प्रसारिताः।
यज्ञोपवीतमुद्रेयं कथिता मन्त्रपारगैः।।२३।।

यज्ञोपवीत मुद्रा—कनिष्ठा और अंगूठे को जोड़कर शेष तीन अंगुलियों को फैलाने से 'यज्ञोपवीत' मुद्रा बनती है।।२३।।

मधुपर्कं समुत्ताना मुद्रा लग्नाङ्गुली मता।
युक्ताऽनामिकयाऽङ्गुष्टा गन्धमुद्रेति कीर्त्तिता।।२४।।

अलंकरण—मधुपर्क मुद्रा को ऊपर उठाकर प्रदर्शित करने से 'अलंकार' या 'आभरण' मुद्रा बनती है।

गन्धमुद्रा—अनामिका और अंगूठे को ज़ोड़कर दिखाने से 'गन्ध' मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में शेष तीन अंगुलियाँ मुट्ठी की तरह बन्द रहती हैं।।२४।।

उत्थिताऽधोमुखी मध्या बद्धाङ्गुष्ठा यदीतरा।
पुष्पमुद्रा समाख्याता पुष्पदानविवर्द्धिनी।।२५।।

पुष्पमुद्रा—मध्यमा को अधोमुख सीधी रखते हुए अन्य तीन अंगुलियों को करतल से जोड़ दें और उन पर अंगूठे को स्थापित कर दें। यह 'पुष्प' मुद्रा है।।२५।।

अंगुष्ठं तर्ज्जनीलग्नं तिस्रः सङ्कुचिताः पराः।
मुद्रा धूपप्रदाने स्याद्देवानां तुष्टिकारिणी।।२६।।

धूपमुद्रा—अंगूठे और तर्जनी को परस्पर जोड़कर शेष तीन अंगुलियों को मोड़ लें। यह देवताओं को संतुष्ट करने वाली 'धूप' मुद्रा है।।२६।।

उत्ताना पौष्पिकी मुद्रा दीपमुद्रेति कथ्यते।

दीप मुद्रा—उपर्युक्त 'पुष्प' मुद्रा अधोमुखी होती है। यदि इसी मुद्रा को 'ऊर्ध्वमुखी' कर दिया जाय, तो वह 'दीप' मुद्रा बन जाती है।

पञ्चाङ्गुल्यग्रसंलग्नप्रोत्थिताऽधोमुखी यदि।।२७।।

नैवेद्य मुद्रा—पाँचों अंगुलियों के अग्रभाग को परस्पर जोड़कर ऊर्ध्वमुख प्रदर्शित करने से 'नैवेद्य' मुद्रा बनती है॥२७॥

त्रिधा निबद्धा मुद्रेयं नैवेद्यस्य प्रकीर्त्तिता।
द्वौ करौ पृष्ठसंलग्नौ भ्रामयेद् ग्रथिताङ्गुली।
स्फोटिकेति समाख्याता प्रणामे तां प्रदर्शयेत्।।२८।।

दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को जोड़कर अंगुलियों को भी परस्पर ग्रथित करके उन्हें घुमायें और बाद में चुटकी बजायें। यह मुद्रा (विसर्जन के समय) प्रणाम करते हुए दिखाई जाती है॥२८॥

विमर्श—यहाँ दो मुद्राओं के लक्षण (स्वरूप) नहीं वताये गये हैं। ये मुद्रायें हैं—अर्घ्य मुद्रा और आचमन मुद्रा। इनका स्वरूप है—

अर्घ्य-मुद्रा—'स्वस्तिमुद्रा द्विहस्तेन मुद्रा त्वर्घ्यं प्रकीर्त्तिता' अर्थात् दोनों हाथों से उपर्युक्त स्वस्ति (स्वागत) बनाने से 'अर्घ्य' मुद्रा बनती है।

आचमन-मुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे को तर्जनी के मूल पर्व पर रखें। कनिष्ठा को नीचे की ओर झुकाकर तीनों अंगुलियों से अलग रखें। शेष तीन अंगुलियों को कनिष्ठा से अलग रखते हुए फैलाकर झुकायें। यह 'आचमन' मुद्रा है। यह आचमन मुद्रा ही 'पुनराचमनीय' मुद्रा भी है।

[गन्धादिमुद्राणां प्रकारभेदः]

अथवा दर्शयेन्मुद्रा इमा गन्धादिभिः क्रमात्।
कनिष्ठाऽङ्गुष्ठसंसक्ता गन्धमुद्रा प्रकीर्त्तिता।।२९।।
अङ्गुष्ठस्य च पृष्ठस्य युक्ता धूपस्य तर्ज्जनी।
दीपस्य मध्यमानामा नैवेद्यस्य प्रकीर्त्तिता।।३०।।
इतराङ्गुलिसंयोगात् पञ्च मुद्राः प्रकीर्त्तिता।।३१।।
गन्धादिष्वपि दत्तेषु मुद्राश्चैताः प्रदर्शयेत्।

अथवा गन्धादि प्रदान करने के लिये अंगुलियों से पञ्चमुद्रायें प्रदर्शित करें। यथा—कनिष्ठा और अंगूठे को जोड़ने से गन्धमुद्रा बनती है। अंगूठे और तर्जनी से पुष्पमुद्रा, अधोमुखी मध्यमा और अंगूठे से धूपमुद्रा, ऊर्ध्वमुखी मध्यमा और अंगूठे से दीपमुद्रा तथा ऊर्ध्वमुखी अनामा और अंगूठे से नैवेद्यमुद्रा बनती है॥२९-३१॥

विमर्श—पञ्चोपचारीय अन्तर्याग के क्रम में इन्हीं मुद्राओं से गन्धादि पञ्च उपचार प्रदान किये जाते हैं।

[मुद्रामाहात्म्यम्]

मुद्रया यत् कृतं कर्म तदनन्तफलं भवेत्।।३२।।

मुद्रा-प्रदर्शन-पूर्वक जो कर्म किये जाते हैं अर्थात् मुद्रायें दिखाकर जो उपचार देवता को समर्पित किये जाते हैं, उन उपचारों के दान का अनन्त फल होता है। तात्पर्य यह कि जितने भी उपचार प्रदान किये जायँ, मुद्रायें दिखाकर प्रदान किये जायँ।।३२।।

[देवताया: प्रतिष्ठाविधि:]

अथ वक्ष्ये देवताया: प्रतिष्ठानविधिक्रमम्।
पुण्यक्षेत्रे पुण्यकाले शल्यादिरहिते स्थले।।३३।।

अब मैं देवता की प्रतिष्ठाविधि का निरूपण कर रहा हूँ। देवप्रतिमा की स्थापना कंटक (कँटीली झाड़ी) आदि से रहित किसी पुण्यस्थान में शुभ समय में की जाय।।३३।।

मन्त्रकल्पावसाने च पूर्वेद्युरधिवासयेत्।
सायं सङ्कल्प्य विधिवद् घटस्थापनपूर्वकम्।।३४।।
गणेशादीन् समभ्यर्च्य दिक्पालान् परिपूजयेत्।
यथाशक्त्युपचाराद्यै: पूजयेन्मूलदैवतम्।।३५।।
सुगन्धितैलगन्धाद्यैर्दिव्यान्तमधिवासयेत् ।
चन्द्रेणेत्यादिमन्त्रेण जयघोषपुर:सरम्।।३६।।
इत्यधिवासनं कृत्वा संयतो विजितेन्द्रिय:।

अधिवास—देवता की प्रतिष्ठा के पूर्व अधिवास किया जाय। एतदर्थ देवता की स्थापना के पूर्वदिवस को अपने कल्प में बताई गई विधि के अनुसार संकल्प करके अधिवास करें। सायंकाल में घटस्थापना करके गणेश और दिग्गजों की पूजा करें। तत्पश्चात् यथाशक्ति सुगन्धित पुष्पों, द्रव्यों और तेल आदि से मूल देवता की पूजा करें। जय-जयकार करके देवता को प्रसन्न करके अधिवास करें।।३४-३६।।

प्रातर्निर्वर्त्य नित्यन्तु क्लृप्तयागस्थले विशेत्।।३७।।
पताकाध्वजसंकीर्णे दिव्यमण्डपमण्डिते।
वितानचामरच्छत्रपुष्पमालाविभूषिते ।।३८।।
मङ्गलाङ्कुरपात्राद्यै: सकलै: परिपूरिते।
मण्डलं सर्वतोभद्रं वेद्या उपरि संलिखेत्।।३९।।

प्राङ्मुखः वाग्यतो भूत्वा सङ्कल्प्याभीष्टसिद्धये।
पञ्चशुद्धिं समाचर्य कुम्भमक्षतसंयुतम्।।४०।।
संस्थाप्य मण्डले तत्र यजेताधारशक्तिकाम्।
पीठमन्वन्तिमास्तत्र स्थापयेत् सकलं बुधः।।४१।।
दीक्षाक्रमोक्तविधिनाऽभिषेककलसं तथा।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान एवं सन्ध्यावन्दन आदि दैनिक कृत्य करके याग-मण्डप में आयें। याग-मण्डप जिस पर सुन्दर एवं दृढ़ तथा रंग-बिरंगा चन्दोवा तना हुआ है, जिस पर विभिन्न रंग की पताकायें लहरा रही हैं, जो विभिन्न प्रकार की मालाओं और वन्दनवारों से सजा हुआ है तथा जहाँ मंगल-अंकुर वाले पात्र सजे हुए हैं। ऐसे सुन्दर और मनोहर यागमण्डप में आकर मन्त्रवित् साधक वेदी के समीप पूर्व अथवा उत्तर की ओर बैठकर अभीष्ट-सिद्धि के लिये संकल्प ग्रहण करे। भू-शुद्धि आदि पञ्चशुद्धि कर्म सम्पादित करके वेदी पर सर्वतोभद्र मण्डल बनाये। आधार आदि शक्तियों के सहित पीठपूजन करे। दीक्षा-क्रम में बताई गई विधि के अनुसार अभिषेककलश तथा अन्य पात्र स्थापित करे॥३७-४१॥

पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रविशोधितम्।।४२।।
तेन सुस्नापयेन्मन्त्री प्रतिमां प्रणवं जपन्।
पञ्चामृतेन हविषा दध्ना च पयसा क्रमात्।।४३।।
तत उद्वर्त्तनं कृत्वा जलेन स्नापयेदपि।
वाससा जलमुत्तोल्य दुकूले परिधापयेत्।।४४।।
नयेत् स्थापितकुम्भस्य समीपे देवतां बुधः।
ततो ध्यात्वा यथोक्तां तां मुद्रयावाहयेत् क्रमात्।।४५।।

शिव-मन्त्र से पञ्चगव्य को शोधित करके उससे देवता की प्रतिमा को स्नान कराये। तत्पश्चात् शुद्ध जल से स्नान कराने के बाद प्रणव (ॐ) का जप करते हुए पञ्चामृत के द्रव्यों (दूध, दही, घी, शक्कर, शहद) से यथाक्रम स्नान कराकर पुनः शुद्ध जल से स्नान कराये। शुद्ध वस्त्र से पोंछकर देवता की प्रतिमा को दो वस्त्र पहिनाकर कुम्भ के समीप लाकर स्थापित कर दे। तत्पश्चात् ध्यान करके उक्त प्रतिमा में देवता की प्राणप्रतिष्ठा करे॥४२-४५॥

लेलिहामुद्रया हस्तं विन्यस्य देवताहृदि।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रन्तु दशधा प्रजपेत्ततः।
तत्तद्दैवतगायत्रीं शतमष्टोत्तरामपि।।४६।।
ततः कल्पोक्तविधिना परिवारसमन्विताम्।
पूजयेद्देवतां पश्चात् स्ववामे स्थानमण्डपे।।४७।।

अष्टपत्रसमायुक्ते पीठोपरि निधाय ताम्।
सुगन्धिदिव्यतैलेन दद्यादभ्यङ्गमेव हि।।४८।।

देवता के हृदय पर लेलिहान मुद्रा से हाथ रखकर दस बार प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का जप करे। प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र के बाद उस देवता के गायत्री मन्त्र का १०८ बार जप करे। इस प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करके देवता को मण्डप (मण्डल) में अपने वामभाग में निर्मित अष्टदल कमल पर स्थापित करे तथा सुगन्धित तेल आदि अभ्यङ्ग प्रदान करे।।४६-४८।।

मूलेन पावमानेन सहस्रशीर्षया बुधः।
स्नापयेद् भक्तिभावेन अभिषेकघटामृतैः।।४९।।
कर्पूरागुरुकस्तूरी प्रसूनचन्दनोदकैः।
नानातीर्थोदकेनापि स्वर्णरत्नान्वितैर्जलैः।
सर्वौषधिजलैर्गन्धजलैर्मूलेन सेचयेत्।।५०।।
ततः शुद्धदुकूलेन जलमुत्तोल्य साधकः।।५१।।
परिधाप्य दुकूले द्वे स्वर्णनिर्मितदोलया।
मण्डले तां समानीय नृत्यैर्गीतैर्जयस्वनैः।।५२।।
षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेत् कल्पमानतः।

तत्पश्चात् मन्त्रवित् साधक मूल मन्त्र, पवमानसूक्त तथा सहस्रशीर्षा आदि मन्त्रों का जप करते हुए पूर्णतः भाव-विभोर होकर देवता को कपूर, अगरु, कस्तूरी, फूल, चन्दन आदि से सुगन्धित तथा स्वर्ण एवं रत्न आदि से पवित्र किये गये तीर्थोदक से स्नान कराये। स्नान के बाद सर्व औषधियुक्त जल से मूल मन्त्र का जप करते हुए अभिसिंचन करे। देवयष्टि को शुद्ध वस्त्र से पोंछकर वस्त्र पहिनाये। सोने की पालकी में बिठाकर देवता का जय-जयकार करते हुए मण्डल में लाकर यथा-विधान षोडशोपचारों से अर्चन करे।।४९-५२।।

[होमोपदेशः]

कुण्डे वा स्थण्डिले मन्त्री हविषा संस्कृतेऽनले।।५३।।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा श्रपयित्वा चरुं ततः।
यथाविधिविधानेन स्रुचा होमं समाचरेत्।।५४।।
ग्रासप्रमाणं चरुकं मूलेनाहुतिमन्त्रवित्।
घृतस्रुवं तत्र दत्त्वा जुहुयादग्निसम्मुखे।।५५।।
पञ्चविंशतिवारं हि देवतोद्दिश्य यत्नतः।
चरुणा दिक्पतिभ्यश्च दद्यात् पूर्वादितो बलिम्।।५६।।

तत आवृतिदेवेभ्यो घृतेनाहुतिमाचरेत्।
अथवा चरुणा तद्वत्ततो देवसमीपगे।।५७।।

होम—देवता का यथाविधान षोडशोपचार अर्चन करने के बाद मन्त्रवित् साधक कुण्ड या स्थण्डिल पर संस्कृत अग्नि में हवन करे। एतदर्थ वह पहिले चरुपाक करे। चरुपाक की विधि दीक्षा प्रकरण में बताई जा चकी है। होम-विधान के अनुसार घी की एकादश आहुति देकर 'नाड़ी-सन्धान' तथा पच्चीस घृत की आहुतियाँ देकर 'मुख एकीकरण' के बाद मूल मन्त्र से देवता को चरु की १०८ ग्रासप्रमाण आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् देवता के परिवारदेवताओं, अंग-देवताओं आदि को घी की अथवा चरु की एक-एक आहुति दे। पूर्व आदि दसो दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों को यथाविधि चरु की बलि प्रदान करे॥५३-५७॥

दत्वा पुष्पाञ्जलीन् पञ्च प्रदद्याच्छत्रचामरे।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं जप्त्वा मूलं समाहितः।।५८।।
अभिषिञ्चेत्ततो देवं पूजाकुम्भस्थपल्लवैः।
मातृका मूलमन्त्रञ्च जपन् जयजयस्वनैः।।५९।।

दिक्पालों को उनकी-उनकी दिशाओं में बलि प्रदान करने के बाद मण्डल पर स्थापित देव-प्रतिमा के समीप जाकर देवता को पाँच पुष्पाञ्जलि तथा छत्र-चामर आदि राजोपकरण प्रदान करे। मन्त्र का १०८ बार जप करके मातृका और मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूजा-कुम्भ के पल्लवों और अभिषेक घट के जल से देवता के सिर पर अभिसिंचन करे॥५८-५९॥

दत्वा होमसमीपन्तु दद्यात् पूर्णाहुतिं ततः।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् स्वर्णं कर्षप्रमाणतः।।६०।।
अर्द्धार्द्धांशं चतुर्थांशं यथाविभवपूर्वकम्।
ततः सन्तोषयेद् विद्वान् गृहीत्वा आशिषो द्विजान्।।६१।।
इति देवप्रतिष्ठानमुक्तं सर्वसमृद्धिदम्।

देवता का अभिसिंचन करने के बाद होम-कुण्ड के पास जाकर पूर्णाहुति दे। गुरुदेव को एक कर्ष, आधा कर्ष अथवा यथासामर्थ्य एक-चौथाई कर्ष स्वर्ण की दक्षिणा दे। अन्य विद्वानों और ब्राह्मणों को पूजन और दक्षिणा से सन्तुष्ट करके उनका आशीर्वाद ग्रहण करे। यह देव-प्रतिष्ठा कर्म अत्यन्त समृद्धि प्रदान करने वाला है॥६०-६१॥

[प्रतिष्ठाफलकीर्त्तनम्]

यः करोति प्रतिष्ठानं दैवतस्य महात्मनः।।६२।।

वसेद्द्वित्रिसहस्राणि स्वर्गे देवप्रमाणतः।
ततो लक्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते।।६३।।
अथवा कोटिकल्पान्तं मोहयेदच्युते पदे।।६४।।

इस प्रकार पूरे विधि-विधान से जो व्यक्ति यथावैभव तथा पूर्ण श्रद्धाभक्ति एवं समर्पणभाव से देवता की प्रतिष्ठा करता है, वह इसके पुण्य-प्रभाव से तीन हजार दिव्य वर्षों तक स्वर्ग में तथा लाखों हजारों वर्षों तक ब्रह्मलोक में रहता है अथवा कोटि कल्पों तक अच्युत-पद पर निवास करता है।।६२-६४।।

[मठोत्सर्गविधिः]

अथ वक्ष्ये गृहोत्सर्गं वास्तुयागपुरःसरम्।
शरत्काले महापुण्ये पुण्यक्षेत्रे शुभेऽहनि।।६५।।
दुर्गायै मन्दिरं दत्त्वा स्व-स्व-मन्त्रानुसारतः।
पूर्वोक्तं सर्वमाचर्य वृद्धिश्राद्धपुरःसरम्।।६६।।
ततः सङ्कल्प्य विधिवन्मन्दिरे सुपरिष्कृते।
पताकाध्वजसङ्कीर्णे तुङ्गतोरणशोभिते।।६७।।
छत्रचामरमालाद्यैर्वितानैरुपशोभिते ।
विलिख्य सर्वतोभद्रं स्थापयेत् कलसन्तथा।।६८।।

मठोत्सर्ग—देवता की प्रतिष्ठा-विधि का निरूपण करने के बाद अब मठोत्सर्ग का विधान बताया जा रहा है। मठोत्सर्ग का अर्थ है—देवता को मन्दिर-समर्पण करना। मठ-उत्सर्ग के लिये सर्वाधिक प्रशस्त समय शरद् ऋतु है। किसी पुण्यक्षेत्र में शुभ दिन में भगवती दुर्गा को मन्दिर समर्पित करना चाहिए। दुर्गा यहाँ उपलक्षण है। सभी देवियों को इस ऋतु में मन्दिर-समर्पण करना पुण्यप्रद होता है। मन्दिर-समर्पण के पूर्व यथाविधान वास्तुयाग, वृद्धि-श्राद्ध तथा देवता की प्रतिष्ठा में बताये गये गणेश एवं दिक्पाल पूजन, नवग्रह-पूजन आदि सभी कार्य यथाविधान सम्पादित किये जायँ। मठ उत्सर्ग का संकल्प लेकर रंग-बिरंगी पताकाओं तथा तोरणों एवं वन्दनवारों से सुसज्जित, छत्र-चामर-माला आदि से अलंकृत मन्दिर में सर्वतोभद्र मण्डल पर यथाविधि कलश स्थापित करें।।६५-६८।।

पूजयेदिष्टदेवन्तु षोडशैरुपचारकैः।
अङ्गदेवान् समभ्यर्च्य तत्तद्देवगणान् यजेत्।।६९।।
वक्ष्यमाणेन मनुना शतमष्टोत्तरं हुनेत्।
दशाक्षरेण दुर्गायै दद्यान्मन्दिरमुत्तमम्।।७०।।

कलश स्थापित करने के बाद इष्टदेवता का षोडशोपचार अर्चन करें। अंग-देवताओं तथा परिवारदेवताओं का भी भक्तिपूर्वक अर्चन करके वक्ष्यमाण मन्त्र से

अष्टोत्तरशत (१०८) हवन करें। दशाक्षरी मन्त्र से भगवती दुर्गा को मन्दिर समर्पित करना चाहिये।।६९-७०।।

भुवनेशीमहाबीजं 'दुर्गे' युगमुदाहृतम्।
'रक्षिणि' त्र्यक्षरं प्रोच्य वह्निजायावधिर्मनुः।।७१।।

भुवनेशीति। एतेन 'ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इति मन्त्रो भवति।

दशाक्षरी मन्त्र—भुवनेशी बीज (ह्रीं) दो बार 'दुर्गे' (अर्थात् दुर्गे दुर्गे) के बाद 'रक्षिणि' तथा 'स्वाहा' की योजना करने से दशाक्षरी मन्त्र बनता है।।७१।।

मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा।

[मठदानफलम्]

मन्त्रेणानेन यो दद्यान्मन्दिरं सुप्रतिष्ठितम्।
सर्वैश्वर्यमवाप्नोति वसेत् कल्पायुतं दिवि।।७२।।

जो व्यक्ति इस मन्त्र से मन्दिर-समर्पित करता है, उसे सभी ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है तथा वह हजारों कल्पों तक स्वर्ग में रहता है।।७२।।

विमर्श—मठ/मन्दिर उत्सर्ग की तान्त्रिक-विधि का निरूपण महानिर्वाण तन्त्र (तेरहवें पटल) में विस्तार से किया गया है।

[साधनोपदेशः]

इह पीठवरे दिव्ये साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।
सप्तम्यां संयतो भूत्वा महाष्टम्यां यजेच्छिवाम्।।७३।।
महास्नानं महापूजां दद्यात् सन्धौ बलिं ततः।
प्रदीपं मस्तके दत्त्वा तद्रक्तैः पूजयेच्छिवाम्।।७४।।

साधनोपदेश—इस दिव्य पीठ में बुद्धिमान् साधक उत्तम सिद्धियों की साधना करे। सप्तमी को इन्द्रियों को वश में रखते हुए भगवती का ध्यान करे। अष्टमी को शिवा को महास्नान कराये और महापूजा करे। अष्टमी और नवमी की सन्धि-वेला में बलिदान करे। बलि-पशु के मस्तक पर दीपक रखे और उसके रक्त से शिवा की पूजा कर उन्हें तृप्त और संतुष्ट करे।।७३-७४।।

कृत्वासनं छागदेहं प्रजपेन्मनसा धिया।
ताञ्च ध्यायन् विभीतश्चेत् साधको विजितेन्द्रियः।
इह लोके भवेद्राजा परलोके शिवोपमः।।७५।।

जो जितेन्द्रिय साधक छाग की देह पर बैठकर भगवती का ध्यान करते हुए भगवती के मन्त्र का निर्भीक होकर जप करता है, वह इस लोक में राजा होता है और परलोक में शिव के समान सम्माननीय पद प्राप्त करता है।।७५।।

[साधने फलविशेषोपदेशः]

यः सदा भावयेद्देवीं स्वात्मानं तन्मयं नरः।
तस्य वश्यं जगत् सर्वं यक्षराक्षसमानुषम्।।७६।।
भावेन तन्मयो भूत्वा यं यं पश्यति चक्षुषा।
स स दासो भवेत् सार्द्धं सा सा याति कुलाङ्गना।।७७।।
भावेन तन्मयो भूत्वा यं पश्यति रुषान्वितः।
हतश्रीर्जायते सद्यः सहसा दुःखितो भवेत्।।७८।।
भावेन तन्मयो भूत्वा प्रसन्नो यं प्रपश्यति।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो दासवज्जायते ध्रुवम्।।७९।।

जो साधक स्वयं को देवी मानते हुए उनके ही ध्यान में तन्मय रहता है, यह सारा संसार, समस्त यक्ष, राक्षस और मनुष्य उसके वश में हो जाते हैं। भगवती में तन्मय जो साधक जिस-जिस व्यक्ति को देखता है, वे सभी व्यक्ति दास के समान उसके वशवर्ती और आज्ञाकारी हो जाते हैं। जिस व्यक्ति पर उसकी कोपदृष्टि पड़ती है, उसका तेज और बल समाप्त हो जाता है तथा उसे दुःख भोगने पड़ते हैं। जिस व्यक्ति पर उसकी कृपादृष्टि पड़ती है, वह धन्य हो जाता है, पापों से मुक्त होकर वह व्यक्ति साधक का वशवर्ती हो जाता है।।७६-७९।।

भावेन तन्मयो भूत्वा यं यं भावयते मृतम्।
आशु नश्यति निश्रीकः सभृत्यबलवाहनः।।८०।।
भावेन तन्मयो भूत्वा यं यं विद्वेष्टि साधकः।
सर्वलोके स विद्विष्टो जायते नात्र संशयः।।८१।।

भगवती के ध्यान में तन्मय रहने वाला साधक यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु की भावना करता है तो उसके इच्छा करने मात्र से उसके शत्रु का घर-परिवारसहित नाश हो जाता है। जिस-जिस व्यक्ति को वह शत्रु समझता है, सारा संसार उसका शत्रु हो जाता है। सभी लोग साधक के शत्रु को अपना शत्रु मानने लगते हैं।।८०-८१।।

[होमप्रशंसा]

एकतः सर्वकर्माणि एकतो जपभावना।
सर्वाधिकं होमकर्म होमात् किं वा न सिध्यति।।८२।।

साधना-उपासना में विहित सभी कर्म एक तरफ, जप और पारायण एक तरफ ये सभी मिलकर उतना फल नहीं दे सकते, जितना फल हवन करने से मिलता है। नित्य हवन करने से कौन-सी सिद्धि नहीं होती?।।८२।।

[होमाकरणनिन्दा]

अनया दीक्षितो मन्त्री यदि होमविवर्ज्जितः।
दुःखं प्राप्नोति मनसा कायेन च न संशयः।।८३।।
अकुर्वतामग्निहोत्रमग्निर्भूत्वा महेश्वरी।
धनानि शीघ्रं ग्रसति गृहक्षेत्रपशूनपि।।८४।।
बहुदुःखेनार्ज्जितानि सञ्चितानि चिरेण यत्।
आत्मप्राणाधिकान्याशु भूत्वाग्निर्ग्रसतीश्वरी।।८५।।

होम नहीं करने का फल—उपर्युक्त श्लोक में होम से सर्वकार्यसिद्धि का निरूपण करने के बाद इस तीन श्लोकों में होम नहीं करने के दुष्फलों का विवरण दिया गया है। मन्त्र-दीक्षा प्राप्त जो साधक होम नहीं करता, उसे शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है। होम नहीं करने से वह तरह-तरह के दुःख झेलता है। अग्निहोत्र अर्थात् होम नहीं करने से उसकी ही इष्टदेवता अग्नि बनकर उसकी सारी धन-सम्पत्ति घर-द्वार को जला डालती है। अत्यन्त कष्ट उठाकर कमाई गई तथा चिरकाल में संचित की गई वह सारी धन-सम्पत्ति, जिसे वह अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता है, आग की लपटों में राख हो जाती है।।८३-८५।।

विमर्श—चूँकि भगवती अग्निरूपा हैं, अतः उनकी सम्पूर्ण तुष्टि होम करने से ही होती है। होम न करने से वे असन्तुष्ट ही रहती हैं, अतः उनके पूर्ण परितोष के लिये हवन सर्वथा अनिवार्य है।

[अग्निहोत्रप्रशंसा]

अग्निहोत्रं विना नैव सम्पदां भाजनं भवेत्।
अग्निहोत्रपरस्येह चाग्निर्भवति शीतलः।।८६।।
गृहक्षेत्रादिवित्तेषु प्रयुक्तोऽपि दहेन्न तत्।
अग्नौ वसति देवेशी तस्मादग्नौ हुनेत् सदा।।८७।।

अग्निहोत्र किये विना अपनी कमाई गई सम्पत्ति भी कल्याणकारिणी नहीं होती। उससे वांछित सुख-संतोष नहीं मिलता। दूसरी ओर नित्य अग्निहोत्र करने वाले व्यक्ति की सम्पत्ति के लिये अग्नि भी शीतल हो जाती है। वह आग में नहीं जलती। चूँकि अग्नि में देवी का नित्य वास है, अतः उनकी प्रसन्नता और संतोष के लिये प्रतिदिन हवन करना चाहिए।।८६-८७।।

गुरुमभ्यर्च्चयेन्नित्यं धनैस्त्रिभिः सुशोभनैः।।८८।।
मिलित्वा साधकैः सर्वैर्नित्यं समयमाविशेत्।
अदीक्षितान् द्विजांश्चापि त्यक्त्वा कर्म समाचरेत्।।८९।।

तन, मन और धन से प्रतिदिन गुरुदेव की सेवा करें। सभी साधकगण मिलकर प्रतिदिन चक्रार्चन करें। कुलधर्म में अदीक्षित व्यक्तियों को चक्रार्चन में शामिल नहीं किया जाय। कुलधर्म में जिसे दीक्षा नहीं मिली है, वह ब्राह्मण भी चक्रार्चन में भाग लेने का पात्र नहीं है॥८८-८९॥

[चक्रप्रशंसा]

चक्रे प्रवृत्ते तत्रस्थाः सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥९०॥
देवीपुत्रेषु तिष्ठत्सु नैकः समयमाविशेत्।
अशुभं जायते तस्य सिद्धिहानिश्च जायते॥९१॥

चक्रार्चन में सामाजिक वर्ण-व्यवस्था के नियम लागू नहीं होते। चक्र में शामिल क्षत्रिय न तो क्षत्रिय होता है, न वैश्य वैश्य होता है, न शूद्र शूद्र होता है और न ही चाण्डाल चाण्डाल होता है। चक्रपूजा में शामिल सभी व्यक्ति एक समान द्विज होते हैं। चक्रार्चन समाप्त हो जाने के बाद वे सभी अपने-अपने सामाजिक वर्ण में आ जाते हैं तथा तदनुसार व्यवहार करते हैं। जब तक देवीपुत्र अर्थात् समयाचारी साधक चक्रार्चन में बैठे रहते हैं, तब तक न किसी व्यक्ति को चक्रार्चन छोड़कर जाना चाहिए और न ही आना चाहिए। ऐसा करने से देवी का अपमान होता है। इससे अशुभ होता है तथा सिद्धि की हानि होती है॥९०-९१॥

[वित्तशाठ्यनिषेधः]

वित्तशाठ्यं परित्यज्य सर्वकर्माणि साधयेत्।
वित्तशाठ्यं निहन्त्याशु पुत्रमायुर्यशो धनम्॥९२॥

जप-तप, पूजा-पाठ, हवन-अर्चन, गुरुसेवा तथा अतिथि-सत्कार आदि सभी शुभ-कार्य वित्तशाठ्य अर्थात् कंजूसी छोड़कर करना चाहिए। शुभ कार्यों में कंजूसी करने से धन-सम्पत्ति, आयु और परिवार की हानि होती है। तात्पर्य यह कि शुभ-कर्मों की प्राप्ति के लिये उदारता तथा विशाल हृदयता आवश्यक है॥९२॥

[गुरुदेववञ्चननिषेधः]

गुरुं देवं वञ्चयित्वा यः कुर्याद्धनसञ्चयम्।
राजभिर्नीयते चैव तस्करैर्नीयतेऽथवा॥९३॥
अधितिष्ठन्ति यक्षाश्च वह्निर्दहति वा चिरात्।
त्यक्त्वा निखातं म्रियते सत्यं तेन न भुज्यते॥९४॥

गुरु और देवता से कपट करके अर्थात् उनसे छिपाकर जो व्यक्ति धन का सञ्चय करता है, वह धन उसके कोई काम नहीं आता। इस धन से उसे कोई सुख

नहीं मिलता। उस धन को या तो चोर चुरा ले जाते हैं अथवा वह धन राजा के द्वारा अधिग्रहीत कर लिया जाता है। वह धन आग में भस्मीभूत हो जाता है। यदि वह उस धन को छिपाने के लिये जमीन में गाड़ देता है तो उस पर यक्ष कब्जा कर लेते हैं॥९३-९४॥

[वह्नौ होमस्य गुरवे दानस्य च प्रशंसा]

हुतमेकगुणं वह्नौ दत्तमेकगुणं गुरौ।
लभ्यते कोटिगुणितं विश्वसेन्न परामृशेत्॥९५॥
यस्य नास्ति क्व विश्वासः कुरुते धनसञ्चयम्।
राजभिर्नीयते चैव तस्करैर्नीयतेऽथवा॥९६॥

इति श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचिते श्रीतत्त्वचिन्तामणौ षड्विंशतितमः प्रकाश॥२६॥

अग्नि में हवन करने और गुरुजनों को दान करने से सम्पत्ति का पूरा-पूरा फल मिलता है। वही सम्पत्ति कोटि-कोटिगुना बढ़कर पुन: मिलती है। जो व्यक्ति अपने विश्वस्त और विश्वसनीय व्यक्तियों से झूठ, कपट, दगा, फरेब करके धनसञ्चय करता है, उसके धन की या तो चोरी हो जाती है अथवा वह सम्पत्ति राजसात् कर ली जाती है। अत: झूठ, फरेब और दगाबाजी अत्यन्त घृणित पाप है। इनसे सबको बचना चाहिए॥९५-९६॥

आसनमुद्रा

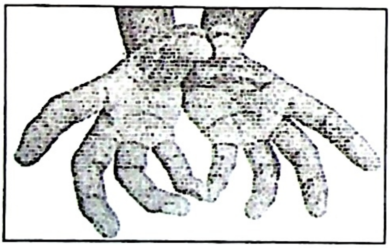

स्वागत मुद्रा

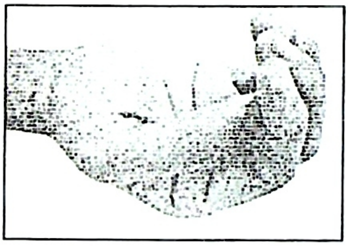

पद्म मुद्रा

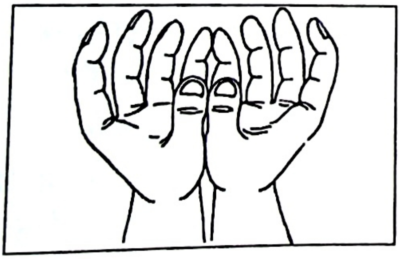

मधुपर्क मुद्रा

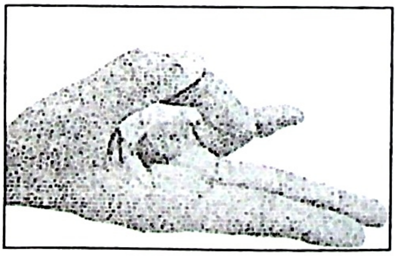

अर्घ्य-मुद्रा

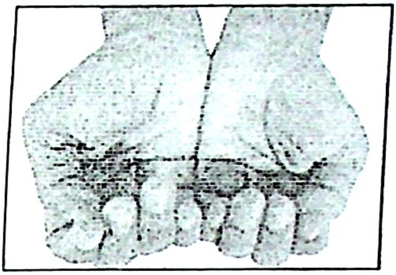

श्रीपूर्णानन्दपरमहंसविरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि के छबीसवें प्रकाश का 'भावना'-भाष्य पूर्ण हुआ।।२६।।

श्रीतत्त्वचिन्तामणिः समाप्तः

●

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थाः

अन्नदाकल्पतन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन.खण्डेलवाल

अहिर्बुध्न्यसंहिता (श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता) 'सरला' हिन्दीटीकासहित। डॉ. सुधाकर मालवीय

आगमतत्त्वविलास। हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन.खण्डेलवाल। (1-4 भाग सम्पूर्ण)

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी। अभिनवगुप्त। सम्पादक–मधुसूदनकौल शास्त्री (1-3 भाग)

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी। (ज्ञानाधिकार)। (प्रथम अधिकार के पाँचवे आह्निक की सप्तम कारिका से लेकर आह्निक के अन्त तक की 'लीला' हिन्दी व्याख्या। टीकाकार–डॉ. दयाशङ्कर शास्त्री

एकजटातारासाधनतन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन.खण्डेलवाल

Kamakala Vilasa : Text with 'Cidwalli' Sanskrit Commentary and English Translation, Notes etc. Dr. R. P. Dwivedi & Dr. S. Malaviya

कामकलाविलासः। चिद्वल्यां संवलितः। सरोजिनी हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी 'आनन्द

कामाख्यातन्त्रम्। 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका सहित। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

कुण्डलिनी शक्ति। (योग-तान्त्रिक साधना-प्रसङ्ग) श्री अरुणकुमार शर्मा

कुलार्णवतन्त्रम्। 'नीरक्षीरविवेक' हिन्दीटीका। डॉ. परमहंस मिश्र

गायत्री-मन्त्रार्थ भास्कर। भाषा टीका सहित। पं. यमुना प्रसाद द्विवेदी

गायत्रीमहातन्त्रम्। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदिप्रणीत। हिन्दीभाष्य विभूषित

तन्त्रविज्ञान और साधना। श्री सीताराम चतुर्वेदी

तन्त्रसारः। अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित। हिन्दीटीका सहित। (1-2 भाग)। डॉ. परमहंस मिश्र

तन्त्रराजतन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण

तन्त्रसारसङ्ग्रहः। नारायण विरचित। सव्याख्या। आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित।

तन्त्रालोक। अभिनवगुप्तपादाचार्य। जयरथकृत'विवेक' टीका एवं पं. राधेश्याम चतुर्वेदीकृत हिन्दीटीका

त्रिपुरारहस्यम्। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्रकृतहिन्दी अनुवाद सहित। ज्ञानखण्ड एवं महात्म्यखण्ड

त्रिपुरार्णवतन्त्रम्। (उपासनाखण्ड) हिन्दीटीका सहित। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र

दक्षिणकालिकासपर्यापद्धतिः। डा. रामप्रिय पाण्डेय

दुर्गासप्तशती। दुर्गाप्रदीप-गुप्तवती-चतुर्धरी-शान्तनवी-नागोजीभट्टी-जगच्चन्द्रिका-दंशोद्धार नामक सप्तटीकायुक्त।

दुर्गासप्तशती। मूलमात्र। नव-शत-सहस्रचण्डी-पल्लवयोजनाविधि-कवचअर्गला-कीलक-कुञ्जिकास्तोत्र सहित।

दुर्गासप्तशती। प. रामतेज पाण्डेय शास्त्रीकृत हिन्दी व्याख्या सहित। सम्पादक–डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

देवीरहस्यम्। (परिशिष्ट सहित) श्रीरुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत हिन्दीटीका सहित। श्री कपिलदेव नारायण

नीलसरस्वतीतन्त्रम्। श्री एस. एन. खण्डेवालकृत हिन्दी टीका।

नित्याषोडशिकार्णवः। संस्कृत एवं हिन्दी-टीका सहित। श्री एस.एन. खण्डेलवाल

नित्योत्सव। हिन्दी-टीका सहित। श्रीपरमहंस मिश्र

नेत्रतन्त्रम्। क्षेमराजकृत 'नेत्रोद्योत' संस्कृत एवं श्रीराधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दीटीका सहित

परलोकविज्ञान। श्री अरुणकुमार शर्मा

प्राणतोषिणी। मूलमात्र। श्रीरामतोषण भट्टाचार्य।

पुरश्चर्यार्णवः। श्रीनेपालमहाराजाधिराज प्रतापसिंह साहदेवविरचित। सम्पादक–म. म. मुरलीधर झा

प्रपञ्चसारसारसंग्रहः। गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीविरचित। के. एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री सम्पादित।

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
भूतडामरतन्त्रम्। श्री एस. एन. खण्डेलवालकृत हिन्दी टीका
भारतीय शक्ति-साधना। (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त)। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
Mahanirvanatantram. Sanskrit Text, Transliteration and English Translation with Copious Notes. Edited by M. N. Dutta
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य। डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी
महाकालसंहिता (कामकला कालीखण्ड)। 'ज्ञानवती' हिन्दीभाष्य सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी
महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड)। 'ज्ञानवती'हिन्दीभाष्यसहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी। (1-5 भाग)
मन्त्रमहोदधि। 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार-डॉ. सुधाकर मालवीय
महानिर्वाणतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
मुद्राविज्ञान-साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
राधातन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन.खण्डेलवाल
रुद्रयामलतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार-डॉ. सुधाकर मालवीय
रेणुकातन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
ललितासहस्रनाम। भास्करराय प्रणीत 'सौभाग्यभास्करभाष्य' एवं श्रीभारतभूषणकृत विस्तृत हिन्दी व्याख्या।
ललितोपाख्यानम्। (तन्त्र)। मूलमात्र
वर्णबीजप्रकाश। श्रीसरयूप्रसाद द्विवेदी। सम्पा.-डॉ. परमहंसमिश्र
वरिवस्यारहस्यम्। 'प्रकाश' संस्कृत एवं डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' कृत हिन्दी टीका सहित।
विज्ञानभैरवः। श्रीबापूलाल आँजना विरचित कारिकानुवाद विवृतभागस्थ हिन्दी व्याख्या
बृहत्तन्त्रसारः। कृष्णानन्द आगमवागीशकृत। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण
श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् । 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
श्रीविद्यासपर्या पद्धति। ब्रह्मश्रीशङ्करराम शास्त्री
श्रीविद्या-साधना। (श्रीविद्या का सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्रीय विवेचन)। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
शारदातिलकम्। 'पदार्थादर्श' संस्कृत टीका एवं डॉ. सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी-टीका सहित।
षट्चक्रनिरूपणम्। पूर्णानन्दयति। शिवोक्त पादुकापञ्चक सहित। श्रीभारतभूषणकृत हिन्दी व्याख्या सहित।
सप्तशतीसर्वस्वम्। नानाविधसप्तशतीरहस्यसंग्रहः। पं. सरयू प्रसाद द्विवेदी
सर्वोल्लासतन्त्रम्। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार-श्री एस. एन. खण्डेलवाल।
सार्द्ध-नवचण्डि-पुरश्चरण। डा. रामप्रिय पाण्डेय
सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्। श्री एस. एन. खण्डेलवाल कृत हिन्दी टीका सहित।
सौन्दर्यलहरी। 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या। सुधाकर मालवीय
स्पन्दकारिका। विस्तृत हिन्दी व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन एवं टिप्पणी सहित। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
Spandanirnaya (The Divine Vibration). Sanskrit with English Translation by Madhusudan Kaul.
स्वच्छन्दतन्त्रम्। संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
सिद्धसिद्धान्तपद्धति। हिन्दी अनुवाद सहित। स्वामी द्वारकादास शास्त्री।
The Doctrine of the Tantrayukti-s (Methodology of Ancient Indian Sciences) Dr. W. K. Lele

●